गीता दर्शन, भाग सात

अनुक्रम

अध्याय 14
1. चाह है संसार और अचाह है परम सिद्धि...3
2. त्रिगुणात्मक जीवन के पार...23
3. हे निष्पाप अर्जुन...43
4. होशः सत्व का द्वार..63
5. संबोधि और त्रिगुणात्मक अभिव्यक्ति..83
6. रूपांतरण का सूत्रः साक्षी-भाव..104
7. असंग साक्षी...126
8. संन्यास गुणातीत है...145
9. आत्म-भाव और समत्व..165 10...अव्यभिचारी भक्ति
.... 185

अध्याय 15
1. मूल-स्रोत की ओर वापसी...207 11...दृढ़ वैराग्य और शरणागति
.... 225
12..संकल्प--संसार का या मोक्ष का
.... 245
13...समर्पण की छलांग
.... 265
14...एकाग्रता और हृदय-शुद्धि
.... 285
15..पुरुषोत्तम की खोज
.... 306
16...प्यास और धैर्य
.... 327

अध्याय 16
1. दैवी संपदा का अर्जन..348 17..दैवीय लक्षण
.... 368
18..आसुरी संपदा
.... 390
19..आसुरी व्यक्ति की रुग्णताएं
.... 411

20..शोषण या साधना
....430

21..ऊर्ध्वगमन और अधोगमन
....451

22...□□□□ □□ □□□□
....470

23..नरक के द्वारः काम , क्रोध , लोभ
....489

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
पहला प्रवचन

चाह है संसार और अचाह है परम सिद्धि

श्रीमद्भगवद्गीता
अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।। 1।।
इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। 2।।
मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।। 3।।
इसके उपरांत श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन, ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूंगा, कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।
हे अर्जुन, इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं और प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते हैं।
हे अर्जुन, मेरी महत ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है अर्थात गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतनरूप बीज को स्थापन करता हूं। उस जड़-चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

यूनान में एक विचारक हुआ, पिरहो। विचारक को जैसा होना चाहिए, जितने संदेह से भरा हुआ, उतने संदेह से भरा हुआ विचारक पिरहो था।
एक दिन सांझ पिरहो निकला है अपने घर के बाहर। वर्षा के दिन हैं। रास्ते के किनारे एक गड्ढे में उसका बूढ़ा गुरु गिर पड़ा है और फंस गया है। गले तक कीचड़ में डूबा हुआ गुरु; पिरहो किनारे खड़ा होकर सोचता है, निकालूं या न निकालूं! क्योंकि पिरहो का ख्याल है, तब तक कोई कर्म करना उचित नहीं, जब तक कि उसके परिणाम पूरी तरह सुनिश्चित रूप से ज्ञात न हो जाएं। और परिणाम शुभ होंगे या अशुभ, जब तक यह साफ न हो, तब तक कर्म में उतरना भ्रांति है।
गुरु को बचाने से शुभ होगा या अशुभ; गुरु बचकर जो भी करेंगे जीवन में,
वह शुभ होगा या अशुभ; जब तक यह साफ न हो जाए, तब तक पिरहो गुरु को कीचड़ से निकालने को तैयार नहीं है। क्योंकि कोई भी कृत्य तभी किया जा सकता है, जब उसके अंतिम फल स्पष्ट हो जाएं।
भला हुआ कि और लोग आ गए और उन्होंने डूबते हुए गुरु को बचा लिया। लेकिन पिरहो किनारे पर ही खड़ा रहा। और जानकर आप आश्चर्यचकित होंगे कि जिन दूसरे शिष्यों ने गुरु को बचाया, गुरु ने कहा कि वे ठीक-ठीक विचारक नहीं हैं, ठीक विचारक पिरहो ही है। इसलिए मेरी गद्दी का अधिकारी वही है। क्योंकि जिस कर्म का फल तुम्हें साफ नहीं, तुम उसे कर कैसे सकते हो? पिरहो पश्चिम में संदेहवाद का जन्मदाता है। लेकिन अगर कर्म का फल स्पष्ट न हो, तो कोई भी कर्म किया नहीं जा सकता। क्योंकि किसी कर्म का फल स्पष्ट नहीं है, और स्पष्ट नहीं हो सकता है। क्योंकि कर्म है अभी, और फल है भविष्य में। और प्रत्येक कर्म अनेक फलों में ले जा सकता है; वैकल्पिक फल हैं। इसलिए अगर कोई यही तय कर ले कि जब तक फल निर्णायक रूप से निश्चित न हो, तब तक मैं कर्म में हाथ न डालूंगा, तो वैसा व्यक्ति कोई भी कर्म नहीं कर सकता है।
पिरहो खड़ा है--इसे फिर से सोचें। अगर मुझे वह मिल जाए, तो उससे मैं कहूंगा कि खड़े रहने का फल ठीक होगा या बचाने का, यह भी सोचना जरूरी है।

3

क्योंकि खड़ा होना कृत्य है। तुम कुछ निर्णय ले रहे हो। गुरु को बचाना ही अकेला निर्णय नहीं है। मैं खड़ा रहूं या बचाने में उतरूं, यह भी निर्णय है।
मैं इस समय सोचूं या कर्म करूं, यह भी निर्णय है।
निर्णय से बचने का कोई उपाय नहीं है। चाहे मैं कुछ करूं और चाहे न करूं, निर्णय तो लेना ही होगा। और करने का भी फल होता है, न करने का भी फल होता है। न करने से गुरु मर भी सकता था।
तो न करने का फल नहीं होता, ऐसा मत सोचना। फल तो न करने का भी होता है।
कर्म का भी फल होता है, आलस्य का भी फल होता है।
हम कुछ करें या न करें, निर्णय तो लेना ही होगा। निर्णय मजबूरी है।
इसलिए जो सोचता हो कि मैं निर्णय से बच रहा हूं, वह बेईमान है। क्योंकि बचना भी अंततः निर्णय है और उसके भी फल होंगे।
अर्जुन भी ऐसी ही दुविधा में है। वह कर्म में उतरे, न उतरे? युद्ध में प्रवेश करे, न करे? क्या होगा फल? शुभ होगा कि अशुभ होगा? इसके पहले कि वह कदम उठाए, भविष्य को देख लेना चाहता है। जो कि संभव नहीं है, जो कभी भी संभव नहीं हुआ और कभी भी संभव नहीं होगा। क्योंकि भविष्य का अर्थ ही यह है, जो न देखा जा सके; जो अभी नहीं है; जो अभी गर्भ में है; होगा।
वर्तमान देखा जा सकता है। निर्णय वर्तमान के संबंध में लिए जा सकते हैं। भविष्य अंधेरे में है, छिपा है अज्ञात में। अर्जुन चाहता है, उसका भी निर्णय ले ले, तो ही युद्ध में उतरे।
और ध्यान रहे, पिरहो और अर्जुन की हालत में बहुत फर्क नहीं है। अर्जुन
की हालत और भी बुरी है। वहां तो एक आदमी डूबता और मरता था, यहां लाखों लोगों के मरने और बचने का सवाल है। युद्ध की आखिरी घड़ी में उसके मन को संदेह ने पकड़ लिया है।
वस्तुतः जब भी आपको कोई कर्म करने का निर्णय लेना होता है, तब आप सभी अर्जुन की अवस्था में पहुंच जाते हैं। इसलिए अधिक लोग निर्णय लेने से बचते हैं। कोई और उनके लिए निर्णय ले ले। पिता बेटे से कह दे, ऐसा करो। गुरु शिष्य से कह दे, ऐसा करो। आप इसीलिए आज्ञा मानते हैं। आज्ञा मानने की मौलिक आधारशिला खुद निर्णय से बचना है।
दुनिया में लोग कहते हैं कि लोगों को स्वतंत्र होना चाहिए। लेकिन लोग स्वतंत्र नहीं हो सकते। लोग आज्ञा मानेंगे ही। क्योंकि आज्ञा मानने में एक तरकीब है, उसमें निर्णय कोई और लेता है; आप निर्णय की जो दुविधा है, निर्णय का जो कष्ट है, जो कठिनाई है, उससे बच जाते हैं। इसलिए लोग गुरु को खोजते हैं, नेताओं को खोजते हैं। किसी के पीछे चलना चाहते हैं।
पीछे चलने में एक सुविधा है; जो आगे चल रहा है, वह निर्णय लेगा। पीछे चलने वाले को निर्णय लेने की जरूरत नहीं है। यद्यपि यह भी भ्रांति है। क्योंकि किसी के पीछे चलने का निर्णय लेना, सारे निर्णयों की जिम्मेवारी आपके ऊपर आ गई। चुन तो आपने लिया है, लेकिन अपने को धोखा देने की सुविधा है।
अर्जुन जैसी कठिनाई प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव होगी। इसलिए गीता का संदेश बहुत शाश्वत है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के जीवन में वही कठिनाई है। हर कदम पर, प्रतिपल, एक पैर भी उठाना है, तो निर्णय लेना है। क्योंकि हर पैर उठाने का परिणाम होगा और जीवन भिन्न होगा। एक कदम भी बदल देने से जीवन भिन्न हो जाएगा।
आज आप यहां मुझे सुनने आ गए हैं। आपका जीवन वही नहीं हो सकता अब, जो आप मुझे सुनने न आए होते तो होता। वही हो ही नहीं सकता। अब कोई उपाय नहीं है। यह बड़ा निर्णय है। क्योंकि इस समय में आप कुछ करते। किसी के प्रेम में पड़ सकते थे; विवाह कर सकते थे। किसी से झगड़ सकते थे; दुश्मनी पैदा कर सकते थे।
इस समय में कुछ न कुछ आप करते, जो जिंदगी को कहीं ले जाता।
इस समय मुझे सुन रहे हैं। यह भी कुछ कर रहे हैं। यह भी जिंदगी को कहीं
ले जाएगा। क्योंकि एक-एक शब्द आपको भिन्न करेगा। आप वही नहीं हो सकते। चाहे आप मैं जो कहूं, उसे मानें या न मानें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न मानें, तो भी आप वही नहीं होंगे। क्योंकि न मानने का निर्णय आपको भिन्न जगह ले जाएगा। मानें तो भी, न मानें तो भी!

एक पलक भी झपकी, तो हम बदल रहे हैं। और एक पलक का फासला बड़ा फासला हो सकता है। मंजिल में हजारों मील का फर्क हो सकता है।
इस अर्जुन की मनःस्थिति को ठीक से समझ लें, तो फिर कृष्ण का प्रयास समझ में आ सकता है कि कृष्ण क्या कर रहे हैं।
अर्जुन उस दुविधा में खड़ा है, जो प्रत्येक मन की दुविधा है। और जब तक
मन रहेगा, दुविधा रहेगी। क्योंकि मन कहता है, तुम कुछ करने जा रहे हो, इसका परिणाम तुम्हें ज्ञात नहीं। और जब तक परिणाम ज्ञात न हो, तुम कैसे करने में उतर रहे हो? मन प्रश्न उठाता है और उत्तर नहीं है।
अर्जुन प्रश्न-चिह्न बनकर खड़ा है। उत्तर की तलाश है। यह उत्तर उधार
भी मिल सकता है। कोई कह दे और जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ले। कोई कह दे कि भविष्य ऐसा है। भविष्य के संबंध में कोई निर्णायक मंतव्य दे दे और सारा जिम्मा अपने ऊपर ले ले, तो अर्जुन युद्ध में कूद जाए या युद्ध से रुक जाए। कोई भी निष्कर्ष अर्जुन ले सकता है। लेकिन तब निर्णय उधार होगा, किसी और पर निर्भर होगा।
कृष्ण कोई उधार वक्तव्य अर्जुन को नहीं देना चाहते। इसलिए गीता एक बड़ा गहन मनो-मंथन है। एक शब्द में भी कृष्ण कह सकते थे कि मुझे पता है भविष्य। तू युद्ध कर। पर कृष्ण की अनुकंपा यही है कि उत्तर न देकर, अर्जुन के मन को गिराने की वे चेष्टा कर रहे हैं। जहां से संदेह उठते हैं, उस स्रोत को मिटाने की कोशिश कर रहे हैं; न कि संदेह के ऊपर आस्था और श्रद्धा का एक पत्थर रखकर उसको दबाने की।
अर्जुन को किसी तरह समझा-बुझा देने की कोशिश नहीं है। अर्जुन को रूपांतरित करने की चेष्टा है। अर्जुन नया हो जाए, वह उस जगह पहुंच जाए, जहां मन गिर जाता है। जहां मन गिरता है, वहां संदेह गिर जाता है। क्योंकि कौन करेगा संदेह? जहां मन गिरता है, वहां भविष्य गिर जाता है, क्योंकि कौन सोचेगा भविष्य?
मन के गिरते ही वर्तमान के अतिरिक्त और कोई अस्तित्व नहीं है। मन के गिरते ही व्यक्ति कर्म करता है, लेकिन कर्ता नहीं होता है। क्योंकि वहां कोई अहंकार नहीं बचता पीछे, जो कहे, मैं। मन ही कहता है, मैं।
फिर कर्म सहज और सरल हो जाता है। फिर वह कर्म चाहे युद्ध में जाना हो, चाहे युद्ध से हट जाना हो, लेकिन उस कर्म के पीछे कर्ता नहीं होगा। सोच-विचारकर, गणित, तर्क से लिया गया निष्कर्ष नहीं होगा। सहज होगा कर्म। अस्तित्व जो चाहेगा उस क्षण में, वही अर्जुन से हो जाएगा। कृष्ण की भाषा में, परमात्मा जो चाहेगा अर्जुन से वही हो जाएगा। अर्जुन निमित्त हो जाएगा।
अभी अर्जुन कर्ता होने की कोशिश कर रहा है। अभी वह चाहता है, मैं जो करूं, उसकी जिम्मेवारी मेरी है। उसका दायित्व मेरा है। मेरे ऊपर होगा, शुभ या अशुभ। मैं कर रहा हूं।
और अगर आप कर रहे हैं, तो बड़ी चिंता पकड़ेगी। इसलिए जितना ज्यादा मैं
का भाव होगा, उतनी ज्यादा जीवन में चिंता होगी। जितना मैं का भाव कम होगा, उतनी चिंता क्षीण हो जाएगी। और जिस व्यक्ति को चिंता से बिल्कुल मुक्त होना है, उसे मैं से मुक्त हो जाना पड़ेगा। मैं ही चिंता है।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, हम कैसे निश्चिंत हो जाएं? मैं उनसे कहता हूं, जब तक तुम हो, तब तक निश्चिंत न हो सकोगे। क्योंकि तुम चिंता के स्रोत हो। जैसे बीज से अंकुर निकलते हैं, ऐसे तुमसे चिंताओं के अंकुर निकलते हैं। तुम चिंताओं को पोषण कर रहे हो। तुम आधार हो। फिर तुम परेशान हो कि मैं कैसे निश्चिंत हो जाऊं! तब निश्चिंत होना और एक नई चिंता बन जाती है। तब शांत होने की चेष्टा एक नई अशांति बन जाती है।
इसलिए साधारण आदमी उतना चिंतित नहीं है, जितना धार्मिक, असाधारण आदमी चिंतित होता है। अपराधी उतना चिंतित नहीं है, जितना साधु चिंतित दिखाई पड़ता है।
जितना ज्यादा चिंता से हम छूटना चाहते हैं, उतनी नई चिंता हमें पकड़ती है। एक तो यह नई चिंता पकड़ लेती है कि चिंता से कैसे छूटें! और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता छूटने का, तो मन बड़े भयंकर बोझ से दब जाता है। जैसे कोई छुटकारा नहीं, कोई मार्ग नहीं। इस कारागृह के बाहर जाने के लिए कोई द्वार

खुला नहीं दिखता, कोई स्रोत नहीं दिखता, कोई सूत्र नहीं समझ में आता कि कैसे बाहर जाएं। एक प्रकाश की किरण भी दिखाई नहीं पड़ती।
जो उस अंधेरे में मजे से रह रहा है, उसकी चिंताएं कारागृह के भीतर की हैं। जो कारागृह के बाहर जाना चाहता है, उसकी तो नई चिंताएं आ गईं, कि कारागृह से बाहर कैसे निकलें? इसलिए धार्मिक आदमी गहन चिंता में डूब जाता है। यह स्वाभाविक है। मैं चूंकि चिंता का केंद्र है।
कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि अर्जुन कैसे मिट जाए। गुरु का सारा उपाय सदा ही यही रहा है कि शिष्य कैसे मिट जाए।
यहां जरा जटिलता है। क्योंकि शिष्य मिटने नहीं आता। शिष्य होने आता है। शिष्य बनने आता है, कुछ पाने आता है। सफलता, शांति, सिद्धि, मोक्ष, समृद्धि, स्वास्थ्य--कुछ पाने आता है। इसलिए गुरु और शिष्य के बीच एक आंतरिक संघर्ष है। दोनों की आकांक्षाएं बिल्कुल विपरीत हैं। शिष्य कुछ पाने आया है और गुरु कुछ छीनने की कोशिश करेगा। शिष्य कुछ होने आया है, गुरु मिटाने की कोशिश करेगा। शिष्य कहीं पहुंचने के लिए उत्सुक है, गुरु उसे यहीं ठहराने के लिए उत्सुक है।
पूरी गीता इसी संघर्ष की कथा है। अर्जुन घूम-घूमकर वही चाहता है, जो प्रत्येक शिष्य चाहता है। कृष्ण घूम-घूमकर वही करना चाह रहे हैं, जो प्रत्येक गुरु करना चाहता है। एक दरवाजे से कृष्ण हार जाते लगते हैं, क्योंकि अज्ञान गहन है, तो दूसरे दरवाजे से कृष्ण प्रवेश की कोशिश करते हैं। वहां भी हारते दिखाई पड़ते हैं, तो तीसरे दरवाजे से प्रवेश करते हैं। ध्यान रहे, शिष्य बहुत बार जीतता है। गुरु सिर्फ एक बार जीतता है। गुरु बहुत बार हारता है शिष्य के साथ। लेकिन उसकी कोई हार अंतिम नहीं है। और शिष्य की कोई जीत अंतिम नहीं है। बहुत बार जीतकर भी शिष्य अंततः हारेगा। क्योंकि उसकी जीत उसे कहीं नहीं ले जा सकती। उसकी जीत उसके दुख के डबरे में ही उसे डाले रखेगी। और जब तक गुरु न जीत जाए, तब तक वह दुख के डबरे के बाहर नहीं आ सकता है। लेकिन संघर्ष होगा। बड़ा प्रीतिकर संघर्ष है। बड़ी मधुर लड़ाई है।
शिष्य की अड़चन यही है कि वह कुछ और चाह रहा है। और इन दोनों में कहीं मेल सीधा नहीं बैठता। इसलिए गीता इतनी लंबी होती जाती है। एक दरवाजे से कृष्ण कोशिश करते हैं, अर्जुन वहां जीत जाता है। जीत जाता है मतलब, वहां नहीं टूटता। जीत जाता है मतलब, वहां नहीं मिटता। चूक जाता है उस अवसर को। उसकी जीत उसकी हार है। क्योंकि अंततः जिस दिन वह हारेगा, उसी दिन जीतेगा। उसकी हार उसका समर्पण बनेगी।
तो कृष्ण दूसरे दरवाजे पर हट जाते हैं; दूसरे मोर्चे से संघर्ष शुरू
हो जाता है। ये प्रत्येक अध्याय अलग-अलग मोर्चे हैं। और इन अलग-अलग अध्यायों में वे सब द्वार आ गए हैं, जिनसे कभी भी किसी गुरु ने शिष्य को मिटाने की कोशिश की है। अर्जुन मिटे तो ही हल हो सकता है। बिना मिटे कोई हल नहीं है।
शिष्य की मृत्यु में ही समाधान है। क्योंकि वहीं उसकी बीमारियां गिरेंगी। वहीं उसकी समस्याएं गिरेंगी। वहीं उसके प्रश्न गिरेंगे। वहीं से उसके भीतर उसका उदय होगा, जिसके लिए कोई समस्याएं नहीं हैं। वह चेतना भीतर छिपी है और उसे मुक्त करना है। और जब तक यह साधारण मन न मर जाए, तब तक कारागृह नहीं टूटता, जंजीरें नहीं गिरतीं, भीतर छिपा हुआ प्रकाश मुक्त नहीं होता।
प्रकाश बंद है आप में, उसे मुक्त करना है। और आपके अतिरिक्त कोई बाधा नहीं डाल रहा है। आप सब तरह से कोशिश करेंगे, क्योंकि आप समझ रहे हैं जिसे अपना स्वरूप, जिस अहंकार को, आप उसको बचाने की कोशिश करेंगे। आप सोचते हैं, आत्म-रक्षा कर रहे हैं। अर्जुन भी आत्म-रक्षा में संलग्न है।
लेकिन गुरु अंततः जीतता है। उसके हारने का कोई उपाय नहीं है। बहुत बार हारता है। उसकी सब हार झूठी है। शिष्य बहुत बार जीतता है। उसकी सब जीत झूठी है। अंततः उसे हार जाना होगा।
अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

कृष्ण बोले, हे अर्जुन, ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान को मैं फिर भी तेरे लिए कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।
ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान मैं फिर तेरे लिए कहूंगा। बहुत बार पहले भी उन्होंने कहा है। कहते हैं, फिर तेरे लिए कहूंगा। गुरु थकता ही नहीं। जब तक तुम सुन ही न लोगे, तब तक वह कहे ही चला जाएगा।
पश्चिम में बुद्ध के वचनों पर बड़ी खोज हुई है। वे बड़े हैरान हुए। हैरानी की बात है। क्योंकि बुद्ध अस्सी साल जीए। कोई चालीस साल की उम्र में ज्ञान हुआ। वे चालीस साल तुम अलग कर दो। फिर चालीस साल बचते हैं। इन चालीस साल में एक तिहाई हिस्सा तो नींद में चला गया होगा। कुछ घंटे भोजन-भिक्षा में चले गए होंगे रोज। कुछ घंटे रोज यात्रा में चले गए होंगे। अगर आठ घंटे नींद के गिन लें, चार घंटे रोज यात्रा के गिन लें, दो घंटे स्नान-भोजन-भिक्षा के गिन लें, तो चालीस साल में से करीब तीस साल ऐसे व्यय हो जाते हैं। दस साल बचते हैं।
लेकिन पश्चिम की खोज कहती है कि बुद्ध के इतने वचन उपलब्ध हैं कि अगर बुद्ध पैदा होने के दिन से पूरे सौ वर्ष अहर्निश बोले हों, सुबह से दूसरी सुबह तक; न सोए हों, न उठे, न बैठे हों, तो भी शास्त्र ज्यादा मालूम पड़ते हैं। एक व्यक्ति सौ वर्ष निरंतर बोलता रहे, बिना रुके, अविच्छिन्न, जन्म के दिन से मरने के क्षण तक, न सोए, न कुछ और करे, तो इतना बोल पाएगा जितना बुद्ध के वचन उपलब्ध हैं।
स्वभावतः, खोज करने वाले कहते हैं कि ये प्रक्षिप्त हैं। दूसरे लोगों
के वचन इसमें मिल गए हैं। एक आदमी इतना बोल नहीं सकता। दस साल में इतना नहीं बोला जा सकता, जितना कि सौ साल निरंतर कोई बोले! इसका मतलब यह हुआ कि अगर बुद्ध दस गुना जीते, तो इतना बोल सकते थे। या दस बुद्ध होते, तो इतना बोल सकते थे।
मैं इसका कुछ और ही अर्थ लेता हूं। मैं इसका इतना ही अर्थ लेता हूं कि
जो बात इतनी लंबी मालूम पड़ती है, उसके लंबे होने का कारण शिष्यों के साथ... अर्जुन के साथ तो कृष्ण का अकेला संघर्ष है, एक शिष्य है। बुद्ध के पास दस हजार शिष्य थे। यह संघर्ष बड़ा है, विराट है। इतने वचन इसीलिए हैं, जैसे बुद्ध दस मुंह से एक साथ बोले हों। ऐसी कोई जगह नहीं छोड़ी है, जहां से शिष्य के ऊपर हमला न किया हो, आक्रमण न किया हो।
गुरु थकता नहीं।
फिर से तेरे लिए कहूंगा! ज्ञानों में भी अति उत्तम ज्ञान को, परम ज्ञान को मैं फिर से तेरे लिए कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।
अज्ञान गैर-जानकारी का नाम नहीं है। अज्ञान गलत जानकारी का नाम है।
गैर-जानकारी भोलापन भी हो सकती है। अज्ञान जटिल है, भोलापन नहीं है। अज्ञानी कुशल होते हैं, चालाक होते हैं, कुटिल होते हैं। अज्ञानी नहीं जानता, ऐसा नहीं है; गलत जानता है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
न जानने से हम उलझन में नहीं पड़े हैं। हमारी उलझन गलत जानने की उलझन है। न जानने से कोई कैसे उलझेगा? गलत जानने से कोई उलझ सकता है। उलझने के लिए भी कुछ जानना जरूरी है।
थोड़ी देर को समझें, अर्जुन की जगह अगर कोई सच में ही भोला-भाला आदमी होता, जो कुछ नहीं जानता, तो वह युद्ध में उतर जाता। क्या अड़चन थी? अर्जुन के सिवाय किसी ने सवाल नहीं उठाया।
भीम है, उसे कोई अड़चन नहीं है। वह अपनी गदा उठाए तैयार खड़ा है। जब भी युद्ध शुरू हो जाएगा, वह कूद पड़ेगा। वह भी अज्ञानी है। लेकिन अर्जुन से भिन्न तरह का अज्ञान है। उसका अज्ञान सिर्फ जानकारी का अभाव है। उसे ये सवाल भी नहीं उठते कि क्या शुभ है, क्या अशुभ है। मारूंगा, तो पाप लगेगा कि पुण्य होगा, ये सब सवाल भी नहीं उठते। वह बच्चे की तरह है।
अर्जुन पंडित है। अर्जुन जानता है। अर्जुन जानता है कि यह बुरा है, यह भला है; ऐसा करना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए। धर्म-अधर्म का उसे ख्याल है।
उसकी जानकारी ही उसकी उलझन है।

अज्ञान अगर सिर्फ गैर-जानकारी हो, तो मनुष्य सरल होता है, निर्दोष होता है, बच्चों की भांति होता है। उलझन नहीं होती। मुक्त नहीं हो जाता उतने से, कारागृह के बाहर भी नहीं निकल जाता, लेकिन कारागृह में ही प्रसन्न होता है। उसे कारागृह का पता ही नहीं होता। जानकारी हो, अड़चन शुरू हो जाती है।
अर्जुन की कठिनाई यह है कि उसे पता है कि गलत क्या है। लेकिन इतना भर पता होने से कि गलत क्या है, वासना नहीं मिट जाती। वासनाएं तो अपने ही मार्ग पर चलती हैं। और बुद्धि अलग मार्ग पर चलने लगती है, दुविधा खड़ी होती है। पूरी प्रकृति शरीर की कुछ कहती है करने को, और बुद्धि ऊपर से खड़े होकर सोचने लगती है। व्यक्ति दो हिस्सों में बंट जाता है। यह बंटाव, यह खंडित हो जाना व्यक्ति का, यह स्प्लिट पर्सनैलिटी, दो स्वर का पैदा हो जाना, इससे दुविधा खड़ी होती है। फिर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता।
अर्जुन युद्ध तो करना ही चाहता है। सच तो यह है कि वही युद्ध की इस स्थिति को ले आया है। कौन कहता था युद्ध करो? युद्ध की इस घड़ी तक आने की भी कोई जरूरत न थी। वासनाएं तो युद्ध के क्षण तक ले आई हैं। इस सारे युद्ध की जड़ में अर्जुन छिपा है।
इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए, क्योंकि उससे ही गीता का अर्थ भी स्पष्ट होगा।
यह सारा युद्ध शुरू होता है द्रौपदी के साथ। द्रौपदी को अर्जुन ले आया। दुर्योधन भी लाना चाहता था। वह सुंदरतम स्त्री रही होगी। न केवल सुंदरतम, बल्कि तीखी से तीखी स्त्रियों में एक। सौंदर्य जब तीखा होता है, तो और भी प्रलोभित हो जाता है। द्रौपदी तेज, अति तीव्र धार वाली स्त्री है। उसने सभी को आकर्षित किया होगा। दुर्योधन भी उसे अपनी पत्नी बनाकर ले आना चाहता था। वासनाओं का संघर्ष था। अर्जुन उसे ले आया।
संघर्ष भारी रहा होगा। क्योंकि अर्जुन के भी चार भाई उसे लाना चाहते थे। और स्त्री ऐसी कुछ रही होगी कि पांचों भाई उसके कारण टूट सकते थे और मिट सकते थे। इसलिए पांचों ने बांट लिया है। कहानी तो सिर्फ ढांकने का उपाय है।
कहानी है कि मां ने कहा कि तुम पांचों बांट लो, क्योंकि मां को कुछ पता नहीं। अर्जुन ने बाहर से इतना ही कहा कि मां, देखो, क्या ले आया हूं! उसने भीतर से कहा कि तुम पांचों बांट लो। यह कहानी तो सिर्फ ढांकने का उपाय है। असली बात यह है कि द्रौपदी पर पांचों भाइयों की नजर है। और अगर द्रौपदी नहीं बंटती, तो ये पांचों कट जाएंगे, ये पांचों बंट जाएंगे।
इस द्रौपदी से सारा का सारा--अगर ठीक से समझें, तो काम से, वासना से, इच्छा से सारा सूत्रपात है। फिर उपद्रव बढ़ते चले जाते हैं। लेकिन मूल में द्रौपदी को पाने की आकांक्षा है। फिर धीरे-धीरे एक-एक बात जुड़ते-जुड़ते यह युद्ध आ गया।
आज तक अर्जुन को ख्याल नहीं उठा; आखिरी चरण में ही स्मरण आया। अब तक इतनी सीढ़ियां चढ़कर जहां पहुंचा है, हर सीढ़ी से इस बात की सूचना मिल सकती थी।
जब भी आप कुछ चाहते हैं, आप युद्ध में उतर रहे हैं। क्योंकि आप अकेले चाहने वाले नहीं हैं, और करोड़ों लोग भी चाह रहे हैं। चाह का मतलब प्रतियोगिता है, चाह का मतलब युद्ध है। जैसे ही मैंने चाहा, कि मैं संघर्ष में उतर गया।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि संघर्ष के बाहर केवल वही हो सकता है, जिसकी कोई चाह नहीं। उसकी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वह किसी की दुश्मनी में नहीं खड़ा है।
पर अर्जुन को यह ख्याल कभी नहीं आया। अब तक वह ठीक शरीर के एक हिस्से
को मानकर चलता रहा। आज सारी चीज अपनी विकराल स्थिति में खड़ी हो गई है।
यह थोड़ा समझने जैसा है।
कामवासना जन्म की पर्यायवाची है और युद्ध मृत्यु का पर्यायवाची है।
और सभी कामवासना अंत में मृत्यु पर ले आती है। ऐसा होगा ही। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, जो मृत्यु के पार जाना चाहता हो, उसे कामवासना के पार जाना होगा। काम में हमारा जन्म है और काम में ही हमारी मृत्यु है।

यह युद्ध तो आखिरी क्षण है, जब मृत्यु प्रकट हो गई। लेकिन इसका बीज तो
बो दिया गया उस दिन, जिस दिन द्रौपदी पर कामवासना फेंकी गई। उस दिन इसका बीज बो दिया गया।
दुर्योधन भी चाहता था। अर्जुन के खुद दूसरे भाई भी चाहते थे। और चाह सभी की एक-सी है। गलत और सही चाह में कुछ भी नहीं होता। अर्जुन द्रौपदी को पा सका है, क्योंकि धनुर्विद्या में कुशल है। तो द्रौपदी को पाना किसी कुशलता पर निर्भर है, तो फिर दुर्योधन ने जुए में कुशलता दिखाने की कोशिश की है और द्रौपदी को छीन लेना चाहा है। वह भी एक कुशलता है। कुशलता का संघर्ष है।
और महाभारत के एक-एक पात्र में उतरने जैसा है, क्योंकि वे जीवन के प्रतीक हैं।
द्रौपदी की शादी के बाद पांडवों ने एक महल बनाया, वह उत्सव के लिए था।
और दुर्योधन और उसके भाइयों को निमंत्रित किया। महल ऐसा बनाया था, उस दिन की श्रेष्ठतम इंजीनियरिंग की व्यवस्था की थी, कि जहां दरवाजे नहीं थे, वहां दरवाजे दिखाई पड़ते थे, इस भांति कांचों का, दर्पणों का जमाव किया।
जहां दीवार थी, वहां दरवाजा दिखाई पड़ता था; भ्रामक था। जहां दरवाजा था, वहां दीवार मालूम होती थी। दर्पणों के आयोजन से ऐसा किया जा सकता है।
और जब दुर्योधन उन झूठे दरवाजों में टकरा गया जहां दीवार थी, तो द्रौपदी हंसी और उसने कहा कि अंधे के लड़के हैं! यह व्यंग्य भारी पड़ गया। पांडव हंसे। उन्होंने मजा लिया। अंधे के बेटे तो जरूर कौरव थे। लेकिन कोई भी अपने बाप को अंधा नहीं सुनना चाहता, अंधा हो तो भी। कोई भी अपने को बुरा नहीं देखना चाहता।
और ध्यान रहे, गाली एक बार क्षमा कर दी जाए, व्यंग्य क्षमा नहीं किया
जा सकता। गाली उतनी चोट नहीं करती, व्यंग्य सूक्ष्मतम गाली है। किसी पर हंसना गहन से गहन चोट है। इसलिए ध्यान रखना, आप गाली देकर दूसरों को इतनी चोट नहीं पहुंचाते; जब कभी आप मजाक करते हैं, तब जैसी आप चोट पहुंचाते हैं, वैसी कोई गाली नहीं पहुंचा सकती।
महावीर ने अपने वचनों में कहा है कि साधु किसी का व्यंग्य न करे। इसको हिंसा कहा है, बड़ी से बड़ी हिंसा।
लेकिन अर्जुन ने उस दिन सवाल नहीं उठाया कि हम एक बड़ी हिंसा कर रहे हैं। न, यह सब वासना का खेल चलता रहा। अब यह उसकी अंतिम परिणति है। यह युद्ध उस सब का जाल है। यहां आकर उसे पता चला। यहां उसकी बुद्धि ने जब देखा चारों तरफ नजर डालकर कि क्या हमने कर डाला है! और हम कहां आकर खड़े हो गए हैं!
ध्यान रहे, जब भी आप किसी भ्रांति में कदम उठाते हैं, तो पहले कदम पर किसी को पता नहीं चलता। पहले कदम पर पता चल जाए, तो इस दुनिया में भ्रांतियां ही न हों। बस, अंतिम कदम पर पता चलता है, जब पीछे लौटना मुश्किल होता है।
जब आप में पहली दफा क्रोध उठता है, पहली लहर, तब आपको पता नहीं चलता।
जब आप छुरा लेकर किसी की छाती में भोंकने को ही हो जाते हैं, जब कि अपने ही हाथ को रोकना असंभव हो जाता है, जब कि हाथ इतना आगे जा चुका कि अब लौटाया नहीं जा सकता, कि आप लौटाना भी चाहें, तो अब मोमेंटम हाथ का ऐसा है कि अब लौट नहीं सकता। हाथ को जो गति मिल गई है, वह छुरा छाती में घुसकर रहेगा। अब एक ही उपाय है, इतना आप कर सकते हैं कि चाहें तो छुरे की धार अपनी छाती की तरफ कर लें या दूसरे की तरफ कर दें। लेकिन हाथ चल पड़ा। या तो हत्या होगी या आत्महत्या होगी।
जीवन में पहले कदम पर ही कुछ किया जा सकता है। इस संबंध में भी मनुष्य
के अंतस्तल की एक यांत्रिक व्यवस्था को समझ लेना जरूरी है।
मनुष्य के व्यक्तित्व में दो तरह के यंत्र हैं। एक, जो स्वेच्छा से चालित हैं। हम इच्छा करते हैं, तो चलते हैं। दूसरे यंत्र हैं, जो स्वेच्छाचालित नहीं हैं, जो स्वचालित हैं। जिनमें हमारी इच्छा कुछ नहीं कर सकती। और जब पहले यंत्र से हम काम लेते हैं, तो एक सीमा आती है, जहां से काम पहले यंत्र के हाथ से दूसरे यंत्र के हाथ में चला जाता है।

समझें कि आप कामवासना से भर गए हैं। एक सीमा है, जब तक आप चाहें, तो रुक सकते हैं। लेकिन एक सीमा आएगी, जहां कि शरीर का स्वचालित यंत्र कामवासना को पकड़ लेगा। फिर आप रुकना भी चाहें, तो नहीं रुक सकते। फिर रुकना असंभव है।
सभी वासनाएं दोहरे ढंग से काम करती हैं। पहले हम उन्हें इच्छा से चलाते हैं। फिर इच्छा उन्हें आग की तरह उत्तप्त करती है, सौ डिग्री पर लाती है, फिर वे भाप बन जाती हैं। फिर इच्छा के हाथ के बाहर हो जाती हैं। फिर आपके भीतर यंत्रवत घटना घटती है।
इसलिए बुद्ध ने कहा है, क्रोध पैदा हो, उसके पहले तुम जग जाना। वासना उठे, उसके पहले तुम उठ जाना और होश से भर जाना। क्योंकि पहला कदम अगर उठ गया, तो तुम्हें अंतिम कदम उठाने की भी मजबूरी हो जाएगी। मध्य में रुकना असंभव है। चीजें चल पड़ती हैं।
महावीर का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है कि जो आधा चल पड़ा, वह मंजिल पर पहुंच ही गया। क्योंकि बीच से लौटना मुश्किल है।
इसका कारण यही है कि हमारे भीतर दोहरे यंत्र हैं। आप अपनी किसी भी वृत्ति में इसका निरीक्षण करें, तो आपको पता चल जाएगा कि एक सीमा तक आप चाहें, तो वापस लौट सकते हैं; हाथ के भीतर है। आप खुद ही वह सीमा-रेखा पहचान लेंगे। और अगर अपने भीतर आपने उस सीमा को पकड़ लिया, जहां से इच्छाएं हाथ के बाहर हो जाती हैं, तो आप अपने मालिक हो सकते हैं।
अर्जुन आखिरी घड़ी में, जब कि सब हो चुका, बस आखिरी परिणाम होने को है, वहां आकर डांवाडोल हो गया है।
और ध्यान रहे, सभी लोग वहीं आकर डांवाडोल होते हैं। क्योंकि जब पूरी चीजें प्रकट होती हैं, तभी हमें होश आता है। पहले तो चीजें छिपी-छिपी चलती हैं। बहुत धाराओं में चलती हैं। छोटे-छोटे झरने बहते हैं। फिर सब झरने मिलकर जब बड़ा विराट नद बन जाता है, तब हमें दिखाई पड़ता है। फिर हमें लगता है, यह हमने क्या कर लिया! फिर हम भागना चाहते हैं। लेकिन अब घटना हम से बड़ी हो गई। और अब भागने का कोई उपाय नहीं है। अब पीछे हटने का कोई उपाय नहीं है।
अर्जुन उस घड़ी में बात कर रहा है, जहां कि चीजें स्वचालित हो गई हैं, जहां कि युद्ध अस्तित्व की घटना बन गई है। इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। जहां युद्ध से अब लौटने का कोई उपाय नहीं, जहां युद्ध होगा। पानी सौ डिग्री तक गरम हो चुका। अगर हम नीचे से अंगारे भी निकाल लें, तो भी भाप बनेगी। यह भाप का बनना अब एक नैसर्गिक कृत्य हो गया है। और इसी घड़ी में आदमी घबड़ाता है। लेकिन उसकी घबड़ाहट व्यर्थ है। रुकना था, पहले रुक जाना था।
यह जो अर्जुन आखिरी क्षण में डांवाडोल हो रहा है। सभी का मन होता है। नियम यह है कि या तो पहले क्षण में सजग हो जाएं और वासना की यात्रा पर न निकलें। और अगर कोई वासना अंतिम क्षण में पहुंच गई हो, तो घबड़ाएं मत। अब निमित्त होकर उसे पूरा हो जाने दें। निमित्त होकर पूरा हो जाने दें!
पहले क्षण में आप मालिक हो सकते हैं, निमित्त होने की जरूरत न थी। यहीं कृष्ण, महावीर की साधनाओं का भेद है। और इसलिए लोगों को लगता है कि ये तो बड़ी विपरीत बातें हैं।
जैन गीता को कोई आदर नहीं दे सकते, क्योंकि पूरे पहलू अलग हैं। गीता
है वासना के आखिरी क्षण में साधना। महावीर की साधना के सारे सूत्र पहले क्षण में हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, अपने मालिक बनो। क्योंकि अगर पहले क्षण में कोई निमित्त बन गया, तो व्यर्थ बह जाएगा वासना में। पहले क्षण में मालिक बन सकता है।
जब तक इच्छा के अंतर्गत है सब, तब तक हम उसका त्याग कर सकते हैं। पहले क्षण में निमित्त बनने की कोई भी जरूरत नहीं है। और जो पहले क्षण में मालिक बन जाता है, उसे निमित्त बनने की कभी भी जरूरत नहीं पड़ेगी। अंतिम क्षण आएगा नहीं।
इसलिए महावीर की और कृष्ण की साधनाएं बिल्कुल विपरीत मालूम पड़ेंगी।
और जो नहीं समझ सकते हैं, सिर्फ शास्त्र पढ़ते हैं, उनको लगेगा कि वे विरोधी हैं। वे विरोधी नहीं हैं।

जैसे कि कोई आदमी पानी गरम कर रहा है, और अभी उसने आग जलाई ही है। हम कहते हैं, अंगार बाहर खींच लो। अभी रुक सकती है बात। अभी पानी गरम भी नहीं हुआ था। अभी कुनकुना भी नहीं हुआ था। अभी भाप बनना बहुत दूर था। अभी आंच पकड़ी ही नहीं थी पानी को। अभी पानी अपनी जगह था, आपने चूल्हा जलाया ही था। अभी अंगारे, ईंधन वापस खींचा जा सकता है।
महावीर कहते हैं, पहले क्षण में रुक जाओ; आधे के बाद रुकना मुश्किल हो जाएगा, चीजें तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर हो जाएंगी।
और निश्चित ही, जो पहले क्षण में नहीं रुक सकता, वह आधे में कैसे रुकेगा? क्योंकि पहले में चीजें बहुत कमजोर थीं, तब तुम न रुक सके! आधी में तो बहुत मजबूत हो गईं, तब तुम कैसे रुकोगे? और जब अंतिम, निन्यानबे डिग्री पर पानी पहुंच गया, तब तो तुम कैसे रुकोगे!
अगर महावीर से अर्जुन पूछता, तो वे कहते, जिस दिन तू द्रौपदी को स्वयंवर करने चला गया था, उसी दिन लौट आना था। वह पहला क्षण था। लेकिन कोई सोच भी नहीं सकता कि महाभारत का यह महायुद्ध द्रौपदी के स्वयंवर से शुरू होगा!
बीज में वृक्ष नहीं देखे जा सकते। जो देख ले, वह धन्यभागी है। वह वहीं रुक जाएगा। वह बीज को बोएगा नहीं। वृक्ष के फलों का कोई सवाल नहीं उठेगा। लेकिन कृष्ण के सामने सवाल बिल्कुल अन्यथा है। अंतिम क्षण है। घटना घटकर रहेगी। चीजें उस जगह पहुंच गई हैं, जहां से लौटाई नहीं जा सकतीं। चीजों ने अपनी गति ले ली है। स्वचालित हो गई हैं। अब युद्ध अवश्यंभावी है; भाग्य है; अब वह नियति है। इस क्षण में क्या करना?
इस क्षण में कृष्ण कहते हैं, तू निमित्त बन जा। अब तू कर्ता की तरह सोच
ही मत। अब तू यह निर्णय ही मत ले। अब निर्णय अस्तित्व के हाथ छोड़ दे। तू सिर्फ एक उपकरण की तरह, जो हो रहा है उसे हो जाने दे। तू सिर्फ साक्षी रह और उपकरण बन।
जो व्यक्ति पहले क्षण में रुक जाए, उसे निमित्त बनने की कभी जरूरत न पड़ेगी। इसलिए महावीर की साधना में निमित्त शब्द का उपाय ही नहीं है, उपकरण बनने की बात ही फिजूल है। जो व्यक्ति किसी वासना के अंतिम चरण में साक्षी और निमित्त बन जाए, वह दूसरी वासना के प्रथम क्षण में कभी कदम नहीं उठाएगा। जो पहले कदम पर रुक जाए, उसे अंतिम तक पहुंचने का कोई कारण नहीं है। जो अंतिम पर निमित्त बन जाए, उस साक्षी भाव में वह चीजों को इतनी प्रगाढ़ता में देख लेगा कि दूसरी कोई भी वासना बीज की तरह उसको धोखा नहीं दे पाएगी।
अगर अर्जुन इस युद्ध में निमित्त बनकर गुजर जाए, तो कोई दूसरी द्रौपदी उसे कभी नहीं लुभाएगी। फिर कोई वासना का बीज, जहां से उपद्रव शुरू होता है, उसे पकड़ेगा नहीं। वह आर-पार देखने में समर्थ हो जाएगा, उसकी दृष्टि पारदर्शी हो जाएगी।
अंतिम क्षण में निमित्त और पहले क्षण में मालिक, ये साधना के सूत्र हैं। और दो में से एक काफी है। क्योंकि दूसरे की जरूरत नहीं पड़ेगी। ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान को मैं फिर तेरे लिए कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।
इस संसार से मुक्त होकर... ।
संसार को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। संसार वह नहीं है, जो आपके चारों तरफ फैला हुआ दिखाई पड़ता है। संसार वह है, जो आपके मन के चारों तरफ आपने बो रखा है। और अगर इस बाहर के संसार से आपका कोई भी संबंध है, तो इस भीतर के मन की बुनावट के कारण है।
इस बाहर के संसार को मिटाने, छोड़ने, भागने का कोई अर्थ नहीं है। इस भीतर मन की जड़ों को, इस मन के जाल को, जिससे आप देखते हैं चारों तरफ, जिससे परमात्मा आपको संसार जैसा दिखाई पड़ता है, इन वासनाओं के परदों को या चश्मों को अलग कर लेने की बात है।
नहीं तो परम ज्ञान संसार से कैसे मुक्त करेगा! संसार तो रहेगा ज्ञानी
के लिए भी। कृष्ण के लिए भी संसार है। बुद्ध के लिए भी संसार है। आपके लिए भी संसार है। संसार तो ज्ञानी के लिए भी है। लेकिन ज्ञानी के पास मन नहीं

है, इसलिए इसी संसार को वह किसी और ढंग से देखने में समर्थ हो जाता है। यह संसार तब उसे ब्रह्म-स्वरूप दिखाई पड़ता है। इस संसार में तब उसे वह सारा उपद्रव, वह सारा युद्ध, वह सारा विग्रह नहीं दिखाई पड़ता, जो हमें दिखाई पड़ता है। यह सारा जो प्रपंच का जाल हमें दिखाई पड़ता है। यह हमारे मन का विभाजन है।
ऐसा समझें कि एक प्रिज्म में से कोई सूरज की किरण को निकालता है। जैसे
ही सूरज की किरण प्रिज्म को पार करती है कि सात हिस्सों में टूट जाती है, सात रंगों में टूट जाती है, इंद्रधनुष पैदा हो जाता है। इंद्रधनुष इसी तरह बनता है। हवा में अटके हुए पानी के कण प्रिज्म का काम करते हैं। उन पानी के कणों से जैसे ही सूरज की किरण गुजरती है, वह सात हिस्सों में टूट जाती है। इंद्रधनुष निर्मित हो जाता है। सूरज की किरण में कोई भी रंग नहीं है, टूटकर सात रंग हो जाते हैं। सूरज की किरण रंगहीन है, टूटकर इंद्रधनुष बन जाती है।
जगत में कोई भेद नहीं, कोई प्रकार नहीं, कोई रंग नहीं। लेकिन मन के प्रिज्म से दिखाई पड़ने पर बहुत रंगीन हो जाता है, इंद्रधनुष की तरह हो जाता है। जगत हमारे मन से देखा गया ब्रह्म है। और जब मन से जगत देखा जाता है, अस्तित्व देखा जाता है, तो संसार निर्मित हो जाता है। संसार टूटा हुआ इंद्रधनुष है। किसी भी भांति प्रिज्म बीच से हट जाए, तो इंद्रधनुष खो जाएगा और बिना रंग की शुद्ध किरण शेष रह जाएगी, रूप-रंगहीन। अदृश्य किरण शेष रह जाएगी।
संसार अर्थात मन। इस शब्द के कारण बड़ी भ्रांति हुई। क्योंकि निरंतर ज्ञानीजन कहते रहे, संसार से ऊपर उठो। और अज्ञानीजन समझते रहे कि बाहर जो संसार फैला है, इससे भागो। इससे ऊपर उठो; मतलब हिमालय चले जाओ। कोई ऊंची जगह खोज लो, जहां संसार से ऊपर उठ गए। दूर हट जाओ इससे।
और इंद्रधनुष से जो भागता है, उससे ज्यादा पागल और कौन है! इंद्रधनुष
न दिखाई पड़े, ऐसी दृष्टि चाहिए। यह दृष्टि भीतरी घटना है।
इसलिए कृष्ण कह सकते हैं, ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान मैं तुझसे फिर से कहूंगा कि जिसको जानकर सब मुनिजन संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं।
संसार से मुक्त होना अर्थात मन से मुक्त होना। और मन से जो मुक्त हुआ,
वह परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि वह भीतर छिपी है सिद्धि। वह स्वभाव, वह परम निर्वाण या मोक्ष भीतर छिपा है।
जैसे ही मन नहीं, कि हमें अपने होने का पता चल जाता है कि हम कौन हैं।
इस मन के कारण न तो हमें अस्तित्व की वास्तविकता दिखाई पड़ती है और न अपनी। यह प्रिज्म दोहरा है। यह संसार को तोड़ता है, बाहर अस्तित्व को तोड़ता है और भीतर स्वयं को तोड़ता है। तो भीतर हमें सिवाय विचारों के, वासनाओं के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।
ह्यूम ने कहा है कि जब भी मैं अपने भीतर जाता हूं, तो मुझे सिवाय वासनाओं के, विचारों के, कामनाओं के, कल्पनाओं के, स्वप्नों के और कुछ भी नहीं मिलता। और लोग कहते हैं, भीतर जाओ तो आत्मा मिलेगी। ह्यूम ने कहा है कि अनुभव से मैं कहता हूं कि भीतर बहुत बार जाकर देखा, आत्मा कभी नहीं मिलती। और हजार चीजें मिलती हैं।
आप भी प्रयोग करेंगे, तो ह्यूम से राजी होंगे। प्रयोग नहीं करते, इसलिए आप सोचते हैं, भीतर आत्मा छिपी है। भीतर जाते ही नहीं, इसलिए कभी मौका ही नहीं आता कि आप समझ सकें कि भीतर आपको क्या मिलेगा। आप भी भीतर जाएंगे तो ह्यूम से राजी होंगे। क्योंकि जब तक मन से छुटकारा न हो, तब तक भीतर भी इंद्रधनुष मिलेगा, सात रंग मिलेंगे; वास्तविक किरण नहीं मिलेगी, मौलिक किरण नहीं मिलेगी।
यह प्रिज्म दोहरा है। बाहर तोड़ता है, अस्तित्व संसार हो जाता है। भीतर तोड़ता है, अस्तित्व विचारों में बंट जाता है। भीतर प्रतिपल विचार चल रहे हैं।
यह संसार शब्द और भी सोचने जैसा है। संसार शब्द का मतलब होता है, चाक,
दि व्हील। संसार का मतलब होता है, जो घूमता रहता है गाड़ी के चाक की तरह।

कभी आपने अपने मन के संबंध में सोचा कि मन बिल्कुल गाड़ी के चाक की तरह घूमता है। वही-वही विचार बार-बार घूमते रहते हैं। आप एक दिन की डायरी बनाकर देखें। सुबह से उठकर लिखना शुरू करें शाम तक। आप बड़े चकित हो जाएंगे कि आपके पास बड़ी दरिद्रता है, विचार की भी दरिद्रता है। वही विचार फिर घड़ी, आधा घड़ी बाद आ जाता है।
और अगर आप एक दो-चार महीने की डायरी ईमानदारी से रखें, तो आप पाएंगे कि
इन विचारों के बीच वैसी हीशृंखला है, जैसी गाड़ी में लगे हुए आरों की होती है। वही स्पोक फिर आ जाता है, फिर आ जाता है, फिर आ जाता है। रिकरेंस, पुनरावृत्ति भीतर होती रहती है।
एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक इस संबंध में अध्ययन कर रहा था, तो बहुत हैरान हुआ। क्योंकि अगर हम सोच लें कि एक विचार एक सेकेंड लेता हो, क्योंकि विचार ज्यादा वक्त नहीं लेता, एक सेकेंड में झलक आ जाती है, तो आप एक मिनट में कम से कम साठ विचार करते हैं। फिर इस साठ में आप और साठ का गुणा करें, तो एक घंटे में इतने विचार। फिर इसमें आप चौबीस का गुणा करें, तो एक दिन में इतने विचार। कई लाख विचार! बड़े से बड़ा विचारक भी कई लाख विचार एक दिन में दावा नहीं कर सकता।
तो आप भीतर बड़ी दरिद्रता पाएंगे। वे ही विचार! फिर तो आपको खुद भी हंसी आएगी कि मैं कर क्या रहा हूं! जिस बात को मैं हजार दफा सोच चुका हूं, उसको फिर सोच रहा हूं। वे ही शब्द हैं, वे ही भीतर भाव हैं, वे ही मुद्राएं हैं। फिर वही दोहर रहा है यंत्रवत।
बाहर संसार भी दौड़ रहा है। वर्षा आएगी, सर्दी आएगी, गरमी आएगी, मौसम घूम रहे हैं। सूरज निकलेगा, डूबेगा; चांद बड़ा होगा, छोटा होगा। वर्तुल है। सारी चीजें वर्तुल में घूम रही हैं, बाहर भी और भीतर भी। व्हील्स विदिन व्हील्स, चाकों के भीतर छोटे चाक घूम रहे हैं। उनके भीतर और छोटे चाक घूम रहे हैं।
अपनी घड़ी खोलकर भीतर देखें, उसमें जैसी हालत है, वैसी आपके मन की है।
चाक हैं। बहुत-से चाक हैं। और एक चाक दूसरे को घुमा रहा है, दूसरा तीसरे को घुमा रहा है, सब घूम रहे हैं। लेकिन कुछ बंधे हुए विचार हैं, वे ही दौड़ रहे हैं बार-बार।
इसलिए भारत कहता रहा है कि बाहर भी संसार है, भीतर भी संसार है।
क्योंकि वर्तुलाकार गति है। और जब तक इन चाकों से आप मुक्त न हो जाएं, तब तक सिद्ध न होंगे।
सिद्ध का अर्थ है, जो घूमने के बाहर हो गया।
प्रदर्शनियां लगती हैं, मेले भरते हैं, तो बच्चों के लिए घूमने के झूले होते हैं। घोड़े हैं, हाथी हैं, शेर हैं--झूलों में। बच्चे उन पर बैठे हैं और झूले चक्कर काट रहे हैं। और बच्चे बड़ा आनंद लेते हैं, जितने जोर से चक्कर चलता है। और बच्चों को ऐसा लगता है, कहीं पहुंच रहे हैं। यात्रा बहुत होती है, पहुंचते कहीं भी नहीं हैं। वह अपनी जगह पर घूम रहा है। शेर, हाथी, घोड़े, उन पर बैठने का मजा; फिर इतनी तेज गति; कहीं पहुंचने का ख्याल बड़ा रस देता है।
करीब-करीब हम सब वैसी ही बच्चों की हालत में हैं। थोड़ा हमारा झूला बड़ा
है और वहां भी हाथी, घोड़े हैं।
अभी आप देखते हैं, पेट्रोल की कमी है, तो इंदिरा तांगे पर बैठकर... । इस मुल्क में अकल कभी आ नहीं सकती। अटल बिहारी बाजपेयी बैलगाड़ी पर बैठे हैं। पीलू मोदी ने कहा कि वे हाथी पर पहुंचेंगे। और मैं सोचता रहा कि गधे पर किसी को जरूर... । क्योंकि वह राष्ट्रीय पशु है। वह चरित्र का प्रतीक है। हमारी सब जीवन की व्यवस्था ऐसी ही है, बचकानी है। छोटे पद हैं, बड़े पद हैं; धन है, महल है, प्रतिष्ठाएं हैं; पद्म-भूषण हैं, भारतरत्न हैं; सब बैठे हैं, कोई अपने घोड़े पर, कोई हाथी पर; चक्कर चल रहे हैं। जब तक कि कोई आपको उतार ही न दे! बच्चे भी बड़ी दिक्कत देते हैं झूले से उतरने में। जब तक कि मां-बाप उनको उतार ही न दें। रोते-चीखते वे बैठे हैं। जब तक इनको भी कोई उतार ही न ले इन घोड़ों पर से, तब तक वे अपनी तरफ से नहीं उतरते।
यह सारा का सारा... । और पहुंचना कहीं भी नहीं है। यात्रा बहुत है। तेज गति है। भाव जरूर है कि कहीं पहुंच जाएंगे।

सिद्धि का अर्थ है ऐसी जगह, जहां से कहीं और जाने का भाव न उठे। जब तक कहीं जाने का भाव उठता है, तब तक संसार। सिद्धि का अर्थ है, जहां आप हैं, वही परम स्थान। उसके अतिरिक्त कहीं जाने का कोई भाव नहीं है। कोई मोक्ष भी सामने लाकर रख दे, तो आप आंख बंद कर लें कि अपन पहले ही मोक्ष में बैठे हैं। नान-इन के संबंध में कथा है--एक झेन फकीर। एक पहाड़ की तलहटी पर, जहां पहाड़ पर ऊपर एक तीर्थ था और हजारों यात्री वर्ष में यात्रा करते थे पैदल पहाड़ पर, नान-इन पहाड़ की तलहटी में एक झाड़ के नीचे लेटा रहता था। अनेक साधु- भिक्षु भी यात्रा पर जाते थे। अज्ञानियों का कोई गृहस्थों से संबंध नहीं है। साधु-संन्यासी भी वैसे ही अज्ञान में हैं। भिक्षु भी, संन्यासी भी, वे भी पहाड़ पर यात्रा करने जाते हैं। जैसे वहां कुछ हो! नान-इन झाड़ के नीचे पड़ा रहता था।
एक दिन कुछ भिक्षुओं ने उसे देखा। वे भी विश्राम करने उसके वृक्ष के पास रुके थे। उन्होंने कहा, नान-इन, हम हर वर्ष यात्रा पर आते हैं। तुम इस झाड़ के नीचे कब तक पड़े रहोगे? यात्रा नहीं करनी है? हमने तुम्हें कभी तीर्थ के उस मंदिर में नहीं देखा, पहाड़ की चोटी पर नहीं देखा!
नान-इन ने कहा कि तुम जाओ। हम वहीं हैं, जहां तीर्थ है। हम उस जगह बहुत पहले पहुंच गए हैं। जहां तुम पहाड़ पर खोज रहे हो जिस जगह को, उस जगह तो हम बहुत पहले पहुंच गए हैं। हम तीर्थ में हैं। और नान-इन जहां होता है, वहीं तीर्थ होता है।
समझा उन्होंने कि यह आदमी पक्का नास्तिक मालूम होता है, अहंकारी मालूम होता है। क्योंकि नान-इन ने कहा, नान-इन जहां होता है, वहीं तीर्थ है। तीर्थ हमारे साथ चलता है। तीर्थ हमारी हवा है। हम तीर्थ में नहीं जाते।
लेकिन यह नान-इन ठीक कह रहा है। एक सिद्ध पुरुष के वचन हैं।
जिस दिन कहीं जाने को कुछ शेष न रह जाए! कब होगा ऐसा? ऐसा तभी होगा, जब कोई वासना न रह जाएगी। जब तक कोई वासना है, तब तक कहीं जाने का मन बना ही रहेगा।
वासनाग्रस्त आदमी कहीं न कहीं जा रहा है, जाने की सोच रहा है; योजना बना रहा है; मगर जा रहा है। वस्तुतः न जा रहा हो, तो कल्पना में जा रहा है। लेकिन वासनाग्रस्त आदमी कहीं न कहीं जा रहा है। एक बात पक्की है, वासनाग्रस्त आदमी वहां नहीं मिलेगा, जहां वह है। वहां आप उसको नहीं खोज सकते। अपने घर में वह कभी नहीं ठहरता। वह हमेशा कहीं और अतिथि है।
सिद्ध पुरुष का अर्थ है, जो अपने घर में आ गया; जो अब वहीं है, जहां है। उससे अन्यथा जाने का कोई भाव नहीं। उससे अन्यथा जाने की कहीं कोई वृत्ति नहीं। उससे अन्यथा होने की कोई कामना नहीं। जो है, जहां है, जैसा है, राजी है। और यह राजीपन पूरा है।
इस संसार से मुक्त होकर ज्ञानीजन जिस ज्ञान को पाकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं, वह मैं फिर से तेरे लिए कहूंगा। हे अर्जुन, इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते हैं।
इस ज्ञान को आश्रय करके, धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकाल में व्याकुल नहीं होते।
जो व्यक्ति अपने स्वभाव में ठहर गया, ज्ञान में ठहर गया, जिसे कुछ जानने को शेष न रहा और जिसे पहुंचने को कोई जगह न रही, जो विश्राम को उपलब्ध हो गया, जो सिद्ध हो गया, कृष्ण कह रहे हैं, ऐसा पुरुष फिर न तो पैदा होता है और न वस्तुतः मरता है। सृष्टियां पैदा होती रहेंगी, लेकिन सृष्टि का जाल फिर उसे अपने चक्र में न खींच पाएगा। चक्र घूमते रहेंगे सृष्टि के, लेकिन सृष्टि का कोई भी आरा फिर उस पुरुष को अपनी ओर आकर्षित न कर पाएगा। क्योंकि जिसको जाने की कहीं वासना न रही, वह सृष्टि में भी नहीं जाएगा। सृष्टि में हम जाते इसीलिए हैं, पैदा हम इसीलिए होते हैं, कि हमें कहीं पहुंचना है। यह हमारा पैदा होना भी वाहन है। यह शरीर भी हमारी यात्रा

का वाहन है। इसे हमने चुना है किन्हीं वासनाओं के कारण। कुछ हम करना चाहते हैं, बिना शरीर के वह न हो सकेगा।
जो लोग प्रेतात्माओं का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं कि प्रेतात्माओं की एक ही पीड़ा है कि उनके पास वासनाएं तो वही हैं, जो आपके पास हैं, लेकिन वासनाओं को पूरा करवा सके, ऐसा कोई उपकरण नहीं है। क्रोध उनको भी आता है, लेकिन चांटा मारना मुश्किल है, क्योंकि हाथ नहीं हैं। कामवासना उनको भी जगती है, लेकिन कामवासना का कोई यंत्र उनके पास नहीं है कि संभोग कर सकें।
इसलिए प्रेतात्मविद कहते हैं कि ऐसी आत्माएं निरंतर कोशिश में होती हैं कि किसी घर में मेहमान हो जाएं, किसी व्यक्ति के शरीर में मेहमान हो जाएं। और अगर आप थोड़े कमजोर हैं, संकल्प से थोड़े हीन हैं... ।
संकल्पहीन आदमी का मतलब होता है, जो सिकुड़ा हुआ है, जिसके भीतर खाली जगह है। संकल्पवान आदमी का अर्थ होता है, जो फैला हुआ है, जिसके भीतर कोई जगह नहीं है। सच में जो अपने शरीर से बाहर भी जी रहा है। भीतर की तो बात ही अलग। जो फैलकर जी रहा है। ऐसे व्यक्ति में प्रेतात्माएं प्रवेश नहीं कर पाती हैं।
लेकिन जो सिकुड़कर जी रहा है, डरा हुआ। डरे हुए का मतलब, सिकुड़ा हुआ। जो अपने ही घर में एक कोने में छिपा है; बाकी घर जिसने खाली छोड़ रखा है। जिसका शरीर भी बहुत-सा खाली पड़ा है। उसमें कोई प्रेतात्मा प्रवेश कर जाएगी। क्योंकि प्रेतात्मा कोशिश में है, शरीर मिल जाए, तो वासनाएं पूरी हो सकें। आप भी शरीर में इसीलिए प्रविष्ट हुए हैं, गर्भ में इसीलिए प्रविष्ट हुए हैं कि कुछ वासनाएं हैं, जो अधूरी रह गई हैं। पिछले मरते क्षण में कुछ वासनाएं थीं, जो आपके मन में अधूरी रह गई हैं, वे आपको खींच लाई हैं। मरते क्षण में आदमी की जो वासना होती है, वही वासना उसके नए जन्म का कारण बनती है। या मरते क्षण में उसके जीवनभर का जो सार-निचोड़ होता है उसकी आकांक्षाओं का, वही उसे धक्का देता है नए गर्भ में प्रविष्ट हो जाने का। कृष्ण कहते हैं, जो सिद्ध पुरुष है, वह साधारण जन्म-मरण में तो फंसेगा
ही नहीं, साधारण गर्भ में तो प्रवेश ही नहीं करेगा। क्योंकि जिसको कहीं जाना नहीं, वह ट्रेन में किसलिए सवार हो! वह किसलिए टिकट खरीदेगा जाकर क्यू में खड़े होकर! किसलिए धक्के खाएगा! कोई कारण नहीं है। उसे कहीं जाना नहीं है।
शरीर एक यात्रा-वाहन है। और गर्भ के द्वार पर वैसा ही क्यू है, जैसा किसी भी यात्रा-वाहन पर लगा हो। वहां भी उतनी ही धक्का-मुक्की है। वहां भी गर्भ में प्रवेश करने के लिए उतना ही संघर्ष है।
क्या आपको पता है, एक संभोग में कोई एक करोड़ जीव-कोष गर्भ में प्रवेश करते हैं! उनमें से एक, वह भी कभी-कभी, शरीर ग्रहण कर पाता है। बायोलाजिस्ट कहते हैं कि दौड़ संघर्ष की वहीं शुरू हो जाती है, संभोग के क्षण में। जैसे ही पुरुष का वीर्य प्रवेश करता है स्त्री में, एक करोड़ कम से कम, ज्यादा से ज्यादा दस करोड़, एक संभोग के क्षण में इतने जीव-कण स्त्री में छिपे हुए अंडे की तरफ दौड़ना शुरू करते हैं।
यह दौड़ बड़ी लंबी है; उनके हिसाब से बहुत लंबी है। क्योंकि जीव-कण बहुत छोटा है; खाली आंख से दिखाई नहीं पड़ सकता। उतने छोटे जीव-कण के लिए कोई थोड़े से इंचों की दौड़ उतनी ही है कि अगर जीव को आपके बराबर कर दिया जाए अनुपात में, तो दो मील का फासला है। उस अनुपात में वीर्य-कण को करीब-करीब दो मील का फासला पार करना पड़ रहा है, स्त्री के अंडे तक पहुंचने में। अगर वीर्य-कण आपके बराबर हों, तो फासला दो मील के बराबर होगा।
छः घंटे के बीच उस छोटे-से जीवाणु को... । और भयंकर संघर्ष है, क्योंकि
एक करोड़ जीवाणु भी भाग रहे हैं। आपकी सड़क पर ट्रैफिक में वैसा जाम नहीं है। वे सभी एक करोड़ जीव-कोष उतनी ही कोशिश कर रहे हैं कि अंडे तक पहुंच जाएं। क्योंकि उस अंडे में छिपा है शरीर, जहां से व्यक्ति पैदा होगा और यंत्र उपलब्ध हो जाएगा।
बायोलाजिस्ट कहते हैं कि इस दुनिया में जो प्रतियोगिता दिखाई पड़ रही है, वह कुछ भी नहीं है। जिसको बाजार में गलाघोंट प्रतियोगिता कहते हैं, थ्रोट कट कांपिटीशन, वह कुछ भी नहीं है। क्योंकि एक करोड़ में से एक पहुंच

पाएगा अंडे तक। जो पहले पहुंच जाएगा, वह प्रवेश कर लेगा। और अंडा कुछ इस भांति का है कि जैसे ही एक जीव-कोष प्रवेश करता है, अंडे के द्वार बंद हो जाते हैं। फिर दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता।
इसीलिए कभी-कभी दो बच्चे एक साथ पैदा हो जाते हैं, अगर दो जीव-कोष बिल्कुल एक साथ पहुंच जाएं अंडे के द्वार पर, तो दोनों प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन ऐसा मुश्किल से होता है। दोनों बिल्कुल एक साथ, युगपत--एक क्षण के हजारवें हिस्से का भी फासला न हो--तो दो; या तीन भी कभी हो जाते हैं; चार भी कभी हो जाते हैं।
एक व्यक्ति जीवन में कोई चार हजार संभोग करता है। चार हजार संभोग में, कोई अगर पुराने ढंग का भारतीय हो, तो ज्यादा से ज्यादा बीस बच्चे पैदा कर सकता है। चार हजार संभोग में बीस मौके हैं कुल; और प्रत्येक संभोग में कोई एक करोड़ से दस करोड़ तक जीवाणु यात्रा करेंगे।
जितने लोग इस समय पृथ्वी पर हैं, कोई चार अरब, एक-एक व्यक्ति के भीतर चार अरब जीव-कोष हैं। एक व्यक्ति इतनी पूरी पृथ्वी को पैदा कर सकता है। लेकिन पैदा होंगे दस बच्चे, बीस बच्चे ज्यादा से ज्यादा। दो-चार बच्चे सामान्यतया।
इतना भयंकर संघर्ष है। इतना भयंकर युद्ध है। वहां भी क्यू है! इतनी आत्माएं दौड़ती हैं, एक शरीर को पकड़ने को। बड़ी वासना होगी।
बायोलाजिस्ट चकित हैं कि छोटा-सा जीव-कण इतनी स्पर्धा से दौड़ता है, इतनी त्वरा से दौड़ता है, इतनी तेजी से दौड़ता है। सब तरह से कोशिश करता है कि दूसरों को पीछे छोड़ दे और आगे निकल जाए। उससे पता लगता है कि आत्माएं कितने जोर से शरीर को पकड़ने की चेष्टाएं कर रही होंगी। कितनी विराट वासना भीतर धक्के नहीं दे रही होगी!
साधारणतः सिद्ध पुरुष इस गर्भ में पैदा होना, जन्म को लेना और मृत्यु
से तो छूट ही जाता है।
लेकिन जब पूरी सृष्टि भी इसी भांति विलीन होती है, जैसे हर व्यक्ति मरता है... । हर वस्तु मरती है, ऐसा पूरी सृष्टि भी मरती है। क्योंकि पूरी सृष्टि का प्रारंभ होता है, तो अंत भी होता है। पूरी सृष्टि के प्रारंभ में और अंत के क्षण में भी, जब सब जन्मता है फिर से, सब ताजा होता है फिर से, तब भी सिद्ध पुरुष डांवाडोल नहीं होता। क्योंकि यहां भी कुछ पाने को नहीं है।
पूरी सृष्टि फिर से बन रही है, फिर से जीवन जग रहा है; फिर सूरज और चांद-तारे पैदा हो रहे हैं; फिर पृथ्वियां बसेंगी; फिर सारे खेल का विस्तार होगा। इस विराट सृष्टि के क्रम में भी वह दूर खड़ा रह जाता है, अपनी जगह तृप्त। यह विराट आयोजन भी उसे बुला नहीं सकता; इसका भी कोई निमंत्रण कारगर नहीं है। उसे अब कोई नहीं हिला सकता।
और जब पूरी सृष्टि भी नष्ट होगी, प्रलय होगा और भयंकर पीड़ा होगी... । क्योंकि एक-एक व्यक्ति के मरने पर हम समझते हैं, कितनी पीड़ा और कितना दुख और कितना संताप है। जब पूरी सृष्टि अंतिम क्षण में प्रलय में लीन होती है, भयंकर हाहाकार; उससे बड़े हाहाकार की हम कोई कल्पना नहीं कर सकते। दुख अपनी चरम अवस्था पर होगा। उस क्षण में भी, कृष्ण कहते हैं, प्रलयकाल में भी सिद्ध पुरुष व्याकुल नहीं होता है।
जिसकी कोई वासना नहीं है, उसकी कोई पीड़ा भी नहीं है। जिसकी कोई वासना नहीं है, दूसरे की भी पीड़ा देखकर उसको दया आ सकती है, व्याकुलता नहीं होती। इस फर्क को समझ लेना चाहिए।
अगर बुद्ध के सामने आप मर रहे हों, तो बुद्ध व्याकुल नहीं होते। दया आ सकती है। दया आपकी मूढ़ता पर आती है। क्योंकि दुख आपका सृजित किया हुआ है। ऐसे जैसे एक बच्चा रो रहा है, क्योंकि उसकी गुड़िया की टांग टूट गई है। रोने में कोई भेद नहीं है। रोना वास्तविक है। टांग चाहे गुड़िया की हो, चाहे पत्नी की हो। टांग असली हो कि नकली हो, यह दूसरी बात है, लेकिन बच्चे के आंसुओं में तो कोई झूठ नहीं है।
एक बच्चे की गुड़िया की टांग टूट गई है, बच्चा रो रहा है आपके सामने। आप दुखी होते हैं या दया से भरते हैं? आप व्याकुल होते हैं या करुणा से भरते हैं? या आपको बच्चे पर दया आती है कि बेचारा! इसे कुछ पता नहीं है कि यह

गुड़िया मरी ही हुई है। इसमें कुछ टूटने का मामला नहीं है। यह टांग टूटी ही हुई थी।
इस बच्चे को आप खिलाते हैं, हंसाते हैं; डुलाते हैं; दूसरी गुड़िया पकड़ाते हैं। लेकिन आप गंभीर नहीं हैं। यह एक खेल था, जिसको बच्चे ने ज्यादा गंभीरता से ले लिया, इसलिए दुखी हो रहा है। बच्चा गुड़िया के कारण दुखी नहीं हो रहा है, अपनी गंभीरता और मूढ़ता के कारण दुखी हो रहा है। बुद्ध जब आपको पीड़ा में देखते हैं, तब वे जानते हैं कि आपकी पीड़ा भी बचकानी है।
किसी का घर जल गया है, जो उसका था ही नहीं। किसी की पत्नी मर गई है। कौन किसका हो सकता है? किसी का पति खो गया है। जो कभी अपना नहीं था, वह खो कैसे सकता है? किसी का धन चोरी चला गया है। इस जगत में कोई मालकियत सच नहीं है, चोरी कैसे हो सकती है? यहां मालिक झूठे हैं; चोर झूठे हैं। चोर इसलिए हैं कि मालिक हैं। एक झूठ दूसरे झूठ को पैदा करता है।
तो बुद्ध दया कर सकते हैं। और अगर आप बहुत ही रोएं-गाएं, तो वे आपको समझा-बुझा भी सकते हैं। लेकिन वह समझाना-बुझाना सिर्फ दयावश है। इसमें कोई व्याकुलता नहीं है।
जिस दिन पूरी सृष्टि भी विनष्ट हो रही हो, उस दिन भी सिद्ध पुरुष, कृष्ण कहते हैं, व्याकुल नहीं होता। और अर्जुन व्याकुल हो रहा है, जरा-सा युद्ध खड़ा है उससे। पूरी सृष्टि के हिसाब से वह युद्ध ना-कुछ है। गुड़ियों का खेल है। बड़ा व्याकुल हो रहा है।
कृष्ण कहते हैं, मैं तुझे वह ज्ञान कहूंगा, फिर से कहूंगा, जिससे प्रलयकाल में भी सिद्ध पुरुष व्याकुल नहीं होते। यह युद्ध तो बिल्कुल खेल है।
हे अर्जुन, मेरी महत ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है अर्थात गर्भाधान का स्थान है। और मैं उस योनि में चैतन्यरूप बीज को स्थापन करता हूं। उस जड़-चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।
त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है... ।
कृष्ण कहते हैं कि सारा जगत एक गहन स्वप्न से पैदा होता है। जिस जगत
को हम देखते हैं, वह वास्तविक कम, स्वप्नमय ज्यादा है। वह पदार्थ से कम बना है और वासना से ज्यादा बना है। उसका निर्माण इच्छाओं के सघनभूत रूप से हुआ है।
इसलिए भारत ने एक शब्द चुना है, जो है माया। यह माया शब्द बहुत अदभुत है। और ऐसा शब्द दुनिया की किसी भाषा में खोजना आसान नहीं है। क्योंकि ऐसी दृष्टि, ऐसे तत्व के संबंध में खोज किसी और संस्कृति में पैदा नहीं हुई। पश्चिम में जो शब्द है मैटर, पदार्थ, वह माया का ही एक विकृत रूप है। मूल धातु संस्कृत की वही है मैटर की भी, मात्र, जो माया की है।
लेकिन पश्चिम का विज्ञान कहता है कि जगत मैटर से, पदार्थ से बना है। लेकिन अब पदार्थ की खोज जैसे-जैसे गहरी हुई, वैसे-वैसे उनको पता चला, पदार्थ तो है ही नहीं, बिल्कुल माया है पदार्थ। जैसे ही खोज करके वे इलेक्ट्रांस पर पहुंचे, वैसे उनको पता चला कि वहां तो पदार्थ है ही नहीं। सिर्फ दिखता था, है नहीं। मौलिक जो आधारभूत तत्व है विद्युत, वह तो अदृश्य है। उसे अब तक किसी ने देखा नहीं। उसे कोई कभी देख भी नहीं सकेगा। वह है भी या नहीं, इसको हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते। पदार्थ दिखाई पड़ता है। और पदार्थ नहीं है; उसका आण्विक रूप, अदृश्य, वही है।
पश्चिम में मैटर का भी अर्थ अब माया ही करना चाहिए। अब कोई फर्क नहीं रहा। मूल धातु वही है। लेकिन अब तो मैटर शब्द का अर्थ भी माया ही हो गया है। माया का अर्थ है, जो दिखाई पड़ती है और है नहीं। जो सब भांति प्रतीत होती है कि है, और है नहीं।
तो ध्यान रहे, भारतीय मनीषा की खोज तीन हैं।
एक, सत्य--जो है और दिखाई नहीं पड़ता। उसे हम ब्रह्म कहें, ईश्वर कहें, परमात्मा कहें, जो भी नाम देना चाहें। परम सत्य, जो है और दिखाई नहीं पड़ता।
दूसरा, परम असत्य--जो नहीं है। और नहीं है इसलिए दिखाई पड़ने का कोई कारण ही नहीं है।

और दोनों के मध्य में, माया--जो दिखाई पड़ती है और नहीं है।
ये तीन तल हैं। माया मध्यवर्ती तल है। माया दिखाई पड़ती है ऐसे, जैसे ब्रह्म दिखाई पड़ना चाहिए, जो है, वास्तविक। और माया नहीं है वैसे, जैसे कि असत्य, जो कि है ही नहीं। माया मध्यवर्ती तत्व है। भास, एपियरेंस, सिर्फ प्रतीति।
आपकी वासनाएं प्रतीतियां हैं। हैं नहीं; सिर्फ भाव हैं; सिर्फ स्वप्न हैं। और जब तक आप उनको सत्य मानते हैं, तब तक बड़े सत्य मालूम होते हैं। जैसे ही आप जागते हैं, सब असत्य हो जाते हैं।
जिब्रान की एक छोटी-सी कहानी है। एक आदमी एक अजनबी देश में आया। वह उस देश की भाषा नहीं जानता है। एक बड़े महल में उसने लोगों को आते-जाते देखा, तो वह भी भीतर प्रविष्ट हो गया। द्वारपालों ने झुक-झुककर नमस्कार किया, तो उसने समझा कि कोई महाभोज है।
वह एक बहुत बड़ी होटल थी। लोग खा रहे थे। आ रहे थे, जा रहे थे, पी रहे थे। टेबलें भरी थीं। वह भी एक खाली टेबल पर जाकर बैठ गया। एक बैरा आया, सामने उसने भोजन रखा। वह बहुत चकित हुआ। उसने सोचा कि कोई महाभोज है। वह बहुत खुश भी हुआ। उसने सोचा कि यह गांव बड़ा अतिथियों का प्रेमी है। मैं अजनबी, अनजान आदमी; भाषा नहीं जानता; मेरा इतना स्वागत किया जा रहा है!
फिर बैरा ने उसको, जब भोजन पूरा हो गया, तो उसका बिल लाकर दिया। तो वह सोचा कि गजब के लोग हैं! न केवल भोजन देते हैं, बल्कि लिखित धन्यवाद भी देते हैं। तब अड़चन शुरू हुई, क्योंकि बैरा उससे कहने लगा कि वह पैसे चुकाए और वह झुक-झुककर धन्यवाद करने लगा। वे दोनों एक-दूसरे की भाषा समझने में असमर्थ हैं।
आखिर बैरा उसे मैनेजर के पास ले आया। उसने कहा, धन्य मेरे भाग। न केवल महल के नौकर-चाकर सेवा करते हैं, मालिक खुद! वह झुक-झुककर नमस्कार करता, बहुत-बहुत धन्यवाद देता। और मैनेजर ने कहा कि या तो आदमी पागल है और या हद दर्जे का धूर्त है। इसे अदालत ले जाओ।
उसे एक गाड़ी में बैठाकर अदालत ले जाने लगे। उसने सोचा कि ऐसा लगता है
कि ये सब इतने प्रसन्न हो गए हैं कि मुझे नगर का जो सम्राट है, उसके पास ले जा रहे हैं। और अदालत बड़ा भवन था, और मजिस्ट्रेट सजा-धजा बैठा हुआ था। बड़ी शानदार रौनक थी। तो वह जाकर झुक-झुककर नमस्कार किया। उसने बहुत धन्यवाद दिए।
मजिस्ट्रेट ने कहा कि यह आदमी कुछ समझ में नहीं आता। इसको कुछ भी कहो, सुनता भी नहीं। वह अपनी ही लगाए हुए है। क्या कह रहा है, इसका भी कुछ पता नहीं चलता। लेकिन इस तरह की घटना दुबारा नहीं घटनी चाहिए। तो उस गांव का रिवाज था; तो उस आदमी को दंड दिया गया कि उसे गधे पर उलटा बैठा दिया जाए और उसकी छाती पर एक तख्ती लटका दी जाए कि यह आदमी धूर्त है। इससे सावधान! नगर में कोई इसका भरोसा न करे।
जब वह गधे पर बैठाया गया उलटा और उसके गले में तख्ती टांगी गई, तब तो उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। उसने कहा, न केवल वे प्रसन्न हैं, बल्कि पूरे गांव में घुमाकर लोगों को दिखाना चाहते हैं कि देखो, कैसा अतिथि हमारे गांव में आया है। अभी तक पता भी नहीं था।
वह बड़ा प्रसन्न था। वह बिल्कुल अकड़कर बैठा हुआ था। उसकी अकड़, उसकी प्रसन्नता में जरा भी असत्य नहीं है। जो हो रहा है, उसका उसे कुछ पता नहीं है। लेकिन जो वह सोच रहा है, उसका उसे पक्का भरोसा है। वह बहुत खुश है। और उसकी खुशी का कोई अंत नहीं था।
लेकिन एक ही पीड़ा थी कि काश, उसके गांव के लोग भी उसकी यह शान-शौकत--एक
भी आदमी देख लेता, उसके घर तक खबर पहुंच जाती कि किस तरह... । जिसके गांव के लोगों ने कभी चिंता न की जिसकी, आज उसका कैसा विराट भव्य स्वागत-समारंभ हो रहा है!
तभी उसे भीड़ में... । बच्चे दौड़ रहे हैं, लोग चल रहे हैं; आस-पास भीड़ इकट्ठी हो गई है; लोग मजा ले रहे हैं। लोग खुश हैं। वह भी बड़ा खुश है और बड़ा प्रसन्न है। तभी उसे एक आदमी दिखाई पड़ा, जो उसके गांव का रहने वाला है, जिसने बहुत साल पहले गांव को छोड़ दिया था। उसे देखकर उसकी छाती फूल गई। उसने कहा, देखो, मेरे भाई... ।

लेकिन वह आदमी नीचे सिर झुकाकर भीड़ में सरक गया। क्योंकि वह भाषा समझता था। वह अनेक दिन से वहां था। उसने देखा कि यह कैसा अपमान हो रहा है। लेकिन गधे पर बैठे हुए आदमी ने सोचा, आश्चर्य; ईर्ष्या की भी सीमा होती है! ईर्ष्यावश, कि उसका स्वागत नहीं हुआ और मेरा स्वागत हुआ। तो यह सिर झुकाकर भीड़ में नदारद हो गया।
वह आदमी आनंदित ही घर लौटा। उसने यह कहानी अपने गांव में सब लोगों को कही। जहां तक इसके भीतर के सोचने का संबंध है, सभी कुछ सही जैसा है। लेकिन जहां तक सत्य से संबंध है, कोई भी संबंध नहीं है।
आप जिस जगत में रह रहे हैं, कृष्ण उसको माया कहते हैं। और वे कहते हैं, सारा जन्म इस माया से होता है। माया को वे कहते हैं कि प्रकृति अर्थात त्रिगुणमयी माया संपूर्ण भूतों की योनि है, समस्त भूतों का गर्भस्थल है। वहां से सब पैदा होते हैं। उसी स्वप्न में, उसी वासना में, उसी इच्छा में, कुछ होने, कुछ पाने की दौड़ में एक विराट स्वप्न का जन्म होता है।
मैं उस योनि में चेतनरूप बीज को स्थापन करता हूं। उस जड़-चेतन के संयोग
से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।
माया तो जड़ है, वासना का जगत तो जड़ है। वह पदार्थ है। मेरा अंश उसमें चेतन रूप से प्रविष्ट होता है और जीवन की उत्पत्ति होती है।
इसे हम विस्तार से धीरे-धीरे समझेंगे।
इसमें दो बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए। हमारा शरीर दो तत्वों का जोड़ है। एक माया, जिसको हम पदार्थ कहें। और एक चेतन, जिसको हम परमात्मा कहें। मनुष्य दो चीजों का जोड़ है। मनुष्य एक संयोग है, पदार्थ का और परमात्मा का।
मृत्यु में पदार्थ और परमात्मा अलग होते हैं। न तो कोई मरता, न कोई विनष्ट होता। क्योंकि पदार्थ मरा ही हुआ है, उसके मरने का कोई उपाय नहीं। परमात्मा अमृत है, उसके मरने का कोई उपाय नहीं। सिर्फ संयोग टूटता है। कृष्ण यह कह रहे हैं, वासना के माध्यम से पदार्थ और चेतना में संयोग जुड़ता है--माया के माध्यम से। और ज्ञान के माध्यम से संयोग स्पष्ट हो जाता है कि संयोग है। मृत्यु में संयोग टूटता है। जन्म में जुड़ता है, मृत्यु में टूटता है। अज्ञान में लगता है कि मैं शरीर हूं; ज्ञान में लगता है, मैं पृथक हूं।
जैसे ही यह बोध किसी व्यक्ति को हो जाता है कि मैं पृथक हूं और शरीर पृथक है; चैतन्य और जड़ अलग-अलग हैं, माया और ब्रह्म अलग-अलग हैं, जैसे ही यह बोध साफ हो जाता है, इस सारे जगत का खेल सिर्फ आभास रह जाता है। युद्धों का होना, लोगों का पैदा होना या मरना, महामारियां, जीवन या मृत्यु, सब एक बड़े नाटक के हिस्से हो जाते हैं। क्योंकि मृत्यु असंभव है। केवल संयोग टूटते हैं, कुछ मरता नहीं। कुछ मर सकता नहीं।
कृष्ण अर्जुन को एक ही बात का बोध दिलाने की कोशिश कर रहे हैं। वह मृत्यु को देखकर भयभीत है। वह सोच रहा है, मृत्यु होगी। कृष्ण कहते हैं, मृत्यु एक असत्य है; वह माया का एक आभास है। जन्म भी एक असत्य है; वह भी सिर्फ माया का आभास है।
लेकिन जब तक हम माया में होते हैं, तब तक हमें सत्य मालूम होता है। ठीक जैसे रात सपना देखते हैं। सपने के क्षण में तो सपना बिल्कुल ही सच मालूम होता है।
यह जगत एक विराटतर सपना है। कहें कि यह ईश्वर के चित्त में चल रहा सपना है। हमारे सपने निजी होते हैं, यह सपना विराट है। जैसे हम अपने सपने से सुबह जागते हैं और सपना फिजूल हो जाता है, ऐसे ही ज्ञानी पुरुष इस सपने से जाग जाता है, इस विराट सपने से, और यह सपना व्यर्थ हो जाता है।
सुबह जागकर आप रोते नहीं हैं कि रात मैंने एक आदमी की हत्या कर दी। न सुबह जागकर आप गांव में ढिंढोरी पीटते हैं कि रात मैंने एक भूखे आदमी को सपने में रोटी खिला दी। सुबह आप जानते हैं कि सपना सपना था। न तो सपने की हत्या सच थी, और न सपने की सेवा सच थी। न तो पाप का भाव पैदा होता है सुबह, न पुण्य का। सपने को जानते ही कि सपना है, सब भाव खो जाते हैं।
ज्ञानी पुरुष इस विराट सपने से भी जाग जाता है। एक और जागरण है। उस जागरण का नाम ही ध्यान है, समाधि है। उस जागरण में ज्ञानी पुरुष जानता है

कि वह जो उसने देखा था--युद्ध थे, शांतियां थीं; प्रेम था, घृणा थी; मित्र थे, शत्रु थे--वे सब स्वप्नवत खो गए।
कृष्ण कहते हैं, वह ज्ञान मैं तुझे फिर से कहूंगा, वह परम ज्ञान, जिसे जानकर व्यक्ति परम सिद्धि को उपलब्ध हो जाता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
दूसरा प्रवचन

त्रिगुणात्मक जीवन के पार

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।। 4।।
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।। 5।।
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसड्गेन बध्नाति ज्ञानसड्गेन चानघ।। 6।।
तथा हे अर्जुन, नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं।
हे अर्जुन, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।
हे निष्पाप, उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सत्वगुण
तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात ज्ञान के अभिमान से बांधता है।

सूत्र के पहले थोड़े-से प्रश्न।
पहला प्रश्नः पांडवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर को धर्मराज कहा गया है, लेकिन कृष्ण ने धर्मराज को छोड़कर अर्जुन को गीता कही। ऐसा क्यों? क्या धर्मराज पात्र न थे?

इस संबंध में बहुत सी बातें समझनी जरूरी हैं। पहली बात, धर्म को जानना शास्त्र से, परंपरा से, एक बात है। धर्म को जानना जीवन से, बिल्कुल दूसरी बात है। और जीवन से केवल वे ही जान सकते हैं, जिनके ऊपर शास्त्रों का, परंपरा का बोझ न हो।
जिनके ऊपर शास्त्रों का बोझ है, उनकी जिज्ञासा कभी भी मौलिक नहीं हो पाती। उनकी जिज्ञासा भी झूठी होती है। वे प्रश्न भी पूछते हैं, तो शास्त्रों के कारण। प्रश्न भी उनके अपने नहीं होते। उनके प्रश्न सैद्धांतिक होते हैं, जीवंत नहीं। वे तत्व की चर्चा करते हैं, जैसा एक विचारक करे। लेकिन वे तत्व की वैसी खोज नहीं करते, जैसा एक साधक करे। उनके लिए तत्वचर्चा एक बौद्धिक विलास है, जीवन-मरण की समस्या नहीं।
धर्मराज परंपरा से धार्मिक हैं। शास्त्रों ने क्या कहा है, इसे वे जानते हैं। उनका अस्तित्व धार्मिक नहीं है। उन्होंने अस्तित्वगत रूप से धर्म को खोजा नहीं। उसके जीवन में भी उसके स्पष्ट लक्षण मिलेंगे। परंपरागत रूप से जो आदमी धार्मिक है, उस आदमी के पास कोई निज की चेतना नहीं होती। वह स्वयं नहीं सोचता। नियम के अनुसार चलता है। नियम अगर गलत हो, तो वह गलत चलता है। नियम अगर सही हो, तो वह सही चलता है। समाज जिसे भी ठीक कहता है, उसे वह मानता है, चाहे वह गलत ही क्यों न हो।
महाभारत के उन दिनों में जुए को अनैतिक नहीं माना जाता था, वह अधार्मिक भी नहीं था। सिर्फ एक खेल था। जैसे कोई आज फुटबाल खेल रहा है, वालीबाल खेल रहा है; और उस खेल में कोई अनैतिकता नहीं है। ऐसा ही जुआ भी खेल था; एक क्रीड़ा थी। उसमें कोई अनीति नहीं थी। तो समाज में कोई जुए के विपरीत भाव नहीं था।
युधिष्ठिर जुआ खेल सकते हैं। उन्हें इसमें जरा भी अड़चन नहीं हुई। धर्मराज होने मात्र से जुआ खेलने में उन्हें कोई पीड़ा, कोई विचार नहीं उठा। और जुआ ही नहीं खेल सकते, अपनी स्त्री को दांव पर भी लगा सकते हैं। क्योंकि उस समाज में स्त्री पुरुष की संपत्ति थी, स्त्री-धन! उन दिनों तक समाज की चेतना इस जगह नहीं थी कि स्त्री को हम स्वतंत्र व्यक्तित्व दिए होते। वह पुरुष की संपत्ति थी, पति की संपदा थी। तो जब मैं अपना धन लगा

सकता हूं, तो अपनी पत्नी भी लगा सकता हूं। क्योंकि पत्नी मेरा पजेशन थी, मेरा परिग्रह थी।
युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर लगा सकते हैं। उनकी चेतना को जरा भी चोट नहीं हुई। उन्हें ऐसा नहीं लगा कि मैं यह क्या कर रहा हूं! कोई व्यक्ति किसी की संपत्ति कैसे हो सकता है? वस्तु संपत्ति नहीं हो सकती वस्तुतः तो; तो व्यक्ति तो संपत्ति कैसे हो सकता है? व्यक्ति पर कोई मालकियत नहीं हो सकती। और व्यक्तियों को जुए के दांव पर नहीं लगाया जा सकता। लेकिन वह समाज, उन दिनों की परंपरा स्त्री को संपदा मानती थी; पुरुष उसे जुए पर दांव पर लगा सकता था।
तो युधिष्ठिर को कोई अपनी चेतना नहीं है। न अपना कोई विचार है, न अपनी कोई जिज्ञासा है। वे परंपरागत रूप से धार्मिक व्यक्ति हैं। गीता उनसे नहीं कही जा सकती।
कृष्ण जैसे व्यक्तित्व का संपर्क परंपरागत चेतना से नहीं हो सकता। कृष्ण को तो वही समझ पाएगा, जो परंपरागत नहीं है। जो शास्त्र से बंधा नहीं है, और जिसकी जिज्ञासा आंतरिक है।
अर्जुन की जिज्ञासा में बड़ा फर्क है। अर्जुन के लिए यह जीवन-मरण की समस्या है। युद्ध के इस क्षण में वह कोई शास्त्र का विवेचन नहीं उठा रहा है। युद्ध के इस क्षण में उसकी चेतना में ही यह पीड़ा खड़ी हो गई है, एक अंतर्द्वंद्व उठ खड़ा हुआ है, कि जो मैं कर रहा हूं, क्या वह करने योग्य है? वस्तुतः सच तो यह है कि शास्त्र तो कहते हैं, क्षत्रिय का धर्म है कि लड़े। क्षत्रिय को युद्ध में कुछ भी पाप नहीं है। क्षत्रिय काटे, इसमें कुछ पाप नहीं है। वह उसके क्षत्रिय होने का हिस्सा है। लेकिन अर्जुन को एक अस्तित्वगत, एक्झिस्टेंशियल सवाल खड़ा हो गया है। वह यह कि अगर मैंने इन सब को मार ही डाला और इनको मारकर मैं इस राज्य का मालिक भी हो गया, तो क्या वह राज्य, वह मालकियत इतनी कीमत की है कि इतने जीवन नष्ट किए जाएं? क्या मुझे यह हक है कि मैं इतने जीवन नष्ट करूं? सिर्फ इस सुख को पाने के लिए कि मैं सम्राट हो गया! क्या सम्राट होने का इतना अर्थ है? इतना मूल्य है? इतने जीवन के विनाश का कोई कारण है?
अर्जुन का सवाल उसकी निजता से उठा है। वह किसी शास्त्र से नहीं आया है। अगर अर्जुन भी शास्त्रीय होता, तो गीता का सवाल ही नहीं उठता। युधिष्ठिर यह सवाल नहीं पूछते। युधिष्ठिर जुआ खेलते वक्त नहीं पूछे; पत्नी को दांव लगाते वक्त नहीं पूछे। युद्ध के क्षण में भी क्यों पूछते! सदा से क्षत्रिय लड़ता रहा है। और अपनी रक्षा के लिए और अपनी संपदा के लिए और अपनी सीमा और राज्य के लिए लड़ना उसका कर्तव्य है। यह बात उठती नहीं थी। अर्जुन को उठी।
अर्जुन बड़ी आधुनिक चेतना है, एक अर्थ में। यह केवल उसी व्यक्ति को उठ सकता है, ऐसी संकट की स्थिति, जो परंपरा से बंधा हुआ नहीं है; युवा है; जीवंत है; जीवन को जी रहा है और जीवन में समस्याएं हैं, उनको हल करना चाहता है।
इसलिए गीता जैसा जीवंत शास्त्र जगत में दूसरा नहीं है। क्योंकि गीता जैसी जीवंत स्थिति किसी शास्त्र के जन्म में कारणभूत नहीं बनी।
युद्ध अत्यंत संकट का क्षण है। जहां मृत्यु निकट है, वहां जीवन अपनी पूरी ज्योति में जलता है। जितनी घनी होती है मृत्यु, जितना अंधकार मृत्यु का सघन होता है, उतनी ही जीवन की बिजली जोर से चमकती है। मृत्यु के क्षण में ही जीवन का सवाल उठता है कि जीवन क्या है।
कुरान है, बाइबिल है, महावीर के वचन हैं, बुद्ध के वचन हैं, बड़े बहुमूल्य। लेकिन उनकी परिस्थिति इतनी जीवंत नहीं है। जीवन के इतने घनेपन में, जहां मृत्यु चारों तरफ खड़ी हो, जहां निर्णय बड़ा मूल्यवान होने वाला है; लाखों लोगों का जीवन निर्भर करेगा अर्जुन के निर्णय पर। अर्जुन भाग जाता है तो, अर्जुन लड़ता है तो, अर्जुन के ऊपर भाग्य-निर्धारण है लाखों लोगों के जीवन का।
अगर महावीर के पास कोई कुछ पूछने आया है, तो उसके जीवन का निर्धारण होगा, उसकी अपनी निजी बात होगी। लेकिन अर्जुन का सवाल बड़ा गहन है। उसके साथ लाखों जीवन बुझेंगे, जलेंगे। वह जो पूछ रहा है, बड़ा शाश्वत है।

अर्जुन को ही गीता कही जा सकती है, धर्मराज युधिष्ठिर को नहीं।
और अर्जुन कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं है, यह ध्यान रखें। इसीलिए प्रश्न उठ सका। धार्मिक व्यक्ति होता, तो प्रश्न उठता ही नहीं। अगर वह धार्मिक होता, परंपरा के अनुसार हिंदू होता, तो वह लड़ता। क्योंकि क्षत्रिय का धर्म है लड़ना। कोई शास्त्र नहीं कहता हिंदुओं का कि क्षत्रिय न लड़े। लड़ना उसका धर्म है। वह क्षत्रिय होने के भीतर है।
अगर अर्जुन जैन होता जन्म से, तो लड़ने का सवाल ही नहीं उठता था। लड़ना पाप है। युद्ध का मौका ही नहीं आता। वह कभी का संन्यस्थ हो गया होता; वह कभी का जंगल चला गया होता। अगर अर्जुन जैन या बौद्ध होता, तो कभी का जा चुका होता। अगर हिंदू होता, परंपरागत, तो लड़ता। यह कोई सवाल नहीं था। अर्जुन धार्मिक नहीं है, इसीलिए उसकी चिंतना मौलिक है। वह किसी शास्त्र से, किसी विधि से बंधा हुआ नहीं है। वह किसी को मानकर चल नहीं रहा है। जीवन सवाल उठा रहा है, वह अपना उत्तर खोज रहा है। इस खोज से ही कृष्ण उससे संबंध जोड़ पाए।
कृष्ण जैसे व्यक्ति केवल उन्हीं लोगों से संबंध जोड़ पा सकते हैं, जो बंधे हुए लीक से, किसी लकीर से जुड़े हुए नहीं हैं, जो मुक्त हैं और जिनके प्रश्न अपने हैं।
मेरे पास जैन आते हैं। वे पूछते हैं, निगोद क्या है? जैनों के सिवाय कोई मुझसे कभी नहीं पूछा कि निगोद क्या है। क्योंकि किसी के शास्त्र में निगोद का वर्णन नहीं है। वह जैनों के शास्त्र में हैं। वह जैनों का अपना पारिभाषिक शब्द है। आपके मन में तो सवाल ही नहीं उठ सकता कि निगोद क्या है। यह शब्द ही व्यर्थ है। लेकिन जैन के मन में उठता है। इसलिए नहीं कि उसके जीवन की समस्या है। उसने किताब में पढ़ा है। पढ़ा है, तो सवाल उठता है। बौद्ध कभी नहीं पूछते कि परमात्मा कहां है, क्योंकि उनके शास्त्र में लिखा है, परमात्मा है ही नहीं। हिंदू पूछते हैं, परमात्मा कहां है? उसका रूप क्या है? उसने सृष्टि क्यों बनाई? जैन कभी नहीं पूछता कि परमात्मा ने सृष्टि क्यों बनाई! क्योंकि जैन मानता ही नहीं कि सृष्टि बनाई गई है। वह मानता है, सृष्टि शब्द ही गलत है। इसका कभी सृजन हुआ नहीं है। अस्तित्व सदा से है। असृष्ट है। इसकी कोई सृष्टि कभी नहीं हुई। इसलिए बनाने वाले का तो कोई सवाल नहीं है।
लेकिन ये सब सवाल शास्त्रीय हैं। ये आपने कहीं पढ़ लिए, पढ़ने से आपके
मन में पैदा हुए हैं। ये उधार हैं। आपने ही जीवन में इनको नहीं खोजा है। शब्द आपके भीतर गए, और शब्दों से नए शब्द पैदा हो गए हैं। शब्दों की संतान हैं।
लेकिन हिंदू मेरे पास आता है, वह पूछता है, क्रोध से कैसे मुक्त होऊं? जैन आता है, वह भी पूछता है, क्रोध से कैसे मुक्त होऊं? बौद्ध आता है, वह भी पूछता है, क्रोध से कैसे मुक्त होऊं? यह सवाल शास्त्र से नहीं आ रहा है; यह जीवन से आ रहा है। शास्त्र के सवाल तीनों के अलग हैं। जीवन का सवाल तीनों का एक है।
और जब भी कोई व्यक्ति जीवन से उठने लगेगा, पूछने लगेगा, तो प्रश्न एक
हो जाएगा। क्योंकि हर मनुष्य की कठिनाई एक है। शास्त्र अलग हैं; आदमी एक है। शास्त्र भिन्न-भिन्न हैं; आदमी का स्वभाव एक है।
इसलिए गीता अनूठा है शास्त्र। और इसलिए गीता हिंदू के भी काम आ सकता है, मुसलमान के भी काम आ सकता है, जैन के भी काम आ सकता है। क्योंकि जिस समस्या से वह उठा है, वह समस्या सबकी समस्या है। जब मैं कहता हूं, सबकी समस्या है, तो आपको थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि आप कोई महाभारत के युद्ध में खड़े हुए नहीं हैं। फिर से सोचें तो आप पाएंगे कि आप महाभारत के युद्ध में ही खड़े हुए हैं।
हर मनुष्य युद्ध में खड़ा हुआ है। प्रतिपल युद्ध है। किसी न किसी से लड़
ही रहे हैं। और जब लड़ रहे हैं, तो किसी न किसी की मृत्यु और जीवन आपके हाथ में है। चाहे इंच-इंच किसी को मिटा रहे हों, चाहे इकट्ठा मिटा रहे हों, लेकिन किसी को आप मिटा रहे हैं, मिटाना चाह रहे हैं। किसी को समाप्त कर देना चाहते हैं। किसी की जगह खुद हो जाना चाहते हैं। और जहां-जहां संघर्ष

है, प्रतिस्पर्धा है, युद्ध है, वहां-वहां सवाल है, क्या इसका कोई मूल्य है?
एक राजनीतिज्ञ कभी नहीं पूछता कि मैं इतनी दौड़-धूप कर रहा हूं, इतने लोगों को खींचकर पीछे करूंगा, आगे जाऊंगा, क्या इसका सच में कोई मूल्य है कि इतना उपद्रव लिया जाए?
धन की खोज में दौड़ने वाला कभी नहीं सोचता कि मेरे धन की तलाश से कितने लोग निर्धन हो जाएंगे! क्या धन का इतना मूल्य है कि इतने लोग दुखी और पीड़ित हो जाएं? मेरी तिजोरी भर जाएगी, लेकिन कितने पेट खाली हो जाएंगे! क्या तिजोरी को भरने में इतनी कोई सार्थकता है?
तराजू पर अगर तौले कोई भी, तो जो भी आप कर रहे हैं, आपको पूछना ही पड़ेगा
कि यह करने योग्य है? इसके करने का परिणाम जो चारों तरफ हो रहा है, उतना मूल्य चुकाया जाए, ऐसी यह मंजिल है? इतनी यात्रा की जाए और पहुंचें कहीं भी न... ।
प्रत्येक व्यक्ति महाभारत में खड़ा है। और प्रत्येक व्यक्ति के सामने यही सवाल है, मैं दूसरे को मिटाऊं अपने होने के लिए?
अर्जुन के सामने सवाल है कि मैं अपने को बचाने के लिए इन सबको मिटाऊं? उसके सामने सवाल है कि इनमें मेरे मित्र भी हैं, मेरे संबंधी भी हैं। खुद अर्जुन का गुरु सामने दुश्मन के दल में खड़ा है। जिससे मैंने सब सीखा, जो मैंने सीखा है जिससे, उसको ही मिटाने के काम में लाऊं? प्रियजन हैं, संबंधी हैं। घर का ही झगड़ा है, पारिवारिक युद्ध है।
ध्यान रहे, सारे युद्ध पारिवारिक हैं, क्योंकि मनुष्यता परिवार है।
आप किसी से भी लड़ रहे हों, आपके ही भाई से लड़ रहे हैं। वह भाई कितने पीछे आपसे जुड़ा है, यह दूसरी बात है। लेकिन अगर आप पीछे जाएंगे, तो कहीं न कहीं पाएंगे कि आपके दोनों का पिता कहीं न कहीं पीछे एक था।
ईसाई कहते हैं कि एक आदमी आदम और महिला ईव, उन दोनों से ही सारी मनुष्यता पैदा हुई है। वह ठीक ही है। कहानी ठीक ही है। हम आज कितने ही दूर हों... । वृक्ष की शाखाएं एक-दूसरी शाखाओं से बहुत दूर निकल जाती हैं। उपशाखाएं पहचान भी नहीं सकतीं। लेकिन नीचे जड़ में एक वृक्ष से जुड़ी हैं। सारी मनुष्यता एक वृक्ष है। और सारा संघर्ष पारिवारिक है। और जब भी
आप किसी को मिटा रहे हैं, तो अपने ही किसी को मिटा रहे हैं। कितना ही अपरिचय हो गया हो, लेकिन जहां भी कोई मनुष्य है, वह मुझसे जुड़ा है। मनुष्य होने के कारण हम एक परिवार के हिस्से हैं।
अर्जुन की समस्या आपकी भी समस्या है; हर आदमी की समस्या है। और जब आप लड़ेंगे, तो जिसको आप दुश्मन मान रहे हैं, जिनको आप दुश्मन मान रहे हैं, अगर थोड़ा पहचानेंगे, गौर करेंगे, तो पाएंगे, सगे-संबंधी उस तरफ भी खड़े हैं। अन्यथा हो भी नहीं सकता।
इसलिए मैं कहता हूं कि ठीक से सोचने पर पाएंगे कि प्रत्येक व्यक्ति महाभारत के युद्ध में है। और थोड़ा होश हो, तो आप भी यही पूछेंगे, जो अर्जुन पूछ रहा है। और थोड़ा होश हो, तो आप भी कृष्ण को खोजेंगे, जैसा अर्जुन ने खोज लिया है। और गीता आपके लिए भी सार्थक हो सकती है।
धर्मराज मूल्य के नहीं हैं, उनका बहुत मूल्य नहीं है। अर्जुन मूल्यवान है। और ऐसा सदा होता है। आज भी पंडित हैं, धर्मगुरु हैं, पोप हैं, शंकराचार्य हैं, मठाधीश हैं, साधु हैं परंपरागत, संन्यासी हैं, उनका धर्म से कोई संबंध नहीं है। वे सब धर्मराज हैं। उनकी खोज वास्तविक नहीं है। उनके लिए धर्म भी एक लकीर है, सुविधापूर्ण है, कनवीनिएंट है। उसके साथ जीने में उन्हें आराम है, सांत्वना है। और ऐसा सदा हो जाता है।
एक तरफ जीसस है, जो सूली पर लटकता है और एक तरफ वेटिकन का पोप है। क्या संबंध है? इतना ही संबंध है कि सूली पर जीसस लटकता है, वेटिकन का पोप सोने की एक सूली अपने गले में लटकाए है। क्या संबंध है? सूलियों में गले लटकाए जाते हैं, गले में सूलियां नहीं लटकाई जातीं! और फिर सोने की सूली का क्या अर्थ है? ये धर्मराज हैं।
पोप को आप अधार्मिक नहीं कह सकते। नियम से जीते हैं। समय पर प्रार्थना करते हैं। समय पर बाइबिल पढ़ते हैं। जीवन को आचरण में बांध रखा है। कोई चोर नहीं हैं, बेईमान नहीं हैं, व्यभिचारी नहीं हैं। जो दस

आज्ञाएं बाइबिल में हैं, शायद उनको पूरी तरह पालन करते हैं। लेकिन फिर भी धार्मिक नहीं हैं। फिर भी जीवन में वह ज्योति नहीं है, जो जीसस के जीवन में है।
जीसस की खोज अपनी है। प्राणों को दांव पर लगाया है, तो खोजा है। पोप की खोज अपनी नहीं है; एक परंपरागत व्यवस्था है। पोप एक पद है। जीसस कोई पद नहीं है। और जीसस होने में कठिनाई है, पोप होने में सुविधा है। सभी पोप होना चाहेंगे। जितने ईसाई पादरी हैं, सभी प्रतिस्पर्धा में हैं कि वे कब पोप के पद तक पहुंच जाएं। लाखों में एक पहुंच पाएगा। बारह लाख कैथोलिक पादरी हैं सारी दुनिया में। बड़ा साम्राज्य है। बारह लाख पुरोहित, छोटा- मोटा साम्राज्य नहीं है! फिर इन बारह लाख में से एक आदमी पोप पाल तक पहुंच पाता है। इसके चुनाव हैं, सीढ़ियां हैं, उनको पार करते-करते कोई एक आदमी पहुंच पाता है। तीस वर्ष अंदाजन, तीस-चालीस वर्ष में कोई एक आदमी पोप हो पाता है।
जीसस मर गए तैंतीस वर्ष में। पोप होते-होते कोई भी आदमी पचास साल पार
कर जाता है, साठ पार कर जाता है। बूढ़ा ही आदमी पोप हो सकता है। क्योंकि यह जो पदों की परंपरा है, एक-एक सीढ़ी चढ़ना है। अगर जीसस होते, कभी पोप नहीं हो पाते, क्योंकि तैंतीस साल में कोई पोप हो ही नहीं सकता। उसका तो एक ढांचा है। और तैंतीस साल के आदमी पर भरोसा भी नहीं किया जा सकता। कोई परंपरा भरोसा नहीं कर सकती कि उसको पोप बनाए। तैंतीस साल का आदमी खतरनाक है। अमेरिका में हिप्पी युवकों का एक नारा है कि तीस साल के ऊपर जो हो, उसका भरोसा मत करो। क्योंकि तीस साल के बाद मुश्किल है कि आदमी बेईमान न हो जाए। अनुभव आदमी को बेईमान बनाना शुरू कर देता है। और वह जितना अनुभवी होने लगता है, उतनी ही क्रांति क्षीण हो जाती है।
इसके विपरीत मैं अभी एक लेख पढ़ रहा था। जिसमें एक बूढ़े आदमी ने लेख लिखा है और उसने कहा है कि तीस साल से कम आदमी का कोई भरोसा मत करो। उसकी भी दलीलें हैं। वह कहता है, तीस साल के पहले आदमी का अनुभव ही नहीं है। और जिसका कोई अनुभव नहीं, उसकी बातों का कोई भरोसा नहीं है। उसे मनुष्य जाति के इतिहास का कोई ख्याल नहीं है।
जो भूलें हजार बार हो चुकी हैं, जवान हमेशा उन्हीं को दोहराता है, क्योंकि उसके पास कोई अनुभव नहीं है। बूढ़ा कभी भूलें नहीं दोहराता। लेकिन बूढ़ा कभी कोई नया काम ही नहीं करता; भूलें दोहराने का कोई कारण नहीं है। भूल तो उससे होती है, जो नया काम करता है।
जीसस पोप नहीं हो सकते। अगर आदि शंकराचार्य पैदा हों, तो किसी मठ के शंकराचार्य नहीं हो सकते। तैंतीस साल में शंकराचार्य समाप्त हो गए।
कुछ कारण हैं। एक तो परंपरागत सिंहासन है। उन पर पहुंचता ही वह है, जो बिल्कुल मुर्दा होता है। नहीं तो गुजर नहीं सकता है। बीच की जो सीढ़ियां हैं, उनसे कभी का हटा दिया जाएगा। अगर जरा-सी भी बगावत का लक्षण है, जरा-सा भी स्वयं के सोचने का ढंग है, तो वह कभी का अलग छांट दिया जाएगा। वहां तक तो वही पहुंचेगा, जो बिल्कुल लकीर का फकीर है। जिसने पच्चीसों वर्ष तक प्रमाण दे दिए हैं, कि न मैं सोचता हूं, न मैं विचारता हूं, मैं सिर्फ दोहराता हूं। मैं सिर्फ एक ग्रामोफोन रिकार्ड हूं। वह आदमी पोप तक पहुंच पाएगा। वह धर्मराज होगा। लेकिन गीता उससे नहीं कही जा सकती।
इसलिए अर्जुन पात्र है, और धर्मराज पात्र नहीं हैं।

दूसरा प्रश्नः युद्ध की पार्श्वभूमि में मृत्यु का क्षण अर्जुन के रूपांतरण में सहायक सिद्ध हुआ। क्या अर्जुन अन्यत्र रूपांतरित न हो पाता? और क्या हमें भी अनिवार्यतः मृत्यु के क्षण जैसी स्थिति रूपांतरण के लिए आवश्यक है?

निश्चय ही, जब तक किसी व्यक्ति को मृत्यु का ठीक-ठीक बोध नहीं होता, जब
तक मृत्यु का तीर आपके हृदय में ठीक-ठीक चुभन पैदा नहीं करता, तब तक आप जीवन के संबंध में सोचना शुरू नहीं करेंगे।

मृत्यु ही सवाल उठाती है कि जीवन क्या है। अगर मृत्यु न हो, तो जीवन के संबंध में कोई सवाल न उठेगा। अगर मृत्यु न हो, तो धर्म के जन्म का कोई उपाय नहीं है।
मृत्यु ही हिलाती है। मृत्यु ही जगाती है। मृत्यु ही प्रश्न बनाती है
कि जिस जीवन को तुम जी रहे हो, अगर वह कल मिट ही जाने वाला है, तो उसका मूल्य क्या? उसमें अर्थ क्या है? जिसके लिए तुम आज इतने बेचैन हो और वह कल ऐसे मिट जाएगा, जैसे पानी पर खींची गई लकीर, तो खींचने के लिए इतनी आतुरता क्या है? जिन हस्ताक्षरों को करने में तुम इतनी पीड़ा उठा रहे हो कि जीवन उन्हें याद रखे, वे रेत पर बनाए गए हस्ताक्षर हैं। तुम पूरे भी न कर पाओगे कि हवा का झोंका उन्हें पोंछ जाएगा। तो जीवन में इतना ज्यादा रस व्यर्थ मालूम होगा।
मृत्यु ही बताएगी कि जिसे तुम जीवन समझ रहे हो, वह जीवन नहीं है। और मृत्यु ही तुम्हें धक्का देगी कि तुम उस जीवन की खोज करो, जिसे मृत्यु न मिटा सके। क्योंकि वही जीवन है, जो अमृत है; और जहां कोई मृत्यु न होगी, कोई अंत न होगा।
अगर ऐसा कोई जीवन नहीं है, तो जिसे हम जीवन कह रहे हैं, यह नितांत मूढ़ता है। यह नितांत असंगत, एक दुखस्वप्न, एक नाइटमेयर है। अगर कोई ऐसा जीवन हो सकता हो, जिसका अंत न हो, तो ही इस जीवन में भी कोई सार हो सकता है। क्योंकि तब हम इस जीवन को उस जीवन में जाने की परिस्थिति बना सकते हैं। तब हम इस जीवन को उस जीवन में प्रवेश की साधना बना सकते हैं। तब हम इस जीवन को एक द्वार की तरह, एक शिक्षण की तरह उपयोग कर सकते हैं और परम जीवन में प्रवेश कर सकते हैं।
इस जीवन का एक ही उपयोग हो सकता है कि यह किसी महत्तर जीवन में जाने का साधन बन जाए।
मृत्यु ही बताती है कि यह अंत नहीं है। अंत कहीं और खोजना होगा। मृत्यु ही बताती है कि यह यात्रा-पथ भला हो, मंजिल नहीं है। मंजिल कहीं और खोजनी होगी।
अर्जुन को ही नहीं, किसी को भी मृत्यु ही जगाती है। अगर कोई समझदार हो अर्जुन जैसा, तो दूसरे की मृत्यु भी जगाने वाली बन जाती है। अगर कोई मूढ़ हो, तो दूसरे की मृत्यु का उससे कोई संबंध नहीं जुड़ता।
हेनरिक हेन, एक जर्मन कवि ने लिखा है... ।
जिस गांव में हेनरिक हेन था, उस गांव की परंपरा थी कि जब भी कोई गांव में मर जाए, तो चर्च की घंटी बजे। चर्च का घंटा बजे, ताकि पूरे गांव को खबर हो जाए कि कोई मर गया है। और लोग पूछने भेज दें चर्च में कि कौन मर गया है। हेनरिक ने अपनी डायरी में लिखा है, डोंट सेंड एनीबडी टु आस्क, फार हूम
दि बेल टाल्स, इट टाल्स फार दी! मत भेजो किसी को पूछने कि चर्च का घंटा किसके लिए बज रहा है। यह घंटा तुम्हारे लिए बज रहा है। कोई भी मरे, तुम्हारी मौत का ही इशारा है।
हर मौत खबर है कि तुम भी मरोगे। हर मौत किसी अंश में तुम्हारी मौत है।
जब भी कोई मरता है, कुछ हिस्सा तुम्हारा मर जाता है। और तुम्हारी मौत तुम्हें घेर लेती है क्षणभर को।
अर्जुन को दूसरे की मृत्यु भी प्रतीक हुई जा रही है। वह सिर्फ यही नहीं पूछ रहा है कि इनको मैं क्यों मारूं; वह यह पूछ रहा है कि अगर यह मारना ही सब कुछ है, तो जीवन का मूल्य क्या है? अगर इस मृत्यु से जीवन मिलता हो, तो ऐसे जीवन का मैं त्याग करता हूं। वह यह कह रहा है कि अगर मृत्यु के माध्यम से जीवन मिलता हो, तो मैं ऐसे जीवन का त्याग करता हूं। इससे तो बेहतर है, मैं भाग जाऊं जंगल। इससे तो बेहतर है, मैं मर जाऊं मारने की बजाए।
जब भी आप किसी और की मृत्यु देख रहे हैं, तब अगर आप थोड़े भी विचारपूर्ण हैं, तो आप तत्क्षण सजग हो जाएंगे कि आपकी मौत भी करीब है। और जिस क्यू में यह आदमी गिर गया है, उसी क्यू में आप भी खड़े हैं। थोड़े फासले पर खड़े होंगे। यह नंबर एक था; इसका वक्त आ गया। लेकिन इसके आने से एक नंबर आप भी आगे सरक गए हैं। क्यू में आप थोड़े आगे आ गए हैं। जहां मौत घटने वाली है, उस बिंदु के आप करीब सरक रहे हैं। हर क्यू में गिरने वाला आदमी आपको करीब ला रहा है। हर

रास्ते से निकलती लाश आपकी मौत को करीब ला रही है। हर लाश एक सीढ़ी है, जो आपको मौत तक पहुंचा देगी।
मृत्यु का बोध बुद्ध को संन्यस्थ जीवन में ले गया। मृत्यु का बोध ही किसी भी मनुष्य को कभी भी धार्मिक होने की प्रेरणा दिया है। मृत्यु का परम वरदान है। मृत्यु है, इसलिए आप सोचते हैं।
कोई भी जानवर धार्मिक नहीं है। न होने का कारण कुल इतना है कि कोई भी जानवर अपनी मृत्यु के संबंध में नहीं सोच पाता। मृत्यु उसके लिए कभी भी विचारणीय नहीं बनती। इतना भविष्य में पशु का मन नहीं सोच सकता। और अगर कोई मर भी जाए, तो पशु यह नहीं सोच सकता कि मैं मरूंगा। यह एक दुर्घटना है। इस पर कोई सोच-विचार भी नहीं होता। अगर पशुओं को भी ख्याल आ जाए कि उनकी मृत्यु करीब है, तो वे भी अपना धर्म निर्मित कर लें।
धर्म वस्तुतः मृत्यु के पार जाने का उपाय है। इसलिए जिस व्यक्ति को
भी वस्तुतः धार्मिक रूपांतरण से गुजरना हो, उसे अपनी मृत्यु के प्रति बहुत सघन रूप से सचेत हो जाना चाहिए।
मृत्यु के प्रति सचेत होने का अर्थ मृत्यु से भयभीत होना नहीं है। सच
तो यह है, जो सचेत नहीं होते, वे ही भयभीत होते हैं। जो सचेत होते हैं, वे तो उसके पार जाने का उपाय करने लगते हैं। उनका मृत्यु का भय नष्ट हो जाता है। मृत्यु का बोध, कांशसनेस आफ डेथ चाहिए, कि मृत्यु है, और उससे हम आंख न चुराएं। और हमारे आंख चुराने से हम बचेंगे नहीं। आंख चुराना शुतुरमुर्गी है। शुतुरमुर्ग छिपा लेता है अपनी गर्दन को रेत में, कोई दुश्मन को देखता है तो। आंख बंद हो जाती है, रेत में गर्दन छिप जाती है; शुतुरमुर्ग सोचता है, जो दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता, वह नहीं है। यह तर्क शुतुरमुर्गी है। हम भी यही तर्क का उपयोग करते हैं। जिस चीज से हम डरते हैं, उसको हम देखते नहीं हैं। और सोचते हैं, न दिखाई पड़ने से हम बच जाएंगे।
असल में जिससे भी भय हो, उसकी तरफ आंख गड़ाकर ही देख लेना उपाय है। क्योंकि तब कुछ किया जा सकता है।
मौत के प्रति ध्यान जरूरी है। हम उससे भाग न सकेंगे। हम कहीं भी भागें, हम उसी में पहुंच जाएंगे। हमारी सब भाग-दौड़ मृत्यु में ले जाएगी।
उससे बचने का कोई भी उपाय नहीं है। सिर्फ एक ही उपाय है कि हम मृत्यु को देखें, समझें, और अपने भीतर किसी ऐसे तत्व को खोज लें, जो नहीं मर सकता है। फिर मृत्यु व्यर्थ हो जाती है। फिर कोई हंस सकता है। फिर कोई मृत्यु के साथ खेल सकता है।
कृष्ण भी अर्जुन को यही इशारा दे रहे हैं। वे यही समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि मृत्यु वास्तविक नहीं है! क्योंकि जो भीतर छिपा है, वह कभी भी नहीं मरता। न उसे हम जला सकते हैं जलाने से; न उसे डुबा सकते हैं, न गला सकते हैं; न उसमें छिद्र किए जा सकते हैं शस्त्रों से; न उसे आग जलाती है। जब कोई मार भी डाला जाए, तो भी वह नहीं मरता है।
अर्जुन मृत्यु के प्रति सचेत हो गया है। कृष्ण उसे अमृत के प्रति सचेत करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन ध्यान रहे, अमृत के प्रति उसी की आंखें उठ सकती हैं, जो मृत्यु को देखने में ठीक-ठीक सफल हो गया। क्योंकि मृत्यु के पार अमृत है।
पहले तो मृत्यु को देखना ही पड़ेगा। और आंख इतनी गहरी चाहिए कि मृत्यु
के आर-पार प्रवेश कर जाए और छिपे हुए अमृत को खोज ले।
जो मृत्यु से बचेगा, वह आत्मा से भी बच जाएगा। जो मृत्यु से आंख चुराएगा, अमृत से भी उसके संबंध जुड़ नहीं पाएंगे। यह उलटा मालूम होगा, पैराडाक्सिकल लगेगा, विरोधाभासी, कि जो मृत्यु से बचता है, वही मरता है। और जो मृत्यु का साक्षात कर लेता है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है।
धर्म मृत्यु के साक्षात्कार की प्रक्रिया है।

तीसरा प्रश्नः ज्ञानों में भी अति उत्तम परम ज्ञान, ऐसा कृष्ण ने कहा। क्या ज्ञान में भी श्रेणी-क्रम है?

ज्ञान में तो कोई श्रेणी-क्रम नहीं है, लेकिन व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए एक ज्ञान आपके लिए परम ज्ञान हो सकता है और दूसरा ज्ञान आपके लिए परम ज्ञान न हो।
परम ज्ञान से प्रयोजन है, जिस ज्ञान से आपकी मुक्ति हो जाए। जिस साधना-विधि से आप सिद्ध हो जाएंगे, वह आपके लिए परम है।
हजार साधना-विधियां हैं। उनमें कोई श्रेणी-क्रम नहीं है। वे सभी श्रेष्ठ हैं। लेकिन वे सभी आपके लिए श्रेष्ठ नहीं हैं। कोई और उनसे पहुंच सकता है।
व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। सभी रास्ते वहां पहुंचा देते हैं। जो रास्ता आपको पहुंचा देता है, वह परम है आपके लिए। जो रास्ता मुझे पहुंचा देता है, वह परम है मेरे लिए। आपका रास्ता मेरे लिए दो कौड़ी का है। मेरा रास्ता आपके लिए दो कौड़ी का है। उसका कोई भी मूल्य नहीं।
यह जो परम शब्द का कृष्ण उपयोग कर रहे हैं, यह दो रास्तों में तौलने के कारण नहीं है। हजार रास्ते हैं। लेकिन एक व्यक्ति को एक ही रास्ता पहुंचाएगा। और अपने रास्ते को खोज लेना परम को खोज लेना है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। यह तुलना रास्तों को नीचा-ऊंचा करने की नहीं है। इसलिए कृष्ण को समझने में कई बार कठिनाई होती है। जब वे भक्ति की बात करते हैं, तब वे कहते हैं, परम। जब वे ज्ञान की बात करते हैं, तब वे कहते हैं, परम। इसलिए इतनी टीकाएं कृष्ण की गीता पर हो सकीं। और सभी टीकाकार गलती करते हुए भी ऐसा नहीं मालूम पड़ते कि गलती करते हैं। क्योंकि उनके मन की बात भी कृष्ण ने कहीं कही है। वे उसको ऊपर उठा लेते हैं।
जैसे रामानुज, भक्त हैं और मानते हैं कि भक्ति ही मार्ग है। तो कृष्ण
के वचन हैं, जिसमें उन्होंने कहा है कि भक्ति परम है; सर्वश्रेष्ठ भक्त है। तो बस, उसको रामानुज चुन लेंगे, उसको बिंदु बना लेंगे, आधार। और उसके आधार पर पूरी गीता की व्याख्या कर देंगे। जो गलत है। क्योंकि कई जगह कृष्ण ज्ञान को परम कह रहे हैं कि ज्ञानी परम श्रेष्ठ है। तब रामानुज उसकी ऐसी व्याख्या करेंगे कि जिससे वह भक्ति श्रेष्ठ रहे और यह ज्ञान नंबर दो का हो जाए। कैसे वे व्याख्या करेंगे?
आदमी शब्दों के साथ खेल कर सकता है। खेल यह है कि वे कहते हैं, परम ज्ञानी वही है, जिसको भक्ति का ज्ञान है। हल हो गया। अड़चन हल हो गई।
शंकर ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। वचन हैं गीता में, यही वचन है कि मैं तुझसे परम ज्ञान कहता हूं। तो शंकर क्या करेंगे जहां भक्ति श्रेष्ठ है? शंकर करेंगे कि भक्ति भी ज्ञान तक पहुंचने का एक मार्ग है। लेकिन ज्ञान ही है अंत। भक्ति भी एक मार्ग है ज्ञान तक पहुंचने का। लेकिन वह मार्ग कमजोरों के लिए है। जो सबल हैं, वे सीधा ज्ञान का मार्ग ले लेते हैं। जो भावाविष्ट हैं, भावुक हैं, स्त्रैण हैं, वे भक्ति का मार्ग लेंगे। वह भी एक मार्ग है। उसको भी बरदाश्त किया जा सकता है।
कृष्ण कहीं कर्म को श्रेष्ठ कहते हैं। कहते हैं, कर्मयोगी ही श्रेष्ठ है। तो तिलक उसको पकड़ लेते हैं, और गीता की पूरी व्याख्या कर्मयोग कर देते हैं। तब ज्ञान भी तभी सार्थक है, जब कर्म में उतरे। और भक्ति भी तभी सार्थक है, जब वह तुम्हारा कर्म और सेवा बन जाए। फिर तिलक के पीछे चलकर गांधी और विनोबा कर्म का विस्तार किए चले जाते हैं।
गीता की हजार व्याख्याएं संभव हैं। हजार व्याख्याएं हुई हैं। होने का कारण यह है कि कृष्ण पांथिक नहीं हैं। वे किसी एक पंथ की बात नहीं कह रहे हैं। वे सभी दृष्टियों की बात कर रहे हैं। और सभी दृष्टियों में जब वे जिस दृष्टि की बात करते हैं, उसमें जो श्रेष्ठतम है, उसको खींचकर ऊपर लाते हैं। और जब वे उस दृष्टि की बात करते हैं, तो उसके साथ तत्सम हो जाते हैं, एक हो जाते हैं। फिर वे भूल जाते हैं कि और भी दृष्टियां हैं। और तभी ऐसा हो सकता है, नहीं तो उस दृष्टि का पूरा गहन विश्लेषण भी नहीं हो सकता। कृष्ण दूर खड़े होकर विश्लेषण नहीं करते हैं। जब वे भक्ति की बात अर्जुन से कह रहे हैं, तब वे भक्त ही हो जाते हैं। और तब वे उसका गुणगान करते हैं जितना हो सकता है। उस गुणगान में वे कंजूसी नहीं करते। और उस गुणगान में यह ख्याल नहीं रखते कि पहले मैंने क्या कहा है। क्योंकि वह तो सिर्फ चालाक आदमियों का हिसाब है कि पहले मैंने क्या कहा था। वे इसका भी

हिसाब नहीं रखते कि कल मैं क्या कहूंगा। क्योंकि वे कोई दुकानदार नहीं हैं। कल, कल देखा जाएगा।
और जब वे गुलाब के फूल की प्रशंसा करेंगे, तो सब फूल भूल जाएंगे। और जब
वे कमल के फूल की प्रशंसा करेंगे, तो सब फूल भूल जाएंगे। तब कमल का फूल ही सारे फूलों का सार हो जाएगा।
लेकिन यह दृष्टि समझनी कठिन है, क्योंकि तब कृष्ण बेबूझ हो जाते हैं।
और संप्रदाय वाले लोग फिर उनसे अपना-अपना मतलब निकालते हैं।
इसलिए सभी ने कृष्ण के साथ ज्यादती की है। ज्यादती करनी ही पड़ेगी, क्योंकि इतना विराट हृदय है! कृष्ण जैसा हृदय बहुत मुश्किल है, जहां सब समा जाएं।
नसरुद्दीन गांव का न्यायाधीश हो गया था। पहला ही मुकदमा उसकी अदालत में आया। पक्ष के वकील ने कुछ कहा; अपना वक्तव्य दिया। नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल ठीक। जो कोर्ट का क्लर्क था, जो नीचे ही नसरुद्दीन के बैठा था, वह थोड़ा घबड़ाया। जज को ऐसा निर्णय नहीं देना चाहिए। अभी दूसरे पक्ष की बात सुनी ही नहीं गई।
उसने झुककर नसरुद्दीन को कहा कि शायद आपको पता नहीं अदालत के नियम।
आप चुप रहें। निर्णय आखिर में। और अगर आप अभी कह देते हैं कि बिल्कुल ठीक, तो फिर दूसरे विपक्षी को कहने का क्या मौका रहा! नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल ठीक। उस क्लर्क से कहा।
फिर विपक्षी की बात सुनी। और जब विपक्षी अपना पूरा वक्तव्य दे चुका,
तो नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल ठीक। क्लर्क झुका और उसने कहा, अब हद हो गई। पक्ष भी ठीक; मैंने विरोध किया, वह भी ठीक; अब यह विरोधी जो कह रहे हैं, यह भी ठीक! आपका मतलब क्या है? ये सब ठीक नहीं हो सकते! नसरुद्दीन ने कहा कि बिल्कुल ठीक।
इस भाव-दशा को समझना थोड़ा कठिन है। या तो मूढ़ में हो सकती है यह भाव-दशा, या परम ज्ञानी में। या तो मूढ़ ऐसी मूढ़ता कर सकता है कि सभी को ठीक कह दे। और या फिर परम ज्ञानी ऐसे ज्ञान की बात कर सकता है कि सभी को ठीक कहे। मध्य में तो हमें सदा ऐसा लगेगा कि कुछ ठीक और कुछ गलत। अगर एक पक्ष ठीक है, तो विपक्ष गलत होगा ही।
हम सब अरस्तू के तर्क से जीते हैं। जहां विपरीत बातें, दोनों सही नहीं
हो सकतीं। दोनों गलत हो भी सकती हैं, लेकिन दोनों सही नहीं हो सकतीं। सही तो एक ही हो सकती है।
लेकिन कृष्ण जैसे व्यक्ति अरस्तू के तर्क से नहीं जीते हैं। कृष्ण जैसे व्यक्ति विराट हैं। उनमें सब समाया हुआ है। और जब भी वे किसी एक बात की चर्चा करते हैं, तो पूरे उसमें तल्लीन हो जाते हैं। उस तल्लीनता के कारण वे जगह-जगह कभी भक्ति को श्रेष्ठ कहते हैं, कभी ज्ञान को श्रेष्ठ कहते हैं, कभी कर्म को श्रेष्ठ कहते हैं।
आप क्या करें? आप उलझन में पड़ जाएंगे। क्योंकि अगर वे एक को श्रेष्ठ
कह दें, तो आप आंख बंद करके चल पड़ें। लेकिन शायद उचित ही है कि वे आपको आंख बंद करने का मौका नहीं देते। वे आपसे यह कह रहे हैं कि मैं तो सबको श्रेष्ठ कह रहा हूं, लेकिन तुम्हारे लिए क्या श्रेष्ठ है, वह तुम्हें खोजना पड़ेगा। तुमसे किस चीज का तालमेल बैठ जाता है, तुम्हारे हृदय में कौन-सी चीज अनुगूंज पैदा करती है, तुम्हारी धड़कनें किस बात के साथ नाचने लगती हैं, तुम किससे अपना तारतम्य पाते हो, वही तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है।
इसे ख्याल रखें, अन्यथा कृष्ण बहुत असंगत मालूम होंगे। सभी महापुरुष असंगत होते हैं, सिर्फ क्षुद्र व्यक्तित्व असंगत नहीं होते। क्योंकि उनमें विपरीत समाया होता है। वे अपने से भिन्न को भी अपने भीतर समा लेते हैं।

चौथा प्रश्नः कृष्ण, बुद्ध, महावीर जानते हैं कि संसार माया है, एक स्वप्न है, तो भी वे अपने शिष्यों के साथ इतना श्रम क्यों करते हैं? क्या उनका श्रम भी, शिष्यों को साधना करवाना भी माया के ही अंतर्गत नहीं है?

निश्चित ही माया के अंतर्गत है। जैसे कोई सोया हो, स्वप्न देख रहा हो
कि उसके घर में आग लग गई है। और तड़फ रहा हो, नींद में हाथ-पैर मार रहा हो, चिल्ला रहा हो, आग! आग! आप जागे हुए बैठे हैं। और आप जानते हैं, कहीं आग नहीं लगी है। आप जानते हैं कि वह स्वप्न देख रहा है। उसके माथे पर जो पसीना बह रहा है, वह स्वप्न की आग से पैदा हुआ है। उसके मुंह से जो चिल्लाहट निकल रही है, आग; मर गए; लुट गए; वह स्वप्न की आग से निकल रही है। आप उसको जगाने की कोशिश करेंगे, जाग जाओ। हिलाएंगे; उससे कहेंगे, यह स्वप्न है।
स्वप्न को तोड़ने की क्या जरूरत? स्वप्न स्वप्न है ही। स्वप्न को तोड़ने के लिए आप परेशान क्यों हो रहे हैं? अगर स्वप्न स्वप्न ही है, तो इतनी परेशानी आपको क्या है! इसको चिल्लाने दो, रोने दो, चीखने दो। स्वप्न ही है। लेकिन फिर भी आप कोशिश करेंगे। माना कि जो यह देख रहा है, वह तो स्वप्न है; लेकिन जो यह भोग रहा है, वह सत्य है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें।
जो यह देख रहा है कि आग लगी है, वह तो स्वप्न है; लेकिन जो यह भोग रहा है, जो पीड़ा, वह सत्य है। उस पीड़ा में कोई फर्क नहीं पड़ता। वस्तुतः घर में आग लगी हो, तो भी इतनी ही पीड़ा होती है; और सपने में आग लगी हो, तो भी इतनी ही पीड़ा हो रही है। या कि कोई फर्क पड़ता है?
पीड़ा वास्तविक है। संसार असत्य है, लेकिन संसार में भोगा गया दुख वास्तविक है। यह संसार सत्य हो या असत्य हो, इससे फर्क नहीं पड़ता; आप दुख भोग रहे हैं, यह सवाल है। और बुद्ध और महावीर और कृष्ण जानते हैं कि तुम्हारा दुख असत्य से पैदा हो रहा है, लेकिन तुम दुखी हो, यह निश्चित है। इतना भर कह देने से कि यह सब माया है, सपना है; छोड़ो, इसमें कुछ रखा नहीं है, तुम्हारा दुख नहीं मिटेगा। तुम्हें जगाना पड़ेगा।
साधना पद्धति का अर्थ होता है, जगाने की कोई व्यवस्था। और यह नींद ऐसी गहरी है; यह नींद साधारण नींद नहीं है। साधारण नींद में तो दूसरा आदमी आपको हिलाकर उठा दे। यह नींद ऐसी गहरी है कि जब तक आप ही अपने को हिलाना न शुरू करें, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध आपको हिलाकर नहीं उठा सकते हैं।
इसलिए कृष्ण, बुद्ध और महावीर इतना ही कर सकते हैं कि आपको कुछ विधियां दें, जिनके माध्यम से आप अपने को हिलाना शुरू करें और किसी दिन जाग जाएं। जागकर आप भी पाएंगे कि स्वप्न था। जागकर आप भी पाएंगे कि जो मैं देख रहा था, वह वास्तविक नहीं था। लेकिन फिर भी आप बुद्ध के चरणों में सिर रखकर धन्यवाद देंगे। क्योंकि जो आप भोग रहे थे, वह काफी वास्तविक था। झूठी चीजों से भी सत्य भोग भोगा जा सकता है। एक आदमी रास्ते पर देखता है, रस्सी पड़ी है अंधेरे में और सांप दिखाई पड़ती है; वह भाग खड़ा होता है। उसकी छाती कम धड़केगी, क्योंकि वहां रस्सी है, सांप नहीं? सांप होता तो ज्यादा धड़कती?
इस आदमी के लिए तो सांप है ही। यह भाग रहा है। इसकी घबड़ाहट तो वास्तविक है। इसकी पीड़ा वास्तविक है। इसका हार्ट फेल हो सकता है। और आप यह न कह सकेंगे कि गलत है तुम्हारा हार्ट फेल। क्योंकि तुमने जो देखा, वह सांप नहीं था, रस्सी थी। वापस लौटो। यह बिल्कुल ठीक नहीं है। यह जायज नहीं है।
मगर आपके कहने से कोई वापस लौटने वाला नहीं है। जायज-नाजायज कौन पूछेगा? यह हृदय की धड़कन बंद हो सकती है झूठे सांप को देखकर। वास्तविक हृदय की धड़कन बंद हो सकती है झूठे सांप को देखकर!
आप दुख तो भोग ही रहे हैं। इस दुख से बाहर आने की व्यवस्था साधना है।
और महावीर, बुद्ध और कृष्ण इतना श्रम लेते हैं, वह श्रम भी आपको श्रम मालूम पड़ रहा है। शायद आपको कभी-कभी तो पागलपन भी मालूम पड़ता होगा। क्योंकि श्रम में भी कोई पुरस्कार तो दिखाई पड़ता नहीं। श्रम भी आदमी करता है, तो कुछ पाने को। इनको मिलता क्या है? कभी-कभी जीसस जैसे व्यक्ति को सूली मिल जाती है, और तो कुछ मिलता नहीं। कभी सुकरात को जहर मिल जाता है, और तो कुछ मिलता नहीं। यह पुरस्कार है!
मिलता क्या है? श्रम ही दिखाई पड़ता है। किसलिए श्रम कर रहे हैं? आपको ऐसा लगता है कि श्रम कर रहे हैं; उनकी तरफ से श्रम नहीं है। उनकी तरफ से सहज आनंद है। उनकी तरफ कोई मेहनत नहीं हो रही है। जो उन्होंने जाना है, उसे

दूसरे को भी जना देना एक आनंद है। जो उन्होंने पाया है, वह दूसरा भी पा ले; उस दूसरे के पाने में भी बड़ा आनंद है।
यह श्रम किसी पुरस्कार को पाने के लिए नहीं है। यह श्रम अपने में ही पुरस्कार है। इसके पार और कुछ पाने का सवाल नहीं है। यह श्रम प्रेम का एक हिस्सा है। यह एक करुणा है।

अब हम सूत्र लें।
हे अर्जुन, नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं।
हे अर्जुन, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।
हे निष्पाप, उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सत्वगुण
तो निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात ज्ञान के अभिमान से बांधता है।
पहली बात, गीता के अनुसार और वस्तुतः सांख्य के अनुसार प्रकृति तीन तत्वों का मेल है, सत्व, रज, तम।
यह आश्चर्य की बात है कि जगत में जहां भी किसी ने विश्लेषण किया है जीवन का, अंतिम विश्लेषण हमेशा तीन पर टूट जाता है। प्रतीकों में, धारणाओं में, सिद्धांतों में अस्तित्व तीन हिस्सों में टूट जाता है।
ईसाइयत ट्रिनिटी में विश्वास करती है कि ईश्वर के तीन रूप हैं। और उनसे ही सारा जगत निर्मित होता है। हिंदू त्रिमूर्ति में विश्वास करते हैं कि परमात्मा के तीन चेहरे हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश। उन तीन चेहरों से ही सारा जगत, उन तीन व्यक्तित्वों से ही सारा जगत निर्मित है।
सांख्य अति वैज्ञानिक है। वह ट्रिनिटी और त्रिमूर्ति की बात नहीं करता, तीन चेहरों की बात नहीं करता; वह तीन तत्वों की बात करता है, सत्व, रज, तम। सत्व, रज, तम, तीनों के तीन गुण हैं। और उन तीनों गुणों के मेल से सारा अस्तित्व गतिमान है।
तम स्थिति-स्थापक है। तम का अर्थ है, आलस्य की, विश्राम की दशा, ठहरी हुई दशा, अवरोधक। एक पत्थर आप फेंकते हैं। अगर आप न फेंकते, तो पत्थर अपनी जगह पड़ा रहता। अपनी जगह पड़ा रहना तम है। जब तक कि कोई बाहरी चीज धक्का न दे, सभी चीजें अपनी जगह पड़ी रहेंगी। तम का अर्थ है, अपनी जगह ठहरे रहना, हटना नहीं। और जब आप पत्थर को फेंकते हैं, तब भी आपको ताकत लगानी पड़ती है। वह ताकत इसीलिए लगानी पड़ती है, क्योंकि पत्थर अपनी जगह रहना चाहता है। उसको जगह से हटाने में आपको संघर्ष करना पड़ता है।
फिर आप पत्थर को फेंक भी देते हैं, अगर तम जैसी कोई चीज न होती, तो पत्थर फिर कभी रुकता ही नहीं। वह चलता ही चला जाता। लेकिन पत्थर लड़ रहा है रुकने के लिए। आपने फेंक दिया, तो आपने थोड़ी-सी ऊर्जा उसको दी, शक्ति दी अपने शरीर की। वह शक्ति जैसे ही चुक जाएगी, पत्थर वापस जमीन पर गिर जाएगा। विज्ञान जिसको ग्रेविटेशन कहता है, सांख्य उसको तम कहता है, ठहरने की, प्रतिरोध की, रुकने की, स्थिति में बने रहने की।
अगर दुनिया में तम न हो, तो फिर कोई भी चीज ठहरेगी नहीं। बड़ा मुश्किल
हो जाएगा। सभी चीजें गति में रहेंगी। और गति इतनी विक्षिप्त हो जाएगी कि उसके ठहरने का कोई उपाय नहीं रह जाएगा। अकेली गति काफी नहीं है। ठहरने का तत्व कहीं प्रकृति में गहन होना चाहिए।
तम है स्थिति का, ठहरने का तत्व; कहें मृत्यु का तत्व। क्योंकि मृत्यु ठहरा लेती है। मर जाने के बाद फिर कोई गति नहीं है। इसलिए तामसिक व्यक्ति हम उसको कहते हैं, जो मरा-मरा जीता है। जिसमें तम इतना है, कि जिसमें गति है ही नहीं। जो चलता ही नहीं, उठता ही नहीं। जिसके भीतर कोई क्रांति, कोई परिवर्तन, कोई नया नहीं होता; कुछ रूपांतरण नहीं होता। जो पत्थर की तरह पड़ा हुआ है।
देखें, हम प्रकृति में भी इसी तरह हिसाब लगाते हैं विकास का। जितना ज्यादा तम हो, उतनी अविकसित चीज मानी जाएगी। जितना कम तम हो, उतनी विकसित।

आदमी सबसे ज्यादा गतिमान है। पत्थर सबसे ज्यादा गतिहीन है। पौधों में थोड़ी गति है। पशुओं में और ज्यादा। मनुष्य में बहुत।
मनुष्य पानी में भी गति करे, जमीन पर भी, हवा में, आकाश में भी, चांद-तारों तक भी जाए। उसे रोकने का उपाय नहीं, सब तरफ भागता है। इसलिए मनुष्य सर्वाधिक विकसित है। उसने अपने तम की या अपने भीतर की मृत्यु पर सर्वाधिक विजय पा ली है। वह बदल सकता है।
समाज में भी वही समाज सबसे ज्यादा प्रगतिशील होगा, जिसने तम को तोड़ दिया है। पश्चिम के समाज अपने तम को तोड़ने में काफी सफल हुए हैं। विकास तीव्र हो गया है। लेकिन किन्हीं सीमाओं में विकास इतना ज्यादा हो गया है कि ठहरने की उन्हें कला ही भूली जा रही है। तो भी घबड़ा गए हैं।
क्योंकि एक आदमी चल पड़े और रुकना न जाने, रुकना भूल जाए! मंजिल पर पहुंचने को चला था, लेकिन मंजिल पर रुकना पड़ेगा; और वह रुकना भूल जाए! और चलना ऐसा हो जाए कि वह रुकना भी चाहे, तो रुक न सके। मंजिल भी आ जाए, तो क्या करे? मंजिल पीछे छूट जाएगी। वह आदमी चलता ही रहेगा।
तमः ठहरने वाली, ठहराने वाली, रोकने वाली। रजः गति देने वाली, तीव्रता देने वाली। रज शक्ति है, ऊर्जा है प्रवाहमान, जैसे नदी, विद्युत।
यह सारा जगत गतिमान है। अगर चीजें ठहरी ही रहें, तो जगत नहीं हो सकता।
उसमें चलना, उसमें बढ़ना।
बच्चा पैदा होता है; बढ़ेगा। मौत अगर तम है, तो जीवन रज है, जन्म रज है।
जन्म के क्षण में बच्चे में रज का तत्व ज्यादा होता है, तम का कम। बूढ़े में तम बढ़ जाता है और रज कम हो जाता है। जिस दिन रज और तम दोनों समान होते हैं, उस दिन व्यक्ति जवान होता है; उस दिन उसमें गति और ठहराव बराबर होते हैं। उस दिन संतुलन होता है। उस दिन एक बैलेंस होता है। इसीलिए जवानी में एक सौंदर्य है।
बच्चे में एक त्वरा होती है, चंचलता होती है, क्योंकि रज तेज होता है,
तम कम होता है। तुम उसे कहो कि बैठो शांत, तो वह शांत नहीं बैठ सकता। बूढ़ों को बहुत अखरता है कि बच्चे शांत नहीं बैठ सकते। उनको अखरने का कारण है। क्योंकि वे चंचल नहीं हो सकते।
लेकिन उनको पता नहीं है कि बच्चे बूढ़े नहीं हैं, इसलिए उनसे ठहरने की आकांक्षा करनी गलत है। अगर उन्हें ठहराना भी हो, तो एक ही उपाय है कि उन्हें काफी दौड़ाओ कि वे थक जाएं। उनका रज थक जाए। उनका रज थक जाए, तो तम ज्यादा हो जाएगा। फिर वे बैठ जाएंगे। उनके विश्राम का एक ही उपाय है कि वे काफी दौड़ लें।
बूढ़े के दौड़ने का एक ही उपाय है कि काफी विश्राम कर ले, तो थोड़ा दौड़ सकता है। उसका तम थक जाए विश्राम कर-करके, तो रज थोड़ा गतिमान हो सकता है। और जवानी एक संतुलन है। और जब पूरी तरह संतुलित होती है गति की क्षमता
और ठहरने की क्षमता, तो सौंदर्य प्रकट होता है। क्योंकि दोनों विपरीत बिल्कुल मिल जाते हैं। दोनों में जरा भी भेद नहीं रह जाता। दोनों तनाव एक जगह पर आ जाते हैं। उस तनाव का नाम जवानी है; उस टेंशन का नाम, जहां दोनों विपरीत शक्तियां बराबर मात्रा की हो जाती हैं।
सत्व न तो गति का तत्व है, न ठहरने का। सत्व है संतुलन। सत्व वहीं प्रकट होता है, जहां दोनों तत्व संतुलित हो जाते हैं। सत्व है बैलेंस। इसलिए जब भी आप जीवन की किसी भी दिशा में संतुलन को पाते हैं, तो सत्व प्रकट होता है।
साधु का अर्थ है, जो संतुलन को उपलब्ध हुआ, सात्विक हुआ।
सत्व है संयम, विपरीत के बीच संयम। दोनों विपरीत टूट गए। दोनों विपरीत एक-दूसरे को साध दिए। दो विरोधी स्वरों से एक संगीत पैदा हो गया। इस संगीत का नाम है सत्व।
रज और तम शक्ति, दौड़, ठहरने के नियम हैं। और दोनों के बीच जब कोई संतुलन पैदा होता है, तो जो तत्व पैदा होता है, वह है सत्व। इन तीन तत्वों से मिलकर प्रकृति बनी है।
प्रकृति में जहां भी सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वहां समझना कि सत्व पैदा
हो गया। हम भगवान के मंदिर में मूर्ति पर फूल ले जाकर चढ़ाते हैं। वह फूल सत्व का प्रतीक है। वह फूल सौंदर्य का प्रतीक है। वृक्ष के जीवन में,

प्राणों में, फूल तभी खिलता है, जब एक गहन संतुलन पैदा हो जाता है। उस संतुलन को हम परमात्मा के चरणों में चढ़ाते हैं। वह प्रतीक है। ऐसा संतुलन, ऐसा फूल हमारे जीवन में खिले और हम उसे मंदिर में चढ़ा सकें, वह उसकी आकांक्षा है; वह उस दिशा की तरफ हमारा भाव है।
बुद्ध में जो संतुलन दिखाई पड़ता है, वह सत्व है। महान, महानतम व्यक्तियों में भी, पृथ्वी पर जो हम देख सकते हैं ज्यादा से ज्यादा, वह सत्व है।
इन तीनों के पार भी एक अवस्था है, जिसको कृष्ण बाद में बताएंगे, जिसे
वे गुणातीत कहते हैं। पर उस अवस्था को देखा नहीं जा सकता। बुद्ध में वह पैदा होती है, कृष्ण में पैदा होती है, पर उसको हम देख नहीं सकते हैं। वह तो हममें ही जब पैदा हो, तभी हम उसका अनुभव कर सकते हैं।
बुद्ध को भी हम ज्यादा से ज्यादा सत्व में देख सकते हैं, क्योंकि आंखें सत्व को देख सकती हैं। आंखें प्रकृति की हैं। वे भी तीन तत्वों से बनी हैं। उनमें भी रज है, तम है और सत्व है। इसलिए जो हमारी आंखों में छिपा है, उसे हम पहचान सकते हैं, ज्यादा से ज्यादा। वह भी सभी लोग नहीं पहचान सकेंगे।
बुद्ध के पास अगर कोई तामसी जाएगा, तो बुद्ध को बिल्कुल नहीं पहचान पाएगा। वह समझेगा कि कोई ढोंगी है; वह समझेगा कि लोगों को धोखा दे रहा है। इससे सावधान रहना; कहीं रात सो गए, जेब न काट ले! वह बुद्ध के पास भी अपनी जेब पर हाथ रखेगा कि क्या भरोसा! देखने में तो भोला लगता है, लेकिन भोलापन हमेशा खतरनाक होता है। पता नहीं बनकर भोला बैठा हो यह आदमी। कोई तरकीब हो। कोई इसके पीछे हिसाब जरूर होगा, नहीं तो कोई क्यों भोला बैठेगा!
बुद्ध के पास अगर कोई रज से भरा हुआ, भाग-दौड़ से भरा हुआ, चंचल व्यक्ति पहुंचेगा, तो वह मुर्दा समझेगा बुद्ध को। कि यह क्या जीवन है? यह भी कोई जीवन है! पलायनवादी, एस्केपिस्ट है यह आदमी। यह भाग गया। इसमें कुछ कमी है। यह लड़ न सका। कायर है, कमजोर है।
लोगों ने ऐसा कहा है। कहने वाले का कारण है। क्योंकि वह चंचलता में जीवन देखता है; भाग-दौड़ में जीवन देखता है। ऊर्जा नाचती हो, वहां जीवन देखता है।
यहां बुद्ध में सब शांत है। यहां जैसे कोई तरंग भी नहीं हिलती। तो वह कहेगा, यह भी कोई जीवन है! यह तो मरने का एक ढंग हुआ। यह आदमी तो मर चुका। मैदान में आओ जिंदगी के। वहां तुम्हारा पता चलेगा। भगोड़े हो।
बुद्ध को भी वही पहचान पाएगा, जिसमें सत्व का थोड़ा उदय हुआ हो।
क्योंकि हम वही पहचान सकते हैं, जो हमारे भीतर है। अन्यथा को पहचानने का कोई उपाय नहीं है। वही देख सकते हैं, जो हमारी आंख में भी आ गया हो। वही हमारे हृदय को भी छू सकता है, जो हमारे हृदय में भी कंपित हो रहा हो। समान समान से मिल जाते हैं। समान समान को पहचान लेते हैं।
तो सात्विक व्यक्ति ही बुद्ध को पहचान पाएगा कि कौन-सी महान घटना घटी है। इस व्यक्ति के भीतर कौन-सा फूल खिला है। इसलिए बुद्ध के पास वे ही लोग इकट्ठे हो पाएंगे, जो सात्विक हैं, जो सरल हैं, जो संतुलित हैं, जो संयमी हैं, और जिन्होंने एक भीतरी हारमनी, एक लयबद्धता को पा लिया है। बहुत लोग पास से गुजरेंगे, उन बहुतों में से बहुत थोड़े लोग ही बुद्ध के पास रुक पाएंगे।
सांख्य ने इन तीन तत्वों को खोजा। ये तत्व बड़े अदभुत हैं। और इन तीन तत्वों के आधार पर मनुष्य का, प्रकृति का सारा व्यवहार समझा जा सकता है। फिर आधुनिक विज्ञान ने भी तीन तत्वों की खोज की है, और परमाणु के विस्फोट पर उनको पता चला कि परमाणु भी तीन तत्वों से ही निर्मित है। एक को वे कहते हैं इलेक्ट्रान, एक को पाजिट्रान, एक को न्यूट्रान। और उन तीनों के भी लक्षण करीब-करीब वही हैं, जो सत्व, रज और तम के हैं। उनमें से एक स्थिति को पकड़ने वाला है, एक गति देने वाला है, और एक संतुलन है।
निश्चित ही, कहीं गहराई में विज्ञान भी उसी तत्व को छू रहा है, जिसको सांख्यों ने छुआ था, जिसकी कृष्ण इन सूत्रों में बात कर रहे हैं। और ये तीन तत्व वही हैं, जिनको हिंदू मिथ में हमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश कहा है। तीनों के लक्षण भी यही हैं उनके। ब्रह्मा पैदा करता है; वह रज है। विष्णु

सम्हालते हैं, संतुलन देते हैं; वे सत्व हैं। शिव तम हैं; विनष्ट करते हैं।
सब चीजें शांत हो जाती हैं वापस।
इसलिए अक्सर तामसी जो लोग हैं, शिव की पूजा करते दिखाई पड़ते हैं। शिव उनको रसपूर्ण मालूम होते हैं। शिव विध्वंसक हैं, वे मृत्यु के प्रतीक हैं। इसलिए शिव के पीछे अगर चरस, गांजा, अफीम तेजी से चल पड़ा, उसका कारण है। क्योंकि ये सभी तत्व मृत्यु के तत्व हैं। सभी विध्वंसक हैं। सभी आपको नष्ट कर देंगे। इनके विनाश में जो रस आ सकता है, वह तामसी वृत्ति को आ सकता है।
पश्चिम में एल.एसड़ी., मेस्केलीन, मारिजुआना तेज गति पर है। और पश्चिम
के ये भक्त--मारिजुआना के भक्त, एल.एस. डी. के भक्त--उनके मन में भी शिव के प्रति बड़ा प्रेम पैदा हो रहा है। हिप्पी आता है, तो काशी जाता है। काशी शिव की नगरी है। वहां जाकर वह शिव के दर्शन करता है। वह नेपाल जाता है। क्योंकि वहां शिव के बड़े प्राचीन मंदिर हैं; शिव-भक्तों की बड़ी पुरानी धारा है। अमेरिका की हिप्पी बस्तियों में भी बम भोले, जय भोले की आवाज सुनाई पड़ने लगी है।
जहर मौत का प्रतीक है। और जहर आपके भीतर चीजों को ठंडा कर देता है, गति छीन लेता है। इसलिए नशे का इतना रस है। क्योंकि आप इतने तनाव में रहते हैं, इतनी भाग-दौड़ में रहते हैं, कि थोड़ी शराब पी लेते हैं, तो थोड़ा तनाव कम हो जाता है, भाग-दौड़ कम हो जाती है। पड़ जाते हैं, बेहोशी में पड़ जाते हैं, लेकिन रुक जाते हैं।
सभी मादक द्रव्य तमस पैदा करते हैं। वे आपके भीतर दौड़ को रोक देते हैं। इसलिए बहुत दौड़ने वाले लोग शराब से नहीं बच सकते। क्योंकि उनकी दौड़ इतनी ज्यादा है कि उनको इस दौड़ को रोकने के लिए किसी न किसी तरह की बेहोशी चाहिए। वे बेहोश होंगे, तभी रुक पाएंगे, नहीं तो रुक नहीं सकते। रात नींद में भी दौड़ते रहेंगे।
पश्चिम में शराब का मूल्य बढ़ता चला गया है, क्योंकि पश्चिम दौड़ रहा है, उसने रज पर भरोसा कर लिया है। रज पर अगर आप भरोसा करेंगे, तो तम को भी आपको साथ में लाना पड़ेगा। नहीं तो रज घातक हो जाएगा, आप विक्षिप्त हो जाएंगे।
पश्चिम में अधिकतम लोग पागल हो रहे हैं, वह रज का परिणाम है। ज्यादा दौड़ेंगे, तो विक्षिप्त हो जाएंगे। ठहरना भी उतना ही जरूरी है। और जो व्यक्ति जानता है--जैसा ताओ ने कहा है, कहां ठहर जाना--जो जानता है, कहां ठहर जाना, वह कभी संकट में नहीं पड़ता।
दौड़ना भी जरूरी है; ठहरना भी जरूरी है। दौड़ने और ठहरने में जो संतुलन
को पैदा कर लेता है, वह सत्व को उपलब्ध हो जाता है, वह साधु है।
साधुता का अर्थ है, भीतर एक लयबद्धता पैदा हो जाए। न तो दौड़ हो और न मूर्च्छा हो। मूर्च्छा हो तो तम होता है; दौड़ हो तो पागलपन होता है। दौड़ और रुकने की क्षमता दोनों मिल जाएं और एक तीसरा तत्व पैदा हो जाए। उस तत्व को कृष्ण ने सत्व, सांख्य ने सत्व कहा है।
यह तत्व भी आखिरी नहीं है। इस संसार में श्रेष्ठतम है। इससे ही कोई मुक्त नहीं हो जाएगा, लेकिन इससे मुक्ति की संभावना बनती है।
ध्यान रहे, कोई सात्विक होकर मुक्त नहीं हो जाएगा। सात्विक होकर भी संसार का ही हिस्सा रहेगा। इसलिए साधु मुक्त नहीं होता। संत को हम मुक्त कहते हैं, साधु को नहीं। लेकिन साधु में संत होने की क्षमता हो जाती है। चाहे तो साधु संत हो सकता है। साधुता में सिर्फ पूर्व-भूमिका है। संतुलन पैदा हो गया है। अब चाहे तो समाधि भी आ सकती है। लेकिन संतुलन ही समाधि नहीं है।
ये तीन तत्व तो प्रकृति के ही हैं। इसमें तम मूर्च्छा में ले जाता है। इसमें रज गति और विकास, त्वरा में ले जाता है। इसमें सत्व शांति में ले जाता है। लेकिन ये तीनों तत्व जगत के भीतर हैं।
सत्व के भी पार जाना जरूरी है। तब गुणातीत अवस्था पैदा होती है, जो तीनों गुणों के पार है। और जो तीनों गुणों के पार है, वह प्रकृति के पार है। वही परमात्मा है। तीन गुण प्रकृति के; और तीनों गुणों के जो पार निकल जाए, वह परमात्मा है, वह पुरुष है, वह मुक्त की दशा है।

लेकिन सत्व द्वार बन जाता है। पर अगर आप नासमझी करें, तो सत्व ही बाधा
भी बन सकता है। क्योंकि अगर साधुता का अभिमान आ जाए, जो कि आ सकता है। शांति का अभिमान आ जाए, जो कि आ सकता है। सत्व में ज्ञान का अभिमान आ जाए, जो कि आ सकता है। सात्विक होने की अहंमन्यता आ जाए, जो कि बड़ी सरल है। इसलिए साधु से ज्यादा अहंकारी आदमी दूसरे नहीं पाए जाते। उनके पास अहंकार करने को कुछ है भी। और जब कुछ अहंकार करने को हो, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। संसार में तो ऐसे लोग भी अहंकार में पड़े हैं, जिनके पास अहंकार करने को कुछ भी नहीं है। उनका अहंकार जस्टीफाइड भी नहीं है। वे भी अहंकार कर रहे हैं। लेकिन साधु का अहंकार न्यायसंगत भी मालूम पड़ सकता है। उसके पीछे तर्क है, आधार भी है। वह शांत है। वह सत्व में ठहरा हुआ है। वह एक तरह का सुख पा रहा है।
सत्व एक सुख देता है, जिसका अंतिम दर्जा स्वर्ग है। सत्व की जो आखिरी दशा है, वह स्वर्ग है; मोक्ष नहीं, स्वर्ग। सुख की बड़ी गहन क्षमता है। उसके पास कुछ है। और जब हम ना-कुछ के अभिमानी हो जाते हैं, तो जिनके पास कुछ है, उनको अहंकार पकड़ ले, इसमें आश्चर्य नहीं है। वही खतरा है। उनको अहंकार से छुड़ाना बहुत मुश्किल है। संसारी को अहंकार से छुड़ाना बहुत आसान है, साधु को अहंकार से छुड़ाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि उसको लगता है कि अहंकार का कुछ कारण है। वह ऐसे ही अहंकार नहीं कर रहा है; कुछ वजह है। वह वजह बाधा बन जाती है।
अब हम इस सूत्र को देखें।
हे अर्जुन, नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां, जितने शरीर, जितने रूप उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया को तो गर्भ धारण करने वाली माता समझो। यह जो प्रकृति है तीन गुणों से भरी हुई, इसे तुम मां समझो, गर्भ समझो। और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं।
तो शरीर और रूप तो इन तीन गुणों से मिलता है। मन, शरीर, रूप इन तीन गुणों से मिलता है। चेतना परमात्मा से आती है; इन तीनों गुणों के पार से आती है। चेतना इन तीनों गुणों के भिन्न जगत से आती है। और इन तीन के भीतर आवास करती है।
लेकिन इन तीनों में से किसी न किसी में जकड़ जाने का डर है। या तो आलस्य में उलझ जाती है, तम में पड़ जाती है। या तो विक्षिप्तता में, चंचलता में, दौड़ में पड़ जाती है। और या फिर सत्व के अहंकार में पड़ जाती है। और इन तीनों में से किसी एक से भी जुड़ जाए, तो अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाती, क्योंकि वास्तविक स्वरूप तीनों के पार से आता है।
यह इसका अर्थ है। तीन गुण तो मां है, और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूं। मैं से अर्थ है, ब्रह्म। मैं से अर्थ है, इस जगत की परम चेतना। हे अर्जुन, सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, ऐसे यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।
ये तीन जीवात्मा के लिए बंधन निर्मित करते हैं। इन तीनों के बिना जीवात्मा शरीर में नहीं हो सकती। तम चाहिए, जो ठहराव की शक्ति दे। रज चाहिए, जो गति दे और जीवन दे। सत्व चाहिए, जो संतुलन दे, सुख दे। अगर इन तीनों में से एक भी कम है, तो आप टिक न पाएंगे।
अगर सुख बिल्कुल न रह जाए, तो आप आत्महत्या कर लेते। क्यों? किसलिए जीएं? सुख की थोड़ी झलक तो चाहिए। असाधु में भी थोड़ी-सी तो सुख की झलक चाहिए ही। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कहीं सुख मिलेगा, इसका थोड़ा आसरा चाहिए। उतना भी काफी है बांधने के लिए। अगर सुख के सब सेतु टूट जाएं; साफ हो जाए, कोई सुख नहीं; आप इसी क्षण मर जाएंगे। ये तीनों चाहिए। ये तीन शरीर को बांधते हैं।
हे निष्पाप, उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार सत्वगुण है। इन तीनों गुणों में सबसे ज्यादा प्रकाशित, सबसे ज्यादा निर्मल, निर्विकार सत्वगुण है। निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से अर्थात ज्ञान के अभिमान से बांधता है।
चूंकि सत्वगुण निर्मल है, शांत है, शुद्ध है, सुख देता है, ज्ञान भी देता है। क्योंकि एक क्लैरिटी, एक स्वच्छता आंखों में आ जाती है; देखने की एक क्षमता आ जाती है; चीजों को आर-पार पहचानने की कला आ जाती है। सुख भी

देता है भीतर और साथ में एक जानकारी, जीवन में प्रवेश करने की, ज्ञान की क्षमता देता है। पर इन दोनों से अभिमान पैदा होता है।
ज्ञान से भी अभिमान पैदा होता है कि मैं जानता हूं। सुख से भी अभिमान पैदा होता है कि मैं सुखी हूं। और वह जो मैं का भाव इन दोनों से पैदा हो जाता है, तो सत्वगुण भी फिर संसार में ही रखने का कारण बनता है।
जिस दिन ये दोनों बातें भी छोड़ दी जाती हैं, न तो कोई सुख से बंधता है
और न कोई ज्ञान से... ।
इसे थोड़ा हम समझ लें।
हम तो दुख से भी बंधे हुए हैं। दुख को भी कहते हैं, मेरा दुख, मेरा सिरदर्द, मेरी बीमारी। उसके साथ भी हम मैं को जोड़ते हैं। अज्ञान के साथ भी हम मैं को जोड़ते हैं, तो ज्ञान के साथ तो हम मैं को जोड़ेंगे ही। सुख के साथ तो हम कैसे बचेंगे बिना जोड़े!
इसलिए अगर स्वर्ग के देवता मुक्त होने से वंचित रह जाते हैं, तो उसका कारण है। सत्व के साथ बंधे हुए लोग हैं। सुख बहुत है। और जहां सुख ज्यादा हो, वहां तादात्म्य तोड़ने का मन भी पैदा नहीं होता।
दुख से तो तादात्म्य तोड़ने का मन भी पैदा होता है कि कोई समझा दे कि दुख अलग है और मैं अलग हूं। कोई बता दे कि अज्ञान अलग है और मैं अलग हूं, इसकी थोड़ी आकांक्षा होती है। क्योंकि दुख कोई भी चाहता नहीं है, अज्ञान कोई भी चाहता नहीं है।
लेकिन जब आप सुख में हों और कोई बताए कि तुम अलग और सुख अलग, तो आप उसको मित्र न समझेंगे, शत्रु समझेंगे। उससे कहेंगे, जाओ, कहीं और समझाओ। कोई आपसे कहे, तुम्हारा ज्ञान अलग, तुम अलग, यह ज्ञान कचरा है। तुम ज्ञान नहीं हो। यह सुख व्यर्थ है। तुम सुख नहीं हो, तुम दूर अलग हो।
इसलिए संतों ने कहा है, दुख अभिशाप नहीं, वरदान है। क्योंकि दुख में दुख से टूटने की कामना पैदा होती है।
सूफी फकीर जुन्नैद बीमार रहता था। उसके भक्तों ने उससे कहा कि तुम एक दफा प्रार्थना करो परमात्मा से, तो तुम्हारी सब बीमारी दूर हो जाए। जुन्नैद हंसने लगा। कहा, प्रार्थना तो हम करते हैं। उन्होंने कहा, अगर तुम प्रार्थना करते हो, तो बीमारी दूर क्यों नहीं होती? उसने कहा, प्रार्थना ही हम यह करते हैं कि बीमारी बनी रहे। क्योंकि मुझे अच्छी तरह याद है, जब भी बीमारी मिट जाती है, मैं परमात्मा को भूल जाता हूं। यह उसकी बड़ी कृपा है। बीमारी बनी रहती है, तो मैं सोचता रहता हूं, मैं शरीर नहीं हूं। यह बीमारी शरीर को है, मैं अलग हूं। और जैसे ही बीमारी हटती है, सुख हो जाता है, मैं भूल ही जाता हूं कि यह शरीर मैं नहीं हूं।
दुख भी साधना बन जाता है। दुख जब साधना बन जाता है, तो उसे हमने तपश्चर्या कहा है। तपश्चर्या का मतलब यह है कि दुख से हम अपने को अलग कर रहे हैं। इसलिए साधक सामान्य दुखों से अपने को तोड़ता ही है, अगर जरूरत पड़े तो विशेष दुख भी अपने लिए पैदा कर लेता है, जिनकी वजह से वह अपने को तोड़ सके।
आपने देखा है, सुना है, कोई साधु कांटों पर लेटा हुआ है। कोई साधु दिन-रात आग को जलाकर बैठा रहता है। भयंकर गर्मी है और वह आग को जलाकर बैठा है। पसीने-पसीने होता रहता है। शरीर सूखता है। इसमें वस्तुतः जो जानता है रहस्य को... ।
जरूरी नहीं कि ऐसा करने वाले सभी जानते हों। उसमें कई तरह के लोग हैं। उसमें कई तो सिर्फ दुखवादी हैं, जो खुद को सताने में मजा ले रहे हैं। उसमें कई सिर्फ एक्झिबीशनिस्ट हैं, प्रदर्शनवादी हैं, जो दूसरों को अपना दुख दिखाकर मजा ले रहे हैं। क्योंकि दूसरे उनको पूजते हैं सिर्फ इसीलिए कि वे कांटों पर लेटे हुए हैं।
लेकिन इसमें से कुछ हैं, जो इस तपश्चर्या को कर रहे हैं। उनकी तपश्चर्या क्या है? उनकी तपश्चर्या यह है कि सारे शरीर पर कांटे चुभ रहे हैं, तब वे भीतर अपने को इस स्मृति से भर रहे हैं कि मैं शरीर नहीं हूं। ये कांटे मुझे नहीं छू रहे हैं। ये कांटे शरीर को छू रहे हैं। और वे तब तक कांटों पर लेटे रहेंगे, जब तक कि कांटे बिल्कुल ही विस्मृत न हो जाएं।

शरीर को ही छुएं, उनको जरा भी न चुभें। जब चेतना कांटों से बिल्कुल अलग हो जाएगी, तभी वे इस कांटों की सेज से उठेंगे।
तो साधक अपने आस-पास आयोजित दुख भी कर सकता है, जिससे अपने को तोड़े।
सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से! सत्व भी ज्ञान के अभिमान से बांधता है।
तम और रज तो बांधते ही हैं, सत्व भी बांधता है। बुरा तो बांधता ही है, जिसे हम अच्छा कहते हैं, वह भी बांधता है। शुभ भी बांधता है। यहां जंजीरें सिर्फ लोहे की ही नहीं हैं, सोने की भी हैं। कुछ लोहे की जंजीरों से बंधते हैं, कुछ सोने की जंजीरों से बंध जाते हैं। लेकिन बंधते दोनों हैं। और जब तक बंधन है, तब तक संसार है।
इन तीन गुणों के बंधन के पार जो उठ जाए, वही व्यक्ति उस परम ज्ञान को अनुभव कर पाता है, कृष्ण कह रहे हैं, जिसे मैं तुझे फिर से कहूंगा।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
तीसरा प्रवचन

हे निष्पाप अर्जुन

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासड्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसड्गेन देहिनम्।। 7।।
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।। 8।।
सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।। 9।।
हे अर्जुन, रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह
इस जीवात्मा को कर्मों की और उनके फल की आसक्ति से बांधता है।
और हे अर्जुन, सर्व देहाभिमानियों के मोहने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है।
क्योंकि हे अर्जुन, सत्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में लगाता है तथा तमोगुण तो ज्ञान को आच्छादन करके अर्थात ढंककर प्रमाद में भी लगाता है।

सूत्र के पहले थोड़े प्रश्न।
पहला प्रश्नः परम जीवन और परम आनंद की बात जो आप बार-बार करते हैं, उसका तो कोई अनुभव मुझे हुआ नहीं है, लेकिन इस मार्ग पर चलने में भी आनंद आता है। तो क्या मंजिल तक पहुंचने के पहले यात्रा में भी आनंद हो सकता है?

हमारी आदत है सभी चीजों को बांटकर देखने की, इसलिए हम मार्ग और मंजिल
को भी बांट लेते हैं। बिना बांटे हमारा मन मानता नहीं। मन सभी चीजों को तोड़ता है। और वस्तुतः कुछ भी टूटा हुआ नहीं है। मार्ग का ही अंतिम हिस्सा मंजिल है। और मंजिल का पहला चरण मार्ग है। ऐसी कोई जगह नहीं, जहां मार्ग समाप्त होता हो और मंजिल शुरू होती हो।
मार्ग और मंजिल दो नहीं हैं, वे एक ही हैं। अगर वे दो होते, तो मार्ग से चलकर आप मंजिल तक पहुंचते कैसे? अगर उनके बीच रत्तीभर भी फासला होता, तो आप मार्ग पर ही रह जाते, मंजिल पर कैसे पहुंचते?
मार्ग मंजिल से जुड़ा है। इसलिए मार्ग मंजिल में ले जाता है। साधन और साध्य भिन्न नहीं हैं। और जो उन्हें भिन्न मानता है, बड़ी भूल करता है। क्योंकि जैसे ही हमें यह ख्याल आ गया कि साधन और साध्य भिन्न हैं, मार्ग और मंजिल अलग हैं, वैसे ही हम मंजिल की तो चिंता करते हैं और मार्ग से बचने की कोशिश शुरू हो जाती है। फिर हमारा मन कहता है, अगर बिना मार्ग के भी मंजिल मिलती हो, तो हम मार्ग को छोड़ दें और मंजिल पर पहुंच जाएं। शार्टकट की खोज बेईमानी का हिस्सा है।
फिर हम सोचते हैं, मार्ग जितना कम हो जाए; क्योंकि मार्ग कोई मंजिल तो नहीं है। और किसी चालाकी से, किसी तरकीब से अगर हम बिना मार्ग पर चले मंजिल तक पहुंच जाएं, तो हम जरूर पहुंचना चाहेंगे। हमारी दृष्टि फिर भविष्य में हो जाती है। और वर्तमान से जो बचता है, उसका भविष्य बिल्कुल अंधकारपूर्ण है। क्योंकि सभी भविष्य वर्तमान से ही पैदा होगा; कल आज से पैदा होगा। मार्ग तो आज है; मंजिल कल है। और जो आज से बचेगा, वह कल से वंचित रह जाएगा। क्योंकि कल जो भी होने वाला है, वह आज से ही जन्मेगा; आज के ही गर्भ में छिपा है।
ऐसा समझ लें कि मार्ग है गर्भ और मंजिल है जन्म। बांटें मत। और तब यह बात समझ में आ जाएगी।
परम आनंद तो मंजिल पर मिलेगा। मंजिल का मतलब है, मार्ग जहां पूरा हो जाएगा, जहां मार्ग पूर्णता पर पहुंच जाएगा। जहां जाने के लिए और कोई आगे जगह न रहेगी, परम आनंद तो वहां मिलेगा। लेकिन आनंद की पहली घटना तो पहले

कदम पर ही घट जाएगी। मार्ग पर चलने का ख्याल भी आनंद से भर देगा। चलना तो दूर, सिर्फ यह संकल्प कि मैं मार्ग पर चलूंगा, खोजूंगा, इस संकल्प से भी मन एक नई झलक आनंद की ले लेगा।
एक कदम भी जो रखेगा, एक कदम के योग्य मंजिल तो मिल ही गई। समझें कि अगर मंजिल हजार कदमों पर मिलेगी, तो एक बटा हजार मंजिल तो पहले कदम पर ही मिल गई। उतने आनंद के हम हकदार हो गए।
और ध्यान रहे, यह आनंद ऐसा नहीं है कुछ जो अंत में मिलेगा फल की तरह, यह प्रतिपल बढ़ेगा; यह जीवन है। प्रतिपल मिलेगा और प्रतिपल बढ़ता रहेगा। मार्ग पर जो चलता है, वह मंजिल पर पहुंचने ही लगा। मार्ग पर जो खड़ा हो गया, उसने दूर सही, लेकिन मंजिल पर हाथ रख लिया। झलकें आनी शुरू हो जाएंगी। निर्णय लेते ही चलने का, पहला कदम उठाते ही मन हल्का होने लगेगा, शांत होने लगेगा, प्रसन्न होने लगेगा।
जैसे बगीचा कितनी ही दूर हो, हम उसकी तरफ चलने लगें, ठंडी हवाएं आनी शुरू हो जाएंगी। जैसे-जैसे हम करीब पहुंचेंगे, फूलों की सुगंध भी हवाओं में आने लगेगी। शीतलता बढ़ेगी। हवा ताजी होने लगेगी। मन प्रफुल्लित और नाचने को होने लगेगा। एक वसंत हमारे भीतर भी खिलने लगेगा। ठीक ऐसा ही होगा।
और ध्यान रखें, मंजिल की फिक्र छोड़ दें। मार्ग की ही फिक्र करें। जिसने मार्ग को सम्हाल लिया, उसे मंजिल तो मिल ही जाती है। मंजिल को बिल्कुल भी भूल जाएं, तो कुछ हर्ज नहीं। मार्ग को पूरा सम्हाल लें। क्योंकि जितना मन आपका मंजिल में लगता है, उतना ही मन मार्ग में लगने से छूट जाता है।
सारा मन मार्ग पर लगा दें। जिस क्षण आपका सारा मन मार्ग पर लग जाएगा, उसी क्षण मार्ग मंजिल हो जाता है। यह दूरी कोई स्थान की दूरी नहीं है। यह दूरी इंटेंसिटी की, तीव्रता की दूरी है। अगर पूरा मन मेरा इसी क्षण मार्ग पर लग जाए, तो इसी क्षण मंजिल घट जाएगी। जितना कम मन लगता है, उतनी मंजिल दूर है। जितना मेरा मन अधूरा-अधूरा है, उतना ही ज्यादा फासला है।
और फासला कोई चलकर पूरा होने वाला नहीं है। संकल्प से ही पूरा हो जाता है। चलना तो सिर्फ संकल्प को बढ़ाने का बहाना है। जो जानते हैं, वे बिना इंचभर चले मंजिल पर पहुंच जाते हैं। जो नहीं जानते, वे बहुत चलते हैं, बहुत भटकते हैं, और कहीं भी नहीं पहुंचते हैं।
ध्यान रखें, मंजिल को तो छोड़ दें। मंजिल की तो बात मत उठाएं। क्योंकि मंजिल की बात उठाने का मतलब है, फल की इच्छा हो गई। मंजिल का विचार करने का मतलब है, हम छलांग लगाने लगे आगे; आज को भूलने लगे, कल को याद करने लगे। और श्रम करना है आज।
आज में जीएं, अभी और यहीं। और जो भी घट सकता है, वह सब घट जाएगा। इसी क्षण में घट सकता है। आप पूरी तीव्रता से, अपने पूरे प्राणों से, सारी श्वासों को समर्पित कर के साधना में लग जाएं, चलने में लग जाएं।
और उचित ही है कि आनंद अभी मिल रहा हो, उसे पूरा जीएं। उसका पूरा रस निचोड़ लें। क्योंकि ध्यान रहे, जितना आप आनंद को लेने में समर्थ हो जाएंगे, उतने ही ज्यादा आनंद के द्वार आपके लिए खुलने लगेंगे।
प्रकृति की गहरी व्यवस्था है। आपको वही मिल सकता है, जिसे आप झेल सकते हैं। आप यह मत सोचना कि परम आनंद आपको मिल जाए, तो आप झेल लेंगे। अगर आप आनंद के आदी नहीं हो गए हैं, तो परम आनंद घातक हो जाएगा, मृत्यु हो जाएगी। उतने बड़े विस्फोट को आप न झेल पाएंगे।
जैसे कोई अंधेरे से अचानक सूर्य के सामने आ जाए, तो आंखें बंद हो जाएंगी, चौंधिया जाएंगी। अंधकार ही हो जाएगा। आंखें सूर्य को देख ही न पाएंगी। सूर्य को देखने के लिए आंखों को धीरे-धीरे तैयार करना होगा। मिट्टी का दीया भी सूरज का ही हिस्सा है। उसे देखने से तैयारी करें। नहीं तो आंखें अंधी हो जाती हैं।
तो प्रकृति की व्यवस्था है। उसी को मिलता है, जो झेल सकता है। साधना सिर्फ पाने की ही खोज नहीं है, झेलने की तैयारी भी है। अगर आप पर एकदम आकाश टूट पड़े, तो आप मिट जाएंगे, विक्षिप्त हो जाएंगे। आप फिर लौटकर भूलकर भी उस

रास्ते पर नहीं जाएंगे। आप आनंद चाहते हैं, इससे आप यह मत सोचना कि आप आनंद को झेलने के लिए तैयार भी हैं।
छोटा-सा दुख कठिनाई देता है; छोटा-सा सुख कठिनाई देता है। छोटा-सा सुख
आ जाए, तो रात नींद नहीं आती। सुख उत्तेजित कर देता है, दुख उत्तेजित कर देता है। आनंद तो बहुत विचलित कर देगा। रत्ती-रत्ती उसका अभ्यास करना होगा। बूंद-बूंद पीकर तैयार होना पड़ेगा। और बूंद-बूंद पीकर कोई तैयार हो-- चाहे दुख भी बूंद-बूंद पीकर कोई तैयार हो, तो नरक से भी गुजर सकता है बिना विचलित हुए।
आपने सुना होगा, पुराने दिनों में भारत के सम्राट विषकन्याएं तैयार करते थे। सुंदर युवतियां, बचपन से ही रोज थोड़ा-थोड़ा जहर पिलाकर तैयार की जाती थीं। जहर की मात्रा इतनी कम होती थी रोज कि युवती मर नहीं पाती थी। और धीरे-धीरे जहर उसके रोएं-रोएं, रग-रग में प्रवेश कर जाता था। जवान होते- होते, सोलह-अठारह वर्ष की होते-होते उसका पूरा खून जहर हो जाता था।
तब ऐसी सुंदर युवतियों को शत्रुओं के पास भेज दिया जाता था। एक चुंबन
जो भी उनका लेगा, वह तत्क्षण मर जाएगा। उनका चुंबन विषाक्त हो जाता था। उनसे जो संभोग करेगा, जिंदा नहीं बचेगा; संभोग से जिंदा नहीं लौटेगा। उनका पूरा शरीर जहर था। इस तरह की कन्याओं को विषकन्याएं कहा गया।
लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है कि जिनके चुंबन से दूसरा मर जाएगा, वे जिंदा हैं! धीरे-धीरे एक-एक बूंद जहर की देकर उन्हें तैयार किया गया है। उन्हें सांप काट ले, तो सांप मर जाएगा। उन्हें बेहोश करने का कोई उपाय नहीं है। कोई शराब उन्हें बेहोश न कर सकेगी।
बूंद-बूंद दुख की आप झेलते रहें, तो आप नरक से भी बिना विचलित हुए गुजर जाएंगे। तपश्चर्या का यही अर्थ है, दुख को झेलने की तैयारी। लेकिन जो दुख के संबंध में सच है, वही सुख के संबंध में भी सच है। वह भी बूंद-बूंद ही झेला जा सकता है। और आनंद तो बड़ी घटना है। वह महासुख है।
अगर मंजिल आपको मिल भी जाए, तो पहली तो बात आप उसे पहचान न सकेंगे। आपकी आंखें बहुत छोटी हैं और मंजिल बहुत बड़ी होगी। उसे आपकी आंखें नहीं देख पाएंगी। मंजिल सामने भी हो--सामने है ही--तो भी आप पहचान न पाएंगे। क्योंकि उसको पहचानने के लिए आंखों का एक प्रशिक्षण चाहिए। और दुर्भाग्य से अगर मंजिल आपको मिल भी जाए, आप पहचान भी लें, तो वह वरदान सिद्ध नहीं होगी, अभिशाप सिद्ध होगी। क्योंकि उतना आनंद आप झेल न पाएंगे। वह आनंद महाघातक होगा।
तो साधना बहुत-सी तैयारियों का नाम है। मंजिल तक पहुंचना है। मंजिल
को देख सकें, इसके लिए आंखों को प्रशिक्षित करना है। मंजिल को अनुभव कर सकें, इसलिए आनंद की एक-एक लहर को धीरे-धीरे आत्मसात करना है। मंजिल को झेल सकें, वह महाआनंद जब बरसे तब आप विक्षिप्त न हो जाएं, होश में रहें, मूर्च्छित न हो जाएं, गिर न पड़ें, मिट न जाएं, उसके लिए भी हृदय के पात्र को तैयार करना जरूरी है।
मंजिल को छोड़ ही दें। मंजिल की बात ही मत उठाएं। मार्ग की फिक्र करें।
और एक-एक इंच मार्ग को मंजिल ही समझकर चलें। बहुत आनंद मिलेगा। बहुत आनंद बढ़ेगा। और एक दिन अचानक किसी भी क्षण वह घटना घट सकती है। जिस क्षण भी ट्यूनिंग पूरी हो जाएगी, जिस क्षण भी हृदय की वीणा बजने को बिल्कुल तैयार होगी, उसी क्षण मंजिल सामने होगी।
और तब आप हंसेंगे, क्योंकि तब आप यह भी पाएंगे कि यह मंजिल सदा से सामने थी। मैं ही तैयार नहीं था, मंजिल सदा तैयार थी। मैं द्वार पर ही खड़ा था, शायद पीठ किए था। शायद मुड़ने भर की जरूरत थी। थोड़ा-सा ध्यान मोड़ने की जरूरत थी। और जिसे मैं तलाश रहा था, वह बिल्कुल पास था।
उपनिषद कहते हैं, वह परम सत्य दूर से दूर और पास से भी पास है। दूर से दूर, आपके कारण; पास से पास, उसके कारण। आप जैसे हैं, उस हिसाब से बहुत दूर।
वह जैसा है, उस हिसाब से बिल्कुल पास।
परमात्मा की तरफ हमें चलना पड़ता है, इसलिए नहीं कि परमात्मा दूर है।
परमात्मा की तरफ हमें चलना पड़ता है, क्योंकि हम अयोग्य हैं। हमारी अयोग्यता ही उसकी दूरी बन गई है।

उचित है, मार्ग पर आनंद मिलता हो; आह्लादित हों, अनुगृहीत अनुभव करें। गहरे अहोभाव से भरें और उस आनंद को भोगें। जैसे-जैसे भोगेंगे, वैसे-वैसे आपकी भोगने की क्षमता बढ़ती जाएगी। परमात्मा परम भोग है। उसके लिए तैयार होना होगा। उसके लिए विराट आकाश जैसा हृदय चाहिए। विराट को हम बुलाते हैं क्षुद्र में, यह असंभव है। जिसे हम बुलाते हैं, उसके योग्य हमारे पास स्थान भी चाहिए।
परमात्मा को बहुत लोग पुकारते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि कहां है वह घर, जहां उसे ठहराएंगे? कहां है वह आसन, जहां उसे बिठाएंगे? आतिथ्य का सामान कहां है? किन फूलों से करेंगे उसकी पूजा? वह मस्तक कहां, जो उसके चरणों में रखेंगे? और अचानक वह सामने आ जाए, तो बड़ी बिगूचन हो जाएगी, बड़ी अड़चन हो जाएगी। हम पागल होकर दौड़ेंगे, कुछ भी न मिलेगा कि क्या करें, क्या न करें। शायद हम ऐसी अड़चन में न पड़ें, इसलिए परमात्मा तब तक प्रतीक्षा करता है।

दूसरा प्रश्नः कृष्ण अर्जुन को पिछले तेरह अध्यायों में समझा चुके हैं। फिर भी अर्जुन के मन में प्रश्न, शंकाएं और संशय उठते ही चले जाते हैं। आप भी हमें अनेक वर्षों से लगातार समझा रहे हैं, लेकिन फिर भी हमारे मन में प्रश्न, शंकाएं और अविश्वास उठते ही चले जाते हैं। इसके क्या कारण हैं और इसका क्या समाधान है?

कृष्ण के समझाने से अर्जुन नहीं समझेगा। अर्जुन के समझने से ही समझेगा। अगर कृष्ण के हाथ में यह बात होती कि अर्जुन उनके समझाने से समझता होता, तो पृथ्वी पर कोई अज्ञानी अब तक न बचता। बहुत कृष्ण हो चुके; अर्जुन बाकी हैं।
अर्जुन के समझने से घटना घटेगी। कृष्ण जो मेहनत कर रहे हैं, वह समझाने
के लिए नहीं कर रहे हैं। अगर ठीक से समझें, तो वे ऐसी परिस्थिति पैदा कर रहे हैं, जहां अर्जुन समझने के लिए तैयार हो जाए, जहां अर्जुन समझ सके। वे अर्जुन को धक्का दे रहे हैं। किसी तरफ इशारा कर रहे हैं। आंख तो अर्जुन को ही उठानी पड़ेगी। और अगर अर्जुन आंख उठाने को राजी न हो, तो कृष्ण के जीतने का कोई भी उपाय नहीं है।
लेकिन कृष्ण आयोजन कर रहे हैं पूरा। इन तेरह अध्यायों में अलग-अलग मोर्चों से कृष्ण अर्जुन पर हमला कर रहे हैं। कई तरफ से चोट कर रहे हैं। शायद किसी चोट में अर्जुन सजग हो जाए। लेकिन यह बात शायद है। इसमें अर्जुन का सहयोग जरूरी है। और अगर अर्जुन सहयोग न दे, तो कृष्ण की कोई सामर्थ्य नहीं है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि हम में से बहुतों को यह ख्याल रहता है, गुरु-कृपा से हो जाएगा। अगर गुरु-कृपा से होता, तो इतनी बड़ी गीता बिल्कुल फिजूल है। कृष्ण नासमझ नहीं हैं। अगर यह घटना कृपा से घटनी होती, तो कृष्ण जैसा कृपा करने वाला और अर्जुन जैसा कृपा को पाने वाले पात्र को दुबारा खोजने की कहां सुविधा है! दोनों मौजूद थे।
कृष्ण कृपा कर सकते थे और अर्जुन कृपा का आकांक्षी था और पात्र था। और क्या पात्रता चाहिए? इतनी आत्मीयता थी, इतनी निकटता थी कि जो बात कृपा से हो सकती, उसके लिए कृष्ण क्यों इतनी लंबी गीता में जाते! इतने लंबे आयोजन की कोई भी जरूरत नहीं थी।
नहीं; वह घटना कृपा से नहीं होने वाली। कृपा भी तभी घट सकती है, जब अर्जुन खुला हो, राजी हो, तैयार हो, सहयोग करे। यह कृपा ही है कि कृष्ण उसे समझा रहे हैं, यह जानते हुए भी कि समझाने से ही कोई समझ नहीं जाता। यह कृपा का हिस्सा है। लेकिन इस चेष्टा से संभावना है कि अर्जुन बच न पाए।
अर्जुन सारी कोशिश करेगा बचने की। अर्जुन सवाल उठाएगा, समस्याएं खड़ी करेगा। संशय-संदेह, ये सब चेष्टाएं हैं आत्मरक्षा की। अर्जुन कोशिश कर रहा है अपने को बचाने की। अर्जुन कोशिश कर रहा है कि तुम दिखा रहे हो, लेकिन हम न देखेंगे। इसको थोड़ा समझें।
अर्जुन की ये सारी शंकाएं, ये सारे संदेह इस बात की कोशिश है कि तुम दिखा रहे हो, वह ठीक, लेकिन हम न देखेंगे। हम और सवाल उठाते हैं। हम और धुआं

पैदा करते हैं। तुम जिस तरफ इशारा करते हो, हम उसको धुंधला कर देते हैं। यह आत्मरक्षा है गहरी।
जैसे हम अपने शरीर को बचाना चाहते हैं, वैसे ही अपने मन को भी बचाना चाहते हैं। जैसे कोई आपके शरीर पर हमला करे, तो आप आत्मरक्षा के लिए कुछ आयोजन करेंगे। गुरु का हमला और भी गहरा है। वह आपके मन को मिटाने के लिए तत्पर हो गया है।
शरीर को जो मिटाते हैं, उनका मिटाना बहुत गहरा नहीं है। क्योंकि वासना आपकी मौजूद है। आप फिर शरीर ग्रहण कर लेंगे। वे आपसे वस्त्र छीन रहे हैं। लेकिन जो मन को मिटाने की कोशिश कर रहा है, वह आपसे सब कुछ छीन रहा है। फिर आप चाहें तो भी शरीर ग्रहण न कर सकेंगे। अगर मन समाप्त हो गया, तो जन्म की सारी व्यवस्था खो गई। मृत्यु परम हो गई।
इसलिए ध्यान महासमाधि है। महासमाधि शब्द का उपयोग हम मृत्यु के लिए
भी करते हैं। वह ठीक है। क्योंकि समाधि एक भीतरी मृत्यु है। आप वस्तुतः मर जाएंगे।
तो जैसे कोई शरीर पर हमला करे तलवार से, और आप अपनी ढाल से रक्षा करें, ऐसा जब भी कोई गुरु आपके मन को तोड़ने के लिए हमला करेगा, तब शंकाओं से, संदेहों से, सवालों से आप अपनी रक्षा करेंगे। वे ढाल हैं। वह आप बचा रहे हैं। आप कह रहे हैं, करो कोशिश। शायद यह सचेतन नहीं है; यह अचेतन है।
यह वैसा ही अचेतन है, जैसा आपकी आंख के सामने कोई जोर से हाथ करे, तो आपको सोचना भी नहीं पड़ता आंख झपकने के लिए, आंख झपक जाती है। आंख झपकती है अचेतन से। आपको सोचना नहीं पड़ता। मैं आपकी आंख के सामने हाथ करूं, तो ऐसा नहीं कि आप पहले सोचते हैं कि हाथ आ रहा है, अब मैं अपने को बचाऊं, तो आंख बंद कर लूं। इतना सोचने में तो आंख फूट जाएगी। इतना समय नहीं है। और विचार में समय लगता है।
इसलिए मनुष्य के मन की दोहरी व्यवस्था है। जिन चीजों में समय की सुविधा है, उनमें हम विचार करते हैं। और जिनमें समय की सुविधा नहीं है, उनमें हम अचेतन से प्रतिकार करते हैं। आंख पर कोई हमला करे, तो तत्क्षण आंख बंद हो जाती है। इसकी अनकांशस, अचेतन व्यवस्था है। नींद में भी कीड़ा आपके पैर पर चले, तो पैर आप झटक देते हैं। उसके लिए होश की जरूरत नहीं है। ठीक ऐसे ही मन भी अपनी आंतरिक रक्षा करता है। और गुरु के पास मन जितना परेशान हो जाता है, उतना कहीं और नहीं होता। क्योंकि वहां मौत निकट है। अगर ज्यादा गुरु के आस-पास रहे, तो मरना ही पड़ेगा। उससे बचने के लिए आप अपने चारों तरफ सुरक्षा की दीवार खड़ी करते हैं। वह कवच है।
अर्जुन यह कह रहा है कि समझाओ। लेकिन मुझे समझ में ही नहीं आ रहा है।
जब समझ में ही नहीं आ रहा है, तो बदलने की कोई जरूरत नहीं है। मैं जैसा हूं, वैसा ही रहूंगा। जब तक समझ में न आ जाए, जब तक मेरी सब शंकाएं न मिट जाएं, तब तक मैं जैसा हूं, वैसा ही रहूंगा। और इसमें दोष मेरा नहीं है। तुम नहीं समझा पा रहे हो, तो दोष तुम्हारा है।
इस भीतरी मन की कुशलता को अगर समझ लेंगे, तो दोनों बातें ख्याल में आ जाएंगी कि क्यों अर्जुन सवाल उठाए चला जा रहा है और क्यों कृष्ण जवाब दिए जा रहे हैं।
यह एक खेल है। जिस खेल में अर्जुन अपनी व्यवस्था कर रहा है और कृष्ण अपनी व्यवस्था कर रहे हैं। एक जगह अर्जुन ढाल रख लेता है, कृष्ण दूसरी तरफ से हमला करते हैं, जहां उसने अभी ढाल नहीं रखी। वे उसे थका ही डालेंगे। वह ढाल रखते-रखते थक जाएगा। न केवल थक जाएगा, बल्कि ढाल रखते-रखते उसे समझ में भी आ जाएगा कि मैं क्या कर रहा हूं? मैं किससे बच रहा हूं? जो मुझे महाजीवन दे सकता है, उससे मैं बचने की कोशिश कर रहा हूं! मैं किसके संबंध में संदेह उठा रहा हूं? किसलिए उठा रहा हूं?
यह उसे धीरे-धीरे ख्याल में आएगा। और यह वर्षों में भी ख्याल आ जाए, तो
भी जल्दी है। जन्मों में भी ख्याल आ जाए, तो भी जल्दी है।
इसलिए कृष्ण कितना समझाते हैं, यह बड़ा सवाल नहीं है। कितना ही समझाएं, थोड़ा ही है। और अर्जुन कितनी ही देर लगाए, तो भी जल्दी है। क्योंकि मन सब तरह के आयोजन कर लेगा, थकेगा। जब बिल्कुल क्लांत हो जाएगा, जब सब संदेह उठा चुकेगा और संदेह उठाना भी व्यर्थ मालूम पड़ने लगेगा, और जब संदेह भी बासे

और उधार मालूम पड़ने लगेंगे, कि यह मैं उठा चुका, उठा चुका, बहुत बार कह चुका, इनसे कुछ हल नहीं होता, तभी शायद वह किरण ध्यान की उस तरफ जाएगी जहां कृष्ण ले जाना चाह रहे हैं।
यह सदा ऐसा ही हुआ है। इससे निराश होने की कोई भी जरूरत नहीं है। इस श्रम में लगे ही रहना है।
और ध्यान रहे, उचित यही है कि आप अपनी सारी शंकाएं और सारे संदेह सामने ले आएं, क्योंकि सामने आ जाएंगे, तो मिटने की सुविधा है। भीतर छिपे रहेंगे, तो उनके मिटने का कोई उपाय नहीं है।
अर्जुन ईमानदार है। उतना ही ईमानदार होना जरूरी है। वह सवाल उठाए ही चला जा रहा है। बेशर्मी से उठाए चला जा रहा है। उसमें जरा भी संकोच नहीं कर रहा है। किसी को भी संकोच आने लगता कि अब ठहर जाऊं। लेकिन वह संकोच खतरनाक होगा। भीतर उठते चले जाएंगे, अगर बाहर ठहर गए। तो फिर कृष्ण नहीं जीत सकते हैं।
उठाए ही चले जाएं। वह घड़ी जल्दी ही आ जाएगी, जब संदेह उठने बंद हो जाएंगे। हर चीज की सीमा है।
इस जगत में परमात्मा को छोड़कर और कुछ भी असीम नहीं है। आपका मन तो निश्चित ही असीम नहीं है। आप उठाए चले जाएं, किनारा जल्दी ही आ जाएगा। किनारा आता नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि आप बेईमान हैं। ठीक से उठाते ही नहीं। जिस दिन किनारा आ जाएगा, उसी दिन छलांग लग सकती है।

तीसरा प्रश्नः अर्जुन को अभी गीता कही जा रही है। वह अभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। फिर भी कृष्ण उसे संबोधित करते हैं, हे निष्पाप! ऐसा क्यों?

क्योंकि कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित नहीं करते, जो प्रश्न उठा रहा है। कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित करते हैं, जो प्रश्नों के पीछे खड़ा है। कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित नहीं करते हैं, जो सामने दिख रहा है हड्डी, मांस, मज्जा का बना हुआ। कृष्ण उस अर्जुन को संबोधित करते हैं, जो इसके पीछे छिपा हुआ चिन्मय, जो परम चैतन्य है। वह निष्पाप है।
और कृष्ण क्यों कहते हैं बार-बार, हे निष्पाप! ताकि अर्जुन का ध्यान
उस तरफ जा सके कि वह जहां से सवाल उठा रहा है, कृष्ण वहां जवाब नहीं दे रहे हैं। कृष्ण कहीं और गहरे में जवाब ले जा रहे हैं।
यह तो अर्जुन को भी साफ होगा कि निष्पाप वह नहीं है। इसे बताने की कोई जरूरत नहीं; यह तो वह भी जानता है। लेकिन कृष्ण उससे बार-बार कह रहे हैं, हे निष्पाप! वे चोट कर रहे हैं बार-बार इस बात पर कि तेरे भीतर जो छिपा है, वहां कोई पाप कभी प्रवेश नहीं किया और न प्रवेश कर सकता है। सब पाप ऊपर-ऊपर हैं, सब पुण्य भी ऊपर-ऊपर हैं।
आप निष्पाप का मतलब यह मत समझाना कि हे पुण्यधर्मा! निष्पाप का अर्थ है, जहां कोई विकार नहीं। न पुण्य का कोई विकार है, न पाप का कोई विकार है। हे निर्विकार। जहां कुछ भी नहीं पहुंचता है। जहां तेरा शुद्ध होना है। जहां बाहर से आए हुए कोई भी संस्कार गति नहीं करते। सब परिधि पर इकट्ठे हो जाते हैं, भीतर तो कुछ जाता नहीं। उस भीतर का जो केंद्र है, वह सदा निष्पाप है। वह सदा शुद्ध है। वह सदा निर्दोष, कुंवारा है।
उस कुंवारेपन में कभी आंच नहीं लगती। आप कितने ही पाप करें और कितने
ही पुण्य करें, उस कुंवारेपन पर कभी भी कोई बासापन नहीं आता। वह कुंवारापन हमारा स्वभाव है।
अर्जुन को जगाने की चेष्टा है उस शब्द में भी। सदगुरु एक शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं। वे जो भी बोलते हैं, कोई गहरा कारण है।
आप भी निष्पाप हैं। अस्तित्व सदा निष्पाप है। और अगर पाप और पुण्य आपके ऊपर हैं, तो वैसे ही जैसे कोई यात्री राह से गुजरे और धूल इकट्ठी हो जाए, ऊपर-ऊपर। एक डुबकी लगा ले नदी में, धूल बह जाए।
हमने तीर्थ बनाए थे; वे प्रतीक थे। फिर लेकिन प्रतीक सब गलत हो जाते हैं गलत आदमियों के हाथों में। हमारे प्रतीक थे तीर्थ कि हम कहते थे, वहां जाकर स्नान कर लो, सब पाप से छुटकारा हो जाता है। कोई तीर्थ में जाकर स्नान

करने से पाप का छुटकारा नहीं होता। इतना आसान होता, तो जितने तीर्थ हमारे मुल्क में हैं और जितने पापी स्नान कर रहे हैं, इस मुल्क में पाप होता ही नहीं।
तीर्थ में स्नान करने से पाप से कोई छुटकारा नहीं होता। लेकिन बात बड़े मूल्य की है। बात असल में यह है कि पाप और पुण्य धूल से ज्यादा नहीं हैं। और जैसे धूल स्नान करने से बह जाती है और धूल कोई आपकी आत्मा में नहीं चली जाती है, बस आपकी परिधि पर होती है, ऐसे पुण्य और पाप हैं। जो जान ले तरकीब स्नान करने की, वह इनसे भी ऐसे ही मुक्त हो जाएगा, जैसे धूल से मुक्त हो जाता है।
तो तीर्थ प्रतीक थे।
रामकृष्ण से कोई पूछा है कि मैं गंगा जा रहा हूं। कहते हैं कि गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाएंगे। रामकृष्ण थोड़ी अड़चन में पड़े। रामकृष्ण को लगा कि कहूं कि ऐसा ठीक नहीं है, तो गलत होगा। यह ठीक है कि कोई स्नान करने की कला जान ले और गंगा को खोज ले, तो पाप धुल जाते हैं। इस बात में कहीं भूल-चूक नहीं है। लेकिन गंगा यह नहीं है, जो बाहर बहती दिखाई पड़ती है। और स्नान की कला शरीर पर पानी डालने की नहीं है, मन पर ध्यान डालने की है। तो बात तो ठीक ही है। प्रतीक काव्यात्मक है, लेकिन बात ठीक है। और कठिन बातें कविता में ही कही जा सकती हैं। उनके लिए गणित के फार्मूले नहीं हो सकते। क्योंकि बड़े सूक्ष्म और नाजुक इशारे हैं। पत्थर जैसे नहीं हैं, फूल जैसे हैं। उन्हें बहुत सम्हालकर काव्य में संजोकर ही बचाया जा सकता है।
तो बात तो ठीक है। लेकिन फिर भी गलत हो गई। क्योंकि लोग गंगा में स्नान करके घर लौट आते हैं, इस ख्याल से कि बात खतम हो गई, फिर से पाप शुरू करो। और दिक्कत क्या है? कितने ही पाप करो, वापस गंगा में जाकर स्नान से धुल सकते हैं।
तो रामकृष्ण ने कहा, तू जा जरूर, लेकिन तुझे पता है, गंगा के किनारे बड़े वृक्ष लगे हैं, वे किसलिए लगे हैं? उस आदमी ने कहा, यह तो कहीं शास्त्रों में इसका कोई उल्लेख नहीं है। तो उन्होंने कहा कि वही असली महत्वपूर्ण बात है। जब तू गंगा में डूबेगा, तो गंगा में पाप बाहर निकल जाते हैं। क्योंकि गंगा पवित्र है। पर वे जो बड़े वृक्ष हैं, पाप उन पर बैठ जाते हैं। तो तू डूबा रहेगा कि लौटेगा? लौटेगा कि वे पाप फिर झाड़ों से उतरकर तेरे सिर पर सवार हो जाएंगे। तो गंगा तो धो देगी, लेकिन तू इस भ्रम में मत पड़ना कि खाली होकर लौट आया। वे झाड़ इसीलिए खड़े हैं!
सारे प्रतीक व्यर्थ हो जाते हैं। व्यर्थ इसलिए हो जाते हैं कि हम प्रतीकों की गरदन दबा लेते हैं। उनका निचोड़ देते हैं प्राण ही बाहर।
पाप बाहर हैं, धूल से ज्यादा नहीं। झड़ाए जा सकते हैं। कोई आदमी ठीक से निर्णय भी कर ले झड़ाने का, तो झड़ जाते हैं। क्योंकि आपके ही निर्णय से वे पकड़े गए हैं। सच तो यह है कि उन्होंने आपको पकड़ा है, यह कहना ही गलत है। आप उनको पकड़े हैं और सम्हाले हैं। जिस दिन आप छोड़ देंगे, वे गिर जाएंगे। और वह जो पकड़े हुए है, वह सदा निष्पाप है।
मनुष्य की अंतरात्मा पापी नहीं हो सकती। और अगर अंतरात्मा पापी हो जाए, तो फिर उसे शुद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं है। फिर उसे कैसे शुद्ध करिएगा? फिर कौन उसे शुद्ध करेगा? फिर आत्मा से भी शुद्ध तत्व कोई हो, तो ही शुद्ध कर पाएगा।
एक स्कूल में एक शिक्षक अपने बच्चों को विज्ञान पढ़ा रहा है। और उसने कहा कि एक नई खोज हो रही है। एक ऐसा रासायनिक द्रव्य खोजा जा रहा है, जिसमें हर चीज गल जाती है। एक छोटे-से बच्चे ने कहा, उसको रखिएगा कहां? शिक्षक भी सिर खुजलाने लगा। उसने कहा, उसकी भी खोज की जा रही है। उस छोटे बच्चे ने कहा, पहले उसकी खोज कर लेना चाहिए, पीछे इस रासायनिक द्रव्य की। अगर खोज लिया इसे पहले, तो रखिएगा कहां?
आत्मा अगर अशुद्ध हो जाए, तो फिर उसे शुद्ध करने का कोई भी उपाय नहीं है। उसे फिर किस चीज से शुद्ध करिएगा? और जिससे भी शुद्ध करिएगा, उसे तो कम से कम शुद्ध रहना ही चाहिए; उसके अशुद्ध होने का उपाय नहीं होना चाहिए।

एक तत्व इस जगत में चाहिए, जिसके अशुद्ध होने का उपाय न हो, क्योंकि उसके ही माध्यम से सब शुद्ध हो सकता है। अगर सभी चीजें अशुद्ध हो जाती हों, तो फिर शुद्धि का कोई उपाय नहीं, फिर मोक्ष की कोई संभावना नहीं है।
हम उसी तत्व को आत्मा कहते हैं, जिसके अशुद्ध होने का कोई उपाय नहीं है, जो सदा शुद्ध है। इसलिए आत्मा को शुद्ध नहीं करना होता, सिर्फ आत्मा को पहचानना काफी है। पहचानते ही पता चलता है कि मैं सदा से शुद्ध-बुद्ध हूं। वहां क्षणभर को भी कोई कालिमा प्रविष्ट नहीं हुई है।
इस महत तत्व की ओर इशारा करने के लिए अर्जुन को बार-बार कृष्ण कहे जा रहे हैं, हे निष्पाप!

चौथा प्रश्नः जब यह सारा जगत पुरुष और प्रकृति का खेल है, तो हम कहां भागीदार हैं, जो इतना दुख झेल रहे हैं?

इसीलिए दुख झेल रहे हैं कि आपको भ्रांति है कि आप भागीदार हैं। आप भागीदार न रह जाएं, दुख समाप्त हो जाएगा। दुख इसलिए नहीं है कि दुख है। दुख इसलिए है कि आप भागीदार हैं। आप सोचते हैं, मैं कुछ कर रहा हूं। मैं हिस्सा बंटा रहा हूं। मैं उत्तरदायी हूं, यह अस्मिता ही आपके दुख का कारण है। जहां भी आप भागीदार हो जाएंगे, वहीं दुख पैदा हो जाता है।
लेकिन ध्यान रहे, वह दुख हम इसीलिए पैदा करते हैं कि वही तरकीब सुख पैदा करने की भी है। जहां भी आप भागीदार होते हैं, वहां सुख पैदा हो जाता है। चूंकि हम सुख चाहते हैं, इसलिए हम भागीदार होते हैं।
समझें कि एक फिल्म आप देख रहे हैं। अगर आप बिल्कुल तटस्थ रहें, तो फिल्म से आपको कोई सुख न मिल सकेगा। सिर्फ थककर आप वापस लौटेंगे। फिजूल मेहनत लगेगी। आंखें थकेंगी। सुख मिल सकता है, अगर आप भूल जाएं अपने को और भागीदार हो जाएं। भागीदार होने का मतलब है, अपने को भूल जाना, विस्मृत कर देना। द्रष्टा न रह जाए। और आप भी जैसे एक पात्र हो गए हैं फिल्म की कथा में।
और हर व्यक्ति फिल्म की कथा में पात्र हो जाता है। किसी पात्र के साथ अपना तादात्म्य कर लेता है। फिर उस पर जो बीतता है, इस पर बीतने लगता है। फिर जब वह कष्ट में होता है, तो यह अपनी रीढ़ सीधी उठाकर कुर्सी पर बैठ जाता है। जब वह आराम में होता है, तो यह भी अपनी कुर्सी पर विश्राम करता है।
इससे सुख उपलब्ध होता है। लेकिन इससे दुख भी उपलब्ध होता है।
लोग दुखांत फिल्मों में आंसू पोंछ-पोंछकर थक जाते हैं। वह तो भला है
कि अंधेरा होता है, इसलिए कोई किसी दूसरे को देख नहीं सकता। सब अपने-अपने रूमालों को भीगा करते हैं।
टाल्सटाय ने लिखा है कि मेरी मां नाटक देखने की शौकीन थी। बड़े शाही परिवार के लोग थे, .जार परिवार से संबंध था। तो मास्को में ऐसा कोई नाटक नहीं था, जिसमें उसकी मां न जाती हो।
और टाल्सटाय ने लिखा है कि वह इतना रोती थी, वह इतनी दयालु महिला थी कि जरा-सा दुख नाटक में कुछ हो रहा हो, तो बस, वह जार-जार हो जाती थी। लेकिन अक्सर यह होता था कि बर्फ पड़ती रहती मास्को में और बाहर जो कोचवान उसकी गाड़ी पर बैठा रहता, वह बर्फ के कारण सिकुड़कर मर जाता। जब हम नाटक देखकर बाहर निकलते, तो कोचवान मरा हुआ होता। उसे उठाकर सड़क के किनारे फेंककर दूसरा कोचवान गाड़ी लेकर घर की तरफ जाता। और मां अभी भी आंसू पोंछती रहती नाटक के कारण! इस कोचवान से कोई संबंध नहीं था। लेकिन नाटक में संबंध जुड़ता था।
टाल्सटाय ने लिखा है कि मेरी समझ के बाहर था कि यह क्या हो रहा है! एक जिंदा आदमी मर गया, उसकी फिर बात ही नहीं उठती थी। वह सड़क के किनारे फेंक दिया गया। उसका कोई मूल्य नहीं था, उसकी कोई कीमत नहीं थी। वह जैसे आदमी था ही नहीं; एक यंत्र का हिस्सा था। एक दूसरा यंत्र बिठा दिया गया। और मां घर तक रोती रहती। वह नाटक उसका पीछा करता।
आप भी जितने दुखी हो जाते हैं फिल्म में, उतना जिंदगी में वही घटना देखकर दुखी नहीं होते। क्योंकि जिंदगी में आप बहुत सोच-समझकर संयुक्त होते हैं। नाटक में संयुक्त होने में कोई खतरा नहीं है, कुछ हर्जा नहीं है,

कुछ खर्च भी नहीं है। थोड़ी देर में नाटक के बाहर हो जाएंगे; अपने घर आ जाएंगे।
लेकिन जहां भी तादात्म्य हो जाता है, वहीं सुख-दुख मिलना शुरू हो जाता है। और जहां भी तादात्म्य टूट जाता है, वहां सुख-दुख दोनों प्रक्रियाएं बंद हो जाती हैं।
साक्षीभाव का इतना ही अर्थ है कि मैं कहीं भी तादात्म्य न बनाऊं। जो
भी हो रहा हो, वह नाटक से ज्यादा न हो।
विराट नाटक चल रहा है, उसे मिटाने की कोई जरूरत भी नहीं है। उसे मिटाना अर्थपूर्ण भी नहीं है। पर उसमें भागीदार होने में भूल है। उसमें आप एक अभिनेता से ज्यादा न रहें। अभिनेता भी शायद भागीदार हो जाए। क्योंकि अभिनय जब जोश में आता है, तो अभिनेता भी भूल जाता है कि वह अभिनय कर रहा है। वह कर्ता हो जाता है। उसका कर्तापन कभी-कभी टूटता है। नहीं तो वह कर्ता ही हो जाता है।
असल में अभिनेता को अगर ठीक से अभिनय करना हो, तो उसे भूल जाना चाहिए
कि वह अभिनय कर रहा है, उसे कर्ता हो जाना चाहिए। तो उसके आंसू ज्यादा वास्तविक होंगे, उसका प्रेम ज्यादा वास्तविक दिखाई पड़ेगा। उसके कृत्य, उसकी भाव-भंगिमाओं में सचाई आ जाएगी।
इसलिए कुशल अभिनेता भूलना जानता है कि वह अभिनेता है और वह कर्ता हो जाता है। लेकिन तब चीजें उसे छूने लगती हैं। छूने के कारण ही वास्तविक हो जाती हैं।
संसार में अभिनेता और द्रष्टा दोनों अगर आपके जीवन में प्रविष्ट हो जाएं... । क्योंकि यहां सिर्फ आप द्रष्टा नहीं हो सकते, क्योंकि आपको बहुत कुछ करना भी पड़ रहा है। आप हाल में नहीं बैठे हैं, मंच पर खड़े हुए हैं। यहां हाल है ही नहीं, मंच ही मंच है। यहां जहां भी आप खड़े हैं, आप मंच पर हैं। जापान में एक नाटक होता है, नो-ड्रामा। उसमें कोई मंच नहीं होता। उसमें अभिनेता ठीक हाल में ही काम करते हैं। और नया आदमी खड़ा हो तो उसको समझना मुश्किल हो जाता है, कौन दर्शक है और कौन अभिनेता है!
यह नो-ड्रामा झेन फकीरों की ईजाद है। और इसमें पूरी पांडुलिपि तैयार नहीं होती; सिर्फ इशारे होते हैं। और इशारों पर भी कोई जिद नहीं होती कि घटना वैसी ही बहनी चाहिए। स्पांटेनियस, सहज होने की सुविधा होती है। और कोई बैठा हुआ दर्शक अगर जोश में आ जाए और भाग लेने लगे, तो उसको भी मनाही नहीं है। और कोई अभिनेता पात्र करते-करते अपना सारा ढंग बदल दे, तो पीछे से प्रांप्ट करने का कोई उपाय नहीं है, कोई सुविधा भी नहीं है। नाटक बहता है, जैसे जिंदगी बहती है, अनजान में। क्या घटना होगी, पक्का नहीं है। निष्कर्ष पहले से तय नहीं है। बहुत रोमांचक है। और ठीक जिंदगी जैसा है।
ठीक यह पूरी जिंदगी एक बड़ा नो-ड्रामा है। यहां कहीं कोई दर्शक नहीं है, यहां सभी अभिनेता हैं। और लिखी हुई पांडुलिपि हाथ में नहीं है। परदे के पीछे से कोई कह नहीं रहा है कि यह बोलो। कुछ भी निश्चित नहीं है। प्रत्येक चीज सांयोगिक होती जा रही है। कहानी कहां खतम होगी, कहना कठिन है। सच पूछो तो कहीं कहानी खतम नहीं होती। पात्र आते हैं, चले जाते हैं, कहानी चलती रहती है।
आप कहानी की शुरुआत में थोड़े ही आए; मध्य में आए हैं। और अंत में थोड़े
ही विदा होंगे; बीच में विदा हो जाएंगे। कहानी आपके पहले से चलती थी; कहानी आपके बाद भी चलती रहेगी।
इस पूरे लंबे कथानक में अगर आप अभिनेता भी हों और द्रष्टा भी हों, तो
आप भागीदार नहीं रहे। फिर कोई दुख नहीं है। फिर कोई सुख भी नहीं है।
जब तक सुख है, तब तक दुख भी होगा। वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक गिरेगा, दूसरा भी गिर जाएगा। और जब दोनों गिर जाते हैं, तब जो घटित होता है, उसको हमने आनंद कहा है। जब भागीदार मिट जाता है और सिर्फ साक्षी रह जाता है, तो जो अनुभूति जन्मती है, उसका नाम आनंद है।

अब हम सूत्र को लें।
हे अर्जुन, रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह
इस जीवात्मा को कर्मों की और उनके फल की आसक्ति से बांधता है।

इनमें तीनों गुणों की, जो कि बांधने वाले तत्व हैं... ।
संस्कृत में गुण शब्द का एक अर्थ रस्सी भी है, जिससे बांधा जाए। इनको गुण इसलिए भी कहा जाता है कि ये बांधते हैं। इसलिए हम परमात्मा को निर्गुण कहते हैं।
निर्गुण का यह मतलब नहीं कि उसमें कोई गुण नहीं हैं। निर्गुण का यह मतलब है कि उस पर कोई बंधन नहीं हैं। वह कहीं बंधा हुआ नहीं है। ये तीन गुण उसमें नहीं हैं, जो बांध सकते हैं। वह इन तीन के बंधन के बाहर है। उसकी निर्गुणता का अर्थ है, वह परम स्वतंत्र है। और आपके भीतर जो छिपा है, वह भी परम स्वतंत्र है। लेकिन उसके चारों तरफ बंधन है। बंधन से आपकी स्वतंत्रता नष्ट नहीं हो गई है, सिर्फ अवरुद्ध हो गई है।
कोई बंधन स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करता। मेरे हाथों में कोई हथकड़ियां डाल दे, इससे मेरी स्वतंत्रता नष्ट नहीं होती, सिर्फ अवरुद्ध हो जाती है। मैं अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग नहीं कर सकता। लेकिन मेरी स्वतंत्रता नष्ट नहीं होती। कल मेरी जंजीरें टूट जाएं; मेरी स्वतंत्रता मेरे पास थी; सिर्फ अवरोध हट गया।
तो कोई भी चेतना किसी भी स्थिति में स्वतंत्रता तो नहीं खोती है, लेकिन अवरोध खड़े हो जाते हैं। और अगर अवरोधों से हमारा लगाव हो जाए, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। वही कठिनाई है।
हमारे हाथ में जंजीरें नहीं हैं। और अगर जंजीरें हैं, तो हम उनको आभूषण समझे हुए हैं। और हमने उनमें हीरे, चांदी, सोना जड़ लिया है। हमने उनमें रंग-बिरंगे चित्र बना लिए हैं। अब अगर कोई हमारी जंजीर तोड़ना भी चाहे, तो हम उसको समझेंगे, यह दुश्मन है, हमारे सौंदर्य को, हमारे आभूषण को नष्ट कर रहा है।
और जब भी कोई व्यक्ति अपनी जंजीर को आभूषण समझ ले, तो उसकी स्वतंत्रता बहुत मुश्किल हो गई। अगर कोई कारागृह को अपना घर समझ ले और सजावट करने लगे, तब फिर उसके छुटकारे का कोई उपाय न रहा। छुटकारे के लिए पहली बात तो जान लेनी जरूरी है कि मैं कारागृह में हूं। और इसे सजाना नहीं है, इसे तोड़ना है। और जो मुझे बांधे हुए हैं, वे आभूषण नहीं हैं, जंजीरें हैं। उनसे गौरवान्वित नहीं होना है; उनसे छुटकारा पाना है।
हे अर्जुन, रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह
इस जीवात्मा को कर्मों की और उनके फल की आसक्ति से बांधता है।
सत्वगुण को कृष्ण ने कहा कि वह सुख की आसक्ति और ज्ञान का अभिमान, इससे बांधता है।
जिसको हम पांडित्य कहें, वह सत्व से बंधा हुआ व्यक्तित्व है। जिसको हम साधुत्व कहें, वह भी सत्व से बंधा हुआ व्यक्तित्व है। उसकी दो आकांक्षाएं हैं। एक आकांक्षा है कि उसे सुख मिले। इसलिए वह स्वर्ग को खोजता है। स्वर्ग का मतलब है, जहां दुख बिल्कुल न हो, सिर्फ सुख हो। वह स्वर्ग की खोज के लिए सब कुछ करने को तैयार है। तप करेगा, पूजा, यज्ञ, सब करेगा, लेकिन स्वर्ग मिले। ऐसी जगह मिल जाए, जहां सुख ही सुख हो; शुद्ध सुख हो और दुख न हो। सत्व ऐसे लोगों को बांध लेता है।
स्वर्ग भी बंधन है। देवता मुक्त नहीं हैं।
बुद्ध के जीवन में कथा है कि जब बुद्ध को परम ज्ञान हुआ, तो ब्रह्मा और अनेक देवताओं ने आकर उनके चरणों में निवेदन किया कि हमें उपदेश दें।
हिंदुओं को इस कहानी से बड़ी चोट पहुंची। उनको लगा, हमारे देवता और बुद्ध के चरणों में क्यों प्रार्थना करने जाएं? लेकिन बात बड़ी कीमती है।
देवता किसी के भी हों, बुद्ध के चरणों में नमस्कार करने जाना ही होगा। बुद्ध किसी के भी नहीं हैं। देवता किसी के भी हों! लेकिन जब भी बुद्धत्व घटित होता है, तो देवता को भी चरणों में नमस्कार करने और मार्ग खोजने जाना होगा।
ब्रह्मा ने कहा कि हमें उपदेश दें, क्योंकि हम भी बंधे हैं। तुम सुख
से भी मुक्त हो गए; हम सुख से बंधे हैं। सुख ही सुख है हमारे जीवन में, लेकिन दुख का डर मौजूद है। क्योंकि जो भी है, उसके खोने का डर होता है। धनी के पास कितना ही धन हो, धन के खोने का डर तो दुख देता ही है। इसलिए
हम कंपते रहते हैं कि कब हमारा सुख छिन जाए। और सुख हमने कमाया है पुण्यों

से, उसकी एक मात्रा है। पुण्य चुक जाएंगे, सुख चुक जाएगा। तब हम वापस दुख में फेंक दिए जाएंगे। तो हम कंपित हैं। हम डरे हुए हैं। हम घबड़ाए हुए हैं। हमें आश्वस्त करें। आप सुख से भी मुक्त हो गए हैं। अब आपको कोई भय न रहा। अब आपको कोई कंपा नहीं सकता; क्योंकि आपसे अब कोई कुछ छीन नहीं सकता। आपके पास कुछ है ही नहीं जो छीना जा सके। आप सिर्फ आप हैं, जिसको छीनने का कोई उपाय नहीं है, चुराने का कोई उपाय नहीं है, मिटाने का कोई उपाय नहीं है। आप उस परम मुक्त अवस्था को उपलब्ध हो गए हैं, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं, हम तरसते हैं।
सत्व देवत्व तक ले जा सकता है। वह शुद्धतम जंजीर है, सुंदरतम जंजीर है। तो जिनके मन में सुख की गहरी आकांक्षा है--सुख की, शांति की या आनंद की--जिनके मन में गहरी आकांक्षा है सुख की, आनंद की, शांति की, वे सत्व से मुक्त न हो पाएंगे। क्योंकि सत्व सुख देता है। और जो सुख देता है, उससे हम बंध जाएंगे।
जिनके मन में आसक्ति है, लगाव है, जो किसी दूसरे व्यक्ति के ऊपर निर्भर होते हैं अपने सुख लिए... । पति है, वह कहता है, पत्नी के बिना मैं नहीं जी सकता। या पत्नी है, वह कहती है, पति मरेंगे तो मैं सती हो जाऊंगी, उनकी चिता पर जल जाऊंगी। उनके बिना नहीं जी सकती।
सती आसक्ति का गहनतम प्रतीक है। मेरा जीवन किसी और के जीवन पर पूरी तरह निर्भर है, उसके बिना कोई अर्थ नहीं है, कोई सार नहीं है। फिर मर जाना उचित है। फिर मृत्यु भी हितकर मालूम होती है बजाय जीवन के।
तो जब कोई व्यक्ति आसक्ति से किसी से बंधता है, तो ऐसी आसक्ति और कामना से जो उत्पन्न होता है, वह रजोगुण है। या इस जीवात्मा के कर्मों की और उनके फल की आसक्ति जो है, उससे रजोगुण उत्पन्न होता है।
एक तो आसक्ति है, किसी से बंध जाना। ऐसा बंध जाना कि लगे कि मेरे प्राण मेरे भीतर नहीं, उसके भीतर हैं। यह व्यक्ति के साथ भी हो सकता है, वस्तु के साथ भी हो सकता है। कुछ लोग हैं कि उनके प्राण उनकी तिजोरी में हैं। आप उनको मारो, वे न मरेंगे। तिजोरी को मार दो, वे मर जाएंगे।
नसरुद्दीन एक अंधेरी गली से गुजर रहा है। और एक आदमी ने पिस्तौल उसकी छाती पर रख दी। उसने कहा, नसरुद्दीन, धन देते हो या जीवन? नसरुद्दीन ने कहा, थोड़ा सोचने दो। फिर सोचकर उसने कहा कि जीवन। उस आदमी ने कहा, क्या मतलब? नसरुद्दीन ने कहा, धन तो बुढ़ापे के लिए इकट्ठा किया है। जीवन तुम ले सकते हो। धन देकर मैं क्या करूंगा? फिर कहां बचूंगा?
पुरानी कहानियां हैं, बच्चों की कहानियां हैं परियों की, राजाओं की। जिनमें कोई राजा होता है, जिसके प्राण किसी तोते में बंद हैं। राजा को मारो, आप नहीं मार सकते। तोते को मारना पड़े। पता लगाना पड़े कि राजा के प्राण कहां कैद हैं। वे कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं; वे हम सबकी कहानियां हैं।
आपको मारने में कोई सार नहीं है। पहले पक्का पता लगाना पड़े, किस तोते में आपके प्राण बंद हैं। बस, वहां मार दो, आप मर गए।
आसक्त व्यक्ति का अर्थ है कि उसके प्राण उसके अपने भीतर नहीं, कहीं और हैं। ऐसा व्यक्ति तो गहन परतंत्रता में होगा, जिसके प्राण भी अपने नहीं। यह तो पूरा कारागृह है।
रजोगुण ऐसी आसक्ति से बढ़ता है, निर्मित होता है। और ऐसा व्यक्ति सदा
ही फलों की आसक्ति से बंधा होता है। क्या मिलेगा अंत में? वह उसकी नजर में होता है। वह हमेशा फल को देखता है। वृक्ष की उसे चिंता नहीं होती। वह सब कर सकता है, लेकिन फल! नजर में, आंख में, प्राण में एक ही बात गूंजती रहती है, फल! ऐसा व्यक्ति सदा दुखी होगा। दुखी इसलिए होगा कि वह जो भी करेगा, उसमें तो उसे कोई रस नहीं है। रस तो फल में है। फल सदा भविष्य में है।
और ऐसे व्यक्ति की धीरे-धीरे एक व्यवस्था हो जाती है मन की कि वह वर्तमान में देख ही नहीं सकता। और जब फल भी आएगा, तब भी वह फल को नहीं देख पाएगा, क्योंकि फल तब वर्तमान हो जाएगा और उसकी आंखें फिर भविष्य में देखेंगी।

तो ऐसा व्यक्ति फल के द्वारा फिर किसी और फल को खोजने लगता है। पहले
वह धन कमाता है। धन उसकी आकांक्षा होती है। फिर जब धन मिल जाता है, तो उस धन से वह और धन कमाने लगता है। फिर यही चलता है।
उसकी हालत ऐसी है कि एक रास्ते का उपयोग दूसरे रास्ते तक पहुंचने के लिए करता है। फिर दूसरे रास्ते का उपयोग तीसरे रास्ते तक पहुंचने के लिए करता है। जिंदगीभर वह रास्तों पर चलता है और मंजिल कभी नहीं आती। आएगी नहीं। क्योंकि हर साधन का उपयोग वह फिर किसी दूसरे साधन तक पहुंचने के लिए करता है। साध्य का कोई सवाल नहीं है।
और ऐसे व्यक्ति की नजर सदा साध्य पर लगी होती है। उसको दिखता है हमेशा फल। इसके पहले कि वह कुछ करे, वह अंत में देख लेता है। और अंत को देखकर ही चलता है।
इसमें बड़ी कठिनाइयां हैं। अगर वस्तुतः उसे अंत मिल भी जाए, तो भी उसकी आगे देखने की आदत उसे अंत का सुख न लेने देगी। और अंत मिलना इतना आसान भी नहीं है। क्योंकि फल आपके हाथ में नहीं है। फल हजारों कारणों के समूह पर निर्भर है। और कोई भी व्यक्ति इतना समर्थ नहीं है कि जगत के सारे कारणों को नियोजित कर सके।
आप धन कमा रहे हैं। धन कमा लेंगे, यह आप पर ही निर्भर नहीं है। यह करोड़ों कारणों पर निर्भर है, यह मल्टी काजल है। समझ लें, एक क्रांति हो जाए; धन किसी का रह ही न जाए, सामूहिक संपत्ति हो जाए। संपत्ति का वितरण हो जाए। आप जब तक धन कमा पाएं, तब तक महंगाई इतनी बढ़ जाए कि धन का कोई मूल्य न रह जाए।
पिछले महायुद्ध में चीन में ऐसी हालत थी कि एक माचिस खरीदनी हो, तो एक थैली भरकर नोट ले जाने पड़ते थे। वह हालत यहां कभी भी आ सकती है।
एक बड़ी प्रसिद्ध घटना चीन में घटी पिछले महायुद्ध में। दो भाई थे। जब बाप मरा तो आधी-आधी संपत्ति कर गया। काफी संपत्ति थी। कई लाख रुपए दोनों को मिले। एक भाई उन लाखों रुपयों को लगाकर धंधे में लग गया, कमाने में। दूसरे भाई ने उन सब लाखों रुपयों की शराब पी डाली। उस दूसरे भाई ने शराब पी डाली, लेकिन उसे शौक था एक, शराब की बोतलें इकट्ठी करने का। उसने लाखों शराब की बोतलें इकट्ठी कर लीं।
फिर महंगाई बढ़ते-बढ़ते उस जगह पहुंची कि उसने बोतलें अपनी बेच लीं।
जितने की उसने शराब पी थी, उससे कई गुना रुपया उसे बोतलों के बेचने से मिल गया। और वह जो भाई धंधे में था, वह मर गया, वह डूब गया। लोगों के पास पैसे न रहे खरीदने को उसकी चीजें। चीजें थीं; लेकिन पैसे नहीं थे लोगों के पास।
जिंदगी बड़ी जटिल है। यहां आप अकेले नहीं हैं। यहां अरबों लोग हैं। अरबों कारण काम कर रहे हैं। आप सब कुछ कर लें और माओ का दिमाग खराब हो जाए या निक्सन का, और वे एक एटम बम गिरा दें। आपने यहां सब कुछ करके इंतजाम कर लिया था; बिल्कुल बस, बैंक से रुपया उठाने ही जा रहे थे। सब समाप्त हो गया। हिरोशिमा पर जब एटम गिरा, एक लाख बीस हजार लोग मरे। पांच मिनट में सब समाप्त हो गया। उसमें आप ही जैसे लोग थे, जिनकी बड़ी योजनाएं थीं। फलाकांक्षी बड़ी कठिनाई में है। पहले तो वह फल मिल भी जाए--जो कि असंभव जैसा है--जो फल वह चाहता है, वह मिल भी जाए, तो वह उसको भोग न सकेगा। उसकी आदत गलत है। पहले मिलना ही मुश्किल है, क्योंकि फल आपके हाथ में नहीं है। और जब आप तय करते हैं कुछ पाने का, तब इतने कारण काम कर रहे हैं कि आप उन पर कोई कब्जा नहीं कर सकते।
अगर इस स्थिति को हम ठीक से समझें, तो इसी को कृष्ण ने कहा है कि फल भगवान के हाथ में है। करोड़ों ये जो कारण हैं, अनंत जो कारण हैं, यह अनंत कारणों का ही इकट्ठा नाम भगवान है। भगवान कहीं कोई ऊपर बैठा हुआ आदमी नहीं है, जिसके हाथ में है।
ऐसा अगर हो, तब तो हम कोई तरकीब निकाल ही लें उसको प्रभावित करने की।
हम उसकी स्तुति कर सकते हैं, खुशामद कर सकते हैं। उस पर काम न चले, तो उसकी पत्नी होगी, उसको प्रभावित कर सकते हैं। उसके लड़के-बच्चे होंगे, कोई नाता- रिश्ता खोज सकते हैं, कोई रास्ता बन ही सकता है। अगर कहीं भगवान है व्यक्ति की तरह, तो हम से बच नहीं सकता। हम फल को नियोजित कर सकते हैं।
उसके माध्यम से हम कुछ तय कर सकते हैं।

लेकिन ऐसा भगवान नहीं है। भगवान का कुल अर्थ है, इस जगत का जो अनंत विस्तार है अनंत कारणों का, इन अनंत कारणों के जोड़ का नाम भाग्य या भगवान है--जो भी आपको पसंद हो। जब हम कहते हैं, फल भाग्य के हाथ में है, तो इसका मतलब इतना है कि मैं अकेला नहीं हूं, अरबों कारण काम कर रहे हैं।
आप अपने घर से निकले। आप बड़ी योजनाएं बनाए चले जा रहे हैं। दूसरा आदमी अपनी कार लेकर निकला। वे शराब पी गए हैं। आपको उनका बिल्कुल पता नहीं है कि वे चले आ रहे हैं तेजी से आपकी तरफ कार भगाते हुए। वे कब आपको पटक देंगे सड़क पर आपकी योजनाओं के साथ, आपको कुछ पता नहीं है। उनका आपने कुछ बिगाड़ा नहीं दिखाई पड़ता ऊपर से। शराब आपने उन्हें पिलाई नहीं। मगर वह सारी जिंदगी का नक्शा बदल दे सकते हैं।
प्रतिपल हजारों काम आपके आस-पास चल रहे हैं। आप असहाय हैं। आप कर क्या सकते हैं? लेकिन जो आदमी फल पर बहुत आकांक्षा बांध लेता है, वह बड़ी मुश्किल में पड़ता है, क्योंकि फल पूरे नहीं हो पाते। जब पूरे नहीं हो पाते, तो विषाद से भर जाता है।
कृष्ण कहते हैं कि यह जो फल की आसक्ति है, यह रजोगुण का स्वभाव है!
और हे अर्जुन, सर्व देह-अभिमानियों के मोहने वाले तमोगुण को अज्ञान
से उत्पन्न हुआ जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा बांधता है।
सत्व, ज्ञान और सुख के द्वारा; रज, आसक्ति और फल की आकांक्षा के द्वारा; और तम, अज्ञान, मूर्च्छा, प्रमाद, आलस्य के द्वारा है।
प्रमाद शब्द को ठीक से समझ लेना चाहिए। उसमें सारा रस तम का छिपा हुआ है। प्रमाद का अर्थ है, मूर्च्छा का एक भाव, बेहोश, अजागरूक। चले जा रहे हैं, किए जा रहे हैं, लेकिन कोई सावधानी नहीं है। जो भी कर रहे हैं, ऐसे कर रहे हैं, जैसे नींद में हों। क्यों कर रहे हैं, इसका पक्का पता नहीं। करें या न करें, इसका कोई बोध नहीं। क्या कर रहे हैं, इस ठीक करते हुए क्षण में चेतना का ध्यान, चेतना का प्रवाह उस कर्म की तरफ नहीं।
खाना खा रहे हैं। हाथ खाना खाए जा रहे हैं, यंत्रवत, क्योंकि उनकी आदत
हो गई है। मन कहीं भागा हुआ है। मन न मालूम किन लोकों की यात्राएं कर रहा है! न मालूम मन किस काम में संलग्न है। तो आप यहां नहीं हैं। आप यहां बेहोश हैं।
बुद्ध कहते हैं, बस एक ही है साधना, कि तुम जहां हो, वहां तुम्हारी चेतना भी हो। तुम्हारा पैर उठे रास्ते पर, तो तुम्हारी चेतना भी पैर के साथ उठे। तुम होशपूर्वक हो जाओ। तुम पानी पीओ, तो वह पीना यंत्रवत न हो। तुम्हारा पूरा होश पानी के साथ तुम्हारे भीतर जाए।
बुद्ध ने कहा है, तुम्हारी श्वास बाहर जाए, तो होशपूर्वक; तुम्हारी श्वास भीतर आए, तो होशपूर्वक। बुद्ध की सारी प्रक्रिया इस अनापानसती-योग पर निर्भर है।
बड़ा अनूठा प्रयोग है अनापानसती-योग का, बड़ा सरल, कि श्वास का मुझे बोध बना रहे। जब श्वास नाक को छुए, भीतर जाती श्वास, तो मुझे पता रहे कि उसने स्पर्श किया नाक का। फिर नाक के भीतरी अंतस हिस्सों का स्पर्श किया; फिर श्वास भीतर गई, फेफड़ों में भरी, पेट ऊपर उठा; फिर श्वास वापस लौटने लगी।
उसका आने का मार्ग, जाने का मार्ग, दोनों का बोध हो।
बर्मा में इसे वे विपस्सना कहते हैं। विपस्सना का मतलब है, देखना। देखते रहना, ध्यानपूर्वक देखते रहना।
कोई भी एक क्रिया को ध्यानपूर्वक देखते रहने का परिणाम परम बोध हो सकता है। और कोई व्यक्ति अगर अपने दिनभर की सारी क्रियाओं को देखता रहे, तो उसका प्रमाद टूट जाएगा। जब प्रमाद टूट जाता है, तो तम का बंधन गिर जाता है।
लेकिन हम सब बेहोश जीते हैं। हम जो भी करते हैं, वह ऐसा करते हैं, जैसे हिप्नोटाइज्ड हैं। कुछ होश नहीं; चले जा रहे हैं, किए जा रहे हैं, यंत्रवत। यह यंत्रवतता, आलस्य, प्रमाद, निद्रा, ये तम की आधारशिलाएं हैं। इसलिए कृष्ण गीता में कहते हैं कि योगी, जब आप सोते हैं, तब भी सोता नहीं।

आप तो जब जागते हैं, तब भी सोते ही हैं। आपका जागना भी जागना नहीं है, सिर्फ नाममात्र जागना है। आप खुद भी कोशिश करें, तो कई बार दिन में अपने को सोया हुआ पकड़ लेंगे। जरा ही चौंकाएं अपने को... ।
गुरजिएफ कहता था, एक झटका देकर खड़े हो जाएं कहीं पर, तो आप अचानक पाएंगे कि अभी तक सोया था। पर वह एक झटके ही में थोड़ी-सी झलक आएगी, जैसे किसी ने नींद में हिला दिया हो। फिर नींद पकड़ लेगी।
योगी, कृष्ण कहते हैं, सोता है तब भी सोता नहीं। उसका कुल मतलब इतना है
कि उसके तम का जो बंधन है, वह टूट गया। प्रमाद नहीं है। विश्राम करता है। लेकिन भीतर उसके कोई जागा ही रहता है, जागा ही रहता है। कोई दीया जलता ही रहता है। वहां कोई पहरेदार सदा बना ही रहता है। ऐसा कभी नहीं कि घर खाली हो और पहरेदार सोया हो। वहां कोई पहरे पर बैठा ही रहता है।
इस पहरेदार को संतों ने--कबीर ने, दादू ने, नानक ने--सुरति कहा है।
सुरति का अर्थ है, कोई स्मरणपूर्वक जगा रहे। स्मृति का ही रूप है सुरति।
शब्द बुद्ध का है, स्मृति। फिर बिगड़ते-बिगड़ते, कबीर तक आते-आते वह लोकवाणी में सुरति हो गया।
कबीर कहते हैं, जैसे कोई कुलवधू, कोई गांव की वधू कुएं से पानी भरकर घर लौटती है, तो सिर पर तीन-तीन मटकियां रख लेती है। हाथ से पकड़ती भी नहीं। पास की सहेलियों से गपशप भी करती है, हंसी-मजाक भी करती है, गीत भी गाती है और रास्ते पर चलती है। लेकिन उसकी सुरति वहीं लगी रहती है ऊपर, कि वे घड़े गिर न जाएं! उसने हाथ भी नहीं लगाया हुआ है। सिर्फ सुरति के सहारे ही सम्हाला हुआ है। वह सब बात करती रहेगी, हंसती रहेगी, रास्ते पर चलती रहेगी; कोई घड़ा गिरने को होगा, तो तत्काल उसका हाथ पहुंच जाएगा। उसकी स्मृति का धागा पीछे बंधा हुआ है। उसका ध्यान वहीं लगा हुआ है।
आपकी क्रियाएं ध्यानपूर्वक हो जाएं, तो अप्रमाद फलित होता है। और आपकी क्रियाएं गैर-ध्यानपूर्वक हों, तो प्रमाद होता है।
हे अर्जुन, सब देहाभिमानियों को मोहने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान।
और अज्ञान का अर्थ यहां जानकारी की कमी नहीं है। अज्ञान का अर्थ है, आत्म-अज्ञान, अपने को न जानना।
जो अपने को नहीं जानता, वह जागेगा भी कैसे? वह किसको जगाए? कौन जगाए?
और जो जागा हुआ नहीं है, वह अपने को कभी जानेगा कैसे? वे दोनों एक-दूसरे पर निर्भर बातें हैं। जो जितना ही जागता है, उतना ही स्वयं को पहचानता है। जो जितना स्वयं को पहचानता है, उतना ही जागता चला जाता है। परम जागरण आत्मज्ञान बन जाता है।
तमोगुण अज्ञान है। रजोगुण आसक्ति है। सत्वगुण सूक्ष्म अभिमान है, शुद्ध अभिमान है। ये तीन बंधन हैं।
क्योंकि हे अर्जुन, सत्वगुण सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में लगाता है, तमोगुण तो ज्ञान को आच्छादन करके, ढंककर प्रमाद में लगाता है।
और तीन ही तरह के व्यक्ति हैं इस जगत में। तीनों गुण सभी के भीतर हैं।
लेकिन सभी के भीतर तीनों गुण समान मात्राओं में नहीं हैं। किसी के भीतर सत्वगुण प्रमुख है, तो सत्वगुण दो को दबा देता है।
इसको ठीक से समझ लें।
जिस व्यक्ति के भीतर सत्वगुण प्रमुख है, जिसे शांति, सुख, ज्ञान की तलाश है, उस व्यक्ति का रजोगुण, उस व्यक्ति का तमोगुण भी इसी तलाश में संलग्न हो जाता है। उस व्यक्ति के पास जितनी कर्मठता है, जितनी शक्ति है, जितनी ऊर्जा है रज की, वह सारी ऊर्जा वह ज्ञान की तलाश में लगा देता है। वह सारी ऊर्जा, वह सारा कर्म सुख की खोज में लग जाता है। और उस व्यक्ति के भीतर जितना तम है, जितना आलस्य है, वह सब भी ज्ञान की तलाश में, सुख की तलाश में, विश्राम की जो जरूरत पड़ेगी, उसमें लग जाता है।
अगर किसी व्यक्ति में तम प्रमुख है, तो उसके पास छोटी-मोटी बुद्धि अगर हो, थोड़ी-बहुत समझ हो, तो वह समझ को भी अपने आलस्य को सिद्ध करने में लगाता है। वह अपनी समझ को भी इस तरह उपयोग करता है कि आलस्य का रेशनलाइजेशन हो जाए, वह बुद्धियुक्त मालूम होने लगे। वह कहेगा, करने से क्या सार है? करके क्या कर लोगे? करने से क्या मिलने वाला है?

उसके पास जो भी रजोगुण है, जो भी ऊर्जा है, शक्ति है, वह इस शक्ति को भी
इस भांति नियोजित करेगा कि वह कर्म न बन पाए। वह क्रियाएं तो करेगा, लेकिन क्रियाएं ऐसी होंगी, जो उसे और आलस्य में ले जाएं। वह आदमी चलेगा, तो चलकर शराबघर पहुंच जाएगा। उसकी क्रिया चलने में लगेगी, लेकिन जाएगा वह शराबघर। अगर उसको शराब खरीदनी हो, तो वह दिन में मेहनत भी करेगा। लेकिन मेहनत करके खरीदेगा शराब।
अगर किसी व्यक्ति में रजोगुण प्रमुख हो, तो वह अपनी सारी चेतना को, सारी शक्तियों को भाग-दौड़ में लगा देगा। क्रिया प्रमुख हो जाएगी। करना ही जैसे लक्ष्य हो जाएगा। कुछ करके दिखाना है। वह अपना सुख भी छोड़ सकता है उसके लिए, अपना विश्राम भी छोड़ सकता है। लेकिन कुछ करके दिखाना है। इतिहास ऐसे ही लोग बनाते हैं, जिनमें रजोगुण प्रमुख है। राजनेता रजोगुणी है। कुछ करके दिखाना है। नाम छोड़ जाना है। इतिहास के पृष्ठों पर लिखा जाए।
और ध्यान रहे, तायनबी ने, एक बहुत बड़े इतिहासज्ञ ने, एक बहुत मधुर बात कही है। उसने कहा है, इतिहास बनाना ज्यादा आसान है बजाय इतिहास लिखने के। क्योंकि इतिहास तो गधे भी बना सकते हैं।
इतिहास बनाने में क्या लगता है? गोडसे बनने में क्या दिक्कत है? एक पिस्तौल चाहिए, एक छुरा चाहिए, एक हथगोला काफी है। कुछ भी उपद्रव तो कर ही सकते हैं। इतिहास निर्मित होना शुरू हो जाता है। अब जब तक गांधी की याददाश्त रहेगी, तब तक गोडसे को भूलने का कोई उपाय नहीं। गोडसे ने किया क्या है? करने के नाम पर बहुत ज्यादा नहीं है। उपद्रव किया जा सकता है। जिनमें भी रजोगुण भारी है, वे किसी न किसी तरह के उपद्रव में, किसी तरह
की मिस्चीफ में संलग्न होते हैं। अगर वे बुरे हो जाएं, तो डाकू हो जाएंगे। अगर बुरे न हों, भाग्य से ठीक शिक्षा-संस्कार मिल जाए, तो राजनेता हो जाएंगे। डाकुओं को थोड़ी अकल हो जाए, तो राजनेता हो जाएंगे। राजनेताओं की थोड़ी अकल खो जाए, तो डाकू हो जाएंगे। उनमें परिवर्तन जरा भी दिक्कत का नहीं है। वे करीब ही खड़े हैं। वे सगे, मौसेरे भाई-भाई हैं।
अगर छोटा-मोटा हत्यारा हो, तो हत्यारा रह जाएगा। अगर बड़ा हत्यारा हो,
तो तैमूर, चंगेज और हिटलर के साथ जुड़ जाएगा। अगर छोटी-मोटी किसी की संपत्ति पर कब्जा करे, तो चोर समझा जाएगा। अगर बड़े साम्राज्यों पर कब्जा कर ले, तो सम्राट हो जाएगा। और साधु उसका गुणगान करेंगे, प्रशस्ति लिखेंगे।
रजोगुणी अपनी सारी शक्ति को लगा देता है, सारी समझ को, सारे विश्राम को, एक ही काम में कि कुछ करना है। वह करना कहां ले जाएगा, उस करने का क्या अर्थ होगा, करने का कोई परिणाम शुभ होगा, अशुभ होगा, इसका बहुत प्रयोजन नहीं है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हिटलर बचपन में चित्रकार होना चाहता था, पेंटर होने की आकांक्षा थी। और बैठकर बड़े चित्र बनाता रहता था। लेकिन कई एकेडमी में गया वह, लेकिन सभी जगह से उसको निराश वापस लौटना पड़ा। वह कुशल चित्रकार नहीं हो सकता था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि काश, उसको किसी एकेडमी ने जगह दे दी होती, तो वह कागज रंगने में समय बिता देता, दुनिया का इतना उपद्रव नहीं होता। हो सकता था लाल रंग से कागज रंगता, लेकिन इतने खून से जमीन न रंगता।
लेकिन वह चित्रकार नहीं हो सका। वह बेचैनी उसको रह गई। उसको कुछ करके दिखाना था। उसे कुछ बड़ा होना था। और वह बेचैनी धीरे-धीरे राजनीति की तरफ मुड़ गई। फिर वह खतरनाक आदमी साबित हुआ। हालांकि चित्रकला से उसका प्रेम कभी नहीं खोया। अपने कमरे में खूबसूरत चित्र उसने लगा रखे थे और चित्रों का पारखी था। संगीत में उसे रस था और पुराने शास्त्रीय संगीत के रिकार्ड सुनता था। वह एक चित्रकार हो सकता था। लेकिन उसकी सारी, रजोगुण की सारी शक्ति, जो चित्रकार बनने के दरवाजे से लौट गई, वह राजनीति में नियोजित हो गई।
इंग्लैंड अकेला मुल्क है आज, जहां विद्यार्थियों का बहुत उपद्रव नहीं है। सारी जमीन पर उपद्रव है। और कुल कारण इतना है कि इंग्लैंड अकेला ही

मुल्क है, जहां विद्यार्थियों को अभी भी दो-तीन घंटे खेल के मैदान पर खेलना पड़ता है। रजोगुण नियोजित हो जाता है।
तीन घंटे जो बच्चा फुटबाल या वालीबाल खेलकर लौटा है, उससे आप कहो कि पत्थर मारो, कांच तोड़ो लोगों के मकान के; वह कहेगा, घर जाने दो। जो बच्चा छः घंटे बैठा रहा है कुर्सी पर और हिलने भी नहीं दिया गया। और शिक्षक कहता है, बिल्कुल बुद्धवत बैठे रहना। पत्थरों को छुपाकर रखे है। यह लड़का कुछ तोड़ना चाहेगा, फेंकना चाहेगा।
फुटबाल या वालीबाल सिर्फ फेंकने, मिटाने, तोड़ने के व्यवस्थित उपाय हैं, कुछ और नहीं है। आखिर कर क्या रहा है, हाकी खेल रहा है एक लड़का। हाकी में नहीं मारने दोगे इसको लट्ठ, तो यह किसी के सिर पर मारेगा। यह जो गेंद है, यह सिर का काम कर रही है। इसका निकला जा रहा है रजोगुण।
दुनिया में विश्वविद्यालय जलाए जा रहे हैं, स्कूल तोड़े जा रहे हैं। वह
तब तक जारी रहेगा, जब तक कि युवकों का रजोगुण नियोजित नहीं होता। और खतरे इसलिए बढ़ गए हैं। रजोगुण तो पहले भी था, लेकिन रजोगुण नियोजित हो जाता था। हम अपने मुल्क में बाल-विवाह कर देते थे। रजोगुण को मौका नहीं रहता था
कि जाकर कांच तोड़े, आग लगाए, बसें जलाए, कुछ उपद्रव करे। इसके पहले कि होश सम्हले एक पत्नी बांध देते थे। वह इतना बड़ा वजन है कि उससे बड़ा वजन कोई है ही नहीं। उसको ही ढोओ। उसमें सारा रजोगुण नियोजित हो जाता है। इसके पहले कि अकल में थोड़े-बहुत अंकुर आएं, बच्चे पैदा हो जाएंगे। अब लड़ने-झगड़ने का इनके पास कहीं कोई उपाय नहीं। ये बड़े शांतमूर्ति मालूम पड़ेंगे!
इस भारत में ऐसे ही लोग थे बड़ी संख्या में उसका कारण और कुछ नहीं था।
यह नहीं कि लोग धार्मिक थे। कुल कारण इतना था कि रजोगुण को सुविधा नहीं थी। लोग इसके पहले कि उपद्रव कर पाएं, उपद्रव की शक्ति किसी दिशा में संलग्न हो जाती थी।
अब सारी दुनिया में बच्चे जवान हो जाते हैं, न तो विवाहित किए जा रहे हैं, न उनके ऊपर कोई जिम्मेवारी है। मां-बाप सुख संपन्न हैं। उनके पास सुविधा है। तो लड़के पच्चीस और तीस साल तक आवारागर्दी कर सकते हैं। यह खतरनाक वक्त है। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, अठारह साल में वीर्य की ऊर्जा अपने शिखर को छू लेती है। इतनी शक्ति फिर जीवन में दुबारा नहीं होगी, जितनी अठारह साल में होगी।
अठारह साल, जब कि शक्ति अपने पूरे तूफान में है, उसका कोई नियोजन नहीं है। उसको कोई दिशा नहीं है बहने के लिए। केतली के नीचे आग जल रही है पूरी ऊर्जा से और ढक्कन बंद है। और निकालने का हम जो रास्ता बताते हैं, वह कोई रास्ता नहीं है, कि हम उनको कहते हैं, युनिवर्सिटी में पढ़ो-लिखो किताब! किताब से कोई ऊर्जा नहीं निकलती। उसमें थोड़े से जो सत्वगुण प्रधान युवक हैं, उनके लिए तो ठीक है। लेकिन बाकी का क्या हो?
पिछले जमाने में तो जो सत्वगुण प्रधान थे, वे ही विश्वविद्यालय तक पहुंचते थे, बाकी जिंदगी में लग जाते थे। अब सभी को विश्वविद्यालय पहुंचाने की सुविधा हो गई है। सौ में कोई पांच सत्वगुण प्रधान होंगे, बाकी जो पंचानबे हैं, उनके साथ बड़ा खतरा है।
उस पंचानबे में आधे के करीब रजोगुण प्रधान हैं, जिनकी शक्ति का कोई उपयोग नहीं हो रहा है। किताब जिनकी शक्ति को नहीं पी सकती, परीक्षाएं जिनकी शक्ति को नहीं पी सकतीं। तो वे परीक्षा और किताब के माध्यम से भी उपद्रव खड़ा कर देंगे। हर परीक्षा के वक्त उपद्रव खड़ा हो जाएगा।
यह उपद्रव जो कर रहा है, वह रजोगुण प्रधान है। और बाकी जो आधे बचे तमोगुण प्रधान, वे आलसी हैं। वे कुछ भी न करेंगे। अगर युनिवर्सिटी में आग लग रही है, तो बुझाने वे जाने वाले नहीं; वे खड़े देखते रहेंगे। न वे लगाने वाले को रोकने वाले हैं, न लगने वाली आग को रोकने वाले हैं।
आज विश्वविद्यालय में तीन तरह के वर्ग हैं। एक छोटा-सा वर्ग है, जो पीड़ित है। वह सत्वगुण प्रधान है। वह पीड़ित है सबसे ज्यादा, क्योंकि उसको काम ही करने, वह जो करना चाहता है, कि अध्ययन करे, कि शोध करे, वह कोई करने नहीं दे रहा उसको। पर वह बहुत कमजोर है। क्योंकि वह रजोगुण प्रधान नहीं है कि लड़ सके, उपद्रव कर सके। इसके बहुत पहले कि लड़ने की हालत आए, उसकी आंख पर

चश्मा लग जाता है, उसकी कमर झुक जाती है। वह अपना अपनी पुस्तक में, अपने अध्ययन में लगा हुआ है। उसको इस सबका मौका नहीं है।
बड़ा वर्ग है, जो उपद्रव करना चाहता है। क्योंकि उसके पास शक्ति है और शक्ति को बहने के लिए रास्ता चाहिए।
फिर तीसरा वर्ग है, जो आलसी है। जो सिर्फ देखता है। जो तमाशबीन हो सकता है ज्यादा से ज्यादा। जो कोई पक्ष नहीं लेता। कुछ भी हो रहा हो, वह देखता रहता है।
व्यक्ति में जो भी तत्व प्रमुख होगा, बाकी दो तत्व उसके पीछे संलग्न
हो जाते हैं।
सत्वगुण सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में और तमोगुण प्रमाद में डुबा देता है।
इन तीनों गुणों से मुक्ति चाहिए। कैसे तीनों गुणों से मुक्ति हो सकती है, उसकी साधना-विधि में हम आगे प्रवेश करेंगे।
और जब भी कोई व्यक्ति तीनों गुणों के बाहर हो जाता है, उसे हमने गुणातीत अवस्था कहा है। वह परम सिद्धि है। इसलिए कृष्ण शुरू में कहते हैं कि हे अर्जुन, जिस परम ज्ञान से सिद्धि उपलब्ध होती है, अंतिम गंतव्य उपलब्ध होता है, वह मैं तुझे फिर से कहूंगा।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
चौथा प्रवचन

होशः सत्व का द्वार

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।। 10।।
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।। 11।।
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।। 12।।
और हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण होता है अर्थात बढ़ता
है तथा रजोगुण और सत्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है; वैसे ही तमोगुण और सत्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है।
इसलिए जिस काल में इस देह में तथा अंतःकरण और इंद्रियों में चेतनता और बोध-शक्ति उत्पन्न होती है, उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा है।
और हे अर्जुन, रजोगुण के बढ़ने पर लोभ और प्रवृत्ति अर्थात सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकार के कर्मों का स्वार्थ-बुद्धि से आरंभ एवं अशांति अर्थात मन की चंचलता और विषय-भोगों की लालसा, ये सब उत्पन्न होते हैं।

पहले थोड़े प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कहा कि कृष्ण चाहते हैं अर्जुन मिट जाए और इसीलिए अलग-अलग द्वारों से गीता के अलग-अलग अध्यायों में वे अर्जुन को मिटने का उपाय बता रहे हैं। और आपने यह भी कहा कि कृष्ण अर्जुन का भविष्य जानते हैं। तो यह समझाएं कि यदि कृष्ण पहले से ही जानते हैं कि अर्जुन का भविष्य क्या है, स्वधर्म क्या है, तो फिर इतने सारे विभिन्न मार्गों का अर्जुन को उपदेश क्यों दे रहे हैं? उन मार्गों को क्यों समझा रहे हैं, जो अर्जुन के स्वधर्म के अनुकूल नहीं हैं?

निश्चय ही कृष्ण जानते हैं अर्जुन का भविष्य; व्यक्ति की तरह नहीं, मनुष्य की तरह। वह जो अर्जुन नाम का व्यक्ति है, उसका भविष्य नहीं जाना जा सकता। लेकिन वह जो अर्जुन के भीतर छिपी हुई चेतना है, उसका भविष्य जाना जा सकता है।
इस अर्थ में तो कृष्ण जैसा व्यक्ति सभी का भविष्य जानता है, आपका भी। क्योंकि वह जो भीतर छिपा हुआ बीज है, उसका अंतिम परिणाम मोक्ष है। वही भविष्य है। वह सभी का भविष्य है।
नदी बहती है; वह चाहे गंगा हो, चाहे यमुना हो, चाहे गोदावरी हो, चाहे नर्मदा हो, भविष्य ज्ञात है कि वे सागर में गिरेंगी। हर नदी सागर में गिरेगी। लेकिन प्रत्येक नदी अलग-अलग मार्गों से बहेगी, अलग-अलग पर्वतों को तोड़ेगी, अलग चट्टानों में मार्ग बनाएगी। प्रत्येक नदी का मार्ग तो अलग-अलग होगा, लेकिन अंत एक होगा।
मनुष्य का भविष्य ज्ञात है। जैसे बीज का भविष्य ज्ञात है कि वह वृक्ष होगा, वैसे ही मनुष्य का भविष्य ज्ञात है कि वह अंततः परम स्थिति को उपलब्ध हो जाएगा। वही अर्जुन के संबंध में भी ज्ञात है। लेकिन अर्जुन का जो व्यक्तित्व है अज्ञान से भरा हुआ; अर्जुन का जो व्यक्तित्व है अनंत संदेहों, अविश्वासों, शंकाओं, समस्याओं से भरा हुआ; वह जो रुग्ण चित्त है, उस रुग्ण चित्त का कोई भविष्य किसी को भी ज्ञात नहीं है। उस रुग्ण चित्त की यात्रा अनेक ढंग से हो सकती है। इसलिए कृष्ण अनेक मार्गों की बात कर रहे हैं।
पहली तो बात यह ख्याल में ले लें। अर्जुन भी बहुत तरह से यात्रा कर सकता है। विकल्प अनेक हैं। अगर प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक ही मार्ग होता, सुनिश्चित, तब तो कोई अर्थ न था कृष्ण का इतने मार्गों की बात करने का।

लेकिन एक व्यक्ति भी बहुत-सी संभावनाएं लिए हुए है। और हर संभावना का द्वार खुला छोड़ देना जरूरी है, ताकि अर्जुन चुनाव कर सके। और चुनाव के लिए जरूरी है कि सभी मार्ग स्पष्ट हों, अन्यथा भ्रांति हो सकती है। हर मार्ग उसकी परिपूर्णता में स्पष्ट हो जाए, तो अर्जुन का बोध स्वयं ही उस मार्ग को पकड़ने लगेगा, जो मार्ग उसके अनुकूल है।
आपके सामने चुनाव होने चाहिए पूरे। अगर एक भी मार्ग आपके सामने न रखा जाए, तो भी आप कुछ चुनेंगे। और यह भी हो सकता है कि जो मार्ग आपके सामने नहीं था, वही आपके लिए निकटतम मार्ग होता।
फिर कृष्ण अर्जुन के लिए मार्ग नहीं चुन रहे हैं। सिर्फ अर्जुन को मार्ग दिखा रहे हैं। चुनाव अर्जुन को स्वयं ही करना है।
इसे ख्याल में ले लें। अंतिम चुनाव सदा आपका है। गुरु इशारे कर सकता है, स्पष्ट कर सकता है, लेकिन चुनाव सदा आपका है।
बहुत-से लोग इस भ्रांति में होते हैं। कोई गुरु आपके लिए चुन नहीं सकता। आपको चुनना पड़ेगा। गुरु सारे मार्ग स्पष्ट कर देगा। उन सारे स्पष्ट मार्गों के बीच निर्णय आपको लेना है। और अगर आप यह तय करते हैं कि गुरु ही हमारे लिए चुने, यही आपका निर्णय है, तो यह निर्णय भी आपका है। अंतिम निर्णायक आप हैं।
अगर आप सारे मार्गों के संबंध में समझकर--क्योंकि यह भी एक मार्ग है
कि गुरु आपके लिए चुने--यही निर्णय लेते हैं कि गुरु हमारे लिए चुने, तो आपने गुरु को तो चुना। गुरु आपके लिए चुने, यह भी आपने चुना। और अंतिम निर्णायक सदा आप हैं। आत्मा से अंतिम निर्णय नहीं छीना जा सकता।
इसलिए जो परम गुरु है, वह सारे मार्ग स्पष्ट कर देगा। वह कुछ भी छिपाकर न रखेगा।
बुद्ध ने जगह-जगह बार-बार कहा है कि मेरी मुट्ठी खुली हुई है। उसमें मैंने कुछ भी छिपाया नहीं है। अनेक बार बुद्ध के शिष्यों को लगा है कि बुद्ध जितना कह रहे हैं, पता नहीं वे पूरा कह रहे हैं जो उन्होंने जाना है या कुछ छिपा रहे हैं।
आनंद उनसे एक दिन पूछ रहा है कि आपने सब कह दिया जो जाना है या आपने कुछ छिपाया है?
बुद्ध ने कहा, मेरी मुट्ठी खुली हुई है। मैंने कुछ भी नहीं छिपाया। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैंने जो-जो दिखाया है, वह तुम्हें दिखाई पड़ने लगा है। क्योंकि तुम्हारी आंखें पूरी खुली हुई नहीं हैं। मुट्ठी भी पूरी खुली हो, तो भी तो देखने वाले की आंख पूरी खुली होनी चाहिए।
कृष्ण की मुट्ठी बिल्कुल खुली हुई है। उन्होंने सारे मार्ग अर्जुन के सामने रख दिए हैं, सब विकल्प स्पष्ट कर दिए हैं; और अर्जुन को इस चौराहे पर खड़ा कर दिया है कि वह चुनाव कर ले। उन्होंने प्रत्येक मार्ग की पूरी प्रशंसा कर दी है। प्रत्येक मार्ग का पूरा विश्लेषण कर दिया है। किसी मार्ग के साथ पक्षपात भी नहीं किया कि सभी मार्गों में एक श्रेष्ठ है। ऐसा अगर उन्होंने कहा होता, तो उसका मतलब होता कि वे अर्जुन को बेच रहे हैं मार्ग। कोई चीज अर्जुन को बेचना चाहते हैं। स्पष्ट नहीं, सीधे नहीं, परोक्ष मार्ग से अर्जुन को राजी करना चाहते हैं कि तू इसे चुन ले।
इसलिए कृष्ण ने सभी मार्गों की जो गरिमा है, वह प्रकट कर दी है, बिना किसी एक मार्ग को सब मार्गों के ऊपर रखे। चुनाव के लिए अर्जुन पूरा स्वतंत्र है। पहला तो इस कारण।
और दूसरा इस कारण भी, एक बहुत पुरानी अरबी कहावत है कि इसके पहले कि आदमी सही जगह पर पहुंचे, उसे बहुत-से गलत दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं। इसके पहले कि कोई आदमी ठीक द्वार पर आ जाए, उसे बहुत-से गलत दरवाजों में भी खोजना पड़ता है।
असल में गलत में जाना भी ठीक पर आने के लिए अनिवार्य अंग है। भूल करना
भी ठीक हो जाने की प्रक्रिया का हिस्सा है।
यह थोड़ा जटिल है। क्योंकि हम सोचते हैं, जो ठीक है, जो साफ है, वह हमें
दे दिया जाए। लेकिन आप समझ नहीं पा रहे हैं। आध्यात्मिक जीवन कोई वस्तु की भांति नहीं कि आपके हाथ में दे दें। आध्यात्मिक जीवन वस्तु नहीं है, एक ग्रोथ, एक विकास है।

और ध्यान रहे, जब भी किसी को विकसित होना हो, तो उसे गलत से भी गुजरना पड़ता है, भ्रांत से भी गुजरना पड़ता है; भटकना भी पड़ता है। भटकाव भी आपको प्रौढ़ता लाता है। जो व्यक्ति भूल करने से डरता है, वह ठीक तक कभी भी नहीं पहुंच पाएगा। डर के कारण वह कदम ही नहीं उठाएगा। भय के कारण वह पंगु हो जाएगा, रुक जाएगा।
डर तो सदा है कि गलती हो जाए। और अगर जीवन में डर न हो गलती होने का, तो जीवन में कोई रस ही न हो; जीवन एक मुर्दा चीज हो। सिर्फ मरे हुए आदमी भूल नहीं करते। जिंदा आदमी तो भूल करेगा। और जितना जिंदा आदमी होगा, उतनी ज्यादा भूल करेगा।
एक ही बात ख्याल रखने की है कि जिंदा आदमी एक ही भूल दुबारा नहीं करेगा। बहुत भूलें करेगा; लेकिन एक ही भूल दुबारा नहीं करेगा। और जितनी ज्यादा भूलें कर सकें आप, जितनी नई भूलें कर सकें, उतने आप प्रौढ़ होंगे। हर भूल सिखाती है। हर भूल भूलों को कम करती है। हर भूल से आप सही के करीब सरकते हैं।
तो एक तो जैसा साधारणतः आलसी मन की आकांक्षा होती है कि गुरु कुछ बना- बनाया, रेडीमेड, हाथ में दे दे। तो आपकी झंझट बच गई। झंझट क्या बच गई! आपके विकास की सारी संभावना ही समाप्त हो गई।
आप कैसे बढ़ेंगे? आपका बीज कैसे अंकुरित होगा? आप कैसे वृक्ष बनेंगे? तूफान से डरते हैं, हवाओं से डरते हैं, वर्षा से डरते हैं, धूप भी आएगी, सब होगा। उन सबके बीच आप टिक सकें, इसकी सामर्थ्य, इसका साहस चाहिए।
कोई आपका हाथ पकड़कर और परमात्मा तक पहुंचा दे, तो आप तो मुर्दा होंगे ही, वह परमात्मा भी मुर्दा होगा जिस तक आप पहुंचेंगे। तो कोई आपका हाथ पकड़कर कहीं पहुंचा नहीं सकता।
अर्जुन की भी आकांक्षा यही है कि कृष्ण सीधा क्यों नहीं कह देते! जिम्मेवारी खुद ले लें। सीधी बात कह दें। हां और न में वह भी उत्तर चाहता है।
हम सभी हां और न में उत्तर चाहते हैं। कई बार मेरे पास लोग आ जाते हैं;
वे कहते हैं, आप सीधा हां और न में हमें कह दें। ईश्वर है या नहीं? आप हां या न में कह दें। जैसे ईश्वर कोई गणित का सवाल है या तर्क की पहेली है कि हां और न में उसका जवाब हो सकता हो!
ईश्वर तक वही पहुंचेगा, जो न से भी गुजरे, हां से भी गुजरे और जो दोनों
के पार हो जाए। और उस घड़ी में आ जाए, जहां न तो हां कहना सार्थक मालूम पड़े, न न कहना सार्थक मालूम पड़े। वही पहुंच पाएगा।
जो सोचे कि न कहने से बच जाऊं, सिर्फ हां कह दूं, उसकी आस्तिकता लचर और कमजोर होगी। जो आस्तिकता न की अग्नि से नहीं गुजरी है, वह कचरा है; उसमें से कचरा तो जल ही नहीं पाया, सोना तो निखर नहीं पाया।
और जो नास्तिकता सिर्फ न पर रुक गई और हां तक नहीं पहुंची, उस नास्तिकता में कोई प्राण नहीं है। क्योंकि न में कोई प्राण नहीं होते। प्राण तो हां से आते हैं। वह नास्तिकता सिर्फ बौद्धिक होगी; उससे जीवंत आंदोलन, भीतर की क्रांति, रूपांतरण संभव नहीं है।
हां और न दोनों से गुजरकर जो दोनों के पार हो जाता है, वह पहली दफा धार्मिक होता है। लेकिन वह धार्मिकता बड़ी विराट है।
अर्जुन की आकांक्षा है कि कृष्ण कुछ कह दें सीधा सूत्र, फार्मूला। वह खुद विकसित नहीं होना चाहता। कोई भी विकसित नहीं होना चाहता।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप कुछ कर दें कि मन शांत हो जाए। अशांत तुमने किया, जन्मों-जन्मों में। मेरा उसमें जरा भी हाथ नहीं। शांत मैं करूं! यह हो नहीं सकता। और जो कहता है कि ऐसा करेगा, वह आपको धोखा दे रहा है। और वह आपको और इस जीवन को भी अशांति में बिताने का उपाय किए दे रहा है।
अगर यह हो सकता है कि कोई और आपके मन को शांत कर दे, तो ध्यान रखना, वह शांति बहुत कीमत की नहीं है। क्योंकि कोई आपको अशांत कर सकता है फिर। उस शांति के आप मालिक नहीं हैं, जो दूसरे ने आपको दी है। वह छीनी भी जा सकती है। और ऐसी शांति का क्या मूल्य, जो छीनी जा सके! ऐसे अध्यात्म का क्या मूल्य है, जो कोई दे और कोई ले ले! जिसका दान हो सके, जिसकी चोरी हो सके!

सिर्फ आपके भीतर जो विकसित होता है, वह छीना नहीं जा सकता।
इसलिए कृष्ण हां और न में उत्तर नहीं दे रहे हैं। कृष्ण सारे विकल्प सामने रखे दे रहे हैं। उससे अर्जुन और भी बिगूचन में पड़ गया; और भी उलझन में पड़ा जा रहा है। उसने जितने प्रश्न उठाए थे, कृष्ण ने उनसे ज्यादा उत्तर दे दिए हैं। उसने जो पूछा था, उससे बहुत ज्यादा कृष्ण दिए दे रहे हैं। उससे वह और डांवाडोल हुआ जा रहा होगा। उसकी बेचैनी और बढ़ रही होगी। वह वैसे ही उलझा है और इतनी बातें और उलझा देंगी।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं, हम आपको नहीं सुने थे, तभी ठीक थे। आपको सुनकर हम और भी उलझ गए हैं। आप इतनी बातें कहे चले जा रहे हैं! आप हमें कुछ साफ-साफ कह दें; निश्चित कह दें। और वही करने को हमें बता दें।
आपको पता नहीं, आप अपनी आत्महत्या मांग रहे हैं। आप जीने से डरे हुए हैं। आप मरे-मराए सूत्र चाहते हैं। कोई कृष्ण, कोई बुद्ध आपके साथ आपकी आत्मघाती वृत्ति में सहयोग नहीं दे सकता है।
अर्जुन चाहे और बेचैन हो जाए, कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि आप ठीक से बेचैन हो जाएं, तो आप चैन के मार्ग को खोजने में तत्पर हो जाएंगे। शायद और उलझ जाए, कोई हर्जा नहीं है। भय क्या है? इस और उलझन से सुलझाने की जो चेष्टा होगी, उससे आपका भीतरी विकास होगा, अंतःप्रज्ञा जगेगी। संघर्ष से ही उस भीतर की अंतःप्रज्ञा का जन्म है।
तो कृष्ण सब उपस्थित किए दे रहे हैं, और अर्जुन पर छोड़े दे रहे हैं कि
वह चुने। वे सूत्र भी उसे दे रहे हैं वे, जिन्हें अर्जुन चुने, तो भटकेगा; जिनसे उसके स्वधर्म का कोई मेल नहीं है। वे सूत्र भी दे रहे हैं, जिन्हें अर्जुन चुन ले, तो वह मार्ग पर चल पड़ेगा। लेकिन कृष्ण बिल्कुल बिना पक्षपात के दोनों बातें कहे दे रहे हैं।
कृष्ण सिर्फ कह ही नहीं रहे हैं, कहते वक्त वे देख भी रहे हैं, अर्जुन
का निरीक्षण भी कर रहे हैं; अर्जुन को जांच भी रहे हैं, वह किस तरफ झुकता है! क्यों झुकता है!
गुरु के लिए यह भी जानना जरूरी है कि शिष्य कहां-कहां झुक सकता है; क्या-क्या चुन सकता है। क्या गलत की तरफ उसकी वृत्ति हो सकती है? या कि सही के प्रति उसका सहज झुकाव है।
कृष्ण अगर बोल ही रहे होते, तो भी एक बात थी। पूरे समय अर्जुन कृष्ण के सामने जैसे एक प्रयोगशाला की टेबल पर लेटा हो, जहां उसका डिसेक्शन भी हो रहा है, जहां उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े तोड़े जा रहे हैं, जहां उसके मन को तोड़ा जा रहा है। और कृष्ण की गहरी आंखें उसको देख रही हैं कि वह क्या कर रहा है! उसके ऊपर क्या प्रभाव पड़ते हैं! जब कृष्ण कुछ कहते हैं, तो उसके चेहरे पर क्या आकृति आती है! उसके भीतरी प्रभामंडल में क्या घटनाएं घटती हैं! उसके आस-पास चेहरे का जो प्रकाश-वर्तुल है, उस पर कौन से रंग फैल जाते हैं!
यह एक गहरा निदान है, जहां अर्जुन ठीक एक्सरे के सामने खड़ा है। और जहां उसका रोआं-रोआं जांचा जा रहा है। अर्जुन को शायद इसका पता भी न हो। अर्जुन शायद सिर्फ सोच रहा हो कि मेरे प्रश्नों के उत्तर दिए जा रहे हैं। कोई गुरु सिर्फ आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं देता। प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से आपको परखता है, जांचता है, तोड़ता है, पहचानता है। आपके झुकाव देखता है।
मेरे पास लोग आते हैं। कोई मेरे पास कुछ दिन पहले आया, उसने कहा कि जो
भी आप कहें, मैं करने को राजी हूं। वह यह कह रहा है, लेकिन उसका पूरा व्यक्तित्व इसका इनकार कर रहा है। उसके चेहरे पर यह कहते वक्त कोई प्रसन्नता का भाव नहीं है, कोई आनंद की झलक नहीं है। वह धोखा दे रहा है। उसके कहने पर भरोसा करने का कोई कारण नहीं है। वह कहने के लिए कह रहा है, शायद औपचारिक। शायद उसका यह मतलब भी नहीं है। शायद उसने ठीक से सोचा भी नहीं है कि वह क्या कह रहा है कि जो आप कहेंगे, वह मैं करूंगा!
यह बहुत बड़ा वक्तव्य है। और बड़े निर्णय की सूचना है। और संकल्पवान व्यक्ति ही ऐसा आश्वासन दे सकता है।

और इसके कहने के बाद ही वह व्यक्ति मुझे कहता है कि कोई मुझे रास्ता बताएं, क्योंकि मैं कोई निर्णय नहीं ले पाता। और संकल्प मेरा बड़ा कमजोर है। सुबह तय करता हूं, दोपहर बदल जाता हूं।
उसे पता नहीं कि वह क्या कह रहा है। और जब वह कहने लगा कि सुबह तय करता हूं, दोपहर बदल जाता हूं, संकल्प की कमी है, निर्णय पक्का नहीं है, तब उसके चेहरे पर ज्यादा आभा है, ज्यादा प्रसन्नता है। अब वह सच के ज्यादा करीब है। पहले वक्तव्य के समय वह जैसे बेहोश था; होश में नहीं बोला था।
मैंने उससे कहा कि तू अपना पहला वक्तव्य फिर से दोहरा। क्योंकि अगर दूसरी बात सही है, तो तू पहले कैसे कह सकता है मुझे आकर कि जो आप कहेंगे वह मैं करूंगा? यह तो बहुत बड़ा निर्णय है। क्योंकि हो सकता है कि मैं कहूं, तू खिड़की के बाहर कूद जा।
नहीं, वह आदमी बोला कि नहीं-नहीं; आप ऐसा कैसे कह सकते हैं! आप ऐसा कभी नहीं कह सकते।
कृष्ण अर्जुन के सामने सारी बातें रख रहे हैं। और सारी बातों का अर्जुन पर क्या परिणाम हो रहा है, क्या प्रतिक्रिया हो रही है, वह कैसे संवेदित हो रहा है; कब आनंदित होता है; कब दुखी होता है; कब विषाद से भरता है; कब झुकता है; कब अकड़ा रह जाता है; उस सब की जांच भी चल रही है।
इसके पहले कि अर्जुन पहुंचे निर्णय पर, कृष्ण को पता चल जाएगा कि वह क्या निर्णय ले रहा है। उसके मन का कांटा पूरे वक्त डोल रहा है; निर्णय के करीब पहुंच रहा है। और यह मन अगर सिर्फ चेतन ही होता, तो अर्जुन इसे पहले समझ लेता। यह मन अचेतन भी है। उसे अर्जुन नहीं समझ पाएगा। लेकिन उसे कृष्ण समझ पाएंगे।
अर्जुन जैसे ही निर्णय के करीब पहुंचने लगेगा, उसके मन का कांटा ठहरने लगेगा, उसके चारों तरफ की आभा और सुगंध और व्यक्तित्व बदलने लगेगा। और इसके पहले कि वह कहे कि मैं निर्णय पर आ गया, कि तुमने मेरे सारे संदेह दूर किए, कि मेरी निष्पत्ति मुझे उपलब्ध हो गई, कृष्ण इसके पहले जान लेंगे। ध्यान रहे, आपके गहरे अचेतन में जो घटता है, उसको आपको भी पता लगाने में समय लग जाता है। कई दफे तो वर्षों लग जाते हैं।
आज ही एक युवती ने मुझे आकर कहा; किसी के घर में मेहमान है। जिसके घर में मेहमान है, वह आदमी उस युवती को लगता है, कुरूप है। आकर्षण तो नहीं, विकर्षण पैदा होता है। उसे देखकर ही उसको घबड़ाहट होती है। उससे बात करने का मन नहीं होता। वह पास बैठे, तो बेचैनी और सिकुड़ाव पैदा होता है। उस व्यक्ति से एक रिपल्शन है, एक गहरा विकर्षण है। उस युवती ने मुझे आकर कहा, लेकिन कल रात उसके मन में उस व्यक्ति के प्रति प्रेम का भाव उठने लगा। और उससे वह बहुत घबड़ा गई है।
सुबह मेरे पास रोती हुई आई और उसने कहा कि मैं बहुत घबड़ा गई हूं, क्योंकि उस व्यक्ति को तो मैं देख भी नहीं सकती। वह कुरूप है; भद्दा है; घृणोत्पादक है; वीभत्स है। रात लेकिन मेरे मन में उसको प्रेम करने का भाव उठने लगा। तो मैं अपने मन से घबड़ा गई हूं कि यह भाव मेरे मन में कैसे उठा! यह भाव अचानक नहीं उठ गया। कुछ भी अचानक नहीं उठता। यह भाव अचेतन में संगृहीत हो रहा होगा। आते-आते, जैसे बीज टूटता है, अंकुर जमीन तक आते-आते समय लगता है, ऐसे अचेतन से चेतन तक खबर आने में समय लगता है।
और शायद यह जो उसका भाव है विकर्षण का कि यह व्यक्ति आकर्षक नहीं है; घृणा पैदा होती है; यह शायद सिर्फ रक्षा का उपाय है। वह जो भीतर से अंकुर आ रहा है इस व्यक्ति के प्रति आकर्षण का, उससे अपने को बचाने के लिए कवच है। चेतन मन ने एक कवच बना लिया है। जिससे हम बचना चाहते हैं, उसके प्रति हम बुरे भाव ले लेते हैं।
असल में बुरे भाव हम तभी लेते हैं, जब हम आकर्षित हो जाते हैं। विकर्षण कभी पैदा नहीं होता; पहले आकर्षण पैदा होता है। घृणा कभी पैदा नहीं होती; पहले प्रेम पैदा होता है। शत्रु कोई पहले नहीं बना सकता; पहले तो मित्र बनाना ही होगा, तब ही हम किसी को शत्रु बना सकते हैं।
लेकिन कई बार ऐसा होता है कि किसी आदमी को देखकर ही हमें लगता है कि शत्रुता का भाव मालूम होता है; उसका मतलब है कि उस आदमी को देखते ही पहले अचेतन में मित्रता का भाव पैदा हो गया।

शत्रुता सीधी पैदा नहीं हो सकती, वह मित्रता के बाद ही पैदा हो सकती है। और घृणा भी सीधी पैदा नहीं होती, वह प्रेम के बाद ही पैदा हो सकती है। इसीलिए घृणा, शत्रुता नकारात्मक हैं, निगेटिव हैं। निगेटिव कभी सीधा पैदा नहीं होता; पहले पाजिटिव चाहिए।
क्या आप सोच सकते हैं कि कोई आदमी जन्मे ही नहीं और मर जाए! मरने के पहले जन्म जरूरी है। क्योंकि मृत्यु नकारात्मक है। मृत्यु होगी किसकी? अगर प्रेम पैदा नहीं हुआ, तो घृणा होगी कैसे पैदा? और अगर आकर्षण पैदा नहीं हुआ, तो विकर्षण का कोई उपाय नहीं है। अगर कोई मरे, तो मान लेना चाहिए कि वह जन्म गया होगा। बिना जन्मे तो कोई मर नहीं सकता। मृत्यु जन्म का आखिरी छोर है। विकर्षण आकर्षण का आखिरी छोर है। आकर्षण पहले अचेतन में पैदा हो जाएगा, तो हम उससे बचने के लिए विकर्षण की परिधि बना लेंगे।
अब वह भीतर की चोट चेतन तक आ गई, तो अब घबड़ाहट पैदा हो गई है। अब डर पैदा हो गया है।
आपके भीतर भी क्या पैदा होता है, इसको आपको भी पता लगाने में कभी-कभी वर्षों लग जाते हैं। लेकिन अर्जुन के भीतर क्या हो रहा है, इसको पता लगाने में कृष्ण को वर्षों नहीं लगेंगे। कृष्ण के लिए अर्जुन पारदर्शी है, ट्रांसपैरेंट है।
इसलिए ज्ञानी के पास अज्ञानी को एक तरह का भय लगता है। वह भय बिल्कुल स्वाभाविक है। आप ज्ञानी के पास जाने से बचते भी हैं, डरते भी हैं। उस भय और बचाव के पीछे कारण है। क्योंकि जो-जो आपके भीतर छिपा है, जो-जो आपने छिपा रखा है, जिसे आपने अपने से ही छिपा रखा है, जिसे आप भूल ही चुके हैं कि आपके भीतर है, वह भी ज्ञानी की आंख के सामने उभरने लगेगा और प्रकट होने लगेगा। आप अपने को छिपा न पाएंगे।
और कोई आपको आर-पार देख ले, तो बेचैनी अनुभव होगी। कोई आपकी आंखों में उतरकर आपको भीतर तक पकड़ ले, तो आप बहुत चिंता में पड़ जाएंगे। क्योंकि आप आश्वस्त नहीं हैं अपने रूप से। और आप निर्भय रूप से अपने को स्वीकार भी नहीं किए हैं। बहुत-सा हिस्सा अस्वीकृत है, जिसको आपने अपने ही तलघरों में छिपा रखा है। वह आप भी जानते हैं कि गंदा है। उसे कोई जान ले, उसे कोई उघाड़ दे, उसे कोई पहचान ले; आप छिपाए हुए हैं।
आपने अपने असली चेहरे को न मालूम कहां छिपा रखा है। आपने कुछ मुखौटे पहन रखे हैं।
कृष्ण इन सारी चर्चाओं के बीच अर्जुन को बहुत-बहुत ढंग से उघाड़ रहे हैं। वे उसकी भीतरी प्रतिक्रियाओं को, संवेदनाओं को पकड़ रहे हैं। वे उसके मन के कांटे को देख रहे हैं कि वह किस तरह डांवाडोल होता है, वह कहां जा रहा है। और इसके पहले कि अर्जुन निर्णय पर आए... ।
और वह निर्णय क्रांतिकारी होगा। क्योंकि जब संशय गिरता है और असंशय श्रद्धा पैदा होती है, तब एक महान आनंद का क्षण जीवन में उपस्थित होता है। जब सारी अश्रद्धा टूट जाती है और परम आस्था का उदय होता है, तो यह एक जन्म है, एक महाजन्म है, अंधकार के बाहर, प्रकाश में। सारा भटकाव समाप्त हुआ। मंजिल आंखों के सामने आ गई। अब कितनी ही दूर हो, चलने की ही बात है। लेकिन मंजिल पर कोई शक न रहा।
और जब ऐसी घड़ी आती है, तो गुरु, इसके पहले कि शिष्य को पता चले, जान लेता है। क्योंकि शिष्य का पूरा आभामंडल, उसका पूरा व्यक्तित्व बदलने लगता है। जहां वह अशांत था, वहां शांत होने लगता है। जहां वह बेचैन था, वहां एक चैन की हवा उसके चारों तरफ पैदा हो जाती है। जहां वह दौड़ रहा था, अब ठहर गया। जहां लगता था, जीवन व्यर्थ है, कुछ सार नहीं, वहां लगता है कि परम निधि उपलब्ध हो गई; कोई खजाना मिल गया, जो कभी भी चुकेगा नहीं। जहां कंपन था भय का, वहां अभय की थिरता आ जाती है।
जैसे तूफान अचानक शांत हो गया हो और दीए की लौ थिर हो गई हो और जरा भी न कंपती हो, ऐसे शिष्य के भीतर की चेतना ठहर जाती है। इसे वह खुद पहचाने इसमें देर लगेगी, कई कारणों से। एक तो इस कारण भी कि यह अनुभव उसके लिए पहला है। इसको रिकग्नाइज करने का, इसकी प्रत्यभिज्ञा का उसके पास कोई उपाय नहीं है। यह वह पहली दफा जान रहा है। अगर इसने इसके पहले भी जाना होता, तो वह तत्क्षण पहचान लेता कि क्या हो रहा है।

इसलिए कई बार तो ऐसा हुआ है कि कोई साधक अगर अकेले में इस क्षण के करीब
भी आ जाता है, तो चूक जाता है। इसलिए गुरु बड़ा अपरिहार्य हो जाता है। क्योंकि वह पहचान ही नहीं पाता कि क्या हो रहा था। वह मंजिल के बिल्कुल करीब आकर भी रास्ता मुड़ सकता है उसका। वह एक कदम पर, और मंदिर के भीतर हो जाता, कि वह बाएं मुड़ गया। उसे पता नहीं था कि एक ही कदम पर मंदिर करीब है। गुरु पास हो, तो यह भटकाव बचा सकता है। वह फिर एक परिस्थिति पैदा कर देगा, जिससे कदम दाएं मुड़े, बाएं न मुड़ जाए। मोड़ नहीं सकता पैर को, लेकिन विकल्प उपस्थित कर सकता है।
तो कृष्ण इन अठारह अध्यायों में क्रमशः बहुत-से विकल्प मौजूद कर रहे हैं। यह एक सूक्ष्म प्रक्रिया है, जिसमें अर्जुन को वे मार्ग दिखा रहे हैं। अर्जुन कैसा चल रहा है, कहां चल रहा है, वह उन्हें बोध है। वह जैसे- जैसे कदम उठाता है, वैसे-वैसे वे नई बातें, नए तत्व और नए जीवन के द्वार उसके सामने खोलते हैं। आहिस्ता-आहिस्ता, जैसे कोई छोटे बच्चे को किसी अनजान रास्ते पर ले जा रहा हो, वैसे कृष्ण अर्जुन को ले चल रहे हैं।
और कठिनाई इसलिए बढ़ जाती है कि छोटे बच्चे का तो हाथ पकड़कर भी हम ले जा सकते हैं। आत्मिक जीवन की राह पर किसी पर कोई जबरदस्ती नहीं की जा सकती। दूसरे की स्वतंत्रता को परिपूर्ण रूप से सुरक्षित रखकर ही काम करना पड़ता है।
इसलिए गुरु का काम अति दुरूह है। अनुशासन भी देना है उसे और स्वतंत्रता को कायम भी रखना है। तुम्हें मिटाना भी है और तुम्हारी गरिमा को नष्ट नहीं होने देना है। तुम्हारा गौरव जरा भी न छू पाए, और तुम्हारा अहंकार बिल्कुल नष्ट हो जाए। तुम्हारा कचरा तो जल जाए, लेकिन तुम्हारे सोने में कण भी न खोए।
इसलिए कृष्ण अर्जुन की आंतरिकता का भविष्य जानते हैं। कृष्ण, अर्जुन
इस क्षण में, मौजूद क्षण में कैसा डांवाडोल हो रहा है, उसका मन किन दिशाओं में भटक रहा है, उसे भी देख रहे हैं। वे क्या कह रहे हैं, उसके प्रति अर्जुन के क्या उत्तर और क्या संदेह उठ रहे हैं, वे भी उनके सामने हैं। लेकिन वे एक व्यूह रच रहे हैं।
एक तो महाभारत का व्यूह था, जो अर्जुन ने रचा है। और एक उससे भी बड़े युद्ध का व्यूह कृष्ण अर्जुन के आस-पास रच रहे हैं। बिना धकाए अर्जुन को परम मंदिर में प्रविष्ट करवा देना है। और अर्जुन को पता भी न चले कि किसी ने उसे किसी भी तरह से जबरदस्ती की है।
ध्यान रहे कि अगर मोक्ष में आप जबरदस्ती भेज दिए जाएं, तो मोक्ष नरक
हो जाएगा। नरक में भी आप अपनी चेतना से और अपने चुनाव से जाएं, तो नरक भी स्वर्ग हो सकता है। क्योंकि स्वतंत्रता अंतिम बात है। स्वतंत्रता से कोई नरक में भी चला जाए, तो भी सुखी होगा। और परतंत्रता से कोई स्वर्ग में भी चला जाए, तो दुखी हो जाएगा।
परमात्मा के पास आपको अपनी निजता से ही पहुंचना चाहिए। तो गुरु इशारे
कर सकता है; परोक्ष व्यवस्थाएं दे सकता है; परिस्थितियां पैदा कर सकता है। लेकिन सीधा आपको घसीट नहीं सकता।

दूसरा प्रश्नः मुझे लगता है कि प्रमाद मुझ पर भारी है। उससे हलका होने के लिए क्या किया जाए?

प्रमाद के प्रति जागरूकता!
करने से प्रमाद दूर नहीं होगा। छिप सकता है। जैसे कोई आलसी आदमी बैठा है। हम आमतौर से उससे क्या कहें कि उसका आलस्य टूट जाए! हम कहें कि कुछ करो।
ध्यान रहे, आलस्य है तम; हम उसे कुछ काम में लगा सकते हैं। लेकिन काम में लगाना होगा रज। तो तमोगुणी को रजोगुणी बनाना बहुत कठिन नहीं है। वह निष्क्रिय बैठा है, उसे सक्रियता में जुटाया जा सकता है। असली सवाल तमोगुणी से रजोगुणी बन जाने का नहीं है। असली सवाल, चाहे आप रजोगुणी हों, चाहे तमोगुणी हों, सत्वगुणी बनने का है। और सत्वगुणी बनने का एक ही उपाय है कि आप जागरूक हों। जो भी स्थिति है, उसके प्रति जागरूक हों।

एक आलसी आदमी बैठा है, तो हम उससे कहेंगे कि तू अपने आलस्य के प्रति सजग हो जा। भीतर से तू जान, पहचान, और देख। आलस्य को छिपा मत। और आलस्य को युक्तियां खोजकर ढांक मत। तर्क मत खोज। आलस्य को उसकी नग्नता में देख। और कुछ भी मत कर, सिर्फ देख।
अगर दर्शन की यह क्षमता, साक्षीभाव का यह उपाय आलस्य पर लागू हो जाए,
तो यह व्यक्ति सत्व में सरक जाएगा।
और यही हम कहेंगे रजोगुणी को भी, जो सक्रियता में डूबा हुआ है। उससे
भी हम कहेंगे कि तू अपनी सक्रियता के प्रति सजग हो जा; तू अपने कर्म का जो पागलपन है, उसके प्रति जाग जा; होश से भर। तो रजोगुणी भी होश के माध्यम से सत्व में प्रवेश करता है। होश सत्व का द्वार है।
और ध्यान रहे, रजोगुणी और तमोगुणी तो एक-दूसरे के ही रूप हैं। एक शीर्षासन कर रहा है; एक पैर के बल खड़ा है। एक सक्रियता में पागल है। और एक निष्क्रियता में डूबा हुआ मूर्च्छित पड़ा है। दोनों मूर्च्छित हैं। जो आलस्य में पड़ा है, वह इसलिए मूर्च्छित है कि उसके चारों तरफ एक निद्रा का वातावरण है। और जिसको हम सक्रिय देखते हैं, वह भी मूर्च्छित है, क्योंकि क्रिया भी मूर्च्छा लाती है। अगर आप जोर से किसी क्रिया में लग जाएं, तो स्वयं को भूल जाते हैं।
अक्सर ऐसा होता है कि जब तक कोई राजनीतिज्ञ पदों पर होता है, तब तक बिल्कुल स्वस्थ मालूम होता है। जैसे ही पदों से हटता है, कि बीमार होना शुरू हो जाता है। राजनीतिज्ञ पदों से हटकर ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहते। पदों पर जिंदा रहते हैं। और न केवल जिंदा रहते हैं, बड़े स्वस्थ रहते हैं।
और कई दफे चकित होना पड़ता है, क्योंकि इतने पागलपन के चक्कर में भी उनका स्वास्थ्य अनूठा मालूम पड़ता है।
लेकिन कारण है उसका। कारण उसका यही है कि उन्हें कभी अपना ख्याल ही नहीं आता। काम में इस तरह डूबे हैं कि काम एक नशा है, एक शराब है।
आप भी जब तक काम में लगे हैं, तब तक सोचते हैं कि कब विश्राम मिल जाए। लेकिन जिस दिन रिटायर हो जाएंगे, उस दिन अचानक पाएंगे कि दस साल उम्र आपकी कम हो गई।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो आदमी अस्सी साल जीता, वह रिटायर होने के बाद सत्तर साल में मर जाएगा। दस साल, रिटायरमेंट जिस दिन होता है, उसी दिन उम्र से कम हो जाते हैं। क्योंकि नशा छिन जाता है। और जिंदगीभर का नशा था, काम-काम, सुबह से सांझ तक काम। अचानक एक दिन आप पाते हैं कि कोई काम नहीं बचा। नशा टूट जाता है।
काम भी एक नशा है। बहुत-से लोग इसीलिए काम में लगे रहते हैं कि काम में
न लगें, तो वे बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। खाली नहीं बैठ सकते। कुछ हैं, जो खाली बैठ सकते हैं, काम में नहीं जा सकते। क्योंकि उनको लगता है, काम में गए तो उनकी नींद टूटती है। नींद में उन्हें सुख मालूम पड़ता है, बेहोशी का। ये दोनों अलग-अलग तरह के लोग नहीं हैं। एक ही तरह के लोग हैं। सिर्फ एक-दूसरे से उलटे खड़े हैं। एक शीर्षासन कर रहा है और एक पैर के बल खड़ा है। वह जो तामसी है, वह पड़ा रहता है अपनी नींद में, क्योंकि नींद उसे नशा है। जब भी वह काम में लगता है, तो नशा टूटता है। जो काम में लगा हुआ आदमी है, वह रात में सो भी नहीं सकता। रात में भी उसका मन काम करता है। उसको नींद मुश्किल है। उसका काम ही उसका नशा हो गया है।
इसलिए तमोगुणी को रजोगुणी में बदलने का कोई सार नहीं है। रजोगुणी को तमोगुणी में बदलने का कोई सार नहीं है। दोनों को ही सत्वगुणी में बदलने का सार है। और सत्वगुण में जाने का सूत्र है, होश। वह अभी हम कृष्ण के वचन में चलेंगे, तो ख्याल में आ जाएगा।

सूत्रः
और हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण होता है अर्थात बढ़ता
है तथा रजोगुण और सत्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है; वैसे ही तमोगुण और सत्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है।
जिस काल में इस देह में तथा अंतःकरण और इंद्रियों में चेतनता और बोध-शक्ति उत्पन्न होती है, उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा है।

तो सत्वगुण का एक ही लक्षण है, चेतनता। जब आप होश से भरे हैं, तब जानना
कि सत्वगुण बढ़ा है। सत्वगुण चाहिए हो, तो जितना ज्यादा आप होशपूर्वक हो सकें, उतना शुभ है। जो भी आप करें, क्षुद्र से क्षुद्र या बड़े से बड़ा काम, वह होशपूर्वक हो, उसमें कांशसनेस हो, उसे करते वक्त आप जागे हुए करें, सो न जाएं। जितनी जागरूकता की मात्रा बढ़ेगी, उतना आपके भीतर सत्वगुण ज्यादा हो जाएगा; उतने आप साधु, उतने आप सात्विक हो जाएंगे।
यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि कृष्ण जैसा कह रहे हैं, ऐसा आमतौर से धार्मिक लोग नहीं समझते हैं। धार्मिक लोग समझते हैं, अच्छे काम करो, तो सात्विक हो जाएंगे। कृष्ण लेकिन अच्छे काम को कुछ जगह नहीं दे रहे हैं। कृष्ण कहते हैं, होशपूर्वक! चाहे करो और चाहे न करो, लेकिन होशपूर्वक रहो, तो सात्विकता पैदा होगी।
तो एक आदमी खाली भी बैठा हो और होश से भरा हो, तो सात्विक होगा। और एक आदमी समाज की सेवा कर रहा हो, मरीजों की अस्पताल में देखभाल कर रहा हो और होशपूर्वक न हो, तो सात्विक नहीं होगा। आप अपनी जान भी दे दें सेवा में, लेकिन होश न हो, तो आप सात्विक नहीं होंगे। और आप कभी जिंदगी में किसी की सेवा न किए हों, आलस्य में बैठे रहे हों, लेकिन भीतर आलस्य के होश जगा रहा हो, तो आप सात्विक होंगे।
इसका यह मतलब नहीं है कि सात्विक आदमी अच्छे काम नहीं करेगा। सात्विक
ही अच्छे काम कर सकता है। लेकिन सात्विकता अच्छे काम करने से नहीं आती; अच्छे काम सात्विकता से आते हैं।
तो जो जितना जागा हुआ है, वह उतना प्रेमपूर्ण होगा। वह उतना करुणामय होगा, वह उतना तत्पर होगा कि किसी का दुख मिटा सके, तो मिटाने की कोशिश करे। यह सेवा पैदा होगी उसकी जागरूकता से; उसकी जागरूकता का परिणाम होगी। लेकिन इससे बड़ी भ्रांति पैदा हुई है। इससे ऐसा लगता है कि जो सेवा कर रहा है, वह सात्विक हो गया। इस भ्रांति को गांधी ने इस देश में काफी जोर दिया। अच्छा काम करो। समाज का, देश का, दरिद्र का, दीन का कुछ हित करो, कल्याण करो, यही साधुता का लक्षण है। सेवा धर्म है, गांधी ने कहा।
शब्द बड़े अच्छे हैं। और जिनके पास बहुत गहरी परख नहीं है, उन्हें बिल्कुल ठीक लगेंगे। लेकिन बिल्कुल विपरीत हैं। धर्म सेवा है; लेकिन सेवा धर्म नहीं है। धार्मिक व्यक्ति से सेवा उठेगी; लेकिन कोई सेवा को ही साध ले, तो धार्मिक हो जाएगा, इस भूल में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका परिणाम भी सामने है, लेकिन फिर भी मुल्क जागता नहीं।
गांधी ने जितने सेवक पैदा किए थे, वे सब शोषक सिद्ध हुए। जिनको उन्होंने तैयार किया था सब कुछ छोड़ देने के लिए, त्याग के लिए, वे सत्ताधिकारी हो गए और उन्होंने सब कुछ पकड़ लिया। छोड़ने की तो बात ही अलग हो गई।
जैसे ही मुल्क से सत्ता बदली, जो सेवक था, वह अचानक शासक हो गया। तो सेवक था, शायद मजबूरी थी इसलिए। अब कोई सेवक बनने को तैयार नहीं। या अब भी अगर कोई सेवक बनता है, तो साधन की तरह, क्योंकि शासक तक जाने का रास्ता सेवक होने से गुजरता है।
अगर आपकी गर्दन दबानी हो, तो पैर दबाने से शुरू करना चाहिए। धीरे-धीरे
आप आश्वस्त हो जाते हैं कि आदमी पैर ही दबा रहा है, कोई खतरा नहीं है। जैसे ही आप आश्वस्त होते हैं, वह आदमी आगे बढ़ता चला जाता है। जब तक आपकी गर्दन तक आता है, तब तक आप सोए होते हैं; तब दबाने में कोई अड़चन नहीं रह जाती। सीधे गरदन को ही दबाना कोई शुरू करे, तो आप भी चौंक जाएंगे। आप भी कहेंगे, यह किस तरह की सेवा है?
शासक बनना हो, तो पैर दबाने से शुरू करना आसान पड़ता है। सेवा भी सत्ता में पहुंचने का उपाय हो जाती है। इस मुल्क में हुई। सभी जगह होगी। लेकिन भ्रांति सेवकों में नहीं थी; सेवकों को जो समझाया गया, उस मूल सूत्र में थी।
सेवा धर्म नहीं है, यद्यपि धर्म सेवा है।
तो जो व्यक्ति जितना सचेतन हो जाएगा भीतर, उसके जीवन से जो भी होगा, वह शुभ होगा। फिर जरूरी नहीं है कि वह सेवा करे ही। क्योंकि रमण ने किसी की कोई सेवा नहीं की ज्ञात में। कोई नहीं कह सकता कि उन्होंने किसी का पैर

दबाया, कोढ़ी की मालिश की। रमण बिल्कुल खाली बैठे रहे। प्रत्यक्ष में तो कोई सेवा रमण ने नहीं की। अप्रत्यक्ष में की। लेकिन वह तो केवल वे ही देख सकते हैं, जिनको अप्रत्यक्ष देखना आता हो।
अगर सेवकों में गिनना हो, तो गांधी को, विनोबा को गिना जा सकता है। रमण
को कोई भूलकर नहीं गिनेगा। सेवा कहीं दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन जो भी व्यक्ति धर्म को उपलब्ध हो जाता है, उससे कल्याण तो होता ही है।
कुछ हैं जो स्थूल कल्याण में लगते हैं, कुछ हैं जो सूक्ष्म कल्याण में
लग जाते हैं। उनकी मौजूदगी कल्याण का महास्रोत हो जाती है। उनके आस-पास से गुजरने वाले लोग, जहां तक उनकी हवाएं उनकी खबर को ले जाती हैं, उनके अस्तित्व की सुगंध को ले जाती हैं, वहां-वहां तक न मालूम कितने जीवन रूपांतरित होते हैं।
निश्चित ही वे किसी के शरीर की बीमारी दूर करने नहीं जाते। लेकिन शरीर
से गहरी बीमारियां हैं। और शरीर को बिल्कुल स्वस्थ कर दिया जाए, तो भी वे बीमारियां नहीं मिटती हैं। उन बीमारियों को दूर करने का अपरोक्ष, अप्रत्यक्ष आयोजन उनकी मौजूदगी से होता रहता है। लेकिन वह सूक्ष्म कला है; सभी उसमें कुशल नहीं हो सकते।
बुद्ध का शिष्य है, महाकाश्यप। बुद्ध ने सभी शिष्यों को भेजा कि जाओ, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, लोगों को समझाओ, लोगों को जगाओ। लेकिन महाकाश्यप को कभी नहीं भेजा। सारिपुत्र को भेजा, मौदगल्यायन को भेजा। और सैकड़ों शिष्य थे, उनको भेजा कि तुम जाओ, लोगों को जगाओ; लोगों को ज्ञान दो, ध्यान दो; लोगों को करुणा का सूत्र दो; लोगों को सजग बनाओ। लेकिन महाकाश्यप को कभी नहीं भेजा।
आनंद एक जगह बुद्ध से पूछता है, आपने सब को भेजा, लेकिन कभी आप महाकाश्यप को आज तक नहीं कहे कि तू कहीं जा, कुछ कर! बुद्ध ने कहा, महाकाश्यप का होना ही करना है। उसे कहीं भेजने की जरूरत नहीं। वह जहां है, उसके होने से काम हो रहा है। वह बैठा है झाड़ के नीचे, तो भी काम हो रहा है।
उस रास्ते से जो लोग गुजर जाएंगे, वे भी उसके कणों को ले जा रहे हैं।
वह महाकाश्यप, अगर हम ठीक से समझें, तो इनफेक्शस है। वह जिस बुद्धत्व
को उपलब्ध हुआ है, वह बुद्धत्व संक्रामक है; वह उसकी मौजूदगी से फैलता है।
उसे सक्रिय रूप से सीधे-सीधे काम में नहीं लग जाना होता है।
बड़ी गहरी चेतनाएं चुपचाप भी करती रहती हैं। निर्भर करेगा इस बात पर कि किस तरह का व्यक्ति है। अगर अंतर्मुखी व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होगा, सत्व को उपलब्ध होगा, तो वह चुप हो जाएगा, मौन हो जाएगा, शांत हो जाएगा। उसकी मौजूदगी से काम होगा, उसके प्रभाव अप्रत्यक्ष होंगे, पर बड़े गहरे होंगे, दूरगामी होंगे।
अगर बहिर्मुखी व्यक्ति होगा और सत्व को उपलब्ध हो जाएगा, तो उसके प्रभाव विस्तीर्ण होंगे, स्थूल होंगे, बहुत लोगों की सेवा उससे होगी, लेकिन बहुत दूरगामी नहीं होगी। विस्तीर्ण होगी, लेकिन गहरी नहीं होगी। मरीज उससे ठीक होंगे, किसी को जमीन भूमि-दान करवाएगा; किसी को धन, किसी को मंदिर बनवाएगा; कहीं धर्मशाला खुलवाएगा; कहीं गरमी में प्याऊ डलवाएगा; पर उसका काम ऊपर-ऊपर होगा। उससे लाभ होगा, लेकिन वह लाभ स्थूल होगा।
रमण न तो प्याऊ खुलवाते, न भूदान करवाते, न मंदिर बनवाते। पर उनका प्रभाव दूरगामी है। सदियों तक जो लोग भी उनकी तरफ अपने मन को ट्यून करने में सफल हो जाएंगे, वे उनसे प्रभावित होंगे, आंदोलित होंगे, रूपांतरित होंगे। पर वह अदृश्य की घटना है; सभी को दिखाई नहीं पड़ सकती।
सत्व जब पैदा होता है, तो शुभ आचरण में अपने आप आता है।
हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है।
इस प्रक्रिया को समझ लेना चाहिए कि ये गुण कैसे काम करते हैं। रजोगुण
और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है। ये तीनों गुण सभी के भीतर मौजूद हैं। कोई गुण बाहर से लाना नहीं है। तीनों गुण भीतर मौजूद हैं। और तीनों गुणों में जो ऊर्जा काम करती है, वह भी मौजूद है। वह ऊर्जा एक है। ये तीन गुण हैं, वह ऊर्जा एक है।
जैसे समझें कि आपके घर में एक मात्रा का जल है, और घर में से तीन छेद हैं, जिनसे वह जल बाहर जा सकता है। आप चाहें तो एक ही छेद से उस जल को बाहर

भेज सकते हैं; तब धारा बड़ी हो जाएगी। आप चाहें तो तीनों छिद्रों से उस जल को बाहर भेज सकते हैं; तब धाराएं क्षीण हो जाएंगी। आप चाहें तो एक से ज्यादा, दूसरे से कम और तीसरे से और कम जल को भेज सकते हैं।
आपकी जीवन-ऊर्जा की धारा आपके पास है। और यह तीन गुणों का यंत्र आपके पास है। जब आप बिना किसी साधना के जीते हैं, तो सिर्फ परिस्थितियां ही निर्धारक होती हैं कि किस गुण से आपकी ऊर्जा बहेगी--परिस्थितियां, आप नहीं।
और ध्यान रहे, प्रत्येक व्यक्ति प्रतिपल बदलता रहता है। सुबह हो सकता
है तमोगुणी रहा हो, और दोपहर को रजोगुणी हो जाए, और शाम को सत्वगुणी मालूम पड़े। लेकिन परिस्थितियां निर्धारक होती हैं।
समझ लें कि आप सुबह ही उठे और पा रहे हैं कि चित्त आलस्य से भरा है, उठने का कोई मन नहीं, दिनभर बिस्तर में ही पड़े रहें। और तभी पता लगा कि मकान में आग लग गई। तमोगुण तत्क्षण विदा हो जाएगा। आप एकदम रजोगुणी हो जाएंगे। एकदम से तम के द्वार से जो ऊर्जा बह रही थी, वह खींच ली जाएगी। और पूरी की पूरी ऊर्जा रज के द्वार से प्रवाहित होने लगेगी। क्योंकि मकान में आग लगी है; आग बुझाना जरूरी है।
उस वक्त आप नहीं कह सकते कि मैं आलस्य में हूं। अभी मेरा मन नहीं उठने का। आप भूल ही जाएंगे कि नींद भी कोई तत्व है जीवन में, कि बिस्तर में पड़े रहने में भी कोई रस हो सकता है। छलांग लगाकर बिस्तर से उठेंगे, जैसा आप कभी नहीं उठे थे। लेकिन यह घटना घट रही है परिस्थितिवश।
बाहर आकर आपको पता चले कि अफवाह थी; किसी ने ऐसे ही चिल्ला दिया कि मकान में आग लगी है। कहीं कोई आग नहीं लगी। आप वापस अपने बिस्तर में लौट आएंगे। रजोगुण तमोगुण में प्रविष्ट हो गया। वह जो ऊर्जा जगकर सक्रिय होना चाहती थी, वह फिर विश्राम को उपलब्ध हो गई।
बाहर की परिस्थिति आपको चौबीस घंटे चला रही है। इसलिए अगर आपमें भरोसा करने वाले लोग आपके चारों तरफ हों... । आप चोर हैं, और आपके पास आठ-दस लोग हों, जो आपको मानते हों कि आप साधु हैं, तो हो सकता है कि उनकी मान्यता के कारण आपकी धारा सत्वगुण से बहने लगे। क्योंकि वे बारह आदमी आपके अहंकार को बढ़ा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि आप महासाधु हैं। अब आप चोरी करना भी चाहें, तो आपका अहंकार बाधा देता है कि कम से कम मुश्किल से तो जिंदगी में बारह आदमी मिले, जो साधु मानते हैं, अब दो-चार पैसे की चोरी के लिए साधुता को खोना उचित नहीं मालूम होता।
ऐसा हुआ। मैं एक साधु का जीवन पढ़ता था। एक झेन फकीर हुआ। वह चोर था साधु होने के पहले। एक महल से चोरी करके भागा। पुलिस उसके पीछे है; लोग उसको पकड़ने आ रहे हैं। कोई उपाय न देखकर, कोई मार्ग न देखकर, वह एक बुद्ध मंदिर में प्रवेश कर गया। सुबह कोई चार बजे रात का समय था। कोई भिक्षु सोया था, उसके कपड़े टंगे थे। उसने भिक्षु के कपड़े पहन लिए और मंदिर में हाथ-पालथी मारकर बुद्धासन में बैठ गया। नमो बुद्धाय, नमो बुद्धाय का मंत्र जाप करने लगा।
सिपाही भागे हुए मंदिर के पीछे आए। वे उसका पीछा कर रहे थे। लेकिन वहां एक साधु बैठा है, नमो बुद्धाय का पवित्र मंत्र गूंज रहा है। वहां कोई चोर नहीं। वे सिपाही उसके चरणों में झुके; उसको नमस्कार किए; और कहा, साधु महाराज, यहां कोई चोर तो नहीं आया?
जब वे उसके चरणों में झुके, तब उसे बड़ी हैरानी हुई। और एक क्रांति हो गई। उसे लगा कि मैं एक झूठा साधु! और झूठी साधुता में इतना बल--झूठी साधुता में--कि जो मेरी हत्या करने मेरे पीछे लगे थे, वे मेरे चरणों में झुक गए! अगर झूठी साधुता में इतना बल है, तो सच्ची साधुता में कितना बल होगा!
उसने उन सिपाहियों से कहा कि चोर आया था, लेकिन अब तुम उसे खोज न पाओगे। वह चोर मर चुका।
वे सिपाही बोले, हम समझे नहीं! आप रहस्य की बातें न करें। हम सीधे-सादे लोग। हम समझे नहीं आपका मतलब! चोर कहां है? कैसे मर गया?
उस साधु ने कहा, मैं ही था वह चोर, लेकिन अब मैं मर चुका हूं। और वह चोर
अब तुम्हें कहीं भी नहीं मिलेगा। वह नहीं है अब। तुमने मेरे चरणों में झुककर उसकी हत्या कर दी। तुम गोली से उसे नहीं मार सकते थे, लेकिन तुमने

उसे मार दिया। और जब झूठी साधुता में इतना अर्थ हो सकता है, तो मैं अब उस साधुता की तलाश करूंगा, जो सच्ची है।
वह एक बड़ा झेन फकीर हो गया। वह सदा यह घटना लोगों से कहा करता था कि मैं कोई साधु बनने नहीं आया था, परिस्थिति ने सत्व का उदय कर दिया। नमो बुद्धाय! सुबह का सूना मंदिर; मंदिर की दीवारों में गूंजता नमो बुद्धाय का मंत्र; मूर्ति के पास से उठती हुई धूप; सुगंधित वातावरण; सिपाहियों का आना और मेरे चरणों में झुक जाना--मेरी सारी ऊर्जा सत्व से बह गई। एक क्षण को मुझे सत्व का अनुभव हुआ कि साधुता का सुख, साधुता की सुगंध, साधुता का फूल क्या है।
आप पूरे समय बदल रहे हैं। इसलिए अच्छे आदमी के पास आप अच्छे आदमी हो जाते हैं। बुरे आदमी के पास आप बुरे आदमी हो जाते हैं। अगर सक्रिय लोगों के बीच में पड़ जाएं, तो आप सक्रिय हो जाते हैं। अगर आलसियों के बीच में पड़ जाएं, तो आपको नींद आने लगती है।
आपने ख्याल नहीं किया होगा। अगर यहां इतने लोग बैठे हैं; इनमें से दो- चार लोग जम्हाई लेना शुरू कर दें आपके पास, तो ज्यादा देर नहीं लगेगी कि आप जम्हाई शुरू कर देंगे। एक आदमी जम्हाई ले कि पास वाले को खुजलाहट शुरू हो गई! उसके गले से जम्हाई उठने लगी। नींद! वह जो आलसी आपके पास बैठा है, उसने नींद आपको पकड़ा दी।
मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक उल्लेख है। बाजार से गुजरता था, साग-सब्जी, फलों की दुकानें थीं। एक दुकान पर उसे बड़े मधुर आम रखे हुए दिखाई पड़े। पैसे उसके पास नहीं थे। मगर मन जकड़ गया। तो वह कोई उपाय सोचने लगा। वहीं सामने दुकान के सड़क के उस तरफ बैठकर कुछ उपाय सोचने लगा।
तभी दुकानदार ने अपनी लोमड़ी, जो उसने एक लोमड़ी पाल रखी थी, उसे दुकान
के बाहर लाया और लोमड़ी से कहा कि बैठ और दुकान का ध्यान रखना। और किसी भी तरह का कोई आदमी पास आए और संदिग्ध मालूम पड़े, तो आवाज देना। मैं जरा खाना खाने भीतर जाता हूं।
नसरुद्दीन ने सोचा कि बड़ी मुश्किल है। आदमी को भी धोखा देना आसान है।
यह लोमड़ी को धोखा देना और मुश्किल है। पास ही पहुंचे कि वह आवाज कर देगी। तो उसने क्या किया? वह जहां बैठा था, वहां से धीरे-धीरे पास सरकने लगा। आंख उसने बंद कर लीं और झोंके खाने लगा। लोमड़ी ने देखा इस आदमी को सोते हुए; उसकी भी आंखें झपने लगीं। धीरे-धीरे नसरुद्दीन देखता जाता; जब लोमड़ी बिल्कुल सो गई, तब उसने आम उठा लिया। तब नसरुद्दीन आम खाकर छुप रहा। उसने सोचा कि देखें, अब मालिक क्या करता है आकर!
मालिक आया और उसने लोमड़ी को जगाया, उसने कहा, कुछ भूल हो गई। आम कम मालूम पड़ते हैं। क्या गड़बड़ है? कहानी कहती है कि लोमड़ी ने कहा कि यहां तो कोई पास आया नहीं। सिर्फ एक आदमी था, जो सो रहा था। मालिक ने कहा कि मैंने तुझे कहा था कि कोई भी तरह की क्रिया आस-पास हो और कुछ भी संदेह मालूम पड़े, आवाज करना। सोना भी एक क्रिया है। और तुझे सचेत हो जाना चाहिए था।
आपके पास कोई सोने लगे, तो आपके भीतर प्रवाह शुरू हो जाता है।
मेरा अनुभव है। मैं यहां बोल रहा हूं। अगर एक आदमी खांसने लगे--हो सकता है, उसकी खांसी वास्तविक हो--दूसरे लोग संक्रामक हो जाते हैं। खांसी सुनते ही उनको ख्याल आ जाता है कि वे भी खांसना जानते हैं! खांस सकते हैं; उनके पास भी गला है। फिर कठिन हो जाता है, रोकना कठिन हो जाता है। और ऐसा नहीं कि यह सचेतन हो रहा है। यह बिल्कुल अचेतन है।
आप देखें, सड़क पर एक भीड़ चली जा रही है; आंदोलनकारी हैं; कोई घेराव कर रहा है; कोई हड़ताल कर रहा है। आप घूमने निकले थे, आप तेजी से चलने लगते हैं उनके साथ। उनका जोश आपको पकड़ जाता है। वे नारे लगा रहे हैं, आपका भी दिल होने लगता है। वे कहीं आग लगा रहे हैं, आप भी खड़े हो जाते हैं; सहयोगी भी हो जाते हैं!
एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने, जर्मनी में जो नाजीवाद की घटना घटी, उस
पर एक किताब लिखीः दि साइकोलाजी आफ फैसिज्म। वैज्ञानिक था विलहेम रैक। बड़ी अदभुत किताब है, फैसिज्म का मनोविज्ञान। वह भीड़ का मनोविज्ञान है। और हिटलर बड़ा कुशल था। इस बात को जानता था कि भीड़ कैसे काम करती है।
हिटलर अपनी सभाओं में... ।

शुरू-शुरू में जब उसको कोई मानने वाला भी नहीं था, कुल सात आदमी उसकी पार्टी के मेंबर थे। और सातों ही फिजूल लोग थे। एक भी आदमी कीमत का नहीं था। निकाले गए लोग, बेकार लोग, जिनके पास कुछ काम-धाम नहीं था, उन्होंने हिटलर को नेता मान लिया था। लेकिन उन सात के बल पर इस जमीन का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने की कोशिश हिटलर ने की।
वह उन सात बेकार आदमियों को लेकर सभाओं में चला जाता। दूसरों की सभा
हो रही है। वह सात आदमी बिठा देता। वे सात आदमी जगह-जगह से शोरगुल करके डिस्टरबेंस शुरू कर देते। और हिटलर खुद हैरान हुआ कि सात आदमी थे, लेकिन सत्तर क्यों गड़बड़ कर रहे हैं! उसके तो सात ही आदमी थे। सात सत्तर को गड़बड़ करवा देते हैं। सत्तर सात सौ को पकड़ लेते हैं। फिर वे जो मौलिक सात हैं, उनकी तो कोई चिंता करने की जरूरत नहीं। भीड़ ने ले लिया मामला।
फिर इसका उपयोग वह अपनी सभाओं में--जब उसने अपनी सभाएं शुरू कीं, तो उसके पास पचास आदमी थे। दस हजार लोगों की सभा हो, उसके पचास आदमी पचास जगह बैठे रहते। पक्का पता होता कि किस वाक्य के बाद वे पचास आदमी ताली बजाएंगे। जैसे ही हिटलर का इशारा होता, वे पचास आदमी ताली बजाते। पांच हजार आदमी उनका साथ देते। धीरे-धीरे बाकी लोग भी साथ देने लगे। वे पचास आदमी पांच हजार लोगों से तालियां बजवाने लगे। तब हिटलर को सूत्र साफ हो गया कि भीड़ कैसे चलती है।
जो भी चारों तरफ हो रहा है, परिस्थिति बन जाती है और उसमें आप बह जाते हैं। हिंदू मस्जिद में आग लगा रहे हैं। मुसलमान मंदिर तोड़ रहे हैं, आग लगा रहे हैं। इनमें से एक-एक मुसलमान को अलग से पूछो कि क्या सच में तू मंदिर में आग लगाना चाहता है? वह कहेगा कि नहीं। एक-एक हिंदू से पूछो कि तुझे क्या मिलेगा? यह धर्म है कि तू मस्जिद को जला दे या किसी की हत्या कर दे? वह कहेगा, नहीं। लेकिन भीड़ में, वह कहता है, भीड़ में मैं था ही नहीं। भीड़ कुछ कर रही थी, मैं उसका हिस्सा हो गया। भीड़ पकड़ लेती है आपको।
आप जरा देखें! अगर दस मिलिट्री के जवान सड़क पर कवायद कर रहे हों, थोड़ी देर उनके पीछे चलकर देखें! आपको पता नहीं, कब आप लेफ्ट-राइट करने लगे। आपके पैर उनसे मिलने लगेंगे, तब ही आपको ख्याल आएगा, यह मैं क्या कर रहा हूं!
मन अनुकरण करता है। परिस्थिति मन को अनुकरण की सुविधा दे देती है।
अभी भी आप चौबीस घंटे एक गुण में नहीं होते। इसीलिए मंदिरों का उपयोग है, मस्जिदों का उपयोग है। क्योंकि वहां हमने कोशिश की है सत्व की हवा पैदा करने की। दिनभर जो तमोगुणी भी रहा हो, रजोगुणी भी रहा हो, वह भी घंटेभर आकर मंदिर में बैठ जाए, तो सत्व की थोड़ी हवा उसमें पैदा हो सकती है। सत्संग का इतना ही अर्थ है, जहां थोड़ी देर को सत्व की हवा पैदा हो जाए
और आपकी ऊर्जा सत्व से बहने लगे। आप दिनभर कुछ भी कर रहे हों, लेकिन यह स्वाद आपको आने लगे, तो शायद धीरे-धीरे यह स्वाद आपके चौबीस घंटे पर भी फैल जाए। इसमें आपको आनंद मालूम होने लगे और दूसरी चीजें फीकी मालूम होने लगें, तो शायद आप जिंदगी को बदलने का उपाय भी कर लें।
लेकिन ये घटनाएं घटती हैं परिस्थिति से। और जब तक परिस्थिति से घटती हैं, तब तक कोई बड़ा मूल्य नहीं है। बड़ा मूल्य तो तब है, जब आपके संकल्प से घटें। तब आप मालिक हुए। तब भीड़ कुछ भी कर रही हो, आप निज में हो सकते हैं। सारी भीड़ सो गई हो और आप जागना चाहें, तो जाग सकते हैं। सारी भीड़ उपद्रव कर रही हो, हत्या कर रही हो, हिंसा कर रही हो, तो भी आप अपने को भीड़ के प्रभाव से बचा सकते हैं।
और जो व्यक्ति भीड़ के प्रभाव से अपने को बचा लेता है, वही व्यक्ति मालिक है। उसमें आत्मा पैदा हुई। वह आत्मवान हुआ। उसके पहले कोई आत्मा नहीं है। उसके पहले सब हम प्रभावित होकर चल रहे हैं।
और चारों तरफ से हमें प्रभावित किया जा रहा है। और हमें पता भी नहीं चलता कि हम किस भांति पकड़ लिए गए हैं भीड़ के द्वारा, और भीड़ हमें लिए जा रही है। एक बड़ा प्रवाह है, उसमें हम तिनके की तरह बहते हैं।
हे अर्जुन, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है।
इसलिए अगर भीतर सत्वगुण पैदा करना हो, तो रजोगुण और तमोगुण की जो वृत्तियां हैं, आलस्य की और व्यर्थ सक्रियता की... ।

विश्राम बुरा नहीं है; आलस्य बुरा है। फर्क क्या है? विश्राम का मतलब है, आवश्यक, जिससे शरीर ताजा हो, मन प्रफुल्लित हो। विश्राम का अर्थ है, जो श्रम के लिए तैयार करे। इस परिभाषा को ठीक से समझ लेना।
विश्राम का अर्थ है, जो श्रम के लिए तैयार करे। विश्राम का प्रयोजन ही यही है कि अब हम फिर श्रम करने के योग्य हो गए। वह जो श्रम ने हमें तोड़ दिया था, थका दिया था, हमारे स्नायु खराब हो गए थे, जीवकोष्ठ टूट गए थे, वे फिर पुनरुज्जीवित हो गए। विश्राम ने हमें फिर से नया जीवन दे दिया। अब हम फिर श्रम करने के योग्य हैं।
जिस विश्राम के बाद आप श्रम करने के योग्य न हों, वह आलस्य है। उसका मतलब है, विश्राम के द्वारा आप और विश्राम के लिए तैयार हुए जा रहे हैं। विश्राम और विश्राम में ले जा रहा है, तब खतरा है।
ठीक यही बात श्रम के बाबत भी लागू है। श्रम वही सम्यक है, जो आपको विश्राम के योग्य बनाए। अगर कोई ऐसा श्रम है, जो आपको विश्राम में जाने ही नहीं देता, तो वह विक्षिप्तता हो गई। वह फिर श्रम न रहा। ठीक श्रम के बाद आदमी सो जाएगा। बिस्तर पर सिर रखेगा और नींद में उतर जाएगा। ठीक श्रम के बाद।
एक किसान है। दिनभर उसने श्रम किया है खेत पर। सांझ घर आता है, खाना खाता है; और सिर रखता है बिस्तर पर, और सो जाता है। यह श्रम है।
एक दुकानदार है। उसने भी दिनभर श्रम किया है। लेकिन वह जब बिस्तर पर सिर रखता है, तो विश्राम नहीं आता, नींद नहीं आती; मन में हिसाब चलता रहता है। कितने रुपये कमाए; कितने गंवाए; क्या हुआ; क्या नहीं हुआ--वह जारी है। उसका मतलब हुआ कि दुकानदार के श्रम में कहीं कुछ भूल है। वह सिर्फ श्रम नहीं है, शायद लोभ की विक्षिप्तता है।
किसान के श्रम में वह भूल नहीं है। वह सिर्फ शायद भोजन के लिए है। लोभ
की नहीं, जरूरत के लिए है। वह जो किसान है, वह निन्यानबे के चक्कर में नहीं है। वह सिर्फ श्रम कर रहा है। कल की रोटी जुट गई, काफी है। वह जो दुकानदार है, वह कल की रोटी की उतनी फिक्र नहीं कर रहा है। वह रोटी तो उसने बहुत पहले जुटा रखी है। वह कुछ महल बना रहा है लोभ के।
यह निन्यानबे के चक्कर की कहानी आपको याद होगी। इसे ठीक से समझ लेना चाहिए।
एक सम्राट सो नहीं पाता था रात। और उसका जो नाई था, जो रोज उसकी मालिश करता और उसकी हजामत करता, वह कभी-कभी हजामत करते-करते भी सो जाता था। वह जो नाई था, वह कभी-कभी रात उसके पैर दबाते-दबाते भी सो जाता था। वह आया था पैर दबाने, इसको सुलाने, सम्राट को। सम्राट तो जागता ही रहता और वह नाई धीरे- धीरे दबाते-दबाते सो जाता।
उस सम्राट ने कहा कि तेरे पास कुछ कला होनी चाहिए! तू भी गजब का आदमी है। सुलाने हमें आया था और खुद तू सो रहा है! उस नाई ने कहा, मैं गैर पढ़ा- लिखा आदमी, मुझे कुछ कला नहीं आती।
सम्राट ने अपने वजीर से पूछा कि इसमें क्या राज होना चाहिए? वजीर बुद्धिमान था। उसने कहा कि राज है। कल देखेंगे। कल आपको जवाब दे दूंगा। रात वह नाई के घर में निन्यानबे रुपयों की भरी हुई एक थैली फेंक आया। रातभर नाई सो नहीं सका, क्योंकि वह जो एक रुपया कम था! उसने सोचा कि कल कुछ भी कर के एक रुपया जोड़ देना है; सौ हो जाएंगे! गजब हो गया। कभी सोचा नहीं था कि सौ अपने पास हो जाएंगे। एक ही कमाता था वह रोज। रोज खा लेता था। रात सो जाता था।
दूसरे दिन सुबह बिल्कुल आंखें उसकी लाल; रात बिना सोए हुए आया। पैर भी उसने दबाए सम्राट के, तो सम्राट को लगा, आज कुछ फर्क है। उसमें जान न थी। क्योंकि विश्राम न हो, तो कोई श्रम के लिए तैयार नहीं हो सकता। उसने पूछा, मामला क्या है? नाई ने कहा, समझ में मेरे भी नहीं आता; लेकिन रात मैं सो नहीं सका।
सम्राट ने कहा, इसमें कुछ वजीर का हाथ तो नहीं है? वजीर ने तुझ से कुछ कहा तो नहीं? उसने कहा, किसी ने कुछ कहा नहीं। लेकिन जब आप पूछते हैं, तो कल रात मुझे घर में एक निन्यानबे रुपये की थैली पड़ी मिल गई। उससे मैं मुसीबत में पड़ गया हूं। सो नहीं सका। सम्राट ने कहा, मैं समझ गया। वह वजीर चालाक

है। उसने तुझे निन्यानबे के चक्कर में डाल दिया। इसी चक्कर में मैं हूं।
बस, अब बात साफ हो गई।
वह जो दुकानदार है--या कोई भी, जो किसी चक्कर में है, लोभ के, वासना के--
वह श्रम नहीं कर रहा है। उसका श्रम ऊपर-ऊपर है; भीतर कुछ और चल रहा है। वह और जो चल रहा है, वह उसका पागलपन है। वह पागलपन उसे विश्राम न करने देगा। और जब विश्राम न होगा, तो सम्यक श्रम पैदा नहीं होता। और तब एक दुष्टचक्र पैदा होता है। दोनों गलत हो जाते हैं।
सत्वगुण के पैदा होने का अर्थ है, रजोगुण और तमोगुण को ध्यान में रखना है। तमोगुण का उतना ही उपयोग करना है, जिससे विश्राम मिले, आलस्य पैदा न हो। और रजोगुण का उतना ही उपयोग करना है, जिससे जीवन की जरूरत पूरी हो, लोभ पैदा न हो। बस, फिर आपके भीतर सत्व की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी।
यही अर्थ है, तमोगुण और रजोगुण को दबाकर सत्वगुण पैदा होता है अर्थात बढ़ता है। तथा रजोगुण और सत्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है। वैसे ही तमोगुण और सत्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है।
आप अपने भीतर दो को दबा सकते हैं; तीसरा मुक्त हो जाता है। जिसे भी मुक्त करना हो, उसको छोड़कर बाकी दो को दबाना शुरू कर देना चाहिए।
हम सारे लोग सत्वगुण को दबाते हैं। अच्छाई, शुभ हम दबाते हैं। जहां तक
बच सकें, उससे बचते हैं। अगर शुभ करने का कोई मौका हो, शांत होने का कोई मौका हो, सत्व में उतरने की कोई सुविधा हो, तो हम उसको चूकते हैं।
अगर कोई कहे कि आओ, एक घंटा चुपचाप शांति से बैठें, तो हमें व्यर्थ लगता है। हम कहेंगे, कुछ करो। ताश ही खेलें। बैठने से क्या होगा! कुछ करें। झेन फकीर जापान में बैठना सिखाते हैं। वे कहते हैं साधु को, तू बैठना सीख जा बस! पर बैठने में दो बातों का ख्याल रखना पड़ता है। झेन फकीर, जो गुरु होता है, वह हाथ में एक डंडा लेकर घूमता रहता है। दो बातें ख्याल रखनी पड़ती हैं। तमोगुण दबाना पड़ता है और रजोगुण दबाना पड़ता है। दोनों एक साथ दबाना पड़ता है। वह डंडा लेकर घूमता है। वह कहता है, बैठे तो रहो, लेकिन सो मत जाना। सोकर आप धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि आपका सिर हिलने लगेगा। जैसे ही सिर हिला कि डंडा आपके सिर पर होगा। वह गुरु डंडा मारेगा फौरन। और एक बार सिर हिले तो आठ डंडा मारने की आज्ञा है। तो वह आठ बार आपके सिर पर डंडा मारेगा, बेरहमी से। भीतर तक तमोगुण को झटका लग जाए!
न तो सोने देगा, और न कुछ करने देगा। कि आप ऐसा हिलने लगें, तो भी डंडा
पड़ जाएगा। क्योंकि हिलने का मतलब हुआ कि रजोगुण शुरू हो गया। कि आप ऐसा पैर खुजाने लगें, तो भी डंडा पड़ जाएगा। आपको कुछ करने भी नहीं देगा और सोने भी नहीं देगा। दोनों के बीच में, वह कहता है, बैठने की कला है; दोनों के बीच जो रुक जाए, वह झेन की अवस्था में आ गया, ध्यान की अवस्था में आ गया।
तो छः घंटे, आठ घंटे, दस घंटे, बारह-बारह घंटे तक धीरे-धीरे साधक को सिर्फ बैठना होता है।
थोड़ी देर सोचें, छः घंटे सिर्फ बैठे हैं! न कुछ कर सकते हैं और न सो सकते हैं। क्या होगा?
पहली तो वृत्ति यह होगी कि कुछ करो। उस करने की वृत्ति से बहुत कुछ पैदा होता है। ख्याल आएगा कि पैर में खुजलाहट हो रही है। इसमें अपना क्या हाथ है! पैर तो खुजला ही सकते हैं। या कोई चींटी चल रही है। ये सब बातें आना शुरू होंगी। और ये सब झूठ हैं।
अगर आप तैयार हैं बैठे रहने को, तो चींटी भी चलती रहे, तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। और आप तैयार नहीं हैं, तो आप चींटी कल्पित कर लेंगे। वहां जब आप पाएंगे, तो वहां कोई चींटी नहीं है! थोड़ी-बहुत देर अगर आपने रोकने की कोशिश की कि कुछ न करें, तो नींद पकड़ने लगेगी।
हमारी ऊर्जा दो हिस्सों में बहती है, या तो तमोगुण या रजोगुण। रजोगुण
से बचाएं, तो तमोगुण। तमोगुण से बचाएं, तो रजोगुण। और दोनों से बचाएं, तो तीसरे द्वार से पहली दफा झरना फूटेगा।
झेन का सारा सूत्र कृष्ण के इस एक सूत्र में समाया हुआ है। झेन फकीर
जो कर रहे हैं, वह इसी सूत्र का प्रयोग है। बैठे रहें; न तो तंद्रा आए, और न क्रिया पकड़े। अक्रिया में अतंद्रित!

तो आपकी चेतना कहां जाएगी? चेतना को कहीं तो जाना ही है, क्योंकि चेतना एक गति है, ऊर्जा है। जब नींद भी नहीं बन सकती और कर्म भी नहीं बन सकती, तो चेतना ध्यान बन जाती है, होश बन जाती है।
इसलिए जिस काल में इस देह में तथा अंतःकरण और इंद्रियों में चेतनता और बोध-शक्ति उत्पन्न होती है, उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा। और हे अर्जुन, रजोगुण के बढ़ने पर लोभ और प्रवृत्ति अर्थात सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकार के कर्मों का स्वार्थ-बुद्धि से आरंभ एवं अशांति अर्थात मन की चंचलता, विषय-भोगों की लालसा, ये सब उत्पन्न होते हैं। रजोगुण के ये लक्षण हैं।
सत्वगुण का लक्षण है, बोध, अवेयरनेस, जागरूकता। रजोगुण का लक्षण है, लोभ, सांसारिक चेष्टा, कुछ पा लें संसार में। सब प्रकार के कर्मों का स्वार्थ-बुद्धि से आरंभ। मुझे कुछ मिले लाभ, ऐसे किसी कर्म में उतरने की वृत्ति। अशांति, मन की चंचलता, विषय-भोगों की लालसा, ये सब उत्पन्न होते हैं।
अगर रजोगुण से छूटना हो, तो इन सबसे छूटना जरूरी है। और छूटने का एक ही अर्थ है, इनको सहयोग मत दें। जब लोभ उठे, तो उसे देखते रहें। उसको कोआपरेट मत करें। उसको साथ मत दें। लेकिन हम साथ देते हैं।
सुना है मैंने कि नसरुद्दीन एक रात, अचानक आधी रात उठा और पत्नी से बोला, जल्दी चश्मा ला। पत्नी उसे जानती थी। कुछ बिना पूछताछ--उससे पूछताछ करने का कोई सार भी नहीं था--उसने चश्मा उठाकर दे दिया। उसने चश्मा लगाया। आंख बंद करके फिर से लेट रहा।
फिर थोड़ी देर बाद उठा और उसने कहा कि तूने देर कर दी। सब गड़बड़ हो गया।
एक सपना देख रहा था और सपने में एक देवदूत मुझे रुपए दे रहा था। ठीक सौ-सौ के नोट थे। मुझे शक पैदा हो गया कि नोट असली हैं कि नकली, इसलिए तुझसे चश्मा मांगा। और भी एक झंझट थी कि वह नौ नोट दे रहा था और मैं कह रहा था दस दे। उसी दस की झंझट में नींद खुल गई। और फिर आंख बंद करके चश्मा लगाकर मैंने कई बार कहा कि अच्छा भाई, नौ ही दे दे। मगर वहां कोई नहीं है। सपना खो गया। सब नष्ट कर दिया। इतनी देर लगा दी चश्मा उठाने में।
सपने में भी अगर नौ मिल रहे हों, तो दस का मन होता है। वह मन तो वही है,
जो जाग रहा है। वही सपने में सो रहा है। और ऐसा नहीं था कि दस दे रहा होता देवदूत, तो कोई मन रुक जाता। मन कहता, जब मिल ही रहे हैं, तो थोड़े और मांग लो!
मन भिखमंगा है; लोभ उसका स्वभाव है। इसको अगर आप सहयोग देते चले जाते हैं, तो रजोगुण बढ़ेगा। क्योंकि जितना लोभ बढ़ेगा, उतना कर्म में उतरना पड़ेगा। लोभ को पूरा करना हो, तो दौड़-धूप करनी ही पड़ेगी। फिर जितना लोभ बढ़ेगा, उतनी अशांति बढ़ेगी। क्योंकि मिलेगा? नहीं मिलेगा? कैसे मिलेगा? ये सब चिंताएं मन को पकड़ेंगी। और कैसे मिल जाए? क्या तरकीब लगाएं? झूठ बोलें; बेईमानी करें; चोरी करें; क्या करें, क्या न करें; यह सब आयोजन करना होगा। अशांति बढ़ेगी। और मन को बहुत दौड़ाना पड़ेगा। चंचलता बढ़ेगी। रजोगुण इन सारी वृत्तियों को भीतर जन्म देगा। और ये सारी वृत्तियां आपकी सारी ऊर्जा को रजोगुण के द्वार से प्रकट करने लगेंगी।
रजोगुण का अंतिम चरण विक्षिप्तता है। वे जो पागल होकर पागलखानों में बैठे हैं, वे रजोगुण की साकार प्रतिमाएं हैं। उन्होंने इतना दौड़ा दिया मन को कि लगाम वगैरह ही टूट गई। फिर अब वह रोकना भी चाहे, तो रोकने का साधन ही नहीं है। वह बढ़ता ही चला गया। घोड़े सब भागने लगे। लगामें टूट गईं। कहां ले जाने लगे; रास्ते से हट गए। फिर कोई हिसाब न रहा।
पागल हो जाने का अर्थ है कि आपके पास नियंत्रण की कोई क्षमता न रही।
मन इतना लोभ से भर गया कि उसने सब नियंत्रण तोड़ दिए।
रजोगुण अगर पूरा बढ़ जाए, तो विक्षिप्तता अंतिम फल है। अगर तमोगुण पूरा
बढ़ जाए, तो मृत्यु अंतिम फल है। सत्वगुण पूरा बढ़ जाए, तो समाधि अंतिम फल है।
फिर जो आपको खोजना हो। अगर मृत्यु खोजनी हो, तो आलस्य को साधें।
तंद्रा मृत्यु का ही प्राथमिक चरण है। फिर पड़े रहें मिट्टी के ढेर बनकर।
जल्दी ही मिट्टी के ढेर हो जाएंगे।

विक्षिप्तता खोजनी हो, तो लोभ को बढ़ाएं। फिर कोई सीमा न मानें। असीम लोभ में दौड़ते चले जाएं। जल्दी ही आप पागलखाने में होंगे।
और अगर इन दोनों को दबा दें, दबा दें अर्थात इन दोनों के साथ सहयोग अलग
कर लें, तो आपके भीतर सत्व उदय होगा। सत्व महासुख है। और सत्व शुभ में ले जाएगा। सत्व धीरे-धीरे शांति में ले जाएगा। सत्व धीरे-धीरे ध्यान में ले जाएगा।
और सत्व के भी पार जिस दिन आप उठने लगेंगे... । और सत्व उस जगह पहुंचा देता है, जहां से पार उठना आसान है। जब सब विकार छूटने लगते हैं, सिर्फ सत्व का शुद्ध विकार रह जाता है, तो उसे छोड़ने में बहुत कठिनाई नहीं होती। यह करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे दीया जलता है। तो पहले तो वह जो अग्नि की शिखा है, वह तेल को जलाती है। फिर जब तेल जल जाता है, तो बत्ती को जलाती है। फिर जब बत्ती भी जल जाती है, तो खुद जलकर शून्य हो जाती है।
सत्वगुण अग्नि जैसा है। पहले रजोगुण, तमोगुण को जलाएगा। जब वे दोनों
जल जाएंगे, तो खुद को जला लेगा। और जब सत्वगुण भी जल जाता है, जब उसकी भी राख हो जाती है, तब जो शेष रह जाता है, वही स्वभाव है। उसे कृष्ण ने गुणातीत अवस्था कहा है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
पांचवां प्रवचन

संबोधि और त्रिगुणात्मक अभिव्यक्ति

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।। 13।।
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।। 14।।
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसड्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।। 15।।
हे अर्जुन, तमोगुण के बढ़ने पर अंतःकरण और इंद्रियों में अप्रकाश एवं कर्तव्य-कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद और निद्रादि अंतःकरण की मोहिनी वृत्तियां,
ये सब ही उत्पन्न होते हैं।
और हे अर्जुन, जब यह जीवात्मा सत्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करने वालों के मलरहित अर्थात दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है।
और रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ पुरुष मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कृष्ण परम ज्ञानी और त्रिगुणातीत हैं, फिर भी धोखा देते हैं, झूठ बोलते हैं, युद्ध करते हैं। बुद्ध, महावीर, लाओत्से आदि ऐसा कुछ भी नहीं करते। सत्व, रजस, तमस गुणों के संदर्भ में कृष्ण के उपरोक्त व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि दो महापुरुषों के बीच कोई तुलना संभव नहीं है। और सभी तुलनाएं गलत हैं। प्रत्येक महापुरुष अद्वितीय है।
उस जैसा दूसरा कोई भी नहीं।
वस्तुतः तो साधारण पुरुष भी अद्वितीय है। आप जैसा भी कोई दूसरा नहीं।
आपके भीतर ही महापुरुष तब प्रकट होता है, जब आप अपने स्वभाव को, अपनी नियति को उसकी पूर्णता में ले आते हैं।
आप भी बेजोड़ हैं। आप जैसा दूसरा कोई व्यक्ति पृथ्वी पर नहीं है। न आज है, न कल था, और न कल होगा। एक वृक्ष का पत्ता भी पूरी पृथ्वी पर खोजने जाएं, तो दूसरा वैसा ही पत्ता नहीं खोज पाएंगे। एक पत्थर का टुकड़ा भी, एक कंकड़ भी अपने ही जैसा है।
और जब आपका निखार होगा, और आपके जीवन की परम सिद्धि प्रकट होगी, तब तो
आप एक गौरीशंकर के शिखर बन जाएंगे। अभी भी आप बेजोड़ हैं। तब तो आप बिल्कुल ही बेजोड़ होंगे। अभी तो शायद दूसरों के साथ कुछ तालमेल भी मिल जाए। फिर तो कोई तालमेल न मिलेगा।
अभी तो भीड़ का प्रभाव है आपके ऊपर, इसलिए भीड़ से आप अनुकरण करते हैं। भीड़ की नकल करते हैं। और पड़ोसी जैसा है, वैसा ही बनने की कोशिश करते हैं। क्योंकि इस भीड़ के बीच जिसे जीना हो, अगर वह बिल्कुल अनूठा हो, तो भीड़ उसे मिटा देगी। भीड़ उनको ही पसंद करती है, जो उन जैसे हैं। वस्त्रों में, आचरण में, व्यवहार में भीड़ चाहती है आप विशिष्ट न हों, आप पृथक न हों, अनूठे न हों। भीड़ व्यक्ति को मिटाती है; एक तल पर सभी को ले आती है।
इसलिए बहुत कुछ आप में दूसरे जैसा भी मिल जाएगा। लेकिन जैसे-जैसे आपका स्वभाव निखरेगा, वैसे-वैसे आप भीड़ से मुक्त होंगे, वैसे-वैसे अनुकरण की वृत्ति गिरेगी, वैसे-वैसे वह घड़ी आपके जीवन में आएगी जब आप जैसा इस जगत में कुछ भी न रह जाएगा।

कृष्ण, लाओत्से, बुद्ध, उस परम शिखर पर पहुंचे हुए व्यक्ति हैं। किसी
की दूसरे से तुलना करने की भूल में मत पड़ना। उस तुलना में अन्याय होगा।
अन्याय की संभावना निरंतर है। वह अन्याय यह है कि अगर आपको कृष्ण पसंद हैं, तो आप महावीर के साथ अन्याय कर जाएंगे। वह पसंदगी आपकी है। वह पसंदगी आपकी निजी बात है।
और अगर आपको महावीर पसंद हैं, तो कृष्ण आपको कभी भी पसंद नहीं पड़ेंगे।
यह आपका व्यक्तिगत रुझान है। इस रुझान को आप महापुरुषों पर मत थोपें। आपके रुझान में कोई गलती नहीं है। कृष्ण आपको प्यारे हैं, आप कृष्ण को प्रेम करें। और इतना प्रेम करें कि वही प्रेम आपके लिए रूपांतरण का कारण हो जाए, अग्नि बन जाए, और आप उसमें से निखर आएं।
अगर महावीर से प्रेम है, तो महावीर को प्रेम करें। और महावीर के व्यक्तित्व को एक मौका दें कि वह आपको उठा ले, सम्हाल ले; आप डूबने से बच जाएं। महावीर का व्यक्तित्व आपके लिए नाव बन जाए। लेकिन दूसरे महापुरुष से तुलना मत करें। तुलना में गलती हो जाएगी। तुलना केवल उनके बीच हो सकती है, जो समान हैं। उनके बीच कोई समानता का आधार नहीं है। और उन सबके व्यक्तित्व का ढंग बिल्कुल पृथक-पृथक है।
जैसे मीरा है। मीरा नाच रही है। हम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध, और नाचें! कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं। महावीर के होंठों पर बांसुरी रखनी बड़ी बेहूदी मालूम पड़ेगी; एब्सर्ड है। उसकी कोई संगति नहीं बैठती। महावीर का जीवन, व्यक्तित्व, ढंग, उससे बांसुरी का कोई संबंध नहीं बैठ सकता।
कृष्ण के ऊपर मोर-मुकुट शोभा देता है। वह उनके व्यक्तित्व की सूचना है। वैसा मोर-मुकुट आप जीसस को बांध देंगे, तो बहुत बेहूदा लगेगा। जीसस को तो कांटों का ताज और सूली ही जमती है। सूली पर लटककर जब कांटों का ताज उनके सिर पर है, तब जीसस अपने शिखर पर होते हैं। और कृष्ण जब बांसुरी बजा रहे हैं मोर-मुकुट रखकर, तब अपने शिखर पर होते हैं।
एक-एक व्यक्ति अनूठा है यह ख्याल में आ जाए, तो महापुरुष बिल्कुल अनूठे हैं। जब ज्ञान की घटना घटती है, तो ज्ञान की घटना तो एक ही है। ऐसा समझें, यहां हम इतने लोग बैठे हैं। यहां प्रकाश है। तो प्रकाश की घटना तो एक ही जैसी है, लेकिन सभी आंखों में एक जैसा प्रकाश दिखाई नहीं पड़ रहा है। क्योंकि आंखों का यंत्र, देखने वाला यंत्र, प्रकाश को प्रभावित कर रहा है। किसी की आंखें कमजोर हैं, उसे धीमा प्रकाश दिखाई पड़ रहा होगा। किसी की आंखें बहुत तेज हैं, तो उसे बहुत प्रकाश दिखाई पड़ रहा होगा। और किसी की आंखों पर चश्मा है, और रंगीन है, तो प्रकाश का रंग बदल जाएगा। और किसी की आंख बिल्कुल ठीक है लेकिन वह आंख बंद किए बैठा हो, तो प्रकाश दिखाई ही नहीं पड़ेगा, अंधकार हो जाएगा।
जब जीवन की परम अनुभूति घटती है, तो अनुभव तो बिल्कुल एक है, लेकिन व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। जब कृष्ण को वह परम अनुभव होगा, तो वे नाचने लगेंगे। यह उनके व्यक्तित्व से आ रहा है नाच, उस अनुभव से नहीं आ रहा है। जब बुद्ध को वही परम अनुभव होगा, तो वे बिल्कुल मौन होकर बैठ जाएंगे; उनके हाथ-पैर भी नहीं हिलेंगे; आंख भी नहीं झपकेगी। उनके भीतर जो घटना घटी है, वह उनके मौन से प्रकट होगी, उनकी शून्यता से प्रकट होगी, उनकी थिरता से प्रकट होगी। उनका आनंद मुखर नहीं होगा, मौन होगा।
बुद्ध चुप होकर प्रकट कर रहे हैं कि क्या घटा है। कृष्ण नाचकर प्रकट
कर रहे हैं कि क्या घटा है। यह कृष्ण के व्यक्तित्व पर और बुद्ध के व्यक्तित्व पर निर्भर है। घटना एक ही घटी है।
इसे ऐसा समझ लें कि एक चित्रकार सुबह सूरज को उगते हुए देखे। और एक संगीतकार सुबह सूरज को उगता देखे। और एक नृत्यकार सूरज को उगता देखे। और एक मूर्तिकार और एक कवि सूरज को उगता देखे। ये सारे लोगों ने एक ही सूरज को उगते देखा है। और इन सबके चित्त पर एक ही सौंदर्य की घटना घटी है। ये सब आनंद से भर गए हैं। वह सुबह का उगता सूरज इनके भीतर भी कुछ उगने की घटना को जन्म दे गया है। इनके भीतर भी चेतना आंदोलित हुई है।
लेकिन चित्रकार उसका चित्र बनाएगा। अगर आप उससे पूछेंगे कि क्या देखा, तो चित्र बनाएगा। कवि एक गीत में बांधेगा, अगर आप उससे पूछेंगे, क्या देखा। नर्तक नाच उठेगा, नाचकर कहेगा कि क्या देखा।

एक बहुत कीमती विचारक और लेखक यूनान में हुआ अभी-अभी, निकोस कजानजाकिस। उसने एक बड़ी अनूठी किताब लिखी है, .जोरबा दि ग्रीक। एक उपन्यास है, .जोरबा नाम के एक आदमी के आस-पास। वह आदमी बड़ा नैसर्गिक आदमी है, जैसा स्वाभाविक आदमी होना चाहिए। न उसके कोई सिद्धांत हैं, न कोई आदर्श हैं। न कोई नीति है, न कोई नियम है। वह ऐसा आदमी है, जैसा कि आदमी को अगर सभ्य न बनाया जाए और प्रकृति के सहारे छोड़ दिया जाए, तो जो बिल्कुल प्राकृतिक होगा।
जब वह क्रोध में होता है, तो आग हो जाता है। जब वह प्रेम में होता है,
तो पिघलकर बह जाता है। उसके कोई हिसाब नहीं हैं। वह क्षण-क्षण जीता है। कजानजाकिस ने लिखा है कि जब वह खुश हो जाता था या कोई ऐसी घटना घटती, जिससे वह आनंद से भर जाता, तो वह कहता कि रुको। वह ज्यादा नहीं बोल सकता, क्योंकि ज्यादा उसका भाषा पर अधिकार नहीं है, वह शिक्षित नहीं है। तो वह अपना तंबूरा उठा लेता। तंबूरा बजाता। उसे कुछ कहना है; उसके भीतर कोई भाव उठा है, उसे कहना है। वह तंबूरा बजाता। और कभी ऐसी घड़ी आ जाती कि तंबूरे से भी वह बात प्रकट नहीं होती, तो तंबूरा फेंककर वह नाचना शुरू कर देता। और जब तक वह पसीना-पसीना होकर गिर न जाता, तब तक वह नाचता रहता।
कजानजाकिस ने लिखा है कि मुझे उसकी भाषा समझ में नहीं आती थी। लगता था, वह नाच रहा है; कुछ उसके भीतर हो रहा है। और कुछ ऐसा विराट हो रहा है कि उसे प्रकट करने का उसके पास और कोई उपाय नहीं है। लेकिन मेरा ऐसा कोई अनुभव नहीं है।
कजानजाकिस लेखक है, विचारक है, शब्दों का मालिक है। लेकिन फिर उसके जीवन में भी एक घटना घटी और तब उसे पता चला। वह पहली दफा एक स्त्री के प्रेम में पड़ा। जब उस स्त्री ने उसे प्रेम से देखा, उसे निकट लिया और वह उसके प्रेम का पात्र बना, तो जब वह वापस लौटा, तब अचानक उसने पाया कि उसके पैर नाच रहे हैं। अब वह कहना चाहता है, लेकिन अब शब्द फिजूल हैं। अब वह कुछ लिखना चाहता है, लेकिन कलम बेकार है। और जिंदगी में पहली दफा वह आकर अपने कमरे के सामने नाचने लगा। और तब उसे समझ में आया कि वह.जोरबा जो कह रहा था, क्या कह रहा था। लेकिन उसके पहले उसे कुछ भी पता नहीं था।
आपका व्यक्तित्व अभिव्यक्ति का माध्यम है। अनुभूति तो एक ही होगी। लेकिन आपके व्यक्तित्व से गुजरकर उसकी अभिव्यक्ति बदल जाएगी।
तो कृष्ण की अभिव्यक्ति का माध्यम अलग है। जन्मों-जन्मों में वह माध्यम निर्मित हुआ है। अनंत जन्मों में कृष्ण ने वह नृत्य सीखा है। अनंत जन्मों में वह बांसुरी बजाई है।
बुद्ध ने जन्मों-जन्मों में, बुद्ध ने कहा है... ।
बुद्ध के पिता ने जब बुद्ध वापस घर लौटे, तो बुद्ध को कहा कि तू नासमझ है। और अभी भी नासमझ है। मैं तेरा पिता हूं और मेरे पास पिता का हृदय है; मेरे द्वार अभी भी खुले हैं। अगर तू वापस लौटना चाहे, तो वापस आ जा। यह छोड़ भिखारीपन। हमारे वंश में कभी कोई भिखारी नहीं हुआ।
तो बुद्ध ने कहा है कि क्षमा करें। आपके वंश से मेरा क्या संबंध है! मैं सिर्फ आपसे आया हूं, आपसे पैदा नहीं हुआ। जहां तक मुझे याद आते हैं अपने पिछले जन्म, मैं जन्मों-जन्मों का भिखारी हूं। मैं पहले भी भीख मांग चुका हूं। मैं पहले भी संन्यासी हो चुका हूं। यह कोई पहली बार नहीं हो रहा है। यह किसी लंबे क्रम का एक हिस्सा है।
जहां तक मुझे अपनी याद है, बुद्ध ने कहा है कि मैं पहले भी ऐसा ही हुआ हूं। और हर बार यात्रा अधूरी छूट गई। इस बार यात्रा पूरी हो गई। जिस सूत्र को मैं बहुत जन्मों से पकड़ने की कोशिश कर रहा था, वह मेरी पकड़ में आ गया। और तुमसे मेरा परिचय बहुत नया है। मुझ से मेरा परिचय जन्मों-जन्मों का है। तुम्हारे कुल का मुझे कुछ पता नहीं, लेकिन मेरे कुल का मुझे पता है कि मैं जन्मों का भिखारी हूं। और सम्राट होना सांयोगिक था। यह भिक्षु होना मेरी नियति है, मेरा स्वभाव है।
ये बुद्ध भी जन्मों-जन्मों में वृक्ष के नीचे बैठ-बैठकर इस जगह पहुंचे हैं, जहां वे पत्थर की मूर्ति की तरह शांत हो गए हैं।
सबसे पहले बुद्ध की मूर्तियां बनीं। वैसा मूर्तिवत आदमी ही कभी नहीं हुआ था। बुद्ध की मूर्ति बनानी हो, तो बस पत्थर की ही बन सकती है। क्योंकि

वे पत्थर जैसे ही, पाषाण जैसे ही ठंडे और शांत और चुप, सारी क्रियाओं से शून्य हो गए थे।
उर्दू में, अरबी में शब्द है, बुत। वह बुद्ध का अपभ्रंश है। मूर्ति के लिए जो शब्द है, वह है बुत। बुत का मतलब है बुद्ध। बुद्ध के नाम से ही बुत शब्द पैदा हुआ। और बुद्धवत बैठने का मतलब है, मूर्तिवत बैठ जाना। बुद्धवत बैठने का अर्थ है, बुत की तरह हो जाना। जरा-सा भी कंपन न रह जाए, नाच तो बहुत दूर की बात है। जरा-सा झोंका भी न रह जाए भीतर। नाच तो बिल्कुल दूसरी अति है, जहां भीतर कुछ भी थिर न रह जाए, सब नाच उठे, सब गतिमान हो जाए।
तो बुद्ध और कृष्ण का कहां मेल बिठाइएगा? लेकिन जो घटना घटी है, वह एक
ही है। बुद्ध ने जन्मों-जन्मों तक मौन होना साधा है। जब वह महाघटना घटी, तो वे अवाक होकर मौन हो गए। कृष्ण ने जन्मों-जन्मों तक नाचा है सखियों के साथ, उनकी प्रेयसियों के साथ। वह यात्रा लंबी है। जब वह घटना घटी, तो वह नाच से ही प्रकट हो सकती है।
फिर बुद्ध संसार को छोड़कर संन्यस्त हो गए हैं। कृष्ण संन्यस्त नहीं हैं। कृष्ण संसार में खड़े हैं। इसलिए उनका आचरण और व्यवहार बिल्कुल अलग-अलग होगा।
अगर किसी को पागलखाने में रहना पड़े, तो उचित है कि वह पागलों को समझा
दे कि मैं भी पागल हूं; नहीं तो पागल उसकी जान ले लेंगे। और उचित है कि वह चाहे नकल ही करे, अभिनय ही करे, लेकिन पागलों जैसा ही व्यवहार करे। पागलखाने में रहना हो, तो समझदार बनकर आप नहीं रह सकते। नहीं तो बुरी तरह पागल हो जाएंगे। पागलखाने में सेनिटी बचाने का, अपनी बुद्धि बचाने का एक ही उपाय है कि आप पागलों से दो कदम आगे हो जाएं, कि पागलों के नेता हो जाएं। फिर आप पागल नहीं हो सकते।
मेरे एक मित्र पागलखाने में बंद थे। सिर्फ संयोग की बात, छः महीने के लिए बंद किए गए थे, लेकिन तीन महीने में ठीक हो गए। और ठीक हो गए एक सांयोगिक घटना से। पागलपन की हालत में फिनाइल का एक डब्बा पागलखाने में मिल गया, वह पूरा पी गए। उस फिनाइल को पूरा पी लेने से उनको इतने दस्त और कै हुए कि उनका पागलपन निकल गया। वे बिल्कुल ठीक हो गए। लेकिन छः महीने के लिए रखे गए थे। अधिकारी तो मानने को तैयार नहीं थे। अधिकारी को तो सभी पागल कहते हैं कि हम ठीक हो गए। ऐसा कोई पागल है, जो कहता है हम ठीक नहीं हैं!
तो वे अधिकारियों से कहें कि मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं, अब मुझे कोई गड़बड़ नहीं है। मुझे बाहर जाने दो। अधिकारी हंसें और टाल दें कि ठीक है, वह तो सभी पागल कहते हैं।
वे मित्र मुझे कहते थे कि तीन महीने जब तक मैं पागल था, तब तक तो स्वर्ग में था, क्योंकि मुझे पता ही नहीं था कि क्या हो रहा है चारों तरफ। बाकी तीन महीने असली पागलपन के रहे। मैं हो गया ठीक और सारे पागल... । कोई मेरी टांग खींच रहा है; कोई मेरे सिर पर हाथ फेर रहा है। और मैं बिल्कुल ठीक! और अब यह बरदाश्त के बाहर कि यह सब कैसे सहा जाए! न रात सो सकते हैं... । और तीन महीने तक कुछ पता नहीं था। क्योंकि यह खुद भी यही कर रहे थे। और इस भाषा के अंतर्गत थे, इसके बाहर नहीं थे।
बुद्ध पागलखाना छोड़कर बाहर हो गए हैं। इसलिए नहीं कि सभी को पागलखाना छोड़कर बाहर हो जाना चाहिए। बुद्ध को ऐसा घटा। इसको ठीक से समझ लें।
यह बुद्ध की नियति है। यह बुद्ध का स्वभाव है। यह बुद्ध के लिए सहज है, स्पांटेनियस है। ऐसा उनको घटा कि वे छोड़कर जंगल में चले गए। कोई आप छोड़कर चले जाएंगे, तो बुद्ध नहीं हो जाएंगे। अगर आपका स्वभाव यह हो, अगर आपको यही सहज हो, तो आप कुछ भी करें, आप संसार में रह न सकेंगे। आप धीरे-धीरे सरक जाएंगे। यह कोई चेष्टा नहीं है। यह अपने स्वभाव का अनुसरण है।
लेकिन कृष्ण का ऐसा स्वभाव नहीं है। वे पागलखाने में खड़े हैं। और मजे
से खड़े हैं। निश्चित ही, पागलखाने में जो खड़ा है, उसे पागलों के साथ व्यवहार करना है। इसलिए कृष्ण बहुत बार दिखाई पड़ेंगे कि धोखा देते हैं, झूठ बोलते हैं, युद्ध करते हैं। वह पागलों की भाषा है। वहां झूठ ही व्यवहार है। वहां धोखा ही नियम है। वहां युद्ध हर चीज की परिणति है।

और इसीलिए कृष्ण बड़े बेबूझ हो जाते हैं। उनको समझना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि हम साधु को हमेशा गैर-संसारी की तरह देखे हैं। तो गैर-संसारी साधु का व्यवहार अलग बात है। कृष्ण बिल्कुल संसार में साधु हैं। इसलिए उनके और बुद्ध के व्यवहार को तौलना ही मत।
अगर बुद्ध को भी संसार में रहना हो, तो कृष्ण जैसा ही व्यवहार करना पड़ेगा। और कृष्ण को अगर जंगल में झाड़ के नीचे बैठना हो, तो बुद्ध जैसा व्यवहार करना पड़ेगा। धोखा किसको देना और किसलिए देना है? यहां जो चारों तरफ लोग इकट्ठे हैं, इनके बीच अगर जीना है, तो इनके ठीक इन जैसे होकर जीना पड़ेगा।
पर फर्क यही है कि आप भी दे रहे हैं धोखा, लेकिन आप बेहोशी में दे रहे हैं और कृष्ण पूरे होश में दे रहे हैं। आप धोखा दे रहे हैं कर्तृत्व-भाव से। कृष्ण धोखा दे रहे हैं बिल्कुल नाटक के एक अंग की भांति। वे अभिनेता हैं। धोखा उनको छू भी नहीं रहा है। उनके लिए एक खेल से ज्यादा नहीं है। ऐसा समझें कि आपके बच्चे घर में खेल खेल रहे हैं। और आप भी फुरसत में हैं और आप भी उनमें सम्मिलित हो गए हैं। और उनकी गुड्डी का विवाह रचाया जा रहा है। और गुड्डे की बारात निकलने वाली है और आप भी उसमें सम्मिलित हैं। तो आपको बच्चों जैसा ही व्यवहार करना पड़ेगा, नहीं तो बच्चे आपको खेल में प्रविष्ट न होने देंगे। आप यह नहीं कह सकते--यह नियम के भीतर होगा--आप यह नहीं कह सकते कि यह गुड्डी है; इसका क्या विवाह कर रहे हो? गुड़ियों का कहीं विवाह होता है? यह सब फिजूल है। तो आप खेल का नियम तोड़ रहे हैं; फिर आपको खेल के बाहर होना चाहिए।
आपको गुड्डी को मानना पड़ेगा कि जैसे वह कोई सजीव युवती है। और उसी तरह व्यवहार करना पड़ेगा। लेकिन एक फर्क होगा, बच्चों के लिए वस्तुतः वह गुड्डी नहीं रही है। और आपके लिए वह फिर भी गुड्डी है। और आप व्यवहार कर रहे हैं बच्चों के साथ कि खेल जारी रहे।
जैसे कोई प्रौढ़ व्यक्ति बच्चों के साथ खेलता है, वैसे कृष्ण संसार में हैं। इसलिए स्वभावतः, महावीर को मानने वाले, बुद्ध को मानने वाले कृष्ण के प्रति एतराज उठाएंगे, कि यह किस तरह की भगवत्ता है! हम सोच ही नहीं सकते कि भगवान और धोखा दे, झूठ बोले! उसे तो प्रामाणिक होना चाहिए। पर आप जिन भगवानों से तौल रहे हैं, वे संसार के बाहर हैं। आप उस आदमी
से तौल रहे हैं इस आदमी को, जो खेल में सम्मिलित नहीं है, अलग बैठा है। और यह आदमी बच्चों के साथ खेल रहा है। इन दोनों को आप तौलें मत। इनके नियम अलग हैं।
कृष्ण का प्रयोग बड़ा अनूठा है। बुद्ध और महावीर का प्रयोग बहुत अनूठा नहीं है। यह बिल्कुल सरल है। संसार में हैं, तो पागल की तरह; और संसार छोड़ दिया, तो सारा पागलपन छोड़ दिया। कृष्ण का प्रयोग बड़ा अनूठा है। संसार छोड़ भी दिया, और उसके भीतर हैं। पागलपन बिल्कुल पोंछ डाला, और फिर भी पागलों के साथ वैसा ही व्यवहार कर रहे हैं, जैसा कि कोई पागल करे। कृष्ण का प्रयोग अत्यंत अनूठा है।
महावीर, बुद्ध परंपरागत संन्यासी हैं। कृष्ण बहुत क्रांतिकारी संन्यासी हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप इसलिए कृष्ण को चुन लें। आप अपनी नियति को समझें। यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप बुद्ध को छोड़ दें या चुन लें। आप अपनी नियति को समझें। आपके लिए क्या ठीक मालूम पड़ता है; आपके लिए क्या सुगम होगा, सहज होगा; कैसी जीवन-धारा में उतरकर आप व्यर्थ की तकलीफ नहीं पाएंगे, सरलता से बह सकेंगे, वही आपकी नियति है।
फिर आप दूसरे की चिंता में मत पड़ें। कोशिश करके न आप कृष्ण बन सकते हैं और न बुद्ध। कोशिश आपको भ्रांत कर देगी। सहजता ही आपके लिए स्वास्थ्यदायी हो सकती है।
कृष्ण ने क्या किया, इसे समझना हो, तो यह सूत्र ख्याल में रखें कि कृष्ण, बुद्ध जैसे संन्यासी होकर ठीक संसार में खड़े हैं बिना छोड़े हुए। और आपसे कोई भी संबंध संसार में बनाना हो, तो निश्चित ही आपकी भाषा बोलनी जरूरी है और आपके आचरण के साथ चलना जरूरी है। आपको बदलना भी हो, तो भी थोड़ी दूर तक आपके साथ चलना जरूरी है।

इसी संबंध में यह भी समझ लेना उचित होगा कि सत्व, रजस और तमस के गुणों
का इस संबंध में क्या रूप होगा।
अगर कोई व्यक्ति तमस की अवस्था से सीधा छलांग लगाए गुणातीत अवस्था में, तो उसका जीवन-व्यवहार लाओत्से जैसा होगा। क्योंकि उसके पास जो व्यक्तित्व होगा, वह तमस का होगा। चेतना तो छलांग लगा लेगी गुणातीत अवस्था में, लेकिन उसके पास व्यक्तित्व तमस का होगा।
इसलिए लाओत्से कहता है, अकर्मण्यता भली। लाओत्से कहता है, कुछ न करना
ही योग्यता है। ना-कुछ में ठहर जाना ही परम सिद्धि है।
लाओत्से के जीवन में कोई उल्लेख भी नहीं है कि उसने कुछ किया हो। कहा जाता है कि अगर उसके बस में हो चलना, तो लाओत्से दौड़ेगा नहीं। अगर उसके बस में हो बैठना, तो लाओत्से चलेगा नहीं। अगर उसके बस में हो लेटना, तो लाओत्से बैठेगा नहीं। अगर उसके बस में हो सोना, तो लाओत्से लेटेगा नहीं। निष्क्रियता की जो भी संभावना आखिरी बस में हो, उसमें ही लाओत्से डूबेगा। लाओत्से परम ज्ञानी है, पर उसके पास व्यक्तित्व तमस का है। इसलिए आलस्य लाओत्से के लिए साधना बन गई। और निश्चित ही, जो उसने जाना है, वही वह दूसरों को सिखा सकता है।
तो लाओत्से कहता है, जब तक तुम कुछ कर रहे हो, तब तक तुम भटकोगे। ठहरो, करो मत। क्योंकि लाओत्से ने ठहरकर ही पाया है। तो लाओत्से कहता है कि अगर तुम क्या शुभ है, क्या अशुभ है, क्या नीति है, क्या अनीति है, इस व्यर्थता में पड़ोगे, सत्व की खोज में, तो भटक जाओगे। धर्म का नीति से कोई संबंध नहीं। जब जगत में ताओ था, धर्म था, तो कोई नीति न थी; कोई साधु न थे; कोई असाधु न थे। तुम अपनी सहजता में डूब जाओ। और उस डूबने के लिए एक ही कुशलता है, एक ही योग्यता है कि तुम पूरी अकर्मण्यता में, अक्रिया में, पूरे अकर्म में ठहर जाओ।
तमस लाओत्से का व्यक्तित्व है। घटना उसे वही घटी है, जो बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण को घटी है।
जिन लोगों का व्यक्तित्व रजस का है, और वहां से वे छलांग लगा लेंगे, जैसे जीसस, तो फिर परम ज्ञान जब उन्हें पैदा होगा, तो उनका परम ज्ञान उसी क्षण कर्म बनना शुरू हो जाएगा। उनका कर्म सेवा हो जाएगी। वे विराट कर्म में लीन हो जाएंगे। वे कहेंगे, कर्म ही योग है।
कृष्ण ने कहा है, कर्म की कुशलता ही योग है। और लाओत्से कहता है, अकर्म, अक्रिया, सब भांति ठहर जाना ही एकमात्र सिद्धि है।
कर्म की कुशलता योग है, अगर रजस आपका व्यक्तित्व हो और ज्ञान की घटना घटे। घट सकती है। किसी भी जगह से आप छलांग लगा सकते हैं।
अगर सत्व का आपका व्यक्तित्व हो, जैसे महावीर, जैसे बुद्ध, सत्व का व्यक्तित्व है, तो इनके जीवन में न तो आलस्य होगा, लाओत्से जैसी शिथिलता भी नहीं होगी, और न ही जीसस जैसा कर्म होगा। इनके जीवन में बड़ी साधुता का शांत व्यवहार होगा।
महावीर चलते भी हैं, तो रास्ते पर देखकर कि चींटी दब न जाए। यह आदमी रजोगुणी हो ही नहीं सकता, जो चलने में इतना ध्यान रखे कि चींटी न दब जाए। महावीर रात करवट नहीं बदलते कि करवट बदलने में अंधेरे में कोई कीड़ा-मकोड़ा न दब जाए। यह आदमी क्या कर्मठ होगा! यह महावीर श्वास भी सोच-समझकर लेते हैं, क्योंकि प्रति श्वास में सैकड़ों जीवाणु मर रहे हैं।
महावीर पानी छानकर पीते हैं। वह भी जब अति प्यास लग आए, तब पीते हैं।
भोजन बामुश्किल कभी करते हैं, क्योंकि भोजन में हिंसा है। मांसाहार में ही हिंसा नहीं है; सब भोजन में हिंसा है। शाकाहार में भी हिंसा है। क्योंकि शाक-सब्जी में प्राण है। पौधे में प्राण है। माना कि उतना प्रकट प्राण नहीं है, जितना पशु में है, जितना मनुष्य में है, लेकिन प्राण तो है। महावीर पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने घोषणा की कि इस जीवन में सब तरफ प्राण है। इसलिए कहीं से भी भोजन करो, मृत्यु घटित होती है। इसलिए महावीर कहते हैं, पका हुआ फल जो वृक्ष से गिर जाए, पका हुआ गेहूं जो पौधे से गिर जाए, बस वही लेने योग्य है।

लेकिन उसमें भी हिंसा तो हो ही रही है। क्योंकि जो बीज आप ले रहे हैं,
वह अंडे की तरह है। उस बीज से अंकुर पैदा हो सकता था। उससे एक वृक्ष पैदा हो सकता था। उस वृक्ष में हजारों बीज लगते।
तो अगर अंडा खाना पाप है, तो गेहूं का बीज खाना भी पाप है। क्योंकि अंडा बीज है। उसमें पाप क्या है? इसलिए कि मुर्गी पैदा होती है। फिर मुर्गी से और मुर्गियां पैदा होती हैं। एक बड़ी संतति को आपने रोक दिया। एक जीवन की धारा आपने काट दी। एक गेहूं को खाकर भी काट दी। उस गेहूं से नए पौधे पैदा होते। उन पौधों में नए बीज लगते। न मालूम कितने जीवन की धारा अनंत वर्षों तक चलती, वह आपने गेहूं को खाकर रोक दी।
तो महावीर मुश्किल से भोजन करते हैं। अगर भूखे चल सकें, तो भूखे चलते हैं। प्यासे चल सकें, तो प्यासे चलते हैं। कथा यह है कि बारह वर्षों की साधना में उन्होंने केवल तीन सौ साठ दिन ज्यादा से ज्यादा भोजन लिया। बारह वर्ष में एक वर्ष! कभी दो महीने नहीं खाया, कभी महीनेभर नहीं खाया; कभी तीन महीने नहीं खाया। खाते ही तब हैं, जब उपवास आत्महत्या के करीब पहुंचने लगे। जब ऐसा लगे कि अब शरीर ही छूट जाएगा, तभी। जब अपनी ही मृत्यु घटित होने लगे, और वह भी इसलिए कि अभी ज्ञान की घटना नहीं घटी, इसलिए शरीर को सम्हालना जरूरी है। अभी वह परम मुक्ति उपलब्ध नहीं हुई, इसलिए शरीर को ढोना जरूरी है।
इन महावीर से आप कोई जीसस जैसी क्रिया नहीं अनुभव कर सकते। जीसस जाते हैं मंदिर में; देखते हैं कि ब्याजखोरों की कतार लगी है; उठा लेते हैं कोड़ा। सोच भी नहीं सकते, महावीर कोड़ा उठा लें। उलट देते हैं तख्ते ब्याजखोरों के। अकेला एक आदमी इतना जोर से वहां उपद्रव मचाता है कि सैकड़ों ब्याजखोर भाग खड़े होते हैं। यह तो बाद में ही समझ में आता है कि एक आदमी ने इतना उपद्रव कैसे मचा दिया!
पर यह जीसस में एक गहरी क्रांति है। इसलिए जीसस का सूली पर लटकना ठीक गणित का हिसाब है। इतना बड़ा क्रांतिकारी आदमी सूली पर जाएगा ही। इसका दूसरा अंत नहीं हो सकता।
महावीर को हम सूली पर लटकते हुए नहीं सोच सकते। कोई कारण नहीं है। जो किसी को दुख नहीं पहुंचा रहा है; जो किसी के काम में आड़े नहीं आ रहा है; जो किसी को छूता भी नहीं... ।
महावीर की धारा में उनकी अहिंसा को अगर ठीक से समझें, तो उसका मतलब यह होता है कि किसी के कर्म में भी बाधा डालने में हिंसा हो जाती है। कोई आदमी जा रहा है, उसको रोक लेना काम में जाते से, तो भी हिंसा हो जाती है। क्योंकि आप बीच में बाधा डाल रहे हैं।
कोई बाधा नहीं डालनी है। अपने को ऐसे बना लेना है, जैसे मैं हूं ही नहीं। तो ऐसा व्यक्ति क्रांति नहीं ला सकता। या ऐसे व्यक्ति की क्रांति बड़ी अदृश्य होगी। उसके कोई दृश्य रूप नहीं होंगे।
सत्व अगर हो, तो महावीर जैसा व्यक्ति पैदा होगा, व्यक्तित्व में अगर सत्व हो! अगर रज हो, तो जीसस जैसा व्यक्ति पैदा होगा। तम हो, तो लाओत्से जैसा व्यक्ति पैदा होगा।
इसको और भी तरह से समझ लें।
इसलिए लाओत्से के पीछे कोई बहुत बड़ा विराट धर्म नहीं बन सका। अकर्मण्यता के आधार पर आप बनाएंगे भी कैसे? कौन करेगा प्रचार? कौन जाएगा समझाने? लाओत्से का मानने वाला शांत बैठ जाता है। आप उसे हिलाएं-डुलाएं, बहुत पूछें, तो बामुश्किल जवाब देगा।
लाओत्से जिंदगीभर नहीं बोला। आखिर में सिर्फ यह ताओ-तेह-किंग, एक छोटी-सी किताब उसने लिखवाई। यह भी मजबूरी में कि पीछे ही पड़ गए लोग कि उसको जाने ही नहीं देते थे मुल्क के बाहर।
वह जाना चाहता था हिमालय की यात्रा पर, अपने को खो देने के लिए हिमालय में। उसको रोक लिया चुंगी चौकी पर और कहा कि जब तक तुम्हारा ज्ञान तुम लिख न दोगे, जाने न देंगे। तो तीन दिन वह चुंगी चौकी पर बैठकर उसने लिखवाया, जो उसको ज्ञान था।
यह भी जबरदस्ती लिखवाया गया। यह कोई लाओत्से ने अपने मन से लिखा नहीं। अगर चुंगी चौकी का अधिकारी चूक जाता और लाओत्से निकल गया होता, तो

ताओ-तेह-किंग न होती और लाओत्से के नाम का भी आपको पता नहीं होता। यह सारा गुण चुंगी चौकी के उस अधिकारी को जाता है, जिसका किसी को नाम पता नहीं कि वह कौन आदमी था। इसलिए लाओत्से के पीछे कोई बड़ा विराट आयोजन नहीं हो सका। महावीर सत्व के प्रेमी हैं और उनका व्यक्तित्व सत्व से भरा है। इसलिए महावीर का धर्म बहुत नहीं फैल सका। क्योंकि उसमें कर्मठता नहीं है। आज भी हिंदुस्तान में केवल बीस-पच्चीस लाख जैन हैं। अगर महावीर ने पच्चीस जोड़ों को जैनी बना लिया होता, तो दो हजार साल में उनसे पच्चीस लाख आदमी पैदा हो जाते। पच्चीस लाख कोई संख्या नहीं है; फैल नहीं सका।
लेकिन ईसाइयत फैली, क्योंकि रजस-प्रधान है। ईसाइयत फैली, सारी जमीन
को ढंक लिया उसने। इस्लाम फैला, सारी जमीन को ढंक लिया उसने। दोनों रज-प्रधान हैं।
मोहम्मद तो बहुत ही ज्यादा रज-प्रधान हैं। उनका तो सारा व्यक्तित्व रजस से भरा है। हाथ में तलवार है। और किसी भी भांति फैलाना है वह, जो उन्होंने जाना है।
आज जमीन वस्तुतः दो बड़े धर्मों में बंटी है, ईसाइयत और इस्लाम। बाकी धर्म नगण्य हैं।
यह जो बुद्ध के धर्म का प्रचार हो सका, वह भी एक अनूठी घटना है। क्योंकि बुद्ध के धर्म का प्रचार भी होना नहीं चाहिए। जैसा महावीर सिकुड़ गए, ऐसा ही बुद्ध की बात भी सिकुड़ जानी चाहिए। वे भी सत्व-प्रधान व्यक्तित्व हैं। लेकिन एक सांयोगिक घटना इतिहास की और जिसने बुद्ध के धर्म को मौका दे दिया फैलने का।
अगर बुद्ध का धर्म भारत में ही रहता, तो कभी नहीं फैलता। जितने जैन हैं, उससे भी कम बौद्ध भारत में बचे हैं। अभी नए बौद्धों को भी गिन लिया जाए, तो तीस लाख होते हैं।
नए बौद्ध कोई बौद्ध नहीं हैं। एक राजनैतिक चालबाजी है। अंबेदकर का बौद्ध धर्म से क्या लेना-देना! अंबेदकर पच्चीस दफा सोच चुका पहले कि मैं ईसाई हो जाऊं और सब हरिजनों को ईसाई बना लूं। यह सिर्फ एक राजनैतिक स्टंट था। फिर उसे लगा कि बौद्ध हो जाना ज्यादा बेहतर है। तो अंबेदकर बौद्ध हो गए। और अंबेदकर ने सैकड़ों हरिजनों को, विशेषकर महाराष्ट्र में, बौद्ध बना लिया। इनका बौद्ध धर्म से कोई लेना-देना नहीं। भारत में बौद्ध हैं ही नहीं, खोजना मुश्किल है।
भारत में अगर बुद्ध धर्म रुका होता, जैसा कि जैन धर्म रुका, तो जैन धर्म से भी बुरी हालत थी। लेकिन हिंदुओं की कृपा से! हिंदुओं ने बौद्धों का इस बुरी तरह विनाश किया कि बौद्ध भिक्षुओं को हिंदुस्तान छोड़कर भाग जाना पड़ा। ये जो भागते हुए भगोड़े बौद्ध भिक्षु थे, ये बौद्ध धर्म को हिंदुस्तान के बाहर ले गए। और हिंदुस्तान के बाहर इन बौद्ध भिक्षुओं को वे लोग मिल गए, जो रज-प्रधान हैं।
हिंदुस्तान के बाहर इनको प्रचारक मिल गए, क्योंकि वैक्यूम था। और खाली जगह प्रकृति को पसंद नहीं है। चीन में जब पहुंचे बौद्ध, तो कनफ्यूसियस का प्रभाव था। लेकिन कनफ्यूसियस सिर्फ नैतिक है, उसका कोई धर्म नहीं है। और लाओत्से का प्रभाव था। लाओत्से बिल्कुल आलसी है, उसके प्रचार का कोई उपाय नहीं। खाली जगह थी। बौद्ध विचार की छाया एकदम जोर से अनुभव होने लगी। सम्राट चीन के बौद्ध हो गए। सम्राट होते हैं रज-प्रधान। हिंदुस्तान में भी बौद्ध धर्म को बाहर भेजने में अशोक ने काम किया।
वह बुद्ध के ऊपर उसका श्रेय नहीं है, अशोक के ऊपर है। सम्राट होते हैं रज-प्रधान। यह अशोक लड़ रहा था; युद्धों में लगा था। और फिर यह बौद्ध हो गया। एक रूपांतरण! हिंसा से दुखी होकर, पीड़ित होकर; अपने ही हाथ से लाखों लोगों को मरा हुआ देखकर एकदम उलटा हो गया; शीर्षासन कर लिया। हिंसा का बिल्कुल इसने त्याग कर दिया। इसने बौद्ध धर्म को भेजा। इसने जिनके हाथ से भेजा, वे एक तरह के राजनैतिक संदेशवाहक थे। अशोक ने अपने बेटे को भेजा, अपनी बेटी संघमित्रा को भेजा लंका, प्रचार करने।
अशोक ने राजनैतिक ढंग से बौद्ध धर्म को बाहर भेजा। वह रज-प्रधान व्यक्ति था। और सम्राट रूपांतरित हुए, तो बौद्ध धर्म फैला।

ध्यान रहे, जब भी कोई धर्म फैलेगा, तो उसके पीछे रजस ऊर्जा चाहिए।
धर्म को जन्म देने वाला व्यक्ति किस तरह के व्यक्तित्व का है, इस पर निर्भर करेगा।
कृष्ण को समझ लेना इस संदर्भ में जरूरी है।
कृष्ण स्वयं, इन तीनों में से किसी की भी प्रधानता उनमें नहीं है।
कृष्ण में ये तीनों गुण, कहें, समान हैं; बराबर मात्रा के हैं। और इसलिए कृष्ण में तीनों बातें पाई जाती हैं। वह जो तामसिक आदमी कर सकता है, कृष्ण कर सकते हैं। वह जो राजसिक आदमी कर सकता है, कृष्ण कर सकते हैं। वह जो सात्विक आदमी कर सकता है, कृष्ण कर सकते हैं।
आपने कृष्ण का एक नाम सुना है, रणछोड़दास। हिंदू बहुत अदभुत हैं। वे इसको बड़े आदर से लेते हैं। रणछोड़दासजी के मंदिर हैं जगह-जगह। रणछोड़दास का मतलब है, भगोड़ा, युद्ध को छोड़कर भागा हुआ। पर उसको भी हम कहते हैं, रणछोड़दासजी! युद्ध को जिसने पीठ दिखा दी, वह रणछोड़।
कृष्ण का पूरा व्यक्तित्व त्रिवेणी है। उसमें नाच-रंग है, जो अक्सर तामसी व्यक्ति में होता है। मौज है, उल्लास है। उसमें बड़ा वीर्य भी है। संघर्ष की क्षमता है, युद्ध की कुशलता है, जो कि राजसी व्यक्ति में होती है। उसमें बड़ी सात्विकता है, बड़ी शुद्धता है, बच्चे जैसी शुद्धता, निर्दोषता है। लेकिन यह सब इकट्ठा है। इसलिए कृष्ण बेबूझ हो जाते हैं और पहेली हो जाते हैं।
बुद्ध पहेली नहीं हैं। अगर आपके पास थोड़ी भी अक्ल है, तो बुद्ध का पाठ खुला हुआ है। पहेली कुछ भी नहीं है। महावीर में कोई पहेली नहीं, कोई रहस्य नहीं है। बात सीधी-साफ है। दो और दो चार, ऐसा गणित है।
लेकिन कृष्ण का मामला बहुत उलझा हुआ है। क्योंकि तीनों गुण हैं और तीनों समतुल हैं। और इसलिए कृष्ण हमें धोखेबाज भी लगते हैं; झूठ भी बोलते लगते हैं; वचन देते हैं, तोड़ते लगते हैं।
ऐसा समझें कि जैसे कृष्ण एक व्यक्ति नहीं हैं, तीन व्यक्ति हैं। तो जैसे तीन व्यक्तियों का जीवन तीन तरह से चलता रहेगा, ऐसा कृष्ण के भीतर तीन धाराएं इकट्ठी चल रही हैं। कृष्ण एक त्रिवेणी हैं। और इसलिए जो भी कृष्ण को गणित में बिठालना चाहेगा, वह कृष्ण के साथ अन्याय करेगा।
इसलिए कुछ हैं, जो गीता के कृष्ण को पूजते हैं; भागवत का कृष्ण उन्हें प्रिय नहीं। वे उसको छोड़ देते हैं। वे कहते हैं, यह कवियों की कल्पना है। ये असली कृष्ण नहीं हैं।
कुछ हैं, जो गीता के कृष्ण की फिक्र ही नहीं करते। उनको भागवत का कृष्ण प्यारा है। स्त्रियां स्नान कर रही हों, तो उनके कपड़े चुराकर झाड़ पर बैठ सकते हैं।
कृष्ण एक पहेली हैं, क्योंकि ये तीनों गुण उनमें समान हैं। और तीनों गुणों के रंग उनके व्यक्तित्व में हैं। ये तीनों स्वर उनके साथ एक साथ बज रहे हैं।
यह व्यक्तित्व की बात है। अनुभव तो तीनों के पार का होगा। बुद्ध को भी
जो मिला है, वह भी तीनों गुणों के पार उन्होंने जाना है। महावीर ने भी, मोहम्मद ने भी, जीसस ने भी, लाओत्से ने भी, कृष्ण ने भी। अनुभूति तो तीनों गुणों के पार है, गुणातीत है। लेकिन जो व्यक्तित्व हमारे पास है, उससे अनुभूति प्रकट होगी।
महावीर, बुद्ध, लाओत्से के पास एक ढंग के व्यक्तित्व हैं, इकहरे व्यक्तित्व हैं। कृष्ण के पास तेहरा व्यक्तित्व है। इसलिए कृष्ण का संगीत थोड़ा उलझा हुआ है। और उसे सुलझाने के लिए बड़ी कुशल आंख, बड़ी गहरी आंख चाहिए। नहीं तो फिर कृष्ण के साथ अन्याय हो जाना सुनिश्चित है।

एक प्रश्न औरः आपने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मुक्ति स्वयं खोजनी होगी और यही मुक्ति या स्वतंत्रता की गरिमा भी है। अन्यथा स्वतंत्रता झूठी व व्यर्थ हो जाएगी। इस दृष्टि से कृष्ण का या आपका यह कहना कि समर्पण करो और मैं बदल दूंगा, मुक्त कर दूंगा, कहां तक उचित है?

कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज--
सब धर्म छोड़, तू मेरी शरण में आ। मैं तुझे मुक्त कर दूंगा। इससे स्वभावतः मन में प्रश्न उठेगा। एक ओर मैंने कहा कि निर्णय अंतिम आपका है। आपकी पूरी स्वतंत्रता है। और यही आपके जीवन की गरिमा है कि कोई आपको जबरदस्ती मोक्ष में प्रवेश नहीं करवा सकता; कृष्ण भी नहीं करवा सकते।
इसीलिए तो कहना पड़ रहा है, सर्व धर्मान परित्यज्य। कृष्ण भी जबरदस्ती अर्जुन को मुक्ति नहीं दे सकते। कृष्ण भी कह रहे हैं कि तू पहले सब समर्पण कर। वह समर्पण का निर्णय अर्जुन को लेना पड़ेगा। और वह समर्पण का निर्णय अर्जुन ले, तो कृष्ण कुछ कर सकते हैं।
समर्पण का निर्णय बहुत बड़ा निर्णय है, सबसे बड़ा निर्णय है। इस जगत में
सब निर्णय छोटे हैं। किसी के हाथ में मैं अपने को पूरा सौंप दूं, यह बड़े से बड़ा निर्णय है। इससे बड़ा और कोई निर्णय नहीं है।
ध्यान रहे, समर्पण सबसे बड़ा संकल्प है। उलटा लगता है। क्योंकि हम सोचते हैं, संकल्प का तो अर्थ ही होता है, अपने पर निर्भर रहना। और समर्पण का अर्थ है, दूसरे पर सब छोड़ देना। लेकिन छोड़ने की घटना अगर आप कर सकते हैं, तो उसका मतलब हुआ कि आप एकजुट हो गए हैं, आप इकट्ठे हैं। आप अपने को छोड़ सकते हैं।
छोड़ वही सकता है, जो अपना मालिक हो। जो संकल्पवान हो, वही समर्पण कर सकता है। हर कोई समर्पण नहीं कर सकता। कमजोर, नपुंसक के लिए समर्पण का मार्ग नहीं है। कायर के लिए समर्पण का मार्ग नहीं है; जो कहे कि हां, हम बिल्कुल तैयार हैं। कहने से तैयारी नहीं होती। यह अर्जुन ही कर सकता है। इसलिए कृष्ण ने अगर अर्जुन से कहा कि तू सब छोड़ दे, तो सोचकर कहा है।
यह क्षत्रिय है; संकल्प ले सकता है; समर्पण का भी ले सकता है।
जापान में क्षत्रियों की एक जमात है, समुराई। समुराई जापान के क्षत्रिय हैं, शुद्धतम, जो सिर्फ लड़ना ही जानते हैं। मगर लड़ने के पहले उन्हें एक कला सिखाई जाती है, जो दुनिया में कहीं भी नहीं सिखाई जाती। और उस कला के कारण समुराई का कोई मुकाबला नहीं है।
इसके पहले कि उन्हें सिखाया जाए कि दूसरे को कैसे मारो, समुराई को सिखाया जाता है कि तुम अपनी आत्महत्या कैसे कर सकते हो। और जब तक तुम कुशल नहीं हो अपने को मारने में, तब तक तुम दूसरे को मारने के हकदार नहीं हो। पहले तुम ठीक से तैयार हो जाओ अपने को मिटाने के लिए।
तो समुराई पहले सीखता है, आत्महत्या, हाराकिरी। बड़ा गहरा उसका गणित है। ठीक नाभि के दो इंच नीचे हारा नाम का केंद्र है, जो कि योगियों की खोज है। उस हारा नाम के केंद्र पर जरा-सी भी चोट छुरे की हो जाए, कि शरीर से आत्मा अलग हो जाती है बिना किसी पीड़ा के।
इसलिए समुराई का लक्षण यह है कि जब वह छुरा मारकर अपनी हत्या करता है,
तो उसके चेहरे पर पीड़ा का एक भाव भी नहीं होना चाहिए--मरने के बाद भी, उसकी लाश पर भी। अगर पीड़ा का जरा भी भाव है, तो वह चूक गया। वह समुराई नहीं था। उसे मरने की कला नहीं मालूम थी। उसने छुरा कहीं और मार लिया।
ठीक नाभि के नीचे जीवन का स्रोत है, उस स्रोत की बिल्कुल बारीक धारा है। उस बारीक धारा को तोड़ देते से ही जीवन शरीर और आत्मा का अलग-अलग हो जाता है, जरा-सी पीड़ा के बिना। समुराई के चेहरे पर कोई भाव भी नहीं आता दुख का, विषाद का। वह वैसा ही प्रफुल्लित और ताजा होता है, जैसा जीवित था। आपको लगे कि सिर्फ सो गया है।
पहले समुराई को सिखाते हैं, खुद को मिटाने की कला। और तब उसे कहते हैं
कि अब तू युद्ध में जा; अब तुझे कोई भय न पकड़ सकेगा; क्योंकि तूने मृत्यु भी सीख ली। और मृत्यु के माध्यम से तूने आत्मा को जानने का द्वार भी सीख लिया; शरीर से अलग आत्मा को करने का मार्ग भी सीख लिया।
यह अर्जुन समुराई जैसा क्षत्रिय है। यह अपने जीने के लिए सबको मार भी सकता है। और जरूरत हो, इसे जीवन व्यर्थ मालूम पड़े, तो एक क्षण में अपने को समाप्त भी कर सकता है।
इस अर्जुन से कृष्ण कह रहे हैं कि तू सब छोड़ दे। यह छोड़ सकता है। यह क्षत्रिय है। सब! इसमें कुछ हिसाब नहीं रखना है कि कितना! कुछ पीछे अपने को बचा नहीं लेना है। क्योंकि समर्पण आधा नहीं हो सकता; पूरा ही होगा।

पूरा समर्पण महान संकल्प है। यह ख्याल में भी लेना कि मैं किसी के हाथ में अपना पूरा भविष्य सौंपता हूं, अपना पूरा जीवन सौंपता हूं, और जो भी हो परिणाम, मुझे स्वीकार है, अब इसको वापस नहीं ले सकूंगा। समर्पण वापस नहीं लिया जा सकता। यह आखिरी निर्णय है जो आदमी ले सकता है।
ध्यान रहे, कृष्ण थोड़े ही रूपांतरण करेंगे। इस समर्पण के करने की प्रक्रिया में रूपांतरण हो जाएगा। इतने सहज भाव से जो मिटने को राजी है, वह रूपांतरित हो गया।
इसलिए दूसरी जो बात है कृष्ण की कि मैं तुझे बदल दूंगा, तू सब समर्पण कर। दूसरी बात तो सहज परिणाम है। कृष्ण को कुछ करना नहीं पड़ेगा। कृष्ण कुछ कर भी नहीं सकते। करने का कोई उपाय भी नहीं है। बस, यह अर्जुन को समझ में अगर आ जाए कि यह सब छोड़ने को राजी हो जाए।
तो यह बड़े मजे की बात है। जब भी कोई सब छोड़ने को राजी हो जाता है, तो उसके जीवन की सब पीड़ा, सब दुख, सब तनाव विदा हो जाते हैं। क्योंकि सब छोड़ने का मतलब है, अहंकार छोड़ना। और मैं ही, मेरा अहंकार ही सारे उपद्रव की जड़ है। वह जड़ कट जाती है। कटते ही आदमी आत्मज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। गुरुओं ने कहा है कि सब छोड़ दो, हम तुम्हें बदल देंगे। बदलने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। और अगर आप जाकर पूछें कि मैंने सब छोड़ दिया; मैं अभी तक नहीं बदला! तो उसका सिर्फ मतलब इतना है कि आपने कुछ छोड़ा नहीं। और कुछ भी मतलब नहीं है। नहीं तो दूसरी घटना तो अनिवार्य है। उस दूसरी घटना को करने के लिए गुरु को कुछ करना नहीं पड़ता है। वह समर्पण का सहज फल है।
पर निर्णय अंततः आपका है। स्वतंत्रता आपकी है। उसे कोई भी नहीं छीन सकता। और जब आप छोड़ते हैं, तो यह आपकी स्वतंत्रता का कृत्य है। जब आप कहते हैं, मैं छोड़ता हूं सब चरणों में, तो यह आपकी स्वतंत्रता का आखिरी कृत्य है। इस कृत्य के परिणाम में मुक्ति फलित होती है।
कृष्ण तो सिर्फ कैटेलिटिक एजेंट हैं, वे तो सिर्फ एक बहाना हैं। तो इसलिए कोई असली कृष्ण को भी खोजने की जरूरत नहीं है। मंदिर में खड़े कृष्ण के सामने भी आप सब छोड़ दें, तो यही घटना घट जाएगी। हालांकि वहां कोई भी नहीं खड़ा है।
यह घटना कहीं भी घट सकती है। यह घटना आपके छोड़ने पर निर्भर है। किस पर
आप छोड़ते हैं, यह बात गौण है। इसलिए जीसस पर कोई छोड़े, कृष्ण पर कोई छोड़े, बुद्ध पर कोई छोड़े, कोई फर्क नहीं पड़ता। किस पर छोड़ा, यह गौण है। छोड़ा, तत्क्षण आप दूसरे हो जाते हैं। नए का जन्म हो जाता है।
समर्पण पुनर्जन्म है, शरीर में नहीं, परमात्मा में। वह जीवन की धारा
का पूरी तरह से ब्रह्म की तरफ उन्मुख हो जाना है।

अब हम सूत्र को लें।
हे अर्जुन, तमोगुण के बढ़ने पर अंतःकरण और इंद्रियों में अप्रकाश एवं कर्तव्य-कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद और निद्रादि अंतःकरण की मोहनी वृत्तियां, ये सब उत्पन्न हो जाती हैं।
एक-एक गुण का लक्षण कृष्ण गिना रहे हैं। ठीक से समझें।
तमोगुण के बढ़ने पर जीवन में अप्रकाश, अंधेरा मालूम होने लगता है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम पढ़ते हैं शास्त्रों में कि भीतर देखो, वहां परम ज्योति जल रही है। हम भीतर देखते हैं, वहां सिर्फ अंधकार है!
परम ज्योति निश्चित ही वहां जल रही है। जिन्होंने कहा है, उन्होंने देखकर ही कहा है। पर आप जब तक तमस से घिरे हैं, तब तक आप जहां भी देखें, वहीं अंधकार पाएंगे। भीतर देखें, तो अंधकार पाएंगे; बाहर देखें, तो अंधकार पाएंगे। जीवन में तलाश करें, तो आपको लगेगा, सब अंधेरा है। क्या फायदा है इस जीवन का? क्या हो रहा है? कहां मैं पहुंच रहा हूं? यह सब अंधे की तरह चला जा रहा हूं।
हर आदमी, जिसमें थोड़ा भी विचार है, विचारेगा तो फौरन पाएगा, चारों तरफ गहन अंधकार है। और इस अंधकार से कोई छुटकारा नहीं दिखता। और दीये वगैरह की बातचीत ही बातचीत मालूम होती है। कहीं कोई दीया नहीं दिखाई पड़ता; कहीं कोई प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता।

वह अंधकार तमोगुण के कारण है। और जब तमोगुण बढ़ेगा, तो अंधकार बढ़ेगा। इसलिए आपकी जिंदगी में भी अंधकार की तारतम्यता होती है। जब कभी आप किसी सात्विक वृत्ति में डूब जाते हैं, तो आपकी जिंदगी में भी एक आलोक आ जाता है। कभी छोटे-से कृत्य में भी यह घटना घटती है।
आप राह से गुजर रहे हैं, किसी का एक्सिडेंट हो गया, कोई राह के नीचे गिर पड़ा। आप अपना काम छोड़कर उस आदमी को उठा लिए। आपके भीतर का तमस तो कहेगा कि किस झंझट में पड़ रहे हो! पुलिस थाने जाना पड़े; अस्पताल जाना पड़े। और पता नहीं कोई उपद्रव इसमें आ जाए! आपके भीतर का तमस तो कहेगा कि रास्ते पर अपने चलो। समझो कि तुमने देखा ही नहीं। तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन अगर उस तमस का आपने साथ न दिया, सहयोग न दिया और मन में उठी सत्व
की वृत्ति का सहयोग किया; उस व्यक्ति को उठा लिया, चाहे थोड़ी झंझट हो। झंझट संभव है। झंझट नहीं होगी, ऐसा भी नहीं। थोड़ी परेशानी हो; अपना काम छोड़कर किसी दूसरे काम में उलझना पड़े। लेकिन अगर आपने उठा लिया, तो उस क्षण में आप अपने भीतर अगर ध्यान करेंगे, तो आप पाएंगे कि वहां धीमा प्रकाश है।
जीसस ने कहा है अपने अनुयायियों से, कि इसके पहले कि तुम प्रभु-मंदिर में प्रार्थना करने आओ, सोच लो, तुमने किसी का बुरा तो नहीं किया है! अगर किसी का बुरा किया है, तो जाओ, उसे ठीक कर आओ। अगर तुमने किसी को गाली दी है, तो क्षमा मांग आओ। तभी तुम प्रार्थना में उतर सकोगे। क्योंकि अगर तमस मन में लिए हुए कोई मंदिर में गया, तो भीतर अंधकार होगा; प्रकाश का पता नहीं चलेगा।
सच तो यह है कि मंदिर जाने के पहले आपको अपने सत्व को जगा लेना चाहिए,
तो ही मंदिर में जाने की कोई सार्थकता है। कुछ करें, जिससे सत्व जगता हो। सत्व जग जाए, तो प्रार्थना आसान हो जाएगी। सत्व जग जाए, तो आंख बंद करने से भीतर हलका प्रकाश मालूम होगा।
यह हलका प्रकाश कोई प्रतीक नहीं है। यह वास्तविक घटना है। आप चौबीस घंटे इसका अनुभव करें। जब मन क्रोध से भरा हो, तब आंख बंद करके देखें। तब आप पाएंगे, भीतर बहुत घना अंधकार है। जब मन दया और करुणा से भरा हो, तब आंख बंद करके देखें। तब आप पाएंगे, भीतर थोड़ी रोशनी है। और जब मन ध्यान से भरा हो, तब भीतर देखें। तो पाएंगे, विराट प्रकाश है।
कबीर ने कहा है, हजार-हजार सूरज जैसे एक साथ जल गए। कबीर ने कहा है कि
अब तक जिसे हमने प्रकाश समझा था, अब वह अंधेरा मालूम होता है, भीतर का प्रकाश जब से देखा।
यह प्रकाश हमें नहीं मिलता। क्योंकि इस प्रकाश को देखने के लिए सत्व
की आंख चाहिए।
कृष्ण कह रहे हैं, तमोगुण के बढ़ने पर अंतःकरण और इंद्रियों में अप्रकाश... ।
अंतःकरण में अंधेरा और इंद्रियों में भी अंधेरे का एक बोध होगा। जब
तम बढ़ेगा, तो आप अपने शरीर में भी पाएंगे कि एक बोझिलता है। आप पाएंगे कि जैसे शरीर वजनी है। जब आप सत्व वृत्ति से भरे होंगे, तो पाएंगे, शरीर हल्का है, आलोकित है। आप उछलते हुए चल रहे हैं। जैसे जमीन की कशिश कम काम करती है। जैसे आप पर उसका कोई प्रभाव नहीं है।
और योगियों को निरंतर अनुभव हुए हैं; और जो भी लोग ध्यान में बैठते हैं, उनको भी अनुभव होते हैं। ध्यान करते-करते अचानक ऐसा लगता है कि जमीन से उठ गए। जरूरी नहीं कि आप उठ गए हों। आंख खोलकर पाते हैं कि जमीन पर बैठे हुए हैं। लेकिन आंख बंद करके लगता है, जमीन से उठ गए।
वह अनुभव वास्तविक है। वास्तविक इस अर्थ में नहीं है कि आप जमीन से उठ गए। वास्तविक इस अर्थ में है कि भीतर आप इतने हलके हो जाते हैं कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जमीन से हट गए होंगे। और कभी-कभी यह घटना इतनी गहरी घटती है कि वस्तुतः शरीर जमीन से ऊपर उठ जाता है।
योरोप में एक महिला का बहुत अध्ययन चल रहा है, जो चार फीट जमीन से ऊपर अपनी ध्यान की अवस्था में उठ जाती है। जब भी वह ध्यान करती है, बस धीरे- धीरे, धीरे-धीरे शरीर उसका चार फीट ऊपर चला जाता है। उस पर बड़ा मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक अध्ययन चल रहा है। क्योंकि यह प्रकृति का गहरे से गहरा नियम है, जिसकी विपरीतता हो गई।

जमीन खींच रही है हर चीज को। और बिना किसी साधन के किसी का ऊपर उठ जाना... । लेकिन योग की पुरानी सिद्धियों में उसका उल्लेख है। निरंतर योगियों को अनुभव हुआ है। और ऐसा तो किसी को भी अनुभव होता है, जो भी थोड़ा हल्का होता है, भीतर प्रकाश भरता है, उसको लगता है कि जमीन छूट गई, जैसे वह उड़ जाएगा। उड़ने का भाव पैदा हो जाता है। वह हलकेपन के कारण है।
इंद्रियां और अंतःकरण दोनों अप्रकाश से भरते हैं तमोगुण के कारण। और कर्तव्य-कर्मों में अप्रवृत्ति हो जाती है।
कर्तव्य-कर्म का अर्थ है, जिसको करना जरूरी था, अनेक कारणों से। मां बीमार है, उसके लिए दवा ले आना जरूरी था। जिसने जीवन दिया है, उसके जीवन की थोड़ी चिंता और फिक्र एकदम स्वाभाविक है। लेकिन तमस से भरा हुआ व्यक्ति उसमें भी आलस्य करेगा। वह सोचेगा; हजार तरकीबें मन में सोचेगा। न करने के उपाय सोचेगा।
वह यह भी सोच सकता है कि यह बीमारी कोई खतरनाक थोड़े ही है। वह यह भी सोच सकता है कि डाक्टर कहां ठीक कर पाते हैं! सब प्रभु की कृपा से ठीक होता है। वह यह भी सोचेगा कि भाग्य में ठीक होना होगा, तो हो ही जाएगी। नहीं होना होगा, तो कुछ किया नहीं जा सकता। वह सब बातें सोचेगा।
अक्सर तामसी वृत्ति के लोग भाग्य की बातें सोचते हैं, भगवान की बातें सोचते हैं; सिर्फ अपने को बचाने के लिए। यह भगवान और भाग्य कोई उनके जीवन की क्रांति नहीं है। यह सिर्फ पलायन और बचाव है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे मुझसे एक सवाल करीब-करीब लाखों लोग पूछते हैं। और वह सवाल है कि पुरुषार्थ बड़ा या भाग्य? और मैंने यह अनुभव किया है कि अगर उनको समझाओ कि पुरुषार्थ बड़ा, तो वे प्रसन्न नहीं होते। अगर उनको समझाओ कि भाग्य बड़ा, तो बड़े प्रसन्न लौटते हैं।
मैंने दोनों बातें करके देख ली हैं। और कई बार एक ही आदमी पर भी दोनों बातें करके देखी ली हैं। दो-तीन महीने बाद वह फिर आ जाता है! उसको मैंने समझाया था, पुरुषार्थ बड़ा। वह उसको जंचा तो नहीं, मगर मुझसे वह ज्यादा वाद-विवाद भी नहीं कर सका, तो चला गया। मगर खिन्न गया। फिर दो-चार महीने बाद भूल गया वह कि मुझसे पूछ चुका है। वह फिर आकर पूछ लेता है, पुरुषार्थ बड़ा कि भाग्य? अब मैं उसको कहता हूं, भाग्य ही बड़ा है; पुरुषार्थ में क्या रखा है! वह कहता है, बिल्कुल ठीक।
इसलिए नहीं कि उसको बात समझ में आ गई। क्योंकि भाग्य तो उसको ही समझ में आ सकता है, जो अहंकार से मुक्त हो जाए; उसके पहले समझ में नहीं आ सकता। क्योंकि भाग्य का मतलब है, अब मैं नहीं हूं, यह विराट है। मेरे किए कुछ न होगा, क्योंकि मैं हूं ही नहीं। अगर हूं, तो मेरे किए कुछ हो सकता है। मैं हूं ही नहीं। विराट का कर्म है, उसमें मेरी कोई सत्ता नहीं है। भाग्य का मतलब है, मैं नहीं हूं, ब्रह्म है।
यह तो बड़े ज्ञान की बात है; समाधि में फलित होती है। लेकिन यह जो आदमी भाग्य से प्रसन्न होता है, वह तामसी है। वह असल में यह कह रहा है कि जो हो रहा है, अपने किए तो कुछ हो नहीं सकता, इसलिए क्यों करो! बैठा है। और ऐसा नहीं है कि सभी कर्म छोड़ देगा। सिर्फ कर्तव्य-कर्म छोड़ देगा। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
कृष्ण कहते हैं, कर्तव्य-कर्म छोड़ देगा।
घर में आग लग जाए, तो नहीं बैठा रहेगा कि जब भाग्य में है... । मां बीमार हो, तो कहेगा, सब भाग्य से होता है। पिता भूखा मर रहा हो, तो सोचेगा, क्या किया जा सकता है! अपने-अपने कर्मों का फल है, सबको भोगना पड़ता है। लेकिन घर में आग लग जाए, तो यह सबसे पहले भागकर खड़ा बाहर हो जाएगा। तब यह नहीं सोचेगा कि बचना होगा, तो बचेंगे; जलना होगा, तो जलेंगे। जाना कहां! आना कहां!
कर्तव्य जहां है, वहां यह तमस वृत्ति से भरा हुआ व्यक्ति कर्तव्य को काटेगा; और जहां वासना है, वहां नहीं काटेगा। और यह सब तरकीबें खोजेगा। मैं एक घटना पढ़ रहा था। तीन यहूदी चर्चा कर रहे थे। और चर्चा थी कि किसका मंदिर प्रोग्रेसिव है, किसका मंदिर प्रगतिशील है, किसका सिनागाग सबसे ज्यादा आधुनिक है।

धार्मिक लोगों में ऐसी चर्चा चलती है। और धार्मिक लोग निरंतर सोचते हैं कि धर्म को आधुनिक होना चाहिए, आज के अनुकूल होना चाहिए। बड़े व्याख्यान, बड़ी किताबें लिखी जाती हैं कि धर्म को नया करो। इसकी भी फिक्र नहीं होती कि धर्म नया-पुराना कैसे हो सकता है।
पहले यहूदी ने कहा कि मेरे मंदिर से ज्यादा प्रगतिशील किसी का भी मंदिर नहीं है। पूछा दूसरों ने कि क्या कारण है! तो उसने कहा कि हमने जहां तोरा रखा है, जहां हमारी धर्म-पुस्तक रखी है, उसी के बगल में ऐश ट्रे भी रख दी है कि कोई सिगरेट भी पीना चाहे, तो मंदिर में पी सकता है। राख झाड़ सकता है और किताब भी पढ़ सकता है। यह प्रगतिशीलता है हमारी।
दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं है, क्योंकि हमने अपने मंदिर में टी.वी. सेट का भी इंतजाम कर दिया है। ऐश ट्रे तो बहुत पहले से रखी है। शराब भी उपलब्ध है। नाच-गाने का भी पूरा इंतजाम है। तोरा पढ़ना हो, तो पढ़ो। न पढ़ना हो, तो वह भी कोई मजबूरी नहीं है। नाच-गा सकते हो; टी.वी. देख सकते हो। हमारा मंदिर बिल्कुल आधुनिक है।
तीसरे ने कहा, यह सब कुछ भी नहीं है।
तब योम किप्पूर के दिन थे; यहूदियों के धार्मिक दिन थे। तभी यह चर्चा
चल रही थी।
तीसरे ने कहा, हमने अपने मंदिर पर एक तख्ती लगा दी हैः क्लोज्ड बिकाज
आफ दि होली डेज--पवित्र दिनों के कारण बंद। क्योंकि लोग मनाएं पवित्र दिन कि मंदिर आएं! लोग मजा करें कि मंदिर आएं! वह मंदिर पवित्र दिनों के लिए बनाया हुआ है, उस पर तख्ती लगा दी। यह आखिरी वक्तव्य है, अब इससे ज्यादा प्रगतिशील और कुछ हो भी नहीं सकता।
आदमी बहुत बेईमान है। वह सभी अच्छे शब्दों के पीछे अपनी गलतियों के सहारे खोज लेता है। प्रगतिशील के पीछे वह सब तरह की नासमझियां खोज लेता है। भाग्य के पीछे वह सब तरह के आलस्य को छिपा लेता है। परमात्मा के नाम के पीछे सब तरह के तमस को लेकर बैठ जाता है।
कृष्ण कहते हैं, जब तमस बढ़ता है, उसका घनीभूत रूप होता है मन में, तो कर्तव्य-कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद होता है। निद्रादि अंतःकरण की मोहिनी वृत्तियां, ये सभी उत्पन्न होती हैं।
और ज्यादा नींद आती मालूम पड़ती है। नींद का मतलब इतना ही है कि वह ज्यादा सोया रहता है। हर चीज में जागा हुआ नहीं रहता; सोया-सोया रहता है। गीता भी पढ़ेगा, तो ऐसे पढ़ रहा है, जैसे नींद में पढ़ रहा हो। सुन भी रहा है, तो ऐसे सुन रहा है, जैसे सोया हो और सुन रहा है।
धार्मिक मंदिरों में सभाओं में जाकर देखें; लोग सोए हुए हैं। कुछ डाक्टर तो कहते हैं कि नींद न आती हो, तो धार्मिक सभा में जाकर बैठें। वहां निश्चित आ जाती है। जिस पर ट्रैंक्वेलाइजर भी सफल नहीं होता, उसको भी आ जाती है। राम की कथा सुनो, एकदम नींद आने लगती है!
एक आलस्य है, जो मन को पकड़े हुए है सब तरफ। निद्रा बढ़ती है; मोहिनी वृत्तियां पैदा होती हैं।
मोहिनी वृत्ति का अर्थ है, उस चीज में ज्यादा मन लगता है, जहां बेहोशी बढ़े। शराब हो, नाच हो, संगीत हो, कामवासना हो, जहां भी निद्रा बढ़े, जहां भी जागरण की कोई जरूरत न हो, वहां उस तरफ जाने का भाव प्रवाहित होता है।
जब यह जीवात्मा सत्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब
तो उत्तम कर्म करने वालों के मलरहित अर्थात दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है।
और जब जीवनभर के अंत में जीवन का सारा निचोड़ और सार है; मृत्यु के क्षण में आपने जीवन में जो भी कमाया है, वह सारभूत सब आणविक होकर आपके साथ खड़ा हो जाता है।
अगर कोई व्यक्ति जीवनभर तमस से भरा रहा है, तो मरने के पहले बेहोश हो जाता है। अधिक लोग मरने के पहले बेहोश हो जाते हैं। मृत्यु होश में नहीं घटती। जो जीए ही नहीं होश में, वे मर कैसे सकते हैं! सिर्फ सत्व-प्रधान व्यक्ति ही मरते वक्त होश से भरे होते हैं। वह लक्षण है कि उसने जीवन में जागा हुआ होने का, अप्रमाद में रहने का प्रयास किया, तो मृत्यु जागते घटती

है। वह मृत्यु को देख पाता है। और जो मृत्यु को देख पाता है, वह अमृत हो जाता है।
रजोगुण से भरा हुआ व्यक्ति मृत्यु के क्षण में भी जीवन की ही सोचता रहता है। वह तब भी सोचता रहता है, कितने काम अधूरे रह गए। थोड़ा मौका मिल जाए, तो ये भी पूरे कर दूं। वह कभी यह नहीं सोचता कि सब भी पूरे करके क्या होगा? और काम तो अधूरे रह ही जाएंगे। क्योंकि वासनाओं का कोई अंत नहीं है। कितना ही करो, कभी भी करो, आधे में ही मरना पड़ेगा।
कोई भी आदमी पूर्ण विराम पाकर नहीं मर सकता, कि कहे कि सब काम पूरे हो गए, सब वासनाएं तृप्त हो गईं, जो करना था सब कर लिया, अब जीने का कोई कारण नहीं। नहीं, कोई आदमी ऐसा नहीं मर पाता। कुछ न कुछ बाकी रहेगा ही। और जैसे- जैसे मौत करीब आती है, वैसे-वैसे लगता है कि बहुत बाकी रह गया। समय कम और करने को ज्यादा; और करने की क्षमता रोज क्षीण होती चली जाती है।
तमोगुण से भरा हुआ व्यक्ति मरते वक्त बेहोश हो जाता है। रजोगुण से भरा हुआ व्यक्ति मरते वक्त भी मन में क्रियाएं जारी रखता है। सत्वगुण से भरा हुआ व्यक्ति मरते वक्त शांत जागरूकता में मरता है, होशपूर्वक मरता है। इन तीनों के परिणाम होंगे आने वाले जीवन पर।
जो सत्वगुण की स्थिति में मृत्यु को उपलब्ध होगा, कृष्ण कहते हैं, वह दिव्य स्वर्गादिक लोकों में प्रवेश कर जाता है।
सत्व की स्थिति में जो मरता है, वह परम सुख की अवस्था में प्रवेश कर जाता है। स्वर्ग परम सुख की अवस्था है। लेकिन ध्यान रखें, अंतिम अवस्था नहीं है। सुख की ही अवस्था है; आनंद की अवस्था नहीं है। और आनंद और सुख में इतना ही फर्क है कि सुख की अवस्था शाश्वत नहीं है, समाप्त होगी। और आनंद की अवस्था शाश्वत है, समाप्त नहीं होगी।
सुख की अवस्था के बाद फिर दुख आएगा। जैसे दिन के बाद रात आती है, ऐसा सुख के बाद फिर दुख आएगा। चाहे सुख कितना ही लंबा हो, लेकिन दुख से छुटकारा नहीं है। दुख पीछे खड़ा हुआ प्रतीक्षा कर रहा है। सुख एक कमाई है, जो चुक जाएगी। इसलिए स्वर्ग में गया हुआ वापस लौट आएगा; कितने ही समय के बाद, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वापस लौटना सुनिश्चित है।
सुख अंतिम नहीं है। उसके साथ दुख जुड़ा है। आनंद अंतिम है। उसके साथ फिर कुछ भी नहीं जुड़ा है। जो आनंद में प्रविष्ट हो गया, उसका पुनरागमन नहीं है; वह वापस नहीं लौटता।
सत्व की स्थिति में मरा हुआ व्यक्ति स्वर्ग में प्रवेश पाता है।
जिसने जीवनभर साधुता साधी हो, सत्व को जगाया हो, होश को निर्मित किया हो, वह स्वर्ग में प्रवेश करता है।
रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
और अगर रजोगुण पीछे पड़ा रहा हो, मरते क्षण में भी योजनाएं बनती रही हों, फाइव इयर प्लान तैयार होते रहे हों, तो ऐसा आदमी मरकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्य हैं। कोई धन के लिए दौड़ रहा है, कोई पद
के लिए दौड़ रहा है, कोई प्रतिष्ठा के लिए दौड़ रहा है। कुछ करना है उन्हें। कुछ करके दिखाना है, चाहे कोई देखने को उत्सुक हो या न हो। चाहे कुछ करने से फल आता हो, न आता हो। सिकंदर और नेपोलियन सब कर-करके मर जाते हैं, कुछ परिणाम आता नहीं। लेकिन कुछ करके दिखाना है!
यह जो करने की वृत्ति पैदा होती है, इसके लक्षण मां के पेट में बच्चा होता है, तब भी दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। वह जो रजोगुणी बच्चा है, वह मां के पेट में भी हलन-चलन ज्यादा मचाता है। इसलिए मां जान जाती है कि पेट में लड़की है या लड़का। अगर लड़का है, तो थोड़ा उपद्रव ज्यादा करता है। क्योंकि पुरुष ज्यादा रजोगुण-प्रधान है। स्त्री ज्यादा तमोगुण-प्रधान है। इसलिए लड़की होती है, तो वह शांत पड़ी रहती है। लड़का होता है, तो वहां थोड़ी कुछ क्रांति खड़ी करता है। उसमें भी अगर राजनीतिज्ञ होने वाला हो... ! मुल्ला नसरुद्दीन का लड़का था। तो वह उसके संबंध में सोचता था कि यह क्या बने, क्या न बने! तो उसने एक दिन कुरान रख दी, पास में एक सौ का नोट रख दिया, और एक तलवार रख दी। सोचा, तलवार उठा लेगा अंदर जाकर कमरे में, तो

समझेंगे कि योद्धा बनेगा। कुरान उठा लेगा, तो समझेंगे कि धर्मगुरु, पुरोहित, साधु, फकीर, धर्म की यात्रा पर जाएगा। सौ का नोट उठा लेगा, तो समझेंगे कि धन, व्यवसाय, नौकरी, पेशा, कहीं धन कमाएगा।
छिपकर देखता रहा। लड़का अंदर गया। वह नसरुद्दीन का ही लड़का था। उसने कुरान उठाकर बगल में दबाई; सौ का नोट खीसे में रखा; तलवार लेकर चल पड़ा। नसरुद्दीन ने कहा, यह राजनीतिज्ञ बनेगा! उसने कुछ छोड़ा ही नहीं। तीनों चीजें ले गया।
वह जो रजोगुण से भरा हुआ व्यक्तित्व है... ।
जीन पियागे ने बहुत अध्ययन किया है छोटे बच्चों का चालीस वर्षों तक निरंतर। उसका कहना है, पहले दिन से भी लक्षण अलग हो जाते हैं। वह जो तमोगुण-प्रधान बच्चा है, वह पड़ा रहता है। मां के पेट से जन्म के बाद भी वह तेईस घंटे, बाईस घंटे सोता है।
वह जो रजोगुण-प्रधान है, वह हाथ-पैर चलाने लगता है, चीजों को पकड़ने की कोशिश शुरू कर देता है, चीखता-चिल्लाता है। वह खबर देता है कि मैं हूं। मेरी तरफ ध्यान दो। उसके चीखने-चिल्लाने का मतलब है कि क्या, मेरी तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहा? ध्यान दो, मैं भी यहां हूं!
वह जो सत्वगुण-प्रधान है, अक्सर उसकी आंखें खुल जाएंगी और एकटक एक तरफ देखता रहेगा। उसने ध्यान के कुछ प्रयोग पिछले जन्मों में साधे होंगे। तो उसकी आंखें अक्सर एकटक, एक जगह उलझ जाएंगी। चीजों में उसका उतना रस नहीं होगा। इधर से उधर, यह देखना, वह देखना नहीं; यह पकड़ना, वह पकड़ना नहीं। शरीर उसका शांत होगा और आंखें थिर होंगी। उसकी आंखों की थिरता कहेगी कि भीतर एक सात्विकता है।
मरते वक्त हम अपना अगला जन्म निश्चित कर रहे हैं। जो गुण सघन हो जाता
है, वही हमें अगले जन्म की यात्रा पर भेद पैदा करता है।
रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
आपने नाम सुना डिजरायली का। छोटा बच्चा था, तो कुछ भी उपद्रव करने की वृत्ति थी। कोई उस पर ध्यान न दे, तो बहुत अड़चन हो जाती थी। घर में कोई मेहमान आ जाए, तो वह जरूर कोई उपद्रव खड़ा कर देता था। मां-बाप परेशान थे। क्योंकि घर में कोई न हो, तो वह ठीक रहता। लेकिन मेहमान आए, कि वह कुछ उपद्रव खड़ा कर देगा। क्योंकि मेहमानों का ध्यान किसी और पर नहीं होना चाहिए, उस पर ही होना चाहिए।
एक बार तो वह चर्च पर चढ़ गया। और जहां चर्च का त्रिशूल लगा था ऊपर, उससे जाकर अटक गया। सारा गांव इकट्ठा हो गया। और लोग चिल्ला रहे हैं कि तू उतर आ वापस। किसी दूसरे की चढ़ने की हिम्मत भी नहीं उस चर्च की मीनार पर। और वह वहां प्रसन्नता से खड़ा है।
जब उसके बाप ने उससे पूछा कि तू चाहता क्या था वहां चढ़कर? उसने कहा, क्या चाहता था? पूरा गांव देख ले!
वह इंग्लैंड का प्रधानमंत्री बना।
लार्ड क्लाइव को हिंदुस्तान भेजा गया था। और कुल कारण इतना था कि मां- बाप परेशान हो गए। उसके उपद्रव से पूरा गांव परेशान हो गया। एक बार बाप एक साइकिल खरीद लाया क्लाइव के लिए। उसकी मां ने कहा, यह किस लिए लाए हो? क्या इससे इसके उपद्रव कम हो जाएंगे! उसके बाप ने कहा, उपद्रव कम नहीं होंगे; क्षेत्र थोड़ा बड़ा हो जाएगा। यहीं-यहीं मोहल्ले में परेशान किए दे रहा है। क्षेत्र जरा बड़ा हो जाएगा। साइकिल हाथ में रहेगी, तो पूरे गांव को परेशान करेगा। तो थोड़ी मात्रा कम हो जाएगी। बड़ा क्षेत्र होगा, उपद्रव बंट जाएगा। हम परेशान हो गए। अब कोई और उपाय नहीं।
गांव में जोर की वर्षा हुई; पानी भर गया नालियों में। तो क्लाइव के घर में और मोहल्ले में सबसे ज्यादा पानी था। और घर में पानी भरने लगा। सब हैरान हुए कि क्लाइव कहां है!
वह नाली में लेटा हुआ था पानी रोके हुए, ताकि वह घर में भर जाए पानी! उसको निकालकर उसके बाप ने फौरन मिलिट्री में भेज दिया। उसने कहा कि इसको यहां रोकना ठीक ही नहीं। यह जब तक मरेगा-मारेगा नहीं... यह तो उपद्रव है!

वह आदमी, लार्ड क्लाइव, हिंदुस्तान में अंग्रेजों का राज्य जमाने में बड़े से बड़ा आधार सिद्ध हुआ।
रजोगुण से भरा हुआ व्यक्ति कुछ विक्षिप्त कर्मों में दौड़ना चाहता है।
अहंकार प्रकट होकर दिखाई पड़े; अहंकार सूरज की तरह जले और हजारों लोग देखें; बस, वही उसकी कामना होती है।
और तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ पुरुष मूढ़ योनि में उत्पन्न होता है।
मूढ़ योनि की बड़ी गलत परिभाषाएं हुई हैं। अनेक गीता के व्याख्याकारों
ने मूढ़ योनि का अर्थ लिया है कि वह पशुओं में चला जाता है। वह गलत है।
क्योंकि लौटकर नीचे गिरने का कोई उपाय जगत में नहीं है। कोई मनुष्य की स्थिति में एक बार आ जाए, तो वापस पशु नहीं हो सकता। क्योंकि वापस पशु होने का तो मतलब यह हुआ कि मनुष्यता तक पहुंचने की जो कमाई थी, उसका क्या होगा। चेतना कभी पीछे नहीं लौटती। रुक सकती है। आगे न जाए, यह हो सकता है। अवरुद्ध हो जाए, लेकिन पीछे नहीं लौट सकती। एक बच्चा अगर दूसरी कक्षा में आ गया, तो उसको पहली कक्षा में वापस भेजने का कोई उपाय नहीं। वह दूसरी में पचास साल रुके, तो रुक सकता है, कोई हर्जा नहीं। लेकिन उसको पहली में वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। क्योंकि वह पहली पार कर ही चुका। और जो हम जान चुके, उसे न-जाना नहीं किया जा सकता। जो हम कर चुके, उस अनकिया नहीं किया जा सकता।
इसलिए मेरी दृष्टि में जिन-जिन व्याख्याओं में कहा गया है कि तमस से भरा हुआ व्यक्ति पशुओं की योनि में चला जाता है, ये व्याख्याएं गलत हैं। और जिन्होंने की हैं, वे केवल शब्दों के आधार पर व्याख्याएं कर रहे हैं। मूढ़ योनि का मतलब है कि मनुष्यों में ही, जैसे कर्म से भरे हुए लोग हैं, सत्व से भरे हुए लोग हैं, वैसे ही तमस से भरे हुए मूढ़ लोग हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पांच प्रतिशत बच्चे मूढ़ योनि में हैं, जिनको हम ईडियट कहें, इम्बेसाइल कहें। पांच प्रतिशत बच्चे। न कोई बुद्धि है, न कुछ करने का भाव है। अपने जीवन की रक्षा तक की सामर्थ्य नहीं है। जो मूढ़ बच्चा है, घर में आग लग जाए, तो भागकर बाहर नहीं जाएगा। उसको यह भी पता नहीं है कि मुझे अपने को बचाना है। इतना भी कर्म पैदा नहीं होता। यह योनि मूढ़ योनि है। जिसको मनोवैज्ञानिक ईडियोसि कहते हैं, उसको ही कृष्ण ने मूढ़ कहा है।
मूढ़ का मतलब पशु नहीं है। अगर पशु ही कहना होता, तो पशु ही कह दिया होता, मूढ़ कहने की कोई जरूरत न थी। पशु मूढ़ नहीं होते, सिर्फ मनुष्य ही मूढ़ हो सकता है। पशु मूर्ख नहीं होते, सिर्फ मनुष्य ही मूर्ख हो सकता है।
जो सत्व-प्रधान हैं, वे भी पांच प्रतिशत होते हैं। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है। मनोविज्ञान के आधार पर पांच प्रतिशत लोग टैलेंटेड होते हैं, प्रतिभाशाली होते हैं। वैज्ञानिक हैं, कवि हैं, दार्शनिक हैं, संत हैं। पांच प्रतिशत लोग एक छोर पर प्रतिभासंपन्न होते हैं। और ठीक पांच प्रतिशत लोग दूसरे छोर पर मूढ़ होते हैं। बाकी नब्बे प्रतिशत लोग बीच में होते हैं। ये मध्यवृत्तीय लोग हैं, मध्यवर्गीय लोग हैं।
ये जो मध्यवर्गीय लोग हैं, इनमें मूढ़ता भी सम्मिलित है, बुद्धिमत्ता
भी सम्मिलित है। ये दोनों का मिश्रण हैं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि स्थिति करीब-करीब ऐसी है, जैसा शिव का डमरू होता है, उसको हम उलटा कर लें। शिव का डमरू बीच में तो पतला होता है, दोनों तरफ बड़ा होता है। बीच में संकरा हो जाता है। इसको हम उलटा कर लें। दोनों तरफ संकरा और बीच में चौड़ा। तो दोनों तरफ संकरे छोरों पर पांच-पांच प्रतिशत लोग हैं।
वे जो पांच प्रतिशत लोग हैं, वे सत्व के कारण इस जगत में प्रतिभा से भरे हुए पैदा होते हैं। प्रतिभासंपन्न होना ही स्वर्ग में होना है। प्रतिभा सुख है। सुख की सूक्ष्म अनुभूति। और पांच प्रतिशत लोग मूढ़ होते हैं, जिनको कुछ भी होश नहीं, जिनको खाने-पीने का भी होश नहीं, जिनको उठने- बैठने का भी पता नहीं। बाकी लोग बीच में हैं, नब्बे प्रतिशत लोग।
ठीक मध्य में बड़े से बड़ा वर्ग है। करीब पचास प्रतिशत लोग ठीक मध्य में हैं। ये पचास प्रतिशत लोग दोनों तरफ यात्रा कर सकते हैं। चाहें तो कभी भी मूढ़ हो सकते हैं, और चाहें तो कभी भी प्रतिभा अर्जित कर सकते हैं। और यह

निर्धारण मरने के क्षण में हो जाता है कि आप कैसे मर रहे हैं। तम से भरे हुए मर रहे हैं, रज से भरे हुए मर रहे हैं, सत्व से भरे हुए मर रहे हैं। बीच के जो लोग हैं, ये रजो-प्रधान हैं। तमो-प्रधान एक छोर पर हैं। सत्व-प्रधान दूसरे छोर पर हैं।
इस पूरी व्यवस्था को बदलने का एक ही उपाय है कि आप अपने भीतर गुणों की तारतम्यता को बदल लें। और यह कोई मरते क्षण के लिए मत रुके रहें कि मरते वक्त एकदम से सत्व-प्रधान हो जाएंगे। कोई कभी नहीं हो सकता।
मरते वक्त कुछ किया नहीं जा सकता। आपने जो जीवनभर में किया है, उसको
ही इकट्ठा किया जा सकता है। जो कमाया है, वही। और आपके हाथ में फिर बदलाहट नहीं है। क्योंकि जीवन क्षीण हो रहा है, आप कुछ कर नहीं सकते।
अनेक लोग सोचते हैं, मरते वक्त राम का नाम ले लेंगे। जिन्होंने जीवनभर नहीं लिया राम का नाम, मरते वक्त उनके गले से वह शब्द न उठेगा। उनके होंठ सूख जाएंगे। उनके हृदय में कहीं छाया भी राम की न मिलेगी। उस वक्त तो वही शब्द उठेगा, जो उन्होंने जिंदगीभर सोचा है। कोई धन सोच रहा था, तो धन उठ सकता है। नोट दिखाई पड़ सकते हैं। तिजोरियां दिखाई पड़ सकती हैं। राम नहीं दिखाई पड़ेंगे।
वही जीवन के अंत में प्रकट होता है, जिसे हमने जीवनभर सम्हाला, बुलाया, निमंत्रण दिया है। इसलिए कल की प्रतीक्षा मत करें। और मृत्यु की राह मत देखें। जीवन ही जगह है, जहां हम अपनी मृत्यु को भी कमाते हैं। ध्यान रहे, मृत्यु कमाई जाती है, मुफ्त नहीं मिलती। जितना आप कमाते हैं, वैसी मृत्यु हो जाती है। और जैसी मृत्यु, फिर वैसा नया जन्म हो जाता है। मृत्यु बड़ी सार्थक घटना है। क्योंकि नया जन्म उस पर निर्भर होगा। वह बीज है। नया जन्म, उससे वृक्ष बनेगा।
जीवन को सत्व की तरफ ले चलें, तो आप स्वर्ग की तरफ अनिवार्य रूप से चलते जा रहे हैं।
स्वर्ग एक मनोदशा है। आप कहां हैं, यह सवाल नहीं है, कि कहीं आकाश में स्वर्ग है, वहां आप हैं। स्वर्ग एक मनोदशा है। आप जहां भी हों, सत्व से भरा हुआ व्यक्ति स्वर्ग में है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
छठवां प्रवचन

रूपांतरण का सूत्रः साक्षी-भाव

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।। 16।।
सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।। 17।।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।। 18।।
सात्विक कर्म का तो सात्विक अर्थात सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल
फल कहा है। और राजस कर्म का फल दुख, एवं तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है।
तथा सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निःसंदेह लोभ उत्पन्न होता है, तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।
इसलिए सत्वगुण में स्थित हुए पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं। और रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात मनुष्य लोकों में ही रहते हैं, एवं तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि में स्थित हुए तामस पुरुष अधोगति को अर्थात नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कल बताया कि लाओत्से तमस से, जीसस रजस से तथा महावीर सत्व से सीधे गुणातीत अवस्था में छलांग लगा गए। सत्व से गुणातीत में जाना समझ में आता है, लेकिन तमस और रजस से गुणातीत अवस्था में जाना किस प्रकार संभव है, यह समझ में नहीं आता!

गुणातीत अवस्था का अर्थ है, गुणों के बाहर हो जाना। जैसे स्वस्थ होने
का अर्थ है, बीमारी के बाहर हो जाना। फिर बीमारी कौन-सी थी, यह सवाल नहीं है।
कोई व्यक्ति टी.बी. से बीमार हो, तो टी.बी. के बाहर होकर स्वस्थ हो जाएगा। कोई व्यक्ति मलेरिया से बीमार हो, तो मलेरिया के बाहर होकर स्वस्थ हो जाएगा। सभी बीमारियां बाधा डालती हैं स्वस्थ होने में। सभी बीमारियों के बाहर जाने में श्रम करना होगा।
सत्व भी बीमारी है। रजोगुण भी बीमारी है। तमोगुण भी बीमारी है। बीमारियां अलग-अलग हैं, पर तीनों बीमारियां हैं और तीनों बांधती हैं। सत्वगुण से समझ में आता है, क्योंकि हम सोचते हैं, सत्वगुण बांधता नहीं। सत्वगुण भी बांधता है। और अगर बंधने की वृत्ति हो, तो सत्वगुण से बाहर जाना उतना ही कठिन है, जितना तमोगुण से बाहर जाना। और कभी-कभी तो ऐसा भी हो सकता है कि ज्यादा कठिन हो। क्योंकि सत्वगुण में एक सुख है, जो तमोगुण में नहीं है।
हर गुण के फायदे हैं और हानियां हैं। तमोगुण की हानि यह है कि आप आलस्य से भरे हैं; बाहर जाने की वृत्ति पैदा नहीं होती। लेकिन तमोगुण का एक फायदा है कि वहां सिवाय दुख और अंधकार के कुछ भी नहीं है। इसलिए बाहर जाने की प्रेरणा पैदा हो सकती है।
रजोगुण का एक लाभ है कि बड़ी ऊर्जा है और सक्रिय होने की वृत्ति है। इसलिए बाहर जाने में इस वृत्ति का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन एक नुकसान है, कि रजोगुणी व्यक्ति इतना व्यस्त रहता है कर्मों में कि उसे स्वयं का बोध ही नहीं आता। वह कर्मों में खो गया होता है। उसे स्व की कोई प्रतीति नहीं रहती। वह करीब-करीब कर्मों में बेहोश होता है।
सत्वगुण का लाभ है कि वह हलके से हलका गुण है। उसका वजन न के बराबर है। कोई उसे हटाना चाहे, तो जरा भी बाधा नहीं है। सत्वगुण रोकेगा नहीं; हलका

है; बिल्कुल वजनशून्य है; भारहीन है। लेकिन खतरा है। और खतरा यह है कि सत्वगुण सुख से भरा है। सुख को कोई भी छोड़ना नहीं चाहता है।
अगर मेरी बात समझ में आ जाए, तो तीनों गुणों के लाभ हैं और तीनों की हानियां हैं। तो ऐसा नहीं है कि कोई एक गुण ज्यादा लाभ का है गुणातीत जाने में या कोई गुण ज्यादा बाधक है। हर गुण के दोनों पहलू हैं, निगेटिव और पाजिटिव। उसका विधायक रूप भी है, उसका नकारात्मक रूप भी है।
लाओत्से जैसा व्यक्ति तामसिक गुण के विधायक रूप का उपयोग करके पार हो गया। बर्ट्रेंड रसेल जैसा व्यक्ति सत्वगुण के नकारात्मक रूप से उलझकर पार होने से रुक गया।
जीसस जैसा रजोगुणी व्यक्ति अपने कर्म को सेवा बनाकर परम अनुभव को उपलब्ध हुआ, गुणातीत हो गया। लेकिन वही गुण नेपोलियन में भी है, वही गुण लेनिन में भी है; पर वे उसके नकारात्मक रूप का उपयोग कर रहे हैं और एक राजनीतिक उपद्रव में खो जाते हैं।
मेरी दृष्टि ठीक से ख्याल में आ जाए, तो साफ है। विधायक का उपयोग कर लें, तो किसी भी गुण से बाहर हो जाएंगे। और नकारात्मक का उपयोग किया, तो किसी भी गुण से बंध जाएंगे। और दोनों हर गुण के साथ हैं।
दुनिया में बहुत कम पंडित परम स्थिति को उपलब्ध होते हैं; शायद नहीं
ही होते। सत्वगुण बांध लेता है। ज्ञानी होने का दंभ बांध लेता है। वे सत्वगुण के नकारात्मक रूप का उपयोग कर रहे हैं। कर्मठ व्यक्ति अक्सर उपद्रव में उलझ जाते हैं। और निष्क्रिय, आलसी व्यक्ति तो कुछ करता ही नहीं है; आलस्य में ही खो जाता है।
आप कहीं भी हों, निराशा का कोई कारण नहीं है। अगर आप जहां हैं, उस जगह
से विधायक सूत्र को खोज लें।
फिर बाहर होने का कुल मतलब इतना है कि आपका तादात्म्य व्यक्तित्व से टूट जाए। मैं यह शरीर हूं, यह भाव टूट जाए। मैं यह मन हूं, यह भाव टूट जाए। क्योंकि शरीर और मन तक ही गुणों का प्रभाव है। शरीर और मन के पीछे जो छिपा है, उस पर गुणों की कोई सत्ता नहीं है। वह गुणातीत अभी भी है। इस क्षण भी आप गुणातीत हैं, पूर्ण निष्पाप। लेकिन जिस शरीर और मन को आपने पकड़ा है, वह गुणों से भरा है।
ऐसा समझें कि कोई आदमी तो बिल्कुल पवित्र है, लेकिन गंदे वस्त्र पहने हुए है। उससे जो दुर्गंध आ रही है, वह उसकी नहीं है, उसके वस्त्रों की है। आपका जो व्यक्तित्व है, वही गुणों के प्रभाव में है। और तीन तरह के व्यक्तित्व हैं मौलिक, मूल रूप से, जिनको कृष्ण वर्णन कर रहे हैं, तामसिक, राजसिक, सात्विक। पूरब का मनोविज्ञान बड़ा गहरा है और उसने व्यक्तित्व की आखिरी जड़ पकड़ ली है। ये तीन तरह के व्यक्ति हैं। फिर और लोग भी अगर थोड़े- बहुत भेद से हों, तो वे इन तीन के ही जोड़-घटाने हैं। बाकी ये तीन मूल स्वर हैं।
आप जहां भी हों, और उचित होगा कि ईमानदारी से पहचान लें कि कहां हैं! क्योंकि मन बड़े धोखे देता है। और उसका गहरे से गहरा धोखा यह है कि वह आपको यह बताए, जो आप नहीं हैं। क्योंकि फिर आप कुछ भी करें, उसके परिणाम नहीं होंगे।
तामसी से तामसी व्यक्ति भी सोचेगा कि मैं सात्विक हूं, तब यात्रा मुश्किल है। क्योंकि सात्विक वह है नहीं और सात्विकता की जो उसकी धारणा है, वह उसे ऐसी साधना पद्धतियां पकड़ा देगी, जो उसके काम की नहीं हैं। उसे जानना जरूरी है कि वह तामसिक है, क्योंकि उसकी यात्रा वहीं से शुरू होगी जहां वह खड़ा है। वहीं से चलना शुरू होगा।
तो आप क्या हैं, इसका निष्पक्ष, स्पष्ट, पक्षपातरहित, अहंकारमुक्त विश्लेषण चाहिए। आप गुरुओं के पास भी जाते हैं, लेकिन उनसे भी आप निष्पक्ष वक्तव्य लेने नहीं जाते। उनसे भी आप गवाही लेने जाते हैं। अगर गुरु आपसे कहे कि तुम तामसी हो, तो आप दुखी लौटेंगे। इस गुरु का आप पीछा ही छोड़ देंगे। आप जाकर कहेंगे, यह गुरु गलत है।
इधर मैं देखता हूं, एक युवती ने आज ही मुझे आकर कहा। जिसमें किसी तरह
की संभावना नहीं है उस बात की। वह एक बड़े गुरु के पास गई थी और गुरु ने कहा कि--वह युवती पश्चिम से आई है--उसे कहा कि शीघ्र ही तू स्वयं भी एक बहुत बड़ी

गुरु हो जाने वाली है। पश्चिम में जाकर तेरे जीवन से अनेक लोगों को लाभ होगा। युवती बड़ी प्रसन्न लौटी। अहंकार को बड़ी गहरी तृप्ति मिली।
उस युवती में ऐसी कोई संभावना नहीं है। इस जन्म में तो कोई संभावना नहीं है। और इस कहने की वजह से अगर कोई छिपी संभावना कभी प्रकट भी हो सकती थी, तो वह भी समाप्त हो जाएगी। लेकिन वह खुश होकर लौटी। और उस व्यक्ति को गुरु मानकर लौटी।
अब यह सारा जाल है। जाल ऐसा है कि गुरु भी शिष्य को तभी फांस पाता है,
जब वह उसके अहंकार को प्रसन्न करे। क्योंकि आप चोट नहीं चाहते; आप प्रशस्ति लेने जाते हैं। तो जिनको कुछ भी नहीं है, वे भी प्रशस्ति पाकर प्रसन्न होते हैं।
अब वह पागल होकर लौटी। जिस व्यक्ति ने उसको कहा है, वह भी गुरु के योग्य नहीं है। क्योंकि यह बात झूठ है और गलत है। और अगर इस युवती को वहम सवार हो जाए गुरु होने का, तो यह भारी नुकसान करेगी।
दुनिया में गलत गुरु जितना नुकसान करते हैं, उतने अपराधी भी नुकसान नहीं करते। क्योंकि अपराधी क्या छीन सकता है आपसे? धन छीन लेगा; प्राण छीन सकता है ज्यादा से ज्यादा! लेकिन प्राण मिटते नहीं, और धन का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन गलत गुरु आप से उस अवसर को छीन लेगा, जो सब कुछ है। और उसे पता भी नहीं है कि वह आपसे कुछ छीन रहा है। और छीनने की सबसे ज्यादा सुविधापूर्ण व्यवस्था यह है कि आपके अहंकार को कोई तृप्त करे।
गुरजिएफ जैसे गुरु के पास अगर जाएंगे, तो वह जो आपके भीतर साफ-साफ है, उसकी ही बात करेगा। गुरजिएफ अपने शिष्यों को पहले तो शराब पिलाता था। और जब तक वह शराब पीकर बेहोश न हो जाते, तब तक वह उन्हें स्वीकार नहीं करता था। क्योंकि उस बेहोशी में ही उनका सच्चा रूप प्रकट होता।
जब आप शराब पीकर पूरी तरह बेहोश हो जाते हैं, तब आपका जो निम्नतम आपने छिपा रखा है, वह प्रकट होगा। और गुरजिएफ कहता है कि जब तक मैं तुम्हारे निम्नतम को न देख लूं, तब तक मैं कोई काम शुरू न करूंगा। क्योंकि वहीं से काम शुरू होना है। तुम्हारा श्रेष्ठ तो कल्पना है। तुम्हारा निकृष्ट तुम्हारा यथार्थ है।
आपका मन भी धोखा देगा। जो आप नहीं हैं, आपका मन सदा कहेगा, आप यही हैं।
इस धोखे से सावधान होना जरूरी है।
क्या करें? सबसे पहले तो इस बात की खोज करें कि तामसी तो नहीं हैं। सब तरह से पहले तो सिद्ध करने की कोशिश करें कि तामसी हैं अपने को। सब उपाय खोजें, सब तर्क खोजें, जिनसे सिद्ध होता हो कि मैं तामसी हूं। अगर कोई उपाय ही न मिले सिद्ध करने का, तो ख्याल छोड़ें। फिर अपने को राजसी सिद्ध करने की कोशिश करें। जब राजसी सिद्ध करने का भी कोई उपाय न मालूम पड़े, कोई तर्क न मिले, तो ही समझें कि आप सात्विक हैं। अन्यथा सात्विक मत समझें।
निकृष्ट से शुरू करें। और पहले निकृष्ट को ही सोचें कि मैं हूं। और अगर मिल जाए सूत्र कि यही मैं हूं, तो आप सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि फिर काम शुरू हो सकता है।
गुरजिएफ कहता था, तुम्हारी जो सबसे बड़ी कमजोरी है, वह तुम्हें पहले पकड़ में आ जानी चाहिए। क्योंकि कमजोरी ही तुम्हारा छिद्र है। उसी छिद्र से तुम्हारी जीवन ऊर्जा व्यर्थ हो रही है।
एक घड़े को हम पानी भरने के लिए कुएं में डालते हैं। पूरा घड़ा बेमानी
है एक छोटे-से छेद के कारण। वह एक छोटा-सा छेद ही भरे हुए घड़े को ऊपर तक आते-आते खाली कर देगा।
पहले देख लेना जरूरी है कि छेद कहां है। छेद को रोक दें, तो ही घड़ा सार्थक है। तुम्हारी मौलिक कमजोरी से मुक्ति हो जाए, तो ही तुम कुछ भर पाओगे; परमात्मा तुम में भर पाएगा। अन्यथा तुम्हारे छिद्र सब बहा देंगे। पहला, अपने प्रति सच्चा होना जरूरी है कि मैं कहां हूं। इसमें अति ईमान की जरूरत है; प्रामाणिक होने की जरूरत है। क्योंकि किसी और को धोखा नहीं दे रहे हैं। कोई और धोखे में आने वाला नहीं है। आप ही धोखे में पड़ेंगे और भटक जाएंगे।

और ध्यान रखें कि तमस में होना कुछ बुरा नहीं है। क्योंकि तमस से भी लोग मुक्त हुए हैं। कोई सात्विक होना ही श्रेष्ठ नहीं है। क्योंकि सत्व में भी पड़े हुए सैकड़ों लोग संसार में भटक रहे हैं।
कहां हैं, यह बड़ा महत्वपूर्ण नहीं है। लेकिन शास्त्रों ने और न जानने वाले शास्त्रों की टीका करने वाले लोगों ने लोगों को ऐसा समझा दिया है कि सात्विक होना अपने आप में कुछ खूबी की बात है और तामसिक होना बुरी बात है। तो तामसिक तो हम गाली की तरह उपयोग करते हैं। किसी की निंदा करनी हो,
तो हम कहते हैं, तामसी। तो जब मैंने कल आपको कहा कि लाओत्से तामसिक था, तो आपको भीतर बड़ी बेचैनी हुई होगी। क्योंकि आप मान ही नहीं सकते कि कोई संत तमस के साथ संत हो गया हो! कोई ऐसा कहेगा भी नहीं। लाओत्से के मानने वाले मुझसे नाराज हो जाएंगे। मैंने कहा कि जीसस रजोगुणी हैं। इससे ईसाई को कष्ट हो सकता है।
लेकिन मैं कोई तुलना नहीं कर रहा हूं। और न मैं यह कह रहा हूं कि इनमें कोई जीसस, लाओत्से या कृष्ण कोई छोटे-बड़े हैं। मैं सिर्फ यथार्थ तथ्य की बात कर रहा हूं। और अगर तथ्य की ही बात करनी हो, तो जो तमस से मुक्त हुआ है, वही अदभुत है। जो सत्व से मुक्त हुआ है, उसमें कोई बहुत विशेष अदभुतता नहीं है। गहन अंधकार से जो प्रकाश में सीधी छलांग लगा गया है, उसका मूल्य बहुत है।
तो आप भयभीत न हों, और न किसी तरह की निंदा लें। सिर्फ तथ्यों पर ध्यान रखें। हम मूल्यांकन करने लगते हैं, उससे कठिनाई शुरू हो जाती है।
अगर चित्त सात्विक है, तो साधना अलग होगी। अगर चित्त तामसिक है, तो साधना अलग होगी। अगर चित्त राजस है, तो साधना अलग होगी। इसे थोड़ा ख्याल में ले लें। क्या फर्क पड़ेगा?
अगर चित्त तामसिक है, तो तपश्चर्या आपके लिए नहीं है। तपश्चर्या फिर भ्रांति होगी। सारी दुनिया प्रशंसा कर रही हो तप की, लेकिन तप आपके लिए नहीं है। और अगर आप तपश्चर्या में पड़े, तो आप भटक जाएंगे। आप सिर्फ कष्ट पाएंगे। आप सिर्फ परेशान होंगे; अपने को दुख देंगे। और आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे कि मुझे वह घटना क्यों नहीं घट रही है, जो तपश्चर्या करने वालों को घट रही है! क्योंकि तपश्चर्या करने वाला कहता है, उसे महाआनंद मिला। और आपको नहीं मिल रहा है। आपको नहीं मिलेगा। क्योंकि आलस्य से भरा हुआ अगर व्यक्तित्व हो, तो तपश्चर्या इतनी विपरीत है कि उससे सिर्फ कष्ट मिलेगा। सिर्फ राजस व्यक्ति को तपश्चर्या योग्य होगी। उसे तपश्चर्या ही योग्य होगी, क्योंकि तप उसे क्रिया का मौका देगा। सात्विक व्यक्ति को भी तपश्चर्या अर्थ की नहीं है। उसे भी कठिनाई होगी। न तो लाओत्से तपश्चर्या कर सकता है और न बुद्ध।
बुद्ध ने छः वर्ष तक तपश्चर्या की और दुख पाया। यह बड़ी अनूठी घटना है।
और इसे समझाना आज तक नहीं हुआ कि यह कैसे हुआ! क्योंकि बुद्ध छः वर्ष तक कठोर तपश्चर्या किए और दुख पाए। और उन्हें कोई सत्य नहीं मिला। न कोई निर्वाण मिला; न कोई शांति मिली; न कोई आनंद मिला। और छः वर्ष के दुखद अनुभव के बाद बुद्ध ने सब तप छोड़ दिया। और जिस दिन उन्होंने सब तप छोड़ा, उसी दिन उन्हें परम ज्ञान की उपलब्धि हुई।
बुद्ध सात्विक व्यक्ति हैं, राजस नहीं हैं। तो क्रिया, तप, उपवास उनके लिए सिवाय कष्ट के और कुछ भी न लाए। शरीर दीन हुआ, क्षीण हुआ, आत्मा सबल न हुई। स्नान करते वक्त निरंजना नदी से निकलते थे, तो इतनी भी ताकत नहीं थी उस दिन कि बाहर निकल आएं।
तब उन्हें ख्याल आया कि मैं यह तप कर-करके सिर्फ दुर्बल और दीन हो रहा हूं। और इस साधारण-सी नदी को पार नहीं कर पा रहा हूं; बाहर निकलना मुश्किल मालूम पड़ रहा है। एक वृक्ष की जड़ को पकड़कर लटके हुए हैं। इतनी ताकत नहीं शरीर में कि किनारे के ऊपर आ जाएं। तो बुद्ध को उस क्षण में लगा कि यह भवसागर है इतना बड़ा, इसको मैं कैसे पार कर पाऊंगा, यह निरंजना जैसी छोटी नदी पार नहीं होती!
उसी दिन उनके लिए तप व्यर्थ हो गया। उस रात वे बिल्कुल सब छोड़कर सोए। राज्य तो पहले छोड़ चुके थे, यह साधना भी छोड़ दी। उस रात उनके मन में कोई भी उपद्रव नहीं था। न राज्य था, न मोक्ष था; न धन की खोज थी, न धर्म की खोज थी।

उस दिन कोई खोज ही न थी। वे बिना खोज के रात सो गए। सुबह जब उनकी आंख खुली, उन्होंने पाया, जो भी मिलना था, वह मौजूद है।
जो सत्व-प्रधान है, उसके लिए क्रिया बहुत लाभ की नहीं है। उसे कोई जरूरत नहीं है। वह सिर्फ मौन हो जाए; वह सिर्फ शांत हो जाए। वह सब भांति भीतर सब तरह के कोलाहल को हटा दे। उस शांत क्षण में उसे वह सब मिल जाएगा, जो कि राजस व्यक्ति अत्यंत कठोर तपश्चर्या करके पाता है।
लेकिन अगर राजस व्यक्ति समझे कि मैं सिर्फ बैठ जाऊं, कुछ न करूं और सब
हो जाएगा जैसा बुद्ध को हुआ, तो वह गलती में है। उसे तो गुजरना ही पड़ेगा। व्यक्तित्व के ऊपर निर्भर है।
तमस से भरे हुए व्यक्ति को व्यर्थ के दौड़-धूप में नहीं पड़ना चाहिए।
उसे पहले तो अपने तमस को स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह मेरा भाग्य इस जन्म में। अनंत जन्मों में मैंने इसे कमाया। यह मेरा है। इसका मुझे उपयोग करना है; इससे लड़ना नहीं है।
जो भी आपके पास है, ध्यान रखें, उसका उपयोग करना है, उससे लड़ना नहीं है। क्योंकि उससे लड़कर आप टूटेंगे और नष्ट होंगे। उसका उपयोग करें; उसका सेतु बनाएं, मार्ग बनाएं।
अगर आलस्य आपके पास है, तो आलस्य ही मार्ग बन सकता है। तब निष्क्रियता आपकी साधना होगी। तब आप आलस्य को ही साधना बना लें। तब आप सिर्फ आलस्य में पड़े ही मत रहें, आलस्य बाहर घेरे रहे, और भीतर आप आलस्य के प्रति जागे रहें। आलस्य को देखें और साक्षी हो जाएं।
पड़े-पड़े भी, बिस्तर पर पड़े-पड़े भी मोक्ष तक पहुंचा जा सकता है। लेकिन
तब आलस्य को साधना बना लेना जरूरी है। और तब आलस्य के प्रति सजग हो जाना जरूरी है। भीतर साक्षी जग जाना चाहिए।
साक्षी के लिए न तो कर्म की जरूरत है, न अकर्म की; जो भी हो रहा है, उसके प्रति साक्षी होने की जरूरत है, विटनेसिंग की जरूरत है। तो आप अगर आलसी हैं, तो आलस्य के प्रति सजग हों, उसे देखें।
और ऐसा जरूरी नहीं है कि आप अगर तमस से आज भरे हैं, तो कल भी तमस से ही भरे रहेंगे। ऐसा कुछ जरूरी नहीं है। क्योंकि प्रतिपल चीजें बदल रही हैं। और प्रतिपल आपके भीतर के तमस, रजस और सत्व की मात्रा बदल रही है।
बचपन में जो व्यक्ति तामसिक हो, जरूर नहीं कि जवानी में भी तामसिक रह जाए। हो सकता है, राजसी हो जाए; क्योंकि सब हार्मोन बदल रहे हैं। शरीर एक सतत प्रवाह है। शरीर के सारे केमिकल्स बदल रहे हैं; रासायनिक व्यवस्था बदल रही है। जवान होते-होते दूसरी स्थिति हो सकती है। बूढ़ा होते-होते फिर तीसरी स्थिति हो जाएगी। यह प्रतिपल बदलाहट हो रही है।
आज आप आलसी हैं, तो जरूरी नहीं कि कल भी आलसी होंगे। और अगर आप आलस्य
के प्रति सजग हो गए, तो निश्चित आप में बदलाहट आएगी। वह साक्षी एक नया तत्व है, जो आपके प्रत्येक रासायनिक ढंग को भीतर से बदल देगा। आप दूसरे आदमी होने लगेंगे। आप धीरे-धीरे पाएंगे कि आलस्य की उतनी जकड़ नहीं रही आपके ऊपर, जैसी पहले थी। आलस्य अब कोई बोझ नहीं रहा; एक हलका विश्राम हो गया। और अब आप चाहें तो थोड़ा कर्म कर सकते हैं, यद्यपि यह कर्म भी राजसी वाला कर्म नहीं होगा। इसमें भाग-दौड़ नहीं होगी। यह भी शांत होगा। यह नदी बहेगी, लेकिन इसकी गति बहुत शांत होगी; शोरगुल नहीं होगा। यह कोई पहाड़ी नदी नहीं होगी। यह कोई पत्थरों पर आवाज करती हुई नहीं बहेगी। इसमें कर्म भी आएगा, तो धीमी लहर की भांति आएगा, जिससे कोई आवाज नहीं होती। और इसका कर्म भी अत्यंत शांत होगा।
लाओत्से को जिन्होंने चलते देखा है, वे देखेंगे कि उसका चलना भी ऐसा है, जैसे वह सोया हो, इतना विश्रांति से भरा हुआ। और राजसी व्यक्ति अगर सोए भी, तो उसकी निद्रा में भी वह सोया हुआ नहीं रहता। वह नींद में भी काफी चहलकदमी करता है।
आपने देखा नहीं है लोगों को। रात किसी को सोते हुए अध्ययन करें! सिर्फ बैठ जाएं उसके किनारे और रातभर देखें कि वह क्या कर रहा है। आप बड़े चकित होंगे। क्योंकि कोई किसी को देखता नहीं है।
अमेरिका में स्लीप लैब्स बनाए हैं उन्होंने। कोई दस बड़ी प्रयोगशालाएं हैं, जहां हजारों लोगों के ऊपर अध्ययन किया जा रहा है।

रातभर अध्ययन किया जाता है कि सोया हुआ आदमी क्या-क्या कर रहा है। यह पहली घटना है मनुष्य जाति के इतिहास में, जब नींद का वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है। तो बड़े चमत्कारी परिणाम हुए।
एक तो यह बात पता चली है कि यह हमारा ख्याल गलत है कि लोग पड़े रहते हैं। लोग पड़े नहीं रहते; लोग बड़ी क्रियाएं करते हैं। करवटें बदलते हैं; हाथ-पैर चलाते हैं; मुंह बनाते हैं; मुंह बिचकाते हैं; आवाजें करते हैं; आंखें चलाते हैं। सारा काम जारी रहता है। गरदन हिलाते हैं। कुछ लोग बोलते हैं। कुछ लोग अनर्गल बकते हैं। कुछ लोग उठकर चलते भी हैं कमरे में। उनको भी पता नहीं सुबह कि वे रात कमरे में चलते हैं। कुछ लोग घर का चक्कर लगा आते हैं; फ्रिज खोलकर खा भी आते हैं; और उनको पता भी नहीं होता कि रात में उन्होंने यह काम किया है। चोरी की है लोगों ने नींद में, और उनको पता नहीं। लोगों ने हत्याएं तक की हैं नींद में, और उनको पता नहीं।
न्यूयार्क में एक आदमी रोज रात अपनी छत से, साठ मंजिल मकान की छत से, दूसरे की छत पर कूद जाता था। वापस कूद आता था। पर यह नींद में ही होता था। नियमित क्रम था। कोई रात दो बजे! धीरे-धीरे यह बात मुहल्ले-पड़ोस में पता चल गई। लोग देखने भी खड़े होने लगे। कोई आदमी होश में नहीं कूद सकता। दोनों मकानों के बीच काफी फासला है और खतरा बड़ा है। क्योंकि साठ मंजिल का गड्ढ है बीच में।
लेकिन एक रात काफी लोग इकट्ठे हो गए। और जब वह आदमी कूदा, तो उन्होंने सिर्फ जोश में आवाज लगा दी। उस आदमी की नींद टूट गई। नींद टूटते ही वह बीच के खड्ड में गिर गया। वह खुद भी पगला गया। जैसे ही नींद टूट गई उसकी, उसकी समझ के बाहर हो गया कि यह क्या हो रहा है! वह आदमी मर गया।
उस आदमी की यह घटना अकेली नहीं है। ऐसे सैकड़ों लोग हैं। मनोविज्ञान उनको एक खास तरह की बीमारी से पीड़ित पाता है, सोम्नाबुलिज्म, निद्रा में क्रिया करने की बीमारी। हत्याएं कर दी हैं लोगों ने; गरदनें दबा दी हैं; और जाकर अपने बिस्तर पर सो गए हैं। सुबह उन्हें कुछ याद नहीं। जैसे आप सपना भूल जाते हैं सुबह, ऐसा वे उस घटना को भी भूल गए हैं। वह बिल्कुल नींद में हुआ है।
ये नींद में जो लोग चलते हैं, ये आंख खुली रखते हैं, इसलिए टकराते नहीं हैं। बराबर निकल जाते हैं। सामान रखा हो, तो बचकर निकल जाते हैं। आंख उनकी खुली रहती है। लेकिन एक फर्क होता है। आंख उनकी झपती नहीं जब वे नींद में चल रहे होते हैं। आंख बस खुली रहती है। जैसे मरे हुए आदमी की आंख खुली हो; झपे नहीं। उनकी आंख झपती नहीं है। अंधेरे में काम करके वे अपना वापस अपनी जगह आकर सो जाते हैं।
नींद में भी आप भिन्न-भिन्न हैं। एक महावीर हैं, जिनके बाबत कहा जाता
है कि वे रात करवट नहीं बदलते। दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं, जो साठ मंजिल के मकान से छलांग भी लगाते हैं।
रात्रि भी एक बड़ी क्रिया है। और रात्रि कोई छोटी घटना नहीं है। आप साठ साल जीएंगे, तो बीस साल सोते हैं। एक तिहाई जिंदगी नींद में जाती है। रोज नियमित आठ घंटा आप नींद में उतरते हैं, एक दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं। वहां भी क्रिया जारी है।
रात सोते हुए आदमियों का अध्ययन करके भी कहा जा सकता है कि कौन सात्विक है, कौन राजसिक है, कौन तामसिक है। तामसिक की निद्रा ऐसी होगी, जैसे वह बेहोश पड़ा है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें। उसकी निद्रा मूर्च्छा जैसी होगी। जैसे उसे बेहोशी है, कोमा है। तो रात नींद में भी पता चलेगा कि उसके चेहरे पर एक बेहोशी छाई हुई है; सूखापन है; उदास है; सब चीजें सिकुड़ गई हैं; जैसे प्राण कहीं भीतर खो गए हैं और शरीर निर्जीव हो गया है।
ऐसा व्यक्ति सुबह जब उठेगा, तो ताजा नहीं होगा; उसमें जिंदगी की लहर नहीं होगी। ऐसा व्यक्ति एकदम से नहीं उठ सकता। सुबह उठेगा; फिर करवट बदलेगा; फिर सो जाएगा। फिर करवट बदलेगा; फिर सो जाएगा। उसे उठने में कम से कम घंटाभर लगेगा। नींद में और जागने के बीच वह घंटेभर की यात्रा करेगा।
बार-बार जागेगा और बार-बार सो जाएगा। यह मूर्च्छा है। यह नींद नहीं है।
क्योंकि नींद तो टूट चुकी है, लेकिन मूर्च्छा टूटने में समय लग रहा है।

जो आदमी राजसी है, वह रातभर श्रम करेगा; हाथ-पैर चलाएगा, मुंह चलाएगा, बोलेगा, आवाज करेगा। यह आदमी रातभर गति में रहेगा। इसकी नींद विक्षिप्त है। मूर्च्छित नहीं है, लेकिन विक्षिप्त है। और सुबह जब यह उठेगा, तो यह उठ आएगा एकदम से, क्योंकि यह राजसी है। वस्तुतः राजसी आदमी बिस्तर से उठता नहीं, कूदता है, उठता नहीं। नींद टूटी कि छलांग लगाकर वह बाहर हो जाएगा, जैसे एक झंझट से छूटे। फिर मौका मिला भाग-दौड़ का। तो वह बाहर निकल जाएगा। लेकिन यह आदमी थका हुआ पाएगा सुबह।
तामसी व्यक्ति मूर्च्छित पाएगा सुबह। ताजा नहीं हुआ। जिंदगी बोझिल लगेगी। राजसी व्यक्ति सुबह थका हुआ पाएगा, जैसे बड़े काम करके आ रहा है।
यह ध्यान रखें कि राजसी व्यक्ति दिनभर के काम के बाद दस ग्यारह बजे रात सबसे ज्यादा ताजा अपने को अनुभव करेगा। सोने के पहले वह सबसे ज्यादा ताजा होगा, क्योंकि दिनभर के काम के बाद उसको बड़ी राहत मिली।
ये जो क्लब चल रहे हैं, नाच-घर चल रहे हैं, वे राजसी लोग चला रहे हैं।
वे सब से ज्यादा ताजे होते हैं; उनकी जिंदगी का जो पीक प्वाइंट है, वह रात ग्यारह-बारह बजे आता है। तब वे सबसे ज्यादा जिंदा होते हैं। दिनभर के उपद्रव के बाद उन्हें लगता है कि वे प्रसन्न हैं।
लेकिन राजसी व्यक्ति सुबह हमेशा थका हुआ होगा; रात ताजा होगा। तामसी व्यक्ति सदा थका होगा। वे कभी ताजे नहीं हैं। वे सदा सोए-सोए हैं। मजबूरी है कि उन्हें उठना पड़ता है।
सात्विक व्यक्ति जब रात सोएगा, तो उसकी नींद में एक हलकापन और एक प्रकाश होगा। उसकी नींद न तो मूर्च्छित होगी कि वह बेहोश पड़ा है; और न विक्षिप्त होगी कि वह व्यर्थ के क्रिया-कलाप कर रहा है। उसकी नींद एक गहरा विश्राम होगी, जैसे कोई ध्यान में लेटा हो। जैसे जागा भी हो और सोया भी हो। जरा-सी खटके की आवाज होगी, तो वह जाग सकता है। लेकिन उसकी नींद उथली नहीं है। खटके की आवाज में वह जो आलसी है, वह जाग नहीं सकता। खटका क्या, किसी आवाज में नहीं जाग सकता।
मुल्ला नसरुद्दीन से एक दिन सुबह उसकी पत्नी बोली कि रात बड़ी कठिनाई
हो गई। भूकंप आया; बड़ी बिजलियां गरजीं; सारे गांव में उथल-पुथल मच गई; सैकड़ों मकान गिर गए। नसरुद्दीन ने कहा, पागल, मुझे क्यों न उठाया! मैं भी देखता।
वह जो तामसी है, वह सदा बासा है। जिसको हम फ्रेशनेस कहें, प्रफुल्लता कहें, ताजगी कहें, नयापन कहें, वह उसमें नहीं है। वह सदा बासा है। उसके मुंह का स्वाद सदा बासा है। वह कभी खिला हुआ नहीं है, सदा मुरझाया हुआ है। राजसी व्यक्ति सुबह-सुबह मुरझाया हुआ लगेगा, क्योंकि रातभर व्यर्थ काम में संलग्न रहा है। सांझ होते-होते ताजा होने लगेगा।
सभ्यताओं में भी इसके अंतर होते हैं। योरोप, पश्चिम की सभ्यता राजसी है। इसलिए पश्चिमी सभ्यता का जो पूरा उभार है, वह सांझ के बाद है। पेरिस है, या लंदन है, या न्यूयार्क है; वहां जो असली जिंदगी है, वह दिन में नहीं है, वह रात में है। जब लोग नाच-घरों में चले गए हैं, शराब पी रहे हैं, जुआ खेल रहे हैं, तब असली जिंदगी है। अगर पेरिस देखना है, तो रात देखना। दिन में पेरिस का कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि पेरिस जगता ही रात में है। पश्चिम की सारी सभ्यता रात्रि में सजग होती है। पूरब ने एक व्यवस्था
की थी, वह पूरी व्यवस्था ब्रह्ममुहूर्त में जागने वाली थी। सांझ जल्दी सो जाने वाली, और सुबह जब सूरज उगे, उसके पहले उठ आने वाली थी। वह सात्विक व्यवस्था की चेष्टा थी।
वह जो सात्विक व्यक्ति है, रात बिल्कुल शांति से सोता है। न तो विक्षिप्त होता है, न मूर्च्छित होता है। सूरज के उगने के पहले या करीब-करीब सूरज के उगते वह उठ आता है। सूरज का उगना, उसके भीतर की चेतना का भी जग जाना है।
होना भी यही चाहिए। क्योंकि सूरज के साथ सारे पक्षी जागते हैं। सूरज
के साथ सारे पौधे जागते हैं। सूरज के साथ पृथ्वी जागती है। और अगर आप इस पृथ्वी के वास्तविक प्राकृतिक हिस्से हैं, तो सूरज के साथ ही जागना उचित है। सूरज के आते ही आपके भीतर भी जीवन सजग हो जाना चाहिए और उतनी ही ताजगी से भर जाना चाहिए, जितनी ताजगी सुबह की है। यह तो नैसर्गिक क्रम है।

सात्विक व्यक्ति सुबह सूरज के साथ उठ आएगा। न तो वह आलसी की तरह पड़ा रहेगा और घंटों लगाएगा उठने में, न वह राजसी की तरह छलांग लगाकर बाहर निकलेगा। वह उठेगा आहिस्ता से, शांति से, आश्वस्त; उसमें कोई भाग-दौड़ नहीं है। पड़े रहने का भी कोई मोह नहीं है। दौड़कर संसार में उतर जाने की भी कोई वृत्ति नहीं है। वह नींद से बाहर आएगा, सरलता से। नींद और जागरण के बीच कोई फासला नहीं है उसे बड़ा, जिसको छलांग लगानी है या जिसको समय देकर पूरा करना है। उसकी नींद एक शांत, प्रशांत, गहरी धारा है।
सात्विक व्यक्ति सुबह सबसे ज्यादा ताजा होगा। रात होते-होते थक जाएगा। जब राजसी क्लब जाने की तैयारी कर रहा होगा, तब उसकी आंखें झप रही होंगी, तब वह बैठ भी नहीं सकता, तब वह सो जाने के लिए तैयार है। पर यही नैसर्गिक भी है। दिनभर के काम के बाद थक जाना नैसर्गिक है।
पर भेद हैं। और आपको अपना गुण देखकर चलना चाहिए कि नैसर्गिक क्या है।
यह जो नींद के संबंध में निरंतर गहरी खोज हुई हैं, उससे कई बातें... । जैसा मैंने कल आपको कहा कि स्त्री ज्यादा तमस से भरी है, पुरुष ज्यादा राजस से। लेकिन चूंकि भारत जैसे मुल्कों में पुरुषों ने सभ्यता बनाई और मनु जैसे महावेत्ताओं ने बड़ी कोशिश की कि एक सात्विक सभ्यता का जन्म हो जाए।
सारी ब्राह्मण संस्कृति एक बड़ी चेष्टा है, एक महान प्रयोग, कि सारी संस्कृति सात्विक हो जाए। कठिन है। क्योंकि इसमें जो सात्विक नहीं हैं, वे अड़चन में पड़ेंगे। और उनकी संख्या काफी बड़ी है। इसलिए यह प्रयोग सफल नहीं हो सका। यह प्रयोग असफल हुआ। महान प्रयोग था। और महान प्रयोग के असफल होने की संभावना सदा ज्यादा है।
इसलिए हिंदुओं ने बड़ी चेष्टा की पांच हजार साल तक एक बड़े गहरे प्रयोग
को व्यवस्था देने के लिए। लेकिन वह असफल हुआ। क्योंकि राजसी और तामसी लोगों का बहु-संप्रदाय है। सात्विक लोग बहुत थोड़े-से हैं। वे थोड़े-से लोग कितने ही सुख में जी रहे हों और वे सबको बताएं कि तुम भी इतने ही सुख में पहुंच सकते हो, मगर उनकी बात उन लोगों के किसी काम की नहीं है, जिनके गुण विपरीत हैं।
चूंकि पुरुषों ने इस सात्विकता का प्रयोग किया, स्त्रियों को भी उन्होंने सुबह जल्दी उठाने की चेष्टा की। सच तो यह है कि भारत में रिवाज यह था कि पुरुष के पहले स्त्री उठ आए। घर का काम कर ले। सब साफ-सुथरा कर दे। वह गृहिणी है। इसके पहले कि पुरुष उठे, वह घर को ताजा स्वच्छ पाए।
लेकिन पश्चिम की खोजें यह बता रही हैं कि किसी भी स्त्री को सूरज उगने
के पहले भूलकर नहीं उठना चाहिए। पति को पहले उठना चाहिए; वह राजसिक है।
उसमें ज्यादा क्रिया का जोर है। चाय वगैरह का काम पति को कर लेना चाहिए, फिर पत्नी को उठना चाहिए। वैसे पति अपने आप धीरे-धीरे उस रास्ते पर जा रहे हैं बिना किसी खोज के।
और स्त्रियां अगर जल्दी सुबह उठ आएं, तो दिनभर आलस्य अनुभव करेंगी। पश्चिम की खोज किन्हीं दूसरे कारणों से है, लेकिन सार्थक है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि चौबीस घंटे में दो घंटे शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। वे ही दो घंटे गहरी नींद के घंटे हैं। चौबीस घंटे में दो घंटे प्रत्येक व्यक्ति के शरीर का तापमान नीचे गिरता है। वे ही दो घंटे गहरी नींद के घंटे हैं। और हर व्यक्ति का अलग-अलग समय गिरता है। पुरुषों का आमतौर से तीन बजे रात और पांच बजे सुबह के बीच गिरता है, आमतौर से। इसलिए तीन और पांच के बीच पुरुष को गहरी से गहरी नींद का क्षण है। स्त्रियों का आमतौर से छः और आठ के बीच गिरता है। इसलिए छः और आठ के बीच उनके लिए गहरी से गहरी नींद का क्षण है।
जब आपका तापमान गिरता है, अगर उस समय आप उठ आएं, तो आप दिनभर परेशान होंगे। और इसे तो आप थर्मामीटर लगाकर जांच भी ले सकते हैं। चौबीस घंटे की रिपोर्ट आप ले सकते हैं अपनी और आप पा सकते हैं कि किन दो घंटों में आपका तापमान गिरता है। वे दो घंटे तो आपको सोना ही है। उन दो घंटों में आप उठेंगे, तो आप दिनभर बेचैन होंगे। ऐसा लगेगा, कुछ चूक गया; कुछ कठिनाई है; कुछ अड़चन है। एक भीतरी कठिनाई का बोध दिनभर बना रहेगा।

लेकिन हमारे हिसाब से भी, रजस और तमस के विश्लेषण के हिसाब से भी स्त्री ज्यादा तामसी है। तामसी का मतलब है कि ज्यादा आलस्य, कम श्रम और ज्यादा विश्राम, वह उसका स्वभाव है। इसमें कुछ बुराई नहीं है। ऐसा है, यह तथ्य है। पुरुष का स्वभाव है, ज्यादा काम और कम विश्राम।
सात्विक व्यक्ति की साधना मूल रूप से ध्यान की साधना होगी। और ध्यान
भी मंत्र-योग, क्रिया-योग इत्यादि नहीं। ध्यान भी झेन जैसा, शून्यता का भाव। सात्विक व्यक्ति हलका है और शून्य हो सकता है सरलता से।
बुद्ध की सारी चेष्टा कि तुम शून्य होओ, सिर्फ सात्विक लोगों पर सार्थक हो सकती है, सभी पर नहीं। तो बुद्ध ने जोर दिया है कि तुम्हारे भीतर कोई आत्मा भी नहीं है। क्योंकि आत्मा का ख्याल भी तुम्हें भरे हुए रखेगा। कोई भी नहीं है। भीतर तुम एक विराट शून्य हो, खाली आकाश।
इसी धारणा को गहरा करता जाए अगर कोई व्यक्ति और सात्विक वृत्ति का हो,
तो वह परम सिद्धि को उपलब्ध हो जाएगा। राजसी व्यक्ति को तपश्चर्या और क्रियाओं से गुजरना होगा। और क्रियाओं और तपश्चर्या के साथ साक्षी-भाव को जगाना होगा।
आलसी व्यक्ति क्रियाओं और तपश्चर्या में नहीं जा सकता। उसको अपनी अकर्मण्यता को ही अपनी क्रिया माननी होगी और अपनी अकर्मण्यता के प्रति साक्षी-भाव को जगाना होगा।
साक्षी-भाव तीनों के साथ काम करेगा। लेकिन सात्विक शून्य के साथ साक्षी को जोड़ेगा। राजसिक कर्म के साथ साक्षी को जोड़ेगा। तामसिक आलस्य के साथ साक्षी को जोड़ेगा। और साक्षी सूत्र है, जिससे भी आप जोड़ दें, वही पुल बन जाएगा, वही सेतु बन जाएगा।

अब सूत्र।
सात्विक कर्म का तो सात्विक अर्थात सुख, ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल
फल कहा है। और राजस कर्म का फल दुख, संताप, पीड़ा; एवं तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है। सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है; रजोगुण से निस्संदेह लोभ उत्पन्न होता है; तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।
सत्वगुण में स्थित हुए पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं और रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य अर्थात मनुष्य लोकों में होते हैं एवं तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्य आदि में स्थित हुए तामस पुरुष अधोगति को अर्थात नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।
सात्विक कर्म का फल सुख, ज्ञान और वैराग्य है।
एक-एक शब्द को ठीक से समझें। सात्विक कर्म का अर्थ है, जो कर्म आपके करने के पागलपन से पैदा न हुआ हो; पहली बात।
आप लोगों से बात करते हैं। अक्सर बात आप इसलिए करते हैं कि अगर आप बात
न करें, तो आपको भीतर बेचैनी मालूम होगी। आप लोगों से बात नहीं कर रहे हैं, एक कचरा आपके सिर पर पड़ा है, उसे आप निकाल रहे हैं। आपको प्रयोजन नहीं है कि दूसरे व्यक्ति को इससे कुछ लाभ होगा। दूसरे से आपको कोई मतलब ही नहीं है। अ ब स कोई भी हो; सिर्फ बहाना है दूसरा। और आपके सिर में जो घूम रहा है बवंडर, उसे आप निकाल रहे हैं।
इसलिए लोग एक-दूसरे की बातचीत से ऊबते हैं। ऊब इसीलिए पैदा होती है कि
वे आए थे अपना कचरा निकालने, आप उनको मौका ही नहीं दे रहे हैं। और आप ही कचरा डाले जा रहे हैं।
जिस आदमी से आप ऊबते हों, उसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि वह आपको मौका नहीं दे रहा है। और जो उबाने वाले, पक्के बोर होते हैं, वे आपको मौका देंगे ही नहीं। वे संध भी नहीं छोड़ते बीच में। दो बातों के बीच संध भी नहीं छोड़ते कि आप कुछ भी बीच में उठा दें और सिलसिला अपने हाथ में ले लें। वे कहे ही चले जाते हैं!
यह जो बोलना है, यह कोई संबंध नहीं है। और यह बोलने का जो कृत्य है, यह सात्विक नहीं रहा, राजसिक हो गया। आपको एक कर्म करने का पागलपन है भीतर; आप बिना किए नहीं रह सकते हैं। इसलिए मजबूरी है, कर रहे हैं। कुछ लोग सेवा में लगे हैं।

मेरे पास एक मित्र आए। और उन्होंने कहा कि बीस साल से सेवा कर रहा हूं। हरिजनों की सेवा की; आदिवासियों की सेवा कर रहा हूं। स्कूल खोले, अस्पताल खोले। लेकिन शांति नहीं मिलती।
तो मैंने उनसे कहा, इतना कम से कम अच्छा है कि तुम काम में लगे हो बीस साल से। शांति नहीं मिल रही, लेकिन अगर तुम यह उपद्रव इतना न करते--हरिजन की सेवा, आदिवासी की सेवा और यह सब अस्पताल और स्कूल--तो तुम इतनी अशांति इकट्ठी कर लेते कि तुम पागल हो जाते। और तुम यह मत सोचना कि तुम हरिजन के कारण सेवा कर रहे हो। तुम्हें सेवा करनी ही पड़ती। हरिजन न हों, तो किसी और की करनी पड़ती। वह तो हरिजन हैं, सौभाग्य! आदिवासी हैं, कृपा प्रभु की। अगर न हों, तो तुम किसी न किसी की सेवा करते ही। सेवा तुम्हें करनी ही पड़ती। यह तुम्हारी भीतरी मजबूरी है। यह हरिजन तो खूंटी है, जिस पर तुमने टांगा है अपने को।
इसलिए आप यह मत सोचें कि दुनिया अच्छी हो जाएगी, तो सेवा करने वालों
को कोई अवसर न रहेगा। वे अवसर खोज ही लेते हैं। वे खोज ही लेंगे। वे कोई न कोई उपाय खोज लेंगे, क्योंकि उन्हें कुछ करना है।
अगर करने की बीमारी से आपका कर्म निकल रहा है, तो वह सात्विक नहीं है। सात्विक वह कर्म है, जो करुणा से निकल रहा है; जो दूसरे को ध्यान में रखकर निकल रहा है; जिसमें आपका कोई भीतरी पागलपन नहीं है। और अगर कुछ करने को न हो, तो आप बेचैन न होंगे। आप शांत बैठे होंगे; आनंदित होंगे। अगर आपको करने को कुछ भी न बचे, तो आप उतने ही आनंदित होंगे, जितना आप करते हुए आनंदित हैं।
लेकिन सेवा करने वालों का कर्म छीन लो, वे मुश्किल में पड़ जाते हैं।
वे पूछते हैं, अब क्या करें! खाली बैठना उन्हें कठिन है।
खाली सिर्फ वही बैठ सकता है, जो अपने साथ आनंदित है। जो स्वयं में आनंदित है, वही बैठ सकता है खाली। जो स्वयं में आनंदित नहीं है, वह कहीं न कहीं लगाए रखेगा अपने को; किसी कर्म में उलझाए रखेगा। वह उलझाव अपने से बचने की तरकीब है। वह एक एस्केप है, पलायन है, जिसमें अपने को भूला रहता है और कहीं लगा रहता है।
सात्विक कर्म का अर्थ है, जो कर्म तुम्हारे हलकेपन से, तुम्हारी शांति से, तुम्हारे निर्भार होने से निकलता हो। तुम्हें करने की कोई मजबूरी नहीं है। लेकिन कोई परिस्थिति थी, जहां कुछ करने से किसी को लाभ होता, मंगल होता किसी का, किसी का शुभ होता, तो कर्म जब निकले, वह सात्विक है।
सात्विक कर्म सुख पैदा करेगा। सात्विक कर्म ही सुख पैदा करेगा। सुख
का मतलब ही यह है कि जो तुम्हारे आनंद से निकले कर्म, वही तुम्हें सुख देगा। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
जो किसी और कारण से तुम्हारे भीतर से निकलेगा कर्म, वह तुम्हें सुख नहीं देगा। क्योंकि वस्तुतः सुख किसी चीज में नहीं है, हम डालते हैं। और अगर हममें न हो, तो हम नहीं डाल सकते।
मैं आपसे यहां बोल रहा हूं। अगर यह मेरे आनंद से निकल रहा है, तो यह बोलना आनंदपूर्ण हो जाएगा, क्योंकि मेरे आनंद में डूबा हुआ निकल रहा है। लेकिन अगर किसी और कारण से निकल रहा हो, तो इससे मुझे सुख नहीं मिल सकता। आप जो भी करते हैं, करने से आप कुछ नहीं पाते। आप करने में क्या डालते हैं भीतर से, उसी को पाते हैं। हम जो डालते हैं, वही हमें मिलता है।
अगर कोई आदमी सेवा करके भी दुखी है, तो इसका मतलब है, कर्म सात्विक नहीं है। अगर आप कुछ भी करके दुखी हो रहे हैं, तो इसका अर्थ है कि आप जो कर रहे हैं, वह सात्विक नहीं है। वह राजसिक होगा।
राजसिक कर्म से दुख निकलता है, क्योंकि राजसिक कर्म भीतरी दुख से पैदा होता है। मैं एक भी राजनीतिज्ञ को सुखी नहीं पाता हूं। बड़े कर्म में वे लीन हैं। विराट कर्म उन्हीं से चल रहा है! सारे अखबार उन्हीं से भरे होते हैं।
सात्विक आदमी के कामों की तो कोई खबर अखबार में होती नहीं। क्योंकि
वे इतने चुपचाप होते हैं कि उनका शोरगुल पैदा नहीं होता। कभी-कभी सात्विक आदमी की भी खबर आती है अगर कोई राजसिक आदमी उनके काम में जुड़ जाए; कि

विनोबा से मिलने अगर कभी कोई गवर्नर चला जाए, तो खबर छपती है; कि पंडित नेहरू विनोबा के पास चले जाएं, तो खबर छपती है। छपती है नेहरू की वजह से। लेकिन मजबूरी है। क्योंकि विनोबा के पास गए, इसलिए वह नाम भी छापना पड़ता है।
सात्विक व्यक्ति तो खबर की दुनिया के बाहर चुपचाप काम में लगा होता है। राजनैतिक बड़े काम करता है; विराट कर्म का जाल उसी का है; सारा खेल उसका है। यह सारा प्रपंच परमात्मा का जो चलाता है, उसमें नब्बे परसेंट राजनैतिक चलाता है। लेकिन सुखी बिल्कुल नहीं है। इतना करके भी सुख की कोई छाया भी नहीं मिलती।
ढेर राजनीतिज्ञ मेरे पास आते हैं। जब वे पदों पर नहीं रह जाते, तब तो जरूर आते हैं। लेकिन वे कहते हैं, कोई सुख नहीं है, कोई शांति नहीं है। कोई मार्ग बताएं। इतने कर्म के बाद अगर कोई सुख न मिल रहा हो, तो कर्म का फल क्या है!
एक आदमी कहे कि मैं मीलों दौड़ता हूं, लेकिन मंजिल दिखाई भी नहीं पड़ती है, पास आने की तो बात अलग है! तो उससे हम कहेंगे, फिर तू दौड़ता क्यों है! क्योंकि दौड़ना अगर मंजिल तक न ले जाए, तो क्यों अपनी शक्ति व्यय कर रहा है! इससे तो बैठ रह। और अगर दौड़ने से मंजिल पास नहीं आती, तो यह भी डर है कि कहीं तू उलटी दिशा में तो नहीं दौड़ रहा है। नहीं तो दूर निकल जाए। और दौड़ने से मंजिल दूर हो जाए, इससे तो बैठा हुआ आदमी भी कम से कम एक लाभ में है। पास न जाए, दूर तो निकल ही नहीं सकता। बैठा हुआ आदमी कम से कम भटक तो नहीं सकता। उतनी सुरक्षा है।
लेकिन यह दौड़ने वाला राजनैतिक है। इसके कर्म बड़े हैं, परिणाम न के बराबर है।
सिकंदर दुखी मरता है, विराट कर्म के बाद। नेपोलियन दुखी मरता है, विराट कर्म के बाद। हिटलर आत्मघात करता है; लेनिन मरते वक्त अति दुखी है। और मरते वक्त लेनिन अपनी वसीयत में लिखता है कि स्टैलिन के हाथ में सत्ता न रहे। और दुखी इसीलिए है। जब तक वह बीमार था, तब तक स्टैलिन ने सत्ता हथिया ली। वह और भी बड़ा राजसिक व्यक्ति है। लेनिन ने क्रांति की, लेकिन सत्ता स्टैलिन के हाथ चली गई।
क्रांतिकारी अक्सर सत्ता नहीं भोग पाते, क्योंकि उनकी शक्ति और उनकी ऊर्जा सत्ता हथियाने में नष्ट हो जाती है। जब तक वे सत्ता पाते हैं, तब तक भीतर से कमजोर हो जाते हैं। जब सत्ता उनके हाथ में आती है, तब कोई शक्तिशाली व्यक्ति, जिसकी शक्ति अभी बची है, वह कब्जा कर लेता है।
हर क्रांति में यह होता है कि जो लोग क्रांति करते हैं, वे फेंक दिए जाते हैं। और जो क्रांति नहीं करते, वे मालिक हो जाते हैं। अक्सर होगा ऐसा। बाप कमाएगा और बेटा उसको खर्च करेगा। क्योंकि बाप कमाने में खर्च हो जाते हैं।
लेनिन दुख से मरा और वसीयत करके गया। लेकिन वसीयत को कौन सुनने वाला है! ताकत स्टैलिन के हाथ में थी। वसीयत दबा दी गई।
लेकिन स्टैलिन दुखी मरता है; दुखी जीता है। दुख वहां तक पहुंच जाता है
कि बाद-बाद के दिनों में कहा जाता है कि उसने अपना एक डबल रख छोड़ा था, ठीक स्टैलिन की शक्ल का आदमी। हिटलर ने भी अपना एक डबल रख छोड़ा था। स्टैलिन खुद बाहर नहीं जाता था, क्योंकि लोगों को इतना कष्ट दिया है कि वह सुरक्षित नहीं था।
अब यह बड़े मजे की बात है, बड़ी विडंबना है, कि स्टैलिन ने सारी जिंदगी यही तो कोशिश की कि यशस्वी हो जाऊं, बड़ा शक्तिशाली हो जाऊं। और जब शक्ति हाथ में आई, तब कमरे में छिपकर उसको रहना पड़ता था। उसकी जगह सलामी वगैरह लेने उसका डबल जाता था। क्योंकि अगर गोली मार दी जाए, तो दूसरा आदमी मरेगा, स्टैलिन सुरक्षित रहेगा।
कहा जाता है कि मर जाने के बाद भी दो-तीन महीने तक रूस में खबर नहीं दी
गई कि स्टैलिन मर गया है। वह डबल काम करता रहा। वह जो दूसरा नकली आदमी बनाकर रख छोड़ा था, वही जाएगा; सभाओं में सलामी लेने, व्याख्यान देने, वह जाएगा।

यह बड़ी अजीब ढंग की उपलब्धि हुई कि जहां स्वागत भी अपना न हो सके; जहां स्वागत के लिए दूसरे को भेजना पड़े!
और स्टैलिन एक प्रेत की तरह हो गया, जो पीछे छिपा हुआ है। और किसी पर उसका भरोसा नहीं है। किसी पर भरोसा नहीं हो सकता। क्योंकि वह खुद धोखा देकर, खुद लेनिन को धोखा देकर कब्जे में आया है। इसलिए जितने लोगों ने उसको सहायता दी, सबको उसने मरवा डाला। क्योंकि जो आदमी भी उसको सहायता देगा, ताकतवर सिद्ध होगा, वह उसको खतम कर देगा।
इसलिए पिछले चालीस साल में, जिनमें स्टैलिन ताकत में था, उसमें उसने
हर आदमी को, जिसने उसको साथ दिया और जो सीढ़ी बना और जिसने उसको ऊपर भेजा, उसने जल्दी उसकी गर्दन अलग की। क्योंकि यह आदमी अगर अपने लिए सीढ़ी बन सकता है, तो कल किसी दूसरे को भी चढ़ाने में सीढ़ी बनेगा।
स्टैलिन जैसे लोगों का कोई मित्र नहीं हो सकता। क्योंकि मित्र इतने पास आ जाएगा कि खतरनाक है। स्टैलिन से दूर ही लोग रह सकते हैं, पास नहीं हो सकते। और परम दुख में मर रहा है।
स्टैलिन की लड़की ने बाद में संस्मरण लिखे हैं। उसने संस्मरण में लिखा
है कि मेरे पिता जितने दुखी थे, ऐसा दुखी आदमी मैंने कहीं देखा नहीं। दुखी होगा ही।
सात्विक कर्म भीतर के सुख से निकलते हैं। और हर कर्म आपके सुख को हजार गुना कर देगा। क्योंकि हर कर्म आपके सुख की प्रतिध्वनि को आप तक लौटाता है।
आप जो देते हैं अपने कर्म में, वह हजार गुना होकर आप पर बरसने लगता है।
यह सारा जगत एक प्रतिध्वनि है। आप एक गीत गाते हैं, तो सब तरफ से गीत गूंजकर आप पर गिरता है। आप एक गाली देते हैं, तो गाली लौट आती है हजार गुनी होकर। जो कांटे बोता है, कांटे काटता है। जो फूल बोता है, वह फूल काट लेता है।
सात्विक कर्म सुख लाएगा, एक। ज्ञान लाएगा, दो। यह बड़ी अनूठी बात है। सात्विक कर्म ज्ञान क्यों लाएगा? ज्ञान मिलना चाहिए शास्त्र से, गुरु से। लेकिन कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म ज्ञान लाएगा। यह किस ज्ञान की बात कर रहे हैं?
जब आप कोई सात्विक कर्म करते हैं, तब आप एकदम शांत हो जाते हैं। कभी भी अच्छा काम करके देखें, और उस रात आप गहरी नींद सोएंगे। कोई बुरा काम करके देखें, उस रात आप सो भी नहीं पाएंगे। कोई बुरा काम करें, वह भीतर खटकता ही रहेगा, कांटे की तरह चुभता ही रहेगा। कोई भला काम करें, और एक हलकापन फैल जाता है; एक सुबह हो जाती है भीतर। छोटा-सा!
एक बीमार आदमी जा रहा हो और उसको आप हाथ का सहारा देकर रास्ता पार करवा दें। रास्ता पार कराते-कराते ही आपके भीतर कुछ होने लगेगा। सब हलका हो जाएगा, शांत हो जाएगा।
रास्ते पर एक नोट पड़ा हो। उठाने का ख्याल आ जाए, उससे ही बेचैनी शुरू
हो जाएगी। फिर उठाकर उसे जेब में रख लें। फिर वह पहाड़ की तरह भारी मालूम पड़ेगा। फिर आप और कुछ भी करते रहें, लेकिन भीतर एक बेचैनी है।
अमेरिका की अदालतों में एक यंत्र का उपयोग करते हैं, लाई डिटेक्टर, झूठ को पकड़ने का यंत्र। वह पकड़ लेता है झूठ। वह झूठ इसलिए पकड़ लेता है कि झूठ बोलते ही हृदय को झटका लगता है। उस झटके को पकड़ लेता है।
उस यंत्र के ऊपर अदालत में आदमी को खड़ा कर देते हैं। उससे कुछ पूछते हैं। उससे पूछते हैं, इस समय घड़ी में कितने बजे हैं? घड़ी सामने है। झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। वह कहता है, नौ बजे हैं। उससे पूछते हैं, दीवाल पर कौन-सा रंग है? झूठ बोलने का कोई कारण नहीं है। वह कहता है, हरा रंग है। ऐसे चार-छः सवाल पूछते हैं। नीचे यंत्र उसके हृदय की धड़कन को नोट कर रहा है। हृदय की धड़कन का ग्राफ बन रहा है नीचे।
फिर उससे पूछते हैं, क्या तूने चोरी की? तो भीतर से तो आवाज आती है, की। क्योंकि उसने की है। ऊपर से वह कहता है, नहीं की। नीचे झटका लग जाता है। नीचे जो हृदय का कंपन है, वह दोहरी खबर देता है, एकदम से झटका आ जाता है। नीचे का ग्राफ बताता है कि यह आदमी कुछ और कहना चाहता था और इसने कुछ और कहा।

तो अब तो हर अदालत में अमेरिका में उपयोग कर रहे हैं। झूठ बोलना बहुत मुश्किल है, आप कितने ही तैयार होकर गए हों। जितने तैयार होकर गए हों, उतना ही मुश्किल है। क्योंकि आप क्या करिएगा इस बात को! भीतर यह होगा ही। जो आप जानते हैं, सही है, वह तो आप जानते हैं। उसे भूलने का कोई उपाय नहीं। और जो आप जानते हैं, सही नहीं है, आप उसे कितना ही कहें, हृदय झटका खाएगा। क्योंकि दोहरी बातें हो गईं। एक स्वर न रहा; भीतर दो स्वर हो गए।
यह जो आदमी ऐसे दो स्वर प्रकट कर रहा है यंत्र के ऊपर, जो आदमी बुरा कर रहा है, वह चौबीस घंटे इस तरह की ही बेचैनी में जी रहा है।
झूठ बोलने वाले आदमी की बड़ी तकलीफ है। उसको एक झूठ के लिए हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। एक बुरा काम कर ले, तो उसको बचाने के लिए फिर हजार बुरे काम करने पड़ते हैं। फिर एक सिलसिला शुरू होता है, जिसका कोई अंत नहीं है। और इसमें वह उलझता चला जाता है। इस सबका इकट्ठा परिणाम दुख है।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म का फल सुख और ज्ञान है।
जैसे ही आप हलके होंगे, शांत होंगे, प्रसन्न होंगे, प्रफुल्लित होंगे,
एट ईज होंगे, एक गहरा विश्राम होगा; भीतर दो स्वर नहीं हैं, एक ही भाव है; और सब चीजें साफ हैं, सच्ची हैं, सीधी हैं। इस सीधे-सच्चेपन में, इस भोलेपन में, इस निर्दोषता में, आपकी आंखें अपने को पहचानने में समर्थ होंगी। वही ज्ञान है।
स्वयं को पहचानने के लिए भीतर धुआं नहीं चाहिए, द्वंद्व नहीं चाहिए, कलह नहीं चाहिए। भीतर सन्नाटा चाहिए। और सन्नाटा केवल उसी में हो सकता है, जो सात्विक हो। नहीं तो सन्नाटा बहुत मुश्किल है।
आपको पूरे समय सुरक्षा में ही लगे रहना पड़ता है। पूरे समय भय पकड़े है।
पूरे समय कोई आपका पीछा कर रहा है। कोई आपको पकड़ने-उलझाने में लगा हुआ है। जिन-जिन को आपने धोखा दिया है, वे आपकी तलाश में हैं। जिन-जिन का आपने बुरा किया है, वे भी आपके बुरे के लिए, प्रतिकार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये सब चारों तरफ आपके दुश्मन हो जाते हैं।
असल में, सात्विक व्यक्ति अपने चारों तरफ मित्रता बो रहा है, प्रेम बो रहा है। उसे भय का कोई कारण नहीं है। सुरक्षा की कोई चिंता नहीं है। भीतर कोई कलह नहीं है।
इससे जो सहज भाव पैदा होगा, जो आंतरिक स्वास्थ्य पैदा होगा, वही स्वास्थ्य आपकी आंखों को भीतर की तरफ खोलेगा। धुआं हट जाएगा। जैसे सुबह की धुंध हट गई हो और सूरज साफ हो जाए, वैसे ही आपके दुष्कृत्यों की धुंध हट जाएगी, दुर्भाव की धुंध हट जाएगी, और आप आत्म-साक्षात्कार में सफल हो पाएंगे। इसलिए ज्ञान।
और भी उससे भी जटिल बात है, वैराग्य। सुख, ज्ञान और वैराग्य फल हैं सात्विक कर्म के। यह बहुत समझने जैसा है और बहुत गहरा और सूक्ष्म है।
जो आदमी जितना सात्विक है, उतना ही उसका राग गिरने लगेगा, उतना ही उसमें एक वैराग्य-भाव उदय होने लगेगा। क्यों? राग का क्या मतलब है?
राग का मतलब है, मेरा सुख दूसरे पर निर्भर है। यह राग का मतलब है, अटैचमेंट का, कि मेरा सुख दूसरे पर निर्भर है। मेरी पत्नी पर मेरा सुख निर्भर है। मेरे पति पर निर्भर है। मेरे बेटे पर, मेरे पिता पर, मित्र पर, धन पर, मकान पर, किसी दूसरे पर कहीं मेरा सुख निर्भर है। और जिस पर मेरा सुख निर्भर है, उसे मैं पकड़कर रखना चाहता हूं कि वह छूट न जाए। यही राग है। लेकिन सात्विक व्यक्ति जानता है कि सुख मेरे भीतर है; इसका वह रोज अनुभव करता है। जब भी वह सात्विक कर्म करता है, सात्विक भाव करता है, वह पाता है, सुख बरस जाता है। सुख मेरे हाथ में है। सुख की वर्षा का सारा आयोजन मेरे हाथ में है। इशारा, और सुख बरस जाता है।
स्वभावतः, वह जानने लगता है कि सुख मेरा किसी पर निर्भर नहीं है। इसलिए उसका राग क्षीण होता है, वैराग्य बढ़ता है। अगर पत्नी उसके पास है, तो वह सुखी है। और पत्नी उससे दूर है, तो वह सुखी है। और उसके सुख में फर्क नहीं पड़ता। जब पत्नी पास है, तब वह पत्नी का सुख लेता है। जब पत्नी दूर है, तब पत्नी के न होने का सुख लेता है। पर उसके सुख में अंतर नहीं पड़ता। और दोनों का सुख है, ध्यान रहे।

और आमतौर से आदमी, जब पत्नी है, तब पत्नी के होने का दुख भोगता है। और
जब पत्नी नहीं है, तब न होने का दुख भोगता है।
आप प्रयोग करके देखना, पत्नी को थोड़े दिन बाहर भेजें। फिर आप दुखी होंगे कि पत्नी दूर है। और आप भलीभांति जानते हैं कि जब पास थी, तब नरक था। मगर थोड़े दिन दूर रहे, तो भूल जाता है नरक और कल्पना कर-करके आप स्वर्ग बना लेते हैं। पत्नी आते ही से सब स्वर्ग रास्ते पर लगा देगी। वापस आई कि नरक शुरू हुआ।
लोगों का अनुभव है, पति-पत्नियों का, कि न तो वे साथ रह सकते हैं और न दूर रह सकते हैं। इसलिए उनका द्वंद्व जो है, उससे छुटकारे का कोई उपाय भी नहीं है। पास रहते हैं, तो कष्ट पाते हैं। दूर रहते हैं, तो कष्ट पाते हैं। जिन लोगों के पास धन है, वे धन के कारण परेशान हैं। जिनके पास धन नहीं है, वे धन के न होने के कारण परेशान हैं। कोई गरीबी से पीड़ित है, कोई अमीरी से पीड़ित है।
मेरे पास, दोनों तरह के पीड़ित लोगों का मुझे अनुभव है। गरीब यह सोचता है, धन मिल जाए, तो बड़ा सुख हो। धनी कहता है कि सब है, लेकिन सिवाय चिंता के इससे कुछ मिलता नहीं!
शायद आपको ख्याल ही नहीं है कि सुख बाहर से कभी किसी को मिला नहीं है।
न गरीबी से मिला है, न अमीरी से; न पत्नी के होने से, न न होने से। सुख एक आंतरिक संपदा है। जब उसे आप अपने भीतर खोज लेते हैं, तब आपको मिलता है। तब हर हालत में मिलता है। तब ऐसी कोई दशा नहीं है, जब सुख नहीं मिलता। तब हर स्थिति में आप सुख खोज लेते हैं।
अगर घर में बच्चे खेल रहे हैं और शोरगुल कर रहे हैं, तो आप उनकी, बच्चों की खिलखिलाहट में सुख लेते हैं। और बच्चे चले गए और घर खाली है, तो आप घर के सन्नाटे में सुख लेते हैं। तब घर का सन्नाटा सुखद है। और जब बच्चे लौट आते हैं, और किलकारियां भरते हैं, और नाचते हैं, कूदते हैं, तब आप उनके नाचने-कूदने में सुख लेते हैं। जीवन चारों तरफ उछलता हुआ, आप उसमें सुख लेते हैं।
लेकिन सुख आपके भीतर है। कभी आप सन्नाटे पर आरोपित कर देते हैं, कभी बच्चों की किलकारी पर आरोपित कर देते हैं।
जो दुखी आदमी है, बच्चे शोरगुल करते हैं, तो वह कहते हैं, शांति नष्ट
हो रही है। बंद करो आवाज! घर में कोई न हो, तो वह कहता है, बिल्कुल अकेला हूं। बड़ी उदासी मालूम होती है।
आपके ढंग पर, आपकी जीवन-व्यवस्था पर, लाइफ स्टाइल पर निर्भर है।
सात्विकता एक जीवन का ढंग है, जिसमें सुख भीतर है।
इसलिए कृष्ण बड़ी मौलिक बात कहते हैं कि वैराग्य उसका फल है।
सुखी आदमी हमेशा विरागी होगा। आपने इससे उलटी बात सुनी होगी कि अगर सुख चाहिए हो, तो वैराग्य को साधो, वह बिल्कुल गलत है। क्योंकि कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं, वैराग्य साधो, तो सात्विकता आ जाएगी। कृष्ण कह रहे हैं, सात्विक हो जाओ, तो वैराग्य उसका फल है।
लेकिन न मालूम कितने लोग समझाए चले जा रहे हैं कि तुम वैरागी हो जाओ। छोड़ दो सब, फिर बड़े सुखी हो जाओगे।
मैं छोड़े हुए लोगों को जानता हूं। यहां घर के कारण दुखी थे; वहां अब आश्रम के कारण दुखी हैं। पहले यहां पत्नी-बच्चों के कारण दुखी थे, अब वहां दुखी हैं संन्यासियों के पास रहकर संन्यासियों के कारण। दुख में अंतर नहीं है।
असल में दुख इस तरह छूटता ही नहीं। सात्विक हो जाओ, तो वैराग्य उसका
फल होगा।
और ध्यान रहे, जब दुखी आदमी छोड़कर भागता है, तो उसका छोड़कर भागना एक रोग की तरह है। और जब सुखी आदमी छोड़ता है, उसके छोड़ने में एक शान है। उसका छोड़ना ऐसा है, जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता है। न तो वृक्ष को घाव पैदा होता है, न पत्ते को पता चलता है, न कहीं कोई खबर होती है। सूखा पत्ता है। सूख गया। अपने आप चुपचाप कब झड़ जाता है हवा के झोंके में, किसी को पता नहीं चलता। वृक्ष की नींद भी नहीं टूटती। वह अपनी शांति में खड़ा है। एक कच्चे

पत्ते को तोड़ें; पत्ते को भी चोट पहुंचती है, वृक्ष पर भी घाव बनता है।
वृक्ष भी सहमता है।
अब तो नापने के उपाय हैं वृक्ष की संवेदना को। वृक्ष की संवेदना का यंत्र लगा दें और पत्ता तोड़ें। और संवेदना का यंत्र कहेगा, वृक्ष को चोट पहुंची, घाव पहुंचा; दुख हुआ।
और ध्यान रखें, वृक्ष भी याद रखता है। अगर आप रोज-रोज वृक्ष का पत्ता तोड़ते हैं या माली हैं और काटते हैं, तो आप चकित होंगे जानकर, रूस में बड़े प्रयोग हुए हैं, जब माली वृक्ष के पास आता है... । बहुत पहले कबीर ने कहा था, माली आवत देख के कलियन करी पुकार। वह कबीर ने कविता में कहा था। अभी रूस में उसके वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं।
जैसे ही माली को वृक्ष करीब आते देखता है, उसके सारे प्राण के रोएं- रोएं सिहर उठते हैं। और इसकी जांच, अब तो वैज्ञानिक यंत्र हैं हमारे पास, जो खबर दे देते हैं कि वृक्ष कंप रहा है, घबड़ा रहा है। और ऐसा नहीं कि जिस वृक्ष को काटा है, वही घबड़ाता है। उसके पास के वृक्ष भी उसकी पीड़ा से प्रभावित होते हैं और घबड़ाते हैं और डांवाडोल होते हैं। लेकिन सूखा पत्ता जब गिरता है, तो वृक्ष को कहीं भी कुछ पता नहीं चलता।
सुखी आदमी जब कुछ छोड़ता है, तो सूखे पत्ते की तरह गिर जाता है। इसलिए बुद्ध जब छोड़ते हैं राज्य, वह और बात है। और अगर आप घर छोड़कर चले गए, वह कोई राज्य भी नहीं है, आपका घाव आपको सताएगा। आप चले जाएंगे जंगल में, लेकिन सोचेंगे घर की। चले जाएंगे जंगल में, लेकिन कोई मिलने आ जाएगा, तो आप कहेंगे, महल छोड़ आया हूं। चाहे आप झोपड़ा छोड़ आए हों। लाखों की संपत्ति पर लात मार दी है। बड़ी सुंदर पत्नी थी। हालांकि किसी की पत्नी सुंदर नहीं होती। सदा दूसरे की पत्नी सुंदर होती है, अपनी कभी होती नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन शादी कर लाया था। तो पत्नी ने पहले ही दिन कहा कि यह
जो बाथरूम है, इस पर पर्दा लगा दो, क्योंकि पड़ोसी देखते हैं। नसरुद्दीन ने बेफिक्र रह। एक दफा देख लेने दे, पर्दा वे खुद अपनी खिड़कियों पर लगाएंगे। तू बिल्कुल फिक्र मत कर। यह खर्चा मेरे ऊपर मत डाल। बस, एक दफा उनको देख लेने दे।
सभी पति ऐसा ही सोचते हैं। क्योंकि जो दूर है, वह लुभावना है। जो पास है, वह व्यर्थ हो जाता है। जो हाथ में नहीं है, वह आकर्षक है। जो हाथ में है, वह बोझ हो जाता है।
पर अगर आप जंगल चले गए, तो आप चर्चा करेंगे कि आप कोई नूरजहां, कोई मुमताजमहल छोड़ आए हैं। कोई बड़ा महल, कोई बड़ा राज्य... ।
वह सूचना आप जो दे रहे हैं, उससे पता चलता है कि वह छूट नहीं पाया। घाव पीछे रह गया है। जिनको त्यागी गई चीजों की याद रह जाती है, उनका घाव पक्का है, वह भर नहीं रहा। वह घाव दर्द दे रहा है।
कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म का फल वैराग्य है।
यह बड़ा क्रांतिकारी वचन है और बड़ा वैज्ञानिक। शुभ जो करेगा, धीरे- धीरे उसका राग क्षीण हो जाएगा और वैराग्य का उदय होगा।
राजस कर्म का फल दुख; तामस कर्म का फल अज्ञान।
राजस कर्म का फल दुख होगा, क्योंकि वह दुख से निकलता है। आप कर्मों में लगे हैं इसलिए कि आप इतने ज्यादा भीतर परेशान हैं कि कर्मों में लगकर अपने को भुलाने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए छुट्टी का दिन बहुत कठिन हो जाता है। उसे गुजारना मुश्किल हो जाता है।
लोग छुट्टी का दिन गुजारने बाहर भागते हैं। मीलों का सफर करेंगे। भागे हुए जाएंगे, कहीं होटल में खा-पीकर भागे हुए आएंगे। अमेरिका और योरोप में तो बिल्कुल बंपर टु बंपर कारें लगी हैं। लाख कारें एक साथ एक बीच पर पहुंच जाएंगी। वह सब उपद्रव जिसको वे छोड़कर भागे थे, साथ ही चला आ रहा है! वहां बीच पर कोई जगह ही नहीं है। वहां सारा मेला भरा हुआ है। वहीं वे बैठे हैं। शांति की तलाश में आए थे। मगर अकेले नहीं आए थे, और भी लोग शांति की तलाश में निकल पड़े थे!
अब तो लोग कहते हैं कि अमेरिका में अगर शांति चाहिए हो, तो छुट्टी के दिन घर में बैठे रहो। क्योंकि पड़ोसी सब जा रहे हैं शांति की तलाश में।

थोड़ी शांति शायद मिल जाए। लेकिन कहीं जाना मत, क्योंकि जहां भी तुम जाओगे, वहीं आदमी पहुंच गया है तुमसे पहले।
हमारे भीतर दुख है। उसे हम भुला रहे हैं किसी न किसी तरह के कर्म में। खाली बैठकर हमें बेचैनी होती है, क्योंकि खाली बैठकर दुख हमारा साफ हो जाता है।
ध्यान रहे, दुख से बचने का हमें एक ही उपाय है, विस्मरण। कोई भी तरकीब
से भूल जाएं। दूसरी तरफ मन लग जाता है। ताश खेलने लगे, दुख भूल गया। कुछ काम करने लगे, दुकान पर चले गए, सेवा करने लगे, कुछ न मिला तो गीता ही पढ़ने लगे, राम-राम जपने लगे; माला ले ली एक हाथ में, उसके गुरिए सरकाने लगे; कुछ कर रहे हैं। लेकिन कुछ करने से एक फायदा है कि वह जो भीतर दुख दिखाई पड़ता था, वह नहीं दिखाई पड़ता, मन डायवर्ट हुआ! किसी और दिशा में लग गया। लेकिन घड़ीभर बाद, कब तक माला फेरिएगा! फिर माला बंद की, दुख का फिर स्मरण आया। दुखी लोग राजस कर्म में लग रहे हैं। और जहां से कर्म निकलता है, वहीं पहुंचा देता है। प्रारंभ हमेशा अंत है। इस सूत्र को ख्याल रखें, प्रारंभ हमेशा अंत है। क्योंकि बीज ही वृक्ष होगा। और अंत में फिर वृक्ष में बीज लग जाएंगे। और जिस बीज से वृक्ष हुआ है, वही हजारों बीज उस वृक्ष पर लगेंगे, दूसरे नहीं। अगर आपके दुख से कर्म निकला है, तो दुख बीज है, कर्म वृक्ष है। फिर हजार बीज उसी दुख के लग जाएंगे।
इसलिए राजस कर्म दुख में ले जाता है, क्योंकि दुख से पैदा होता है।
और तामस कर्म का फल अज्ञान है। तामस कर्म का अर्थ है, नहीं करना था और करना पड़ा। करने की कोई इच्छा नहीं थी।
सात्विक कर्म का अर्थ है, करने की कोई विक्षिप्तता नहीं थी। किसी और
को जरूरत थी, इसलिए किया। राजस कर्म का अर्थ है, करने का पागलपन था। तुमको जरूरत थी या नहीं, हमने किया।
एकनाथ संत हुए महाराष्ट्र में। वे तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। एक चोर
ने प्रार्थना की कि महाराज, मैं भी साथ चलूं? एकनाथ ने कहा, तू जरा झंझटी है। और तेरा हमें पता है। उसने कहा, मैं बिल्कुल कसम खाता हूं कि चोरी नहीं करूंगा, कम से कम तीर्थयात्रा में। चोर था, उसकी बात का भरोसा हो सकता है। क्योंकि आमतौर से चोर भरोसा नहीं देते। लेकिन जब कोई चोर भरोसा देता है, तो उसका वचन माना जा सकता है।
एकनाथ ने उसे साथ ले लिया। लेकिन दूसरे ही दिन से उपद्रव शुरू हो गया। उपद्रव यह था कि एक के बिस्तर का सामान दूसरे के बिस्तर में चला जाए। किसी का कमीज किसी दूसरे की दरी के नीचे दबा हुआ मिले। किसी की जेब का पैसा दूसरे की जेब में। चोर चोरी नहीं करता था, लेकिन रात में सामान बदल देता था। खुद नहीं चुराता था, क्योंकि उसने कसम खा ली थी। लेकिन पुरानी आदत और कर्म!
आखिर दो-चार दिन में एकनाथ ने कहा कि यह करता कौन है! क्योंकि मिल जाती हैं चीजें आखिर में। लेकिन परेशानी होती है। तो वे जागते रहे। रात में देखा, चोर कर रहा है। वह एकनाथ का ही सामान निकालकर बगल वाले की पेटी में कर रहा था।
उन्होंने कहा कि तू यह क्या कर रहा है? उसने कहा, महाराज, चोरी नहीं करूंगा, इसका वचन दिया है। लेकिन कर्म न करूं, तो बड़ी मुश्किल है। और फिर तीन महीने बाद घर लौटूंगा, तो अभ्यास जारी रहना चाहिए। यह तीर्थयात्रा कब तक चलेगी! अंततः तो मुझे चोरी ही करनी है। किसी की हानि नहीं कर रहा हूं। जो राजस व्यक्ति है, उसके कर्म का निकलना उसके भीतर की बेचैनी है। सात्विक का कर्म दूसरे पर दया है। राजसिक का कर्म खुद की बीमारी है। तामसिक का कर्म दूसरे के द्वारा पैदा की गई मजबूरी है। उसको धक्का दो कि चलो, उठो। जाओ, यह करो। मजबूरी है। बंदूक लगाओ उनके पीछे, तो वे दो-चार कदम चलते हैं। बंदूक हटा लो, वे वहीं बैठ जाते हैं।
यह जो दूसरे के द्वारा मजबूरी से किया गया कर्म है तामस का, यह गहन अज्ञान लाएगा। जैसे सात्विक कर्म ज्ञान लाता है, दूसरे पर दया के कारण खुद को हलका करता है। यह दूसरे के द्वारा जबरदस्ती के कारण दूसरे पर घृणा पैदा होगी, हिंसा पैदा होगी; दूसरे को मार डालने का भाव होगा कि सारी दुनिया मेरे पीछे पड़ी है!

आलसी आदमी को ऐसे ही लगता है कि बाप पीछे पड़ा है, पत्नी पीछे पड़ी है, मां पीछे पड़ी है। सारी दुनिया मेरे पीछे पड़ी है कि कुछ करो। और उसे कुछ करने जैसा लगता ही नहीं। उसे लगता है, वह चुपचाप बैठा रहे। सारी दुनिया उसकी दुश्मन है!
ध्यान रहे, सात्विक व्यक्ति अपने चारों तरफ प्रेम बोता है। तामसिक वृत्ति का व्यक्ति अनजाने अपने चारों तरफ शत्रु पाता है। शत्रु उसको लगेंगे, क्योंकि वे सभी उसको निकालने की कोशिश में लगे हैं कि तुम कुछ करो। उसके मन में सबके प्रति घृणा, सबके प्रति द्वेष, सबके प्रति तिरस्कार, कोई मित्र नहीं है, सब दुश्मन हैं--ऐसा भाव पैदा होता है। उसका धुआं बढ़ जाता है। उसके भीतर का धुंध बढ़ जाता है। दूसरे पर दया से धुंध कटता है, दूसरे पर घृणा से धुंध बढ़ता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, तामस कर्म का फल अज्ञान है। वह और भी डूबता जाता है। खुद को देखना और मुश्किल हो जाता है। खुद को पहचानना असंभव हो जाता है।
सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है; रजोगुण से निस्संदेह लोभ; तमोगुण
से प्रमाद और मोह और अज्ञान होता है।
सत्वगुण से ज्ञान। क्योंकि भीतर का अंधेरा टूटता है, आलोक आता है, हम स्वयं को पहचान पाते हैं।
रजोगुण से लोभ। और जितना ही कोई कर्मों में प्रवृत्त होता है, उतना ही लोभ को जगाना पड़ता है। क्योंकि लोभ को जगाए बिना कर्म में प्रवृत्त होना मुश्किल है। इसलिए आप ताश खेल रहे हैं। अकेला ताश खेलना आपको ज्यादा रस नहीं देगा। थोड़ा दांव जुए का लगा दें, थोड़े रुपए और रख दें वहां, तो गति आ जाएगी, क्योंकि अब लोभ के लिए सुविधा है।
तो हम कर्म भी तभी कर सकते हैं, जब कुछ लोभ सामने खड़ा हुआ दिखाई पड़े। इसलिए राजसिक व्यक्ति अपना लोभ पैदा करता रहता है रोज, ताकि कर्म कर सके। रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है। लोभ से राजसिकता बढ़ती है। जितनी राजसिकता बढ़ती है, उतना लोभ पैदा करना पड़ता है। इसलिए रोज आपको नई मंजिल चाहिए, नया लोभ चाहिए, नए टारगेट चाहिए, जहां आप पहुंचें।
इसीलिए रोज विज्ञापनदाताओं को नए विज्ञापन खोजने पड़ते हैं। नई कारें बनानी पड़ती हैं। नये मकान की डिजाइन निकालनी पड़ती है। और आपको नया लोभ देना पड़ता है। विज्ञापन का पूरा का पूरा इंतजाम आपको लोभ देने के लिए है। इसलिए जितना राजसिक मुल्क होगा, उतनी ज्यादा एडवरटाइजमेंट होगी।
अमेरिका इस वक्त सबसे ज्यादा विज्ञापन करता है। अरबों डालर विज्ञापन
पर खर्च होता है। क्यों? क्योंकि वे जो आदमी बैठे हैं सारे मुल्क में, उनको कर्म चाहिए।
अभी इसके पहले तक नारा था कि हर आदमी के पास एक कार हो, एक गैरेज हो। लेकिन अब वह गरीब आदमी का लक्षण है अमेरिका में। दो कार! अगर आपके पास दो कार नहीं, तो आप गरीब आदमी हैं। अब यह लोभ हो गया। अब जिनके भी दिमाग में पागलपन है, वे दो कार के पीछे पड़े हैं। हालांकि एक ही कार काम आती है। अब वे दो कार के पीछे पड़े हैं।
आपके पास मकान सिर्फ शहर में ही है? पहाड़ पर नहीं है? आप गरीब आदमी हैं। एक मकान पहाड़ पर भी चाहिए।
रोज नया लोभ देना पड़ता है, क्योंकि राजसिक पूरा मुल्क हो, राजस से भरे हुए लोग हों, कर्म का पागलपन हो, और लोभ की कमी हो, तो लोग पागल हो जाएंगे।
उनको रोज नया लोभ दो, नई आवश्यकता पैदा करो।
तमोगुण से प्रमाद और मोह।
और जो आलस्य में पड़ा रहता है, वह धीरे-धीरे तंद्रा में, निद्रा में, प्रमाद में, बेहोशी में खोता चला जाता है। पर बेहोशी अज्ञान है।
सत्वगुण में स्थित हुए पुरुष स्वर्गादिक उच्च लोकों को जाते हैं।
रजोगुण में स्थित पुरुष मध्य मनुष्य लोक में, एवं तमोगुण में निद्रा, प्रमाद, आलस्य में डूबे हुए लोग, तामस पुरुष, अधोगति, नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।
ये तीन स्थितियां हैं मन की, चित्त की। मेरे हिसाब में कहीं कोई स्वर्ग नहीं है पृथ्वी के ऊपर। और कहीं कोई नरक नहीं है पृथ्वी के नीचे।

कहीं पाताल में छिपा कोई नरक नहीं है, आकाश में छिपा कोई स्वर्ग नहीं है। स्वर्ग और नरक मनुष्य की उच्चतम और निम्नतम स्थितियां हैं।
जब भी आप गहन सुख में होते हैं, आप स्वर्ग में होते हैं। और जब आप गहनतम संताप में होते हैं, तो आप नरक में होते हैं। लेकिन आमतौर से आप दोनों में नहीं होते, बीच में होते हैं। वही मनुष्य के मन की अवस्था है, मध्य। और दोनों तरफ डोलते रहते हैं। सुबह नरक, शाम स्वर्ग। पूरे वक्त आपके भीतर डांवाडोल स्थिति चलती रहती है। स्वर्ग और नरक के बीच यात्रा होती रहती है।
जो व्यक्ति सत्व में थिर हो जाता है, उसकी यह यात्रा बंद हो जाती है।
वह भीतर के सुख में थिर हो जाता है। उसका थर्मामीटर सुख के उच्चांक को छू लेता है और वहीं ठहरा रहता है। फिर नीचे नहीं गिरता।
जो व्यक्ति तमस में बिल्कुल थिर हो जाता है, उसका थर्मामीटर, उसकी चेतना की दशा निम्नतम बिंदु पर ठहर जाती है। उससे ऊपर नहीं उठती।
जो व्यक्ति राजस में भरा हुआ है, राजस में ठहरा हुआ है, वह मध्य में ही बना रहता है। सुख का आभास बना रहता है, दुख का डर बना रहता है। न दुख मिलता है, न सुख मिलता है। वह बीच में अटका-सा रहता है; त्रिशंकु की उसकी दशा होती है। और या फिर कभी-कभी छलांग लगाकर थोड़ा सुख ले लेता है, कभी छलांग लगाकर थोड़ा दुख ले लेता है।
ये तीन स्थितियां हैं। उच्चतम को हम स्वर्ग कहते हैं, वह मन की सुख की अवस्था है। निम्नतम को नरक कहते हैं, नीच गति कहते हैं, अधोगति कहते हैं, वह चेतना की निम्नतम स्थिति है। और मध्य, जहां मनुष्य है।
मनुष्य शब्द सोचने जैसा है। मनुष्य शब्द बना है मन से। मन की जो दशा
है आमतौर से, मध्य में है। मन हमेशा बीच में है। वह सोचता है, कल सुख मिलेगा। सुख दूर है। मिला नहीं। और वह डरता है कि कल कहीं दुख न मिल जाए। तो कल दुख न मिले, इसका इंतजाम करता है। और कल सुख मिले, इसकी व्यवस्था करता है। कल भी वह यही करेगा, परसों भी यही करेगा, पूरी जिंदगी यही करेगा। रहेगा वह बीच में। और तब संतुष्ट नहीं होगा, अतृप्त होगा, फ्रस्ट्रेशन होगा। कहीं नहीं पहुंच रहा है। जहां खड़ा था, वहीं खड़ा है।
ये जो चेतना की स्थितियां हैं, इनको समझाने के लिए स्थान की तरह चर्चा
की गई है शास्त्रों में। लेकिन उससे बड़ी भ्रांति हो गई है। लोग समझने लगे हैं, ये स्थान हैं। स्थान केवल समझाने के लिए हैं। स्थितियां हैं, स्थान नहीं। स्टेट्स आफ माइंड हैं, कोई भौगोलिक, ज्याग्राफी की जगह नहीं हैं। यह तो अब छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं कि नरक कहीं नहीं है, स्वर्ग कहीं नहीं है। भूगोल छान डाली गई है। और इसलिए शास्त्रों को निरंतर बदलना पड़ा। पहले शास्त्रों पर इतना दूर नहीं था स्वर्ग, जितना बाद में हो गया। पहले भगवान हिमालय पर रहते थे। फिर आदमी हिमालय पर पहुंचने लगा, तो भगवान को हटाना पड़ा। तो वह उनको कैलाश पर बैठा दिया, आखिरी चोटी पर। फिर वह भी कुछ अगम्य न रही। तो हमें आकाश में बिठाना पड़ा। अब हमारे अंतरिक्ष यान आकाश में पार जा रहे हैं। अब वहां भी भगवान सुरक्षित नहीं है।
इसलिए वेदांत ने कहा है कि भगवान निराकार है, तुम उसे कहीं खोज न पाओगे। तुम कहीं भी जाओ, तुम यह नहीं कह सकते, वह नहीं मिला; क्योंकि उसका कोई आकार नहीं है। पर यह आदमी जहां भी खोज लेता है, वहीं हमको कहना पड़ता है, यहां भगवान नहीं है।
स्थान की बात ही गलत है। स्थान से कुछ संबंध नहीं है। भगवान भी एक अवस्था है भगवत्ता की। जैसे ये तीन अवस्थाएं मन की हैं, ऐसी वह तीन के पार चौथी अवस्था है, गुणातीत। जब कोई तीनों के पार हो जाता है--न दुख, न सुख, न मध्य; न तामस, न राजस, न सात्विक--जब तीनों गुणों के पार कोई उठ जाता है, तब उस अवस्था का नाम भगवत्ता है।
इसलिए हम कृष्ण को भगवान कहते हैं या बुद्ध को भगवान कहते हैं। भगवान
का कुल अर्थ इतना ही है। भगवान का यह मतलब नहीं कि उन्होंने दुनिया बनाई, कि बुद्ध ने कोई दुनिया बनाई, कि कृष्ण ने कोई दुनिया बनाई। भगवान का कुल अर्थ इतना ही है कि तीन गुणों के जो पार हो गया, वह भगवत्ता को उपलब्ध हो गया।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
सातवां प्रवचन

असंग साक्षी

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।। 19।।
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।। 20।।
और हे अर्जुन, जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है अर्थात गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा देखता है और तीनों गुणों से अति परे सच्चिदानंदघनस्वरूप मुझ परमात्मा को तत्व से जानता है, उस काल में वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।
तथा यह पुरुष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुखों से मुक्त हुआ परमानंद को प्राप्त होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने तमस, रजस और सत्व और उनकी समान मात्राओं का होना क्रमशः लाओत्से, जीसस, महावीर और कृष्ण के व्यक्तित्व के माध्यम से स्पष्ट किया। इस संदर्भ में याद आता है कि आप अतीत में अत्यंत क्रांतिकारी थे। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक तलों पर आपने सारे देश में उथल-पुथल पैदा कर दी थी। जिससे स्पष्ट था कि आप जीसस की तरह रजस-प्रधान हैं। फिर उन्नीस सौ सत्तर के बाद आपने अपने को बिल्कुल भीतर सिकोड़ लिया और हमें लगता है कि अब आप सत्व-प्रधान हैं। क्या ऐसा परिवर्तन संभव है?

कुछ बातें ध्यान में लें, तो समझ में आ सकेगा। एक तो बुद्ध, महावीर, मोहम्मद और जीसस जैसे व्यक्तित्व हैं। इन व्यक्तित्वों ने एक ही गुण को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। मोहम्मद और जीसस हैं, रजोगुण उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। बुद्ध और महावीर हैं, सत्वगुण उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। लाओत्से और रमण हैं, तमस उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। कृष्ण तीनों गुणों को एक साथ अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग कर रहे हैं।
एक और भी संभावना है, जिसका प्रयोग मैंने किया है। तीनों गुणों का एक साथ नहीं, एक-एक गुण का अलग-अलग। और मेरी दृष्टि में वही सर्वाधिक वैज्ञानिक है, इसलिए उसका चुनाव किया है।
तीनों गुण प्रत्येक व्यक्ति में हैं। दो गुणों से कोई भी व्यक्ति बन नहीं सकता। एक गुण के साथ किसी व्यक्ति के अस्तित्व की कोई संभावना नहीं है। उन तीनों का जोड़ ही आपको शरीर और मन देता है। जैसे बिना तीन रेखाओं के कोई त्रिकोण न बन सकेगा, वैसे ही बिना तीन गुणों के कोई व्यक्तित्व न बन सकेगा। उसमें एक भी गुण कम होगा, तो व्यक्तित्व बिखर जाएगा।
अगर कोई व्यक्ति कितना ही सत्व-प्रधान हो, तो सत्व-प्रधान का इतना ही अर्थ है कि सत्व प्रमुख है, बाकी दो गुण सत्व के नीचे छिप गए हैं, दब गए हैं। लेकिन वे दो गुण मौजूद हैं। और उनकी छाया सत्वगुण पर पड़ती रहेगी। प्रधानता उनकी नहीं है, वे गौण हैं। आपमें कोई भी गुण प्रकट हो, तब दो मौजूद होते हैं।
कृष्ण ने तीनों गुणों का एक साथ प्रयोग किया है। जैसे तीनों गुणों की तीनों भुजाएं समान लंबाई की हैं; त्रिभुज की तीनों रेखाएं समान लंबाई की हैं। कृष्ण का व्यक्तित्व तीनों का संयुक्त जोड़ है। और इसलिए कृष्ण को समझना उलझन की बात है।
एक गुण वाले व्यक्ति को समझना बहुत आसान है। जिसमें दो गुण दबे हों, उसके व्यक्तित्व में एक संगति होगी, कंसिस्टेंसी होगी। लाओत्से के व्यक्तित्व में जैसी कंसिस्टेंसी, संगति है, वैसी कृष्ण के व्यक्तित्व

में नहीं है। लाओत्से का जो स्वाद एक शब्द में है, वही सारे शब्दों में है। बुद्ध के वचनों में एक संगति है, गहन संगति है। बुद्ध ने कहा है, जैसे तुम सागर को कहीं से भी चखो, वह खारा है, वैसे ही तुम मुझे कहीं से भी चखो, मेरा स्वाद एक है। जीसस या मोहम्मद, इन सबके स्वाद एक हैं।
लेकिन आप अनेक स्वाद कृष्ण में ले सकते हैं, तीन तो निश्चित ही ले सकते हैं। और चूंकि तीनों का मिश्रण हैं, इसलिए बहुत नए स्वाद भी उस मिश्रण से पैदा हुए हैं। इसलिए कृष्ण का रूप बहुरंगी है। और कोई भी व्यक्ति कृष्ण को पूरा प्रेम नहीं कर सकता, उसमें चुनाव करेगा। जो पसंद होगा, वह बचाएगा; जो नापसंद है, उसे काट देगा।
इसलिए अब तक कृष्ण के ऊपर जितनी भी व्याख्याएं हुई हैं, सब चुनाव की व्याख्याएं हैं। न तो शंकर कृष्ण को पूरा स्वीकार करते हैं, न रामानुज, न निंबार्क, न वल्लभाचार्य, न तिलक, न गांधी, न अरविंद, कोई भी कृष्ण को पूरा स्वीकार नहीं करता। उतने हिस्से कृष्ण में से काट देने पड़ते हैं, जो असंगत मालूम पड़ते हैं, विरोधाभासी मालूम पड़ते हैं, जो एक-दूसरे का खंडन करते हुए प्रतीत मालूम पड़ते हैं।
जैसे गांधी हैं, गांधी अहिंसा को इतना मूल्य देते हैं। तो कृष्ण अर्जुन को हिंसा के लिए उकसावा दे रहे हैं, यह उनके लिए अड़चन की बात हो जाएगी। गांधी सत्य को परम मूल्य देते हैं; कृष्ण झूठ भी बोल सकते हैं, यह गांधी की समझ के बाहर है। कृष्ण धोखा भी दे सकते हैं, यह गांधी का मन स्वीकार नहीं करेगा। और अगर कृष्ण ऐसा कर सकते हैं, तो गांधी के लिए कृष्ण पूज्य न रह जाएंगे।
तो एक ही उपाय है कि गांधी किसी तरह समझा लें कि कृष्ण ने ऐसा किया नहीं है। या तो यह कहानी है, प्रतीकात्मक है, सिंबालिक है। यह जो युद्ध है महाभारत का, यह वास्तविक युद्ध नहीं है गांधी के हिसाब से। ये कौरव और पांडव असली मनुष्य नहीं हैं, जीवित मनुष्य नहीं हैं, ये सिर्फ प्रतीक हैं बुराई और भलाई के। और युद्ध धर्म और अधर्म के बीच है, मनुष्यों के बीच नहीं। पूरी कथा है, एक पैरेबल है, तब फिर गांधी को अड़चन नहीं है। बुराई को मारने में अड़चन नहीं है; बुरे आदमी को मारने में गांधी को अड़चन है। अगर सिर्फ बुराई को काटना हो, तो कोई हर्जा नहीं है।
लेकिन अगर बुराई को ही काटना होता, तो अर्जुन को भी कोई सवाल उठने का कारण नहीं था। सवाल तो इसलिए उठ रहा था कि बुरे आदमी को काटना है। सवाल तो इसलिए उठ रहा था कि उस तरफ जो बुरे लोग हैं, वे अपने ही हैं, निजी संबंधी हैं। उनसे ममत्व है, उनसे राग है, और उनके बिना दुनिया अधूरी और बेमानी हो जाएगी।
कृष्ण का व्यक्तित्व असंगत होगा ही। तीन गुण एक साथ हैं, असंगति पैदा करेंगे।
एक और संभावना है, जिसका प्रयोग मैंने किया है। उसमें भी असंगति होगी, लेकिन वैसी नहीं जैसी कृष्ण में है।
तीनों गुण व्यक्ति में हैं। और व्यक्तित्व की पूर्णता तभी होगी, जब तीनों गुण अभिव्यक्ति में उपयोग में ले लिए जाएं, उनमें से कोई भी दबाया न जाए। कृष्ण भी दमन के पक्ष में नहीं हैं, मैं भी दमन के पक्ष में नहीं हूं। और जो भी व्यक्तित्व में है, उसका सृजनात्मक उपयोग हो जाना चाहिए।
मेरी प्रक्रिया तीनों गुणों को एक साथ अभिव्यक्ति के लिए न चुनकर तीन अलग-अलग काल-खंडों में एक-एक गुण को अभिव्यक्ति के लिए चुनना है! पहले मैंने तमस को चुना, क्योंकि वही आधारभूत है, बुनियाद में है।
बच्चा पैदा होता है मां के गर्भ से, तो नौ महीने मां के गर्भ में बच्चा तमस में होता है, गहन अंधकार में होता है। कोई क्रिया नहीं होती, परम आलस्य होता है। श्वास लेने तक की क्रिया बच्चा स्वयं नहीं करता, वह भी मां ही करती है। भोजन लेने की--बच्चे में खून भी प्रवाहित होता है, तो वह भी मां का ही खून रूपांतरित होता रहता है। बच्चा अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करता है। अक्रिया की ऐसी अवस्था परिपूर्ण तमस की अवस्था है। बच्चा है, प्राण है, जीवन है, लेकिन जीवन किसी तरह का कर्म नहीं कर रहा है। गर्भ की अवस्था में अकर्म पूरा है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष की तलाश, स्वर्ग की आकांक्षा, निर्वाण की खोज, सिर्फ इसीलिए पैदा होती है कि हर व्यक्ति ने अपने गर्भ के क्षण में एक ऐसा अक्रिया से भरा हुआ क्षण जाना है, इतना शून्यता से भरा हुआ अनुभव किया है। वह स्मृति में टंगा हुआ है, वह आपके गहरे में छिपा है वह अनुभव जो नौ महीने गर्भ में हुआ। वह इतना सुखद था, क्योंकि जब कुछ भी न करना पड़ता हो, कोई दायित्व न हो, कोई जिम्मेवारी न हो, कोई बोझ न हो, कोई चिंता न हो, कोई काम न हो, सिर्फ आप थे, जस्ट बीइंग, सिर्फ होना मात्र था! जिसको हम मोक्ष कहते हैं, वैसी ही करीब-करीब अवस्था मां के गर्भ में थी। वही अनुभूति आपके भीतर छिपी है।
इसलिए जीवन में आपको कहीं भी सुख नहीं मिलता और हर जगह आपको कमी मालूम पड़ती है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि यह तभी हो सकता है, जब आपके अनुभव में कोई ऐसा बड़ा सुख रहा हो, जिससे आप तुलना कर सकें।
हर आदमी कहता है, जीवन में दुख है। सुख का आपको अनुभव न हो, तो दुख की आपको प्रतीति कैसे होगी? और हर आदमी कहता है कि कोई सुख की खोज करनी है। किस सुख की खोज कर रहे हैं? जिसका कभी स्वाद न लिया हो, उसकी खोज भी कैसे करिएगा? और जिससे हमारा कोई परिचय नहीं है, उसकी हम जिज्ञासा कैसे करेंगे? हमारे अचेतन में जरूर कोई अनुभव की किरण है, कोई बीज है छिपा हुआ है, कोई आनंद हमने जाना है, कोई स्वर्ग हमने जीया है, कोई संगीत हमने सुना है। कितना ही विस्मृत हो गया हो, लेकिन हमारे रोएं-रोएं में वह प्यास छिपी है, और वह खबर छिपी है, हम उसकी ही खोज कर रहे हैं।
मनोविज्ञान कहता है, मोक्ष की खोज एक विराट गर्भ की खोज है। और जब तक
यह सारा अस्तित्व हमारा गर्भ न बन जाएगा, तब तक यह खोज जारी रहेगी।
यह बात बड़ी कीमती है, बहुत अर्थपूर्ण है। लेकिन इस संबंध में पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि बच्चा नौ महीने अपने मां के गर्भ में ठीक तमस में पड़ा है। वहां न तो राजसी होने का सवाल है, न सात्विक होने का सवाल है, गहन तम में पड़ा है, गहन आलस्य है। बस सोया है, चौबीस घंटे सो रहा है। नौ महीने की लंबी नींद है।
फिर जैसे ही बच्चा पैदा होता है, तो फिर बाईस घंटे सोएगा, फिर बीस घंटे, फिर अठारह घंटे; धीरे-धीरे जागेगा। वर्षों लग जाएंगे, तब वह आकर आठ घंटे की नींद पर ठहरेगा। और जन्मों लग जाएंगे, जब नींद बिल्कुल शून्य हो जाएगी, और वह परिपूर्ण जागरूक हो जाएगा कि निद्रा में भी जागता रहे। जिसको कृष्ण कहते हैं, जब सभी सोते हैं, तब भी योगी जागता है। इसके लिए जन्मों की यात्रा होगी।
तमस आधार है और सत्व शिखर है। इस भवन का जिसे हम जीवन कहें, तमस बुनियाद है, रजोगुण बीच का भवन है और सत्वगुण मंदिर का शिखर है।
यह जीवन की व्यवस्था है मेरी दृष्टि में। इसलिए मैंने जीवन के पहले खंड को तमस की ही साधना बनाया। जीवन के मेरे प्राथमिक वर्ष ठीक लाओत्से की रसानुभूति में ही बीते। इसलिए लाओत्से से मेरा लगाव बुनियादी है, आधारभूत है। सब भांति मैं आलस्य में था और आलस्य ही साधना थी। जहां तक बने कुछ न करना। करना मजबूरी ही हो, तो उतना ही करना, जितना अपरिहार्य हो जाए। अकारण हाथ भी न हिलाना, पैर भी न चलाना।
मेरे घर में ही ऐसी हालत हो गई थी कि मैं बैठा हूं और मेरी मां मेरे सामने ही बैठकर कहती, कोई दिखाई नहीं पड़ता, किसी को सब्जी लेने बाजार भेजना है! मैं सुन रहा हूं, मैं सामने ही बैठा हूं। और मैं जानता था, घर में आग भी लग जाती, तो भी वह यही कहती, यहां कोई दिखाई नहीं पड़ता; घर में आग लग गई, कौन बुझाए!
पर चुपचाप अपनी निष्क्रियता को देखना, सिर्फ उसके प्रति साक्षी और ध्यान से भरे रहना। कुछ घटनाओं से आपको कहूं, तो ख्याल में आ जाए।
मेरे विश्वविद्यालय में आखिरी वर्ष में एक दर्शनशास्त्र के आचार्य थे। और जैसा कि दार्शनिक अक्सर झक्की और एक्सेंट्रिक होते हैं; वे भी थे। और उनका जो झक्कीपन था, वह यह था कि वे स्त्री को नहीं देखते थे। दुर्भाग्य से, मैं और एक युवती, दो ही उनके विद्यार्थी थे उनके विषय में। तो उनको आंख बंद करके ही पढ़ाना पड़ता था। मेरे लिए यह सौभाग्य हो गया, क्योंकि वे पढ़ाते थे और मैं सोता था। वे आंख खोल नहीं सकते थे, क्योंकि युवती थी।

लेकिन वे मुझ पर बहुत प्रसन्न थे, क्योंकि वे सोचते थे कि मेरा भी शायद यही सिद्धांत है, युवती को मैं भी नहीं देखता। और यूनिवर्सिटी में कम से कम उन जैसा एक आदमी और भी है, जो स्त्रियों की तरफ आंख बंद रखता है। इससे वे बड़े प्रसन्न थे। वे कई बार मुझे कहे भी; जब कभी अकेले में मिल जाते, तो वे मुझे कहते कि तुम अकेले हो, जो मुझे समझ सकते हो।
लेकिन एक दिन सब गड़बड़ हो गया।
दूसरी उनकी आदत थी कि एक घंटे का नियम वे नहीं मानते थे। इसलिए उनको अंतिम पीरियड ही यूनिवर्सिटी देती थी लेने के लिए। क्योंकि चालीस मिनट के बाद... वे कहते थे, शुरू करना मेरे बस में है, अंत करना मेरे बस में नहीं है। तो साठ मिनट में पूरा हो, अस्सी मिनट में पूरा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तो घंटा बजे, उससे मैं बंद नहीं करूंगा; जब मेरी बात पूरी हो जाए, तभी बंद करूंगा। तो करीब अस्सी मिनट, नब्बे मिनट बोलते थे, मैं सोता था। और युवती को कह रखा था कि जब घंटा पूरा होने लगे, तो मुझे इशारा करे। वह कृपा करके इतनी व्यवस्था कर देती थी कि इशारा कर देती, मैं उठ जाता।
एक दिन उसे बीच में जाना पड़ा; कोई बुलावा आ गया, कुछ कारण आ गया, वह बीच
से चली गई। मैं सोया रहा, वे बोलते रहे। घंटा पूरा हो गया, उन्होंने आंख खोली, मैं सोया था। उन्होंने मुझे हिलाया और जगाया। बोले कि नींद लग गई? मैंने कहा, अब आपको पता ही चल गया, तो मैं कह दूं। मैं रोज ही सो रहा हूं। मुझे स्त्रियों से कोई ऐतराज नहीं है। और यह बड़ा सुखद है, डेढ़ घंटे आप बोलते हैं, मैं सो लेता हूं।
सोना मैंने करीब-करीब ध्यान बना रखा था। जितना ज्यादा सो सकूं, उतना ज्यादा सोता था।
एक बड़े मजे की बात है कि अगर आप जरूरत से ज्यादा सोएं, तो सोने में जागरण निर्मित होने लगता है। अगर आप जरूरत से कम सोएं, तो नींद एक मूर्च्छा होगी। अगर आप जरूरत से ज्यादा सोएं, तो सो तो नहीं सकते। शरीर की जरूरत पूरी हो जाती है। धीरे-धीरे शरीर की कोई जरूरत नहीं रह जाती और आप सोए हुए हैं, तो भीतर कोई जागकर देखने लगता है।
अगर आप छत्तीस घंटे पड़े हुए सोए रहें, तो आपको थोड़ी-सी झलक मिलेगी उस बात की, जिसको कृष्ण कह रहे हैं, तस्याम जागर्ति संयमी। क्योंकि नींद की कोई शरीर को जरूरत न रह जाएगी। और शरीर को आप नींद की अवस्था में पड़ा रहने दें। तो भीतर से जागरण का स्वर शुरू हो जाएगा।
उन दिनों में ही निरंतर सो-सोकर मैंने जाना कि सोए में जागना हो सकता है। रात भी सोता, सुबह भी सोता, दोपहर भी सो जाता; जब मौका मिलता। घर के लोगों को, प्रियजनों को, परिवार के लोगों को यही ख्याल था कि मैं निपट आलसी हूं, मुझसे जीवन में कुछ हो नहीं सकता। एक हिसाब से वह ठीक ही था उनका ख्याल। मेरी तरफ से नींद मेरे लिए साधना थी।
मेरे एक और प्रोफेसर थे। मेरे प्रोफेसर भी थे, मेरे मित्र भी थे। और जैसा आलसी मैं था, ठीक वैसे ही आलसी थे। अकेले वे भी रहते थे, अकेला मैं भी रहता था। उन्होंने कहा, बेहतर होगा, हम दोनों साथ ही रहें। मैंने कहा, इसमें थोड़ी अड़चन होगी। हो सकता है, आपकी नींद में मेरे कारण बाधा हो, मेरी नींद में आपके कारण बाधा हो। फिर भी आप चाहें तो... । पर साथ रहने में कुछ व्यवस्था बनानी जरूरी थी और दोनों ही आलसी थे। वे अब भी वैसे ही हैं; उन्होंने उस गुण का त्याग नहीं किया। उन्होंने कभी उसे साधना भी नहीं बनाया, अन्यथा वह छूट जाता।
ध्यान रहे, जिस तत्व को भी आप साधना बना लें, थोड़े दिन में उसके पार आप चले ही जाएंगे। साधना का मतलब ही ट्रांसेंडेंस है, अतिक्रमण है। और जिसको भी आप पूरी तरह भोग लें, आप उसके भीतर नहीं रह सकते। अगर आप आलस्य को भी पूरी तरह भोग लें, आप अचानक पाएंगे कि आलस्य विदा हो गया। जिससे मुक्त होना हो, उसे पूरा भोग लेना जरूरी है।
इसलिए मैंने तमस को पहले पूरा ही भोग लेना उचित समझा।
साथ रहे, तो पहले ही दिन रात हमें तय करना पड़ा कि कल से हमारी व्यवस्था कैसी होगी। अब तक अलग-अलग थे, इसलिए व्यवस्था का कोई सवाल नहीं था।
उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति पहले सुबह उठे, वह दूध लेने जाए। मैंने कहा, यह बिल्कुल स्वीकार है। मैं भी खुश था, वे भी खुश थे। दोनों भ्रांति में थे।

तो मैंने सोचा कि ऐसा सुबह पहले उठने की जरूरत क्या है! और वे भी यही सोच रहे थे।
नौ बजे के करीब मेरी नींद खुली, तो मैंने देखा, वे सोए हैं, तो मैं फिर
सो गया। दस बजे के करीब उनकी नींद खुली होगी, उन्होंने देखा कि मैं सोया हूं। वे भी सोना चाहे, लेकिन एक अड़चन थी, उनको ग्यारह बजे यूनिवर्सिटी तो पहुंचना ही था, वे नौकरी में थे। मैं तो विद्यार्थी था; मुझे जाने की कोई आवश्यकता भी न थी, जरूरी भी नहीं था। ऐसे भी मैं कम ही जाता था।
आखिर मजबूरी में उनको उठना पड़ा; दूध लेने जाना पड़ा। जब तक वे आए, तब तक मैं उठकर बैठा था। उन्होंने कहा कि यह दोस्ती नहीं चल सकती, क्योंकि यह तो रोज का सवाल है। मुझे ग्यारह बजे यूनिवर्सिटी जाना ही है। तो मैं ज्यादा से ज्यादा दस बजे तक प्रतीक्षा कर सकता हूं। तुम पूरे दिन प्रतीक्षा कर सकते हो। इसका मतलब हुआ कि दूध मुझे रोज ही लाना पड़ेगा; यह दोस्ती नहीं चल सकती।
जिस बात को भी करने से बचा जा सके; मैंने प्राथमिक चरण में पूरी तरह बचने की कोशिश की। दो वर्ष मैं विश्वविद्यालय में था, मैंने कभी अपना कमरा नहीं झाड़ा। अपने पलंग को दरवाजे पर रख छोड़ा था, जिससे सीधा दरवाजे से पलंग पर प्रवेश करूं और सीधे बाहर निकल जाऊं। और अकारण पूरे कमरे को क्यों! न उसमें प्रवेश करना, न उसको साफ करने का कोई सवाल था। पर उसका अपना सुख था। और चीजें जैसी हैं, उनमें जितना कम रद्दोबदल करना पड़े... क्योंकि रद्दोबदल का मतलब होता है, कुछ करना पड़ेगा। उनको वैसे ही रहने देना। पर इससे अनूठे अनुभव भी हुए। और हर गुण का अनूठा अनुभव है। कितना ही कचरा था और कितनी ही गंदगी थी, उसके बीच ऐसे ही रहने का भाव आ गया जैसे कितनी ही स्वच्छता के बीच रहने की स्थिति हो।
जिस विश्वविद्यालय में मैं था, उसके भवन तब तक निर्मित नहीं हुए थे। नया विश्वविद्यालय निर्मित हुआ था और मिलिट्री के बैरेक्स का ही उपयोग हास्टल्स के लिए हो रहा था। तो अक्सर सांप आ जाते थे, क्योंकि घने जंगल में ही, खुले जंगल में बैरेक्स थे। तो मैं पड़ा हुआ अपने बिस्तर पर उनको देखता रहता था। वे आ जाते, बैठ जाते, कमरे में विश्राम कर लेते। न कभी उन्होंने कुछ किया, न मैंने कभी उनके लिए कुछ किया।
करने का भाव ही न हो, तो बहुत-सी चीजें सहज स्वीकार हो जाती हैं। और करने का भाव न हो, तो जिंदगी में असंतोष की मात्रा एकदम नीचे गिरने लगती है। उन दिनों में कोई असंतोष का कारण नहीं था। क्योंकि जब आप कुछ कर ही न रहे हों, तो आपकी कोई मांग नहीं रह जाती। और जब आप कुछ कर ही न रहे हों, तो फल का कोई सवाल नहीं है। जब आप कुछ कर ही न रहे हों, तो जो भी मिल जाए... ।
तो कभी-कभी कोई मित्र दया करके कमरे को साफ कर जाता, तो मैं बड़ा अनुगृहीत होता था। मेरे अध्यक्ष विभाग के, परीक्षा के समय सुबह स्वयं उठकर सात बजे मेरे दरवाजे पर गाड़ी लेकर खड़े हो जाते थे कि मुझे आठ-दस दिन जब तक परीक्षा चले, मुझे हाल में वे छोड़ दें, क्योंकि मैं सोया न रह जाऊं। सबकी दया और करुणा अनायास मिलती थी। क्योंकि सभी को ख्याल था कि जिस बात को भी करने से बचा जा सके, मैं बचूंगा। बड़ी आश्चर्य की घटनाएं घटती थीं। वह इसलिए कह रहा हूं कि आपको ख्याल आ सके कि जिंदगी बहुत रहस्यपूर्ण है।
प्रोफेसर्स परीक्षा के पहले मुझे आकर कह जाते कि यह प्रश्न जरूर देख लेना। मैं कभी किसी से पूछने नहीं गया। उनके बताने पर भी उनको भरोसा नहीं था कि मैं देखूंगा। वे मेरी तरफ ऐसे देखते कि समझ में आया? इसको जरूर ही देख लेना। इसका आना पक्का है। जाते-जाते वे मुझको कह जाते, यह पेपर मैंने ही निकाला है; इसे बिल्कुल देख ही लेना। इसमें कोई शक-सुबहा ही नहीं है, यह आएगा ही। फिर भी उन्हें मैं कभी भरोसा नहीं दिला सका कि उनको भरोसा आ जाए कि मैं देखूंगा।
मैं यह कह रहा हूं कि अगर आप जगत से छीनने-झपटने जाएं, तो हर जगह प्रतिरोध है। और अगर आप कुछ न करने की हालत में हों, तो सब द्वार आपको देने को खुल जाते हैं।
उन दिनों बिस्तर पर पड़े रहना, ऊपर सीलिंग में देखते रहना, वैकेंट, खाली। बहुत बाद में मुझे पता चला कि मेहर बाबा की साधना वही थी। मुझे तो यह

अनायास हुआ। क्योंकि बिस्तर पर पड़े-पड़े करना भी क्या? अगर नींद जा चुकी हो, तो पड़े रहना, सीलिंग को देखते रहना। अगर आप चुपचाप बिना पलक झपाए... और पलक नहीं झपाना, यह कोई साधना नहीं थी। वह भी जैसे कर्म का हिस्सा है, क्यों झपाना! पड़े रहना। वह भी जैसे आलस्य का हिस्सा है कि पलक भी क्यों झपाना! पड़े रहना। रोकने का कृत्य नहीं था। जहां तक बने कुछ न करना।
अगर आप अपने मकान की सीलिंग को ही देखते हुए पड़े रहें घंटे, दो घंटे;
आप पाएंगे, चित्त इतना आकाश जैसा कोरा हो जाता है, शून्य हो जाता है।
अगर आलस्य को कोई साधना बना ले, तो शून्य की अनुभूति बड़ी सहज हो जाती है।
उन दिनों में न मैं ईश्वर को मानता था, न आत्मा को। न मानने का कारण कुल इतना था कि इन्हें मानने से फिर कुछ करना पड़ेगा। आलसी के लिए अनीश्वरवाद संगत है। क्योंकि अगर ईश्वर है, तो काम शुरू हो गया। फिर कुछ करना पड़ेगा। अगर आत्मा है, तो कुछ करना पड़ेगा।
लेकिन कुछ न करते हुए, बिना ईश्वर और आत्मा को मानते हुए, उस चुपचाप पड़े रहने में ही उस सब की झलक मिलनी शुरू हो गई, जिसको हम आत्मा कहें, ईश्वर कहें। और मैंने तब तक तमस को नहीं छोड़ा, जब तक तमस ने मुझे नहीं छोड़ दिया। तब तक मैंने तय किया था कि चलता रहूंगा ऐसा ही, बिना कुछ किए।
मेरी अपनी समझ यह है कि अगर आप तमस को ठीक से जी लें, तो उसके बाद रजोगुण अपने आप पैदा हो जाएगा। क्योंकि वह दूसरा गुण है, जो आपकी दूसरी मंजिल में छिपा हुआ है। पहली मंजिल पूरी हो गई; आप सीढ़ियां पार कर आए, रजोगुण शुरू हो जाएगा। आपमें सक्रियता का उदय होगा।
लेकिन यह सक्रियता बहुत अनूठी होगी। यह सक्रियता राजनीतिज्ञ की विक्षिप्तता नहीं होगी। अगर आलस्य को आपने साधना बनाया हो और आलस्य आपका शून्यता में जाने का द्वार बना हो, तो यह सक्रियता वासना की सक्रियता नहीं हो सकती, करुणा की ही हो सकती है। यह सक्रियता अब बांटने का एक क्रम होगी। तो उस सक्रियता को भी मैंने पूरी तरह जी लिया। बीच में कुछ बाधा डालना मेरी वृत्ति नहीं है। जो भी हो रहा हो, उसे होने देना। और ऐसे अगर कोई होने दे, तो बहुत जल्दी गुणातीत हो जाएगा। क्योंकि तब स्वयं करने वाला नहीं रह जाता; गुण ही करने वाले रह जाते हैं। वह आलस्य का गुण था, जिसने अपने को पूरा कर लिया।
फिर रजोगुण था। तो मैं दौड़ता रहा मुल्क में। जितनी यात्रा मैंने दस-पंद्रह साल में की, दो-तीन जीवन में भी एक आदमी नहीं कर सकता। जितना उन दस-पंद्रह सालों में बोला, उतने के लिए दस-पंद्रह जीवन चाहिए। सुबह से लेकर रात तक चल ही रहा था, बोल ही रहा था, सफर ही कर रहा था।
जरूरत, गैर-जरूरत विवाद और उपद्रव भी खड़े कर रहा था। क्योंकि जितने वे विवाद खड़े हो जाएं, उतना मेरे रजोगुण को निकल जाने की सुविधा थी। तो गांधी की आलोचना हाथ में ले ली, या समाजवाद की आलोचना हाथ में ले ली। उनसे मेरा कोई संबंध नहीं था। राजनीति से मेरा कोई भी लगाव नहीं है; रत्तीभर भी मुझे कोई रस नहीं है।
लेकिन जब सारा मुल्क एक विक्षिप्तता में पड़ा हो, सारी मनुष्यता, और अगर आपको भी दौड़ना हो उस मनुष्यता के बीच, तो खेल के लिए ही सही, आपको कुछ उपद्रव अपने आस-पास निर्मित कर लेने चाहिए, कुछ विवाद खड़े कर लेने चाहिए। तो उस रजोगुण की यात्रा में ढेर विवाद खड़े हुए, और मैंने उनका काफी सुख लिया।
अगर कर्म की विक्षिप्तता से वे पैदा होते, तो उनसे दुख पैदा होता।
लेकिन सिर्फ रजोगुण के निकास की भांति, अभिव्यक्ति की भांति वे थे, तो उन सबमें खेल था और रस था। वे विवाद एक अभिनय से ज्यादा नहीं थे।
पंजाब में पंजाब के एक बड़े वेदांती थे, हरिगिरी जी महाराज। उनसे वेदांत पर एक बड़ा विवाद हुआ। मेरे लिए एक खेल था, उनके लिए गंभीरता थी।
क्योंकि उनके सिद्धांत का सवाल था। वे करीब-करीब विक्षिप्त हो जाते थे।
पुरी के शंकराचार्य से पटना में विवाद हो गया। मेरे लिए खेल था, उनके लिए पूरे व्यवसाय का सवाल था। वे इतने विक्षिप्त हो गए, इतने क्रोध में आ गए कि मंच से गिरते-गिरते बचे। सारा शरीर कंपित हो गया।

पर रजोगुण को पूरा निकल जाने देना जरूरी है। बहुत मित्रों ने मुझे रोकना चाहा, पर मैं अपनी तरफ से नहीं रुकना चाहता था। रजोगुण ही झर जाए, उसकी निर्जरा हो जाए, तो ही रुकूंगा।
महीने में तीन सप्ताह मैं ट्रेन में ही बैठा हुआ था। सुबह बंबई था, तो रात कलकत्ता था, तो दूसरे दिन अमृतसर था, तो चौथे दिन लुधियाना था, दिल्ली था। पूरा मुल्क जैसे एक भ्रमण के लिए क्षेत्र था। और जगह-जगह उपद्रव स्वाभाविक थे, क्योंकि जब आप कर्म करेंगे, तब उपद्रव बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि कर्म के प्रतिकर्म पैदा होते हैं, क्रिया से प्रतिक्रिया जन्मती है।
आलस्य के दिनों में मैं बोलता नहीं था, या न के बराबर बोलता था। कोई बहुत पूछे, तो थोड़ा बोलता था। रजोगुण के दिनों में कोई न भी पूछे, तो बोलता था। लोगों को ढूंढ़कर बोलता था; और बोलने में एक आग थी। मेरे पास अब भी लोग आते हैं, वे कहते हैं, अब आप वैसा नहीं बोलते कि दिल थर्रा जाता था। एक जोश, अंगार था।
वह अंगार मेरा नहीं था। वह उस गुण का था, जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं।
वह रजोगुण को जलाने का एक ही उपाय था, कि वह भभक कर जले। वह पूरा का पूरा अंगारा बन जाए, तो जल्दी राख हो जाएगा। जितने धीरे-धीरे जलेगा, उतना समय लेगा। इकट्ठा जल जाए, पूर्णता से जले, तो जल्दी राख हो जाएगा।
अब वह जल चुका है। और अब जैसे सांझ को सूरज सिकोड़ ले अपनी सारी किरणों
को और जैसे सांझ को मछुआ अपने जाल को निकाल ले, ऐसे मैं सब सिकोड़ लूंगा। सिकोड़ लूंगा, कहना ठीक नहीं है। ऐसा सब सिकुड़ जाएगा। क्योंकि तीसरा तत्व शुरू होगा।
इसलिए आप देख भी रहे हैं कि मैं धीरे-धीरे सब हाथ हटाता जा रहा हूं। आपकी जगह पचास हजार लोग सुन सकते थे, लेकिन मैं राजी हूं कि पचास लोग सुनें। पचास से पांच पर राजी हो जाऊंगा। बोलने से न बोलने पर राजी हो जाऊंगा।
तो जैसे-जैसे रजोगुण पूरा फिंक जाता है और सत्व की प्रक्रिया शुरू होती है, वैसे-वैसे सभी क्रियाएं फिर शून्य हो जाएंगी।
तमोगुण में भी सारी क्रियाएं शून्य होती हैं। लेकिन वह शून्यता निद्रा जैसी होती है। सत्वगुण में भी सारी क्रियाएं शून्य हो जाती हैं। लेकिन वह शून्यता जागरूकता जैसी होती है। तमस और सत्व में एक समानता है कि दोनों शून्य होंगे। तमस का रूप निद्रा जैसा होगा; सत्व का रूप जागरण जैसा होगा।
और इसी को मैं जीवन की ठीक प्रक्रिया मानता हूं कि जीवन का प्रथम चरण तमस में गुजरे, द्वितीय चरण रज में गुजरे, तृतीय चरण सत्व में गुजरे। और तीनों चरण में आप अपने को अलग रखने की कोशिश में लगे रहें, तो आप साधना में हैं। और तीनों चरणों में आप जानते रहें कि यह मैं नहीं कर रहा हूं, ये गुण कर रहे हैं। यह मुझसे नहीं हो रहा है; मैं सिर्फ देखने वाला हूं; मैं सिर्फ साक्षी हूं। जब आलस्य हो तब भी, जब कर्म हो तब भी, जब सत्व हो तब भी। मैं सिर्फ देखने वाला हूं, मैं मात्र द्रष्टा हूं। ऐसी प्रतीति बनी रहे, तो तीनों गुण चुक जाएंगे अपने से और आप गुणातीत में ठहर जाएंगे।
पहुंचना है चौथे में, तीनों के पार। जिसको चौथा कहना ठीक नहीं; जहां कोई भी नहीं है; जहां तीनों नहीं हैं।
कृष्ण ने तीनों को इकट्ठा व्यक्त किया है। मैंने तीनों को अलग-अलग एक-
एक परिधि में बांटकर उपयोग किया है। इसलिए मेरी बातों में भी असंगति मिलेगी। जो मैंने तमस के क्षणों में कहा है और जीया है, वह मेरे रजस के क्षणों से उसका कोई मेल नहीं बैठेगा। और जो मैंने रजस के क्षणों में कहा है, वह मेरे सत्व के क्षणों में कही गई बातों से उसका बहुत विरोध हो जाएगा। इसलिए जब कोई मेरे पूरे विचार पर सोचने बैठेगा, तो उसे तीन हिस्सों में तोड़ देना पड़ेगा। और तीनों के बीच बड़े विरोध होंगे। होना ही चाहिए। क्योंकि तीन अलग गुणों के माध्यम से वे बातें प्रकट हुई हैं। और तीनों के बीच संगति असंभव होगी।

अगर मेरे व्यक्तित्व में संगति खोजनी हो, तो वह चौथे में मिलेगी, वह
जो गुणातीत है। इन तीन में संगति नहीं मिल सकेगी। इन तीनों के पीछे जो छिपा साक्षी-भाव है, उसमें ही संगति मिल सकती है।

दूसरा प्रश्नः सात्विक कर्म का फल सुख, ज्ञान एवं वैराग्य कहा है। रजस एवं तमस कर्म का फल दुख और अज्ञान कहा है। यदि रजस और तमस गुणों को साधना का आधार बनाया जाए, तो उनके फलों में क्या भिन्नता आ जाएगी?

फलों में तो कोई भिन्नता न आएगी। फल-भोक्ता में भिन्नता आएगी। फल तो वही होंगे। अगर सात्विक कर्म का फल सुख है, तो सुख ही होगा, चाहे आप जागरूक हों और न हों। अगर जागरूक होंगे, तो आप जानेंगे कि सुख मुझ से दूर और अलग है, मेरे आस-पास है। मैं सुख नहीं हूं, मैं सुख को देखने वाला हूं।
चाहे रजस का फल हो दुख, फल तो वही होगा। संत को भी वही फल होगा, असंत को
भी वही फल होगा। लेकिन असंत समझेगा कि मैं दुख हूं और संत समझेगा कि मैं दुख का द्रष्टा हूं। वहां भेद होगा।
इसलिए बड़े मजे की बात है। दुख का फल तो बराबर होगा, लेकिन संत दुखी नहीं हो पाएगा और असंत दुखी होगा। और दुख दोनों को होगा। जो दुख के साथ जुड़ जाएगा, तादात्म्य कर लेगा, आइडेंटिटी बना लेगा, वह दुखी होगा।
जैसे आपका कपड़ा कोई छीन ले। और आप अगर सोचते हों कि कपड़ा ही मैं हूं,
तो कपड़े के साथ आपकी आत्मा जा रही है। और आप सोचते हों कि कपड़ा सिर्फ मेरे ऊपर है; कोई ले भी गया, तो कपड़ा ही ले गया है, मैं नहीं चला गया हूं। कपड़ा दोनों हालत में चला जाएगा। लेकिन एक हालत में आपको गहन पीड़ा से भर जाएगा, दूसरी हालत में आप हंसते रह जाएंगे।
शरीर तो दोनों का छूटेगा। लेकिन जिसने अपने को शरीर ही समझा हो, वह रोएगा, छाती पीटेगा। और जिसने जाना हो कि मैं शरीर का देखने वाला हूं, शरीर से भिन्न और अलग हूं, वह शरीर को जाते हुए देखेगा, जैसे एक और वस्त्र छिन गया, जराजीर्ण हो गया था, नए वस्त्र की खोज में पुराने को छोड़ दिया।
तीनों के फल होंगे। लेकिन साधक के लिए, जो उन तीनों के प्रति जागरूकता साध रहा है... ।
और जागरूकता तो सभी को साधनी पड़ेगी, चाहे आप किसी गुण में हों। चाहे आपके हाथ पर जंजीरें लोहे की हों, चाहे आपके हाथ पर जंजीरें सोने की हों, चाहे आपके हाथ पर जंजीरें हीरे से मढ़ी हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जंजीर खोलने की कला तो एक ही होगी। वह सोने की है कि लोहे की, इससे कोई भेद नहीं पड़ता।
आपके चारों तरफ दुख बंधा है कि सुख, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। खोलने
की कुंजी तो एक ही है, और वह कुंजी है, साक्षी-भाव। चाहे दुख हो तो, चाहे सुख हो तो, आपको अपने को दूर खड़े होकर देखने की कला में निष्णात करना है। अभ्यास एक है, कि मैं अलग हूं। कुछ भी घट रहा हो, वह घटना अ ब स कुछ भी हो, उस घटना से मैं दूर खड़ा देख रहा हूं। मैं दर्शक हूं।

तीसरा प्रश्नः कल आपने समझाया कि सात्विक कर्मों का परिणाम है, सहज वैराग्य। जो व्यक्ति रजस या तमस के माध्यम से साधना कर रहा है, क्या उसका भी वैराग्य सहज ही होगा? क्या वैराग्य के प्रकटीकरण में भी भिन्नता आ जाएगी?

नहीं, वैराग्य हमेशा सहज होगा। सहज का मतलब समझ लें।
वैराग्य को ओढ़ा नहीं जा सकता, जबरदस्ती थोपा नहीं जा सकता। वैराग्य
जब भी होगा, सहज होगा। और अगर सहज न हो, तो वह वैराग्य सिर्फ ऊपर-ऊपर होगा, भीतर उसके राग होगा। नाम वैराग्य होगा, लेकिन नए ढंग का राग होगा।
आप एक चीज को छोड़ सकते हैं दूसरी चीज को पकड़ने के लिए। लेकिन यह वैराग्य नहीं है। वैराग्य का मतलब है, छोड़ना, बिना किसी को पकड़ने के लिए। सिर्फ मुट्ठी को खुला छोड़ देना है।
साधु-संत लोगों को समझाते हैं--तथाकथित साधु-संत--कि तुम यहां छोड़ो,
तो परलोक में पाओगे। उनकी बातें सुनकर अगर कोई यहां छोड़ दे, तो वह छोड़ नहीं

रहा है। वह सिर्फ परलोक में पकड़ रहा है। उसका वैराग्य झूठा है, ओढ़ा हुआ है। राग ही काम कर रहा है। और वह मन ही मन में बड़ा प्रसन्न हो रहा है कि मैंने यहां धन दिया, तो हजार गुना परलोक में मुझे मिलेगा। वह सौदा कर रहा है, त्याग नहीं कर रहा। वह इनवेस्टमेंट कर रहा है। वह आगे की तैयारी कर रहा है। वह यहीं से आगे के लिए भी धन जोड़ रहा है।
और साधु समझाते हैं कि धन को इकट्ठा करके क्या करोगे? पुण्य इकट्ठा करो। क्योंकि धन तो छिन जाएगा; पुण्य कभी नहीं छिनेगा। लोभी उनकी बातों में आ जाएंगे। क्योंकि लोभी ऐसा ही धन खोज रहा है, जो छिन न सके। यह भाषा लोभ की है, त्याग की भाषा नहीं है।
सहज वैराग्य का अर्थ है, आपको दिखाई पड़ेगा, धन व्यर्थ है। आप इसलिए नहीं छोड़ रहे हैं कि इससे कोई बड़ा धन मिल जाएगा। आप धन की पकड़ ही छोड़ रहे हैं। आप बड़े को भी नहीं चाहते हैं। आप इस संसार को इसलिए नहीं छोड़ रहे हैं कि परलोक मिल जाएगा। आप कुछ पाना ही नहीं चाहते। पाने की बात ही मूढ़तापूर्ण समझ में आ गई। यह बोध हो गया कि पाने की आकांक्षा में ही दुख है, फिर वह पाना यहां हो कि परलोक में हो। अब आप कुछ पाना नहीं चाह रहे। आप अब जो हैं, वही होने में प्रसन्न हैं, तो वैराग्य।
वैराग्य का मतलब है, मैं जहां हूं, जैसा हूं, जो हूं, उसकी स्वीकृति।
उससे कोई असंतोष नहीं। राग का अर्थ है, जो भी मैं हूं, उससे असंतुष्ट हूं।
और कुछ और हो जाऊं, तो मेरा संतोष हो सकता है।
राग का संतोष है भविष्य में, वैराग्य का संतोष है अभी और यहीं। इसलिए वैराग्य सदा सहज होगा, एक।
साधना कोई भी हो, वैराग्य सदा फल होगा। साधना चाहे तमस की हो, चाहे रजस की, चाहे सत्व की, फल सदा वैराग्य होगा। साधना का फल वैराग्य है। ध्यान का फल वैराग्य है। ज्ञान का फल वैराग्य है।
अगर आप दौड़ रहे हैं, कर्म कर रहे हैं... जैसा कि कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि तू कर्म कर, डर मत। लेकिन कर्म करने में भोक्ता मत रह, कर्ता मत रह, साक्षी हो जा।
अर्जुन को कृष्ण कह रहे हैं, तू रजस की साधना कर। क्योंकि कृष्ण जानते हैं भलीभांति कि अर्जुन का गुण है क्षत्रिय का। वह रजस उसका स्वभाव है, वह उसकी प्रमुखता है। और जीवनभर उसने रजस को साधा है, आलस्य को दबाया है। सत्व को दबाया है, रजस को उभारा है। क्योंकि क्षत्रिय अगर सत्व को उभारे, तो क्षत्रिय न हो सकेगा, ब्राह्मण हो जाएगा। अगर ब्राह्मण रजस को उभारे, तो नाम का ही ब्राह्मण रह जाएगा, क्षत्रिय हो जाएगा।
परशुराम नाम के ब्राह्मण हैं। हाथ में उनके फरसा है। और क्षत्रियों से, कथा है कि उन्होंने अनेक बार पृथ्वी को खाली कर दिया। वह महाक्षत्रिय हैं। इसलिए परशुराम में सत्व प्रमुख नहीं हो सकता; रजस ही प्रमुख होगा। परशुराम की दोस्ती बुद्ध से नहीं बैठ सकती, मोहम्मद से बैठ सकती है। जहां सक्रियता प्रमुख हो, वहां रजस ऊपर होगा।
कृष्ण भलीभांति जानते हैं अर्जुन का सारा व्यक्तित्व, सारा ढांचा रजस
का है। इसलिए वे कह रहे हैं, तू भागने की बातें मत कर। यह तेरा स्वभाव नहीं है, यह तेरा स्वधर्म नहीं है। तू भाग न सकेगा। अगर तू भाग भी गया जंगल में, तो झाड़ के नीचे तू बैठ न सकेगा। तू वहीं जंगल में शिकार करना शुरू कर देगा। वहीं कोई झगड़े खड़े कर लेगा। तेरे क्षत्रिय होने से तेरा छुटकारा इतना आसान नहीं है। जो तेरा व्यक्तित्व है, उसी गुण की साधना में तू उतर, यही कृष्ण का पूरा संदेश है।
इसलिए वे कह रहे हैं, तू लड़। लेकिन एक शर्त, कि तू लड़ जरूर, युद्ध जरूर कर, लेकिन योद्धा अपने को मत समझ, कर्ता अपने को मत समझ। समझ कि तू परमात्मा के हाथ एक निमित्त, एक उपकरण, एक साधन है।
चाहे साधना सत्व की हो, चाहे कोई सदगुणों को जीवन में उतारने में लगा हो; सत्य को, करुणा को, अहिंसा को साध रहा हो; सब भांति अपने आचरण को पवित्र कर रहा हो, शुचि कर रहा हो, शुद्ध कर रहा हो; वहां भी कर्ता-भाव पकड़ सकता है। वहां भी यह हो सकता है कि देखो, मेरे जैसा साधु कोई भी नहीं है! कि मेरी जैसी पवित्रता कहां है!

तो भूल हो गई। तो यह सत्वगुण जंजीर बन जाएगा। वहां भी जानना है कि यह
जो भलापन हो रहा है, यह भी मेरे भीतर जो प्रकृति ने सत्व का गुण रखा है, उसका परिणमन है, उसका परिणाम है। मैं तो सिर्फ देखने वाला हूं। मैं देख रहा हूं कि मेरा सत्व सक्रिय हो रहा है, मेरे भीतर से करुणा बह रही है, अहिंसा बह रही है। मैं अहिंसक नहीं हूं।
मैं तो वैसे ही देख रहा हूं, जैसे हिमालय देखता होगा कि गंगा बह रही है। आकाश से पानी गिरता है, गंगोत्री भर जाती है, गंगोत्री से गंगा बहती है। हिमालय यह नहीं कह रहा है कि मैं गंगा को बहा रहा हूं। हिमालय सिर्फ देख रहा है कि गंगा मुझसे बह रही है। ऐसे ही सत्व की क्रियाएं मुझसे हो रही हैं। आकाश से वर्षा हो रही है, प्रकृति उनको दे रही है, मैं सिर्फ देखने वाला हूं।
अगर आप हिमालय की तरह खड़े हुए साक्षी हो गए, तो सत्व बंधन नहीं बनेगा, अन्यथा सत्व भी बंधन बन जाएगा। और अगर आप साक्षी हो सकें, तो फिर तमस भी बंधन नहीं बनेगा। आप तब देख सकते हैं कि आलस्य मेरा नहीं है, आलसी मैं नहीं हूं; यह भी मेरे भीतर प्रक्रिया है गुणों की।
विज्ञान इस संबंध में बड़ी महत्वपूर्ण सूचनाएं देता है। वे सूचनाएं ये हैं कि आपके भीतर जो भी हो रहा है, वह आपके शरीर के हार्मोन्स पर निर्भर है, आप पर निर्भर नहीं है। हार्मोन नया शब्द हो सकता है, लेकिन मतलब उसका भी वही है, जो गुणों का होगा।
एक स्त्री है, एक पुरुष है। आप सोचते हैं, मैं स्त्री हूं, मैं पुरुष हूं। आप गलती में हैं। स्त्री को पुरुष हार्मोन के इंजेक्शन दे दिए जाएं, उसके शरीर का रूपांतरण हो जाएगा, वह पुरुष जैसी हो जाएगी। पुरुष को स्त्री हार्मोन के इंजेक्शन दे दिए जाएं, उसका रूपांतरण हो जाएगा। उसकी कामेंद्रिय बदलकर स्त्रैण हो जाएगी। तब आप बड़े चौंकेंगे कि मैं कौन हूं फिर? क्योंकि अगर इंजेक्शन आपको स्त्री से पुरुष बना सके, पुरुष से स्त्री बना सके, तो आप कौन हैं? स्त्री हैं या पुरुष?
यही हमारी निरंतर की खोज है। और मैं मानता हूं कि विज्ञान बड़े नए आधार
दे रहा है पुराने सत्यों के लिए। इसका मतलब हुआ कि आपका स्त्री होना या पुरुष होना प्रकृति के द्वारा है; आप दोनों के पार हैं। तो अगर आपकी प्रकृति बदल दी जाए, शरीर बदल दिया जाए, तो आप स्त्री हो जाएं या पुरुष हो जाएं।
आप हैरान होंगे! एक आदमी क्रोधित हो रहा है। हार्मोन देकर उसके क्रोध
को सुलाया जा सकता है। वह फिर कभी क्रोधित नहीं होगा। आपके भीतर ग्रंथियां हैं, जिनका आपरेशन कर दिया जाए, तो आप लाख उपाय करें, तो क्रोध नहीं कर सकेंगे। चाहे कोई आपको पीट रहा हो, गाली दे रहा हो, अपमान कर रहा हो, आप कितना ही उठाने की कोशिश करें, भीतर क्रोध नहीं उठेगा। क्योंकि वह ग्रंथि ही नहीं है, जिससे क्रोध उठ सकता है।
पावलव ने बहुत प्रयोग किए कुत्तों के ऊपर। खूंख्वार कुत्ते, जो कि चीरकर दो कर दें अगर आप उनको जरा-सी चोट पहुंचा दें। उनकी ग्रंथियां अलग कर दीं। आपरेशन किया, ग्रंथि अलग कर दी। खूंख्वार कुत्ते बिल्कुल ही निर्जीव हो गए। आप उनको मार रहे हैं, और वे पूंछ हिला रहे हैं। भौंकते भी नहीं। हमले की तो बात दूसरी, भौंकते भी नहीं। क्योंकि भौंकना भी कुछ हार्मोन पर निर्भर है। अगर वह भीतर तत्व नहीं है, तो आप भौंक भी नहीं सकते। कृष्ण और सांख्य की बड़ी गहरी खोज है कि आपके भीतर जो भी हो रहा है, वह प्रकृति से हो रहा है, गुणों से हो रहा है। आप सिर्फ साक्षी से ज्यादा नहीं हैं।
मगर जो कुत्ता भौंक रहा है, हमला कर रहा है, आप उसको समझा सकते हैं कि
ये तेरे शरीर में किसी ग्रंथि के कारण हो रहा है! वह कहेगा, मैं भौंक रहा हूं, कौन कह रहा है ग्रंथि है?
आप जब क्रोध से भर गए हैं, तो आप सोच सकते हैं कि आपके शरीर के भीतर कुछ रासायनिक तत्वों का यह खेल है! आप कहेंगे, मैं क्रोधित हूं, मुझे गाली दी गई है।

आपको गाली नहीं दी गई। क्योंकि अगर ग्रंथि न हो, तो भी गाली दी जाएगी, क्रोध नहीं उठेगा। ग्रंथि ने गाली पकड़ी, और ग्रंथि उत्तर दे रही है, और आप केवल शिकार हैं। आप सिर्फ विक्टिम हैं। आपको सिर्फ भ्रांति है।
एक सुंदर स्त्री दिखती है और आप उसके पीछे हो लिए। आप सोच रहे हैं, आप पीछे जा रहे हैं! कृष्ण कह रहे हैं, आप नहीं जा रहे, सिर्फ गुण पीछे जा रहे हैं। आपके भीतर के जो पुरुष हार्मोन हैं, वे आपको खींच रहे हैं स्त्री हार्मोनों की तरफ। आप चले। आपके बस के बाहर हो गया मामला। आप कहते हैं, स्त्री बहुत सुंदर है।
यह आप सब समझा रहे हैं। ये सब हार्मोन आपको समझा रहे हैं आपके भीतर कि स्त्री बहुत सुंदर है। रुकना भी चाहो, तो कैसे रुक सकते हो! लेकिन आपके हार्मोन अलग कर लिए जाएं, सुंदर से सुंदर स्त्री गुजर जाए और आप बैठे देखते रहेंगे, भीतर कुछ भाव का उदय न होगा।
स्पेन का बहुत बड़ा विचारक है, देलगाडो। उसने आदमी के शरीर, उसके हार्मोन, उसके रासायनिक तत्व, उसकी विद्युत प्रक्रियाओं पर बड़े गहरे प्रयोग किए। खतरनाक भी हैं प्रयोग; कीमती भी हैं। खतरा यह है कि देलगाडो कहता है कि अगर दुनिया से कोई भी चीज समाप्त करनी हो, तो धर्मों वगैरह की चिंता में पड़ने की कोई जरूरत नहीं। विज्ञान को पूरा अधिकार दो, हम खतम कर देंगे।
अगर आप सोचते हों कि मुल्क बहुत कामुक हो गया है, तो फिजूल ब्रह्मचर्य
की शिक्षा दे-देकर कुछ न होगा। हम एक छोटा-छोटा यंत्र प्रत्येक शरीर में बिठाए देते हैं। बच्चा पैदा होगा, अस्पताल में ही हम उसको, उसको कभी पता भी नहीं चलेगा... ।
आप जानकर हैरान होंगे कि आपकी खोपड़ी के भीतर संवेदनशीलता नहीं है। हालांकि सब कुछ अनुभव आपको खोपड़ी से होता है, लेकिन संवेदनशीलता नहीं है। आपकी खोपड़ी फाड़ी जाए और उसमें एक छोटा पत्थर रख दिया जाए भीतर और खोपड़ी बंद कर दी जाए, आपको बिल्कुल पता नहीं चलेगा कि पत्थर भीतर है। भीतर कोई संवेदनशीलता नहीं है। पत्थर जिंदगीभर रखा रहेगा, आपको कभी पता नहीं चलेगा।
पहले महायुद्ध में यह पता चला। कुछ लोगों को गोलियां लगीं सिर में, और किसी भूल-चूक के कारण वे गोलियां नहीं निकाली जा सकीं, और उनके घाव भर गए और वे ठीक हो गए। दस साल बाद, किसी और कारण से सैनिक के सिर का आपरेशन किया गया और गोली की खोल भीतर मिली। और उसको पता ही नहीं था दस साल तक। तब पहली दफा पता चला कि भीतर कोई संवेदनशीलता नहीं है।
तो देलगाडो कहता है, हम हर बच्चे को, उसे कभी पता ही नहीं चलेगा, एक छोटा-सा यंत्र उसके सिर में लगा देंगे, अंदर रख देंगे एक रेडियो रिसीवर। सब बच्चों के सिर में वह होगा। फिर आप दिल्ली से रिले करें और सारा मुल्क वैसा व्यवहार करेगा।
तो किसी को कहने की जरूरत नहीं है कि ब्रह्मचर्य साधो। सिर्फ वहां से, दिल्ली से, ठीक सूचना देने की जरूरत है कि सब ब्रह्मचारी हो जाओ। वह आपके भीतर का जो यंत्र है, आपको तत्काल ब्रह्मचर्य की खबर देगा। आप अचानक पाएंगे कि मन में बड़ी साधुता उठ रही है। कोई रस नहीं रहा!
देलगाडो का प्रयोग मूल्यवान है, लेकिन खतरनाक भी है। क्योंकि आश्चर्य नहीं होगा कि कुछ दस-बीस-पच्चीस वर्षों के बाद सरकारें इसका उपयोग करना शुरू कर दें। क्योंकि यह तो बड़ा कीमती काम है। अगर पूरे मुल्क को युद्ध पर भेजना हो, तो भेजा जा सकता है। अगर हिंदुओं को भड़काना हो कि सारे मुसलमानों को खतम कर दो हिंदुस्तान में, तो एक दिन में खतम करवाया जा सकता है। कोई ज्यादा उपद्रव की जरूरत नहीं है। सिर्फ उनके भीतर बैठा हुआ यंत्र, उसको खबर होनी चाहिए।
देलगाडो ने स्पेन में बड़े प्रयोग किए। उसने एक सांड के सिर में यंत्र लगा रखा है। भयंकर सांड है। लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए थे। देलगाडो अपने हाथ में घड़ी के बराबर यंत्र लगाए हुए है, जो सांड के मस्तिष्क से जुड़ा है वायरलेस से, रेडियो से।
सांड को भड़काया उसने। लाल झंडी दिखाई। सांड भागा देलगाडो की तरफ।
लाखों लोग उत्सुक होकर देख रहे हैं कि खतरा है; सांड बिल्कुल पास आ गया है।

सिर्फ एक फीट दूर उसके सींग रह गए हैं। एक सेकेंड और कि वह देलगाडो में सींग डाल देगा, और देलगाडो खतम हो जाएगा। तब तक वह देखता रहा।
तब लोगों ने देखा, उसने घड़ी पर हाथ रखकर कोई चीज दबाई। सांड वहीं के वहीं खड़ा हो गया। सिर्फ एक फीट दूर। एकदम निर्जीव हो गया! देलगाडो दूर गया पचास फीट, फिर उसने बटन दबाई, झंडी दिखाई। सांड भागा। ऐसा उसने बीस दफे करके दिखाया। एक सेकेंड पहले वह घड़ी दबाएगा, सांड वहीं के वहीं खड़ा हो गया, जैसे पत्थर हो गया।
यह सांड जरूर मन में अपना तर्क सोच रहा होगा, अगर सोच सकता होगा। यह जरूर कुछ सोच रहा होगा कि किस कारण से मैं रुक रहा हूं। सोच रहा होगा, दया खा रहा हूं, कि छोड़ो भी, जाने भी दो। ऐसा कुछ आदमी मार देने जैसा नहीं है। मगर यह कुछ भी नहीं है मामला। सिर्फ उसके भीतर इलेक्ट्रोड है। और वह इलेक्ट्रोड उसके क्रोध के यंत्र को दबा देता है, तो उसका जो रोष है, वह बैठ जाता है।
सांख्य की यह दृष्टि बड़ी प्राचीन है कि आपके भीतर आप जो हैं, वह सिर्फ साक्षी-मात्र हैं। सब कर्तृत्व प्रकृति का है। पुरुष का कोई कर्तृत्व नहीं है। इसलिए जो भी हो रहा है, आपके गुणों और शरीर से हो रहा है। और अगर आप इस सत्य को जान जाएं, तो परम सिद्धि आपकी है।

अब हम सूत्र को लें।
जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है... ।
एक-एक शब्द को ठीक से समझ लें।
जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है अर्थात गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा देखता है और तीनों गुणों से अति परे सच्चिदानंदघनस्वरूप मुझ परमात्मा को तत्व से जानता है, उस काल में वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।
तथा यह पुरुष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारण रूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुखों से मुक्त हुआ परमानंद को प्राप्त होता है।
जिस काल में, समय की जिस अवधि में, जिस क्षण में... । और यह क्षण अभी भी
हो सकता है। इसके लिए कोई जन्मों तक रुकने की जरूरत नहीं है। क्योंकि यह आपके भीतर का जो स्वभाव है, यह कुछ निर्मित नहीं करना है। यह है ही। ऐसा है ही, अभी भी, इस क्षण भी। आप साक्षीरूप हैं और सारा कर्तृत्व आपके शरीर की प्रकृति में हो रहा है, गुणों में हो रहा है, तीन गुणों में हो रहा है, जो प्रकृति के तीन नियंता हैं; और आप अभी भी अलग खड़े हैं। यह सिर्फ भ्रांति है कि आप सोचते हैं, आप कर रहे हैं।
जिस काल में, जिस क्षण में, द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी
को कर्ता नहीं देखता है... ।
जिस क्षण आपको यह समझ में आ जाता है कि मेरे तीन गुण ही समस्त कर्म कर रहे हैं, मैं करने वाला नहीं हूं; गुण ही कर रहे हैं, करवा रहे हैं... ।
कठिन है। क्योंकि अहंकार को कोई जगह न रह जाएगी। इसलिए अहंकार बाधा बनेगा। अहंकार कहेगा, कौन कहता है कि धन मैं नहीं कमा रहा हूं? धन मैं कमा रहा हूं। हालांकि आपको पता नहीं है, आपके भीतर जो लोभ का गुण है, वे जो लोभ के परमाणु हैं, वे आपको धक्का दे रहे हैं। लेकिन आप सोचते हैं, मैं धन कमा रहा हूं। धन के लिए तो आपके भीतर लोभ के परमाणु दौड़ा रहे हैं। लेकिन यह आप जो मैं-भाव निर्मित करते हैं, यह बिल्कुल थोथा है, यह झूठा है।
आप कहते हैं, मैं प्रेम में पड़ रहा हूं। मैं इस स्त्री के प्रेम में पड़ गया हूं। जब कि सिर्फ आपके वासना-कण प्रेम में पड़ गए हैं।
इसलिए जिन लोगों ने सांख्य की इस दृष्टि को ठीक से समझा था, उन्होंने
कई महत्वपूर्ण बातें कही हैं, जो इस युग में समझना मुश्किल हो गई हैं।
कठिन भी है समझना। मगर अगर यह सूत्र ख्याल में आ जाए, तो समझ में आ सकता है।
महावीर ने अपने साधकों को कहा है कि वृद्धा और रुग्ण, मरणशय्या पर पड़ी स्त्री से भी दूर रहना।
इस बात को थोड़ा समझें।

बुद्ध से आनंद पूछता है कि अगर कोई स्त्री मार्ग पर मिल जाए, तो मैं क्या करूं? तो बुद्ध कहते हैं, देखना मत, आंख नीची कर लेना।
आनंद जिद्दी है, वह पूछता है, समझ लो कि ऐसी अवस्था आ जाए कि आंख नीचे करना न हो पाए। कोई ऐसा कारण हो जाए। समझो कि स्त्री बीमार पड़ी हो, प्यासी पड़ी हो, रास्ते के किनारे गिर पड़ी हो, गड्ढे में गिर पड़ी हो। मैं अकेला भिक्षु उस मार्ग पर हूं। और मुझे उस स्त्री को उठाना पड़े या पानी पिलाना पड़े, तो देखना तो पड़ेगा! समझ लो कि कोई ऐसी घटना में मुझे देखना पड़े, तो मैं क्या करूं? तो बुद्ध ने कहा, तू छूना मत।
आनंद ने कहा, ऐसी कोई स्थिति भी हो सकती है भंते, कि मुझे छूना भी पड़े,
तो उस स्थिति में मैं क्या करूं? तो बुद्ध ने कहा, अब तू मानता ही नहीं, तो मैं आखिरी बात कहता हूं, साक्षी-भाव रखना। अगर तुझे यह करना ही पड़े, तो फिर तू होश रखना कि करने वाला तू नहीं है। छूना भी पड़े, तो समझना कि शरीर छू रहा है। देखना पड़े, तो समझना कि आंख देख रही है। इस भ्रांति में मत पड़ना कि मैं देख रहा हूं, कि मैं छू रहा हूं। तो फिर तू आखिरी बात समझ ले कि तू साक्षी- भाव रखना।
महावीर कहते हैं, वृद्ध, रुग्ण, मरणशय्या पर पड़ी कुरूप स्त्री के पास
भी भिक्षु न जाए।
हमें लगेगा, बड़े दमन की बात कर रहे हैं। लेकिन महावीर केवल गुणों की बात कर रहे हैं। महावीर यह कह रहे हैं कि जब तक साक्षी न जग गया हो, जब तक अवस्था साधक की हो, तब तक मरणशय्या पर पड़ी स्त्री के हार्मोन, उसके गुणधर्म भी तुम्हारे भीतर छिपे पुरुष के हार्मोन को आकर्षित करेंगे। वे तुम्हें आकर्षित कर सकते हैं। और साधारण गृहस्थ को शायद न भी करें। लेकिन भिक्षु को कर ही सकते हैं। क्योंकि साधारण गृहस्थ वैसा ही है, जैसे भरा पेट आदमी, भोजन किया हुआ आदमी। उसको रास्ते के किनारे पड़ी हुई जूठन आकर्षित नहीं करेगी। लेकिन उपवासी आदमी को कर सकती है। भूखे आदमी को कर सकती है।
मनु ने कहा है कि अपनी बहन, अपनी बेटी, अपनी मां के साथ भी एकांत में मत रहना बिल्कुल अकेले।
लगते हैं, बड़े दमनकारी लोग हैं। लेकिन उनके सूत्र त्रिगुणों के ऊपर आधारित हैं। वे यह कह रहे हैं, सवाल यह नहीं है कि वह लड़की है तुम्हारी। गहरे में तो वह स्त्री है और तुम पुरुष हो। और हार्मोन न लड़की को जानते हैं, न मां को जानते हैं, न पिता को जानते हैं, न बहन को जानते हैं। हार्मोन की कोई नैतिकता नहीं है। अगर पिता भी पुत्री के साथ एकांत में बहुत दिन हो, तो धीरे-धीरे लड़की स्त्री रह जाएगी, पिता पुरुष रह जाएगा। और उन दोनों की प्रकृति के जो खिंचाव हैं, वे शुरू हो जाएंगे। यह तभी रुक सकता है, जब साक्षी जग गया हो। लेकिन साक्षी कितने लोगों का जगा है?
तो मनु की बात भी बड़ी गहरी है, पर सांख्य के सूत्रों पर खड़ी है। सांख्य बड़ा अनूठा खोजी है। सांख्य की खोज गहरी है। खोज का सार यह है कि आपके भीतर दो तत्व हैं, एक प्रकृति और पुरुष। पुरुष तो आपकी चेतना है और प्रकृति आपकी देह और मन की संघटना है। और जो भी क्रियाएं हैं, वे सब प्रकृति से हो रही हैं। कोई क्रिया चेतना से नहीं निकल रही है।
लेकिन चेतना को यह शक्ति है कि वह क्रियाओं के साथ अपने को जोड़ ले और कहे कि मैं कर रहा हूं। यह संभावना चेतना की है कि वह कहे कि मैं कर रहा हूं। इतना कहते ही संसार निर्मित हो जाता है।
इसलिए सांख्य-सूत्र कहते हैं कि संसार का जन्म अहंकार के साथ है। मैं आया, संसार निर्मित हुआ। मैं गया, संसार विलीन हो गया। जैसे ही मैं गया, उसका अर्थ है कि मैं सिर्फ देखने वाला रह गया।
और ध्यान रहे, देखना कोई क्रिया नहीं है; द्रष्टा होना कोई क्रिया नहीं है। द्रष्टा होना आपका स्वभाव है। आपको कुछ करना नहीं पड़ता द्रष्टा होने के लिए, द्रष्टा आप हैं।
रात सोते हैं, सपना देखते हैं, तब भी आप द्रष्टा हैं। सुबह उठते हैं एक गहरी नींद के बाद, तो भी आप कहते हैं, बड़ा आनंद आया, नींद बड़ी गहरी थी। इसका मतलब है कि कोई आपके भीतर देखता रहा कि नींद बड़ी गहरी थी। सुबह आप कहते हैं, नींद बड़ी गहरी थी, बड़ा सुख रहा।

जागें, सोएं, सपना देखें, द्रष्टा कायम है। यह द्रष्टा कोई क्रिया नहीं है। यह द्रष्टा आपका सतत स्वभाव है। यह एक क्षण को भी खोता नहीं है। लेकिन इस द्रष्टा को आप कर्ता बना सकते हैं, यह सुविधा है। चाहे इसे सुविधा कहें, चाहे असुविधा। यह स्वतंत्रता है। चाहे इसे स्वतंत्रता कहें, और चाहे समस्त परतंत्रता का मूल। क्योंकि इसी स्वतंत्रता के गलत उपयोग से संसार निर्मित होता है। और इसी स्वतंत्रता के सही उपयोग से मोक्ष निर्मित हो जाता है।
मोक्ष है आपकी स्वतंत्रता का ठीक उपयोग। संसार है आपकी स्वतंत्रता का गलत उपयोग। आपकी चेतना प्रतिपल मात्र साक्षी है।
जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है... ।
बस, ये तीन ही गुण कर रहे हैं। कोई और चौथा मेरे भीतर कर्ता नहीं है।
अर्थात गुण ही गुणों में बर्तते हैं... ।
गुण ही गुणों के साथ वर्तन कर रहे हैं; एक्शन-रिएक्शन कर रहे हैं।
मेरे भीतर का पुरुष-गुण किसी के स्त्री-गुण का पीछा कर रहा है। मेरे भीतर का क्रोध का गुण किसी के ऊपर क्रोध बरसा रहा है। मेरे भीतर हिंसा का गुण किसी के प्रति हिंसा से भर रहा है।
कृष्ण यह कह रहे हैं अर्जुन से कि यह जो भी युद्ध हो रहा है, यह भी तीन गुणों का वर्तन है। इसमें उस तरफ खड़े लोग भी उन्हीं गुणों से सक्रिय हो रहे हैं। इस तरफ खड़े लोग भी उन्हीं गुणों से सक्रिय हो रहे हैं। और अगर तू भागेगा, तो तू यह मत सोचना कि तूने संन्यास लिया। अगर तेरे भीतर भागने के परमाणु हों, तो तू भाग सकता है। लेकिन तब भी यह तू जानना कि ये गुण ही बर्त रहे हैं। तू इस भ्रांति में मत पड़ना... । जो भी हो, तू एक बात ख्याल रखना कि तू देखने वाला है।
गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा जो देखता है और तीनों गुणों से अतीत--तीनों गुणों के पार, बियांड--तीनों गुणों से ऊपर, दूर, अतीत, सच्चिदानंदघनस्वरूप मुझ परमात्मा को तत्व से जानता है... ।
प्रत्येक के भीतर इन तीन तत्वों के पीछे छिपा हुआ कृष्ण है। ब्रह्म कहें, क्राइस्ट कहें, बुद्ध कहें, जो भी कहना हो। इन तीनों तत्वों के भीतर छिपा हुआ आपका परम स्वभाव है, परम ब्रह्म है।
जो भी इन तीन गुणों को कर्ता की तरह जानता है, और इन तीनों के परे मुझ सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा को पहचानता है, उस काल में वह पुरुष मुझे प्राप्त हो जाता है।
वह प्राप्त है ही। सिर्फ यह प्रत्यभिज्ञा, यह रिकग्नीशन, यह पहचान प्राप्ति बन जाती है। इस क्षण भी आप आंख मोड़ लें गुणों से और गुणों के पीछे सरककर एक झलक ले लें, तो जो मोक्ष बहुत दूर दिख रहा है, वह जरा भी दूर नहीं है। सिर्फ मुड़कर देखने की बात है।
जो परमात्मा बड़ा जटिल मालूम पड़ता है, जिस पर भरोसा नहीं आता, तर्क जिसे सिद्ध नहीं कर पाता, जिस पर बड़ा अविश्वास और संदेह पैदा होता है, हजार चिंताएं मन में पकड़ती हैं कि परमात्मा कैसे हो सकता है! वह परमात्मा इतना निकट है कि जितनी देर परमात्मा शब्द कहने में लगती है, उतनी देर भी उसे पाने में लगने का कोई कारण नहीं है। मगर एक अबाउट टर्न, एक पूरा घूम जाना; जहां पीठ है, वहां चेहरा हो जाए; और जहां चेहरा है, वहां पीठ हो जाए।
अभी हमारा चेहरा गुणों की तरफ है। कभी इस गुण में, कभी उस गुण में, कभी तीसरे गुण में हम उलझे हैं। और गुण का जो खेल है, जाल है, वह जाल हम अपना समझ रहे हैं।
रामकृष्ण के पास एक भक्त आता था। और वह भक्त जब काली के दिन आते, तो कई बकरे कटवाता था। बड़ा समारोह मचाता था। उसकी बड़ी गणना थी भक्तों में, बड़े भक्तों में। फिर अचानक उसने पूजा-भक्ति सब छोड़ दी, बकरे कटने बंद हो गए। तो एक दिन रामकृष्ण ने उससे पूछा कि क्या हुआ? क्या भक्ति-भाव जाता रहा? क्या अब काली में श्रद्धा न रही? उसने कहा, नहीं, यह बात नहीं। आप देखते नहीं, दांत ही सब गिर गए।
वह आदमी बड़ा ईमानदार रहा होगा। वह बकरे वगैरह काली के लिए कोई काटता है! काली तो बहाना है, तरकीब है। बकरे तो अपने ही दांतों के लिए काटे जाते

हैं। लेकिन उसने कहा कि दांत ही न रहे, दांत ही गिर गए, अब क्या काटना और क्या नहीं काटना! किसके लिए काटना?
लेकिन वह आदमी ईमानदार रहा होगा। उसने एक बात तो कम से कम समझी कि यह
सब दांतों के लिए चल रहा था।
बुढ़ापे में लोग शीलवान हो जाते हैं। बुढ़ापे में लोग सच्चरित्रता की बात करने लगते हैं। बुढ़ापे में दूसरे लोगों को समझाने लगते हैं कि जवानी सब रोग है। जब वे जवान थे, तो उनके घर के बड़े-बूढ़े भी उन्हें यही समझा रहे थे कि जवानी सब रोग है। उन्होंने उनकी नहीं सुनी। उनके बेटे भी उनकी नहीं सुनेंगे।
और बड़ा मजा यह है कि जब आपने अपने बाप की नहीं सुनी, तो आप किस भ्रांति में हैं कि अपने बेटे को सोच रहे हैं, सुन ले। किसी बेटे ने कभी नहीं सुनी। क्योंकि जवानी सुनती ही नहीं। और बुढ़ापा बोले चला जाता है। बुढ़ापा समझाए चला जाता है। क्योंकि बुढ़ापा अब कुछ और कर नहीं सकता। करने के दिन गए। वह जिन तत्वों से करना निकलता था, वे क्षीण हो गए।
और बड़े मजे की बात है, जब आप नहीं कर सकते, तब भी आपको यह ख्याल नहीं आता कि शरीर के गुणधर्म क्षीण हो गए हैं, जिससे आप नहीं कर सकते हैं। जब आप कर सकते थे, तब आप सोचते थे, मैं कर रहा हूं। और जब आप नहीं कर सकते, तब आप सोचते हैं कि मैंने त्याग कर दिया! जब आप नहीं कर सकते, तब आप सोचते हैं, मैंने त्याग कर दिया!
बूढ़े अक्सर सोचते हैं कि वे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गए हैं। अन्यथा उपाय क्या था? मजबूरी को ब्रह्मचर्य समझ लें, तो भ्रांति जारी रहती है। उचित यही होगा कि समझें कि जिन गुणधर्मों से, जिस प्रकृति के तत्व से वासना उठती थी, वे तत्व क्षीण हो गए, जल गए। जब वे जग रहे थे तत्व, सजग थे, तेज थे, दौड़ते थे, तब आप उनका पीछा कर रहे थे। तब भी आप कर्ता नहीं थे। और अब भी आप कर्ता नहीं हैं। लेकिन वासना के दिन में समझा था कि मैं कर्ता हूं। मैं हूं जवान। और बुढ़ापे के दिन में समझ रहे हैं कि मैं हूं त्यागी, मैं हूं ब्रह्मचारी। दोनों भ्रांतियां हैं।
अगर आप देख पाएं कि सारा खेल प्रकृति का है और आप उसके बीच में सिर्फ खड़े हैं देखने वाले की तरह, एक क्षण को भी कर्तृत्व आपका नहीं है; आप मुक्त हो गए। यह जानते ही कि मैं कर्ता नहीं हूं, बंधन गिर गए। यह पहचानते ही कि मैंने कभी कुछ नहीं किया है, सारे कर्मों का जाल टूट गया।
कर्म आपको नहीं बांधे हुए हैं। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि जन्मों-जन्मों के कर्म पकड़े हुए हैं। कोई कर्म आपको नहीं पकड़े हुए है, कर्ता पकड़े हुए है। कर्ता के छूटते ही सारे कर्म छूट जाएंगे। क्योंकि जिसने किए थे, जब वह ही न रहा, तो कर्म कैसे पकड़ेंगे? कर्म नहीं पकड़ता, कर्ता पकड़ता है। और कर्ता के कारण जन्मों-जन्मों के कर्म इकट्ठे रहते हैं, उनका बोझ आप ढोते हैं।
कई लोग मुझसे यह भी पूछने आते हैं कि पिछले किए हुए कर्मों को कैसे काटें?
एक तो उनको किया नहीं कभी। अब उनको काटने का कर्म करने की कोशिश चल रही है! उनको कैसे काटें? जिनको किया ही नहीं, उनको अनकिया कैसे करिएगा? वह भ्रांति थी कि आपने किया। अब आप एक नई भ्रांति चाहते हैं कि उनको हम काटने का कर्म कैसे करें! पहले संसारी थे, अब संन्यासी कैसे हों?
संन्यास का कुल मतलब इतना है कि करने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ देखने
को है। अब करने वाला मैं नहीं हूं, सिर्फ देखने वाला हूं। फिर जो भी हो रहा हो, उसे देखते रहना है सहज भाव से, उसमें कोई बाधा नहीं डालनी है।
शास्त्र कहते हैं कि ज्ञानी अगर ब्राह्मण की भी हत्या कर दे, तो उस पर कोई पाप नहीं है। अंबेदकर ने बड़ा एतराज उठाया। क्योंकि यह बात बड़ी अजीब है; और भी कोई सोचेगा, तो एतराज उठाएगा। इस तरह की छूट ज्ञानी को देनी कैसे संभव है? कानून सबके लिए है; नियम सबके लिए है।
और इसमें कहा है कि ज्ञानी अगर ब्राह्मण की भी हत्या कर दे, उसे कोई पाप नहीं है! और अज्ञानी? किसी शास्त्र में लिखा नहीं है, लेकिन कहीं न कहीं लिखना जरूर चाहिए। अज्ञानी अगर पुतला भी बनाकर मिट्टी का काट दे, मैं मानता हूं, पाप है। फर्क समझ लेना जरूरी है।

ज्ञानी हम कहते उसे हैं, जो कहता है, मैं कर्ता नहीं हूं। अगर वह काट
भी रहा हो, तो सिर्फ उसके गुण ही काट रहे हैं, वह नहीं काट रहा है। और उस हत्या के कृत्य में भी वह सिर्फ साक्षी है। जरूरी नहीं कि ज्ञानी ऐसा करे; आवश्यकता भी नहीं है। ज्ञानी होते-होते वस्तुतः भीतर के सारे तत्व धीरे- धीरे समस्वरता को उपलब्ध हो जाते हैं। ऐसी घटना शायद ही कभी घटती है। लेकिन घट सकती है।
उस संभावना को मानकर यह शास्त्रों में सूत्र है कि अगर ब्राह्मण को
भी काट दे! और ब्राह्मण को काटने का मतलब है, क्योंकि ब्राह्मण का मतलब है, जिसने इस जीवन में श्रेष्ठतम, सुंदरतम जीवन-दशा पा ली हो, उसको भी काट दे, अच्छे से अच्छे फूल को भी मिटा दे, तो भी उसे कोई पाप नहीं है।
पाप इसलिए नहीं है कि वह जानता है कि मैं कर्ता नहीं हूं। और आप किसी
की तस्वीर भी फाड़ दें क्रोध से, मिट्टी का पुतला बनाकर काट दें... । ऐसा अज्ञानी करते भी हैं। किसी का पुतला बनाकर निकालेंगे जुलूस, उसको जला देंगे। उनका भाव बड़ी गहरी हिंसा का है। और जलाते वक्त उनके मन में पूरा भाव है कर्ता का कि हम मारे डाल रहे हैं।
मैं कर्ता हूं, तो मैं पापी हो जाता हूं। मैं कर्ता नहीं हूं, तो पाप
का कोई कारण नहीं है। इसलिए हमने ज्ञानी को समस्त नियमों के पार रखा है। कोई नियम उस पर लगते नहीं। वह नियमातीत है। इसीलिए नियमातीत है कि जब कर्तृत्व उसका कोई न रहा, तो सब नियम कर्म पर लगते हैं और कर्ता पर लगते हैं। साक्षी पर कोई नियम कैसे लग सकता है?
जैसे ही कोई तीन गुणों के सारे कर्म हैं, ऐसा जानता है, और स्वयं को साक्षी, वह मुझ सच्चिदानंदनघनरूप परमात्मा को तत्व से पहचान लेता है, उस काल में वह पुरुष मुझे प्राप्त हो जाता है।
तथा यह पुरुष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके... ।
इस शरीर के जन्म के कारण वे तीनों गुण ही हैं। और उन तीनों गुणों के साथ मेरा तादात्म्य है, वही मुझे नए शरीरों को ग्रहण करने में ले जाता है। जो उनका उल्लंघन कर जाता है, वह जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, सब प्रकार
के दुखों से मुक्त हुआ परमानंद को प्राप्त होता है।
इसमें हमें समझ में आ जाएगा कि हो सकता है, उसका नया जन्म न हो। यह भी समझ में आ सकता है कि उसे दुख न हो। लेकिन मृत्यु न होगी, यह कैसे समझ में आएगा!
महावीर भी मरते हैं, बुद्ध भी मरते हैं, कृष्ण खुद भी मरते हैं। मृत्यु तो होगी, लेकिन जिसने भी जान लिया कि मैं साक्षी हूं, वह मृत्यु का भी साक्षी रहेगा। तो वह देखेगा कि गुण ही मर रहे हैं; गुणों का जाल शरीर ही मर रहा है, मैं नहीं मर रहा हूं। उसकी वृद्धावस्था संभव नहीं है। असल में उसकी कोई अवस्था संभव नहीं है।
जवान होकर वह जवान नहीं रहेगा। बूढ़ा होकर बूढ़ा नहीं रहेगा। बच्चा होकर बच्चा नहीं रहेगा। क्योंकि अब सब अवस्थाएं गुणों की हैं। बचपन गुणों का एक रूप है। जवानी गुणों का दूसरा रूप है। बुढ़ापा गुणों का तीसरा रूप है। और वह तीनों के पार है। इसलिए न वह बच्चा है, न जवान है, न बूढ़ा है। किसी अवस्था में नहीं है। सभी अवस्थाओं के पार है।
इस ट्रांसेंडेंस को, इस भावातीत अवस्था को अनुभव कर लेना मुक्ति है। इसलिए कृष्ण ने कहा कि अर्जुन जिस ज्ञान से परम सिद्धि उपलब्ध होती है, वह मैं तुझे फिर से कहूंगा। वे फिर-फिरकर, कैसे व्यक्ति अपनी परम मुक्ति को इसी क्षण अनुभव कर ले सकता है, उसके सूत्र दे रहे हैं।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
आठवां प्रवचन

संन्यास गुणातीत है

अर्जुन उवाच
कैर्लिड्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते।। 21।।
श्रीभगवानुवाच
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काड्क्षति।। 22।।
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेड्गते।। 23।।
अर्जुन ने पूछा कि हे पुरुषोत्तम, इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है? और किस प्रकार के आचरणों वाला होता है? तथा हे प्रभो, मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत होता है?
इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है।
तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया
जा सकता है और गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है।

पहले प्रश्न।
पहला प्रश्नः साक्षी, द्रष्टा, चैतन्य सदा ही अलग कुंवारा और अनबंधा है। और सारी जीवन-लीला गुणों का ही स्वयं में वर्तन है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति से सत्व, रज, तम के गुणों को वैज्ञानिक या रासायनिक ढंग से शांत कर दिया जाए या व्यक्ति को सात्विक बना दिया जाए, तो क्या वह उस हमेशा से मुक्त साक्षी को उपलब्ध हो जाएगा? यदि साक्षी सदा ही मुक्त एवं उपस्थित है, तो त्रिगुणों को रासायनिक ढंग से बदल देने पर वह क्या प्रकट न हो जाएगा? क्या व्यक्ति तब धार्मिक नहीं हो जाएगा? त्रिगुणों से उत्पन्न समस्या को रासायनिक ढंग से हल करने में या साधना के माध्यम से हल करने में क्या मौलिक भिन्नता है?

प्रश्न महत्वपूर्ण है और बहुत गहरे से समझने की जरूरत है। इसलिए महत्वपूर्ण है कि पश्चिम में वैज्ञानिक उन विधियों को खोज लिए हैं, जिनसे मनुष्य का रासायनिक परिवर्तन हो सकता है, जिनसे मनुष्य के शारीरिक गुणधर्म बदले जा सकते हैं। और निश्चित ही, उसका आचरण भिन्न हो जाएगा। आपके भीतर क्रोध का जो विषाक्त रासायनिक द्रव्य है, वह अलग किया जा सकता है। उसके विपरीत तत्व आपके शरीर में डाले जा सकते हैं, जो आपके आचरण को सौम्य और शांत बना देंगे। लेकिन ध्यान रखें, आचरण को, आपको नहीं।
आपकी कामवासना को बिना किसी साधना के, मात्र शारीरिक परिवर्तन से क्षीण किया जा सकता है; नष्ट भी किया जा सकता है। वासना जगाई भी जा सकती है, मिटाई भी जा सकती है।
यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है कि पश्चिम में अब हमारे पास साधन उपलब्ध हैं पहली दफा मनुष्यता के इतिहास में, जब हम आदमी को बिना साधना में उतारे भी आचरण की दृष्टि से बदल सकते हैं। लेकिन यह बदलाहट ऊपरी होगी, और इस बदलाहट से कोई आत्मिक उत्थान नहीं होगा। बल्कि आत्मिक उत्थान की सारी संभावना ही नष्ट हो जाएगी। उत्थान तो होगा ही नहीं, जिन परिस्थितियों के कारण उत्थान हो सकता था, वे परिस्थितियां भी मिट जाएंगी।

आपके भीतर क्रोध दो घटनाओं पर निर्भर है। एक तो आपके शरीर में क्रोध
के परमाणु चाहिए, हार्मोन चाहिए, रस चाहिए। और दूसरा, इन रसों के साथ चेतना को जोड़ने का तादात्म्य और भ्रांति चाहिए। इन दो बातों पर निर्भर है। कामवासना के लिए आपके शरीर में काम के तत्व चाहिए, और उन काम के तत्वों से जुड़ने की आकांक्षा चाहिए, एक होने की आकांक्षा चाहिए। अगर काम के तत्व भीतर न हों, तो आप जुड़ना भी चाहें तो भी जुड़ न सकेंगे; कामवासना में उतरना चाहें, तो भी उतर न सकेंगे। इसलिए आचरण आपका ब्रह्मचारी जैसा हो जाएगा। यद्यपि वह ब्रह्मचर्य नपुंसकता का दूसरा नाम होगा। लेकिन भीतर कोई क्रांति घटित न होगी।
यह ऐसे ही है, जैसे मेरे हाथ में तलवार हो। तलवार के बिना मैं किसी की गर्दन न काट पाऊंगा। तलवार मेरे हाथ से छीन ली जाए, तो मैं गर्दन नहीं काट पाऊंगा। इसलिए मेरा आचरण तो भिन्न हो जाएगा। गर्दन काटने का उपाय न होगा। लेकिन गर्दन सिर्फ तलवार के कारण मैं नहीं काट रहा था। तलवार तो केवल उपकरण थी। भीतर मैं था, हिंसा से भरा हुआ। भीतर मेरी वृत्ति थी दूसरे को नष्ट करने की, वह मेरे भीतर मौजूद रहेगी।
तलवार भी मेरे हाथ में हो और भीतर मेरी वृत्ति न रह जाए, तो मैं गर्दन नहीं काटूंगा। गर्दन काटने के लिए दो चीजें जरूरी हैं, मेरे भीतर मूर्च्छा चाहिए और हाथ में तलवार चाहिए। और जब इन दोनों का संयोग हो जाएगा, तो गर्दन कटेगी। इन दो में से एक भी हटा लिया जाए, तो आचरण बदल जाएगा।
अगर भीतर का तत्व हटा लिया जाए, तो आचरण भी बदलेगा और आत्मा भी बदलेगी। अगर बाहर का तत्व हटा लिया जाए, तो केवल आचरण बदलेगा, आत्मा नहीं बदलेगी। और आत्मिक क्रांति आचरण के बदलने से नहीं होती। आत्मिक क्रांति आत्मा के बदलने से होती है। आचरण तो केवल छाया की भांति है।
इस बात पर हमारा जोर नहीं है कि आपके आचरण में ब्रह्मचर्य हो। जोर इस बात पर है कि आपके भीतर ब्रह्मचर्य हो। वह भीतर का ब्रह्मचर्य बाहर के ब्रह्मचर्य को छाया की भांति ले आएगा। लेकिन रासायनिक प्रक्रियाओं से आपका आचरण बदला जा सकता है। भीतर आप वही होंगे, क्योंकि आपकी आत्मा कोई साक्षी-भाव को उपलब्ध नहीं हो जाएगी।
और ध्यान रहे, साक्षी-भाव किसी रासायनिक द्रव्य पर निर्भर नहीं है। ऐसा कोई रासायनिक तत्व नहीं है, जिसका इंजेक्शन देने से आप में साक्षी-भाव पैदा हो जाए। साक्षी-भाव तो आपको साधना होगा; क्रमशः उपलब्ध करना होगा। वह लंबे संघर्ष का परिणाम होगा, निष्पत्ति होगी। साक्षी-भाव तो एक आंतरिक ग्रोथ, विकास है।
रासायनिक द्रव्यों से आचरण बदला जा सकता है। इसलिए ध्यान रखें, जो लोग धर्म को मात्र आचरण समझते हैं, उनका धर्म दुनिया में ज्यादा दिन टिकेगा नहीं। क्योंकि जिन-जिन बातों को वे धर्म कहते हैं, वह तो वैज्ञानिक कर सकेगा। ऐसा धर्म तो मरने के कगार पर पहुंच गया है। मैं जिसे धर्म कहता हूं, वही टिक सकता है भविष्य में।
जो लोग कहते हैं, अच्छा आचरण धार्मिकता है, उनके धर्म का अब कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अच्छा आचरण तो अब इंजेक्शन से भी पैदा हो सकेगा। जिसको वे कहते हैं कि बुरा आचरण मिटाने का एक ही उपाय धर्म है, वह भी गलत है। पश्चिम में बहुत-से वैज्ञानिक प्रस्ताव कर रहे हैं कि अपराधियों को दंडित करना बंद कर दिया जाए। वह भ्रांति है। अपराधियों की रासायनिक चिकित्सा की जाए। वे अपराध करते हैं, क्योंकि उनके भीतर कोई तत्व है रासायनिक, जो विक्षिप्त हालत पैदा कर देता है। उसे बदल दिया जाए। फांसी देना फिजूल है। वर्षों तक उनको जेल में रखना व्यर्थ है। उससे उनका कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं हो रहा है। बल्कि वे और भी निष्णात और पक्के अपराधी होकर वापस लौटेंगे। बाहर तो वे प्रशिक्षित नहीं थे, भीतर उनको बड़े गुरु उपलब्ध हो जाएंगे।
एक आदमी चोरी करता है। वह अकेला चोरी कर रहा है। नया-नया है। पकड़ में
भी आ जाता है। जब आप उसे पांच साल जेल में रख देते हैं, तो वहां हजार उस्तादों के शिक्षण में रहने का मौका मिल जाता है, जो पुराने अभ्यासी हैं।

वह पांच साल की जेल के बाद ज्यादा कुशल चोर होकर बाहर निकलता है। उसे पकड़ना और मुश्किल हो जाएगा।
किसी को सजा देने से कोई उसके भीतर का परिवर्तन तो होता नहीं; बाहर का
भी परिवर्तन नहीं होता। सिर्फ उसकी आत्मा और भी कठोर हो जाती है, और भी बेशर्म हो जाती है।
ज्यादा देर नहीं लगेगी कि वैज्ञानिक राजनीतिज्ञों को राजी कर लेंगे। चीन में, रूस में राजनैतिक अपराधियों के साथ ये प्रयोग शुरू हो गए हैं। रूस में स्टैलिन के समय तक जो भी राजनैतिक विरोधी होता, उसकी वे हत्या कर डालते थे। अब वे हत्या नहीं करते हैं। अब राजनैतिक विरोधी को सिर्फ अस्पताल से वे पागल करार दे देते हैं। जो कि ज्यादा खतरनाक है। चिकित्सक लिखकर दे देते हैं कि इसके मस्तिष्क में खराबी है।
इतना लिखना काफी है। फिर उसे पागलखाने में डाल दिया जाता है। और पागलखाने में उसके मस्तिष्क का इलाज शुरू कर दिया जाता है। वह इलाज... । वह न तो आदमी पागल है, न उसको कोई रोग है, न कोई मानसिक विक्षिप्तता है। लेकिन इलाज यह है कि उसके भीतर जो-जो तत्व बगावती हैं, उनको धीरे-धीरे शांत कर दिया जाएगा।
एक चार-छः महीने के बाद वह आदमी बाहर आ जाता है। उसकी जो बगावत थी, विद्रोह था, सरकार के विपरीत सोचने की दशा थी, वह टूट जाती है। वह ज्यादा डोसाइल, ज्यादा आज्ञाकारी, अनुशासनबद्ध हो जाता है। यह मारने से भी बुरा है।
देलगाडो ने सुझाव दिया है सारी दुनिया की सरकारों को, कि आप युद्ध बंद नहीं कर सकते, अपराध बंद नहीं कर सकते। और पांच हजार साल का मनुष्य-इतिहास कह रहा है कि कितना ही समझाओ, आदमी को बदला नहीं जा सकता। मेरा सुझाव मान लिया जाए।
देलगाडो का सुझाव यह है कि ऐसे तत्व विज्ञान ने खोज लिए हैं, जिनको सिर्फ पानी में मिला देने की जरूरत है हर नगर की झील में। और आपके घर में पानी तो आ ही रहा है झील से पीने के लिए। उस पानी को पीकर ही आप अपने आप लड़ने की वृत्ति से शून्य हो जाएंगे।
लेकिन ध्यान रहे, इस तरह के शामक रासायनिक द्रव्य को पीकर जो लड़ने की वृत्ति से शांत हो जाएगा, वह बुद्ध या महावीर नहीं हो जाएगा। उसमें कोई बुद्ध की गरिमा प्रकट नहीं होगी। उसमें तो क्रोध की जो थोड़ी-बहुत गरिमा प्रकट होती थी, वह भी बंद हो जाएगी। वह केवल निर्जीव हो जाएगा। वह सुस्त और हारा हुआ लगेगा। जैसे उसके भीतर से प्राण खींच लिए गए हों। वह नींद-नींद में चलेगा। लड़ेगा नहीं, क्योंकि लड़ने के लिए भी जितनी ऊर्जा चाहिए, वह भी उसके पास नहीं है।
सिर्फ न लड़ने से कोई बुद्ध नहीं होता। बुद्ध होने से न लड़ना निकलता है, तब एक गौरव है, गरिमा है। जब आप भीतर इतने ऊंचे शिखर को छू लेते हैं कि लड़ना क्षुद्र हो जाता है, व्यर्थ हो जाता है।
एक तो उपाय यह है कि बिजली का बल्ब जल रहा है, हम एक डंडा मारकर इसे तोड़ दें। बल्ब टूट जाएगा, बिजली लुप्त हो जाएगी। लेकिन आप डंडा मारकर बिजली को नष्ट नहीं कर रहे हैं। आप सिर्फ अभिव्यक्ति के माध्यम को तोड़ रहे हैं। बल्ब टूट गया, बिजली तो अभी भी धारा की तरह बही जा रही है। और जब भी बल्ब आप उपलब्ध कर देंगे, बिजली फिर जल उठेगी। आपने बिजली नहीं तोड़ी, केवल बिजली के प्रकट होने की जो व्यवस्था थी, वह तोड़ दी है। बिजली अभी भी बह रही है। ये जो आपके शरीर के परमाणु हैं, रासायनिक परमाणु हैं, ये केवल अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। इनको हटा लिया जाए, तो आपके भीतर जो छिपा हुआ है, वह प्रकट होना बंद हो जाएगा। फिर से डाल दिया जाए, फिर प्रकट होने लगेगा।
साधना का अर्थ है कि हम बिजली की धारा को ही विलीन कर रहे हैं, बल्ब को नहीं तोड़ रहे हैं। बल्ब को तोड़ने का कोई अर्थ ही नहीं है। बल्कि बल्ब तो उपयोगी है। क्योंकि वह बताता है, धारा बह रही है या नहीं; धारा है या नहीं। आपके भीतर क्रोध यह बताता है कि अभी आप अज्ञान में डूबे हैं। वासना बताती है कि अभी आपके प्राण जागरूक नहीं हुए हैं। अगर ये तत्व हमने अलग कर लिए, तो क्रोध प्रकट होना बंद हो जाएगा और आपको यह पता चलना भी बंद हो

जाएगा कि आप गहन अज्ञान में पड़े हैं। यह तो ऐसा हुआ, जैसे कोई आदमी बीमार हो और हम उसके बीमारी के लक्षण छीन लें, तो उसे यह भी पता न चले कि वह बीमार है।
और यह भी ख्याल में रहे कि क्रोध एक अवसर है। क्रोध सिर्फ बुरा है, ऐसा नासमझ कहते हैं; मैं नहीं कहता। क्रोध एक अवसर है, उसका आप बुरा उपयोग कर सकते हैं और भला भी। क्रोध एक मौका है। उसमें आप मूर्च्छित होकर पागल हो सकते हैं; उसी में आप जागरूक होकर बुद्धत्व को प्राप्त कर सकते हैं।
तो अवसर को तोड़ देना उचित नहीं है। जब क्रोध आप में उठता है, अगर आप क्रोध के साथ तादात्म्य कर लेते हैं, एक हो जाते हैं, तो आप किसी की हत्या कर बैठते हैं। लेकिन अगर आप क्रोध को सजग होकर देखते रहें, तो जो क्रोध किसी की हत्या बन सकता था, वही क्रोध आपके भीतर नवजीवन का जन्म बन जाएगा। सिर्फ आप साक्षी होकर देखते रहें। क्रोध का धुआं उठेगा। बादल घने होंगे। लेकिन आप दूर खड़े रहेंगे, आप मुक्त होंगे, पार होंगे, अलग होंगे।
यह अलग होने का अनुभव, क्रोध से ही अलग होने का अनुभव नहीं, शरीर से अलग होने का अनुभव बन जाएगा। क्योंकि क्रोध शरीर के गुणों में पैदा हो रहा है।
वासना उठेगी, काम उठेगा, वे भी शरीर के गुणों की परिणतियां हैं, उनका
ही वर्तन हैं। असली सवाल यह है कि हम उनके साथ सहयोग करके उनमें बह जाएं या उनके साथ सहयोग तोड़कर साक्षी की तरह खड़े हो जाएं? हम उनके गुलाम हो जाएं या हम उनके मालिक हो जाएं? हम उन्हें देखें खुली आंखों से या अंधे होकर उनके पीछे चल पड़ें?
अवसर को मिटा देना खतरनाक है। इसलिए मैं मानता हूं कि अगर वैज्ञानिकों की सलाह मान ली गई, तो लोगों का आचरण तो अच्छा हो जाएगा, लोगों का व्यवहार तो अच्छा हो जाएगा, लेकिन आत्माएं बिल्कुल खो जाएंगी। वह दुनिया बड़ी रंगहीन होगी, बेरौनक होगी। उसमें न तो हिटलर जैसा क्रोधी होगा, न स्टैलिन जैसा हत्यारा होगा। नहीं होगा। उसमें बुद्ध जैसा शांत प्रज्ञा- पुरुष भी नहीं होगा। उसमें सोए हुए लोग होंगे, झोम्बी की तरह--बेहोश, मूर्च्छा में चलते हुए, सम्मोहित, यंत्रवत।
अगर आप क्रोध नहीं कर सकते, तो ध्यान रखें, आप करुणा भी नहीं कर पाएंगे। क्योंकि करुणा क्रोध के प्रति साक्षी हो जाने से पैदा होती है। और अगर आपके भीतर कामवासना तोड़ दी जाए शारीरिक ढंग से, रासायनिक ढंग से, तो आपके भीतर प्रेम का भी कभी उदय नहीं होगा। क्योंकि प्रेम कामवासना का ही शुद्धतम रूपांतरण है।
आपके भीतर से बुरा मिटा दिया जाए, तो भला भी मिट जाएगा। आपसे अपराध नहीं होगा, यह पक्का है, लेकिन आपमें साधुता का भी जन्म नहीं होगा। और आपके भीतर परमहंस होने की जो संभावना है, वह सदा के लिए लोप हो जाएगी।
इसलिए रासायनिक परिवर्तन से कोई क्रांति होने वाली नहीं है। वास्तविक परिवर्तन चेतना का परिवर्तन है, शरीर का नहीं।
और जो भी बुराइयां हैं, उनसे भयभीत न हों, परेशान न हों। सभी बुराइयां
इस भांति उपयोग की जा सकती हैं कि सृजनात्मक हो जाएं। ऐसी कोई भी बुराई नहीं है, जो खाद न बन जाए, और जिससे भलाई के फूल न निकल सकें। और बुराई को खाद बना लेना भलाई के बीजों के लिए, उस कला का नाम ही धर्म है।
जीवन में जो भी उपलब्ध है, उसका ठीक-ठीक सम्यक उपयोग जो भी व्यक्ति जान लेता है, उसके लिए जगत में कुछ भी बुरा नहीं है। वह तमस से ही प्रकाश की खोज कर लेता है। वह रजस से ही परम शून्यता में ठहर जाता है। वह सत्व से गुणातीत होने का मार्ग खोज लेता है।
और ध्यान रहे, विपरीत मौजूद है, वह आपकी परीक्षा है, कसौटी है, चुनौती है, निकष है। उस विपरीत को नष्ट कर देने पर मनुष्य की सारी गरिमा मर जाएगी।
मनुष्य का गौरव यही है कि वह चाहे तो नरक जा सकता है और चाहे तो स्वर्ग।
अगर नरक जाने के सब द्वार तोड़ दिए जाएं, तो साथ ही स्वर्ग जाने की सब सीढ़ियां गिर जाएंगी।
ध्यान रहे, जिस सीढ़ी से हम नीचे उतरते हैं, उसी से हम ऊपर चढ़ते हैं।
सीढ़ियां दो नहीं हैं। आप इस मकान तक सीढ़ियां चढ़कर आए हैं। जिन सीढ़ियों से चढ़कर आए हैं, उन्हीं से आप उतरेंगे भी। इस डर से कि कहीं सीढ़ियों से कोई

नीचे न उतर जाए, हम सीढ़ियां तोड़ सकते हैं। लेकिन ध्यान रहे, तब ऊपर चढ़ने का उपाय भी समाप्त हो गया।
नरक उसी सीढ़ी का नाम है, जिसका स्वर्ग। फर्क सीढ़ी में नहीं है; फर्क दिशा में है। जब आप कामवासना के प्रति अंधे होकर उतरते हैं, तो आप नीचे की तरफ जा रहे हैं। और जब कामवासना के प्रति आप आंख खोलकर सजग होकर खड़े हो जाते हैं, तो आप ऊपर की तरफ जाने लगे। मूर्च्छा अधोगमन है, साक्षीत्व ऊर्ध्वगमन है।
साधना का कोई परिपूरक नहीं है, कोई सब्स्टीट्यूट नहीं है, और न कभी हो सकता है। कोई सूक्ष्म उपाय नहीं है, जिससे आप साधना से बच सकें। साधना से गुजरना ही होगा। बिना उससे गुजरे आपका निखार पैदा नहीं होता। बिना उससे गुजरे आपके भीतर वह केंद्र नहीं जन्मता, जिस केंद्र के आधार पर ही जीवन की परम संपदा पाई जा सकती है।

दूसरा प्रश्नः सात्विक कर्म भी अगर बांधता है, तो उसका फल ज्ञान और वैराग्य क्यों कहा गया है?

क्योंकि ज्ञान और वैराग्य भी बांध सकता है।
निश्चित ही, कृष्ण की बात उलटी मालूम पड़ती है। सात्विक कर्म का फल है, ज्ञान और वैराग्य। और कृष्ण यह भी कहते हैं कि सात्विक कर्म भी बांधता है। लेकिन साधारणतः तथाकथित साधु-संत समझाते हैं कि वैराग्य मुक्त करता है, ज्ञान मुक्त करता है।
तो कृष्ण सात्विक कर्म के जो फल बता रहे हैं, उन्हें तो साधारणतः लोग समझते हैं कि वे मुक्त करने वाले हैं। लेकिन ध्यान रहे, सात्विक कर्म से जो भी पैदा होगा, उसकी भी बांधने की संभावना है। आप ज्ञान से भी बंध सकते हैं।
इसलिए उपनिषद कहते हैं, जो कहता हो मैं आत्मज्ञानी हूं, समझना कि वह आत्मज्ञानी नहीं है। जो कहता हो कि मैं वैराग्य को उपलब्ध हो गया हूं, समझना कि उसका राग वैराग्य से हो गया है।
संन्यास भी गार्हस्थ बन सकता है। आपके हाथ में है। और गृहस्थी भी संन्यास हो सकती है। आपके हाथ में है। अज्ञान भी मुक्तिदायी हो सकता है और ज्ञान भी बंधन बन सकता है। आपके हाथ में है।
उपनिषद कहते हैं कि जो ज्ञानी है, वह तो समझता है, मैं कुछ भी नहीं जानता। साक्रेटीज कहता है कि मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन? लेकिन यह अज्ञान मुक्तिदायी है। ऐसे अज्ञान की प्रतीति का अर्थ हुआ, यह आदमी विनम्र हो गया, आखिरी सीमा तक विनम्र हो गया। अहंकार की आखिरी घोषणा, सूक्ष्मतम घोषणा भी इसके भीतर नहीं रही। यह भी नहीं कहता कि मैं जानता हूं। यह कहता है, मुझे कुछ पता नहीं। मैं हूं नहीं, पता भी किसको होगा!
और यह जगत विराट रहस्य है। इसको जानने का दावा वही कर सकता है, जिसके पास आंखें अंधी हों। यह इतना विराट है कि जिसको भी दिखाई पड़ेगा, वह कहेगा, यह रहस्य है। इसका ज्ञान नहीं हो सकता।
ज्ञान का दावा सिर्फ मूढ़ कर सकते हैं, ज्ञानी नहीं कर सकते। ये वक्तव्य विरोधाभासी मालूम पड़ते हैं, क्योंकि हम समझ नहीं पाते। ज्ञानी का अर्थ ही यही है कि जिसने यह जान लिया कि यह रहस्य अनंत है।
अगर रहस्य अनंत है, तो आप दावा नहीं कर सकते कि मैंने जान लिया।
क्योंकि जिसको भी हम जान लेंगे, वह अनंत नहीं रह जाएगा। जानना उसकी सीमा बन जाएगी। और जिसको मैं जान लूं, वह मुझसे छोटा हो गया। वह मेरी मुट्ठी में हो गया।
विज्ञान जानने का दावा कर सकता है, क्योंकि क्षुद्र उसकी खोज है। धर्म जानने का दावा नहीं कर सकता। वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति जानने की कोशिश करते-करते धीरे-धीरे खुद ही खो जाता है। बजाय इसके कि वह जान पाता है, जानने वाला ही मिट जाता है। इसलिए मैं का कोई भी दावा बांधने वाला हो जाएगा।
और सात्विक कर्म इसीलिए बांध सकता है, क्योंकि सात्विक कर्म में ज्ञान की किरणें उतरनी शुरू होती हैं। मन हलका हो जाता है, शुद्ध हो जाता

है। लेकिन मन रहता है। शुद्ध हो जाता है। हल्का हो जाता है, उसका बोझ नहीं होता। सुंदर हो जाता है, सुगंधित हो जाता है। उसमें दुर्गंध नहीं रह जाती। उससे दुख पैदा नहीं होता, उससे सुख पैदा होने लगता है। इस सुख की दशा में जीवन के रहस्य की किरणें उतरनी शुरू होती हैं।
लेकिन मन अभी कायम है, अभी मिट नहीं गया है। अगर आप सजग न हुए, तो मन तत्क्षण घोषणा कर देगा कि मैंने जान लिया। इस घोषणा के साथ ही बंधन शुरू हो गया। और जिससे आप मुक्त हो सकते थे, उसको आपने अपना कारागृह बना लिया। जो आपको पार ले जा सकता था, उसको पकड़कर आप रुक गए। जैसे कोई नाव को पकड़ ले। नाव मुक्तिदायी है, उस पार ले जा सकती है। कोई नाव को पकड़कर बैठ जाए। नाव में बैठ जाए, फिर नाव से न उतरे। उस किनारे पहुंच जाए, लेकिन इस बीच नाव से मोह पैदा हो जाए। तो फिर नाव भी बंधन बन गई।
मन जब तक शेष है, तब तक किसी भी चीज को बंधन बना सकता है, यह ध्यान रखना जरूरी है। जब मन में पहली दफा उस पारलौकिक की किरणें उतरती हैं, तब यह ध्यान रखना जरूरी है कि यह भी सात्विक कर्म का वर्तन है। इससे अपने को जोड़ने की आवश्यकता नहीं है।
आपके घर की खिड़की पर कांच लगे हैं। किसी के घर की खिड़की पर कांच लगे हैं, जो बहुत गंदे हैं। उनसे कोई किरण पार नहीं होती। सूरज निकला भी रहता है बाहर, तो भी उनके घर में अंधेरा रहता है। किन्हीं के मकान पर कांच हैं, वे थोड़े साफ हैं; उन्हें रोज साफ कर लिया जाता है। सूरज बाहर निकलता है, तो उसकी धुंधली आभा घर के भीतर आती है। किसी की खिड़की पर ऐसे कांच हैं, जो बिल्कुल पारदर्शी हैं, कि अगर आप पास जाकर न छुएं, तो आपको पता ही नहीं चलेगा कि कांच है। बाहर सूरज निकलता है, तो ऐसा लगता है, भीतर ही निकल आया। कांच बिल्कुल पूरा पारदर्शी है। फिर भी कांच है, और जब तक कांच है, तब तक आप घर के भीतर बंद हैं। और जब तक कांच है, तब तक जो किरणें आ रही हैं, उनमें कांच की मिलावट है, उनमें कांच का हाथ है।
तो अगर इतना शुद्ध कांच आपके दरवाजे पर लगा हो कि आपको पता भी न चलता
हो कि कांच वहां है, क्रिस्टल लगा हो, तो आप इस भ्रांति में पड़ सकते हैं कि मैं घर के बाहर आ गया, क्योंकि सूरज की किरणें बिल्कुल मेरे ऊपर बरस रही हैं। और आप घर के भीतर बैठे हैं!
इसलिए कृष्ण कहते हैं, शुद्ध कर्म भी बांध लेगा, सात्विक कर्म भी बांध लेगा।
सात्विक कर्म शुद्धतम कांच की भांति है। उसको भी तोड़कर बाहर निकल जाना है। तो ही आप घर के बाहर हुए; तो ही आप सूरज के नीचे सीधे हुए। तो जो साक्षात्कार होगा, वह सीधा होगा, उसमें कोई भी माध्यम न रहा।
जब तक माध्यम है, तब तक खतरा है। क्योंकि माध्यम का भरोसा नहीं किया
जा सकता। माध्यम कुछ न कुछ बदलाहट तो करेगा ही। शुद्धतम माध्यम भी अशुद्ध होगा, क्योंकि उसकी मौजूदगी थोड़ा-सा अड़चन तो डाल ही रही है।
कई बार तो ऐसा होता है कि तमस में पड़े हुए आदमी को यह ख्याल नहीं होता,
यह अहंकार नहीं होता, कि मैं कुछ हूं। वह दीनता अनुभव करता है। एक अर्थ में निरअहंकारी होता है। रजस में पड़े हुए व्यक्ति को भी ऐसी भ्रांति नहीं होती कि मैं ब्रह्म को उपलब्ध हो गया, कि मैंने सत्य को जान लिया। क्योंकि वह जानता है, मैं कर्मों के जाल में उलझा हूं। ठीक वैसे ही जैसे गंदे कांच, थोड़े साफ कांच वाले आदमी को यह ख्याल नहीं होता कि मैं मकान के बाहर खुले आकाश के नीचे खड़ा हूं। यह खतरा सात्विक कर्म वाले को सर्वाधिक है।
तो जो लोग भी सत्व के करीब आते हैं, वे एक खतरे के करीब आ रहे हैं। वहां चीजें इतनी साफ हो गई हैं कि यह भ्रांति हो सकती है कि मैं बाहर आ गया। और जिसको यह भ्रांति हो गई भीतर बैठे हुए कि मैं बाहर आ गया, वह बाहर जाने का काम बंद कर देगा।
और यह कांच का कोई भरोसा नहीं है। जो आज शुद्ध है, कल अशुद्ध हो जाएगा; धूल जम जाएगी। एक क्षण में जो शुद्ध था, अशुद्ध हो सकता है। आज जो सात्विक है, वह कल राजस हो सकता है, परसों फिर तामस हो सकता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, सात्विक कर्म भी बांधता है। उसके फल तीन हैं, सुख, ज्ञान और वैराग्य।

ध्यान रहे, दुखी आदमी कभी भी पूरा तादात्म्य नहीं कर पाता दुख के साथ।
उसे लगता ही रहता है, मैं अलग हूं, मैं दुखी हूं। मैं अलग हूं, दुख अलग है।
दुख के साथ कौन तादात्म्य करेगा? हम जानते हैं कि दुख आया है और चला जाएगा, मैं अलग हूं। और हम पूरी कोशिश करते हैं कि दुख जितनी जल्दी चला जाए, उतना अच्छा। लेकिन जब सुख आता है, तब हम तादात्म्य करते हैं।
फकीर जुन्नैद ने कहा है कि दुख में ईश्वर का स्मरण कुछ भी मूल्य नहीं रखता, क्योंकि सभी स्मरण करते हैं। सुख में अगर कोई स्मरण करे, तो उसका कोई मूल्य है।
सुख में कोई स्मरण नहीं करता, क्योंकि सुख के लिए ही तो हम स्मरण करते हैं। जब सुख ही मौजूद हो, तो स्मरण का कोई अर्थ न रहा।
दुख से हम छूटना चाहते हैं, अलग होना चाहते हैं। सुख के साथ हम जुड़ना चाहते हैं, एक होना चाहते हैं। और जिसके साथ हम जुड़ते हैं, एक होते हैं, वही हमारा वास्तविक बंधन बन सकता है।
इसलिए दुख को एकदम अभिशाप मत मानना और सुख को एकदम वरदान मत मानना। अगर समझ हो, तो दुख वरदान हो सकता है। और नासमझी हो, तो सुख अभिशाप हो सकता है। अक्सर यही होता है। क्योंकि नासमझी सभी के पास है; समझदारी ना-कुछ के पास है। जब भी आप सुखी होते हैं, तभी आप पतित होते हैं, तभी तादात्म्य हो जाता है; तब सुख को आप जोर से पकड़ लेते हैं। और जिसको भी आप पकड़ लेते हैं, वही बंधन हो जाता है।
ध्यान रहे, बंधन आपको नहीं बांधते, आपकी पकड़ बांधती है। इसलिए सुख बंधन है; ज्ञान बंधन है। अगर अकड़ आ जाए कि मैं जानता हूं; अगर यह ख्याल आ जाए कि मैं ज्ञानी हूं। और आएगा ख्याल। क्योंकि अज्ञानी में पीड़ा है।
अज्ञानी में अहंकार को चोट है।
कोई भी अपने को अज्ञानी नहीं मानना चाहता। अज्ञानी से अज्ञानी आदमी
भी अज्ञानी नहीं मानना चाहता। अज्ञानी भी अपने ज्ञान के दावे करता है। गलत से गलत आदमी भी अपने ठीक होने के उपाय खोजता है।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा एक बंदूक ले आया। वह निशाना लगा रहा था, सीख रहा था। उसके निशाने पचास प्रतिशत सही पड़ते थे। नसरुद्दीन ने उसे डांटा और कहा कि यह तू क्या कर रहा है? निशाने कम से कम नब्बे प्रतिशत के ऊपर ठीक जाने चाहिए। यह भी कोई निशानेबाजी है? हमारा जमाना था, तब मैं सौ प्रतिशत निशाने ठीक मारता था। उसके लड़के ने कहा, आप एक कोशिश करके देखें; मैं भी देखूं।
तब जरा नसरुद्दीन मुश्किल में पड़ा। क्योंकि उसे ठीक से बंदूक पकड़ना
भी नहीं आता था। लेकिन बाप बेटे से ज्यादा जानता है, यह दावा छोड़ नहीं सकता किसी भी मामले में। उसने बंदूक ली हाथ में। इस बहाने कि माडल थोड़ा नया मालूम पड़ता है, उसने लड़के से पूछा कि कैसे उपयोग में लाया जाता है? क्योंकि मेरे जमाने में दूसरे ढंग के माडल चलते थे। मगर निशाना तो मेरा बेचूक है।
तब उसने निशाना लगाया। एक चिड़िया आकाश में उड़ रही थी। उसने निशाना मारा, बड़ी मेहनत से, बड़ी सोच-समझकर, सारी ताकत और समझ लगाकर। लेकिन ताकत और समझ से निशाने का कोई संबंध नहीं है। जिसने निशाना नहीं लगाया है, यह करीब-करीब असंभव है कि निशाना लग जाए उड़ती चिड़िया पर।
गोली तो चल गई, चिड़िया उड़ती रही। नसरुद्दीन ने कहा, देख, बेटा देख; चमत्कार देख। मरी हुई चिड़िया उड़ रही है!
हमारा अहंकार सब जगह खड़ा है। भूल भी हो जाए, तो हम उसे लीप-पोतकर ठीक
कर लेते हैं।
रवींद्रनाथ के हस्तलिखित पत्र प्रकाशित हुए हैं। वे कविता भी लिखते
थे तो कहीं अगर कोई शब्द में भूल हो जाए तो उसको काटना-पीटना पड़े, तो वे काटने-पीटने की जगह, जहां काटते थे, वहां कुछ डिजाइन बना देंगे, कुछ चित्र बना देंगे--कटा हुआ नहीं मालूम पड़े। जहां-जहां भूल होगी, शब्द कोई काटना पड़ेगा, तो उसके ऊपर डिजाइन बना देंगे, कुछ रंग भर देंगे, चित्र बना देंगे। तो उनका पत्र ऐसा मालूम पड़ेगा कि उसमें कहीं कोई भूल-चूक नहीं है। ऐसा लगेगा कि शायद सजाया है, डेकोरेट किया है।

मगर यह आदमी के मन की वृत्ति है। सब जगह सजा रहा है। कहीं भी कुछ ऐसा
हो जिससे भूल पता हो, तो छिपा रहा है। हमारा अहंकार स्वीकार नहीं करना चाहता कि कोई भी कमी हम में है।
अज्ञानी भी दावा करता है ज्ञान का। शायद अज्ञानी ही दावा करता है ज्ञान का। तो जब ज्ञान की पहली किरण उतरनी शुरू होगी, तो आपका सारे जन्मों का इकट्ठा जो सूक्ष्म अहंकार है, वह उसे पकड़ने की कोशिश करेगा।
जिब्रान ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। जिब्रान ने लिखा है कि जब भी इस जगत में कोई नया आविष्कार होता है, तो देवता और शैतान दोनों ही उस पर झपट्टा मारते हैं कब्जा करने को। और अक्सर ही ऐसा होता है कि शैतान उस पर पहले कब्जा कर लेता है; देवता सदा पीछे रह जाते हैं। देवताओं को तो ख्याल ही तब आता है, जब शैतान निकल पड़ता है। और शैतान तो पहले से ही तैयार है।
जब भी आपके जीवन में कोई घटना घटेगी, तो आपके भीतर जो बुरा हिस्सा है,
वह तत्क्षण उस पर कब्जा करना चाहेगा। इसके पहले कि अच्छा हिस्सा दावा करे, बुरा हिस्सा उस पर कब्जा कर लेगा।
जैसे ही ज्ञान की किरण उतरेगी, वैसे ही अहंकार पकड़ेगा कि मैंने जान लिया। और इस वक्तव्य में ही वह ज्ञान की किरण खो गई और अंधकार हो गया। इस अहंकार के भाव में ही, वह जो उतर रहा था, उसका स्रोत बंद हो गया। और जब तक यह भाव मिटेगा नहीं, तब तक वह स्रोत बंद रहेगा।
सैकड़ों-हजारों लोगों पर ध्यान के प्रयोग करने के बाद मैं कुछ नतीजों
पर पहुंचा हूं। उनमें एक यह है कि मेरे पास लोग आते हैं; जब उन्हें पहला अनुभव होता है ध्यान का, तो उनकी प्रफुल्लता की कोई सीमा नहीं होती। उनका पूरा हृदय नाचता होता है। लेकिन जब भी वे मुझे आकर खबर देते हैं और उनकी प्रफुल्लता मैं देखता हूं, तो मैं डरता हूं। मैं जानता हूं कि अब यह गया। अब कठिनाई शुरू हो जाएगी। क्योंकि अब तक इसे कोई अपेक्षा न थी। अब तक इसे कुछ पता न था। अनएक्सपेक्टेड, अपेक्षित न था, घटना घटी है।
और यह घटना तभी घटती है, जब अपेक्षा न हो; अपेक्षा होते से ही बाधा पड़ जाती है। अब यह कल से रोज प्रतीक्षा करेगा। ध्यान इसका व्यर्थ होगा अब। अब यह ध्यान में बैठेगा जरूर, लेकिन पूरा नहीं बैठेगा। मन तो लगा रहेगा उस घटना में, जो कल घटी थी। और निश्चित रूप से वह आदमी एक-दो दिन में मेरे पास आता है; कहता है कि वह बात अब नहीं हो रही! चित्त बड़ा दुखी है।
वह जो किरण उठती थी, इसने मार डाली। उसकी बात ही नहीं उठानी थी। उसको पकड़ना ही नहीं था। सिर्फ धन्यवाद देना था परमात्मा को कि तेरी कृपा है। क्योंकि मैं तो कुछ जानता भी नहीं था। हुआ, तू जान। और भूल जाना था। दूसरे दिन वह किरण और भी गहरी उतरती।
जो भी जीवन में आए, उसे भूलना सीखना पड़ेगा; अन्यथा वही बंधन हो जाएगा। फिर बड़ी कठिनाई हो जाती है। कई दफा तो सालों लग जाते हैं। जब तक कि वह आदमी भूल ही नहीं जाता उस घटना को, तब तक दुबारा किरण नहीं उतरती। और वह जितनी कोशिश करता है, उतना ही कठिन हो जाता है। क्योंकि कोशिश से वह आई नहीं थी। इसलिए कोशिश से उसका कोई संबंध नहीं है। वह तुम्हारे बिना प्रयत्न के घटी थी।
तुम भोले-भाले थे, तुम सरल थे, तुम कुछ मांग नहीं रहे थे। उस निर्दोष क्षण में ही वह संपर्क हुआ था। अब तुम मांग रहे हो। अब तुम चालाक हो। अब तुम भोले-भाले नहीं हो। अब तुमने गणित बिठा लिया है। अब तुम कहते हो कि अब ये तीस मिनट हो गए ध्यान करते, अभी तक नहीं हुआ! अब तुम मिनट-मिनट उसकी आकांक्षा कर रहे हो। तो तुम्हारा मन बंट गया। अब तुम ध्यान में नहीं हो। अब तुम अनुभव की आकांक्षा कर रहे हो।
इसलिए ध्यान रखें, अनुभव को जो पकड़ेगा, वह वंचित हो जाएगा। और सात्विक अनुभव इतने प्यारे हैं कि पकड़ना बिल्कुल सहज हो जाता है। छोड़ना बहुत कठिन होता है, पकड़ना बिल्कुल सहज हो जाता है।
झेन फकीर, उनका शिष्य जब भी आकर उनको खबर देगा कि उसे कुछ अनुभव हुआ,
तो उसकी पिटाई कर देते हैं। डंडा उठा लेते हैं। जैसे ही कहेगा कि कुछ अनुभव हुआ है कि वे टूट पड़ेंगे उस पर।

बड़ा दया का कृत्य है। हमें लगता है, बड़ी कठोर बात है। बड़ा दया का कृत्य है। उनकी यह मार-पीट, शिष्य को खिड़की से उठाकर फेंक देना--कई बार ऐसा हुआ कि शिष्य की टांग टूट गई, हाथ टूट गया--मगर वह कोई महंगा सौदा नहीं है।
जैसे ही उसने अनुभव को पकड़ा कि उन्होंने उसको इतना दुख दे दिया कि वह अनुभव जैसे इस दुख ने पोंछ दिया। अब वह दुबारा अनुभव को पकड़ने में जरा संकोच करेगा। और दुबारा गुरु के पास तो आकर कहेगा ही नहीं कि ऐसा हो गया। और जब भी उसको दुबारा पकड़ने का ख्याल होगा, तब उसको याद आएगा कि गुरु ने जो व्यवहार किया था, वह बताता है कि मेरी पकड़ में कहीं कोई बुनियादी भूल थी। क्योंकि गुरु बिल्कुल पागल हो गया था। जो सदा शांत था, जिसने कभी अपशब्द नहीं बोला था, उसने डंडा उठा लिया था। उसने मुझे खिड़की के बाहर फेंक दिया था। कोई भयंकर भूल हो गई है।
सात्विक अनुभव ज्ञान देगा। ज्ञान से अहंकार जगेगा। सात्विक अनुभव वैराग्य देगा, वैराग्य से बड़ी अकड़ पैदा होगी।
इसलिए संन्यासी जैसी अकड़ सम्राटों में भी नहीं होती। संन्यासी जिस ढंग से चलता है, उसको देखें। सम्राट भी क्या चलेंगे! क्योंकि वह यह कह रहा है कि लात मार दी। यह सब संसार तुच्छ है, दो कौड़ी का है। हम इसे कोई मूल्य नहीं देते। तुम्हारे महल ना-कुछ हैं। तुम्हारे स्वर्ण-शिखर, तुम्हारे ढेर हीरे-जवाहरातों के, कंकड़-पत्थर हैं। हम उस तरफ ध्यान नहीं देते। हमने सब छोड़ दिया। वैराग्य उदय हो गया है।
यह वैराग्य खतरनाक है। यह तो एक नया राग हुआ। यह विपरीत राग हुआ। यह राग से मुक्ति न हुई। यह तो वैराग्य को ही पकड़ लिया तुमने!
मन की आदत पकड़ने की है। इससे कोई संबंध नहीं कि आप क्या उसे पकड़ाते हैं। उसकी आदत पकड़ने की है; वह पकड़ने का यंत्र है। आप धन कहो, वह धन पकड़ लेगा। दान कहो, दान पकड़ लेगा। भोग कहो, भोग पकड़ लेगा। त्याग कहो, त्याग पकड़ लेगा। आब्जेक्ट से कोई संबंध नहीं है। कुछ भी दे दो, मन पकड़ लेगा। और जिसको भी मन पकड़ लेगा, वही बंधन हो जाएगा।
सैकड़ों कथाएं हैं वैरागियों की, जो अपने वैराग्य के कारण जन्मों- जन्मों तक मुक्त न हो पाए। क्योंकि अकड़ उनकी भारी है। दुर्वासा के वैराग्य में कोई भी कमी नहीं है। लेकिन वह वैराग्य सिवाय क्रोध के कुछ भी पैदा नहीं करता है।
दुर्वासा का वैराग्य क्रोध क्यों पैदा करता है? क्योंकि दुर्वासा का वैराग्य भीतर अहंकार बन गया। अहंकार पर जब चोट लगती है, तो क्रोध पैदा होता है। अगर भीतर अहंकार न हो, तो क्रोध के पैदा होने का कोई कारण नहीं है।
तो हम ऋषि-मुनियों की कथाएं पढ़ते हैं कि वे अभिशाप दे रहे हैं। जिनको उन्होंने अभिशाप दिया है, वे शायद मुक्त भी हो गए हों। लेकिन जिन्होंने अभिशाप दिया है, वे अभी भी यहीं-कहीं भटक रहे होंगे संसार में। उनके मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, वैराग्य, ज्ञान, सुख, ये सभी बंधन हो सकते हैं। इसलिए तम से तो मुक्त होना ही है, रज से तो मुक्त होना ही है, सत्व से
भी मुक्त होना है। असल में ऐसी कोई चीज न बचे भीतर, जिससे बंधने का उपाय रह जाए। सिर्फ शुद्ध चेतना ही रह जाए। कोई गुण न बचे; निर्गुणता रह जाए। उसी को गुणातीत कृष्ण कहते हैं। वही लक्षण है परम संन्यस्त का, वीतराग का।

तीसरा प्रश्नः आप किस गुण-प्रधान वाले साधक को संन्यस्त कहते हैं? क्या संन्यास लेते ही किसी एक गुण की प्रधानता होने लगती है?

गुण से संन्यास का संबंध ही नहीं है। निर्गुणता से संन्यास का संबंध है। संन्यास भीतर की-भाव दशा है। न पकड़ने की कला का नाम संन्यास है। नहीं पकड़ेंगे कुछ भी। बिना पकड़े रहेंगे।
पकड़ने का नाम गृहस्थ है। घर बनाएंगे चारों तरफ। कुछ पकड़ेंगे। बिना सहारे नहीं जी सकेंगे। कोई आलंबन चाहिए। भविष्य की सुरक्षा चाहिए। संपदा चाहिए कुछ! चाहे वह संपदा पुण्य की हो, शुभ कर्मों की हो, सत्व की हो।

संन्यस्त का अर्थ है, नहीं कोई घर बनाएंगे भीतर; नहीं कोई संपदा भीतर इकट्ठी करेंगे; कोई परिग्रह न जुटाएंगे; भविष्य की सोचेंगे ही नहीं। इस क्षण जीएंगे। और इस क्षण चेतना की भांति जीएंगे। और इतना ही जानेंगे कि मैं एक साक्षी हूं; एक देखने वाला हूं; एक द्रष्टा हूं।
संन्यस्त गुणातीत भाव है। और जब तक वह पैदा न हो जाए, तब तक सब संन्यास ऊपर-ऊपर है। ऊपर-ऊपर है, सिर्फ आकांक्षा की खबर देता है कि आप खोज कर रहे हैं। उपलब्धि की खबर नहीं देता।
अच्छा है कि खोज कर रहे हैं। लेकिन यह मत मानकर बैठ जाना कि संन्यस्त
हो गए हैं। जब तक निर्गुणता की प्रतीति न हो, तब तक भीतर संन्यासी का जन्म नहीं हुआ। तब तक आप यात्रा पर हैं। तब तक आप खोज रहे हैं।
यह खोज गुणों के सहारे होगी। लेकिन खोज का जो अंतिम फल है, वह गुणों के पार चला जाता है।
मैं संन्यस्त किसी गुण-प्रधान व्यक्ति को नहीं कहता, सत्वगुण-प्रधान व्यक्ति को भी संन्यासी नहीं कहता। साधु कहता हूं। साधु का अर्थ होता है कि सत्व की प्रधानता है, शुभ की प्रधानता है। अच्छे उसके कर्म हैं। अच्छा उसका व्यवहार है। अच्छा उसका भाव है। लेकिन अच्छे से बंधा है। जंजीर है उसके हाथों पर, फूलों की है। जंजीर है, सोने की है, लोहे की जंजीर नहीं है। लेकिन सोने की जंजीर, में एक खतरा है कि मन होता है मानने का कि वह आभूषण है। लोहे की जंजीर, तो तोड़ने की इच्छा पैदा हो जाती है। सोने की जंजीर, बचाने की इच्छा पैदा होती है। और अगर कोई कहे कि यह जंजीर है, तो हम कहेंगे, क्षमा करो, यह जंजीर नहीं है, यह आभूषण है।
साधुता सत्वगुण तक संबंधित है। संन्यस्तता गुणातीत है। संन्यस्त का अर्थ है, जिसने अब अपने को अपने शरीर, अपने मन से जोड़ना छोड़ दिया। शरीर घर है, मन घर है, इन घर से जो छूट गया और जो अब भीतर के चैतन्य में थिर हो गया है। और जो एक ही भाव रखता है कि मेरा होना सिर्फ चेतना मात्र है, सिर्फ होश मेरा स्वभाव है। और जहां भी होश मैं खोता हूं, वहीं मैं स्वभाव खो रहा हूं और संन्यास से च्युत हो रहा हूं।

अब हम सूत्र लें।
अर्जुन ने पूछा कि हे पुरुषोत्तम, इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है? और किस प्रकार के आचरणों वाला होता है? तथा हे प्रभो, मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों से अतीत होता है? अर्जुन की जिज्ञासा करीब-करीब सभी की जिज्ञासा है। हम भी जानना चाहते हैं कि इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन लक्षणों से युक्त होता है। अर्जुन ऐसा पूछता है कृष्ण से; सारिपुत्त बुद्ध से पूछता है; गौतम महावीर से पूछते हैं। निरंतर, जब भी कोई जागरूक पुरुष हुआ है, तो उसके शिष्यों ने निश्चित ही पूछा है कि लक्षण क्या है? वह जिस दिव्य चेतना के अवतरण की आप बात करते हैं, जिस भगवत्ता की आप बात करते हैं, उस भगवत्ता का लक्षण क्या है? हम कैसे पहचानेंगे कि कोई उस भगवत्ता को उपलब्ध हो गया? उसका आचरण कैसा होगा?
इस प्रश्न को ठीक से समझना जरूरी है।
पहली तो बात यह है कि लक्षण तो बाहर से बताए जा सकते हैं। और बाहर की
सब पहचान कामचलाऊ होगी। क्योंकि दो गुणातीत व्यक्तियों के बाहर के लक्षण एक जैसे नहीं होंगे। इससे बड़ी अड़चन पैदा हुई है।
जिन्होंने महावीर से पूछा था कि उसके लक्षण क्या हैं, वे कृष्ण को गुणातीत नहीं मान सकते। क्योंकि महावीर ने वे लक्षण बताए, जो महावीर ने अनुभव किए हैं, जो महावीर के जीवन में आए। तो महावीर का भक्त जानता है कि वह जो गुणातीत व्यक्ति है, वह वस्त्र भी त्याग कर देगा; वह दिगंबर होगा। इसलिए दिगंबरत्व लक्षण है गुणातीत का। दिगंबर परंपरा में दिगंबरत्व लक्षण है। जब तक वस्त्र हैं, तब तक कोई मोक्ष में प्रवेश नहीं कर सकता। क्योंकि वस्त्र को पकड़ने का मोह बता रहा है कि तुम अभी कुछ छिपाना चाहते हो। गुणातीत कुछ भी नहीं छिपाता। वह खुली किताब की तरह है।
तो महावीर से जिन्होंने गुणातीत के लक्षण समझे थे, वे बुद्ध को भी गुणातीत नहीं मानते। बुद्ध उसी समय जीवित थे। एक ही जगह मौजूद थे। बिहार

में एक ही प्रांत में मौजूद थे। कभी-कभी एक ही गांव में एक साथ भी मौजूद थे।
महावीर को मानने वाला बुद्ध को गुणातीत नहीं मानता, स्थितप्रज्ञ नहीं मानता, क्योंकि बुद्ध कपड़ा पहने हुए हैं। वह उतनी अड़चन है। इसलिए महावीर को तो जैन भगवान कहते हैं; बुद्ध को महात्मा कहते हैं। करीब-करीब हैं। कभी न कभी वस्त्र भी छूट जाएंगे और किसी जन्म में यह व्यक्ति भी तीर्थंकरत्व को उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन अभी नहीं है।
कृष्ण को तो मानने का कोई उपाय ही नहीं रहेगा। राम को तो किसी तरह नहीं माना जा सकता। मोहम्मद या क्राइस्ट को किसी तरह नहीं माना जा सकता कि ये गुणातीत हैं। अगर महावीर से लक्षण सीखे हैं, तो कठिनाई आएगी।
अगर आपने कृष्ण से लक्षण सीखे हैं, तो भी कठिनाई आएगी। क्योंकि लक्षण कामचलाऊ हैं। वास्तविक अनुभूति तो स्वयं जब तक कोई गुणातीत न हो जाए, तब तक नहीं होगी। लेकिन यह कहना फिजूल है पूछने वाले से, कि जब तू गुणातीत हो जाएगा, तब जान लेगा। वह यह कहता है कि मैं नहीं हूं गुणातीत, इसीलिए तो पूछ रहा हूं। तो उसके पूछने को तृप्त तो करना ही होगा।
इसलिए गौण, कामचलाऊ लक्षण हैं। वे लक्षण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अलग-अलग गुणातीत लोगों में भिन्न-भिन्न रहेंगे। उनके भीतर की दशा तो एक है। लेकिन उनके बाहर की अभिव्यक्ति अलग-अलग है। वह हजार कारणों पर निर्भर है।
पर हमारा मन होता है पूछने का, कि लक्षण क्या है? क्योंकि हम ऊपर से चीजों को जांचना चाहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि कौन आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया? हम कैसे पहचानें? कोई सींग तो निकल नहीं आते कि अलग से दिखाई पड़ जाए कि यह आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो गया। वह आदमी आप ही जैसा आदमी होता है। सच तो यह है कि वह अति साधारण हो जाता है। क्योंकि असाधारण होने का जो पागलपन है, वह अहंकार का हिस्सा है। वैसा आदमी अति साधारण हो जाता है। विशिष्टता की तलाश उसकी बंद हो जाती है।
सभी साधारण लोग असाधारण होने की खोज कर रहे हैं। इसलिए जो वस्तुतः असाधारण है, वह बिल्कुल साधारण जैसा होगा।
झेन फकीरों ने उसके गुणों में एक गुण गिनाया है, मोस्ट आर्डिनरी। अगर
आप झेन फकीरों का गुण सुन लें, तो आपको बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि झेन फकीर कहते हैं, गुणातीत को तो पहचानना ही मुश्किल होगा, यही उसका पहला लक्षण है। क्योंकि वह बिल्कुल साधारण होगा। उसको विशिष्ट होने का कोई मोह नहीं है। वह दिखाने की कोशिश नहीं करेगा कि मैं विशिष्ट हूं, तुमसे ज्यादा जानता हूं, कि तुमसे ज्यादा आचरण वाला हूं। वह यह कोशिश नहीं करेगा।
एक झेन फकीर हुआ, नान-इन। वह अपने गुरु के पास गया। वह गुरु की तलाश कर रहा था। पर उसके मन में एक सुनी हुई बात थी कि जो दावा करे कि मैं गुरु हूं, वहां से भाग खड़े होना। क्योंकि झेन फकीर कहते रहे हैं सदियों से कि वह जो गुरु होने योग्य है, वह दावा नहीं करेगा। वह उसका लक्षण है।
यह नान-इन खोजता था। बहुत गुरुओं के पास गया। लेकिन वे सब दावेदार थे
और सब ने कोशिश की कि बन जाओ शिष्य। वह वहां से भाग खड़ा हुआ।
फिर एक दिन एक जंगल से गुजरते हुए एक गुफा के द्वार पर उसे बैठा हुआ एक फकीर दिखाई पड़ा। वह थका-मांदा था। वह फकीर अति साधारण मालूम हो रहा था। न कोई गरिमा थी, न कोई विराट तेज प्रकट हो रहा था। न कोई आभामंडल दिखाई पड़ रहा था, जैसा कि कृष्ण, बुद्ध, महावीर के सिर के चारों तरफ बना होता है। ऐसा कुछ भी नहीं था। एक साधारण आदमी बैठा था चुपचाप; कुछ कर भी नहीं रहा था। इसको प्यास लगी थी, भूख लगी थी। यह रास्ता भटक गया था। तो उसके पास गया। जैसे-जैसे पास गया, वैसे-वैसे लगा कि उसके पास जाने से इसके भीतर कुछ शांत होता जा रहा है। यह थोड़ा चौंका। वह आदमी--जब पास गया, तो पता चला--वह आंख बंद किए बैठा है। वह इतना शांत था कि उससे यह कहकर कि मुझे प्यास लगी है, बाधा देना इसे उचित नहीं मालूम पड़ा। तो यह चुपचाप उसके पास बैठ गया कि जब वह आंख खोलेगा, तब मैं बात कर लूंगा। लेकिन उसके पास बैठे-बैठे यह ऐसा शांत होने लगा और इसकी आंख बंद हो गई। सांझ का वक्त था। पूरी रात बीत गई।

सुबह वह फकीर उठा। उस फकीर ने यह भी नहीं पूछा कि कैसे आए? कहां से आए? कौन हो? वह उठा। उसने चाय बनाई। चाय पी फकीर ने। उसने इससे भी नहीं कहा, नान-इन से, कि तू एक चाय पी ले। फिर अपनी जगह आकर आंख बंद करके बैठ गया।
यह नान-इन भी उठा। जिस भांति फकीर ने चाय बनाई थी, इसने भी चाय बनाई। पी; और यह जाकर अपनी जगह बैठ गया। ऐसा सात दिन चला। सातवें दिन उस फकीर ने कहा कि मैं तुझे स्वीकार करता हूं। वह आदमी नान-इन का गुरु हो गया।
नान-इन ने उससे पूछा कि तुमने मुझे क्यों स्वीकार किया? तो उसने कहा, गुरु वही गुरु होने योग्य है, जो दावा न करे; और शिष्य भी वही शिष्य होने योग्य है, जो दावा न करे। तू चुप रहा और तूने यह नहीं कहा कि हम शिष्य होने आए हैं। और तू चुपचाप अनुकरण करता रहा छाया की तरह। सात दिन, जो मैंने किया, तूने किया। तूने यह भी नहीं पूछा कि यह करना कि नहीं करना।
जब वह उठकर बाहर घूमने जाए, तो यह भी बाहर चला जाए। वह चक्कर लगाए, यह
भी चक्कर लगाए झोपड़े का। जब वह बैठ जाए, तो यह भी बैठ जाए।
पर नान-इन ने कहा है कि सात दिन के बाद कुछ पाने को भी नहीं बचा। सात दिन उसके साथ चुपचाप होना काफी था। मोस्ट आर्डिनरी, एकदम साधारण आदमी! वहां गुरु मिल गया।
हर परंपरा अलग लक्षण गिनाती है। हर परंपरा को लक्षण गिनाने पड़े हैं, क्योंकि पूछने वाले लोग मौजूद हैं। पूछने में थोड़ी भूल है। लेकिन स्वाभाविक भूल है। क्योंकि हम जानना चाहते हैं, वैसा पुरुष कैसा होगा। अर्जुन पूछता है, तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है?
लक्षण का मतलब है, जिन्हें हम बाहर से पहचान सकें। जिनसे हम कुछ अंदाज लगा सकें। पर इससे एक दूसरा खतरा... ।
एक खतरा तो यह पैदा हुआ कि सब धर्मों ने अलग लक्षण गिनाए। क्योंकि लक्षण गिनाने वाले ने जो लक्षण अपने जीवन में पाए थे, वही उसने गिनाए। इसलिए सब धर्मों में एक वैमनस्य पैदा हुआ। और एक के तीर्थंकर को दूसरा अवतार नहीं मान सकता। और एक के क्राइस्ट को दूसरा क्राइस्ट नहीं मान सकता। एक के पैगंबर को दूसरा पैगंबर नहीं मान सकता। क्योंकि लक्षण अलग हैं। और लक्षण मेल नहीं खाते हैं।
दूसरा खतरा यह हुआ, जो इससे भी बड़ा है, वह यह कि लक्षणों के कारण कुछ लोग लक्षण आरोपित कर लेते हैं। तब वे दूसरों को तो धोखा देते ही हैं, खुद भी धोखे में पड़ जाते हैं। क्योंकि लक्षण पूरे के पूरे आरोपित किए जा सकते हैं।
अगर यह लक्षण हो कि साधु पुरुष मौन होगा, तो आप मौन हो सकते हैं। गुणातीत पुरुष बोलेगा नहीं, तो न बोलने में कोई बहुत बड़ी अड़चन नहीं है। गुणातीत पुरुष, जो भी करने का हम लक्षण बना लें, वह लक्षण लोग नकल कर सकते हैं।
और ध्यान रहे, नकल में कोई अड़चन नहीं है। कोई भी अड़चन नहीं है। महावीर नग्न खड़े हैं, तो सैकड़ों लोग नग्न खड़े हो गए। लेकिन नग्नता से कोई दिगंबरत्व तो पैदा नहीं होता। दिगंबरत्व शब्द का अर्थ है कि आकाश ही मेरा एकमात्र वस्त्र है। मैं और किसी चीज से ढंका हुआ नहीं हूं। जैसे मैं पूरा अस्तित्व हो गया हूं। सिर्फ आकाश ही मेरा वस्त्र है।
लेकिन आप नंगे खड़े हो सकते हैं। फिर उसमें तरकीबें निकालनी पड़ती हैं। दिगंबर जैन मुनि जहां ठहरता है, तो भक्तों को इंतजाम करना पड़ता है। पुआल बिछा देते हैं उसके कमरे में। वह नहीं कहता कि बिछाओ। क्योंकि वह कहे, तो लक्षण से नीचे गिर गया। पुआल बिछा देते हैं। वह पुआल में छिपकर सो जाता है। क्योंकि किसी तरह का ओढ़ना नहीं कर सकते उपयोग। किसी तरह का बिछौना उपयोग नहीं कर सकते। कमरे को चारों तरफ से बिल्कुल बंद कर देते हैं। महावीर किसी कमरे में नहीं ठहरे। न किसी ने कभी पुआल बिछाई। और कोई बिछाता भी तो वे पुआल में छिपते नहीं। क्योंकि बिछाने वाला बिछा रहा होगा, आपको उसमें छिपने की कोई जरूरत नहीं है। और कौन कह रहा है कि आप कमरे में रहो? पुआल भरी है, आप बाहर चले जाओ।

लेकिन यह आदमी बेचारा सिर्फ नग्न हो गया है। इसको वस्त्रों की अभी जरूरत थी। इसको सर्दी लगती है, गर्मी लगती है। और इसमें कोई एतराज नहीं है कि इसको लगती है। कठिनाई यह है कि नाहक एक लक्षण को आरोपित करके चल रहा है। महावीर ने कहा है कि तुम भिक्षा मांगने जाओ। तुम किसी द्वार पर पहले
से खबर मत करना कि मैं भिक्षा लेने आऊंगा। क्योंकि तुम्हारे निमित्त जो भोजन बनेगा, उसमें जितनी हिंसा होगी, वह तुम्हारे ऊपर चली जाएगी। तो तुम तो अनजाने द्वार पर खड़े हो जाना। जो उसके घर बना हो, वह दे दे। तुम्हारे भाग्य में होगा, तो कोई दे देगा। नहीं भाग्य में होगा, तो तुम भूखे रहना, वापस लौट आना; बिना किसी मन में बुराई को लिए, कि लोग बुरे हैं इस गांव के, किसी ने भिक्षा नहीं दी।
और महावीर ने एक शर्त लगा दी, कि अगर तुम्हारे भाग्य में है, तो तुम पक्की कसौटी कर लेना। तो तुम एक चिह्न लेकर निकलना सुबह ही। उठते ही सोच लेना कि आज भिक्षा उस द्वार से मांगूंगा, जिस द्वार पर एक बैलगाड़ी खड़ी हो। बैलगाड़ी में गुड़ भरा हो। गुड़ में एक बैल सींग लगा रहा हो। और सींग में गुड़ लग गया हो। ऐसा कोई भी एक लक्षण ले लेना।
यह महावीर का एक लक्षण था, जिसमें वे तीन महीने तक गांव में भटके और भोजन नहीं मिला। अब यह बड़ा अजीब-सा, जो भाव आ गया सुबह, वह... । अब यह बड़ा कठिन है कि किसी घर के सामने बैलगाड़ी में भरा हुआ गुड़ हो। फिर कोई बैल उसमें सींग लगा रहा हो। और फिर उस घर के लोग देने को राजी हों। कोई उनकी मजबूरी तो है नहीं। उन्होंने कोई कसम खाई नहीं कि देंगे ही।
तो महावीर कहते थे, भाग्य में नहीं है, तुम वापस लौट आना। गुणातीत खुद
से नहीं जीता, गुणों से जीता है। प्रकृति को बचाना होगा, तो बचा लेगी।
और एक दिन--एक दिन जरूर ऐसा हुआ। तीन महीने बाद हुआ, लेकिन बराबर ऐसा हुआ कि... ।
अभी भी जैन दिगंबर मुनि ऐसा करता है। लेकिन उसके फिक्स्ड लक्षण हैं। दो-चार हर मुनि के फिक्स्ड हैं। सब भक्त जानते हैं। वे चारों लक्षण अपने घर के सामने खड़े कर देते हैं। लक्षण ऐसे सरल हैं, घर के सामने केला लटका हो। एक केला लटका हो घर के सामने, वहां से भिक्षा ले लेंगे। तो सब मुनियों के लक्षण पता हैं।
महावीर ने यह नहीं कहा कि तुम अपने लक्षण निश्चित कर लेना। तुम रोज सुबह जो तुम्हारा पहला भाव हो, वह लेकर निकलना। इनके सब तय हैं। तो उलटी हिंसा पच्चीस गुनी ज्यादा होती है। क्योंकि एक घर से जो भिक्षा ले लेते, तो पच्चीस घर, जितने उनके भक्त गांव में होंगे, सब बनाएंगे और सब अपने घर के सामने लक्षण लटकाएंगे। और उनका लक्षण रोज मिलता है। तीन महीने तक चूकने की किसी को नौबत आती नहीं। रोज मिलेगा ही। लक्षण ही वे लेते हैं, जो सबको पता हैं। तो नकल हो सकती है।
एक बौद्ध भिक्षु भिक्षा मांगने गया। एक कौआ मांस का टुकड़ा लेकर उड़ता था, वह छूट गया उसके मुंह से। वह भिक्षापात्र में गिर गया। संयोग की बात थी। बुद्ध ने भिक्षुओं को कहा है कि जो भी तुम्हारे भिक्षापात्र में डल जाए, वह तुम खा लेना, फेंकना मत। बुद्ध को भी नहीं सूझा होगा कि कभी कोई कौआ मांस का टुकड़ा गिरा देगा।
अब इस भिक्षु के सामने सवाल खड़ा हुआ कि अब क्या करना! क्योंकि बुद्ध कहते हैं... । मांसाहार करना कि नहीं? गिरा तो है पात्र में ही। नियम के बिल्कुल भीतर है। तो उस भिक्षु ने जाकर बुद्ध को कहा कि क्या करूं? मांस का टुकड़ा पड़ा है, इसे फेंकूं, तो नियम का उल्लंघन होता है। क्योंकि भोजन का तिरस्कार हुआ। मैंने मांगा भी नहीं था, कौए ने अपने आप डाला है।
बुद्ध ने सोचा होगा। बुद्ध ने सोचा होगा, कौए रोज-रोज तो डालेंगे नहीं। कौओं को ऐसी क्या पड़ी है कि भिक्षुओं को परेशान करें। यह संयोग की बात है। तो बुद्ध ने कहा कि ठीक है; जो भिक्षापात्र में पड़ जाए, ले लेना। क्योंकि अगर यह कहा जाए कि फेंक दो इसे, तो अब एक दूसरा नियम बनता है कि भिक्षापात्र में जो पसंद न हो, वह फेंकना फिर। फिर चुनाव शुरू होगा। फिर भिक्षु वही जो पसंद है, रख लेगा, बाकी फेंक देगा। इससे व्यर्थ भोजन जाएगा।
और भिक्षु के मन में चुनाव पैदा होगा।

तो आज चीन में, जापान में मांसाहार जारी है। क्योंकि भक्त मांस डाल देते हैं भिक्षापात्र में। और सब भक्त जानते हैं कि भिक्षु मांस पसंद करते हैं। वह कौए ने जो डाला था, रास्ता खोल गया। सारा चीन, सारा जापान, लाखों बौद्ध भिक्षु मांसाहार करते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि नियम है, जो भिक्षापात्र में डाला जाए, उसे छोड़ना नहीं।
आदमी बेईमान है। वह नकल भी कर सकता है। नकल से तरकीब भी निकाल सकता है। सब उपाय खोज सकता है। लक्षण की वजह से एक उपद्रव हुआ है कि हम लक्षण को आरोपित कर सकते हैं; हम उसका अभिनय कर सकते हैं।
पर हमारे मन में उठता है कि क्या लक्षण होंगे।
कृष्ण ने जो लक्षण बताए हैं, वे कीमती हैं। यद्यपि बाहरी हैं, पर हमारे मन के लिए उपयोगी हैं।
किन लक्षणों से युक्त होता है? किस प्रकार के आचरणों वाला होता है? मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणों के अतीत होता है?
कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन, जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को, रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है।
बड़ा जटिल लक्षण है। खतरा भी उतना ही है। क्योंकि जितना जटिल है, उतना
ही आपके लिए सुविधा है।
कृष्ण यह कह रहे हैं कि गुण जो भी करवाएं! तमोगुण कुछ करवाए, तो जब तमोगुण प्रवृत्ति में ले जाता है, तब दुखी नहीं होता कि मुझसे बुरा हो रहा है। रजोगुण किसी कर्म में ले जाता है, तो भी दुखी नहीं होता कि रजोगुण मुझे कर्म में ले जा रहा है। या सत्वगुण निवृत्ति में ले जाता है, तो भी सुखी नहीं होता कि मुझे सत्वगुण निवृत्ति में ले जा रहा है। न राग से दुखी होता है, न वैराग्य से सुखी होता है। जो दोनों ही चीजों को गुणों पर छोड़ देता है और समझता है, मैं अलग हूं।
इसका मतलब क्या हुआ?
आपको क्रोध आया। अब रजोगुण आपको किसी की हिंसा करने में ले जा रहा है।
आप कहेंगे, यह तो लक्षण ही है गुणातीत का! इस वक्त दुख करने की कोई जरूरत नहीं है, मजे से जाओ। तो ऊपर से तो नकल हो सकती है। क्योंकि आप क्रोधित हो सकते हैं और आप कह सकते हैं, मैं क्या कर सकता हूं; यह तो गुणों का वर्तन है! आप हिंसा भी कर सकते हैं और कह सकते हैं, मैं क्या कर सकता हूं; यह तो गुणों का वर्तन है! मेरे भीतर जो गुण थे, उन्होंने हिंसा की।
इसीलिए मैं कह रहा हूं कि लक्षण बाहर हैं और असली बात तो भीतर है। असली बात भीतर है। वह आप ही पहचान सकते हैं कि जब आप क्रोध में गए थे, तो आप सच में क्रोध का सुख ले रहे थे या साक्षी थे। क्योंकि ध्यान रहे, जो आदमी क्रोध का साक्षी है, उसका क्रोध अपने आप निर्बीज हो जाएगा। क्रोध उठेगा भी, तो भी उसमें प्राण नहीं होंगे। क्योंकि प्राण तो हम डालते हैं। उसमें धुआं ही होगा, आग नहीं हो सकती।
कामवासना उठेगी, तो भी आपके साक्षी-भाव के रहने से कामवासना आपको ज्यादा दूर ले नहीं जाएगी। थोड़ी हिलेगी-डुलेगी; विदा हो जाएगी। क्योंकि आपके बिना सहयोग के, आपके साक्षी-भाव को खोए बिना कोई भी चीज बहुत दूर तक नहीं जा सकती। जब आप साथ होते हैं, तब चीजें दूर तक जाती हैं। लेकिन यह तो भीतरी बात है। इसको तय करना कठिन है।
इसलिए जैनों ने कृष्ण को नहीं माना कि वे गुणातीत हैं। बड़ा मुश्किल है। कृष्ण तो गुणातीत हैं। लेकिन बात भीतरी है। कृष्ण उस युद्ध के मैदान पर खड़े हुए भी भीतर से वहां नहीं खड़े हैं। उस सारे जाल-प्रपंच के बीच भी भीतर से साक्षी हैं। लेकिन जैन कहते हैं, हम कैसे मानें कि वे साक्षी हैं? कौन जाने, वे साक्षी न हों और प्रवृत्ति में रस ले रहे हों?
तो जैन तो कहते हैं कि अगर प्रवृत्ति के साक्षी हैं, तो प्रवृत्ति गिर जानी चाहिए। तो वे कहते हैं, हम महावीर को मानेंगे, क्योंकि वे प्रवृत्ति छोड़कर चले गए हैं।
लेकिन दूसरी तरह भी खतरा वही है। आपकी प्रवृत्ति मौजूद हो, आप जंगल जा सकते हैं। क्या अड़चन है? और जंगल में आप ध्यान कर रहे हों। हम को लगता है,

आप ध्यान कर रहे हैं। भीतर पता नहीं आप क्या सोच रहे हैं? कौन-सी फिल्म देख रहे हैं? क्या कर रहे हैं?
महावीर के जीवन में उल्लेख है। बिंबसार सम्राट, उस समय का एक बड़ा सम्राट, महावीर के दर्शन को आया। जब वह दर्शन को आ रहा था, तो उसने रास्ते में अपने एक पुराने मित्र को, जो कभी सम्राट था... प्रसन्न कुमार उसका नाम था, वह मुनि हो गया था महावीर का; राज्य छोड़ दिया था उसने। वह बिंबसार का बचपन का मित्र था और विश्वविद्यालय में दोनों साथ पढ़े थे। वह प्रसन्न कुमार उसे खड़ा हुआ दिखाई पड़ा एक पर्वत की कंदरा के पास, ध्यान में लीन, पत्थर की मूर्ति की तरह। बिंबसार का मस्तक झुक गया। उसने सोचा कि हम अभी भी संसार में भटक रहे हैं और यह मेरा मित्र कैसी पवित्रता को उपलब्ध हो गया! नग्न, पत्थर की तरह शांत खड़ा है!
वह नमस्कार करके, बिना बाधा दिए, महावीर के दर्शन को आया था। महावीर
और घने जंगल में किसी वृक्ष के नीचे विराजमान थे। वह वहां गया। वहां जाकर उसने कहा कि एक बात मुझे पूछनी है। बिंबसार ने कहा कि मेरा मित्र था प्रसन्न कुमार, वह आपका मुनि हो गया है। उसने सब छोड़ दिया। हम संसारी हैं; अज्ञानी हैं; भटकते हैं। उसे रास्ते में खड़े देखकर मेरा चित्त बड़ा आनंदित हुआ। मेरे मन में भी भाव उठा कि कब ऐसा शुभ क्षण आएगा कि मैं भी सब छोड़कर ऐसा ही शांति में लीन हो जाऊंगा! एक सवाल मेरे मन में उठता है। अभी जैसा खड़ा है प्रसन्न कुमार, शांत, मौन, अगर उसकी अभी मृत्यु हो जाए, तो वह किस महालोक में जन्म लेगा?
महावीर ने कहा, अगर इस वक्त उसकी मृत्यु हो, तो वह स्वर्ग जाएगा। लेकिन तू जब उसके सामने झुक रहा था, उस वक्त अगर मरता, तो नरक जाता।
अभी मुश्किल से आधी घड़ी बीती थी! और बिंबसार तो चौंक गया। क्योंकि जब
वह सिर झुका रहा था, तब इतना शांत खड़ा था प्रसन्न कुमार कि यह सोचता था, वह स्वर्ग में है ही। और महावीर कहते हैं कि अगर उसी वक्त मर जाता, तो सीधा नरक जाता, सातवें नरक जाता।
बिंबसार ने कहा कि मैं समझा नहीं। यह पहेली हो गई। महावीर ने कहा कि तेरे आने के पहले तेरा फौज-फांटा आ रहा है। सम्राट था; उसके वजीर, घोड़े, सेनापति, वे आगे चल रहे हैं। तेरा एक वजीर भी उसके दर्शन करने तुझ से कुछ देर पहले पहुंचा। और उसने जाकर कहा कि यह देखो प्रसन्न कुमार खड़ा है मूरख की भांति। और यह अपना सारा राज्य अपने वजीरों के हाथ में सौंप आया है। इसका लड़का अभी छोटा है। वे सब लूटपाट कर रहे हैं। वह सारा राज्य बर्बाद हुआ जा रहा है। और ये बुद्धू की भांति यहां खड़े हैं!
उसने सुना प्रसन्न कुमार ने। उसको आग लग गई। वह भूल ही गया कि मैं मुनि हूं दिगंबर। उसका हाथ तलवार पर चला गया। पुरानी आदत! उसने तलवार खींच ली। आंख बंद थीं। उसने तलवार खींचकर उठा ली। और उसने अपने मन में कहा, क्या समझते हैं वे वजीर! अभी मैं जिंदा हूं। एक-एक को गर्दन से अलग कर दूंगा। और जब यह बिंबसार उसके दर्शन कर रहा था, तब वह गर्दनें काट रहा था। बाहर मूर्तिवत खड़ा था; भीतर गर्दनें धड़ से नीचे गिराई जा रही थीं। पुराना क्षत्रिय था। मेरे जिंदा रहते मेरे लड़के को धोखा दे रहे हैं! अभी मैं जिंदा हूं। क्या समझा है उन्होंने? मुनि हो गया, इससे क्या फर्क पड़ता है! अभी आ जाऊं, तो सब का फैसला कर दूंगा।
तो महावीर ने कहा कि इस समय अगर वह मर जाए, तो स्वर्ग जाएगा। तो बिंबसार ने कहा, अब दूसरी पहेली आप मुझे कह ही दें। अब क्या हो गया इतनी जल्दी?
तो महावीर ने कहा कि जब तलवार उसने वापस रखी, सिर पर हाथ फेरा अपना ताज सम्हालने को, तो वहां तो कोई ताज नहीं था, घुटा हुआ सिर था। जब सिर पर हाथ गया, तो उसने कहा, मैं भी पागल हूं। मैं मुनि हो गया; प्रसन्न कुमार तो मर ही चुका है। कैसी तलवार? किसकी हत्या? मैं यह क्या हत्या कर रहा हूं! सजग हो गया। उसे हंसी आ गई कि मन भी कैसा पागल है। इस समय वह बिल्कुल साक्षी है। इस समय वह जो परदे से उसका तादात्म्य हो गया था, वह टूट गया। अगर अभी मर जाए, तो स्वर्ग जा सकता है।
बड़ी कठिनाई है। लक्षण सब बाहर हैं। इसलिए लक्षण आप दूसरों पर मत लगाना। लक्षण आप अपने पर ही लगाना, तो ही काम के हो सकते हैं।

जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को... ।
जब सत्वगुण का प्रकाश हो, और ज्ञान जन्मे, और वैराग्य का उदय हो।
रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को... ।
कर्म उठें, कर्मों का जाल फैले।
तमोगुण के कार्यरूप मोह को... ।
तमोगुण के कारण लोभ और मोह और अज्ञान जन्मे।
इन तीनों गुणों की प्रवृत्ति हो या निवृत्ति हो... ।
न तो प्रवृत्ति में मानता है कि बुरा है, न निवृत्ति में मानता है कि भला है। न तो प्रवृत्ति से बचना चाहता है, और निवृत्ति होने पर न प्रवृत्ति करना चाहता है। न तो आकांक्षा करता है कि ये हों, और न आकांक्षा करता है कि ये न हों। जो भी हो रहा है, उसे चुपचाप प्रकृति का खेल मानकर देखता रहता है। इसे कृष्ण ने मौलिक लक्षण कहा गुणातीत का।
तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया
जा सकता है और गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है।
गुण प्रतिपल सक्रिय हैं; उनके कारण जो चलायमान नहीं होता है। जैसे एक दीया जल रहा है। हवा का झोंका आया; दीए की लौ कंपने लगी। ऐसी हमारी स्थिति है। कोई भी झोंका आए, किसी भी गुण से हम फौरन कंपने लगते हैं। गुण के झोंके आएं, तूफान चलें, भीतर कोई कंपन न हो। तूफान आएं और जाएं, आप अछूते खड़े रहें। न तो बुरा और न भला, कोई भी भाव पैदा न हो। न तो निंदा और न प्रशंसा, कोई चुनाव पैदा न हो, च्वाइसलेस, बिना चुने चुपचाप खड़े रहें।
सारी नीति हमें चुनाव सिखाती है और धर्म अचुनाव सिखाता है। नीति कहती है, यह अच्छा है, यह बुरा है। जब अच्छा उठे, तो प्रसन्न होकर करना। जब बुरा उठे, तो दुखी होना और करने से रुकना।
यह गीता का सूत्र तो बिल्कुल विपरीत है। यह कह रहा है, बुरा उठे कि भला उठे, तुम कोई निर्णय ही मत लेना। बुरा उठे, तो बुरे को उठने देना। भला उठे, तो भले को उठने देना। न भले में स्तुति मानना, न बुरे में निंदा बनाना। तुम दोनों को देखते रहना कि तुम्हारा जैसे दोनों से कोई प्रयोजन नहीं है। जैसे रास्ते पर लोग चल रहे हैं और तुम किनारे खड़े हो। नदी बह रही है और तुम किनारे खड़े हो। आकाश में बादल चल रहे हैं और तुम नीचे बैठे हो। तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं। तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं। तुम बिल्कुल अलग-थलग हो। जब इस अलगपन का भाव पूरा उतर जाए, तभी चलायमान होने से बचा जा सकता है।
अन्यथा हर चीज चलायमान कर रही है। हर घटना, जो आस-पास घट रही है, आपको हिला रही है। हर घटना आपको बदल रही है। तो आप मालिक नहीं हैं। हवाओं में कंपते हुए एक झंडे के कपड़े की तरह हैं।
एक झेन कथा है। बोकोजू के आश्रम में मंदिर पर झंडा था बौद्धों का। बोकोजू एक दिन निकलता था, देखा कि सारे भिक्षु इकट्ठे हैं और बड़ा विवाद हो रहा है। विवाद यह था, एक भिक्षु ने, जो बड़ा तार्किक था, उसने सवाल उठाया था कि झंडा हिल रहा है या हवा हिल रही है?
उपद्रव हो गया। कई मंतव्य हो गए। किसी ने कहा, हवा हिल रही है। झंडा कैसे हिलेगा, अगर हवा नहीं हिलेगी तो? हवा हिल रही है। झंडा तो सिर्फ पीछा कर रहा है। किसी ने कहा, इसका प्रमाण क्या? हम कहते हैं, झंडा हिल रहा है, इसलिए हवा हिलती मालूम पड़ रही है। अगर झंडा न हिले, तो हवा नहीं हिलेगी। किसी ने कहा, दोनों हिल रहे हैं।
बोकोजू वहां आया और उसने कहा कि सब यहां से हटो और अपने वृक्षों के नीचे बैठकर ध्यान करो। न झंडा हिल रहा है, न हवा हिल रही है, न दोनों हिल रहे हैं; तुम्हारे मन हिल रहे हैं। जब तुम्हारा मन न हिलेगा, तब झंडा भी नहीं हिलेगा, हवा भी नहीं हिलेगी। तुम यहां से भागो और इसकी फिक्र करो कि तुम्हारा मन न हिले।
मन तभी रुकेगा हिलने से जब हम निर्णय लेना बंद करें और स्वीकार करने
को राजी हो जाएं; और जान लें कि यह वर्तन है गुणों का, यह हो रहा है। इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। मैं इसमें छिपा हूं भीतर जरूर। यह मेरे चारों तरफ घट रहा है, मुझमें नहीं घट रहा है। मुझ से बाहर घट रहा है।

जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता। गुण ही गुणों में बर्तते हैं, ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से चलायमान नहीं होता है।
और जैसे ही कोई व्यक्ति गुणों के वर्तन से वर्तित नहीं होता, गुण कंपते रहते हैं और वह अकंप होता है, दोहरी घटना घटती है। एक तरफ जैसे ही हमारा संबंध गुणों से टूटता है, वैसे ही हमारा संबंध निर्गुण से जुड़ जाता है। इसे ठीक से समझ लें।
जब तक हम गुणों से जुड़े हैं, तब तक पीछे छिपा हुआ निर्गुण परमात्मा हमारे ख्याल में नहीं है। क्योंकि हमारे पास ध्यान एक धारा वाला है। वह सारा ध्यान गुणों की तरफ बह रहा है। जैसे ही हम गुणों से टूटते हैं, यही ध्यान परमात्मा की तरफ बहना शुरू हो जाता है।
निर्गुण हमारे भीतर छिपा है। निर्गुण हम हैं और हमारे चारों तरफ गुणों का जाल है। अगर गुणों से बंधे रहेंगे, तो निर्गुण का बोध नहीं होगा।
अगर गुणों से मुक्त होंगे, तो निर्गुण में स्थिति हो जाती है। और निर्गुण में स्थिति ही सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा में स्थिति है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
नौवां प्रवचन

आत्म-भाव और समत्व

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।। 24।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। 25।।
और जो निरंतर आत्म-भाव में स्थित हुआ, दुख-सुख को समान समझने वाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण में समान भाव वाला और धैर्यवान है; तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है और अपनी निंदा-स्तुति में भी समान भाव वाला है।
तथा जो मान और अपमान में सम है एवं मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है,
वह संपूर्ण आरंभों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आमतौर से समझा जाता है कि ज्ञानोपलब्ध व्यक्ति की समस्त वासनाएं निर्जरा हो जाती हैं और वे सभी तरह की प्रवृत्ति के पार हो जाते हैं। लेकिन आपने कल-परसों के प्रवचन में कहा कि ज्ञानार्जन के बाद भी उनकी प्रकृतिजन्य प्रवृत्तियां काम करती हैं। यहां तक कि वे काम, क्रोध और हिंसा में भी उतरते हैं, यद्यपि वे स्वयं उसकी ओर मात्र साक्षी- भाव रखते हैं। इसे समझाएं।

इस संबंध में कुछ बहुत मूलभूत बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली, साधारणतः हम ऐसा मानते रहे हैं, सुनते रहे हैं कि जो व्यक्ति वीतरागता को, ज्ञान की पूर्णता को उपलब्ध हो जाएगा, उसकी समस्त वृत्तियां क्षीण हो जाएंगी। यह ठीक भी है और गलत भी। ठीक तब है, जब उस व्यक्ति का शरीर गिर जाए। और यह अंतिम शरीर होगा। वीतरागता को उपलब्ध व्यक्ति का यह शरीर अंतिम होगा। इसके बाद नए शरीर को ग्रहण करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वासनाओं के बीज, मूल बीज भस्म हो गए। तो नया जन्म तो नहीं होगा।
इसलिए यह बात ठीक है कि वीतराग पुरुष की समस्त प्रवृत्तियां शून्य हो जाती हैं। लेकिन यह बात किसी और अर्थ में गलत भी है। क्योंकि वीतरागता के बाद भी इस देह में कुछ दिन रहना होगा। बुद्ध चालीस वर्षों तक इस देह में थे। ज्ञान की उपलब्धि के बाद भी शरीर को भूख लगेगी, प्यास भी लगेगी। शरीर रुग्ण भी होगा। शरीर विश्राम भी चाहेगा। शरीर को आक्सीजन की भी जरूरत होगी। जब तक शरीर है, तब तक शरीर की सारी अपनी प्रकृति के अनुकूल जरूरतें होंगी।
और ये जो तीन गुण हैं, सत्व, रज, तम, ये तीन भी शरीर के गुण हैं। जैसे भूख-प्यास शरीर को लगेगी, वैसे ही सत्व, रज, तम की प्रक्रियाएं भी जारी रहेंगी। फर्क जो हो जाएगा, वह यह कि भूख लगते समय भी बुद्ध जानते हैं कि यह भूख मुझे नहीं लगी है, यह भूख शरीर को लगी है। प्यास लगते समय भी जानते हैं कि इस प्यास का मैं साक्षी हूं, भोक्ता नहीं हूं, कर्ता नहीं हूं।
लेकिन शरीर को तो प्यास लगेगी ही। शरीर को तो भूख लगेगी ही। शरीर के
जो भी गुणधर्म हैं, वे जारी रहेंगे। शुद्धतम रूप में जारी रहेंगे। उनमें चेतना के जुड़ जाने से जो विक्षिप्तता पैदा होती है, वह खो जाएगी। इसलिए प्रवृत्ति जारी रहेगी।
बुद्ध भी चलते हैं, उठते हैं, समझाते हैं, बोलते हैं, सोते हैं, भोजन करते हैं, जागते हैं। सारी क्रियाएं जारी हैं। लेकिन इन क्रियाओं के कारण वे बंधते नहीं हैं; वह चीज टूट गई है। इन क्रियाओं से उनका कोई तादात्म्य नहीं है। ये क्रियाएं उनके आस-पास हो रही हैं; बीच का केंद्र इनसे मुक्त हो गया है। चेतना इनसे अस्पर्शित और अछूती रह जाती है।

इसलिए जो जन्मों-जन्मों में व्यक्तित्व के आधार बने होंगे, वे आधार काम करेंगे। इस शरीर के गिर जाने तक शरीर सक्रिय होगा। लेकिन यह सक्रियता वैसी ही हो जाएगी, जैसे आप साइकिल चला रहे हों और पैडल चलाना बंद कर दिया हो, फिर सिर्फ पुरानी गति और मोमेंटम के कारण साइकिल थोड़ी दूर चलती चली जाए। बाहर से देखने वाले को तो ऐसा लगेगा कि अगर आपने साइकिल चलानी बंद कर दी है, तो साइकिल रुक क्यों नहीं जाती है!
आप पैडल चलाने बंद कर दिए हैं, लेकिन आप मीलों से साइकिल चला रहे हैं,
तो एक गति चकों ने ले ली है, वह गति अपनी निर्जरा करेगी। अब आप बिना पैडल मारे भी बैठे हैं साइकिल पर, साइकिल चलती चली जाएगी। यह जो चलना होगा, इसको आप नहीं चला रहे हैं। अब यह साइकिल ही चल रही है। इसमें आप कर्ता नहीं हैं। आप सिर्फ साक्षी हैं। आप साइकिल पर बैठे हैं और साइकिल चल रही है। और एक अनूठा अनुभव होगा कि मैं नहीं चला रहा हूं, साइकिल चल रही है। और साइकिल इसलिए चल रही है कि पीछे मैंने उसे चलाया था।
तो जन्मों-जन्मों में आपने शरीर को चलाया है। और जन्मों-जन्मों में आपने अपने गुणों को गति दी है। सब गुणों का मोमेंटम हो गया है, सब गुणों ने अपनी गति पकड़ ली है। अब वे चलते जाएंगे। जब तक गति क्षीण न हो जाए, तब तक आपका शरीर चलता रहेगा। लेकिन यह चलना वैसा ही है, जैसे बिना पैडल चलाए साइकिल चल रही हो।
पर बाहर से देखने वाले को तो यही लगेगा, साइकिल चल रही है, इसलिए आप चला रहे होंगे। उसका लगना भी ठीक है। लेकिन आप जानते हैं कि अब आप चलाना छोड़ दिए हैं। अब आप सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हैं कि साइकिल रुक जाए।
यह जो भीतर की भाव-दशा है, इसे हमें पहचानने में कठिनाई होती है, क्योंकि हम हमेशा गति दे रहे हैं। और हमें ख्याल में भी नहीं आता कि बिना गति दिए जीवन कैसे चलेगा।
लेकिन जीवन चलता है। थोड़े दिन चल सकता है। उन थोड़े दिन का मजा ही और है। आपने पतवार उठाकर रख ली है, और नाव अपनी गति से बही चली जाती है। न आपकी अब आकांक्षा है कि नाव चले... ।
और ध्यान रहे, आप यह भी कह सकते हैं कि अगर चलाना बंद कर दिया है, तो आप ब्रेक भी लगाकर साइकिल से उतर सकते हैं! आप छलांग लगाकर कूद सकते हैं! जब चलाना ही बंद कर दिया है, तो अब साइकिल पर बैठे रहने का क्या प्रयोजन है? इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जब तक किसी चीज को रोकने की आकांक्षा बनी रहे, उसका अर्थ है कि चलाने की आकांक्षा का विपरीत रूप मौजूद है। जब आकांक्षा पूरी ही जाती है, तो न चलाने का मन रह जाता है, न रुकने का मन रह जाता है। क्योंकि ब्रेक लगाने का तो एक ही अर्थ होगा कि बुद्ध और महावीर को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। और कोई अर्थ नहीं हो सकता। अब कोई प्रयोजन तो रहा नहीं शरीर का, इससे छलांग लगा जानी चाहिए। लेकिन जीवन में ब्रेक लगाने का तो एक ही अर्थ है कि आप आत्महत्या कर लें, आत्मघात कर लें। ध्यान रहे, आत्मघात करने वाला व्यक्ति जीवन से मुक्त नहीं हुआ है। जीवन से बंधे होने के कारण लोग आत्मघात करते हैं। यह उलटा दिखाई पड़ेगा। लेकिन जो लोग आत्मघात करते हैं, उनका निरीक्षण करें। उनके आत्मघात का कारण यह नहीं है कि वे जीवन से मुक्त हो गए हैं। उनके आत्मघात का सदा ही यही कारण है कि जीवन से उन्होंने जो चाहा था, वह जीवन उन्हें नहीं दे पाया। वे जीवन से मुक्त नहीं हुए हैं, जीवन से निराश हो गए हैं। और निराश उसी मात्रा में होते हैं हम, जिस मात्रा में हमने आशा बांधी हो। किसी ने सोचा हो कि जीवन में स्वर्ग मिलने वाला है और वह न मिले, तो दुख होता है। और वैसा व्यक्ति आत्मघात कर लेता है।
ज्ञानी को न तो आकांक्षा है कि जीवन चले, न रुकने का कोई सवाल है। क्योंकि न चलने से कुछ मिलने की आशा है, न रुकने से कुछ मिलने की आशा है। न तो वह सोचता है कि जीवन में चलता रहूं, तो मुझे कोई स्वर्ग मिलने वाला है।
न वह सोचता है कि रुक जाने से कोई स्वर्ग मिलने वाला है। वह जानता है कि स्वर्ग तो मैं हूं। चलने और रुकने से उसका कोई भी संबंध नहीं है।
तो अगर वह कोशिश करके ब्रेक भी लगाए, तो समझना कि अभी पैडल मार रहा है।
क्योंकि ब्रेक लगाना भी पैडल मारने का ही हिस्सा है। वह कुछ कर रहा है।
अभी कर्तापन उसका नहीं गया है। साक्षी नहीं हुआ। अभी ब्रेक लगा रहा है। कल

पैडल लगा रहा था; अब वह ब्रेक लगा रहा है। लेकिन अभी साइकिल से उसका कर्तापन जुड़ा हुआ है।
और साक्षीपन का अर्थ हुआ कि अब वह कुछ भी नहीं कर रहा है। अब जो हो रहा होगा, वह जानता है कि प्रकृति से हो रहा है। वही कृष्ण कह रहे हैं।
कृष्ण कह रहे हैं कि जिस दिन कोई जान लेता है कि गुण ही गुण में बर्त रहे हैं, मैं पृथक हूं, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, मैं करने वाला ही नहीं हूं, जिस दिन ऐसा द्रष्टा-भाव गहन हो जाता है, उसी दिन व्यक्ति गुणातीत अवस्था को उपलब्ध हो जाता है। उसी दिन वह सच्चिदानंदघन हो जाता है, उसी क्षण।
रुकने की वासना भी चलने की वासना का हिस्सा है। रुकना भी चलने का एक ढंग है; क्योंकि रुकना भी एक क्रिया है। तो ऐसा व्यक्ति जिसकी प्रवृत्ति खो गई है... ।
ध्यान रहे, हम तो हमेशा विपरीत में सोचते हैं, इसलिए कठिनाई होती है।
हम सोचते हैं, जिसकी प्रवृत्ति खो गई है, वह निवृत्ति को साधेगा। निवृत्ति भी प्रवृत्ति का एक रूप है। कुछ करना भी कर्ता-भाव है; और कुछ न करने का आग्रह करना भी कर्ता-भाव है। अगर मैं कहता हूं कि यह मैं न करूंगा, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं मानता हूं कि यह मैं कर सकता था। यह भी मैं मानता हूं कि यह मेरा कर्तृत्व है; चाहूं तो करूं, और चाहूं तो न करूं।
लेकिन साक्षी का अर्थ है कि न तो मैं कर सकता हूं, और न न कर सकता हूं।
न तो प्रवृत्ति मेरी है, न निवृत्ति मेरी है। प्रवृत्ति भी गुणों की है और निवृत्ति भी गुणों की है। गुण ही बर्त रहे हैं। वे ही चल रहे हैं; वे ही रुक जाएंगे। तो जब तक चल रहे हैं, मैं उन्हें चलता हुआ देखूंगा। और जब रुक जाएंगे, तब मैं उन्हें रुका हुआ देखूंगा। जब तक जीवन है, तब तक मैं जीवन का साक्षी; और जब मृत्यु होगी, तब मैं मृत्यु का साक्षी रहूंगा। कर्ता मैं न बनूंगा।
इसलिए निवृत्ति को आप मत सोचना कि वह वास्तविक निवृत्ति है। अगर उसमें कर्ता का भाव है, तो वह प्रवृत्ति का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। वह उसका ही उलटा रूप है। कोई दौड़ रहा था कर्ता-भाव से, कोई खड़ा है कर्ता-भाव से; लेकिन कर्ता-भाव मौजूद है।
बुद्ध ने कहीं कहा है कि न तो मैं प्रवृत्त हूं अब और न निवृत्त; न तो मैं गृहस्थ हूं अब और न संन्यस्त; न तो मैं कुछ पकड़े हूं और न मैं कुछ छोड़ता हूं।
इसे ठीक से ख्याल में ले लें, क्योंकि जीवन के बहुत पहलुओं पर यही अड़चन है।
हम सोचते हैं कि कुछ कर रहे हैं, इसको न करें। हमारा ध्यान क्रिया पर लगा है, हमारा ध्यान कर्ता पर नहीं है। क्योंकि करने में भी मैं कर्ता हूं; न करने में भी मैं कर्ता हूं।
सारी चेष्टा द्रष्टा पुरुषों की यह है कि कर्ता का भाव मिट जाए। मैं होने दूं, करूं न। जो हो रहा है, उसे होने दूं; उसमें कुछ छेड़छाड़ भी न करूं। जहां कर्म जा रहे हों, जहां गुण जा रहे हों, उन्हें जाने दूं। मैं उन पर सारी पकड़ छोड़ दूं।
इसीलिए संतत्व अति कठिन हो जाता है। साधुता कठिन नहीं है। क्योंकि साधुता निवृत्ति साधती है। वह प्रवृत्ति के विपरीत है। वह गृहस्थ के विपरीत है। वहां कुछ करने को शेष है, विपरीत करने को शेष है। कोई हिंसा कर रहा है, आप अहिंसा कर रहे हैं। कोई धन इकट्ठा कर रहा है, आप त्याग कर रहे हैं। कोई महल बना रहा है, आप झोपड़े की तरफ जा रहे हैं। कोई शहर की तरफ आ रहा है, आप जंगल की तरफ जा रहे हैं। वहां कुछ काम शेष है।
मन को काम चाहिए। अगर धन इकट्ठा करना बंद कर दें, तो मन कहेगा, बांटना शुरू करो। लेकिन कुछ करो। करते रहो, तो मन जिंदा रहेगा। इसलिए मन तत्काल ही विपरीत क्रियाएं पकड़ा देता है।
स्त्रियों के पीछे भागो। अगर इससे रुकना है, तो मन कहता है, स्त्रियों
से भागो। मगर भागते रहो। क्योंकि मन का संबंध स्त्री से नहीं है, भागने से है। या तो स्त्री की तरफ भागो, या स्त्री की तरफ पीठ करके भागो, लेकिन

भागो। अगर भागते रहे, तो कर्तापन बना रहेगा। अगर भागना रुका, तो कर्तापन रुक जाएगा।
तो मन ऐसे समय तक भी दौड़ाता रहता है, जब कि दौड़ने में कोई अर्थ भी नहीं
रह जाता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने चिकित्सक के पास गया। तब वह बहुत बूढ़ा हो गया था। नब्बे वर्ष उसकी उम्र थी। जीर्ण-शीर्ण उसका शरीर हो गया था। आंखों से ठीक दिखाई भी नहीं पड़ता था। हाथ से लकड़ी टेक-टेक बामुश्किल चल पाता था।
अपने चिकित्सक से उसने कहा कि मैं बड़ी दुविधा में और बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। कुछ करें। चिकित्सक ने पूछा कि तकलीफ क्या है? नसरुद्दीन ने कहा कि संकोच होता है कहते, लेकिन अपने चिकित्सक को तो बात कहनी ही पड़ेगी। मैं अभी भी स्त्रियों का पीछा करता हूं। इतना बूढ़ा हो गया हूं, अब यह कब रुकेगा? मैं अभी भी स्त्रियों का पीछा कर रहा हूं। आंखों से दिखाई नहीं पड़ता, पैरों से चल नहीं सकता; लेकिन स्त्रियों का पीछा करता हूं!
उसके चिकित्सक ने कहा, नसरुद्दीन, चिंता मत करो। यह कोई बीमारी नहीं है। यह तुम्हारे स्वस्थ होने का प्रतीक है कि अभी भी तुम जिंदा हो नब्बे साल में! इससे तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिए।
नसरुद्दीन ने कहा कि वह मेरा दुख भी नहीं है। तुम फिर गलत समझे। तकलीफ
यह है कि मैं स्त्रियों का पीछा तो करता हूं, लेकिन यह भूल गया हूं कि पीछा क्यों कर रहा हूं। आई चेज वीमेन, बट आई कांट रिमेंबर व्हाय। तकलीफ मेरी यह है कि मुझे अब याद नहीं पड़ता कि मैं किसलिए पीछा कर रहा हूं। और अगर स्त्री को पकड़ भी लिया, तो करूंगा क्या! यह मुझे याद नहीं रहा है।
जिंदगी में आपकी बहुत-सी क्रियाएं एक न एक दिन इसी जगह पहुंच जाती हैं, जब आप करते रहते हैं, और अर्थ भी खो जाता है, स्मृति भी खो जाती है कि क्यों कर रहे हैं। लेकिन पुराना मोमेंटम है, गति है। पहले दौड़ता रहा है, दौड़ता रहा है। अब दौड़ने का अर्थ खो गया; मंजिल भी खो गई; अब प्रयोजन भी न रहा। लेकिन पुरानी आदत है, दौड़े चला जा रहा है।
शरीर के साथ, शरीर के गुणों के साथ यही घटना घटती है। रस्सी जल भी जाती है, तो उसकी अकड़ शेष रह जाती है। जली हुई, राख पड़ी हुई लकड़ी में भी उसकी पुरानी अकड़ का ढंग तो बना ही रहता है।
अब आप जाग भी जाते हैं, होश से भी भर जाते हैं, तो भी गुणों की पुरानी रेखाएं चारों तरफ बनी रहती हैं। और उनमें पुरानी गति का वेग है, वे चलती रहती हैं। फर्क यह पड़ जाता है कि अब आप उनको नया वेग नहीं देते। यह क्रांतिकारी मामला है। यह छोटी घटना नहीं है।
आप उनको नया वेग नहीं देते। आप उनमें नया रस नहीं लेते। अब वे चलती भी हैं, तो अपने अतीत के कारण। और अतीत की शक्ति की सीमा है। अगर आप रोज वेग न दें, तो आज नहीं कल पुरानी शक्ति चुक जाएगी। अगर आप रोज शक्ति न दें... ।
आप पेट्रोल भरकर गाड़ी को चला रहे हैं। जितना पेट्रोल भरा है, उतना चुक जाएगा और गाड़ी रुक जाएगी। रोज पेट्रोल डालते चले जाते हैं, तो फिर चुकने का कोई अंत नहीं आता। आपने तय भी कर लिया कि अब पेट्रोल नहीं डालेंगे, तो पुराना पेट्रोल थोड़ी दूर काम देगा; सौ-पचास मील आप चल सकते हैं।
बुद्ध को चालीस वर्ष में ज्ञान हो गया, लेकिन जन्मों-जन्मों में जो ईंधन इकट्ठा किया है, वह चालीस वर्ष तक शरीर को और चला गया। उस चालीस वर्ष में शरीर अपने गुणों में बर्तेगा, बुद्ध सिर्फ देखने वाले हैं।
द्रष्टा और भोक्ता, द्रष्टा और कर्ता, इसके भेद को ख्याल में ले लें,
तो अड़चन नहीं रह जाएगी। अगर आप कर्ता हो जाते हैं, भोक्ता हो जाते हैं, तो आप नया वेग दे रहे हैं। आपने ईंधन डालना शुरू कर दिया। अगर आप सिर्फ द्रष्टा रहते हैं, तो नया वेग नहीं दे रहे हैं। पुराने वेग की सीमा है, वह कट जाएगी। और जिस दिन पुराना वेग चुक जाएगा, शरीर गिर जाएगा; गुण वापस प्रकृति में मिल जाएंगे, और आप सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा में।

दूसरा प्रश्नः जड़ त्रिगुणों से चैतन्य साक्षी का तादात्म्य कैसे संभव हो पाता है, यह समझ में नहीं आता!

दर्पण में आप अपना चेहरा देखते हैं। दर्पण जड़ है, लेकिन आपके चेहरे का प्रतिबिंब बनाता है। चेहरा देखकर आप खुश होते हैं और आप कहते हैं, यह मैं हूं। वह जो दर्पण में आपको दिखाई पड़ रहा है, उसे देखकर आप कहते हैं, यह मैं हूं! कितना सुंदर हूं! कितना स्वस्थ हूं!
आपके शरीर में जो प्रकृति काम कर रही है, वह जड़ है, लेकिन दर्पण की तरह है। उसमें आप अपना प्रतिबिंब पकड़ते हैं। और दर्पण में तो आपको पता चलता है कि प्रतिबिंब है, लेकिन अगर दर्पण सदा ही आपके साथ जुड़ा रहे; उठें, बैठें, कुछ भी करें, दर्पण साथ ही हो; सोएं, कहीं भी जाएं, दर्पण साथ ही हो; तो आपको यह भूल जाएगा कि दर्पण में जो दिखाई पड़ रहा है, वह मेरा प्रतिबिंब है। आपको लगने लगेगा, वह मैं हूं।
यही घटना घट रही है। आप अपने प्रकृति के गुणों में अपने प्रतिबिंब को
पा रहे हैं। और प्रतिबिंब को सदा पा रहे हैं। एक क्षण को भी वह प्रतिबिंब हटता नहीं वहां से। निरंतर उस प्रतिबिंब को पाने के कारण एक भी क्षण उसका अभाव नहीं होता। इस सतत चोट के कारण यह भाव निर्मित होता है कि यह मैं हूं। यह भाव इसलिए हो पाता है कि चेतना समर्थ है सत्य को जानने में। चेतना चूंकि समर्थ है सत्य को जानने में, इसलिए चेतना समर्थ है भ्रांत होने में। हमारे सभी सामर्थ्य दोहरे होते हैं। आप जिंदा हैं, क्योंकि आप मरने में समर्थ हैं। आप स्वस्थ हैं, क्योंकि आप बीमार होने में समर्थ हैं। आपसे ठीक हो सकता है, क्योंकि आप गलत करने में समर्थ हैं। इसे ठीक से समझ लें। हमारी सारी सामर्थ्य दोहरी है। अगर विपरीत हम न कर सकते हों, तो सामर्थ्य है ही नहीं। जैसे किसी आदमी को हम कहें कि तुम ठीक करने के हकदार हो, लेकिन गलत करने की तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है। तुम्हें सिर्फ ठीक करने की स्वतंत्रता है। तो स्वतंत्रता समाप्त हो गई। स्वतंत्रता का अर्थ ही यह है कि गलत करने की भी स्वतंत्रता है। तभी ठीक करने की स्वतंत्रता का कोई अर्थ है।
चेतना स्वतंत्र है। स्वतंत्रता चेतना का गुण है। वह उसका स्वभाव है। स्वतंत्रता का अर्थ है कि दोनों तरफ जाने का उपाय है। मैं भ्रांति भी कर सकता हूं। मैं गलत भी कर सकता हूं। और गलत कर सकता हूं, इसीलिए ठीक को खोजने की सुविधा है।
ये दो उपाय हैं, या तो मैं अपने को जान लूं, जो मैं हूं; यह सत्य का जानना होगा। और या मैं अपने को उससे जोड़ लूं, जो मैं नहीं हूं; यह असत्य के साथ एक हो जाने का मार्ग होगा। ये दोनों मार्ग खुले हैं।
सभी का मन होता है कि यह स्वतंत्रता खतरनाक है। यह न होती, तो अच्छा था। लेकिन आपको पता नहीं कि आप क्या सोच रहे हैं। आपको पता नहीं है, आप क्या मांग रहे हैं।
हर आदमी सोचता है कि मैं सदा ही स्वस्थ होता और कभी बीमार न होता, तो बहुत अच्छा। लेकिन आपको पता नहीं। आप जो मांग रहे हैं, वह नासमझी से भरा हुआ है। अगर आप कभी भी बीमार न होते, तो आपको स्वास्थ्य का कोई पता ही नहीं चलता। और अगर आप दुखी न हो सकते होते, तो सुख की कोई प्रतीति नहीं हो सकती। कैसे होती सुख की प्रतीति? और सत्य अगर आपको मिला ही होता हाथ में और असत्य की तरफ जाने का कोई मार्ग न होता, तो वह सत्य दो कौड़ी का होता, उसका कोई मूल्य आपको कभी पता नहीं चलता। सत्य का मूल्य है, क्योंकि हम उसे खो सकते हैं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जगत में प्रेम की संभावना है, क्योंकि प्रेम खो सकता है। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस दिन हम आदमी को अमर कर लेंगे और आदमी की मृत्यु बंद हो जाएगी, उसी दिन जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, सब खो जाएगा। सब महत्वपूर्ण मृत्यु पर टिका है।
आप प्रेम कर पाते हैं, क्योंकि जिसे आप प्रेम करते हैं, वह कल मर सकता है। अगर आपको पता हो कि शाश्वत है सब, न कोई मर रहा है, न कोई मरने का सवाल है, प्रेम तिरोहित हो जाएगा। मृत्यु के बिना प्रेम का कोई उपाय नहीं। मृत्यु के बिना मित्रता व्यर्थ हो जाएगी। मृत्यु है, इसलिए मित्रता में इतनी सार्थकता है। मृत्यु न होगी, तो जीवन की सारी जिन चीजों को हम मूल्य दे रहे हैं, कोई मूल्य नहीं है। विपरीत से मूल्य पैदा होता है।

इसलिए सुबह जब फूल खिलता है, उसका सौंदर्य सिर्फ खिलने में ही नहीं है, इस बात में भी छिपा है कि सांझ वह मुरझा जाएगा। और अगर फूल कभी न मुर्झाए, तो वह प्लास्टिक का फूल हो जाए। और अगर बिल्कुल ही--वह प्लास्टिक का फूल भी नष्ट होता है--अगर फूल सदा के लिए हो जाए, तो उसकी तरफ देखने का भी कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।
जीवन की सारी रहस्यमयता विपरीत पर निर्भर है। सत्य का मूल्य है, क्योंकि असत्य में उतरने का उपाय है। और परमात्मा में जाने का रस है, क्योंकि संसार में आने का दुख है।
लोग मुझसे पूछते हैं, आखिर परमात्मा संसार बना ही क्यों रहा है? संसार
है ही क्यों?
अगर संसार न हो, तो परमात्मा का कोई भी रस नहीं है। परमात्मा अपने से विपरीत को पैदा कर रहा है, ताकि आप उसे खो सकें और पा सकें। और जिसे हम खो सकते हैं, उसे पाने का आनंद है। जिसे हम खो ही नहीं सकते, वह हमारे सिर पर बोझ हो जाएगा।
अगर परमात्मा कुछ ऐसा हो कि जिसे आप खो ही न सकें, तो आप जितने परमात्मा से ऊब जाएंगे, उतने किसी चीज से नहीं। परमात्मा से ऊबने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि क्षण में आप उसे खो सकते हैं। और जिस दिन आप संसार से ऊब जाएं, उसी क्षण परमात्मा में लीन वापस हो सकते हैं।
अगर इस बात को ठीक से समझ लें, तो जीवन की बहुत-सी समस्याएं साफ हो जाएंगी।
पहला बुनियादी सिद्धांत है कि मनुष्य की आत्मा स्वतंत्रता है, परम स्वातंष्य है, टोटल फ्रीडम। यह जो परम स्वातंष्य है चेतना का, इसको ही हमने मोक्ष कहा है। जो इसे जान लेता है, वह मुक्त है। जो इसे नहीं जानता, वह बंधा हुआ है।
लेकिन वह बंधा इसीलिए है कि वह बंधना चाहता है। और तब तक बंधा रहेगा,
जब तक बंधन इतना दुख न देने लगे कि उसे तोड़ने का भाव न आ जाए, उससे छूटने का भाव न आ जाए, उससे उठने का भाव न आ जाए।
और इस जगत में कोई भी घटना असमय नहीं घटती; अपने समय पर घटेगी। समय का मतलब यह है कि जब आप पक जाएंगे, तब घटेगी। जब फल पक जाएगा, तो गिर जाएगा। जब तक कच्चा है, तब तक लटका रहेगा। जिस दिन आपका दुख भी पक जाएगा संसार के साथ, उस दिन आप तत्क्षण टूट जाएंगे और परमात्मा में गिर जाएंगे।
अगर आप अटके हैं, तो इसलिए नहीं कि आपकी साधना में कोई कमी है। आप अटके हैं इसलिए कि आप दुख को भी पूरा नहीं भोग रहे हैं। आप पकने के भी पूरे उपाय नहीं होने दे रहे हैं।
समझ लें कि एक फल जो धूप में पकता हो, वह फल अपने को छाया में छिपाए हुए
है कि धूप न लग जाए। और फिर वह सोच रहा है, मैं कच्चा क्यों हूं! आप ऐसे ही फल हैं, जो सब तरफ से अपने को छिपा भी रहे हैं, बचा भी रहे हैं। उससे ही आप बचा रहे हैं, जिसकी पीड़ा के कारण ही आप मुक्त हो सकेंगे।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, संसार में पूरे जाओ, ताकि तुम संसार के बाहर आ सको। बाहर जाने का एक ही उपाय है कि तुम पूरे भीतर चले जाओ; वहां कुछ और जानने को शेष न रह जाए।
दुख से छूटने की एक ही व्यवस्था है, एक ही विधि है। बाकी सब विधियां बहाने हैं। और वह विधि यह है कि तुम दुख को पूरा भोग लो। तुम उसमें पक जाओ। तुम अपने ही आप गिर जाओगे।
कृष्ण यही कह रहे हैं कि अर्जुन, तू व्यर्थ ही परेशान हो रहा है। गुण अपनी गति से चल रहे हैं। गुण अपनी गति से पक रहे हैं। और जहां से तू भागना चाहता है, वहां से भागकर तू कभी मुक्त न हो सकेगा। क्योंकि तू छाया खोज रहा है। इस युद्ध से भागकर तू बचा लेगा अपने को उस महापीड़ा से गुजरने से, जो कि मुक्ति का कारण बन जाएगी। तू इस युद्ध से गुजर जा। तू इस युद्ध को हो जाने दे। तू रोक मत। तू डर भी मत। तू संकोच भी मत ले। तू निर्भय भाव से इसमें प्रवेश कर जा। और जो घटना तेरे चारों तरफ इकट्ठी हो गई है, उसको उसकी पूर्णता में तेरे भीतर बिंध जाने दे। यह आग पूरी जल उठे। तू इसमें पूरी तरह राख हो जा। उस राख से ही तेरे नए जीवन का अंकुरण होगा। उस राख से ही तू अमृत को जानने में समर्थ हो पाएगा।

जो भी, जो भी जीवन में है, वह अकारण नहीं है। दुख है, संसार है, बंधन हैं, वे अकारण नहीं हैं। उसकी उपादेयता है। और बड़ी उपादेयता यह है कि वह अपने से विपरीत की तरफ इशारा करता है।
आपकी चेतना बंध सकती है, क्योंकि आपकी चेतना स्वतंत्र हो सकती है। और
यह आपके हाथ में है। और जब मैं कहता हूं, आपके हाथ में है, तब आपको ऐसा लगता है, तो फिर मैं इसी वक्त स्वतंत्र क्यों नहीं हो जाता? आप सोचते ही हैं कि आप इसी वक्त स्वतंत्र क्यों नहीं हो जाते! लेकिन उपाय आप सब कर रहे हैं कि आप बंधे रहें।
एक मित्र मेरे पास आए। कहते थे, मन बड़ा अशांत है; शांति का कोई उपाय बताएं। मैंने उनसे पूछा कि शांति की फिक्र ही न करें, पहले मुझे यह बताएं कि अशांत क्यों हैं? क्योंकि मैं शांति का उपाय बताऊं और आप अशांति का आयोजन किए चले जाएं, तो कुछ हल न होगा। और उससे और असुविधा होगी। वैसी हालत हो जाएगी कि एक आदमी कार में एक्सीलरेटर भी दबा रहा है और ब्रेक भी लगा रहा है।
इसीलिए कार में इंतजाम करना पड़ा--क्योंकि आदमी का स्वभाव परिचित है हमें--कि उसी पैर से एक्सीलरेटर दबाएं और उसी से ब्रेक। क्योंकि आपसे डर है कि आप दोनों काम एक साथ कर सकते हैं। आप एक साथ दोनों काम कर सकते हैं, एक्सीलरेटर भी दबा दें और ब्रेक भी दबा दें। तो कठिनाई खड़ी हो जाए। तो ब्रेक दबाने के लिए एक्सीलरेटर से पैर हट आए।
लेकिन मन के साथ हम ऐसा नहीं कर पा रहे हैं। मन के साथ हमारी हालत ऐसी
है कि हम दोनों काम एक साथ करना चाहते हैं।
उन मित्र से मैंने पूछा कि तकलीफ क्या है? किस वजह से अशांत हैं? तो उन्होंने कहा, अशांति का कारण यह है कि मेरा लड़का मेरी मानता नहीं।
किसका लड़का किसकी मानता है? इसमें लड़का कारण नहीं है। इसमें आप मनाना क्यों चाहते हैं? लड़का अपना जीवन जीएगा। मैंने उनसे पूछा, आपने अपने बाप की मानी थी?
कौन अपने बाप की मानता है? लड़का और रास्तों पर चलेगा, जिन पर बाप कभी नहीं चला। लड़का और दूसरी दुनिया में जीएगा, जिसमें बाप कभी नहीं जीया। लड़के और बाप के समय में भेद है, उनके मार्गों में भेद होगा। उनकी परिस्थितियों में भेद है, उनके विचारों में भेद होगा। लड़का अगर जिंदा है, तो बाप से भिन्न चलेगा। लड़का अगर मुर्दा है, तो बाप की मानकर चलेगा।
अब बाप का दुख यह है कि लड़का अगर मुर्दा है, तो वह परेशान है। अगर लड़का जिंदा है, तो वह परेशान है। लड़का मुर्दा है, तो वह समझता है कि न होने के बराबर है।
आपको ख्याल में नहीं है, अगर लड़का बिल्कुल आप जैसा कहें, वैसा ही करे,
तो भी आप दुखी हो जाएंगे। आप कहें बैठो, तो वह बैठ जाए। आप कहें उठो, तो उठ जाए। आप कहें बाएं घूमो, तो बाएं घूम जाए। आप जो कहें उसको रत्ती-रत्ती वैसा ही करे, तो आप सिर पीट लेंगे। आप कहेंगे, यह लड़का क्या हुआ, एक व्यर्थता है। इससे तो होता न होता बराबर है। इसके होने का कोई अर्थ ही नहीं है। होने का पता ही भिन्नता से चलता है।
तो आप इसलिए दुखी नहीं हैं, मैंने उनसे कहा कि लड़का मानता नहीं है। आप मनाना क्यों चाहते हैं कि माने? आपका दुख आपके कारण आ रहा है। आप अपने अहंकार को थोपना चाहते हैं। और मेरे पास आप शांति की तलाश करने आए हैं। लड़के को अपने मार्ग पर चलने दें, अशांति फिर कहां है?
तब उनका घाव छू गया। तब उन्होंने कहा, आप क्या कह रहे हैं! अगर उसको मार्ग पर चलने दें, तो सब बर्बाद कर देगा। सब धन मिटा डालेगा।
मैंने उनको पूछा, आप कब तक धन की सुरक्षा करिएगा? कल आप समाप्त हो जाएंगे और धन मिटेगा। आपका लड़का मिटाए, कोई और मिटाए; धन मिटेगा। धन मिटने को है। तो आपका दुख लड़के से नहीं आ रहा है। आपका दुख धन पर जो आपकी पकड़ है, उससे आ रहा है। आप मरेंगे दुखी। क्योंकि मरते वक्त आपको लगेगा, अब धन का क्या होगा! कोई न कोई मिटाएगा।
इसलिए धनी न सुख से जी पाता है, न सुख से मर पाता है। मरते वक्त यह भय लगता है कि मैंने जिंदगीभर कमाया, अब इसको कोई मिटा देगा। और कोई न कोई मिटाएगा आखिर।

इस जगत में जो भी बनाया जाता है, वह मिटता है। इस जगत में कोई भी ऐसी चीज नहीं, जो न मिटे। आपका धन अपवाद नहीं हो सकता। तो आप दुखी इसलिए हो रहे हैं कि आपका धन कोई न मिटा दे; अशांत इसलिए हो रहे हैं। और शांति की कोई तरकीब खोजते हैं।
मान लें कि धन तो मिटने वाली चीज है; मिटेगी। और लड़के अपने मार्गों पर जाएंगे। और पिता लड़कों को पैदा करता है, इसलिए उनके जीवन का मालिक नहीं है। फिर मुझे कहें कि दुख कहां है।
अशांति के कारण खो जाएं, तो आदमी शांत हो जाता है। शांति के कारण खोजने की जरूरत ही नहीं है। शांति मनुष्य का स्वभाव है। अशांति अर्जित करनी पड़ती है। हम अशांति अर्जित करते चले जाते हैं और शांति की पूछताछ शुरू कर देते हैं।
अशांति के साथ जो इनवेस्टमेंट है, वह भी हम छोड़ना नहीं चाहते। जो लाभ है, वह भी हम लेना चाहते हैं। और शांति के साथ जो लाभ मिल सकता है, वह भी हम लेना चाहते हैं। और दोनों हाथ लड्डुओं का कोई भी उपाय नहीं है।
यह जो संसार के साथ हमारा जोड़ है, गुणों के साथ, शरीर के साथ, हमारा तादात्म्य है, उसमें भी हमें लाभ दिखाई पड़ता है, इसलिए है। हमने जानकर वह बनाया हुआ है। हम अपने को समझाए हुए हैं कि ऐसा है। फिर संतों की बातें सुनते हैं, उससे भी लोभ जगता है कि हमको भी यह गुणातीत अवस्था कैसे पैदा हो जाए! तो हम पूछना शुरू करते हैं, क्या करें? कैसे इससे छूटें?
मजा करीब-करीब ऐसा है कि जिसको आप पकड़े हुए हैं, आप पूछते हैं, इससे कैसे छूटें? आप पकड़े हुए हैं, यह ख्याल में आ जाए, तो छूटने के लिए कुछ भी न करना होगा, सिर्फ पकड़ छोड़ देनी होगी।
इस शरीर के साथ आप अपने को एक मान लेते हैं। आप पकड़े हुए हैं। आप इस शरीर को सुंदर मानते हैं। इस शरीर के साथ भोग की आशा है। इस शरीर से आपको सुख मिलते हैं, चाहे वे कोई भी सुख हों--चाहे संभोग का सुख हो, चाहे स्वादिष्ट भोजन का सुख हो, चाहे संगीत का सुख हो--इस शरीर के माध्यम से आपको मिलते हैं। वे सब सुख हैं। अगर वे सुख आपको अभी भी सुख दिखाई पड़ रहे हैं, तो शरीर के साथ आप पकड़ कैसे छोड़ सकते हैं! क्योंकि इसके द्वारा ही वे मिलते हैं। अंत तक पकड़े रहते हैं।
एक बड़ी महत्वपूर्ण कहानी है। अमेरिकी अभिनेत्री मर्लिन मनरो मरी, तो
एक कहानी प्रचलित हो गई कि जब वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंची, तो सेंट पीटर, जो स्वर्ग के द्वारपाल हैं, ईसाइयों के स्वर्ग के द्वारपाल हैं, उन्होंने मनरो को देखा। वह अति सुंदर उसकी काया।
सेंट पीटर ने कहा, एक नियम है स्वर्ग में प्रवेश का। स्वर्ग के द्वार
के बाहर एक छोटा-सा पुल है, उस पुल पर से गुजरना पड़ता है। उस पुल के नीचे अनंत खाई है। उस खाई की ही गहराई में नरक है। उस पुल पर से गुजरते समय अगर एक भी बुरा विचार आ जाए--बुरे विचार का मतलब, शरीर से बंधा हुआ विचार आ जाए--तो तत्क्षण व्यक्ति पुल से नीचे गिर जाता है और नरक में प्रवेश हो जाता है।
मनरो और सेंट पीटर दोनों उस पुल से चले। और घटना यह घटी कि दो-तीन कदम
के बाद सेंट पीटर नीचे गिर गए। मनरो जैसी सुंदर स्त्री को चलते देखकर कुछ ख्याल सेंट पीटर को आ गया होगा!
स्वर्ग के द्वार पर खड़े होकर भी अगर शरीर से सुख लेने का जरा-सा भी ख्याल आ जाए, तो तादात्म्य हो गया। जिस चीज से हमें सुख लेने का ख्याल होता है, उसी से तादात्म्य हो जाता है।
शरीर से सुख मिल सकता है, जब तक यह ख्याल है, तब तक आप जुड़े रहेंगे। जिस दिन आपको यह समझ में आ जाएगा कि शरीर से मिलने वाला हर सुख केवल दुख का ही एक रूप है; जिस दिन आप यह खोज लेंगे कि शरीर से मिलने वाले हर सुख के पीछे दुख ही छिपा है; सुख केवल ऊपर की पर्त है; सिर्फ कड़वी जहर की गोली के ऊपर लगाई गई शक्कर से ज्यादा नहीं; उसी दिन तादात्म्य टूटना शुरू हो जाएगा। यह पूछना कि कैसे जड़ त्रिगुणों से चैतन्य का तादात्म्य संभव हो पाता है?
इसीलिए संभव हो पाता है कि आप स्वतंत्र हैं। चाहें तो तादात्म्य बना सकते हैं, चाहें तो हटा सकते हैं। जब तक आप सोचते हैं कि सुख बाहर से मिल

सकता है, तब तक यह तादात्म्य नहीं छूटेगा। जिस दिन आप जानेंगे, सुख मेरे भीतर है, मेरा स्वभाव है, उस दिन यह तादात्म्य छूट जाएगा।
अभी तो हम परमात्मा की भी खोज करें, तो भी शरीर से ही करनी पड़ती है। अभी तो हम पूछते हैं, परमात्मा को भी खोजें, तो कैसा आसन लगाएं? किस भांति खड़े हों? कैसे पूजा करें? कैसे पाठ करें? कहां जाएं--हिमालय जाएं, कि मक्का, कि मदीना, कि काशी, कि जेरुसलम--कहां जाएं? कैसा भोजन करें? कैसे बैठें? कैसे उठें? ताकि परमात्मा को पा लें!
हमारी शरीर के साथ जोड़ की स्थिति इतनी गहन हो गई है कि हम परमात्मा को
भी शरीर से ही खोजना चाहते हैं। हमें ख्याल ही नहीं है कि शरीर के अतिरिक्त भी हमारा कोई होना है। और यह ख्याल भी तभी आएगा, जब शरीर से हमें सब तरफ दुख दिखाई देने लगें।
बुद्ध ने निरंतर, सुबह से सांझ, एक ही बात कही है अपने भिक्षुओं को कि जीवन दुख है। और सिर्फ इसलिए कही है, ताकि तुम परम जीवन को जान सको। जब तुम्हें यहां दुख ही दुख दिखाई देने लगे, तो इस दुख से छूटने में जरा भी बाधा नहीं रह जाएगी।
जहां दुख है, वहां से मन हटने लगता है। और जहां सुख है, वहां मन की सहज गति है।

तीसरा प्रश्नः कृष्ण ने कई जगह सच्चिदानंदघन परमात्मा शब्द को दोहराया है। यह सच्चिदानंदघन परमात्मा क्या है?

आप! आपकी तरफ इशारा कर रहे हैं कृष्ण। वह जो चैतन्य है आपका, जहां से
आप मुझे सुन रहे हैं; जहां से आप मुझे देख रहे हैं; वह जो आपके भीतर बैठी हुई जगह है, खाली जगह है, शून्य है।
एक तो मैं हूं यहां, बोल रहा हूं। और एक आप हैं, जो सुन रहे हैं। आपके कान नहीं सुन रहे हैं। कान तो केवल शब्दों को वहां तक ले जा रहे हैं, जहां आप सुन रहे हैं। एक तो मैं हूं, जो यहां बैठा हूं। और आप मुझे देख रहे हैं। आपकी आंखें मुझे नहीं देख रही हैं। आंखें तो केवल मेरे प्रतिबिंब को वहां तक ले जा रही हैं, भीतर आपके, जहां आप देख रहे हैं।
वह जो भीतर छिपा है सारी इंद्रियों के बीच में; वह जो केंद्र है सारी इंद्रियों के बीच में; जो स्वयं कोई इंद्रिय नहीं है। वह जो चेतना का केंद्र है भीतर, जहां से सारा होश है, जिसके कारण इंद्रियां चारों तरफ देख रही हैं, पहचान रही हैं, उसकी तरफ इशारा है। वह सच्चिदानंदघन परमात्मा है। यह शब्द समझ लेने जैसा है। सच्चिदानंद, सत चित आनंद, तीन बड़े महत्वपूर्ण शब्दों से बना है।
सत का अर्थ होता है, जिसकी ही एकमात्र सत्ता है। बाकी सब चीजें स्वप्नवत हैं। वस्तुतः जो सत्य है, जिसका एक्झिस्टेंस है, वह सत। बाकी आप जो चारों तरफ देख रहे हैं, वह कोई भी वास्तविक नहीं है। सब बहता हुआ प्रवाह है; स्वप्न की लंबी एक धारा है। कल्पना से ज्यादा उसका मूल्य नहीं है। और आप देख भी नहीं पाते कि वहां चीजें बदल जा रही हैं। वहां किसी चीज की सत्ता नहीं है। परिवर्तन ही वहां सब कुछ है। जिसकी वास्तविक सत्ता है, वह कभी रूपांतरित नहीं होगा।
भारतीय मनीषियों का सत्य का एक लक्षण है, और वह यह कि जो कभी रूपांतरित न हो; जो सदा वही रहे, जो है। जो कभी बदले न, जिसके स्वभाव में कोई परिवर्तन न हो; जिसके स्वभाव में थिरता हो, अनंत थिरता हो, वही सत्य है। बाकी सब चीजें जो बदल जाती हैं, वे सत्य नहीं हैं। बदलने का मतलब ही यह है कि उनके भीतर कोई सब्स्टेंस, कोई सत्व नहीं है। ऊपर-ऊपर की चीजें हैं, बदलती चली जाती हैं।
जो सदा अपरिवर्तित खड़ा है! आपके भीतर एक ऐसा केंद्र है, जो सदा अपरिवर्तित खड़ा है। आप बच्चे थे, तब भी वह वैसा ही था। आप जवान हो गए, तब भी वह वैसा ही है। वह जवान नहीं हुआ; आपकी देह ही जवान हुई। यह जवानी गुणों का वर्तन है। कल आप बूढ़े हो जाएंगे, तब भी वह बूढ़ा नहीं होगा। यह बुढ़ापा भी आपके शरीर के गुणों का वर्तन होगा।

एक दिन आप पैदा हुए, तब वह पैदा नहीं हुआ। और एक दिन आप मरेंगे, तब वह मरेगा नहीं। वह सदा वही है। वह जन्म के पहले भी ऐसा ही था; और मृत्यु के बाद भी ऐसा ही होगा। वह आधार है। उस पर सब चीजें आती और जाती हैं। लेकिन वह स्वयं निरंतर वैसा का वैसा बना है।
उस मूल आधार को कहते हैं सत।
दूसरा शब्द है, चित। वह मूल आधार केवल है ही नहीं, बल्कि चेतन है, होश
से भरा है। होश उसका लक्षण है। उसे कुछ भी उपाय करके बेहोश नहीं किया जा सकता। जब आप बेहोश हो जाते हैं, तब भी वह बेहोश नहीं होता। सिर्फ आपके गुण बेहोश हो जाते हैं। जब आपको कोई शराब पिला देता है, तो चित में तो शराब डाली नहीं जा सकती। शराब तो शरीर में ही डाली जाती है। जब आपको मार्फिया दिया जा रहा है, तब भी; क्लोरोफार्म सुंघाया जा रहा है, तब भी; जो भी हो रहा है, वह शरीर में हो रहा है; शरीर के गुणधर्मों में हो रहा है। वह जो भीतर चित है, उसको बेहोश करने का कोई उपाय नहीं है।
तांत्रिकों में तो बड़ी पुरानी साधनाएं हैं, जिनमें जहर का, शराब का,
सब तरह के नशे--गांजा, भांग, अफीम--सबका उपयोग किया जाता है। और उपयोग इसलिए किया जाता है, ताकि इस बात की परख आ जाए कि कैसे ही नशे का तत्व हो, कैसा ही मादक द्रव्य हो, वह केवल शरीर को छूता है, मुझे नहीं। और तब तक तांत्रिक नहीं मानता कि आप स्थितप्रज्ञ हुए, गुणातीत हुए, जब तक कि आपको सब तरह के जहर न दे दिए जाएं, और आप होश में न बने रहें। अगर आप होश खो दें, तो वह मानता है, अभी आप गुणातीत नहीं हुए। होश बना ही रहे, भीतर के होश की धारा न टूटे।
आपके भीतर के होश की धारा भी नहीं टूटती। किसी के भीतर की धारा नहीं टूटती। लेकिन आप भीतर की धारा से परिचित ही नहीं हैं। भीतर तो कोई जागा ही रहता है। वह उसका स्वभाव है। चितता, कांशसनेस, उसका स्वभाव है।
लेकिन आप अपने को माने हुए हैं शरीर। इसलिए जब शरीर बेहोश होता है, तो
आप समझते हैं, आप बेहोश हो गए। यह आपकी मान्यता है। इस मान्यता के कारण आप समझ लेते हैं कि बेहोश हो गए। आप बेहोश होते नहीं।
अगर आप हिप्नोसिस से परिचित हैं, तो आपको पता होगा कि हिप्नोसिस का सारा खेल इतना ही है कि हिप्नोटाइजर जो आपसे कहे, आप उसको मान लें। अगर आप मान लें, तो वैसा ही होना शुरू हो जाएगा। मान्यता तथ्य बन जाती है।
अगर हिप्नोटिस्ट कहता है कि आपके हाथ में उसने एक अंगारा रख दिया है...
। आप आंख बंद किए पड़े हैं और आपके हाथ में उठाकर एक रुपए का सिक्का रख देता है। कहता है, अंगारा रख दिया जलता हुआ। आप घबड़ाकर फेंक देंगे रुपया, क्योंकि आप मान लेते हैं कि अंगारा है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि आप न केवल फेंक देते हैं, बल्कि आपके हाथ में फफोला भी आ जाता है; जब कि वहां कोई अंगारा नहीं था। आपके हाथ ने बिल्कुल वही व्यवहार किया, जो आपने मान लिया।
हिप्नोसिस पर बड़ा काम पश्चिम में हो रहा है। और उससे एक बात पता चलती
है कि आदमी की चेतना मान लेने से ग्रसित हो जाती है। आपको पानी पिलाया जाए सम्मोहित अवस्था में और कहा जाए, शराब है। आप बेहोश हो जाएंगे, नशा आ जाएगा।
अभी कुछ प्रयोग तो ऐसे हुए हैं, जो कि बिल्कुल अविश्वसनीय हैं। जिन पर
कि आदमी के बस की बात ही समझ में नहीं आती।
हारवर्ड यूनिवर्सिटी में एक मरीज पर वे हिप्नोसिस का प्रयोग कर रहे थे। उसे बेहोश करके कहा गया कि उसके खून में ब्लड शुगर बढ़ रही है--सम्मोहित करके। जब उसे सम्मोहित किया गया, तो उसका खून लिया गया। उसकी जांच की गई। उसकी नार्मल ब्लड शुगर है।
ब्लड शुगर बड़ा मामला है। जब तक उसको बहुत शक्कर न खिलाई जाए, ग्लूकोज
का इंजेक्शन न दिया जाए, तब तक उसके ब्लड में शुगर जा नहीं सकती। न उसे ग्लूकोज दिया जा रहा है, न शक्कर दी जा रही है, न कुछ। सिर्फ सजेशन दिया जा रहा है, सुझाव, कि तेरे खून में शुगर बढ़ रही है।
और उसके खून में शुगर बढ़ी। और थोड़ी-बहुत नहीं, पांच सौ तक उसके खून में शुगर बढ़ी। सिर्फ सुझाव से! खून में कुछ डाला नहीं गया है। जैसे-जैसे सुझाव गहन होने लगा, वैसे-वैसे खून में शुगर की मात्रा बढ़ती चली गई।

इस चैतन्य की एक क्षमता है कि यह जो भी मान ले, वैसी घटना घटनी शुरू हो जाएगी। यह हमारी मान्यता है कि मैं शरीर हूं, इसलिए हम शरीर हो गए हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिन बच्चों को बचपन से कहा जाए, तुम मूढ़ हो,
वे मूढ़ हो जाएंगे। न मालूम सैकड़ों बच्चों को हम अपने हाथ से मूढ़ बना देते हैं। लाखों बच्चे इसलिए मूढ़ रह जाते हैं कि घर में मां-बाप उनको मूढ़ कह रहे हैं; स्कूल में शिक्षक उनको मूढ़ कह रहे हैं। उनको बार-बार यह सुझाव मिलता है, और उनको बात जंच जाती है। जब सभी कह रहे हैं, तो बात ठीक होगी ही। यह एक तरह का सम्मोहन है। फिर वे मूढ़ ही रह जाते हैं।
जिन बच्चों को बचपन से ख्याल मिलता है कि वे बड़े प्रतिभाशाली हैं, टैलेंटेड हैं, गुणवान हैं, उनमें वैसी वृत्ति पैदा होने लगती है। वे जो मानने लगते हैं, वैसे हो जाते हैं। मान्यता आपका जीवन बन जाती है।
तो आपको ख्याल है कि रात आप सो जाते हैं, इसलिए आपको लगता है, आप सोए। सिर्फ शरीर सोता है, आप कभी नहीं सोते। यह सिर्फ धारणा है आपकी और बचपन से समझाया जा रहा है, इसलिए आप सो जाते हैं। आपको लगेगा कि सिर्फ धारणा ऐसे कैसे हो सकती है!
अमेजान में अभी तक आदिवासियों में जब भी स्त्री को बच्चा होगा, तो पति
भी रोएगा, छाती पीटेगा, चिल्लाएगा। एक खाट पर पत्नी, एक खाट पर पति! प्रसव-पीड़ा दोनों को होती है।
हजारों साल से यह होता रहा। और जब पहली दफा ईसाई मिशनरी अमेजान पहुंचे, तो उनको विश्वास भी नहीं आया कि यह क्या पागलपन है। यह आदमी जरूर बन रहा होगा। क्योंकि हमें ख्याल ही नहीं है कि जब स्त्री को बच्चा पैदा हो रहा है, इससे पति को प्रसव-पीड़ा का क्या संबंध है!
लेकिन जब जांच-पड़ताल की गई, तो वे बड़े चकित हुए कि वस्तुतः पीड़ा होती है। पति को पीड़ा होती है। क्योंकि अमेजान में यह विश्वास है कि बच्चा पति और पत्नी दोनों का कृत्य है। इसलिए अकेली पत्नी को क्यों पीड़ा हो! दोनों का हाथ है उसमें, आधा-आधा दोनों का बच्चा है, इसलिए दोनों कष्ट पाएंगे जब प्रसव होगा। और जांच से पता चला है कि शरीर में वास्तविक पीड़ा होती है। जैसे स्त्री के शरीर में सारा खिंचाव और तनाव होता है, वैसे ही पुरुष के शरीर में खिंचाव-तनाव होता है।
अब यह सिर्फ मान्यता की बात है। क्योंकि उनकी धारणा है, इसलिए होता है।
जितने सभ्य मुल्क हैं, वहां स्त्रियों को बच्चा पैदा करने में कष्ट होता है। सिर्फ सभ्य मुल्कों में! असभ्य मुल्कों में नहीं होता। ठेठ आदिवासियों में बिल्कुल नहीं होता।
बर्मा में ऐसी जातियां हैं, स्त्रियां काम करती रहेंगी खेत में, बच्चा हो जाएगा। कोई दूसरा भी नहीं है। दाई, और नर्स, और अस्पताल का तो कोई सवाल ही नहीं है। बच्चा हो जाएगा, उसको उठाकर वे टोकरी में रख देंगी और वापस काम पर लग जाएंगी। सांझ को अपने बच्चे को लेकर घर आ जाएंगी। बर्मा के उन जंगलों में ख्याल ही नहीं है कि स्त्री को पीड़ा होती है। इसलिए पीड़ा नहीं होती।
आप जो कुछ भोग रहे हैं, उसमें अधिक तो आपकी मान्यताएं हैं।
यह जो भीतर छिपा हुआ परमात्मा है, इसका दूसरा लक्षण है चित। यह कभी बेहोश नहीं हुआ है, और कभी सोया नहीं है। वह उसका स्वभाव नहीं है। इसलिए अगर आप अपने को बेहोश मानते हैं, नींद में मानते हैं, सम्मोहित मानते हैं, तो वह आपकी मान्यता है। मान्यता के अनुसार काम जारी रहेगा।
धर्म की पूरी खोज इतनी ही है कि मान्यताएं सब टूट जाएं और जो सत्य है,
वह प्रकट हो जाए। जैसा है वैसा प्रकट हो जाए, और जो हमने मान रखा है, वह हट जाए।
तीसरा तत्व है, आनंद। सत चित आनंद। यह तीसरी बात भी ज्ञानियों की अनुभूत खोज है कि वह जो भीतर छिपा हुआ तत्व है, वह सत भी है, चित भी है, और वह परम आनंद भी है। सुख पाने की कोई जरूरत नहीं है उसको; वह स्वयं आनंद है। और अगर आप दुखी हो रहे हैं और सुख की तलाश कर रहे हैं, तो वह आपकी भ्रांति है। मनुष्य का स्वभाव आनंद है। इसलिए जिस दिन हम अपने स्वभाव से परिचित
हो जाएंगे, सच्चिदानंद से मिलना हो जाएगा।

और इस सच्चिदानंद को परमात्मा कहा है। परमात्मा कहीं कोई बैठा हुआ व्यक्ति नहीं है, जो जगत को बना रहा है। परमात्मा आपके भीतर छिपा हुआ तत्व है, जो आपके भीतर खेल रहा है, आपके जीवन को फैला रहा है। और यह आपका ही हाइड एंड सीक है, लुका-छिपौव्वल है। जिस दिन आप सजग हो जाएंगे, जिस दिन आप बाहर की दौड़ से थक जाएंगे, ऊब जाएंगे, कहेंगे, बंद करो खेल... ।
जैसे बच्चे नदी की रेत में घर बनाते हैं, लड़ते हैं, झगड़ते हैं। बुद्ध बहुत बार इस दृष्टांत को लेते रहे हैं कि नदी के किनारे बच्चे घर बना रहे हैं। रेत के घर हैं, वे कभी भी गिर जाते हैं। कोई बच्चे की लात लग जाती है; कोई बच्चा जोर से खड़ा हो जाता है; वे मकान गिर जाते हैं। तो बड़ा झगड़ा हो जाता है। मार-पीट भी हो जाती है कि तूने मेरा मकान गिरा दिया! इतनी मेहनत से मैंने बनाया था।
फिर सांझ होने लगती है, सूरज ढलने लगता है। कोई नदी के किनारे से चिल्लाता है कि बच्चो, घर जाओ। तुम्हारी माताएं तुम्हें याद कर रही हैं। वे बच्चे, जिनके घर को जरा चोट लग गई थी, किनारा झड़ गया था, रेत बिखर गई थी, लड़ने को तैयार हो गए थे, वे अपने ही घरों पर कूदकर, घरों को मिटाकर असली घरों की तरफ भाग जाते हैं। सांझ होने लगी; सूरज ढलने लगा; मां की आवाज आ गई। जिन घरों के लिए लड़े थे, मार-पीट की थी, उन घरों को खुद ही कूदकर मिटा देते हैं।
बस, ऐसा ही है, बुद्ध कहते थे कि जो भी हम बना रहे हैं अपने चारों तरफ, रेत के घर हैं; हमारा खेल है।
कोई हर्ज भी नहीं है। आप रस ले रहे हैं, बना रहे हैं। आपकी तकलीफ यह है
कि आप पूरा रस भी नहीं ले पाते। पूरा बना भी नहीं पाते। पूरा बना लें, तो मिटाने का भी मजा आ जाए। सांझ को जब मिटाएंगे, तो कुछ मिटाने को भी तो चाहिए। कुछ बना हुआ होगा, तो मिटा भी लेंगे। लेकिन कभी बना ही नहीं पाते पूरा और सांझ कभी आ नहीं पाती; दोपहर ही बनी रहती है। अधूरा ही अधूरा बना रहता है।
संसार में पूरी तरह उतर जाएं; जो भी खेल खेलना है, पूरी तरह खेल लें। खेल खेलते-खेलते ही यह होश आ जाएगा कि अब बहुत हो गया।
आपको भी कई दफा दिखाई पड़ता है कि अब बहुत हो गया। आपको भी बहुत दफा ख्याल में आने लगता है कि यह मैं क्या कर रहा हूं! यह कब तक जारी रखूंगा! फिर आप अपने को भुला लेते हैं। यह तो खेल छोड़ने की बातें ठीक नहीं हैं। खेल मिटाने का मामला हो जाएगा। और जिंदगी एक व्यवस्था से चल रही है, उसे क्यों तोड़ना! फिर आप चलाने लगते हैं।
ये जो झलकें आपको आती हैं, वे झलकें इसी बात की हैं कि यह खेल वस्तुतः खेल है। और वास्तविक घर कहीं और छिपा है। जब यह बिल्कुल ही व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा, ऊब और दुख इसमें घने हो जाएंगे, तब आप अपने पीछे झांक सकेंगे। वह जो पीछे छिपा है, कृष्ण बार-बार उसी को सच्चिदानंदघन परमात्मा कह रहे हैं। आपकी तरफ ही इशारा है। वह सबके भीतर छिपा है। सबका वही केंद्र है।

अब हम सूत्र को लें।
और जो निरंतर आत्म-भाव में स्थित हुआ, दुख-सुख को समान समझने वाला है; तथा मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला और धैर्यवान है; तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है और अपनी निंदा-स्तुति में भी समान भाव वाला है; तथा जो मान और अपमान में सम है एवं जो मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है, वह संपूर्ण आरंभों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।
एक-एक शब्द को समझें।
जो निरंतर आत्म-भाव में स्थित हुआ... ।
जो निरंतर एक ही बात स्मरण रखता है कि मैं हूं अपने भीतर। जो अपनी छवियों के साथ तादात्म्य नहीं जोड़ता; जो दर्पणों में दिखाई पड़ने वाले प्रतिबिंबों से अपने को नहीं जोड़ता; बल्कि जो सदा ख्याल रखता है उस होश का, जो भीतर है। और जो सदा याद रखता है कि यह होश ही मैं हूं; मैं हूं यह चैतन्य;

और इस चैतन्य को किसी और चीज से नहीं जोड़ता, ऐसी भाव-दशा का नाम आत्म-भाव है।
मैं सिर्फ चेतना हूं। और यह चेतना किसी भी चीज को कितना ही प्रतिफलित करे, उससे मैं संबंध न जोडूंगा। यह चेतना कितनी ही किसी चीज में दिखाई पड़े... ।
रात चांद निकलता है; झील में भी दिखाई पड़ता है। आप झील में देखकर अगर उसको चांद समझ लें, तो मुश्किल में पड़ेंगे। अगर डुबकी लगाने लगें पानी में चांद की तलाश में, तो भटक ही जाएंगे। और दुख तो निश्चित होने वाला है; क्योंकि थोड़ी ही हवा की लहर आएगी और चांद टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।
तो जहां भी हम जिंदगी को देखते हैं, वहां हर चीज टूट-फूट जाती है। क्योंकि हम प्रतिबिंब में देख रहे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात एक कुएं के पास से गुजर रहा है। रमजान के दिन हैं। और उसने नीचे कुएं में झांककर देखा। वहां चांद का प्रतिबिंब दिखाई पड़ा। गहरा कुआं है। हवा की कोई लहर भी वहां नहीं है, तो चांद बिल्कुल साफ दिखाई पड़ रहा है।
अकेला था। मरुस्थल का रास्ता था। आस-पास कोई दिखाई भी नहीं पड़ता था। नसरुद्दीन ने कहा, यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। यह चांद यहां कुएं में उलझा है। और जब तक यह आकाश में दिखाई न पड़े, लोग मर जाएंगे भूखे रह-रहकर। रमजान का महीना है। इसे बाहर निकालना एकदम जरूरी है। यहां कोई दिखाई भी नहीं पड़ता जो सहायता करे।
तो बेचारे ने ढूंढ़-ढांढ़कर रस्सी कहीं से लाया। रस्सी का फंदा बनाकर नीचे डाला। कुएं में चांद को फंसाने की रस्सी में कोशिश की। चांद तो नहीं फंसा, कुएं के किनारे पर कोई चट्टान का टुकड़ा होगा, वह फंस गया। उसने बड़ी ताकत लगाई। खींच रहा है। बड़ी मुश्किल में पड़ा है। और अकेला है। कहता है, कोई और है भी नहीं कि कोई साथ भी दे दे। और चांद वजनी मालूम पड़ता है। और चांद भी हद्द कर रहा है कि बिल्कुल रस्सी को पकड़े हुए है और उठ भी नहीं रहा है।
बड़ी ताकत लगाने से रस्सी टूट गई। मुल्ला भड़ाम से कुएं के नीचे गिरा। सिर में चोट भी आई। एक क्षण को आंख भी बंद हो गई। फिर आंख खुली, तो देखा, चांद आकाश में है। मुल्ला ने कहा, चलो भला हुआ। निकल तो आए। अब लोग नाहक रमजान में भूखे तो न रहेंगे। सिर में थोड़ी चोट लग गई; कोई हर्ज नहीं। रस्सी भी टूट गई; कोई हर्ज नहीं। लेकिन चांद को कुएं से मुक्त कर लिया।
जिस दिन आप आत्म-भाव में स्थित होंगे, उस दिन आपको भी ऐसा ही लगेगा कि जहां से हम अब तक अपने को खोज रहे थे, वहां तो हम थे भी नहीं। जहां से हम रस्सियां बांधकर, योजनाएं करके, साधनाएं साधकर और आत्मा को पाने की कोशिश कर रहे थे, वहां तो हम थे भी नहीं। चांद तो सदा आकाश में है। वह किसी कुएं में उलझा नहीं है। लेकिन कुओं में दिखाई पड़ता है।
आत्म-भाव का अर्थ है कि हम चांद को आकाश में ही देखें, कुओं में नहीं। आत्म-भाव का अर्थ है कि मेरी चेतना मेरे भीतर है। और किसी और वस्तु से बंधी नहीं है, कहीं भी छिपी नहीं है। मैं कहीं और नहीं हूं, मुझमें ही हूं। इसलिए सब तलाश कहीं और की व्यर्थ है। और सब तलाश दुख में ले जाएगी; विफलता परिणाम होगा। क्योंकि वहां वह मिलने वाली नहीं है।
या इसको अगर आप सफलता कहते हों कि रस्सियां बांधकर, चांद को खींचकर और
जब सिर फूटे और ऊपर आपको आकाश में दिखाई पड़ जाए, अगर आप समझते हों कि आपने चांद को मुक्त कर लिया, तो ऐसी ही स्थिति बुद्ध को हुई होगी।
बुद्ध से कोई पूछता है, जब उनको ज्ञान हो गया, कि आपको क्या मिला? तो बुद्ध कहते हैं, मिला कुछ भी नहीं। इतना ही पता चला कि कभी खोया ही नहीं था।
नसरुद्दीन कहता है, चांद को निकाल लिया; मुक्त कर दिया आकाश में। बुद्ध कहते हैं, कुछ भी मिला नहीं, क्योंकि कभी खोया नहीं था। और जो मैंने जाना है, वह सदा से मेरे भीतर था। सिर्फ मेरी नजरें बाहर भटक रही थीं, इसलिए उसे मैं पहचान नहीं पा रहा था। अगर तुम पूछते ही हो, तो मैंने कुछ खोया जरूर है, अज्ञान खोया है। लेकिन पाया कुछ भी नहीं है। क्योंकि ज्ञान तो सदा से ही था। वह मेरा स्वभाव है।

आत्म-भाव में स्थित हुआ, दुख-सुख को समान समझने वाला... ।
जो भी आत्म-भाव में स्थित होगा, उसे दुख-सुख समान हो जाएंगे; समता उसकी छाया हो जाएगी।
हमें दुख और सुख अलग-अलग क्यों मालूम पड़ते हैं? इसलिए अलग-अलग मालूम पड़ते हैं कि जो हम पाना चाहते हैं, वह हमें सुख मालूम पड़ता है। और जिससे हम बचना चाहते हैं, वह दुख मालूम पड़ता है। हालांकि हमारे सुख दुख हो जाते हैं और दुख सुख हो जाते हैं, फिर भी हमें बोध नहीं आता। जिस चीज को आप आज पाना चाहते हैं, सुख मालूम पड़ती है। और कल पा लेने के बाद छूटना चाहते हैं और दुख मालूम पड़ती है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक चर्च के पास से गुजर रहा है। उसकी पत्नी भी साथ है। उस चर्च में बड़ी तैयारियां हो रही हैं। बड़े फूल लगाए गए हैं। और बड़े दीए जलाए गए हैं। और द्वार पर लाल दरी बिछाई गई है। कोई स्वागत-समारंभ का इंतजाम हो रहा है। तो पत्नी पूछती है कि नसरुद्दीन, इस चर्च में? क्या होने वाला है?
उस चर्च में एक विवाह की तैयारी हो रही है। नसरुद्दीन कहता है, इस चर्च में? एक तलाक की तैयारी हो रही है। एक तलाक का प्रारंभ!
विवाह तलाक का ही प्रारंभ है। सब सुख दुख के प्रारंभ हैं। लेकिन दुख थोड़ी देर में पता चलेगा, पहले सब सुख मालूम होगा। जिसको हम पकड़ना चाहेंगे, उसमें सुख दिखाई पड़ेगा। और जिसको हम छोड़ना चाहेंगे, उसमें दुख दिखाई पड़ेगा।
आत्म-भाव में स्थित व्यक्ति को न तो कुछ पकड़ने की आकांक्षा रह जाती
है, न कुछ छोड़ने की, इसलिए सुख-दुख समान हो जाते हैं। इसलिए सुख-दुख के बीच जो भेद है, वह कम हो जाता है, गिर जाता है। सुख और दुख में उसका कोई चुनाव नहीं रह जाता।
समान का अर्थ है, कोई चुनाव नहीं रह जाता। दुख आता है, तो स्वीकार कर लेता है। सुख आता है, तो स्वीकार कर लेता है। दुख आता है, तो पागल नहीं होता। सुख आता है, तो भी पागल नहीं होता। न उसे सुख उद्विग्न करता है, न दुख उद्विग्न करता है। जैसे सुबह आती है, सांझ आती है; ऐसे सुख आते-जाते रहते हैं, दुख आते-जाते रहते हैं। वह दूर खड़ा, अछूता, अस्पर्शित बना रहता है। आत्म-भाव में स्थित हुआ, दुख-सुख को समान समझने वाला है। मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण में समान भाव वाला है। धैर्यवान है। तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है। निंदा-स्तुति में समान भाव वाला है।
सभी द्वंद्व जिसके लिए समान हो गए हैं। चाहे प्रेम के, अप्रेम के; चाहे स्वर्ण के, मिट्टी के; चाहे मित्र के, शत्रु के; स्तुति के, निंदा के; जिसके लिए सभी भाव समान हो गए हैं। जो विपरीत को विपरीत की तरह नहीं देखता। जो पहचान लिया है कि सुख दुख का ही छोर है; और जो समझ लिया है कि स्तुति में निंदा छिपी है। आज स्तुति है, कल निंदा होगी। आज निंदा है, कल स्तुति हो जाएगी। मित्रता और शत्रुता के बीच जिसको फासला नहीं दिखाई पड़ता; जिसे दोनों एक ही चीज की डिग्रीज मालूम पड़ती हैं।
यह उसी को होगा, जो आत्म-भाव में स्थित हुआ है। उसे यह द्वंद्व साफ दिखाई पड़ने लगेगा, द्वंद्व नहीं है। यह मेरे ही चुनाव के कारण द्वंद्व पैदा हुआ है।
बुद्ध ने कहा है, मैं कोई मित्र नहीं बनाता हूं, क्योंकि मैं शत्रु नहीं बनाना चाहता हूं।
मित्र बनाएंगे, तो शत्रु बनना निश्चित है। आधा नहीं चुना जा सकता। और
हम आधे को ही चुनने की कोशिश करते हैं। इससे हम कष्ट में पड़े हैं। अगर मित्र को चुनते हैं, तो शत्रु को स्वीकार कर लें। सुख को चुनते हैं, तो दुख को भी स्वीकार कर लें।
पर यह स्वीकृति, यह तथाता उसी को संभव है, जो अपने में स्थित हुआ हो; जो भीतर खड़े होकर देख सके--दुख को, सुख को, दोनों को--निष्पक्ष भाव से। भीतर खड़ा हुआ व्यक्ति देख पाता है निष्पक्ष भाव से। भीतर खड़ा हुआ व्यक्ति तराजू की भांति हो जाता है, जिसके दोनों पलड़े एक सम स्थिति में आ गए; जिसका कांटा आत्म-भाव में थिर हो गया।

तथा जो मान-अपमान में सम है। मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है। संपूर्ण आरंभों में कर्तापन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।
कुंजी है, आत्म-भाव में स्थित होना। जो आत्म-भाव में स्थित है, द्वंद्व में सम हो जाएगा। जो आत्म-भाव में स्थित है, वह कर्तापन से मुक्त हो जाएगा। उसे ऐसा नहीं लगेगा कि मैं कुछ कर रहा हूं। भूख लगेगी, पर वह भूखा नहीं होगा।
बड़ी मीठी कथा है कृष्ण के जीवन में। जैन शास्त्रों में उस कथा का उल्लेख है।
कृष्ण की पत्नी ने, रुक्मिणी ने कृष्ण से पूछा कि एक परम वैरागी नदी
के उस पार ठहरा है। वर्षा के दिन हैं, नदी में पूर है। और कोई भोजन नहीं पहुंचा पा रहा है। आप कुछ करें। तो कृष्ण ने कहा, तू ऐसा कर कि जा और नदी के किनारे नदी से यह प्रार्थना करना--कथा बड़ी मीठी है--नदी से यह प्रार्थना करना कि अगर वह वैरागी, जो उस पार ठहरा है, वह संन्यस्त वीतराग पुरुष सदा का उपवासा हो, तो नदी मार्ग दे दे।
रुक्मिणी को भरोसा तो न आया, लेकिन कृष्ण कहते हैं, तो कर लेने जैसी बात लगी। और हर्ज क्या है; देख लें। और शायद यह हो भी जाए, तो एक बड़ा चमत्कार हो।
तो वह सखियों को लेकर बहुत-से मिष्ठान्न और भोजन लेकर नदी के पास गई। उसने नदी से प्रार्थना की। भरोसा तो नहीं था। लेकिन चमत्कार हुआ कि नदी ने रास्ता दे दिया। कहा इतना ही कि उस पार जो ठहरा संन्यस्त व्यक्ति है, अगर वह जीवनभर का उपवासा है, तो मार्ग दे दो।
नदी कट गई। अविश्वास से भरी रुक्मिणी, आंखों पर भरोसा नहीं, अपनी सहेलियों को लेकर उस पार पहुंच गई। उस वीतराग पुरुष के लिए भोजन वह इतना लाई थी कि पचास लोग कर लेते। वह अकेला संन्यासी ही उतना भोजन कर गया। भोजन के बाद यह ख्याल आया कि हम कृष्ण से यह तो पूछना भूल ही गए कि लौटते वक्त क्या करेंगे। क्योंकि नदी अब फिर बह रही थी। और अब पुरानी कुंजी तो काम नहीं आएगी। क्योंकि यह आदमी आंख के सामने भोजन कर चुका। और थोड़ा-बहुत भोजन नहीं कर चुका। निश्चित ही, जीवनभर का उपवासा रहा होगा। पचास आदमियों का भोजन उसने कर लिया! लेकिन अब पुरानी कुंजी तो काम नहीं आएगी। और अब कृष्ण से पूछने का कोई उपाय नहीं। तो एक ही उपाय है, इस वीतराग पुरुष से ही पूछ लो कि कोई कुंजी है वापस जाने की!
तो उसने कहा कि तुम किस कुंजी से यहां तक आई हो? तो उन्होंने कहा कि कृष्ण ने ऐसा कहा था, लेकिन वह तो अब बात बेकार हो गई। उस संन्यासी ने कहा कि वह बात बेकार होने वाली नहीं है। कुंजी काम करेगी। तुम नदी से कहो कि अगर यह संन्यासी जीवनभर का उपवासा हो, तो मार्ग दे दे।
पहले ही भरोसा नहीं आया था। अब तो भरोसे का कोई कारण भी नहीं था। अब तो स्पष्ट अविश्वास था। लेकिन कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। इसलिए नदी से प्रार्थना करनी पड़ी। और नदी ने मार्ग दिया।
करीब-करीब होश खोई हुई हालत में रुक्मिणी कृष्ण के पास पहुंची। और उसने कहा, यह हद हो गई। यह बिल्कुल भरोसे की बात नहीं है। क्योंकि हमने अपनी आंख से देखा है संन्यासी को भोजन करते हुए। उसके जीवनभर के उपवासे होने का कोई सवाल नहीं रहा।
कृष्ण ने कहा कि वही तुम नहीं समझ पा रही हो। भूख शरीर को लगती है, ऐसा
जो जान लेता है, फिर भोजन भी शरीर में ही जाता है। ऐसा जो जान लेता है, उसका उपवास कभी भी खंडित नहीं होता।
जिसको भूख ही न लगी हो, उसको भोजन करने का सवाल नहीं है। हम भोजन करते हैं, करते मालूम पड़ते हैं। कर्तापन आता है, क्योंकि भूख हमें लगती है, हमारी है।
इस प्रयोग को थोड़ा करके देखें। कल से स्मरण रखें कि भूख लगे, तो वह शरीर की है। प्यास लगे, तो शरीर की है। पानी पीएं, तो शरीर में जा रहा है।
प्यास बुझ रही, तो शरीर की बुझ रही है। भूख मिट रही, तो शरीर की मिट रही है।
भोजन करते समय, भूख के समय, प्यास के समय, पानी पीते समय, स्मरण रखें।

अगर इस स्मरण को आप थोड़े दिन भी रख पाएं, तो आपको एक अनूठा अनुभव होगा।
और वह अनुभव यह होगा कि आपको साफ दिखाई पड़ने लगेगा कि मैं सदा का उपवासा हूं। वहां कभी कोई भूख नहीं लगी। कोई भूख पहुंच नहीं सकती वहां। चेतना में भूख का कोई उपाय नहीं है।
अमेरिका में एक व्यक्ति बड़ी अनूठी खोज में लगा हुआ है। उसकी खोज भरोसे योग्य नहीं है, लेकिन खोज के परिणाम बड़े साफ हैं। और उस व्यक्ति का कहना यह है कि एक समय था मनुष्य जाति के इतिहास में जब कोई भोजन नहीं करता था।
जैन शास्त्रों में ऐसे समय का उल्लेख है। जैनों के जो पहले तीर्थंकर हैं आदिनाथ, उन्होंने ही भोजन और कृषि और अन्न की खोज की। उसके पहले कोई भोजन नहीं करता था। लोग भूखे नहीं होते थे।
यह बात कहानी की मालूम पड़ती है। लेकिन जो आदमी अमेरिका में खोज कर रहा है, उसके बड़े वैज्ञानिक आधार हैं। और वह कहता है कि भोजन सिर्फ एक लंबी आदत है। और वह यह कहता है कि भोजन से शरीर को शक्ति नहीं मिलती। भोजन से ज्यादा से ज्यादा शरीर में जो शक्ति पड़ी है, उसको गति मिलती है। ऐसे ही जैसे कि पनचक्की चलती थीं। तो पानी चक्की के पंखे पर से गिरता था; पंखा घूमता था। पंखा तो मौजूद है, सिर्फ गिरता हुआ पानी पंखे को घुमा देता था।
इस वैज्ञानिक का कहना है कि शरीर में शक्ति मौजूद है। सिर्फ यह भोजन
का शरीर में जाना और शरीर के बाहर मल होकर निकलना, यह सिर्फ शरीर के भीतर जो पंखे बिना चले पड़े हैं, उनको चलाता है। इससे कोई शक्ति मिलती नहीं। और आदमी बिना भोजन के रह सकता है।
और ऐसी घटनाएं हैं, जहां कुछ लोग बिना भोजन के रहे हैं चालीस-पचास साल
तक भी। उनका वजन भी नहीं गिरा। उनके शरीर में कोई रोग भी नहीं आया। बल्कि वे बहुत स्वस्थ लोग रहे हैं।
अभी बवेरिया में एक स्त्री है, थेरेसा न्यूमेन। उसने तीस साल से भोजन नहीं किया है। रत्तीभर वजन नीचे नहीं गिरा है। और तीस साल से वह कभी बीमार नहीं पड़ी। न कोई मल-मूत्र का सवाल है। उसकी सारी अंतड़ियां सिकुड़ गई हैं। पेट ने सारा काम बंद कर दिया है। लेकिन उसका शरीर परिपूर्ण स्वस्थ है। और जितनी उसकी उम्र है, उससे कम उम्र मालूम होती है। क्या कारण होगा?
इस बात की संभावना है कि हो सकता है भोजन मनुष्य जाति की सिर्फ एक गलत आदत हो। और किसी दिन आदमी भोजन से मुक्त किया जा सके।
एक बात निश्चित है कि शरीर को भला जरूरत हो या आदत हो, लेकिन भीतर जो चेतना है, उसको न तो जरूरत है और न आदत है। वह भीतर की चेतना परम ऊर्जा से भरी है। उसकी ऊर्जा का स्रोत शाश्वत है। उसको ऊर्जा रोज-रोज ग्रहण नहीं करनी पड़ती।
इसलिए हम उसे सच्चिदानंदघन परमात्मा कह रहे हैं। उसकी ऊर्जा मूल स्रोत से जुड़ी है। वह स्रोत शाश्वत है। वह कभी समाप्त नहीं होता। इसलिए उसमें रोज ईंधन डालने की जरूरत भी नहीं है।
चेतना के लिए भोजन की कोई भी जरूरत नहीं है। शरीर के लिए हो या न हो, यह बात विवाद की हो सकती है। समय, भविष्य तय करेगा। लेकिन चेतना के लिए तो कोई भी जरूरत नहीं है। वह चेतना उपवासी है।
ऐसा भाव अगर बनने लगे, निर्मित होने लगे, तो आप में से कर्तापन धीरे- धीरे अपने आप गिर जाएगा। और जब भी आप किसी चीज का आरंभ करेंगे, किसी भी चीज की पहल करेंगे, तो आप जानेंगे यह शरीर के गुण इसकी पहल कर रहे हैं, मैं इसकी पहल नहीं कर रहा हूं।
शरीर को जितनी जरूरत होगी, आप दे देंगे। ज्यादा भी नहीं देंगे, कम भी नहीं देंगे। अभी हम दो ही काम करते हैं, या तो कम देते हैं या ज्यादा देते हैं। क्योंकि ठीक कितना देना, इसका हमें पता ही नहीं चल पाता। हम इतने जुड़े हैं, हमारा संबंध इतना जुड़ गया है शरीर से कि हम निष्पक्ष नहीं हो पाते। हम से ज्यादा निष्पक्ष तो जानवर हैं।
अगर कुत्ते को पेट में खराबी हो, तो वह भोजन नहीं करेगा, आप लाख उपाय करें। लेकिन आपको कितनी ही बीमारी हो, कितनी ही खराबी हो, आप भोजन करेंगे। शायद बीमारी में और ज्यादा कर लें, कि जरा ताकत की जरूरत है। कोई जानवर यह भूल नहीं करेगा। क्योंकि जानवर जानता है कि बीमारी में भोजन करने का मतलब

है कि शरीर को और काम देना। शरीर पर बीमारी का काम है। उतना ही काम काफी है। उसको नया काम देना खतरनाक है।
शरीर को भोजन न दिया जाए, तो बीमारी जल्दी समाप्त हो जाती है। क्योंकि शरीर खुद बीमारी को निकालने में लग जाता है। शरीर की पूरी ताकत एक तरफ बहने लगती है, बीमारी खतम करने में। आप भोजन देकर ताकत पचाने में लगा देते हैं। तो भोजन बीमारी को बढ़ाएगा, कम नहीं कर सकता।
कोई जानवर राजी नहीं होगा। साधारण-सा कुत्ता, जिसको हम बहुत समझदार नहीं कहते, वह भी भोजन नहीं करेगा। भोजन तो करेगा ही नहीं, घास-पात खाकर वमन कर देगा। जो पेट में पड़ा है, उसको भी निकाल देगा। ताकि खाली हो जाए; ताकि शरीर की पूरी ऊर्जा पचाने में नष्ट न हो, बीमारी से लड़ने में लग जाए। और शरीर के पास नैसर्गिक व्यवस्था है बीमारियों से लड़ने की। वह सब बीमारियों के पार उठ सकता है। और अगर आधुनिक आदमी नहीं उठ पाता, तो उसका कारण यह है कि वह शरीर की ऊर्जा को तो भोजन में ही लगाए रखता है।
हम निष्पक्ष नहीं हो पाते, बीमारी में ज्यादा खा लेते हैं। हमें कभी पता भी नहीं चलता; ठीक हमारा, जिसको पता चलने का बोध कहना चाहिए, वह भी क्षीण हो गया है। हमें पता ही नहीं चलता कि कितना खाना, कब खाना, कब नहीं खाना, उसका हमें कोई बोध नहीं रहा है। कोई नैसर्गिक हमारी प्रतीति नहीं रही है कि कितना खाना, कितना नहीं खाना; कब कुछ करना और कब नहीं करना; कहां रुक जाना।
उस सबका कारण इतना है कि हम इतने ज्यादा जुड़ गए हैं शरीर के साथ कि दूर खड़े होने से, दूर से देखने पर जो निष्पक्षता होती है, वह नष्ट हो गई है। साक्षी-भाव उस निष्पक्षता को ले आएगा। आत्म-भाव उस निष्पक्षता को ले आएगा। आप दूर खड़े होकर देख सकेंगे।
और ध्यान रहे, बहुत-सी समस्याएं सिर्फ इसलिए नहीं हल हो पातीं कि आप दूर नहीं हो पाते।
आपके पास कोई दूसरा आदमी आए और अपनी कोई समस्या कहे, तो आप जो सुझाव देते हैं, वह हमेशा सही होता है। वह दूसरे की समस्या है। आप दूर से खड़े होकर देखते हैं। वही समस्या आप पर आ जाए, फिर आपकी बुद्धि काम नहीं करती। जो दूसरे को सलाह देने में काम कर रही है, वह खुद को सलाह देने में काम नहीं कर पाती। वैसे ही जैसे एक सर्जन अपनी पत्नी का आपरेशन कर रहा हो। सर्जन अपनी पत्नी का आपरेशन करने को राजी नहीं होगा। जब तक कि मार डालने की इच्छा न रखता हो। क्योंकि वह जानता है, पत्नी से इतनी निकटता है, हाथ कंपेगा। वह निष्पक्ष नहीं हो पाएगा। तो सर्जन अपने मित्र को कहेगा कि तू आपरेशन कर।
निष्पक्षता न हो, तो सब चीजें कंप जाती हैं। निष्पक्षता हो, तो हम अडिग बने रहते हैं; बोध साफ होता है; चीजें स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं; धुआं नहीं होता।
जितना आत्म-भाव बढ़ेगा, जितना आप अपने को शरीर से अलग और चेतना के साथ
एक मानेंगे, देखेंगे, समझेंगे, ठहरेंगे, उतना ही आप पाएंगे कि चीजें उतनी ही होती हैं, जितनी जरूरी हैं।
जरूरत पर रुक जाना, जरूरत से आगे इंचभर न जाना। तो फिर आपके लिए कोई बंधन नहीं है। क्योंकि तब शरीर के चलने योग्य शरीर को देते रहेंगे आप। शरीर अपनी गतिविधि पूरी कर लेगा और समाप्त हो जाएगा। जिस दिन शरीर की गतिविधि पूरी हो जाएगी, जैसे दीए का तेल चुक गया, वैसे ही दीया बुझ जाएगा।
और इस शरीर के दीए के बुझते ही आपके जीवन में महासूर्य का उदय होगा। इस दीए पर आंखें बंधी हैं, इसलिए सूरज को देखना मुश्किल है।
कृष्ण कहते हैं, आत्म-भाव में स्थित हुआ, संपूर्ण आरंभों में कर्तापन
के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।
ऐसा जो व्यक्ति है, ऐसी जो चेतना है, वह गुणों के अतीत है। और गुणातीत
हो जाना परम सिद्धि है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 14
दसवां प्रवचन

अव्यभिचारी भक्ति

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 26।।
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। 27।।
और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा मेरे को निरंतर भजता है, वह इन तीनों गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिए योग्य होता है।
तथा हे अर्जुन, उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का
और अखंड एकरस आनंद का मैं ही आश्रय हूं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः ऐसा लगता है कि चेतना या बोध का विस्तार समस्त धर्म-साधना का मूल है, तब क्या ज्ञान व भक्ति, योग व तंत्र, कर्म व अकर्म आदि अनेकानेक मार्गों से इसी बुनियादी तत्व की खोज की जाती है? और यदि इसी सुई को खोजना है, तो उसके इर्द-गिर्द सिद्धांतों का इतना भारी जंगल क्यों खड़ा किया जाता है?

सत्य तो अत्यल्प है, अति छोटा है। एक क्षण में भी समा जाए, एक शब्द में भी। पर वैसे सत्य को आप समझ न पाएंगे। उस अणु को आप देख न पाएंगे। वह सूक्ष्म है, इसी कारण आप उससे चूक जाएंगे। उस छोटे-से सत्य को दिखाने के लिए आपकी बुद्धि बहुत-सी मांग करती है।
सिद्धांतों के जाल सत्य को इंगित करने के लिए नहीं खड़े किए जाते, आपकी बुद्धि की तृप्ति के लिए खड़े किए जाते हैं। और बिना तृप्त हुए आप खोज में संलग्न नहीं हो सकते।
आपके सभी प्रश्न व्यर्थ हैं। अर्जुन जो कृष्ण से पूछ रहा है, सभी व्यर्थ है। आनंद जो बुद्ध से पूछ रहा है, सभी व्यर्थ है। लेकिन वह पूछ रहा है; और जब तक उसे उत्तर न मिल जाएं, तब तक उसकी यात्रा प्रारंभ न होगी।
आप व्यर्थ ही पूछ रहे हों, तो भी सदगुरु को इसके उत्तर देने पड़ेंगे।
इतना भर कह देने से कि वह व्यर्थ है, आपकी कोई तृप्ति नहीं होगी। इतना भर कह देने से कि असंगत है, पूछने में कोई सार नहीं है, आपकी तृप्ति नहीं होगी।
उत्तर देने का यह अर्थ नहीं है कि जो आप पूछ रहे हैं, वह सार्थक है। उत्तर देने का इतना ही अर्थ है, ताकि आपकी जिज्ञासा घिस-घिसकर शांत हो जाए। आप पूछ-पूछकर थक जाएं। गुरु नहीं थकेगा, उत्तर देता जाएगा। वह आपको थका रहा है। एक ऐसी घड़ी आ जाए, जहां आप खुद ही कहने लगें, अब पूछना नहीं है; अब कुछ करना है। और जब आप कहेंगे, अब कुछ पूछना नहीं, कुछ करना है, तब बात बहुत छोटी है।
जैसे छोटे बच्चों को कुछ समझाना हो, तो कहानी का जाल खड़ा करना पड़ता है। और बुद्धिमान बच्चों को कुछ समझाना हो, तो सिद्धांतों के जाल खड़े करने पड़ते हैं। ये सिद्धांतों के जाल उतने ही बड़े खड़े करने पड़ेंगे, जितनी आपकी बुद्धिमत्ता प्रश्न उठाती चली जाएगी।
झेन फकीर हुआ, रिंझाई। उससे एक सम्राट ने आकर पूछा कि जो भी जानने योग्य है, जो भी पाने योग्य है, आप एक शब्द में मुझे कह दें। रिंझाई ने कहा, जरूर कहूंगा। जो भी पूछने योग्य है, आप एक शब्द में मुझसे पूछ लें। अगर आप एक शब्द में उसे पूछ लेंगे, तो मैं एक शब्द में उसे कह दूंगा। और अगर आप मौन में पूछने में समर्थ हों, तो एक शब्द की भी कोई जरूरत नहीं। आप मौन में ही पूछ लें, मैं मौन में ही कह दूंगा।

आप कितना लंबा करके पूछते हैं, इस पर निर्भर करेगा कि गुरु कितना लंबा शब्दों का जाल खड़ा करे। आपका प्रश्न कितना ही छोटा लगता हो, बहुत बड़ा होता है। उसके सारे पहलू छू लेने जरूरी हैं। अगर उसका एक भी पहलू आपके भीतर अनछुआ रह जाए, तो वह आपको कचोटता रहेगा, परेशान करता रहेगा। उसका मूल्य कुछ भी नहीं है। लेकिन आपको मूल्यवान लगता है।
अर्जुन जो भी पूछ रहा है, उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। और कृष्ण सीधा ही
कह सकते हैं कि व्यर्थ है यह प्रश्न, मत पूछ। जो मैं कहता हूं, वह कर। लेकिन अर्जुन को अगर ऐसा कहा जाए कि जो वह पूछ रहा है, वह व्यर्थ है; और कृष्ण जो कहते हैं, वह वह करे। करना मुश्किल होगा! क्योंकि अर्जुन तिरस्कृत हो गया। और जिस अर्जुन का इतना भी मूल्य नहीं है कृष्ण की आंखों में कि उसके प्रश्नों का उत्तर दें, वह अर्जुन कृष्ण पर श्रद्धा भी नहीं कर सकेगा। वह अर्जुन कृष्ण की मानकर भी नहीं चल सकेगा।
उसकी बुद्धि की खुजली थोड़ी तृप्त होनी जरूरी है। यद्यपि उस खुजली से कुछ हल होने वाला नहीं है। खुजली खुजलाने से और बढ़ती है। न केवल बढ़ती है, बल्कि लहूलुहान भी कर सकती है; दुख और पीड़ा भी ला सकती है। लेकिन उस सीमा तक जाना ही होगा।
गुरु को अनंत धैर्य चाहिए। अगर अधीर गुरु हो, तो आपके साथ एक क्षण गति नहीं हो सकती। उसको इतना धैर्य तो चाहिए ही, जितना धैर्य आपमें पूछने का है। इससे थोड़ा ज्यादा चाहिए। आप जब पूछकर चुक जाएं, तब भी वह जवाब देने को तैयार है।
ये जवाब आपकी जिज्ञासाओं के मूल्य के कारण नहीं दिए जाते हैं। आपकी जिज्ञासाएं समाप्त हो जाएं, गिर जाएं... । ये उत्तर प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं, प्रश्नों को गिराने की योजना है। और मन की एक क्षमता है, उस क्षमता के बाद मन गिर जाता है। और खुद ही आप कहने लगते हैं कि अब पूछना नहीं, अब कुछ जानना नहीं; अब कुछ करना है, अब कुछ होना है। उस घड़ी की तलाश है।
और जब तक आप न पूछें, तब तक गुरु कहे कि कुछ करो, व्यर्थ है। क्योंकि करना आपको है। और जब तक आपके भीतर यह भाव सजग न हो जाए, तब तक इस भाव को पैदा नहीं किया जा सकता।
इसलिए बुद्ध जीवनभर बोलते हैं; सुबह से सांझ तक बोल रहे हैं। वे ही प्रश्न लोग फिर-फिर पूछते हैं; बुद्ध फिर-फिर उत्तर दे रहे हैं। सिर्फ इस धैर्य में कि आप थकोगे।
पूछने वाला अनंत नहीं है, और जवाब देने वाला अनंत है। वह जो शिष्य खोज रहा है, उसकी खोज की सीमा है। और जिस कृष्ण या बुद्ध के पास खोज रहा है, उसके सागर की कोई सीमा नहीं। वह आपको थका ही डालेगा।
गुरु से जीतने का उपाय नहीं है। उससे हारना ही होगा। वही हार आपकी विजय भी होगी। क्योंकि उसी दिन आप शब्दों के ऊपर उठेंगे।
इसे ऐसा समझें, एक कांटा लग जाए, तो दूसरे कांटे से उस कांटे को निकालना पड़ता है। आपके पैर में कांटा लगा है, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, उसे दूसरे कांटे से बाहर निकालते हैं। आप कह सकते हैं कि मैं एक ही कांटे से परेशान हूं; तुम दूसरा कांटा मेरे पास क्यों ला रहे हो? एक कांटा मेरे पैर में चुभा है, उससे ही पीड़ा पा रहा हूं। तुम और दूसरा चुभा रहे हो! ऊपर से ऐसा ही दिखेगा।
दूसरा कांटा भी चुभाना होगा, क्योंकि दूसरा कांटा पहले कांटे को बाहर निकाल सकता है। दोनों कांटे हैं। दोनों में चुभन है। और जब कांटा बाहर निकल आएगा पहला दूसरे कांटे से, तो दोनों फेंक दिए जाएंगे।
आपको शब्दों के कांटों की चुभन है। शब्दों के ही कांटों से उन्हें निकालना होगा। और जब निकल आएगी आपकी शब्दों की चुभन, प्रश्न बाहर हो जाएंगे, तो दोनों फेंक दिए जाएंगे।
जब अर्जुन ठीक समझ की हालत में आएगा, तो जो उसने पूछा था, वह तो व्यर्थ
है ही; जो कृष्ण ने कहा था, वह भी उतना ही व्यर्थ है। उस दिन वह गीता को आग लगा दे सकता है। और जब तक शिष्य गीता को आग लगाने में समर्थ न हो जाए, तब तक जानना अभी चुभन मिटी नहीं है। अभी पहला कांटा गड़ा है, दूसरे से निकालने की कोशिश चल रही है। जब दोनों ही कांटे बाहर हो गए, तो दोनों ही फेंकने जैसे हैं।

इसलिए सभी शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं। और एक घड़ी जरूर आती है, जब आप शास्त्र की तरफ पीठ कर लेते हैं। और जब तक यह घड़ी न आ जाए, तब तक समझना कि जीवन में अभी वास्तविक क्षण नहीं आया। जब तक शास्त्र व्यर्थ न हो जाए, तब तक समझना, बुद्धि अभी सता रही है; अभी विचार परेशान कर रहे हैं; अभी मन घूम रहा है, भटक रहा है, प्रश्न उठा रहा है। अभी संदेह बाकी है।
जब तक शास्त्र आपको मूल्यवान दिखे, तब तक समझना कि संदेह बाकी है। जिस दिन संदेह मिटेगा, उस दिन शास्त्र की कोई भी जरूरत नहीं, क्योंकि शास्त्र संदेह मिटाने के लिए ही उपयोगी है। ऐसे ही जैसे एक बीमार आदमी है। दवा की बोतल लिए घूमता है। फिर जब वह स्वस्थ हो जाएगा, तो बीमारी ही नहीं छूटेगी, दवा की बोतल भी छूट जाएगी।
शास्त्र औषधि से ज्यादा नहीं हैं। उनका अपने में कोई भी मूल्य नहीं है। औषधि का क्या मूल्य है अपने में? अगर आप बीमार नहीं हैं, तो औषधि का कोई भी मूल्य नहीं है। आप बीमार हैं, तो बड़ा मूल्य है। शास्त्र का अपने में कोई मूल्य नहीं है। बीमार मन के लिए शास्त्र की औषधि सार्थक है। पर इस घड़ी को लाने के लिए भी दूसरे कांटे का उपयोग करना होगा।
तो कृष्ण कुछ सत्य नहीं दे रहे हैं अर्जुन को। सत्य तो दिया नहीं जा सकता। असत्य छीना जा सकता है, सत्य दिया नहीं जा सकता। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
स्वास्थ्य दिया नहीं जा सकता; बीमारी हटाई जा सकती है। स्वास्थ्य भीतरी भाव है। इसलिए दुनिया में कोई दवा नहीं, जो स्वास्थ्य दे सके। दवा तो सिर्फ बीमारी को काटती है। बीमारी कट जाती है, स्वास्थ्य आपके भीतर उत्पन्न होता है। स्वास्थ्य दवा से भीतर नहीं जाता। दवा तो बीमारी को काटती है। बीमारी भी एक जहर है, और दवा भी एक जहर है। और जहर से जहर कट जाता है। और आपके भीतर स्वस्थ होने की क्षमता तो छिपी है; बीमारी के हटते ही वह प्रकट होनी शुरू हो जाती है।
सत्य आपके भीतर छिपा है। कोई कृष्ण, कोई बुद्ध सत्य नहीं दे सकते। कोई कभी किसी को सत्य नहीं दिया है। सिर्फ आपका असत्य काटा जा सकता है।
ये सिद्धांतों के जाल आपके असत्य को काटने के लिए हैं। और आपने असत्य
को इतनी मजबूती से जमाया है कि उसको इतनी ही मजबूती से कोई काटे, तो ही काट पाएगा।
अर्जुन काफी पैर जमाकर खड़ा है। वह अपने संदेह को छोड़ता नहीं है। वह अपनी शंकाओं को हटाता नहीं है। वह अपनी समस्या को नए रूपों में खड़ा करता जाता है। जितने नए रूपों में वह खड़ा करेगा, कृष्ण उतने नए रूपों से हमला करेंगे। इस बीमारी के लिए औषधि खोजनी होगी।
जिस क्षण अर्जुन संदेह से मुक्त हो जाएगा, उसी क्षण कृष्ण चुप और मौन
हो जाएंगे। उसी दिन शास्त्र व्यर्थ हो जाएगा। फिर शास्त्र की कोई भी जरूरत नहीं है।
इतने सिद्धांतों का जाल इसलिए है कि आपने संदेहों का जाल खड़ा कर रखा है। यह तो सिर्फ एंटीडोट है। सिद्धांत संदेह का एंटीडोट है।
जितने संदेहशील लोग होंगे, उतने ज्यादा शास्त्रों की जरूरत पड़ जाएगी।
जब लोग बिल्कुल संदेहशील नहीं होंगे, शास्त्र तिरोहित हो जाएंगे। जिस गांव में कोई बीमार न होगा, वहां से डाक्टर धीरे-धीरे विदा हो जाएगा; औषधियां विलुप्त हो जाएंगी।
असत्य के कारण इतने शास्त्र हैं। असत्य के लिए इतने शास्त्र हैं। संदेह के कारण इतने सिद्धांत हैं। अगर सिद्धांत कम करने हों, तो सिद्धांत कम करने से न होंगे; संदेह कम करें, सिद्धांत कम हो जाएंगे। आप असंदिग्ध खड़े हो जाएं, आपके लिए एक भी सिद्धांत नहीं है।
अगर अर्जुन असंदिग्ध खड़ा होता कृष्ण के सामने, तो कृष्ण एक शब्द भी नहीं बोलते। बोलने का कोई प्रयोजन नहीं था। बीमारी ही न हो, तो औषधि का कोई अर्थ नहीं है।

दूसरा प्रश्नः कल आपने जो कहा, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु जो साधना करवाता है और शिष्य जो साधना करता है, उसकी मात्र उपादेयता, करने की

व्यर्थता को जान लेना है। क्या करने की व्यर्थता को जान लेना साधक के लिए अनिवार्य है? और क्या विभिन्न साधनाओं का अपने आप में मूल्य नहीं है?

यही मूल्य है। इतना ही मूल्य है। इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। समस्त प्रक्रियाओं का इतना ही मूल्य है कि आपको पता चल जाए कि करने से कुछ भी न होगा। कर-करके आप थक जाएं और उस जगह आ जाएं, जहां करने की वासना ही न उठे। जहां लगे, करने से कुछ होगा ही नहीं। जिस क्षण भी करने की वासना न उठेगी, उसी क्षण आप कर्ता से मुक्त हो गए, उसी क्षण अहंकार शून्य हो गया।
करने में सार्थकता दिखती है, क्योंकि करने वाले में सार्थकता है। आप कुछ कर-करके क्या सिद्ध कर रहे हैं? कि मैं करने वाला हूं! आप अपने कर्ता को सिद्ध कर रहे हैं।
कोई धन इकट्ठा करके सिद्ध कर रहा है कि मैं बड़ा कर्ता हूं। कोई ज्ञान इकट्ठा करके सिद्ध कर रहा है कि मैं बड़ा कर्ता हूं। कोई त्याग करके सिद्ध कर रहा है कि मैं बड़ा कर्ता हूं। लेकिन सभी की मूल बात एक है कि मैं हूं। सब अपने अहंकार को सिद्ध कर रहे हैं। और अहंकार जब तक न मिटे, तब तक परमात्मा से कोई संबंध नहीं है।
तो एक ही उपाय है कि आपका सब करना व्यर्थ हो जाए, आप सब जगह असफल हो जाएं, आपको कहीं भी सफलता न मिल पाए। जिस दिन आपकी असफलता पूर्ण होगी, जिस दिन आपको रंचमात्र भी आशा न रह जाएगी कि मैं सफल हो सकता हूं, उसी दिन आपका मैं गिरेगा। और मैं के गिरते ही परम सफलता मिल जाएगी। क्योंकि मैं के गिर जाने का अर्थ ही यह है, अब कुछ खोजने को न रहा। दीवार गिर गई। द्वार खुल गए। मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव में ज्योतिषी का काम भी करता था। बैठा था बाजार में अपनी दुकान खोलकर, कि गांव का एक राजनेता जो कि चुनाव अभी-अभी हार गया था, वहां से निकला। नसरुद्दीन ने कहा कि ठहरो, अपना भविष्य नहीं जानना चाहते? उस राजनेता ने कहा, छोड़ो भविष्य अब; अब मैं हार चुका, अब कोई भविष्य नहीं है। मैं आत्महत्या करने जा रहा हूं। मेरे लिए तुम्हारे ज्योतिष का कोई मूल्य नहीं है। नसरुद्दीन ने कहा, रुको। यह तो जान लो कि आत्महत्या में सफल होओगे या नहीं!
जब तक आप कुछ भी करने जा रहे हैं, आत्महत्या भी करने जा रहे हैं, तब तक
भी कर्ता पीछे खड़ा है। जब तक आपको लग रहा है, आप कुछ कर सकते हैं, तब तक आपका अहंकार जागा हुआ है।
फ्रांस के एक बहुत बड़े विचारक अल्बेयर कामू ने एक कीमती वक्तव्य दिया है। और वह वक्तव्य यह है कि आदमी चाहे कुछ और न कर सकता हो, चाहे सभी जगह आदमी असफल, असमर्थ मालूम पड़ता हो, लेकिन आत्मघात एक ऐसी बात है, जिससे सिद्ध हो जाता है कि हम भी हैं।
ध्यान रहे, जो लोग आत्मघात करते हैं, अक्सर अहंकारी लोग होते हैं। जो जीवन में सफल नहीं हो सके, लेकिन जो स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं, वे आत्मघात करके अपने को बता देते हैं कि कुछ तो मैं कर ही सकता हूं। इतना तो कर ही सकता हूं कि अपने को समाप्त कर लूं।
दोस्तोवस्की का प्रसिद्ध उपन्यास है, ब्रदर्स कर्माझोव। उसमें एक पात्र कहता है आकाश की तरफ हाथ उठाकर कि हे परमात्मा, अगर तू कहीं भी है और मुझे मिल जाए, तो मैं सिर्फ एक काम करना चाहता हूं। मैं तुझे वह टिकट वापस करना चाहता हूं, जो तूने मुझे संसार में भेजने के लिए दी है। और तुझसे कह देना चाहता हूं, यह संसार बेकार है।
आत्महत्या करने वाला यही कर रहा है। वह कह रहा है परमात्मा से कि सम्हालो अपना यह संसार। इतना करने को तो कम से कम मैं स्वतंत्र हूं। इसमें तुम मुझे न रोक सकोगे।
इसलिए आत्मघात अक्सर अहंकार की आखिरी परिणति है। विनम्र मनुष्य कभी आत्मघात नहीं कर सकता। निरहंकारी तो सोच भी नहीं सकता। क्योंकि निरहंकारी का मतलब ही यह है कि मेरे हाथ में कुछ भी नहीं है। जीवन भी मेरे हाथ में नहीं है; मृत्यु भी मेरे हाथ में नहीं है। मैं इस विराट की लीला में सिर्फ एक अंग हूं। उस अंग की कोई अपनी, सारे अस्तित्व से टूटी हुई, अस्मिता नहीं है। उसका कोई अपना अहं नहीं है।

मैं इस विराट का एक हिस्सा हूं, जैसे लहर सागर का हिस्सा है। सागर जहां ले जाए, वहां लहर चली जाएगी। लहर अपना मार्ग नहीं चुन सकती। लहर यह नहीं कह सकती कि मुझे पूरब जाना है। जाए पूरा सागर पश्चिम, लेकिन मुझे पूरब जाना है!
अहंकारी मनुष्य अपने को मिटाने की तत्परता में लगा है। और जितना अहंकारी होगा, उतना ही जल्दी उसे लगेगा कि खत्म कर लूं। क्योंकि जितना अहंकार होगा ज्यादा, उतनी ही जीवन में विफलता मिलेगी। हर जगह अहंकार टूटेगा।
साधक का तो एक ही अर्थ है कि अब वह अहंकार तोड़ने के लिए तैयार है। और अहंकार तभी टूटेगा, जब कर्ता का भाव मिटे। कर्ता का भाव तब टूटेगा, जब सभी कर्म तुम्हारे असफल हो जाएं। तुम्हारी सारी विधियां, तुम्हारी सारी क्रियाएं, तुम्हारे सारे मार्ग व्यर्थ हो जाएं। तुम एक ऐसी जगह पहुंच जाओ, जहां तुम कह सको कि मेरे किए कुछ भी नहीं होता, मेरे किए कुछ भी नहीं होगा। ऐसी जो परम विफलता है, इस परम विफलता में ही मनुष्य को पता चलता है कि मैं असहाय हूं। इस परम विफलता में ही उसे पता चलता है कि मेरे भीतर कोई अहंकार का केंद्र नहीं है। मैं सिर्फ एक लहर हूं सागर पर।
एक तरफ से देखने पर यह विफलता है। और दूसरी तरफ से देखने पर यही जीवन में धर्म का जन्म है। बड़ी से बड़ी सफलता है। एक कोने से, संसार की तरफ से देखने पर, यह सबसे बड़ी हार है। परमात्मा की तरफ से देखने पर यह सबसे बड़ी विजय है। जो इस हार के लिए राजी नहीं है, वह परमात्मा के जगत में कभी विजय उपलब्ध नहीं करेगा।
इसलिए गुरु की सारी चेष्टा यह है... । तुम पूछते हो, क्या करें? गुरु यह कहे, कुछ न करो, उससे तुम्हें तृप्ति न मिलेगी। तुम पूछते हो, क्या करें? गुरु तुम्हें देता है कि कुछ करो। कर-करके वह तुम्हें उस जगह लाएगा, जहां तुम खुद ही कहने लगोगे, करने से कुछ भी नहीं होता। वह तुम्हें न करने की अवस्था में ला रहा है।
हालांकि तुम करने से न करने की अवस्था में न जाओगे। तुम कुछ रास्ते निकालोगे। तुम कहोगे कि मुझे प्रकाश दिखाई पड़ने लगा। तुम कुछ करके पा रहे हो, यह तुम बताओगे गुरु को जा-जाकर। तुम कहोगे कि अब मुझे लाल-नीले रंग दिखाई पड़ रहे हैं। तुम कहोगे, अब मुझे ओंकार का नाद सुनाई पड़ने लगा। तुम कहोगे, मेरी कुंडलिनी जाग्रत हो रही है। तुम हजार तरकीबें निकालोगे यह सिद्ध करने की कि जो मैं कर रहा हूं, वह विफल नहीं हो रहा है, वह सफल हो रहा है।
तुम अपने अहंकार को बचाने के सब उपाय करोगे। लेकिन अगर तुम्हें सौभाग्य से सदगुरु मिल गया हो, तो वह तुम्हारे एक उपाय चलने न देगा। वह कहेगा, यह कुंडलिनी, यह सब बकवास है। यह सब तुम्हें वहम है। तुम सपना देख रहे हो। बंद करो यह बात। ये रंग-बिरंगे चित्र, जो तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं, ये स्वप्न से ज्यादा नहीं हैं। यह तुम्हें जो प्रकाश दिखाई पड़ रहा है, यह तुम्हारी कल्पना है।
सदगुरु तो तुम्हें टिकने नहीं देगा। तुम कितनी ही सफलता की खबरें लाओ, वह तुम्हें विफल करता रहेगा। और अगर तुम भाग ही न गए उसके पास से, तो वह तुम्हें जरूर उस जगह ले आएगा धीरे-धीरे--तुम्हारी सामर्थ्य के अनुसार ही लाएगा--उस जगह ले आएगा, जहां तुम कहोगे कि करने से कुछ भी नहीं होता।
और जिस दिन तुम समझोगे, करने से कुछ नहीं होता, उसी दिन कर्तापन विलीन
हो जाएगा। और उस कर्तापन के विलीन होने के क्षण में ही तुम्हारी बूंद में पूरा सागर उतर आएगा। उसी क्षण सब कुछ हो जाएगा। जब तुम मिट जाओगे, तो सब कुछ हो जाएगा। जब तक तुम हो, तब तक कुछ भी न होगा।
और तुम्हारी पूरी कोशिश यह है कि तुम बने रहो। तो तुम न मालूम क्या- क्या व्यर्थ की बातें खोज लाते हो कि यह उपलब्धि हो रही है। और इस वजह से तुम्हें व्यर्थ के गुरु भी मिल जाते हैं।
सौ गुरुओं में कभी कोई एक सदगुरु होगा। निन्यानबे जो गुरु हैं, वे तुमने पैदा किए हैं। वे तुम्हारी तृप्ति के लिए, तुम्हारी सांत्वना के लिए हैं। तुम कहते हो, कुंडलिनी जग रही है। वे कहते हैं, बिल्कुल जग रही है। तुम कहते हो, रंग-बिरंगे सपने दिखाई पड़ रहे हैं। वे कहते हैं, ये सपने

नहीं हैं, ये बड़ी कीमती बातें हैं। इनका बड़ा मूल्य है। तुम बड़ी ऊंचाई पर पहुंच रहे हो। सिद्धावस्था तुम्हारी बिल्कुल करीब है।
तुम्हारी मूढ़ता के कारण, तुम्हारे अहंकार के कारण गुरुओं का इतना बड़ा जाल चलता है। लेकिन सदगुरु तुम्हें कभी भी सफल नहीं होने देगा। इसे जरा ख्याल रखें।
सदगुरु तुम्हें सफल नहीं होने देगा। तुम कितने ही उपाय करो, वह तरकीबें निकालेगा, तुम्हारी टांग खींचकर तुम्हें वापस गिरा देगा। वह तुम्हें उस जगह ला रहा है, जहां बिल्कुल ही साफ तुम्हें हो जाए कि तुम्हारे किए कुछ भी नहीं हो सकता।
इसलिए गुरु की बड़ी कठिनाई है। क्योंकि तुम चाहते हो, कुछ हो जाए। और तुम्हें समझाने-बुझाने के लिए वह तुम्हारा सिर थपथपाता रहता है कि हां, ठहरो; कल होगा; परसों होगा; रुको। और जब भी कुछ होता है, तब उसकी चेष्टा होती है कि तुम इसको मूल्य मत दो। और वह कहता है, रुको, कल होगा। क्योंकि कल तक तुम्हें रोकना भी जरूरी है। तुम भाग जा सकते हो। तुम्हें भविष्य की आशा देनी जरूरी है।
तुम्हारे अतीत को मिटाना है, तुम्हारे भविष्य को भी मिटाना है। लेकिन तुम रुकोगे, तभी यह हो सकता है। तो वह तुम्हें आशा देता है कि ठहरो। एक दिन, अगर तुम रुके ही रहे, और अगर तुमने साहसपूर्वक प्रयत्न किया, और सब प्रयत्न तुम्हारे असफल हो गए... ।
जब मैं कह रहा हूं सब प्रयत्न, तो मेरा मतलब समझ लें, सब प्रयत्न। कुछ बाकी न रहा करने को। सारी आशा तिरोहित हो गई। कोई किरण न रही आशा की। उस गहन अंधकार में ही महासूर्य का जन्म है। उस दिन तुम खाली हो जाओगे। उस दिन तुम कहोगे, अब कुछ करने को भी नहीं बचा। अब वासना को दौड़ाने के लिए कोई मार्ग नहीं है, अब कोई भविष्य नहीं है। और अब अहंकार को सम्हालने के लिए कोई उपाय नहीं है। सब बैसाखियां गिर गईं। अब तुम बच नहीं सकते।
इस घड़ी में ही गुरु के सहारे की जरूरत हो जाती है। क्योंकि इस घड़ी में तुम भाग जा सकते हो; और यही क्षण था, जब खजाना मिलने के करीब था। इस वक्त भी वह तुम्हें कहेगा कि ठहरो, कुछ मत करो, रुको, सब होगा।
उसका आश्वासन तुम्हारे धैर्य को बढ़ाने के लिए है। होगा सब तुम्हारे भीतर, कोई गुरु कुछ भी नहीं करता है। और जो गुरु करता है, समझना कि वह गुरु नहीं है। क्योंकि सत्य को दिया नहीं जा सकता। सत्य को खींचकर पैदा नहीं किया जा सकता। सिर्फ तुम्हारी व्यर्थ दौड़-धूप को मिटाना है।
तुम वहीं खड़े हो, जहां सत्य है। लेकिन तुम्हें खड़े होने की आदत नहीं है। तुम भाग रहे हो। तुम दौड़ रहे हो। तुम्हारी दौड़ गिरानी है। कर्म तुम्हारी दौड़ है।
और तुम्हें सदा आसानी है। एक कर्म छोड़कर तुम दूसरा पकड़ सकते हो। तुम
एक गुरु को छोड़कर दूसरा पकड़ लोगे। कोई तुम्हारे चक्र जगाएगा। कोई तुम्हारी कुंडलिनी को सहारा देगा। कोई कुछ और सिखाएगा। तुम गुरु बदलते रहोगे। तुम विधि बदलते रहोगे। लेकिन तुम अपने को मजबूती से पकड़े रहोगे। सदगुरु की छाया में तुम्हें मिटना पड़ेगा। और जिनकी मिटने की तैयारी हो, वे ही केवल सत्य को पा सकते हैं।
तो निश्चित ही, सारी विधियों की एक ही उपादेयता है, वह है करने की व्यर्थता को जान लेना। करने की व्यर्थता जान ली कि होने की सार्थकता समझ में आ जाती है। और होना और करना बिल्कुल विपरीत है। करना बाहर है, होना भीतर है। जब करना बिल्कुल बंद हो जाता है, तो होने का सूर्य प्रकट होता है, फूल खिलता है। किसी भी भांति प्रयत्न से तुम्हें छुटकारा चाहिए।
लेकिन अगर तुमसे सीधा कह दिया जाए कि तुम सब करना छोड़ दो, तो तुम्हें बात समझ में ही न आएगी। तुम्हें इंच-इंच तैयार करना पड़ेगा। एक-एक मार्ग से तुम्हें ले जाना पड़ेगा। और एक-एक मार्ग व्यर्थ होने लगे और तुम्हें दिखाई पड़ने लगे कि करने से कुछ होने वाला नहीं है। क्योंकि जो है, वह मेरे बिना किए हुए मेरे भीतर मौजूद है। अगर मैं एक क्षण को भी कर्म को छोड़ दूं, कर्म की चंचलता हट जाए, तो उस अचंचल स्थिति में वह प्रकट हो जाए।

लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं। मनुष्य की बड़ी से बड़ी कुशलता है, सेल्फ डिसेप्शन, आत्मवंचना। और हम इस तरकीब से धोखा देते हैं कि हम खुद ही नहीं पहचान पाते कि हमने अपने को धोखा दिया।
मुल्ला नसरुद्दीन एक बाजार से गुजर रहा है। एक आम वाले का ठेला खड़ा है
और आम वाला उस तरफ मुंह करके किसी से बात कर रहा है। तो उसने एक आम उठाकर अपने झोले में डाल लिया। फिर उसकी आत्मा कचोटने लगी। फिर उसे लगा कि चोरी करना तो ठीक नहीं। और बेचारे आम वाले को धोखा दे दिया। गरीब आदमी है; और गरीब को धोखा देना उचित नहीं है। यह मैंने पाप किया।
तो वह वापस गया। झोले से आम निकाला और आम वाले से कहा कि आम बदल दो। आम वाले ने समझा कि खरीदा होगा इसने, तो उसने बेचारे ने बदल दिया। तब वह प्रसन्नता से घर लौटा। उसने कहा, पहला तो मैंने चुराया था, दूसरा उसने खुद ही दिया है। अब आत्मा में कोई कांटा नहीं चुभ रहा है। अब वह बिल्कुल प्रसन्न घर जा रहा है; क्योंकि दूसरा उसने खुद दिया है। अब कोई सवाल ही नहीं है।
करीब-करीब आप यही कर रहे हैं। जरा-सा हेर-फेर कर लेते हैं और सोचते हैं, सब हल हो गया। ऐसे हल नहीं होगा। यह धोखा चल नहीं सकता। आपको समझना ही होगा कि मूल समस्या क्या है।
मूल समस्या इतनी है कि जो आपको मिला ही हुआ है; उसको आप पाने की कोशिश
कर रहे हैं। जैसे एक मछली सागर में सागर को खोजने की कोशिश कर रही हो। बड़ी कठिनाई है। गुरु क्या कर सकता है इस मछली के लिए!
एक ही उपाय है कि किसी भांति इस मछली को पानी के बाहर खींच ले, ताकि यह तड़फने लगे। और यह तड़फ जाए रेत पर दो क्षण, वापस इसको सागर में डाल दे, तो यह फौरन पहचान जाएगी कि मैं सागर में सदा से थी। लेकिन जब तक यह सागर से अलग नहीं हुई, तब तक इसको पता भी नहीं चल रहा है।
आप परमात्मा में हैं, जैसे मछली सागर में है। जैसे मछली सागर के बिना नहीं हो सकती, आप परमात्मा के बिना नहीं हो सकते हैं। वह आपके होने का ढंग है। वह आपके होने का आधार है।
तो गुरु क्या करे? आप उससे पूछते हैं, मैं क्या करूं परमात्मा को पाने
के लिए? और वह देख रहा है कि मछली पानी में तैर रही है। और पूछती है, पानी को पाने के लिए क्या करूं? तो आपको कुछ विधि बताता है। वे विधियां सब ऐसी हैं कि जिनसे आप तड़फ जाएं; जिनसे आप क्षणभर के लिए उस बेचैनी से भर जाएंगे, जो आपको सागर से अलग कर दे एक क्षण को भी। और जैसे ही वह अलग होने की व्यर्थता और पीड़ा आपको पता चलेगी, आप वापस सागर में गिर जाएंगे। वह सागर में गिरना ही परमात्मा से मिलना हो जाएगा।
सारी खोज की दुविधा, समस्या, उलझाव यही है कि हम उसे खोज रहे हैं जो मिला ही हुआ है। और गुरु को आपको वही दिखाना है, जो आप देख ही रहे हैं। क्या किया जाए?
मैं एक कहानी कहता रहा हूं। एक आदमी ने शराब पी ली। शराब पीकर रात वह अपने घर लौटा, आदतवश।
घर आने के लिए कोई होश की जरूरत तो किसी को भी नहीं होती। अपने घर तो आदमी यंत्र की तरह चला आता है। कब मुड़ना है बाएं, कब दाएं; किस गली से जाना है; कहां से आना है। अपने घर आने के लिए कोई होश की जरूरत किसी को भी नहीं होती है।
आप भी बेहोश ही अपने घर आते हैं। साइकिल का हैंडल मुड़ जाता है, गाड़ी का व्हील मुड़ जाता है, पैर घूम जाते हैं। आप अपने घर आ जाते हैं।
वह बेहोश तो था, अपने घर पहुंच गया। लेकिन घर के सामने जाकर उसको ख्याल आया कि यह मेरा घर है या नहीं! आंखों में धुंध थी; भीतर नशा था। कुछ ठीक साफ समझ नहीं। चीजें घूमती मालूम पड़ रही थीं। तो बैठ गया अपनी सीढ़ियों पर और आस-पास से गुजरने वाले लोगों से पूछने लगा कि कोई मुझे मेरे घर का पता बता दो!
कोई हंसा। किसी ने कहा, अरे मूर्ख, तू अपने घर के सामने बैठा है। तू अपने घर की सीढ़ी पर ही बैठा हुआ है। उसने कहा, तुमने मुझे इतना नासमझ समझा हुआ है कि अपने घर की सीढ़ी पर बैठकर मैं तुमसे पूछूंगा?

जिसने भी उसे बताने की कोशिश की कि तू अपने घर की सीढ़ी पर बैठा है, उसने समझा कि वह उसे धोखा देने की कोशिश कर रहा है। अगर मैं अपने घर की सीढ़ी पर बैठा हूं, तो मैं पूछूंगा क्यों?
भीड़ इकट्ठी हो गई। उसकी मां, बूढ़ी मां, शोरगुल सुनकर मकान के बाहर आई। आधी रात, देखा उसका बेटा रो रहा है और भीड़ खड़ी है। और वह पूछ रहा है, मेरा घर कहां है? तो उसकी मां ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा कि बेटा, तू पागल हो गया! यह तेरा घर है।
उसने उसको देखा। वह पहचाना तो नहीं। देखा, कोई स्त्री खड़ी है। उसने पैर पकड़ लिए और कहा, माई, तू कृपा कर और मुझे मेरे घर का पता बता दे।
तभी पड़ोस का एक आदमी, जो खुद भी नशे में था, वह अपनी बैलगाड़ी जोतकर आ गया। उसने कहा कि बैठ, तू मानता ही नहीं, तो मैं तुझे पहुंचा दूंगा।
उसकी मां रोती है। वह कहती है, इसकी बैलगाड़ी में मत बैठना, नहीं तो यह
न मालूम तुझे कहां ले जाए। तू घर पर है ही। अगर तू कहीं भी गया, तो दूर निकल जाएगा।
तो करीब-करीब हालत हमारी ऐसी ही है। अगर कोई कहे कि जिसको आप खोज रहे हैं, वह आपके भीतर है, तो आप कहते हैं, तो क्या मैं इतना मूढ़ हूं कि मुझे पता नहीं! तो आपके लिए बैलगाड़ी जोतनी पड़ती है। उसमें आपको बैठाना पड़ता है कि चलिए, विराजिए। आपको पहुंचा देंगे आपके घर तक।
इसमें जो गुरु है, वह तुम्हें बैलगाड़ी पर बिठा-बिठाकर थकाएगा। और घुमा-फिराकर उसी जगह ले आएगा, जहां से बैलगाड़ी की यात्रा शुरू हुई थी। लेकिन इस बीच बैलगाड़ी में तुम्हें इतने दचके देगा कि तुम्हारा होश आ जाए, तुम्हारी बेहोशी टूट जाए, नींद टूट जाए।
तुम्हारी मंजिल दूर नहीं है। तुम्हारा होश कायम नहीं है। जो पाना है,
वह तो यहां है। लेकिन जिसे पाना है, वह बेहोश है। और उससे सीधा यह कह देना कि तुम वहीं खड़े हो, जहां पाना है, वह तुम्हारी मानेगा नहीं। अगर उसको यही समझ में आ जाता, तो वह तुमसे पूछता ही नहीं।
शिष्य गुरु के पास इसलिए आ रहा है कि वह जानता है कि जहां वह है, वहां कुछ भी नहीं है। और जहां सब कुछ है, वह बहुत दूर है मंजिल। बड़ी कठिन है वहां पहुंचने की यात्रा। किसी से पूछना पड़ेगा, कोई गाइड चाहिए। इसीलिए तुम्हारे पास आया है। और अगर तुम उससे सीधा-सीधा कह दो, यहां आने का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि तुम वहां हो ही, मंजिल में ही तुम रह रहे हो; तब वह कोई दूसरा गुरु खोजेगा, जो उसे ले जाए।
तो सदगुरु को तुम्हारी नासमझी के साथ योजना बनानी पड़ती है। वह बैलगाड़ी जोतता है, ताकि तुम्हें भरोसा आ जाए कि ठीक है। वह तुम्हें बिठाता है। वह गाड़ी चलाता है। वह तुम्हें काफी चक्कर लगाता है। और उसी जगह तुम्हें ले आना है, जहां तुम थे, जहां से तुम्हें यात्रा पर शुरू किया गया था।
समस्त गुरुओं का एक ही उपाय है कि तुम्हें कर्म की व्यर्थता, विधि की व्यर्थता बोध में आ जाए। प्रयत्न व्यर्थ है। निष्प्रयत्न उसकी उपलब्धि है। पर यह आने के लिए काफी भटकना जरूरी है। और अपने ही घर को पहचानने के लिए न मालूम कितने घरों, कितने द्वारों की तलाश करनी पड़ती है। जहां तुम हो, वहां आने के लिए तुम्हें करीब-करीब पूरे संसार का चक्कर लगा लेना होता है।

तीसरा प्रश्नः गुणातीत में जाने के लिए आपने साक्षी-भाव का प्रयोग बताया। लगता है, आपकी सारी शिक्षा का केंद्रीय तत्व साक्षीत्व है। वर्षों से मैं आपको सुनता हूं और संभवतः साक्षीत्व का प्रयोग भी करता हूं। लेकिन क्षितिज की तरह वह मुझसे जहां का तहां खड़ा मालूम होता है। कृपा करके बताएं कि मेरी भूल क्या है?

बस इतनी ही भूल है कि यह साक्षी-भाव को भी आप क्रिया बना लिए हैं। आप सोचते हैं, आप साक्षी-भाव साधते हैं। साक्षी-भाव भी आपको कुछ करने जैसा मालूम होता है। एक भूल।

साक्षी-भाव कृत्य नहीं है, समस्त कृत्यों के प्रति बोध का भाव है। इसलिए साक्षी-भाव स्वयं कृत्य नहीं है। साक्षी-भाव के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। जो भी आप करते हैं, उसको देखना है।
और साक्षी-भाव को अगर आप कर्म बना लेंगे, तब तो फिर आपको इसको भी देखना पड़ेगा। इसके पीछे फिर आपको पुनः साक्षी होना पड़ेगा। साक्षी अंतिम है, उसके पीछे जाने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए आप साक्षी-भाव को कर्म मत बनाएं, उसे सहज रहने दें।
जरा कठिन है, क्योंकि हम सब चीज को कर्म बना लेते हैं। हम साक्षी-भाव
को भी साधने लगते हैं।
यह वैसा ही है, जैसे किसी आदमी को मैं कहूं कि नींद को लाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। और उसको नींद नहीं आती। वह मुझसे पूछेगा, यही तो मेरी समस्या है कि मुझे नींद नहीं आती। मैं पूछता हूं कि क्या करूं कि नींद आ जाए? और आप कहते हैं, नींद लाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता। तो इसका मतलब हुआ कि मुझे नींद कभी आएगी ही नहीं। मुझे आती नहीं।
वह कोई विधि मांगता है। वह कहता है, मैं कुछ करूं, जिससे नींद आ जाए।
तो आप उसे बता सकते हैं कि तू एक से लेकर सौ तक गिनती कर। फिर सौ से उलटा लौट--निन्यानबे, अट्ठानबे, सत्तानबे--एक तक आ। फिर एक से जा।
मगर उसके खतरे हैं। खतरा यह है कि जब तक आप गिनती पढ़ते रहेंगे, तब तक
तो नींद आ ही नहीं सकती। क्योंकि कोई भी कर्म नींद में बाधा डालेगा। कोई भी कर्म विश्राम में बाधा डालेगा। आप कुछ भी करें, जब तक आप कर रहे हैं, तब तक नींद नहीं आएगी। करना तो बंद होना चाहिए, तभी नींद आएगी।
नींद नहीं आती, उसका मतलब ही इतना है कि आपके मन में करना जारी रहता है। इतना ही हो सकता है कि एक से सौ तक गिनती, सौ से फिर वापस एक तक गिनती, फिर एक से सौ तक गिनती आपको उबा दे, थका दे। और आप कर-करके ऊब जाएं, थक जाएं। और उस थकान की वजह से संख्या पढ़ना भूल जाएं। और उस भूले क्षण में नींद आ जाए। यह हो सकता है। लेकिन नींद तो तभी आएगी, जब करना छूट जाएगा। जब तक करना जारी रहेगा, तब तक नींद नहीं आएगी। करने में और नींद में विपरीतता है।
ठीक ऐसे ही साक्षी-भाव की दशा है। आप कुछ भी करें, साक्षी-भाव नहीं हो पाएगा। क्योंकि जो भी आप करेंगे, उसमें कर्ता हो गए। साक्षी का मतलब ही यह है कि मैं कर्ता नहीं बनूंगा, मैं सिर्फ देखूंगा। मैं किसी तरह का कर्ता- भाव पैदा नहीं होने दूंगा।
लेकिन आप कहते हैं कि मैं सिर्फ देखूंगा, तो मैं देखने का कर्म करूंगा। तो आप अकड़ जाएंगे और अकड़कर देखेंगे; वह कर्तृत्व हो गया, साक्षी- भाव खो गया।
साक्षी-भाव तो सहज है। उसके लिए अकड़ नहीं चाहिए। उसके लिए कोई करने की बात नहीं चाहिए। करने का कोई सवाल ही नहीं है।
मगर क्या करें आप! साक्षी-भाव पास में नहीं है, तो आप तो करेंगे ही। जब
तक आप करेंगे, तब तक साक्षी-भाव नहीं सधेगा। इसीलिए आप कहते हैं, संभवतः साक्षीत्व का प्रयोग कर रहा हूं। नहीं तो संभवतः का ख्याल नहीं आएगा। अगर साक्षी का प्रयोग हो रहा है, तो हो रहा है। संभव की क्या बात है?
आप कभी नहीं कहते कि संभवतः मैं जिंदा हूं! आप जिंदा हैं, तो आप जानते हैं, जिंदा हैं। मर गए, तो बात खत्म हो गई। संभवतः कहने वाला भी नहीं रहा। साक्षी-भाव अगर होगा, तो होगा। नहीं होगा, तो नहीं होगा। संभव का अर्थ
ही यह हुआ कि आप साक्षी-भाव को एक क्रिया बना लिए हैं। आप कोशिश कर रहे हैं। कोशिश से ही तो साक्षी-भाव मिट जाएगा।
आप कोशिश मत करें। जो भी होता है, उसे देखें। कभी साक्षी-भाव हो जाए,
तो ठीक; न हो, तो ठीक। लेकिन कोशिश मत करें। साक्षी-भाव को छोड़ दें अपने पर। एक क्षण को भी आ जाए चौबीस घंटे में, तो काफी है। बस, उतनी देर देख लें। जब न आए, फिक्र न करें। जब साक्षी-भाव आए, तो उसे देख लें। और जब न आए, तो उसके न आने को देखते रहें। जब द्रष्टा सध जाए, तो उसको देख लें। जब द्रष्टा खो जाए, तो उसको देख लें।
गुरजिएफ इस संबंध में बहुत कीमती है। गुरजिएफ से आस्पेंस्की ने पूछा
है कि मैं... । क्योंकि गुरजिएफ की साधना थी सेल्फ रिमेंबरिंग की। उसको

साक्षी-भाव कहें। स्वयं का स्मरण बनाए रखना। कभी-कभी भूल जाएगा। कभी-कभी खो जाएगा।
तो आस्पेंस्की गुरजिएफ से पूछ रहा है, उसका शिष्य, कि कभी-कभी जब खो जाए, तब मैं क्या करूं? कभी तो ध्यान सधता है और कभी बेध्यान हो जाता हूं। तो गुरजिएफ कहता है, जब ध्यान सधे, तो जानो कि ध्यान सधा। और जब बेध्यान हो जाओ, तो जानो कि अब बेध्यान है। लेकिन इसमें कुछ कलह खड़ी मत करो। बी अटेंटिव आफ योर इनअटेंशन। वह जब बेध्यान हो जाए, तब उसका भी ध्यान रखो। जब होश रहे तो ठीक, होश के प्रति होश रखो। और जब बेहोशी आ जाए तो ठीक, बेहोशी के प्रति होश रखो।
बड़े मजे की बात है। क्योंकि जब आप बेहोशी के प्रति होश रखेंगे, तो बेहोशी टिक नहीं सकती।
सहज होश को रखो। उठते-बैठते, चलते-सोते, जो भी हो रहा हो। कभी-कभी सपना
मन को पकड़ लेगा, तो पकड़ लेने दो। कभी-कभी भूल जाएंगे, तो भूल जाओ। इससे अड़चन खड़ी मत करो; इससे तनाव मत बनाओ। साक्षी-भाव के सहज सूत्र को स्फुरित होने दो।
धीरे-धीरे, एक-एक, दो-दो क्षण करके वह झरना फूटेगा। और अगर सहज रहे, तो
वह झरना बंद नहीं होगा; बड़ा होता जाएगा। और अगर झपट्टा मारकर उसको पकड़ा, तो वे जो दो बूंद आ रही थीं, वे भी बंद हो जाएंगी।
कुछ चीजें हैं, जिनको झपट्टे से नहीं पकड़ा जा सकता। उसमें वे मर जाती हैं। वे बहुत कोमल हैं। अति कोमल हैं। बहुत डेलिकेट हैं, नाजुक हैं। उनको पत्थर की तरह हाथ में नहीं लिया जा सकता।
लेकिन हमारी आदत हर चीज को पत्थर की तरह हाथ में लेने की है। इसलिए जब फूल पर भी हमारा हाथ पड़ता है, तो हम पत्थर की तरह ही हाथ में ले लेते हैं। उसमें ही फूल मर जाता है।
और साक्षी-भाव सबसे नाजुक फूल है। उससे ज्यादा नाजुक इस जगत में कोई
भी चीज नहीं है। वह सर्वाधिक नाजुक है। उससे ज्यादा कोमल फिर कुछ भी नहीं है। इसलिए उसको आप झपट्टा मारकर नहीं पकड़ सकते। उसको आपको सहजता से आने देना होगा। आपको चुपचाप प्रतीक्षा करनी होगी। और अगर वह न आए, जैसा पूछा है, कि अभी भी दूर खड़ा मालूम पड़ता है; तो कृपा करके बताएं कि मेरी भूल क्या है? उसे दूर खड़ा रहने दें और देखते रहें। उसको पास लाने की फिक्र मत करें। सिर्फ देखने की फिक्र करें कि वह दूर खड़ा है। देखते रहें। उसको पास लाने की कोशिश में कर्ता-भाव आ जाएगा और साक्षी-भाव खो जाएगा। क्योंकि आप कर्म की फिर जिज्ञासा करने लगे।
अनंत जीवन तक भी वह खड़ा रहे साक्षी-भाव क्षितिज की तरह और आपको न मिले,
तो भी जल्दी मत करें। और जिस दिन आप अपनी जगह खड़े रहेंगे और वह अपनी जगह खड़ा रहेगा और कोई भाग-दौड़ नहीं होगी, अचानक आप पाएंगे कि वह आपके भीतर खड़ा है, दूरी मिट गई। लेकिन दूरी मिटाई नहीं जा सकती। आप दौड़कर नहीं मिटा सकेंगे। क्योंकि दौड़ने का मतलब है, कर्ता आ गया।
यह कर्ता और साक्षी शब्दों का फासला ठीक से समझ लें। जब भी आप कुछ करने लगे, तो कर्ता आ गया। और जो भी हो रहा है, उसे आप देखते रहे, तो साक्षी रहा।
जो भी हो रहा है, होने दें। ऐसा समझें कि जैसे किसी और को हो रहा है। आप जैसे किसी नाटक को देख रहे हैं। किसी और पर कहानी बीत रही है। दूरी! उसमें इतने ज्यादा डूबें मत। उसकी वासना न बनाएं। नहीं तो हम सोचते हैं पहले कि जैसे और चीजें मिल जानी चाहिए, साक्षी-भाव भी मिल जाना चाहिए। उसकी वासना बनाते हैं। जितने जोर से हम वासना बनाते हैं, उतनी ही दूरी हो जाती है। साक्षी-भाव आपके लाने से नहीं आएगा। आपके मिट जाने से आएगा। और मिटने
की सुगमतम कला एक ही है कि आप करने के साथ अपने को मत जोड़ें; सिर्फ देखने के साथ जोड़ें।
इसलिए हमने परम साधना के सूत्र को इस मुल्क में दर्शन कहा है। दर्शन
का मतलब है, सिर्फ देखने की कला। जरा भी कुछ न करें।

अंतिम प्रश्नः कामवासना के पार जाने के लिए अविवाहित रहने की सहज इच्छा रखने वाला साधक साक्षी-भाव को साधे या वासना में उतरकर उसकी

व्यर्थता या सार्थकता को जान ले? अविवाहित रहने की सहज इच्छा क्या इस तथ्य को इंगित नहीं करती कि इसकी व्यर्थता को उसने अपने पिछले जन्मों की यात्रा में बहुत दूर तक जान लिया है? क्या साक्षी-भाव बिना उसकी पूर्ण व्यर्थता जाने नहीं साधा जा सकता?

पहली बात, अविवाहित होने की सहज इच्छा और अकाम, एक ही बात नहीं हैं। अगर वासना ही न उठती हो, तब तो कोई सवाल नहीं है। तब तो यह सवाल भी नहीं उठेगा। वासना ही न उठती हो, तो यह सवाल ही कहां उठता है!
अविवाहित रहने की इच्छा और वासना का न उठना अलग बातें हैं। अविवाहित
तो बहुत-से लोग रहना चाहते हैं। वस्तुतः तो जो ठीक वासना से भरे हैं, वे विवाह से बचना चाहेंगे, क्योंकि विवाह उपद्रव है वासना से भरे आदमी के लिए। विवाह का मतलब है, एक स्त्री, एक पुरुष से बंध गए। और वासना बंधना नहीं चाहती; वासना उन्मुक्त रहना चाहती है।
तो विवाह न करने की इच्छा जरूरी नहीं है कि ब्रह्मचर्य की इच्छा हो। विवाह न करने की इच्छा बहुत गहरे में अब्रह्मचर्य की इच्छा भी हो सकती है। फिर विवाह न करने की इच्छा के पीछे हजार कारण होते हैं। विवाह एक जिम्मेवारी है, एक उत्तरदायित्व है। सभी लोग उठाना भी नहीं चाहते। बहुत चालाक हैं, वे बिल्कुल नहीं उठाना चाहेंगे। कौन उस झंझट में पड़े!
लेकिन वासना का न होना दूसरी बात है। विवाह का वासना से कोई लेना-देना नहीं है। बिना वासना के आदमी विवाह कर सकता है, किन्हीं और कारणों से।
एक नौकरानी रखना भी महंगा है घर में। एक पत्नी से ज्यादा सस्ता कोई भी उपाय नहीं है। बिना वासना के आदमी विवाह कर सकता है। और वासना से भरा हुआ आदमी विवाह से बच सकता है। इसलिए विवाह और वासना को पर्यायवाची न समझें। चारों तरफ विवाह का दुख दिखाई पड़ता है। जिसमें थोड़ी भी बुद्धि है, वह विवाह से बचना चाहेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उससे पूछ रही है कि क्या नसरुद्दीन, कभी तुम्हारे मन में ऐसा भी ख्याल उठता है कि मुझसे तुमने विवाह न किया होता तो अच्छा होता? या ऐसा ख्याल उठता है कभी कि मैंने--नसरुद्दीन की पत्नी ने--किसी और से विवाह कर लिया होता, तो अच्छा था?
नसरुद्दीन ने कहा कि मैं किसी दूसरे का बुरा क्यों चाहने लगा! एक भावना जरूर मन में उठती है कि तू अगर सदा कुंआरी रहती तो अच्छा था।
तो चारों तरफ विवाह आप देख रहे हैं। वहां जो दुख फैला हुआ है। हर बच्चे को उसके घर में दिखाई पड़ रहा है, उसके मां-बाप का दुख; बड़े भाइयों, उनकी पत्नियों का दुख। विवाह एक नरक है, चारों तरफ फैला हुआ है। बड़ी गहरी वासना है, इसलिए हम फिर भी विवाह में उतरते हैं। नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाएगा। अंधे हैं बिल्कुल, शायद इसलिए। बिल्कुल समझ से नहीं चलते। या हर आदमी को एक ख्याल है भीतर कि मैं अपवाद हूं। इसलिए ये सब लोग दुख भोग रहे हैं, मैं थोड़े ही भोगूंगा। हर आदमी को यह ख्याल है।
अरब में कहावत है कि परमात्मा हर आदमी को बनाकर उसके कान में एक बात
कह देता है कि तुझे मैंने अपवाद बनाया है। तेरे जैसा मैंने कोई बनाया ही नहीं। तू नियम नहीं है; तू एक्सेप्शन है। और हर आदमी इसी वहम में जीता है। आप अपने जैसे पचास आदमियों को मरते देखें उसी गड्ढे में। आप अकड़ से चलते जाएंगे कि मैं थोड़े ही! मैं बात ही अलग हूं। इस अपवाद के कारण आप विवाह में उतरते हैं। नहीं तो आंख खोलने वाली है, विवाह की घटना चारों तरफ घटी हुई है। उसमें कहीं कोई छिपा हुआ नहीं है मामला।
तो जरा भी समझ होगी, तो आपमें विवाह की सहज इच्छा न पैदा होगी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि आपमें ब्रह्मचर्य की इच्छा पैदा हो रही है। ब्रह्मचर्य बड़ी दूसरी बात है। अकाम बड़ी दूसरी बात है।
यह जो अकाम है, अगर वह सहज है, तो यह प्रश्न ही नहीं उठेगा। फिर कहीं जाने का कोई सवाल नहीं है, किसी अनुभव में उतरने की जरूरत नहीं है। जिस बात की मन में वासना नहीं उठ रही, उसके अनुभव में उतरने का प्रयोजन क्या है? और अनुभव में उतरूं या न उतरूं, यह भी ख्याल क्यों उठेगा?
साफ है कि वासना भीतर मौजूद है। विवाह की जिम्मेवारी लेने का मन नहीं है। मन चालाक है और वह होशियारी की बातें कर रहा है।

तो मैं कहूंगा कि अगर मन में वासना हो, तो वासना में उतरना ही उचित है। उतरने का मतलब यह नहीं है कि आप साक्षी-भाव खो दें। उतरें और साक्षी-भाव कायम रखें। उतरेंगे, तभी साक्षी-भाव को कसौटी भी है। और अगर नहीं उतरे, तो साक्षी-भाव तो साधना मुश्किल है। और वासना सघन होती जाएगी; और मन में चक्कर काटेगी; और मन को अनेक तरह की विकृतियों में, परवरशंस में ले जाएगी। जिनको हम साधु-संत कहते हैं, आमतौर से विकृत मनों की अवस्था में पहुंच जाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन मरा। उसके बहुत शिष्य भी थे। इस दुनिया में शिष्य खोजना जरा भी कठिन मामला नहीं है। अनेक लोग उसे मानते भी थे। कुछ दिनों बाद उसका एक शिष्य भी मरा। तो जाकर उसने पहला काम स्वर्ग में तलाश का किया कि नसरुद्दीन कहां है। पूछा-ताछा तो किसी ने खबर दी कि नसरुद्दीन वह सामने जो एक सफेद बदली है, उस पर मिलेगा।
भागा हुआ शिष्य अपने गुरु के पास पहुंचा। वहां जाकर उसने देखा, तो बहुत चकित रह गया। बूढ़ा नसरुद्दीन एक अति सुंदर स्त्री को अपनी गोद में बिठाए हुए है। उसने मन में सोचा कि मेरा गुरु! और यह तो सदा विपरीत बोलता था स्त्रियों के; और ब्रह्मचर्य के बड़े पक्ष में समझाता था। यह क्या हो गया! लेकिन तब उसे तत्क्षण ख्याल आया उसके अचेतन से कि नहीं-नहीं, यह परमात्मा का दिया गया पुरस्कार होगा, यह जो स्त्री है। मेरे गुरु ने इतनी साधना की और इतनी तपश्चर्या करता था और इतना ज्ञानी था कि जरूर उसको पुरस्कार में यह सुंदरतम स्त्री मिली है।
तो वह भागा हुआ गया। उसने कहा, धन्यभाग; और परमात्मा का अनुग्रह; प्रभु की कृपा; कैसा पुरस्कार तुम्हें मिला! नसरुद्दीन ने कहा, पुरस्कार? यह मेरा पुरस्कार नहीं है; इस स्त्री को मैं दंड की तरह मिला हूं। शी इ.ज नाट माई प्राइज; आई एम हर पनिशमेंट।
लेकिन उस शिष्य के मन में, अचेतन में, यह ख्याल आ जाना कि यह पुरस्कार मिला होगा, इस बात की खबर है कि वासना कायम है और इसको पुरस्कार मानती है। इसलिए ऋषि-मुनि भी स्वर्ग में किस पुरस्कार की आशा कर रहे हैं? अप्सराएं, शराब के चश्मे, कल्पवृक्ष, उनके नीचे ऋषि-मुनि बैठे हैं और भोग रहे हैं!
तो जो आप छोड़ रहे हैं, वह छोड़ नहीं रहे हैं। वह कुछ सौदा है गहरा और उसमें पुरस्कार की आशा कायम है। यह इस बात की सूचना है कि ये मन विकृत हैं। ये स्वस्थ मन नहीं हैं।
जिन-जिन के स्वर्ग में अप्सराओं की व्यवस्था है, उन-उन का ब्रह्मचर्य परवर्टेड है, विकृत है। और जिन्होंने स्वर्ग में शराब के चश्मे बहाए हैं, उनके शराब का त्याग बेईमानी है, झूठा है। जो वे यहां नहीं पा सकते या यहां जिसको छोड़ने को कहते हैं, वहां उसको पाने का इंतजाम कर लेते हैं। यह मन की दौड़ साफ है। यह गणित सीधा है।
तो मैं तो कहूंगा कि बजाय वासना को दबाने, विकृत करने के साक्षी-भाव
से उसमें उतर जाना उचित है। संसार एक अवसर है। यहां जो भी है, अगर उसका जरा भी मन में रस है, तो उसमें उतर जाएं, भागें मत। नहीं तो वह स्वर्ग तक आपका पीछा करेगा। आखिरी क्षण तक आपका पीछा करेगा। उसमें उतर ही जाएं। उसका अनुभव ले ही लें।
अनुभव मुक्तिदायी है, अगर होश कायम रखें। नहीं तो अनुभव पुनरुक्ति बन जाता है और नए चक्कर में ले जाता है।
इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मात्र अनुभव से आप मुक्त हो जाएंगे। अनुभव और साक्षी का भाव संयुक्त हो, तो आप मुक्त हो जाएंगे। अकेला अनुभव हो, तो आपकी आदत और गहरी होती जाएगी। और फिर आदत के वश आप दौड़ते रहेंगे। और अकेला साक्षी-भाव हो और अनुभव से बचने का डर हो, तो वह साक्षी-भाव कमजोर और झूठा है। क्योंकि साक्षी-भाव को कोई भय नहीं है। न किसी चीज के करने का भय है, और न न करने का भय है।
साक्षी-भाव को कर्म का प्रयोजन ही नहीं है। जो भी हो रहा है, उसे देखता रहेगा। तो साक्षी मंदिर में बैठा हो कि वेश्यालय में, कोई फर्क नहीं पड़ता।
क्योंकि साक्षी का काम सिर्फ देखने का है।

कथा है बौद्ध साहित्य में, आनंद एक गांव से गुजर रहा है--बुद्ध का शिष्य। और कथा है कि एक वेश्या ने आनंद को देखा। आनंद सुंदर था। संन्यस्त व्यक्ति अक्सर सुंदर हो जाते हैं। और संन्यस्त व्यक्तियों में अक्सर एक आकर्षण आ जाता है, जो गृहस्थ में नहीं होता। एक व्यक्तित्व में आभा आ जाती है।
वह वेश्या मोहित हो गई। और कथा यह है कि उसने कुछ तंत्र-मंत्र किया। बुद्ध देख रहे हैं दूर अपने वन में वृक्ष के नीचे बैठे। दूर घटना घट रही है, आनंद बहुत दूर है, लेकिन कथा यह है कि बुद्ध देख रहे हैं। बुद्ध देख सकते हैं। वे देख रहे हैं। बुद्ध के पास सारिपुत्त, उनका शिष्य भी बैठा हुआ है। वह भी देख रहा है।
सारिपुत्त बुद्ध से कहता है, आप आनंद को बचाएं। वह किसी मुश्किल में न
पड़ जाए। क्योंकि स्त्री बड़ी रूपवान है और उसने बड़ा गहरा तंत्र-मंत्र फेंका है। और आनंद कहीं ठगा न जाए। लेकिन बुद्ध देखते रहते हैं।
अचानक बुद्ध उठकर खड़े हो जाते हैं और सारिपुत्त से कहते हैं, अब कुछ करना होगा। सारिपुत्त कहता है, अब क्या हो गया जो आप करने के लिए कहते हैं? अब तक मैं आपसे कह रहा था, कुछ करें। आप चुप बैठे रहे। जो बीमारी शुरू हुई, उसे पहले ही रोक देना उचित है!
बुद्ध ने कहा, बीमारी अब तक शुरू नहीं हुई थी; अब शुरू हुई है। आनंद मूर्च्छित हो गया; साक्षी-भाव खो गया। अभी तक कोई डर नहीं था। वेश्या हो, सुंदर हो, कुछ भी हो, अभी तक कोई भय न था। और आनंद उसके घर में चला जाए; रात वहां टिके; कोई भय की बात नहीं थी। अब भय खड़ा हो गया है।
लेकिन सारिपुत्त बड़ा चकित है, क्योंकि आनंद अब भाग रहा है। वेश्या बहुत दूर रह गई है। जब बुद्ध कहते हैं, भय हो गया है, तब आनंद वेश्या से दूर निकल गया है भागकर और उसने पीठ कर ली है। वह लौटकर भी नहीं देख रहा है। लेकिन बुद्ध खड़े हैं। और वे कहते हैं, इस समय आनंद को सहायता की जरूरत है। सारिपुत्त कहता है, आप भी अनूठी बातें करते हैं! जब वेश्या सामने खड़ी
थी और आनंद उसको देख रहा था और डर था कि वह लोभित हो जाए, मोहित हो जाए, तब आप चुपचाप बैठे रहे। और अब जब कि आनंद भाग रहा है, और वेश्या दूर रह गई है, और उसके मंत्र-तंत्र पीछे पड़े रह गए हैं, और उसके प्रभाव का क्षेत्र पार कर गया है आनंद, और आनंद लौटकर भी नहीं देख रहा है, तो अब आपके खड़े होने की क्या जरूरत है?
बुद्ध ने कहा, वह भाग ही इसलिए रहा है कि साक्षी-भाव खो गया। अब वह कर्ता-भाव में आ गया है। और कर्ता की वजह से डरा हुआ है। और अब वह डर रहा है। जब तक साक्षी था, तब तक खड़ा था, डर के कोई कारण भी न थे। अब उसको सहायता की जरूरत है।
एक ही बात करने जैसी है कि आपके भीतर साक्षी-भाव बना रहे। फिर आप कुछ
भी करें, विवाह करें, न करें, कुछ भी करें, साक्षी-भाव आपके अनुभव में जुड़ा रहे, तो आप आज नहीं कल अपनी मुक्ति की सीढ़ियां पूरी कर लेंगे।
लेकिन ध्यान रहे, अधूरे और कच्चे अनुभवों को रोकने का परिणाम विषाक्त होता है। भागें मत; डरें मत; साक्षी को ही सम्हालें। मेरा सारा जोर इस बात पर है कि आप जागें, बजाय भागने के। भागकर कहां जाएंगे? विवाह न करें, यह हो सकता है। लेकिन कितने लोग विवाह न करने से कुछ कहीं पहुंच नहीं जाते। विवाह न करने का परिणाम चित्त में और वासनाओं का जाल होता है।
अगर एक विवाहित और एक अविवाहित आदमी की जांच की जाए बैठकर, तो अविवाहित आदमी के मन में ज्यादा वासना मिलेगी। स्वाभाविक है। जैसे एक भूखे आदमी की और भोजन किए आदमी की जांच की जाए, तो भूखे आदमी के मन में भोजन का ज्यादा ख्याल मिलेगा। जिसका पेट भरा है, उसके मन में भोजन का ख्याल क्यों होगा!
तो जब तक आपको भीतर का साक्षी ही न जगने लगे, तब तक जीवन के किसी अनुभव
से अकारण अधूरे में, अधकचरे में भागना उचित नहीं है। उस भय से कोई किसी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। सारा जीवन अनुभव के लिए है। यह ऐसा ही है, जैसे हम किसी विद्यार्थी को विश्वविद्यालय भेज दें और वह वहां परीक्षाओं से बचने लगे। यह संसार परीक्षालय है। वहां आपकी चेतना इसीलिए है, ताकि अनुभवों से गुजरकर परिपक्व हो जाए।

तो मैं तो कहूंगा, सब अनुभव भोग लें, बुरे को भी। अगर जरा भी रस हो बुरे में, तो उसको भी भोग लें। बस इतना ही ख्याल रखें कि भोगते समय में भी होश बना रहे, तो आप मुक्त हो जाएंगे। और अगर आप डरे, जिम्मेवारी से बचना चाहा, तो वासनाएं विकृत हो जाएंगी और भीतर मन में घूमती रहेंगी।
उन विकृत वासनाओं के परिणाम कभी भी मुक्तिदायी नहीं हैं। स्वास्थ्य
से तो कोई मुक्त हो सकता है, विकृति से कोई मुक्त नहीं हो सकता।
तो सहज हों, स्वाभाविक हों। और जो भी मन में उठता हो, उसको उठने दें, उसको पूरा भी होने दें। सिर्फ एक ही बात ख्याल रखें कि पीछे एक देखने वाला भी खड़ा रहे और देखता रहे। आपकी पूरी जिंदगी एक नाटक हो जाए और आप उसको देखते रहें। यह देखना ही सारी जिंदगी को बदल देगा। यह बड़ा क्रांतिकारी सूत्र है, देखने के द्वारा पूरी जिंदगी को बदल लेना।
भागने के द्वारा कोई कभी नहीं बदलता। भागने से सिर्फ कमजोरी जाहिर होती है। और भागे हुए आदमी की वासनाएं पीछा करती हैं। वह जहां भी चला जाए, वासनाएं उसके पीछे होंगी।

अब हम सूत्र को लें।
और जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा मेरे को निरंतर भजता है, वह इन तीनों गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिए योग्य होता है।
तथा हे अर्जुन, उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का
और अखंड एकरस आनंद का मैं ही आश्रय हूं।
पहली बात, जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा... ।
व्यभिचार का अर्थ है, जहां मन में बहुत दिशाएं हों; जहां मन में बहुत प्रेम-पात्र हों; जहां मन में बहुत खंड हों। विभाजित मन व्यभिचारी मन है। अव्यभिचारी भक्तिरूप का अर्थ है कि मन एकजुट हो, इकट्ठा हो। एक ही धारा में बहे, एक ही दिशा की तरफ प्रवाहित हो, तो अव्यभिचारी है।
संसार में हमारा मन बहुत तरफ बह रहा है। संसार में हम सभी व्यभिचारी हैं। मन का एक हिस्सा धन के लिए दौड़ रहा है। मन का दूसरा हिस्सा पद के लिए दौड़ रहा है। मन का तीसरा हिस्सा यश के लिए दौड़ रहा है। मन का चौथा हिस्सा धर्म के लिए दौड़ रहा है। पांचवां हिस्सा कुछ और; छठवां कुछ और। आपके भीतर एक भीड़ है। और सभी अलग-अलग भागे जा रहे हैं।
इसलिए बड़ा द्वंद्व है और बड़ी कलह है। क्योंकि एक ही व्यक्ति को इतनी दिशाओं में भागना पड़ रहा है। जैसे एक ही बैलगाड़ी में हमने सब तरफ बैल जोत दिए हैं। आठों दिशाओं में बैल जा रहे हैं। बैलगाड़ी कहां जाए? तो जब भी कोई बैल जरा ताकत ज्यादा लगा देता है या दूसरा बैल थोड़ा ढीला और शिथिल होता है या विश्राम कर रहा होता है या ज्यादा ताकत पहले लगा चुका होता है और अब ताकत नहीं बचती, तो बैलगाड़ी को थोड़ी देर कोई पूरब की तरफ खींच लेता है। लेकिन यह थोड़ी देर हो सकता है। क्योंकि जो पूरब की तरफ खींच रहा है, वह
थक जाएगा खींचने में। और पश्चिम की तरफ जो बैल बंधा हुआ है, जो कि इस खिंचने में जा रहा है, वह थकेगा नहीं। वह थोड़ा ढील दे रहा है, विश्राम कर रहा है। जब उसकी ताकत इकट्ठी हो जाएगी और पूरब की तरफ ले जाने वाला बैल थक जाएगा, तब वह पश्चिम की तरफ बैलगाड़ी को खींचेगा।
ऐसे आप जिंदगीभर खिंचेंगे बहुत, पहुंचेंगे कहीं भी नहीं। बैलगाड़ी आखिर में वहीं अस्थिपंजर टूटे हुए पड़ी मिलेगी, जहां शुरू में खड़ी थी।
ऐसा हमारा मन है, व्यभिचारी मन है। इसमें कभी एक बात ठीक लगती है, कभी उससे विपरीत बात ठीक लगती है। अभी धन कमा रहे हैं; और तभी कोई आ जाता है कि आप! आप जैसा यशस्वी पुरुष! आपके नाम से तो एक धर्मशाला बननी ही चाहिए। अभी धन इकट्ठा कर रहे थे; अब यह नाम का भी मोह पकड़ता है कि एक धर्मशाला
तो कम से कम होनी ही चाहिए, जिस पर एक पट्टी तो लगी हो। एक मंदिर बनवा दूं। बिरला का मंदिर है; मेरा क्यों न हो! अभी धन पकड़े था; अब यह धन खर्चा करने का काम है। यह आपके मन के विपरीत है मामला। लेकिन इससे यश मिलता है, नाम मिलता है।

अब ये मंदिर बनाएंगे। मंदिर बनाते-बनाते यह बैल थक जाएगा। और मंदिर
बन भी नहीं पाएगा, उसके पहले ही आप ब्लैक मार्केटिंग और जोर से करने लगेंगे। क्योंकि वह जितना पैसा खर्च हो गया, उसको पैदा करना है। तो इधर मंदिर बन नहीं पाता कि वह आदमी जोर से और जेब काटने लगेगा; चोरी और करने लगा; स्मगलिंग करेगा। कुछ उपाय करेगा जल्दी से, ताकि यह जो मंदिर में लग गया है, इससे दस गुना पैदा कर ले।
यह चल रहा है। यह पूरे वक्त आपके मन को पकड़े हुए है। यह विभिन्न दिशाओं में दौड़ता हुआ मन व्यभिचारी मन है। और व्यभिचारी को कोई शांति नहीं। हो नहीं सकती। अव्यभिचारी इसीलिए बड़ी मूल्यवान बात है।
कृष्ण कहते हैं, जब तक कोई अव्यभिचारी-भाव से सत्य की ओर, स्वयं की ओर, सच्चिदानंदघन परमात्मा की ओर न बहे, तब तक कोई उपलब्धि नहीं है।
और ध्यान रहे, अगर आप अव्यभिचारी हैं, तो एक ही क्षण में भी उपलब्धि हो सकती है। क्योंकि जब सारी शक्ति एक दिशा में बहती है, तो सब बाधाएं टूट जाती हैं।
बाधाएं हैं ही नहीं। बाधाएं खड़ी हैं, क्योंकि आप बहुत दिशाओं में बह रहे हैं। इसलिए आपकी शक्ति ही इकट्ठी नहीं हो पाती, जो किसी भी दिशा में बह सके।
जैसे हम गंगा को हजार हिस्सों में बांट दें और गंगा का कोई भी हिस्सा फिर सागर तक न पहुंच पाए। सारी गंगा रेगिस्तानों में खो जाए। गंगा के लिए कोई बाधा नहीं है। लेकिन अविभाज्य धारा चाहिए। गंगा इकट्ठी हो, तो ही सागर तक पहुंच सकती है। और आप भी इकट्ठे हों, तो ही परमात्मा तक पहुंच सकते हैं। लेकिन जैसा हमारा मन है, उसमें बड़ी तकलीफ है। उसकी पहली तकलीफ तो यह
है कि वह इकट्ठा कभी भी नहीं है, एकजुट कभी भी नहीं है; खंड-खंड है, टूटा- टूटा है। और जब एक खंड कहता है, यह करो, तभी दूसरा खंड कुछ और कह रहा है कि यह मत करो। तो हम जो भी करें, उसी से पछतावा हाथ लगता है। और जो भी हम न करें, उसका भी पछतावा रह जाता है कि वह हमने क्यों न कर लिया।
हम दुख ही इकट्ठा करते हैं, करें तो, न करें तो। आप धन कमाएं, तो दुखी होंगे। क्योंकि आप धन कमाकर पाएंगे कि इससे तो अच्छा था, मैंने ज्ञानार्जन किया होता, तो कुछ सुख तो मिलता। या इससे तो अच्छा था कि मैं किसी बड़े पद पर हो गया होता; सारी ताकत उस तरफ लगा दी होती। एक राजनेता हो गया होता। कुछ सुख तो मिलता।
राजनेता हो जाते, तो सोचते, इससे तो बेहतर था, कुछ धन ही कमा लेते। यह
तो व्यर्थ की दौड़-धूप है। ज्ञान इकट्ठा कर लेते, तो कहते, क्या हुआ! शब्द ही शब्द हाथ में लग गए। कुछ मजबूत हाथ में नहीं है। कुछ सब्स्टेंशियल, कुछ सारभूत नहीं दिखता।
सभी रोते हुए दिखाई पड़ते हैं। वह जो ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं, वे रो रहे हैं। धन इकट्ठा कर लेते हैं, वे रो रहे हैं। पद इकट्ठा कर लेते हैं, वे रो रहे हैं। हंसता हुआ आदमी ही नहीं दिखता। जो भी दिखता है, रोता हुआ दिखता है। फिर भी, जो आप हैं, उसके लिए आप ज्यादा रोते हैं। जो आप नहीं हैं, उसका आपको अनुभव नहीं है। आप सोचते हैं, सारा जगत सुख भोग रहा है, मेरे सिवाय। मैं दुख भोग रहा हूं।
जहां भी आप हैं, वहां आप असंतुष्ट होंगे; यह व्यभिचारी मन का लक्षण होगा ही। क्योंकि कोई भी काम आप टोटल, समग्र चेतना से नहीं कर पाते हैं। और जो काम समग्र चेतना से होता है, उसी का फल आनंद है।
अगर आप गड्ढा भी खोद पाएं जमीन में समग्र चेतना से; उस गड्ढा खोदते वक्त आपके पूरे प्राण कुदाली बन गए हों, और मन कहीं भी न जा रहा हो; सारा मन कुदाली में प्रविष्ट कर गया हो; गड्ढा खोदना ही एक क्रिया रह जाए और कहीं भी कोई दौड़ न हो, उस क्षण में आपको जो परम अनुभव होगा, वह आपको बड़ी से बड़ी प्रार्थना और पूजा और यज्ञ में नहीं हो सकता। क्योंकि आप जब प्रार्थना कर रहे हैं, तब मन हजार तरफ जा रहा है। तो वह कुदाली से जमीन खोदना प्रार्थना हो जाएगी।
प्रार्थना का एक ही अर्थ है, अव्यभिचारी चित्त की धारा। वह किसी भी तरफ जा रही हो, पर इकट्ठी जा रही हो।

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा, अव्यभिचारी प्रेम के द्वारा मुझको निरंतर भजता है... ।
जिसके मन में निरंतर अंतिम की खोज का स्वर बजता रहता है।
भजने का अर्थ यह नहीं कि आप बैठकर राम-राम, राम-राम कर रहे हैं।
क्योंकि आपके राम-राम करने का कोई मूल्य नहीं है। जब आप राम-राम कर रहे होते हैं, तब भीतर आप और दूसरी चीजें भी कर रहे होते हैं। धीरे-धीरे अभ्यास हो जाता है। राम-राम करते रहते हैं, और दूसरे हिसाब भी लगाते रहते हैं। राम-राम ऊपर-ऊपर चलता रहता है, जैसे कि कोई और कर रहा हो। और भीतर सब हिसाब चलते रहते हैं। तो उसका कोई मूल्य नहीं है।
भजने का अर्थ है--भजन बड़ी गहरी प्रक्रिया है--उसका अर्थ है, मेरे रोएं- रोएं में रस की तरह कोई चीज डोलती रहे। उठूं, बैठूं, चलूं, बाकी एक स्मृति सजग ही रहे कि उस परम को उपलब्ध करना है, सत्य को खोज लेना है, मुक्ति को खोज लेना है। ये कोई शब्द बनें, यह आवश्यक नहीं है। इनको कोई ऊपर के शब्दों में छिपाने की जरूरत नहीं है। यह भीतर का भाव रहे। इसलिए इसे भक्ति कहेंगे। भक्ति का अर्थ है, भाव। यह भाव बना रहे।
जैसे मां घर में काम कर रही हो, वह चौके में काम कर रही है और उसका छोटा बच्चा घूम रहा है कमरे में। वह सब काम करती रहती है, लेकिन उसका भाव बच्चे की तरफ लगा रहता है। वह कहां जा रहा है? वह क्या कर रहा है? वह गिर तो नहीं जाएगा? वह कोई गलत चीज तो नहीं खा लेगा? वह कोई चीज गिरा तो नहीं लेगा अपने ऊपर? वह सब काम करती रहेगी, लेकिन उसका अचेतन प्रवाहित रहेगा बच्चे की तरफ।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तूफान भी आ जाए, आंधियां बह रही हों, मां की नींद नहीं खुलती। लेकिन उसका बच्चा जरा-सी आवाज कर दे रात, उसकी नींद खुल जाती है। तूफान चल रहा है, उससे उसकी नींद नहीं टूटती। लेकिन बच्चे की जरा- सी आवाज, कि उसकी नींद टूट जाती है। जरूर कोई भाव गहरे में, नींद में भी सरक रहा है।
मनोवैज्ञानिकों ने बहुत-से अध्ययन किए हैं। उसमें एक अध्ययन बड़ा कीमती है। अभी स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी में वे एक प्रयोग करते हैं। और उस प्रयोग से भारत की बड़ी पुरानी खोज सिद्ध होती है। मुझसे भी लोग पूछते हैं, तो मैं वही प्रयोग उनको स्मरण दिलाता हूं।
मुझसे लोग पूछते हैं, आप अपने संन्यासी को कहते हैं स्वामी और अपनी संन्यासिनी को कहते हैं मां, ऐसा क्यों? संन्यासिनी को मां क्यों और संन्यासी को स्वामी क्यों? या तो उसको भी स्वामिनी जैसा कोई शब्द दें; या संन्यासी को भी पिता क्यों नहीं?
स्टैनफोर्ड में अभी-अभी एक प्रयोग हुआ, जो बड़ा सोचने जैसा है। वह प्रयोग यह है कि जिस चीज में आपका रस होता है, उस रस के कारण आपकी आंख की जो पुतली है, वह बड़ी हो जाती है।
अगर आप कोई किताब पढ़ रहे हैं, जिसमें आप बहुत ज्यादा रस पा रहे हैं, तो कमरे में बिल्कुल भी कम से कम प्रकाश हो, तो भी आप पढ़ पाएंगे। क्योंकि आपकी आंख की पुतली बड़ी हो जाती है, आपकी जिज्ञासा के कारण, आपके रस के कारण। और अगर आपको किताब में रस नहीं है, तो कमरे में प्रकाश भी पूरा हो, तो भी आपको धुंधला-धुंधला दिखाई पड़ेगा। क्योंकि रस नहीं होता, तो आंख की पुतली छोटी हो जाती है।
आंख की पुतली चौबीस घंटे छोटी-बड़ी होती है। जब आप बाहर जाते हैं धूप में, तो पुतली छोटी हो जाती है, क्योंकि उतनी धूप को भीतर ले जाने की जरूरत नहीं है। कम से काम चल जाता है। जब आप बाहर से भीतर आते हैं, तो पुतली बड़ी होती है, क्योंकि अब ज्यादा रोशनी भीतर जानी चाहिए।
इसीलिए एकदम धूप से आने पर आपको कमरे में अंधेरा मालूम पड़ता है, क्योंकि पुतली छोटी रहती है। थोड़ी देर लगेगी, तब पुतली बड़ी होगी। फिर कमरे में प्रकाश हो जाएगा। आपकी पुतली बिल्कुल छोटी-बड़ी होकर प्रकाश को कम-ज्यादा भीतर ले जाती है।
स्टैनफोर्ड में उन्होंने एक प्रयोग किया कि अगर पुरुषों को कोई भी चीज सबसे ज्यादा आकर्षित करती है, तो नग्न स्त्री के चित्र। नग्न स्त्री का चित्र सामने आए, तो उनकी आंख की पुतली एकदम बड़ी हो जाती है।

वह उनके बस में नहीं है। आप कोशिश करके धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि आप पुतली को कुछ नहीं कर सकते, न छोटी कर सकते हैं, न बड़ी कर सकते हैं। नंगा चित्र स्त्री का सामने आते ही पुतली एकदम बड़ी हो जाती है।
लेकिन बड़े मजे की बात है कि नंगे पुरुष का चित्र देखकर स्त्री की पुतली बड़ी नहीं होती। लेकिन एक छोटे बच्चे का चित्र देखकर एकदम बड़ी हो जाती है। छोटा बच्चा, और स्त्री की पुतली एकदम बड़ी हो जाती है। जैसे मां होना उसकी सहज गति है।
पुरुष की सहज गति पिता होना नहीं है; पति होना, स्वामी होना सहज गति है। तो कोई पुरुष किसी स्त्री को इसलिए विवाह नहीं करता कि पिता बनेगा। सोचता ही नहीं है। बनना पड़ता है, यह दूसरी बात है। न बने, तब तक पूरी चेष्टा करता है।
लेकिन स्त्री जब भी सोचती है, तो वह पत्नी बनने के लिए नहीं सोचती; वह मां बनने के लिए सोचती है। और जब वह किसी से प्रेम भी करती है, तो उसको जो पहला ख्याल होता है वह यही होता कि इससे जो बच्चा पैदा होगा, वह कैसा होगा! उसकी जो गहरी आकांक्षा है, वह मां की है।
इसलिए मैं अपनी संन्यासिनियों को मां कहता हूं, क्योंकि वह उनकी पूर्णता का अंतिम शब्द है। और पुरुष को स्वामी कहता हूं, क्योंकि पति, मालिक होना उसकी आखिरी खोज है। वह अपना जिस दिन मालिक हो जाएगा, उसकी खोज पूरी होगी। और स्त्री की खोज उसी दिन पूरी होगी, जिस दिन सारा जगत उसे बेटे की तरह मालूम पड़ने लगे; सारा अस्तित्व उसे बेटे की तरह मालूम पड़ने लगे; सारे अस्तित्व से उसमें मातृत्व जग जाए।
भाव का अर्थ है, जिस दिशा में आपकी अचेतन धारा सहज बहती है। मां, स्त्री का भाव है। स्वामित्व, पुरुष का भाव है। वह कुछ भी करे; वह चाहे धन इकट्ठा करे, तो स्वामी होना चाहता है। बड़े पद की तलाश करे, तो स्वामी होना चाहता है। त्याग करे, तो स्वामी होना चाहता है। वह कुछ भी करे, उसकी खोज एक है कि वह मालिक हो जाए, चीजों पर उसका कब्जा हो। वह अपनी भी खोज में निकले, तो भी स्वामी होना चाहता है।
भाव हम उसको कहते हैं, जिसको आपको सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। जो आपके अचेतन में एक पर्त की तरह सदा बना हुआ है। आप कुछ भी करें, वह मौजूद है। अव्यभिचारी-भाव का अर्थ है, परमात्मा का ख्याल, स्मृति, वह खोज की धुन आपके भीतर बजती रहे। आप कुछ भी करें, करना ऊपर-ऊपर हो, वह धुन भीतर बजती ही रहे। तो आपका सारा करना उसका भजन हो जाएगा।
और आप उसका भजन करते रहें और भीतर कोई और धुन बजती रहे, वह बेकार है।
उसका कोई भी मूल्य नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रईस के घर नौकर हुआ, लखनऊ में। तो जैसा कि लखनऊ
के रईसों का रिवाज था, पहले ही दिन नसरुद्दीन को कहा गया--महफिल बैठी रात, दस-बीस रईस इकट्ठे थे--कि नसरुद्दीन हुक्का भर ला।
नसरुद्दीन हुक्का भर लाया। लेकिन एक के सामने रखे। वह कहे, किबला आप
ही शुरू करें। दूसरे के सामने रखे। वह कहे, किबला आप शुरू करें।
तीन दफा वह भर-भरके लाया। हुक्का बुझ जाए। और किसी ने एक निवाली भी न ली। चौथी दफा वह भरकर लाया। बीच में बैठकर उसने हुक्का गुड़गुड़ाना शुरू कर दिया।
तो जो मालिक था, वह एकदम क्रोध से भर गया। उसने कहा, कोई है? इस बदतमीज
को पच्चीस जूते लगाओ! नसरुद्दीन ने कहा, किबला आप ही शुरू करें। आपसे ही शुरू करें। वहीं से शुरू करें। मैं नियम समझ गया।
आपको आपके मन में नियम को ठीक से समझ लेना चाहिए। क्या नियम है? नियम
यह है कि जो ऊपर चल रहा है, वह सार्थक नहीं है। जो भीतर चल रहा है, वह सार्थक है। इसलिए परमात्मा को अगर ऊपर जोड़ दें आप, कोई मूल्य का नहीं है। भीतर जुड़ना चाहिए। एक।
दूसरा नियम यह है कि आप व्यभिचारी हैं; आप हजार चीजें खोज रहे हैं। इस हजार में परमात्मा भी हजार और एक हो जाए, तो बेकार है। क्योंकि फिर वह व्यभिचार और बढ़ा, कम नहीं हुआ। एक हजार चीजें पहले खोज रहे थे; उस लिस्ट में एक परमात्मा और जोड़ दिया!

इसलिए कृष्ण कहते हैं कि परमात्मा को तुम अपने व्यभिचार की लिस्ट में
न जोड़ सकोगे। तुम्हें सारी यह लिस्ट एक तरफ रख देनी पड़ेगी। और इस सारी लिस्ट की तरफ तुम्हारा जो प्राण दौड़ रहा है, वह अकेला परमात्मा की तरफ ही दौड़े।
तुम कुछ भी करो, लेकिन सब करना तुम्हारा भजन बन जाए। तुम भोजन भी करो,
तो तुम्हें यह ख्याल रहे कि जैसे तुम्हारे भीतर छिपा परमात्मा भोग ले रहा है। तुम स्नान करो, तो तुम्हें ख्याल रहे कि तुम्हारे भीतर छिपा परमात्मा स्नान कर रहा है। तुम उठो-बैठो, तो तुम्हें ख्याल रहे कि परमात्मा उठता है और बैठता है। यह धुन इतनी गहरी हो जाए कि यह अव्यभिचारी हो जाए। इसमें दूसरे का ख्याल न रहे। तो ही!
इसी रईस के संबंध में मुझे एक घटना और ख्याल आती है।
नया-नया रईस था। नव-रईस जिसको कहते हैं। और नसरुद्दीन को नौकरी पर लगाया था। तो उसने कहा कि नसरुद्दीन, एक बात ख्याल रखना। यह रईस का घर है। और यहां सब चीजें दिखावे की हैं। यहां वास्तविक होने की जरूरत नहीं है। लेकिन दिखावा भरपूर होना चाहिए। तो अगर मैं कहूं कि नसरुद्दीन, शर्बत ले आ! तो तू पहले पूछना, हुजूर, कौन-सा? गुलाब, कि अनानास, कि बादाम, केवड़ा, खस, कौन-सा हुजूर? तो जितने नाम हों, पहले सब कह देना। हालांकि अपने घर में एक ही है। और जो है, वही मैं तुझे कहूंगा कि ले आ नसरुद्दीन, यह ले आ।
दूसरे दिन ही कुछ मित्र आ गए और रईस ने कहा कि नसरुद्दीन, पान ले आ। नसरुद्दीन ने कहा, हुजूर कौन-सा? कपूरी, बनारसी, महोबा, कौन-सा?
पान बुलाया गया, जो पान घर में था। मित्रों ने लिया। मित्र बड़े अनुगृहीत हुए। चलते वक्त कहने लगे रईस से कि बहुत दिन बाद आए हैं, आपके पिताजी के दर्शन नहीं हुए। उनको बुलाएं।
रईस ने कहा कि नसरुद्दीन, पिताजी को बुला ला। नसरुद्दीन ने कहा, कौन
से पिताजी? इंग्लैंड वाले, अमेरिका वाले, जर्मनी वाले, कि घरेलू स्वदेशी? वह नियम समझ गया! आदमी की दोहरी परतें हैं। एक पर्त, वह जो दिखाने के लिए निर्मित किया है; और एक वह जो है।
जो आपकी दिखाने वाली पर्त है, उससे परमात्मा को मत जोड़ना। उससे कोई सार नहीं है। उसमें वह भी हो जाएगा, कौन-सा परमात्मा? वह जो न दिखाने वाली पर्त है, जो आंतरिक है और वास्तविक है, जहां एक ही पिता होता है, जहां बहुत पिता नहीं हो सकते, उस भीतर की धारा से उसे जोड़ना।
और जहां एक ही हो सकता है, केंद्र पर एक ही हो सकता है, परिधि पर अनेक
हो सकते हैं। जैसे-जैसे चित्त अव्यभिचारी होता है, वह केंद्र पर थिर हो जाता है।
अव्यभिचार के लिए इतना जोर है, क्योंकि अव्यभिचार के माध्यम से ही तुम्हारी चेतना एक जगह बहेगी। और एक जगह बह जाए कि तुम अनंत शक्तिशाली हो-- तुम ही। और अनेक जगह बह जाए, तो तुम नपुंसक हो, तुम व्यर्थ हो। तुम्हारी सब धाराएं मरुस्थल में खो जाएंगी और सागर से कभी मिलना न हो पाएगा।
वह इन तीन गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके--जो अव्यभिचारी-भाव से निरंतर परमात्मा को भजता है--वह इन तीन गुणों को अच्छी प्रकार से उल्लंघन करके सच्चिदानंदघनरूप ब्रह्म में एकीभाव के योग्य हो जाता है।
तथा हे अर्जुन, उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का
और अखंड एकरस आनंद का मैं ही आश्रय हूं।
वह जो परम आनंद है, अमृत है, परब्रह्म है, धर्म है--जो भी हम उसे नाम दें--कृष्ण कहते हैं, उन सब का मैं ही आश्रय हूं।
यह जो मैं है, इसका कृष्ण की अस्मिता से कोई संबंध नहीं है। यह कृष्ण नाम के व्यक्ति के लिए उपयोग नहीं किया गया है, यह मैं।
उस सब का आश्रय मैं हूं... ।
यह आप सबके भीतर जो छिपा हुआ अंतिम मैं है, उसके लिए उपयोग किया गया है। जो-जो भी कह सकता है मैं, उस मैं की जो अंतिम धारा है, उस अंतिम धारा के लिए उपयोग किया गया है। यह कृष्ण के मैं से इसका संबंध नहीं। यह समस्त चेतनाओं में जो गहरा आत्म-भाव है, वह जो मेरे का बोध है कि मैं हूं, उस होने का नाम है।

उस होने को ही सच्चिदानंदघन ब्रह्म, अमृत, आनंद या जो भी नाम हम चुनें--मुक्ति, परमेश्वर, प्रभु का राज्य, निर्वाण, कैवल्य--जो भी नाम हम चुनें, उसका अंतिम आश्रय है; आपके भीतर वह जो मैं की आखिरी शुद्धतम अवस्था है, होना, वहां छिपी है।
लेकिन उसे पाने के लिए आपको अव्यभिचारी चेतना की धारा चाहिए; ध्यान चाहिए एकजुट, एक बहाव; और एक दिशा चाहिए।
और जो भी व्यक्ति ऐसी एक धारा को उपलब्ध हो जाता है, वह तीनों गुणों के पार गुणातीत परब्रह्म के साथ एकीभाव हो जाता है। वह योग्य हो जाता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 15
पहला प्रवचन

मूल-स्रोत की ओर वापसी

श्रीमद्भगवद्गीता
अथ पंचदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।। 1।।
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। 2।।
गुणत्रय-विभाग-योग को समझाने के बाद श्रीकृष्ण भगवान बोले, हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं तथा जिसके वेद पत्ते कहे गए हैं, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।
उस संसार-वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय-भोगरूप कोंपलों वाली देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योगरूप शाखाएं नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्य-योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।

इस सूत्र में प्रवेश के पहले कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात, आधुनिक समय के बहुत-से विचारक, अधिकतम, मानते हैं कि जगत का विकास निम्न से श्रेष्ठ की ओर हो रहा है। डार्विन या मार्क्स, बर्गसन, और भी अन्य। जैसे-जैसे हम पीछे जाते हैं, वैसे-वैसे विकास कम; और जैसे-जैसे हम आगे आते हैं, वैसे-वैसे विकास ज्यादा। अतीत पिछड़ा हुआ था। वर्तमान विकासमान है। भविष्य और भी आगे जाएगा।
इस पूरी विचार-सरणी का मूल-स्रोत, उदगम को छोटा मानना और विकास के अंतिम शिखर को श्रेष्ठ मानना है। लेकिन भारत की मनीषा बिल्कुल विपरीत है; और इस सूत्र को समझने के लिए जरूरी होगा।
हम मानते रहे हैं कि मूल श्रेष्ठ है। वह जो स्रोत है, श्रेष्ठ है। बिल्कुल ही उलटी तर्क-सरणी है। बूढ़ा आदमी श्रेष्ठ नहीं है, वरन गर्भ में छिपा हुआ जो बीज है, वह श्रेष्ठ है। और जिसे पश्चिम में वे विकास कहते हैं, उसे हम पतन कहते रहे हैं।
अगर विकास की बात सच हो, तो परमात्मा अंत में होगा, प्रथम नहीं हो सकता। तब तो जब सारा जगत विकसित होकर उस जगह पहुंच जाएगा, श्रेष्ठता के अंतिम शिखर पर, तब परमात्मा प्रकट होगा। लेकिन भारतीय दृष्टि कहती रही है कि परमात्मा प्रथम है। तो जिसे हम संसार कह रहे हैं, वह विकास नहीं बल्कि पतन है। और अगर अंतिम को पाना हो, तो प्रथम को पाना होगा। और हम उससे ऊंचे कभी भी नहीं उठ सकते, जहां से हम आए हैं। मूल-स्रोत से ऊपर जाने का कोई भी उपाय नहीं।
इसलिए जब कोई व्यक्ति अपनी जीवन की श्रेष्ठतम समाधिस्थ अवस्था को उपलब्ध होता है, तो एक छोटे बच्चे की भांति हो जाता है। जो परम उपलब्धि है शांति की, निर्वाण की, मोक्ष की, वह वही है, जैसा बच्चा मां के गर्भ में शांत है, निर्वाण को उपलब्ध है, मुक्त है।
प्रथम से ऊपर जाने का कोई भी उपाय नहीं है। या ठीक होगा, हम इसे ऐसा भी
कह सकते हैं कि जितने हम आगे जाते हैं, उतने ही हम पीछे जा रहे हैं। और जो हमारी आखिरी मंजिल होगी, वह हमारा पहला पड़ाव था। या और तरह से कह सकते हैं

कि जगत का जो विकास है, वह वर्तुलाकार है, सर्कुलर है। एक वर्तुल हम खींचते हैं; तो जिस बिंदु से शुरू होता है, उसी बिंदु पर पूरा होता है।
जगत का विकास रेखाबद्ध नहीं है, लीनियर नहीं है। एक रेखा की तरह नहीं जाता; एक वर्तुल की भांति है। तो प्रथम अंतिम हो जाता है; और जो अंतिम को पाना चाहते हैं, उन्हें प्रथम जैसी अवस्था पानी होगी।
जगत परमात्मा का पतन है। और जगत में विकास का एक ही उपाय है कि यह पतन
खो जाए और हम वापस मूल-स्रोत को उपलब्ध हो जाएं; पहली बात। इसे समझेंगे तो ही उलटे वृक्ष का रूपक समझ में आएगा।
कोई उलटा वृक्ष जगत में होता नहीं। यहां बीज बोना पड़ता है, तब वृक्ष ऊपर की तरफ उठता है और विकासमान होता है। और वृक्ष बीज का विकास है, अभिव्यक्ति है, उसकी चरम प्रसन्नता है। लेकिन गीता ने और उपनिषदों ने जगत को उलटा वृक्ष कहा है। वह परमात्मा का पतन है, विकास नहीं। ऊंचाई का खो जाना है, नीचे उतरना है; ऊंचाई का पाना नहीं है।
जैसे वृक्ष ऊपर की तरफ बढ़ता है, ऐसे हम संसार में ऊपर की तरफ नहीं बढ़ रहे हैं। हम संसार में जितने बढ़ते हैं, उतने नीचे की तरफ बढ़ते हैं। जैसा हम देखते हैं, ठीक उससे उलटी अवस्था है। जिसे हम विकास कहते हैं, वह पतन है। इसी कारण पूरब का समग्र चिंतन त्यागवादी हो गया। हो जाने के पीछे यही कारण था। त्याग का अर्थ है, संसार जिसे विकास कहता है, उसे हम छोड़ देंगे। संसार जिसे उपलब्धि कहता है, उसे हम तुच्छ समझेंगे। संसार जिसे भोग कहता है, वह त्याग के योग्य है।
एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है। वह विकास कर रहा है। पश्चिम में उसे विकासमान कहा जाएगा। पूरब में हमने उन लोगों को विकासमान कहा... बुद्ध ने धन छोड़ दिया, महावीर ने साम्राज्य छोड़ दिया, तो हमने विकासमान कहा। पश्चिम में इकट्ठा करना विकास है। पूरब में छोड़ना विकास है। पश्चिम में कितना आपके पास है, उससे आपकी ऊंचाई का पता चलता है। पूरब में कितना आप छोड़ सके, कितना कम आपके पास बचा... जिस दिन आप अकेले ही बच रहते हैं और कुछ भी पास नहीं होता, उस दिन पूरब विकास मानता है।
उलटे वृक्ष की धारणा में ये सारी बातें समाई हुई हैं।
कुछ और बातें, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।
यह वृक्ष कितना ही उलटा हो, लेकिन परमात्मा से जुड़ा है। यह कितनी ही दूर निकल गया हो, लेकिन इस वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं में उसी का ही प्राण प्रवाहित होता है। शाखा कितनी ही दूर हो, जड़ से जुड़ी होगी। जड़ से टूट जाने का कोई उपाय नहीं है।
संसार विपरीत हो सकता है, लेकिन परमात्मा का अभिन्न हिस्सा है। और हम संसार में कितने ही दूर निकल जाएं, हम उससे जुड़े ही रहते हैं। क्षणभर को भी उससे अलग होने का कोई उपाय नहीं। उसका ही प्राण-रस संसार में भी प्रवाहित है।
इसलिए एक दूसरी अनूठी धारणा पूरब में पैदा हुई। वह यह कि पूरब त्यागवादी है, लेकिन संसार को परमात्मा का शत्रु नहीं मानता। संसार भी परमात्मा का अभिन्न भाग है। नीचे की तरफ बहती हुई धारा है, लेकिन धारा उसी की है। धारा का रुख बदलना है। धारा को उसके मूल उदगम की तरफ ले जाना है। लेकिन धारा से कोई शत्रुता और कोई घृणा नहीं है।
परमात्मा अगर उलटा खड़ा हो जाए तो संसार है। संसार अगर सीधा खड़ा हो जाए
तो परमात्मा है। पर जैसा हम संसार को देखते हैं, उसे हम मानते हैं कि वह सीधा है। इसलिए समस्त धार्मिक साधनाएं सांसारिक आदमी की दृष्टि में उलटी मालूम पड़ती हैं। सांसारिक मन जो करता है, उसे सीधा मानता है। इसलिए संन्यासी को सांसारिक मन उलटा मानता है। लेकिन जो परमात्मा की दृष्टि को, इस उलटी बहती धारा को ठीक से समझ लें, उनके लिए संसार में उलटे होकर जीना ही एकमात्र सीधे होने का उपाय है।
संसार का गणित जिसको सीधा कहता है, उसे आप थोड़ा सोच-समझकर स्वीकार करना। संसार में जिन्हें लोग बुद्धिमान समझते हैं, उनकी बुद्धिमानी पर थोड़ा शक करना। संसार जिसको सफलता कहता है, उसे आंख बंद करके आलिंगन मत कर लेना। क्योंकि सभी कहते हैं, इसलिए कोई बात सत्य नहीं हो जाती।

अल्बर्ट आइंस्टीन को जर्मनी से निकल जाना पड़ा था। हिटलर, उसके नाजी प्रचार और यहूदियों के विरोध के कारण। और जब आइंस्टीन अमेरिका पहुंचा, तो उसे खबर मिली कि हिटलर ने सौ वैज्ञानिक तैनात किए हैं यह सिद्ध करने को कि आइंस्टीन की सारी खोज गलत है। सौ वैज्ञानिकों ने बड़ी मेहनत भी की। आइंस्टीन को जब खबर मिली, तो उसने हंसकर कहा कि अगर मैं गलत हूं तो एक वैज्ञानिक उसे सिद्ध करने को काफी है, सौ की कोई जरूरत ही नहीं। और अगर मैं गलत नहीं हूं, तो सारी दुनिया के वैज्ञानिकों को भी हिटलर इकट्ठा करे तो भी--तो भी मैं गलत हो जाने वाला नहीं हूं। और हिटलर को सौ की जरूरत पड़ रही है, वह इसीलिए... ।
सत्य तो अकेला भी काफी है। असत्य को भीड़ चाहिए। असत्य की शक्ति भीड़ से पैदा होती है। असत्य के पास अपनी कोई शक्ति नहीं है।
संसार जिसे ठीक कहता है, आप भी उसे ठीक मान लेते हैं। क्योंकि भीड़ की
एक शक्ति है। लेकिन उससे वह ठीक नहीं हो जाता। ठीक होने के कोई प्रमाण भी नहीं मिलते।
समझें, एक राजनीतिज्ञ सफल है, क्योंकि बड़े पद पर है। संसार उसे सफलता कहता है। और उस सफलता के भीतर खुशी की एक किरण भी नहीं है। उस सफलता के भीतर आनंद का एक फूल भी कभी नहीं खिलता। और खुद राजनीतिज्ञ से पूछें। उसकी सफलता बिल्कुल रेगिस्तान जैसी सूखी है! उसे कुछ भी मिला नहीं है।
दूसरे महायुद्ध में जनरल मैकार्थर का बड़ा नाम था। एक हंसोड़ फिल्म अभिनेता... मैकार्थर जिस टुकड़ी का मुआयना करने जापान में गया था, वहां सैनिकों को प्रसन्न करने के लिए, कुछ हंसी-मजाक करने के लिए एक अभिनेता आया हुआ था। जब वह अभिनेता विदा होने लगा तो मैकार्थर ने कहा कि आओ, मेरे साथ खड़े हो जाओ एक चित्र निकलवाने के लिए।
अभिनेता बहुत ही प्रसन्न हुआ। और उसने मैकार्थर से कहा कि मेरा अहोभाग्य, कि आप जैसे महान जनरल, सेनापति, ख्यातिलब्ध, इतिहास में जिसका नाम रहेगा, ऐसे व्यक्ति के साथ मुझे चित्र उतरवाने का मौका मिला। मैकार्थर ने कहा कि छोड़ो; मेरे छोटे बच्चे ने पत्र लिखा है कि जब तुम यहां आओ, तो तुम्हारे साथ एक चित्र उतरवाऊं। क्योंकि मेरा छोटा बच्चा तुम्हें एक बहुत ख्यातिलब्ध अभिनेता, एक जगत-प्रसिद्ध अभिनेता मानता है। मैं तो कुछ भी नहीं हूं उसके लिए।
जिन्हें हम जगत में सफल कहते हैं, उनकी अवस्था करीब-करीब ऐसी है। उनकी सफलता मान्यता पर निर्भर है। उन्हें आप सफल मानते हैं, तो वे सफल हैं। आप उन्हें असफल मानते हैं, तो वे असफल हैं। और खुद उनसे पूछें, तो आपसे भी ज्यादा अनिर्णय की उनकी अवस्था है।
एक आदमी बहुत धन इकट्ठा कर लेता है, तो सफल है। और जिसने धन इकट्ठा किया है अपने को बेच-बेचकर, उससे पूछें, तो उसे जीवन व्यर्थ खो गया मालूम होता है।
यह संसार का वृक्ष बिल्कुल उलटा है। यहां जो सफल दिखाई पड़ते हैं, वे अपनी विफलता को छिपाए बैठे हैं। यहां जो धनी दिखाई पड़ते हैं, वे बिल्कुल निर्धन हैं। यहां जो बाहर से मुस्कुराते हुए और आनंदित मालूम पड़ते हैं, भीतर दुख से भरे हैं।
यहां सभी कुछ उलटा है। लेकिन थोड़ी गहरी आंख हो, तो यह दिखाई पड़ना शुरू
हो जाता है। और जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ना शुरू होता है कि संसार का वृक्ष उलटा है, उस दिन आपके जीवन में क्रांति का क्षण आ गया। अब आप बदल सकते हैं। अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।
गुणत्रय-विभाग-योग को समझाने के बाद श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं; तथा जिसके वेद पत्ते कहे गए हैं, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।
यह बड़ा क्रांतिकारी वचन है। लेकिन इस गूढ़ ढंग से कहा गया है कि बहुत मुश्किल है उसके पूरे अर्थ में प्रवेश कर जाना।
पहली तो बात, जिसका मूल ऊपर की ओर... ।

मूल सदा नीचे की ओर होता है। इस संसार में तो मूल सदा नीचे की ओर होता है। जरूर कहीं हम भूल कर रहे हैं।
पूरब सदा ही मां को, पिता को आदर देता रहा है। पश्चिम में वैसा आदर नहीं है; क्योंकि मूल को हम ऊपर मानते हैं। बेटा कितना ही बड़ा हो जाए, वह बुद्ध हो जाए, तो भी वह मां के चरण छुएगा। क्योंकि मूल से ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं है। पश्चिम में वैसा आदरभाव नहीं है। क्योंकि पश्चिम में मूल को ऊपर मानने की वृत्ति नहीं है। देखने में भी यही आता है कि मूल तो नीचे होता है। वृक्ष का मूल तो जमीन में छिपा होता है, शाखाएं ऊपर होती हैं। इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह संसार उलटा वृक्ष है। मूल ऊपर है।
और ध्यान रहे, अगर माता-पिता ऊपर नहीं हैं, तो परमात्मा भी ऊपर नहीं हो सकता। क्योंकि वह जगत का मूल है।
गुरजिएफ अपने आश्रम में एक पंक्ति लिख छोड़ा था। और पंक्ति यह थी कि जो व्यक्ति अपने मां और पिता को आदर देने में समर्थ हो जाता है, उसे ही मैं मनुष्य मानता हूं।
इससे कोई सीधा संबंध नहीं दिखाई पड़ता। अनेक लोग गुरजिएफ से पूछते भी
थे कि ऐसी छोटी-सी बात यहां किसलिए लिख रखी है! गुरजिएफ कहता, बात छोटी नहीं है।
और अगर हम मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों को समझें, फ्रायड और उसके अनुयायियों को, तो वे सभी कहते हैं कि हर बेटा अपने मां-बाप को घृणा करता है।
मूल को लोग घृणा करते हैं। मूल से लोग बचना चाहते हैं, छिपाना चाहते हैं। शायद कामवासना के प्रति हमारी निंदा का कारण यही हो कि वह मूल है। उसे हम छिपाना चाहते हैं। आप कभी सोचते भी नहीं कि आप कैसे पैदा हुए हैं! कहां से पैदा हुए हैं! कहां आपका मूल है! आप कभी सोचते भी नहीं कि आपका जन्म, आपका यह जीवन दो व्यक्तियों की गहरी वासना से शुरू होता है।
मूल को हम छिपाते हैं। मूल छोटा मालूम पड़ता है, ओछा मालूम पड़ता है; हम बड़े हैं। लेकिन ध्यान रहे, जहां से आप आए हैं, उससे बड़े होने का कोई उपाय नहीं है। और अगर आप बड़े हैं, तो एक ही बात सिद्ध होती है कि मूल बड़ा है। अगर बुद्ध पैदा हो सकते हैं कामवासना के स्रोत से, तो कामवासना में बुद्ध को पैदा करने की क्षमता है, यही सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त कुछ और सिद्ध होने का उपाय नहीं है। और अगर आप बुद्ध नहीं हो पा रहे हैं, तो कसूर कामवासना का नहीं है। क्षमता तो उतनी ही है उस वासना में, जिससे बुद्ध पैदा हो सके। आप भी बुद्ध हो सकते हैं। लेकिन शायद मूल का ठीक उपयोग नहीं हो पा रहा है। मूल ने जो ऊर्जा दी है, उसको ठीक गति और दिशा नहीं मिल पा रही है।
लेकिन सभी लोग अपने मूल को छिपाते हैं। क्योंकि धारणा है कि मूल कुछ नीची चीज है।
यह सूत्र कहता है, मूल है ऊपर। हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर... ।
अगर अंत में आता है श्रेष्ठ, तो मृत्यु श्रेष्ठ होगी। अगर प्रथम आता
है श्रेष्ठ, तो जन्म श्रेष्ठ होगा। पश्चिम मृत्यु का विश्वासी है, पूरब जन्म का।
ऊपर की ओर है मूल। और सारी धाराएं नीचे की तरफ बहती हैं। यह बात उचित
भी मालूम पड़ती है। क्योंकि बहाव सिर्फ नीचे की तरफ ही हो सकता है। बहाव ऊपर की तरफ हो भी कैसे सकता है!
हमें दिखाई पड़ता है, हम बीज बोते हैं, वृक्ष ऊपर की तरफ उठता है। पर हमारी दृष्टि तो बहुत सीमित है। सच में वृक्ष ऊपर की तरफ उठता है? कहना जरा मुश्किल है। क्योंकि इस विराट ब्रह्मांड की दृष्टि से ऊपर और नीचे कुछ भी नहीं है। और फिर बहुत बातें समझने जैसी हैं।
वैज्ञानिकों ने एक नियम खोजा है, उसे वे कहते हैं, ग्रेविटेशन, गुरुत्वाकर्षण। पत्थर को हम फेंकते हैं; पत्थर नीचे गिर जाता है। अगर पृथ्वी सभी चीजों को नीचे की तरफ खींचती है, तो वृक्ष ऊपर की तरफ उठता कैसे है! गुरुत्वाकर्षण के विपरीत कोई नियम होना चाहिए, जो ऊपर की तरफ खींचता हो। एक। या फिर वृक्ष का ऊपर की तरफ उठना हमारी भ्रांति है; वृक्ष भी नीचे

की तरफ ही जा रहा है। लेकिन हमारी सीमित दृष्टि में हमें ऊपर की तरफ दिखाई पड़ता है।
मैंने सुना है कि न्यूयार्क के एक सौ मंजिल भवन के ऊपर, आखिरी मंजिल
की सीलिंग पर कुछ चींटियां भ्रमण कर रही थीं। और उनमें से एक दार्शनिक चींटी ने अन्य चींटियों को कहा कि आदमी भी बड़ा अजीब जानवर है। इतने-इतने बड़े मकान बनाता है, फिर भी चलता हमेशा नीचे है। जब ऊपर चलना ही नहीं है, सीलिंग पर जब चलना ही नहीं है, हमेशा फ्लोर पर ही चलना है, तो इतना ऊंचा मकान बनाने की जरूरत भी क्या! ऊंचाई पर चलते हम हैं।
चींटियां निश्चित ही सोचती होंगी। उनका अपना एक सापेक्ष जगत है।
वृक्ष वस्तुतः ऊपर की ओर उठ रहे हैं? ऐसा हमें दिखाई पड़ता है। अगर हम दूर चांद पर खड़े होकर देखें, तो सभी वृक्ष नीचे की तरफ लटके हुए दिखाई पड़ेंगे।
गीता यह कह रही है कि सारा विकास--जिसे हम विकास कहते हैं, एवोल्यूशन कहते हैं--वह सभी कुछ नीचे की ओर है। इस अर्थ में सभी धर्मों की पुराण कथाएं बड़ी मूल्यवान हैं, क्योंकि वे सभी कहती हैं, जगत पतन है। चाहे ईसाइयों की मूल कथाएं, चाहे हिंदुओं की, चाहे इस्लाम की, सभी धर्मों की मूल कथाएं यह कहती हैं कि जगत एक पतन है। पतन का इतना ही अर्थ होता है, पतन में कोई पाप नहीं है। पतन का इतना ही अर्थ होता है कि बहाव नीचे की तरफ है। इसलिए अगर ऊंचाई पानी है, तो उदगम की ओर वापस लौट चलना पड़ेगा।
झेन फकीर जापान में कहते हैं कि अगर तुम्हें जानना है परमात्मा क्या है, तो तुम खुद को जान लो उस क्षण में, जब तुम्हारा जन्म नहीं हुआ था। लौट जाओ पीछे।
अभी अमेरिका में एक नई चिकित्सा, मनोचिकित्सा का बड़ा प्रभाव है, प्राइमल थेरेपी का। इस सदी में खोजी गई कीमती से कीमती चिकित्साओं में एक है। और उसका प्रभाव रोज बढ़ता जाएगा, क्योंकि उसमें एक मौलिक सत्य है। प्राइमल थेरेपी का ऐसा दृष्टिकोण है कि अगर व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ होना हो, तो उसकी चेतना में पीछे की तरफ लौटने की गति शुरू होनी चाहिए। और जिस दिन व्यक्ति अपने बचपन की अवस्थाओं को उपलब्ध करना शुरू कर देता है पुनः, उसी दिन स्वस्थ होना शुरू हो जाता है। और जिस दिन कोई व्यक्ति ठीक अपनी गर्भ की चेतना-दशा को उपलब्ध हो जाता है, उस दिन वह परम शांत और परम स्वस्थ हो जाता है। और अनेक बीमारियां अचानक, मानसिक बीमारियां अचानक विलीन हो जाती हैं।
इसमें सत्य है और सैकड़ों लोगों पर इसके परिणाम प्रभावकारी हुए हैं। प्राइमल थेरेपी जिस व्यक्ति ने खोजी है, जेनोव ने, वह अपने मरीजों को एक ही काम करवाता था। उन्हें लिटा देता, आंख बंद करवा देता, कमरे में अंधेरा कर देता। और उनसे कहता है कि तुम पीछे लौटने की कोशिश करो, सिर्फ स्मृति में नहीं, पीछे लौटो और पीछे को जीयो। आखिरी पकड़ो स्मृति में ख्याल, जो तुम्हें आता है; पांच वर्ष के थे तुम, तो उस घड़ी को जीने की कोशिश करो फिर से।
तो बहुत अनूठा अनुभव हुआ। जेनोव एक बूढ़ी महिला की चिकित्सा कर रहा था। उसकी उम्र थी अस्सी वर्ष। उसकी आंखें खराब हुए बीस साल हो गए थे। उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। और जब जेनोव ने उसे याद दिलाया और वह वापस लौटने लगी और उसने याद किया कि जब मैं छः वर्ष की थी, तब की मुझे एक घटना याद आती है। जैसे ही उस घटना को उसने स्मरण करना शुरू किया, उसकी आंख की शक्ति वापस लौट आई। वह खुद हैरान हो गई, क्योंकि उसे दिखाई पड़ने लगा। उसका चित्त ही छः वर्ष का नहीं हुआ, उस क्षण में उसका पूरा शरीर भूल गया कि वह अस्सी साल की बूढ़ी स्त्री है। लेकिन चिकित्सा के बाद उसकी आंख फिर अस्सी साल की हो गई। सिर्फ धारणा... ।
जेनोव कहता है कि जैसे-जैसे व्यक्ति पीछे लौटते हैं, उनका चेहरा बदलने लगता है। शांत हो जाता है, निर्दोष हो जाता है, जैसे बीच की सारी धूल हट गई, बीच का सारा कचरा कट गया। और जब कोई व्यक्ति उस क्षण में पहुंचता है, जिसको वह प्राइमल स्क्रीम कहता है, पहली जो रुदन की आवाज बच्चे को जन्म के समय हुई थी, जब बच्चा पैदा होता है, वह जो चीख की पहली आवाज थी, जो पहली

स्क्रीम थी, उसको जब कोई व्यक्ति फिर से याद कर लेता है, और याद ही नहीं कर लेता, उसको पुनः जीता है, और ठीक उसी तरह की चीख फिर से निकलती है... ।
इस चीख को लाने में महीनों लग जाते हैं। कोई तीन महीने, छः महीने निरंतर प्रयोग करने पर वह चीख निकलती है। पर जिस दिन वह चीख निकलती है, उस चीख के साथ ही व्यक्ति के सारे दोष विलीन हो जाते हैं। उस चीख के बाद वह व्यक्ति दूसरा ही हो जाता है--सरल, भोला, निर्दोष, जैसा वह पैदा हुआ था। जैसे उस चीख के साथ सारा जीवन विलीन हो गया, सारा पतन खो गया, मूल फिर उपलब्ध हो गया।
इधर मैं ध्यान में निरंतर अनुभव कर रहा हूं कि जो लोग भी उस गहरी चीख
को ध्यान की अवस्था में उपलब्ध हो जाते हैं, उनके जीवन में पहली किरण समाधि की उतर जाती है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि इतना चीखना-चिल्लाना ध्यान में क्यों है? क्योंकि उन्हें ख्याल है एक ही ध्यान का कि लोग चुप बैठे हैं। आप चुप भी बैठ जाएं, कुछ भी न होगा। क्योंकि आपका पागल आदमी भीतर दौड़ रहा है; आपके चुप बैठने से कुछ होने वाला नहीं। आप जीवनभर चुप बैठे रहें, आप बिल्कुल पत्थर की मूर्ति हो जाएं, तो भी बुद्धत्व फलित नहीं होगा। श्रेष्ठ उपलब्ध होगा प्रथम को उपलब्ध होने से।
मेरी यह पूरी चेष्टा है कि ध्यान में पहली, प्राइमल स्क्रीम पैदा हो जाए और आपका रोआं-रोआं चीख उठे। और उस चीख में सारा उपद्रव विलीन हो जाए, जैसे तूफान के बाद सब शांत हो जाता है, ऐसे पीछे सब शांत हो जाए। तो आपको मूल का पहली दफा दर्शन होगा। और वह मूल परमात्मा है।
आगे दौड़ते जाने में नहीं, पीछे, प्रथम जो आप थे, उसे फिर से पा लेने में उपलब्धि है। यह विरोधाभासी लगेगा। जो आप सदा से रहे हैं, उसी को पा लेना गंतव्य है। और कुछ भी पाने की दौड़ व्यर्थ है। और कुछ भी पाने की दौड़ सिवाय संताप और चिंता के कुछ भी न लाएगी। व्यक्ति जो पैदा हुआ है, उसी को पा ले। जो सदा से था, उसको पुनः अनुभव कर ले। जो उसके होने के भीतर छिपा ही है, जिसे पाने को रत्तीभर भी कुछ करने की जरूरत नहीं है, जो वह है ही, उसके पुनः दर्शन, उसकी पुनः उपलब्धि करनी है।
हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं।
और यह संसार कभी नष्ट नहीं होता, यह कभी विनष्ट नहीं होता। लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि यह प्रतिपल विनष्ट भी होता है। यह विनष्ट होता है और बनता है, मिटता है और बनता है।
परमात्मा सदा है, वह भी अविनाशी है। लेकिन उसका अविनाशी होना और ही अर्थ रखता है। वह कभी बनता नहीं, वह सदा है; वह कभी मिटता नहीं। संसार भी अविनाशी है, लेकिन बिल्कुल दूसरे अर्थों में। यह सदा बनता और मिटता रहता है। यह बनने और मिटने की प्रक्रिया का कभी अंत नहीं होता। यह संसार वर्तुलाकार घूमता ही रहता है।
गंगोत्री से गंगा बहती है, सागर में गिरती है। लंबी यात्रा है, हजारों मील का फासला है। सागर में गिरकर फिर सूरज की किरणें उसे आकाश में उठा लेती हैं। फिर भाप बनती है। फिर बादल उमड़-घुमड़कर हिमालय की तरफ जाना शुरू हो जाते हैं। फिर हिमालय पर वर्षा हो जाती है। फिर गंगोत्री में पानी आ जाता है। फिर गंगा बहने लगती है। फिर सागर; फिर बादल; फिर गंगोत्री; फिर गंगा; फिर सागर।
वर्तुलाकार संसार घूमता ही रहता है। इसलिए हमने इसे गाड़ी के चाक की भांति कहा है। संसार शब्द का ही अर्थ होता है, चाक, दि व्हील, जो घूमता ही रहता है। यह भी अविनाशी है। यह भी कभी मिटेगा नहीं। यह मिटेगा और बनेगा, बनेगा और मिटेगा, लेकिन प्रक्रिया जारी रहेगी।
संसार की प्रक्रिया अविनाशी है और परमात्मा का सत्व अविनाशी है। परमात्मा का होना अविनाशी है और संसार की गति अविनाशी है। परमात्मा की स्थिति अविनाशी है और संसार की गति अविनाशी है।
संसार घूमता ही रहता है। इस घूमते संसार को बदलने की कोशिश व्यर्थ है। इस घूमते संसार को ठहराने की कोशिश व्यर्थ है। वह उसका स्वभाव नहीं है। इसे थोड़ा समझ लें।

क्योंकि आधुनिक सारा चिंतन इस बात पर जोर देता है कि यह संसार रोका जा सकता है, बदला जा सकता है। मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन, उन सबका ख्याल है कि आज नहीं कल समाज में समता आ जाएगी। मार्क्स से लोगों ने पूछा कि समता के बाद फिर क्या होगा? मार्क्स ने कहा, फिर कुछ भी नहीं होगा; समता ठहरेगी। फिर समता के बाद कोई परिवर्तन नहीं होगा।
यहां मार्क्स बिल्कुल भ्रांत है। यहां कृष्ण की बात बहुत गहरी है। यहां कुछ भी चीज ठहरती नहीं। यहां समता भी नहीं ठहरेगी। यहां कोई भी स्थिति स्थिर नहीं हो सकती; कभी नहीं हुई, कभी होगी भी नहीं। यहां हर चीज बनेगी और मिटेगी। घूमना इसका स्वभाव है।
मार्क्स जैसा प्रगाढ़ चिंतक भी कमजोर हो जाता है अपने सिद्धांत के मामले में। मार्क्स कहता है, हर चीज बदलेगी। पूंजीवाद टिक नहीं सकता; जाएगा; क्रांति होगी। सामंतवाद टिका नहीं; क्रांति हुई; गया। संसार बदलता रहा है।
मार्क्स खुद कहता है, डायनैमिक, डायलेक्टिकल संसार है। गत्यात्मक है
और द्वंद्वात्मक है। यहां हर चीज बदल रही है। पूंजीवाद भी बदलेगा। लेकिन तब अपने ही सिद्धांत से उसको बड़ा मोह है। फिर जब साम्यवाद आ जाएगा, तब कोई गति नहीं होगी!
गति संसार का स्वभाव है। यहां कोई भी चीज ठहरेगी नहीं। यहां जो आज ऊपर आएगा, कल नीचे जाएगा। जाना ही पड़ेगा। अन्यथा औरों के ऊपर आने का कोई उपाय नहीं होगा। और यह ऊपर आ सका इसीलिए, क्योंकि कोई नीचे चला गया। जो सत्ता में आएगा, वह सत्ता से नीचे जाएगा। जो अमीर होगा, वह गरीब होगा। जो आज सफल है, कल असफल होगा। जो आज जिंदा है, कल मरेगा। लेकिन यह प्रक्रिया जारी रहेगी।
और अगर कोई इस प्रक्रिया को ठहराने की कोशिश में लग जाए, तो उसको हम अज्ञानी कहते हैं। जो इस प्रक्रिया की फिक्र ही छोड़ देता है, जो समझ लेता है कि यह चलती ही रहेगी; मेरे ठहराने से ठहरने वाली नहीं; जो अपने को ठहरा लेता है और इस प्रक्रिया की चिंता छोड़ देता है, उसे हम ज्ञानी कहते हैं। हम सब की कोशिश यही है कि प्रक्रिया ठहर जाए। आप सुख में हैं, तो आप सोचते हैं, सुख ठहर जाए, रुक जाए। आप बिल्कुल छाती से लगाकर बैठ जाते हैं कि सुख कहीं छूट न जाए; जो मिला है कहीं खो न जाए।
लेकिन यहां कोई चीज टिकती नहीं। इसमें कोई आपकी कमजोरी नहीं है, यहां वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है कि यहां कोई चीज टिकती नहीं। जैसे आग गरम है, इसमें आग का कोई कसूर नहीं है। आग को पकड़ेंगे, तो जलेंगे। इसमें आग का कोई कसूर नहीं है; पकड़ने के मोह में भूल है। संसार का स्वभाव है कि वह बदलेगा। इसलिए यहां जो भी आप पा लेते हैं, उसको ठहराना चाहते हैं।
मेरे पास निरंतर लोग आते हैं। थोड़ा ध्यान करते हैं; मन थोड़ा शांत होता है; वे कहते हैं कि यह शांति ठहर जाए।
इस संसार में कुछ भी ठहरेगा नहीं। यह शांति भी नहीं ठहरेगी। यह भी संसार का ही हिस्सा है, यह भी कुछ करने से मिली है। यह खो जाएगी। एक और शांति है, जो ठहरेगी; लेकिन वह संसार का हिस्सा नहीं है। वह शांति इस समझ से पैदा होती है कि जहां सब बदलता है, वहां ठहराने का पागलपन मैं न करूंगा। बदलता जाए। सुख आए, दुख आए; शांति हो, अशांति हो; मैं दूर खड़ा देखता ही रहूंगा। मैं इनमें से किसी को भी पकडूंगा नहीं और किसी को धकाऊंगा नहीं। मैं सिर्फ द्रष्टा रह जाऊंगा।
ऐसा जो सुख-दुख को देखने में लग जाता है, वह इस संसार के चक्र से बाहर छलांग ले लेता है। संसार तो चलता ही रहता है। वह इसके बाहर हो जाता है।
तो दो बातें हैं। या तो आप संसार को बदलने में लगें; इसको हम मूढ़ता कहे। और या आप अपने को बदल डालें, इसे हम ज्ञान कहे।
आधुनिक चिंतन पूरी तरह संसार को बदलने पर जोर देता है और चीजों को ठहरा लेने पर जोर देता है। इसलिए इतना दुख है और दुख रोज बढ़ता जाता है। आज का मन सुखी हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी सारी दृष्टि संसार पर है।
जैसे कोई आदमी नदी के किनारे खड़ा है और सोचता है कि नदी ठहर जाए। और नहीं ठहरती, इसलिए परेशान है। और जब तक न ठहरेगी, तब तक वह दुखी होगा।
क्योंकि उसकी धारणा है कि नदी ठहरे, तो ही मैं सुखी हो सकता हूं।

कृष्ण कहते हैं, नदी का स्वभाव बहना है; नदी को तुम बहने दो। रोकने में
न शक्ति व्यय करो और न समय खोओ। तुम नदी नहीं हो, इतना जान लेना काफी है। और नदी बहती रहे, न बहती रहे, इससे तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं है। तुम नदी को भूल जा सकते हो, नदी विस्मृत की जा सकती है। तुम अपना स्मरण कर सकते हो। और आदमी पर दोनों का मिलन है, वह जो अविनाशी है परमात्मा, वह; और वह जो अविनाशी संसार है, वह; दोनों आदमी की रेखा पर मिलते हैं। वहां सीमा दोनों की मिलती है। आपके भीतर दोनों अविनाशी हैं। वह जिसकी स्थिति कभी नाश नहीं होती है, वह; और जिसकी प्रक्रिया कभी नाश नहीं होती है, वह; दोनों की बाउंड्री आप हैं। दोनों की सीमा, दोनों का मिलन आप हैं।
सीमा से संसार शुरू होता है, नीचे की तरफ; ऊपर की तरफ परमात्मा शुरू होता है। आगे की तरफ संसार शुरू होता है, पीछे की तरफ परमात्मा शुरू होता है। मूल की तरफ परमात्मा है, शाखाओं की तरफ संसार है।
मूल ऊपर की ओर शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं; तथा जिसके वेद पत्ते कहे गए हैं, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है। यह बहुत ही अदभुत वचन है। इस संसार के पत्तों को कृष्ण कह रहे हैं वेद। परमात्मा है मूल, ये शाखाएं हैं संसार, और इन शाखाओं पर लगे हुए पत्ते हैं ज्ञान। ज्ञान बहुत दूर है परमात्मा से। यह जरा जटिल लगेगा।
वासना भी परमात्मा के ज्यादा निकट है, ज्ञान उससे भी ज्यादा दूर है।
क्योंकि वासना शाखाएं है, ज्ञान तो बहुत ही दूर है; पत्ता तो आखिरी बात है।
पत्ते के बाद फिर कुछ भी नहीं है। पत्ता अंत है। जिसको हम वेद कहते हैं, ज्ञान कहते हैं, जिसको हम बड़ी उपलब्धि मानते हैं, उसको कृष्ण कह रहे हैं, वह पत्तों की भांति है।
जैसे कोई आदमी पत्तों को गिनता रहे और सोचे कि मूल को उपलब्ध हो गया।
ऐसे कोई वेद को कंठस्थ कर ले; उसने पत्ते इकट्ठे कर लिए; मूल से उसका कोई संबंध नहीं। और अगर वासनाओं का दुश्मन हो, तो पत्ते काट ले, तो मुर्दा पत्ते इकट्ठे हुए। वे पत्ते जिंदा भी नहीं हैं।
पुराने शास्त्र वृक्षों के पत्तों पर लिखे गए थे; बड़ी अच्छी बात थी। मुर्दा पत्ते, सूखे पत्ते, उन पर शास्त्र लिखे गए थे। सभी शास्त्र मरे और सूखे पत्ते हैं। उनसे तो वासना भी कहीं ज्यादा जीवंत है। इसलिए अक्सर यह होता है कि वासनाओं में डूबा हुआ साधारण मनुष्य भी परमात्मा के ज्यादा निकट होता है, बजाय उन लोगों के, जो केवल वेद के पत्तों में ही डूबे रहते हैं। उनका मूल से संबंध बिल्कुल ही टूट जाता है।
वासना के पार जाना है, लेकिन वासना के पार जाने के दो उपाय हैं। अगर आप वृक्ष की शाखा पर बैठे हों, तो शाखा से पार जाना है, लेकिन पार जाने के दो उपाय हैं। या तो शाखा के पीछे जाएं, जहां मूल है; और या शाखा की तरफ आगे जाएं, जहां पत्ते हैं। दोनों हालत में आप शाखा से हट जाएंगे।
इसलिए ज्ञान को पकड़ लेने वाले लोग भी संसार से एक अर्थ में दूर हो जाते हैं। लेकिन परमात्मा के निकट नहीं हो पाते। परमात्मा के निकट होने के लिए शाखा का छूटना जरूरी है, लेकिन पत्तों की दिशा में नहीं, मूल की दिशा में।
और इस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वही वेद
के तात्पर्य को जानने वाला है।
तो वेद का तात्पर्य वेद में नहीं छिपा है, इस संसार की पूरी अभिव्यक्ति में छिपा है। और जो व्यक्ति इस वृक्ष को मूल सहित तत्व से जानता है, जो इस वृक्ष के मूल को, शाखा को, पत्तों को, फूलों को, बीजों को, सबको पूरी तरह जान लेता है तत्व से, वही व्यक्ति वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।
आप ऋग्वेद कंठस्थ कर सकते हैं। और कंठस्थ करने में यह हो सकता है कि आपको संसार जानने का न समय मिले, न उपाय रहे।
मैंने सुना है एक यहूदी फकीर बालशेम के संबंध में। उसका बड़ा आश्रम था
और दूर-दूर से खोजी उसके आश्रम में वर्षों आकर रुकते थे। एक युवक वर्षों पहले आया था और अब तो बूढ़ा हो गया था। उसने सारे यहूदी शास्त्र कंठस्थ कर लिए थे। तालमुद उसकी जबान पर बैठा था। उसकी ख्याति काफी फैल गई थी। यहां

तक कि लोग आश्रम में आते, तो बालशेम से न मिलकर, उस युवक, उस बूढ़े--जो कभी युवक था, और शास्त्रों को कंठस्थ करते-करते बूढ़ा हो गया था--उससे जाकर मिलते।
एक दिन एक आदमी ने आकर बालशेम को कहा कि यह व्यक्ति इतना जानता है शास्त्रों को, यह व्यक्ति अनूठा है; आप इसके संबंध में कभी कुछ भी नहीं कहते! बालशेम ने कहा, किसी को कहना मत; वह शास्त्रों के संबंध में इतना जानता है कि मैं सदा चिंतित रहता हूं कि वह संसार को कब जानेगा? और जो संसार को ही नहीं जान सकेगा, वह परमात्मा से कैसे उसका कोई संबंध होगा। मूल सहित इस पूरे संसार को जो जान लेता है, वह वेद के तात्पर्य को जानता है।
यह हो भी सकता है, उसे वेद पता ही न हों, लेकिन तात्पर्य पता होगा। यह
हो सकता है, उसे वेदों से कोई परिचय न हो। वह संस्कृत का ज्ञाता न हो, वह व्याकरण का अधिकारी न हो, लेकिन तात्पर्य उसके पास होगा।
तात्पर्य बड़ी अलग बात है। तात्पर्य वैसे है, जैसे फूल में सुगंध होती है। फूल से चाहे मिलना न भी हुआ हो, हवा में तैरती हुई सुगंध से मिलना हो जाता है। और वही सार है। वेद फूल की तरह होंगे। उनकी सुगंध सब तरफ विस्तीर्ण है। संसार के कण-कण से वेद का जन्म हो रहा है, प्रतिपल।
वेद शब्द हिंदुओं का बड़ा अनूठा है। उसका मतलब होता है, ज्ञान, जानना। यहां प्रतिपल ज्ञान की संभावना है, लेकिन खुली आंखें चाहिए। अक्सर शास्त्र आंखों को बंद कर देते हैं।
इस संसार को जो मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।
उस संसार-वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय-भोगरूप कोंपलों वाली देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योनिरूप शाखाएं नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं। तथा मनुष्य-योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।
कुछ और बातें, फिर यह सूत्र का दूसरा हिस्सा ख्याल में आ सकेगा।
यह जो वृक्ष है, यह जो संसार है, इसमें वासनाएं नीचे की तरफ ले जाती हैं। लेकिन इससे आप इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि अगर आप ऊपर की तरफ जाना शुरू कर दें, तो वासनाओं से छुटकारा हो जाएगा। क्योंकि यह भी हो सकता है, एक शाखा पहले नीचे की तरफ यात्रा करे--अक्सर हो जाता है; और अगर माली कुशल हो, तो हर शाखा के साथ हो सकता है--शाखा पहले नीचे की तरफ यात्रा करे, फिर मोड़ दी जाए, और शाखा ऊपर की तरफ उठने लगे। शाखा वही रहे, उसका प्राण वही रहे, उसकी दिशा बदल जाए, लेकिन उसका सत्व न बदले।
तो यह हो सकता है, एक आदमी धन के साथ अपने अहंकार को जोड़ रहा हो; फिर धन छोड़ दे और त्याग के साथ अहंकार को बांध ले। कल उसका अहंकार बड़ा होता था धन के साथ, अब बड़ा होने लगे त्याग के साथ। दिशा बदल गई, आयाम बदल गया, ढंग-ढांचा बदल गया, लेकिन माली कुशल है और शाखा की मूल धारा नहीं बदली; शाखा अब भी वही है।
आसान है दिशा बदल लेना। स्वयं को बदल देना कठिन है। और यह भी हो सकता
है कि अगर आप स्वयं को बदल लें, तो दिशा को बदलने की चिंता करनी भी आवश्यक नहीं है। स्मरण आ जाए मूल का, तो शाखा नीचे की तरफ बढ़ती रहे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अब आप मूल की तरफ सरकने शुरू हो गए।
तो त्याग अपरिहार्य नहीं है। भोग में भी कोई रह सकता है। लेकिन मूल का स्मरण आना शुरू हो जाए।
कृष्ण खुद भी वैसे ही व्यक्ति हैं, जिन्होंने शाखाओं की दिशा नहीं बदली है। शाखाएं जिस तरफ बढ़ रही हैं, बढ़ रही हैं। लेकिन शाखाओं के भीतर जो प्राण की धारा बह रही है, उसका रुख बदल गया है। वह अब मूल की तरफ बह रही है। उसको स्मरण अब उदगम का है, स्रोत का है, प्रथम का है। अंतिम की तरफ यात्रा नहीं हो रही है। शाखाएं बढ़ती रहें, संसार चलता रहे, लेकिन चेतना अब प्रथम की ओर जा रही है।
इससे उलटा अक्सर हो जाता है। लोग शाखाएं भी काट डालते हैं इस डर से कि कहीं नीचे पतन न हो जाए। इंद्रियां काट डालते हैं, आंखें फोड़ लेते हैं, कान

फोड़ डालते हैं, इस डर से कि कहीं कोई इंद्रिय भटका न दें। लेकिन चेतना की धारा आंखें फोड़ने से नहीं बदलती। नहीं तो सभी अंधे परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाते।
सारी दुनिया में इस तरह के वर्ग रहे हैं, जिन्होंने शाखाओं को काटने
की कोशिश की, इस आशा में कि न होंगी शाखाएं, न होगी शाखाओं की तरफ गति। यह आशा भ्रांत है, यह तर्क भूल भरा है। शाखा न हो, तो भी गति हो सकती है। क्योंकि गति भीतर की धारणा है। शाखा हो, तो भी गति न हो, यह भी हो सकता है। आप बिल्कुल घर में रहकर संन्यस्त हो सकते हैं। और पूरी तरह संन्यासी होकर गृहस्थ हो सकते हैं। इसमें दूसरी बात के प्रतीक आपको जगह-जगह मिल जाएंगे। संन्यासियों को जाकर गौर से देखें, तो आप पाएंगे कि वे नए ढंग के गृहस्थ हैं। दूसरी बात जरा कठिन है। उस गृहस्थ को खोजना जरा कठिन है, जो संन्यस्त हो। लेकिन वह भी मिल जाएगा। अगर आंखें आपके पास खुली हों और आप तीक्ष्णता से जांच-परख कर रहे हों, धारणा पहले से न बना रखी हो, निर्णय पहले से न ले लिया हो, तो आपको ऐसे गृहस्थ भी मिल जाएंगे जो बिल्कुल संन्यस्त हैं। चेतना के प्रवाह की बात है।
उस संसार-वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय-भोगरूप कोंपलों वाली देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योनिरूप शाखाएं नीचे की ओर हैं। ऊपर सर्वत्र भी फैली हुई हैं। नीचे-ऊपर दोनों तरफ फैली हुई हैं। तथा मनुष्य-योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।
वासना नीचे की तरफ भी बह रही है, ऊपर की तरफ भी बह रही है; सभी दिशाओं में बह रही है। इसलिए ज्यादा इस बात का विचार करना जरूरी नहीं है कि वासना कहां बह रही है, ज्यादा विचार करना इस बात का कि वासना उदगम से संबंधित है! आप अपने संबंध में सोचें, शायद ही आपको कभी ख्याल आता हो उदगम का। शायद ही आप कभी बैठकर सोचते हों कि गर्भ की अवस्था में मैं कैसा था! सोचें आप, तो जो भी सुनेगा वह आपको पागल कहेगा। आप खुद भी सोचेंगे, क्या व्यर्थ की बात सोच रहे हैं! शायद कभी-कभार आपको मृत्यु का ख्याल आ भी जाता हो, लेकिन जन्म का कभी नहीं आता।
मृत्यु आगे है; वह शाखाओं का अंतिम हिस्सा है। जन्म पीछे है; वह आपके गहन में छिपा है। इस तरफ थोड़ा प्रयोग करें। बड़े प्राचीन समय में एक विशेष ध्यान की पद्धति सिर्फ इसके लिए ही खोजी गई थी, वह मैं आपको कहूं। उसे प्रयोग करें; आप बहुत चकित होंगे।
ऐसी जगह बैठ जाएं जहां बहुत प्रकाश न हो, धुंधलका हो या अंधेरा हो। जगह शांत हो, कोई शोरगुल न हो। क्योंकि गर्भ बिल्कुल शांत जगह है। वहां कोई शोरगुल प्रवेश नहीं कर सकता, कोई आवाज वहां प्रवेश नहीं कर सकती। सुख से बैठ जाएं। और बैठें इस भांति कि धीरे-धीरे आपका सिर झुकता जाए, और जमीन छूने लगे। दोनों पैर मोड़कर बैठ जाएं, जैसा सूफी फकीर बैठते हैं, या मुसलमान नमाज पढ़ते वक्त बैठते हैं; उनके बैठने का आसन गर्भासन है। दोनों घुटने मोड़ लें और जैसा मुसलमान नमाज पढ़ते हैं, वैसे बैठ जाएं। फिर आंख बंद कर लें और सिर को आहिस्ता-आहिस्ता झुकाते जाएं।
इतने धीमे-धीमे झुकाएं कि आप झुकाव को अनुभव कर सकें। क्योंकि झुकना बड़ी कीमती बात है। एकदम से झुक जाएंगे, तो आपको पता भी नहीं चलेगा कि आप झुके। बहुत धीमे, जितने धीमे कर सकें, उतने धीमे-धीमे सिर को झुकाते जाएं, और झुकने को अनुभव करें कि आप झुक रहे हैं। फिर आपका सिर जमीन को छूने लगे। तो आप ठीक उस अवस्था में आ गए जिस अवस्था में बच्चा गर्भ में होता है। ऐसा ही बच्चा सिकुड़ा हुआ गर्भ में होता है। घुटने उसके छाती से लगे होते हैं, सिर नीचे झुका होता है, पैर उसके पीछे मुड़े होते हैं।
इसलिए मुसलमानों का नमाज पढ़ने का ढंग बड़ा वैज्ञानिक है। वह पद्मासन
और सिद्धासन से भी ज्यादा कीमती है। क्योंकि कोई बच्चा गर्भ में पद्मासन और सिद्धासन लगाकर नहीं बैठता। इसलिए पद्मासन और सिद्धासन में वह सरलता नहीं है, वह स्वाभाविकता नहीं है, वह सहजता नहीं है, जो नमाज की क्रिया में है।
फिर नमाज पढ़ने वाला नमाजी बार-बार झुकता है, और झुकने का अभ्यास करता है। फिर-फिर नीचे झुकता है। फिर उठता है, फिर झुकता है। वह झुकने की कला

है। इसलिए मस्जिद से निकलते हुए मुसलमान में जैसी विनम्रता दिखाई पड़ेगी, किसी हिंदू में किसी मंदिर से निकलते वक्त दिखाई नहीं पड़ती। उसकी सारी नमाज ही झुकने की कला है।
कठिन था मोहम्मद को अरब के रेगिस्तान के खूंखार लोगों को धार्मिक बनाना। नमाज की प्रक्रिया ने साथ दिया। हिंदुओं को सहिष्णु बनाना, उदार बनाना बहुत कठिन नहीं है। प्रकृति बड़ी उदार है यहां। सब चीजें उपलब्ध हैं। आज नहीं हैं, तो कल थीं। जिंदगी बहुत बड़ा संघर्ष नहीं है।
लेकिन जहां मोहम्मद ने लोगों को झुकना सिखाया, वहां जीवन बड़ा संघर्ष था, बड़ा भयंकर संघर्ष था। जीने का मतलब ही दूसरे को मारना, दूसरे को मिटाना था। और विस्तार रेगिस्तान का जलता हुआ, जहां हरियाली दिखाई भी न पड़े, वहां आदमी अगर अकड़ जाए, अहंकारी हो जाए, क्रूर और कठोर हो जाए, तो स्वाभाविक है। वहां नमाज की प्रक्रिया ने और झुकने ने उन खूंखार लोगों को भी बहुत विनम्र बना दिया।
आप देखें प्रयोग करके। कमरा अंधेरा हो, और ठीक इस हालत में हो जाएं, जैसे आप फिर से छोटे बच्चे हो गए हैं और गर्भ में प्रवेश कर गए हैं। श्वास धीरे-धीरे कम हो जाएगी। आसन ही ऐसा है कि श्वास तेज नहीं हो सकती। पेट दबा होगा, छाती दबी होगी, सिर झुका होगा, श्वास तेज नहीं हो सकती; श्वास धीमी होती जाएगी। उसको साथ दें, और धीमा हो जाने दें। ऐसी घड़ी आएगी जब श्वास बिल्कुल लगेगी कि चलती है या नहीं चलती। क्योंकि बच्चा कोई श्वास नहीं लेता पेट में।
और जब ऐसी घड़ी आ जाएगी, जब आपको लगेगा कि श्वास चलती है या नहीं चलती, पता नहीं चलता, तब आप समझना कि अब ठीक गर्भासन की अवस्था आ गई। कभी-कभी ऐसा भी होगा क्षणभर को, श्वास बिल्कुल रुक जाएगी। उसी क्षण आपको झलक मिलेगी प्रथम मूल की। यह झलक आपको मिलनी शुरू जाए, आप दूसरे ही व्यक्ति होने लगेंगे।
खोजना है उदगम को; खोजना है उस बिंदु को जहां से हम आते हैं। क्योंकि जहां से हम आते हैं, वही हमारी अंतिम मंजिल होने वाली है, और कोई उपाय नहीं। मंजिल को तो हम नहीं खोज सकते, क्योंकि मंजिल बहुत दूर है। लेकिन प्रथम को हम खोज सकते हैं, क्योंकि प्रथम हममें छिपा है। वह मौजूद है अभी भी, उसको आप अपने साथ लेकर चल रहे हैं। आपने जो भी गर्भ में जाना था, वह ज्ञान आपके भीतर पड़ा है। उसे आप अभी भी लिए चल रहे हैं।
जानकर आप चकित होंगे कि गहरे सम्मोहन में, हिप्नोसिस में, लोग अपने गर्भ की घटनाएं भी याद करते हैं। अगर आपकी मां गिर पड़ी हो, और उसको चोट लग गई हो, और उसका धक्का आपको लगा हो जब आप गर्भ में थे; तो सम्मोहन की अवस्था में, बेहोश अवस्था में, आप उसको याद कर सकते हैं। याद लोग करते हैं, कि जब मैं पांच महीने का गर्भ में था, तब मेरी मां गिर पड़ी थी, और मुझे चोट लगी, धक्का लगा। उस धक्के की स्मृति आपको अभी भी है। उन नौ महीने में आपने जो जाना है, वह आपके भीतर पड़ा है।
और उस नौ महीने के पहले भी आप थे। उदगम और भी गहराई में है। तब आप बिल्कुल आत्मरूप थे, चाहे थोड़े ही क्षणों को। पिछला शरीर छूट गया था, नया शरीर मिलने में देर है, थोड़ा समय लगा। उस बीच आप बिल्कुल आत्मरूप थे, कोई देह न थी। उसकी भी स्मृति आ सकती है।
फिर अनेक जन्मों की स्मृति। और फिर सारे जन्मों की स्मृति के साथ ही
इस बात का स्मरण, अतिक्रमण का, कि मेरा न तो कोई जन्म है और न कोई मृत्यु। इतने जन्म, इतनी मृत्युएं मेरे पड़ाव थे, मेरी यात्रा के ठहराव थे, और मैं यात्री हूं। जैसे ही यह स्मरण आता है, आप अपने मूल उदगम को उपलब्ध हो गए। और यही अंतिम लक्ष्य है। इसको बुद्ध निर्वाण कहते हैं, पतंजलि समाधि कहते हैं।
लेकिन फ्रायड ने बड़ी ही कीमत की बात कही है। किया है उसने कठोर व्यंग्य और आलोचना। उसने कहा है कि यह बुद्ध का निर्वाण और पतंजलि की समाधि, ये गर्भ की आकांक्षाएं हैं। गर्भ को पुनः पाने की आकांक्षा है। उसने तो विरोध के हिसाब से कहा है। उसका तो कहना है कि यह मार्बिड स्टेट, रुग्ण अवस्था है कि कोई आदमी अपने गर्भ को फिर से पाना चाहे। लेकिन उसने बात तो, चोट तो ठीक जगह की है। बात तो सच है।

हम सभी किस बात को खोज रहे हैं? एक सोचने जैसी बात है। हम उसी को खोज सकते हैं, जिसे हमने कभी जाना हो। नहीं तो खोजेंगे भी कैसे? खोजेंगे क्यों?
आप कहेंगे, आनंद की खोज करना है। लेकिन आनंद आपने कभी जाना हो तभी। जिसका स्वाद ही न हो, उसकी खोज कैसे होगी? उसकी वासना भी कैसे जगेगी? आपको याद हो या न हो, आनंद आपने कभी जाना है। नहीं तो यह स्वाद कैसा? यह चेष्टा कैसी? यह दौड़ किसलिए? बिल्कुल अपरिचित को कोई भी नहीं खोज सकता है।
सूफी फकीर कहते हैं, हम ईश्वर को खोज रहे हैं, क्योंकि हम ईश्वर को जानते हैं।
ठीक कहते हैं। जानना कहीं भीतर होना ही चाहिए, नहीं तो खोज नहीं हो सकती। आपने कभी ऐसे आदमी को सुना है, जो कोई ऐसी चीज को खोजने निकल जाए, जिसे वह जानता ही न हो? तो निकलेगा भी कैसे? शुरुआत कैसे होगी?
आनंद को हम खोजते हैं, क्योंकि आनंद हमने जाना है। वह हमारा प्रथम अनुभव था। और वह इतना गहन था कि उसके बाद हमने उससे श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं जाना। उसके बाद वृक्ष नीचे ही जाता रहा है। इस आनंद को फिर पाना है। वह मूल की ही खोज है।
इस बात को बहुत गहराई से स्मरण में रख लें कि आपकी समाधि आपके पुनः गर्भ में होने का अनुभव होगी। अगर आप पुनः गर्भ में होने का अनुभव कर लें, तो इस अवस्था को जापान के फकीरों ने सतोरी कहा है। यह पहली समाधि का अनुभव है, पहली झलक।
और अगर आप बढ़ते ही जाएं पीछे-पीछे-पीछे, और उस जगह पहुंच जाएं, जहां यह पूरा ब्रह्मांड आपका गर्भ हो जाए और आप इस गर्भ के हिस्से हो जाएं, तो उसे पतंजलि ने परम समाधि कहा है। वह ब्रह्म समाधि, वह अंतिम समाधि है। पहली झलक और वह अंतिम उपलब्धि है। जिस दिन सारा जगत गर्भ हो जाता है और आप उस गर्भ के भीतर लीन हो जाते हैं।
पर यह सूत्र बहुमूल्य है। गीता में भी इतने बहुमूल्य सूत्र कम हैं।
और यह सूत्र साधक के लिए है। आगे को भूलें और पीछे को ख्याल करें। जो पाना है, उसकी फिक्र छोड़ें; जो पाया ही हुआ था और जिसको हमने किसी तरह खोया है, जो विस्मृत हो गया है, उसकी पुनः स्मृति करें।
जितने आप पीछे जाएंगे, उतने ही आप आगे जाएंगे, क्योंकि गति वर्तुलाकार है। और जिस दिन आप पीछे बिंदु पर पहुंच जाएंगे, उस दिन आप अंतिम मंजिल पर भी पहुंच गए।
जहां जड़ें हैं, वहीं वृक्ष के अंतिम फूल हैं। वृक्ष में जब फूल लगते हैं, तो अंतिम क्या होता है? अंत में वृक्ष के फूल गिरने लगते हैं। वर्तुल पूरा हो गया। बीज हमने बोया था। बीज से वृक्ष बड़ा हुआ; फिर फूल लगे, फल लगे, बीज फिर आ गए। वर्तुल पूरा हुआ। और जैसे ही बीज फिर आ गए, फल टूटने लगते हैं, फूल टूटने लगते हैं, बीज वापस जमीन में गिरने लगते हैं।
जहां से यात्रा शुरू हुई थी, यात्रा वहीं पूरी हो गई। बीज से प्रारंभ, बीज पर अंत। परमात्मा से प्रारंभ, परमात्मा पर अंत। प्रथम ही अंतिम है। हमारा मन लेकिन आगे की तरफ दौड़ता है। पीछे की तरफ रास्ता ही नहीं मालूम पड़ता। शायद हम भयभीत हैं। क्योंकि पीछे की तरफ लौटने में जो हमने बहुत-से दुख छिपा रखे हैं, वे उभरेंगे। यही भय है। जो दुख छिपा रखे हैं, वे उभरेंगे। उनसे हमें फिर गुजरना होगा। उनसे गुजरने में पीड़ा है।
मैंने सुना है, एक सांझ मुल्ला नसरुद्दीन अपने मकान के सामने बहुत उदास बैठा है। उसकी पत्नी पूछती है कि नसरुद्दीन, इतने उदास! क्या बात है? नसरुद्दीन ने कहा कि सुबह जब मैं बाजार गया, तो मेरे खीसे में सौ का नोट था। फिर मैंने एक खीसे को छोड़कर सब खीसे देख लिए, नोट का कहीं कोई पता नहीं चल रहा है। तो उसकी पत्नी ने कहा, उस एक को क्यों छोड़ रखा है? नसरुद्दीन ने कहा कि डर लगता है; अगर उसको देखा और वहां भी न पाया तो! एक ही आशा बची है। और हिम्मत नहीं पड़ती उस खीसे में हाथ डालने की।
आप भयभीत हैं खुद के भीतर जाने में। भविष्य में आशाएं बांध रखी हैं। वहां आशाओं की सुविधा है, क्योंकि कल्पना फैलाने का कोई अंत नहीं है; सपने देखने में कोई कठिनाई नहीं है। सपनों को सुंदर बनाना आपके हाथ में है; उनको रंगते जाना, रंगीन करते जाना भी आपकी सुविधा है। अतीत--आप कुछ कर नहीं

सकते। अतीत ठोस है, सत्य है, वह हो चुका। और आप उससे गुजर चुके और आप जानते हैं कि पीड़ा थी, बड़ा दुख था। वह सब दुख वहां भरा है। उसी रास्ते से गुजरने में डर लगता है, फिर से उन्हीं बिंदुओं को छूने में।
और ध्यान रखें, आप पूरी पीड़ा से गुजरेंगे, गुजरना ही पड़ेगा। आपके सारे दुख फिर से पुनर्जीवित होंगे, सब घाव फिर हरे होंगे। क्योंकि कोई घाव मिटता नहीं; वह बना है।
अगर आप दस वर्ष के थे और आपके पिता ने आपको पीटा था, तो वह चोट अब भी वहां बनी है। जब आप पीछे लौटना शुरू करेंगे, गर्भ का प्रयोग करेंगे, आप पुनः दस वर्ष के होंगे, वह चोट फिर हरी होगी। पिता फिर आपको पीटेंगे। फिर वही पीड़ा, फिर वही अहंकार को लगी चोट, असमर्थता, असहाय अवस्था, फिर सब भीतर प्रकट होगा। फिर वही आंसू, फिर वही रोना, वह सब फिर पैदा होगा।
लेकिन यह पैदा कर लेना बड़ा कीमती है। क्योंकि अब आप सचेतन रूप से इससे गुजर रहे हैं। और एक बार जिस अनुभव से आप सचेतन गुजर जाएं, वह आपकी स्मृति से मुक्त हो जाता है। संस्कार इसी तरह क्षीण होते हैं, कर्म इसी तरह लय होते हैं। जिस पीड़ा को भी आप छिपाए हैं, उसको फिर से भोग लें; और आप हलके हो जाएंगे।
तो डरें मत। पीछे उतरने का डर छोड़ें। थोड़े दुख पीछे के भोगें। और आप पाएंगे, आप हलके होते हैं। एक बार यह ख्याल आ गया, तो फिर आप सारे दुख भोगकर वापस गर्भ तक पहुंच सकते हैं।
मूल ऊपर की ओर, पीछे की ओर, प्रथम में छिपा है। लंबी यात्रा की है आपने। और इस यात्रा से बचने का एक सुगम उपाय है कि आप भविष्य में सपने देखते रहें। तो आपका अतीत बड़ा होता जाता है। लौटना उतना ही मुश्किल होगा। जितनी देर करेंगे, उतनी ही कठिनाई होगी।
लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, अभी हमारी उम्र नहीं; अभी तो जवान हैं। अभी क्या ध्यान, अभी क्या समाधि, अभी क्या सोचना परमात्मा को! आएगा समय, रिटायर होंगे, काम-धंधे से छुटकारा होगा, फुर्सत होगी; तब!
उन्हें पता नहीं; जितनी देर होगी, उतना कठिन होता जाता है। क्योंकि अतीत रोज बड़ा होता जा रहा है। उतना ही बोझ, उतने ही दुख, उतनी ही पीड़ाएं, उतनी ही जलन, ईर्ष्याएं, इकट्ठी होती जाती हैं। पीछे लौटना उतना ही मुश्किल हो जाएगा। दरवाजे उतने ही बंद हो जाएंगे; भय और ज्यादा लगेगा। जितनी जल्दी हो सके, उतना उचित है। और किसी दिन--अब तक ऐसा हो नहीं पाया पृथ्वी पर, कभी हो पाएगा, इसकी भी संभावना कम है--किसी दिन अगर मां-बाप ज्यादा विचारशील होंगे, वस्तुतः धार्मिक होंगे, ऐसे धार्मिक नहीं जैसे कि सभी मां-बाप अभी हैं, वस्तुतः धार्मिक होंगे, तो वे बच्चे को आगे भी ले जाएंगे और निरंतर पीछे भी ले जाएंगे। वे बच्चे को कभी भी अतीत के बोझ से दबने न देंगे। वे उसके बचपन में लौटने की प्रक्रिया को, बचपन में बार-बार डूबने की प्रक्रिया को जिंदा रखेंगे।
अगर आप अपने छोटे बच्चों को रोज कह सकें कि वे रोज का दिन पुनः जी लें रात सोने के पहले... । जब वे रात सोने जाएं, तो पीछे लौटें। सुबह से शुरू न करें, पीछे लौटें। बिस्तर पर लेटना आखिरी काम है, इससे पीछे लौटें। और एक-एक काम जो इसके पहले किया है, उससे शुरू कर सुबह तक वापस जाएं! जब सुबह वे जगे थे बिस्तर से, वहां तक पीछे लौटें।
अगर हर बच्चे को बचपन से सिखाया जा सके रोज पीछे लौटना, तो धूल इकट्ठी
न होगी; वह रोज ही अपने कर्म को झाड़ रहा है। तो जब जवान होगा, तब सच में ही जवान होगा, ताजा होगा। वह जब बूढ़ा होगा, तब भी ताजा होगा। उसके वार्धक्य में एक गरिमा होगी। उसका वार्धक्य ताजगी से भरा होगा। उसके पीछे कोई अतीत नहीं, कोई धूल नहीं है। वह रोज उसे झाड़ता रहा है। वह रोज साफ करता रहा है। घर तो हम साफ करते हैं, रोज करते हैं; स्वयं को हम कभी साफ नहीं करते।
और धर्म स्वयं को साफ करने से ज्यादा कुछ भी नहीं है। उसका न कुछ परमात्मा से लेना-देना है, न मोक्ष से। स्वयं को साफ करने से उसका संबंध है। क्योंकि स्वयं अगर आप साफ हैं, तो आप परमात्मा हैं, आप मोक्ष हैं।
आपकी गंदगी, आप संसार हैं। आपका बोझ, आप संसार हैं। आप निर्बोझ, आप परमात्मा हैं।

पीछे लौटना सीखें। आगे की दौड़ में ज्यादा शक्ति न गंवाएं। लेकिन सपनों में रस है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोचिकित्सक के पास एक बार गया। और उसने कहा कि मैं बड़ा व्यथित हूं और जब बहुत थक गया और परेशान हो गया, तब आपके पास आया हूं। उस मनोचिकित्सक ने पूछा कि क्या तकलीफ है? नसरुद्दीन ने कहा, एक ही स्वप्न बार-बार आता है; रोज आता है। और अब मैं थक गया हूं वर्षों से। अब मैं सो भी नहीं पाता। दिनभर भी लगता है, वह स्वप्न रात आएगा; और रात उस सपने में बीतती है।
चिकित्सक, मनोचिकित्सक भी उत्सुक और आतुर हो गया। उसने पूछा, कौन-सा स्वप्न है? उसने कहा, रोज एक स्वप्न देखता हूं। बैठा हूं अपने मकान के सामने, एक अति सुंदर युवती निकलती है और मैं उसके पीछे भागता हूं। और वह जाती है और अपने मकान में चली जाती है, और दरवाजा बंद कर लेती है। मैं दरवाजे पर खड़ा ठोंक रहा हूं दरवाजा, ठोंक रहा हूं। कई साल हो गए, रोज यही स्वप्न!
तो मनोचिकित्सक ने कहा, इस स्वप्न से आप मुक्त होना चाहते हैं? नसरुद्दीन ने कहा, आप गलती समझे। मैं चाहता हूं, वह दरवाजा बंद न कर पाए। मन दौड़ रहा है सपनों में। सपनों में भी महत्वाकांक्षाएं हैं, उनकी पूर्ति की इच्छा है, दरवाजा बंद न हो पाए। सपने से छूटने को कोई तैयार नहीं है। सपने को सुंदर बनाने की चेष्टा है। इसे थोड़ा ख्याल रखें।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि छुड़ाएं इस संसार से। कोई छूटना नहीं चाहता। वे यह कह रहे हैं, बनाएं इस संसार को जरा सुंदर, दरवाजा बंद न हो पाए। उनका मोक्ष, उनका स्वर्ग, सब इसी संसार के सुंदर रूप हैं, जहां दरवाजा सदा खुला है। साधारण आदमी का नहीं; जिनको हम बहुत समझदार, बुद्धिमान कहते हैं, उनका भी। सपने कैसे सफल हो जाएं! कैसे और सुंदर हो जाएं!
पर जितने ही सुंदर होंगे सपने और जितने ही सफल होंगे, उतने ही आप खो जाएंगे; उतना ही स्मरण कम रह जाएगा। स्वप्न का अर्थ ही है स्वयं को खोना, विस्मरण कर देना।
सारी प्रक्रियाएं स्वयं को स्मरण करने की प्रक्रियाएं हैं। स्वप्न शुरू नहीं हुए थे गर्भ में। वहीं लौट जाना है, जहां स्वप्न की पहली चोट भी नहीं पड़ी थी।
इसलिए पतंजलि ने योग-सूत्र में कहा है कि समाधि सुषुप्ति की ही अवस्था है, गहरी निद्रा की अवस्था है। जहां एक भी स्वप्न नहीं, एक भी विचार नहीं। पर सुषुप्ति और समाधि में इतना ही फर्क है कि सुषुप्ति में आप बेहोश हैं और समाधि में आप होश से भरे हैं। होशपूर्वक पीछे लौट जाना है और उस बिंदु को पा लेना है, जहां से प्रारंभ है।
इस बात की चिंता मत करें कि संसार कैसे प्रारंभ हुआ! इस बात की फिक्र
मत करें कि संसार को किसने बनाया! क्यों बनाया! किसलिए बनाया! इस बात की फिक्र करें कि आप कब प्रारंभ हुए! कैसे प्रारंभ हुए! उस क्षण को पकड़ें, जब आप प्रारंभ हुए थे।
सृष्टि के प्रारंभ को पकड़ने की बात व्यर्थ है। वह पकड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि सृष्टि सदा है। यह चक्र घूमता ही रहा है। आप इस चके पर कब सवार हो गए; आपने कब इससे जोर से गठबंधन कर लिया; उस बिंदु को पकड़ें।
उस बिंदु के पहले आप परमात्मा थे, उस बिंदु के बाद आप शाखाओं में भटक
गए और शाखाएं लंबी हैं और वृक्ष नीचे की तरफ बढ़ता जाता है। और जिस दिन आप यह समझ लेंगे कि एक क्षण ऐसा भी था, जब आप इस चके को नहीं पकड़े थे, बाहर थे, उसी क्षण यह चका छूट भी जाएगा। क्योंकि तब इसे पकड़ने का कोई सार नहीं है। जिस क्षण उस आनंद की झलक मिल जाएगी, जो इस संसार में उतरने के पहले थी, उसी क्षण संसार की दौड़ बंद हो जाएगी। क्योंकि हम उसी आनंद को इस संसार में खोजने का प्रयास कर रहे हैं।
यह जो मैंने ध्यान का छोटा-सा प्रयोग कहा, इसे आप करें, तो कृष्ण का जो तात्पर्य है, वह समझ में आएगा।
कृष्ण के शब्दों के तात्पर्य पर तो बहुत टीकाएं लिखी गई हैं। हजारों टीकाएं हैं। पर उन टीकाओं में से एक भी टीका नहीं है, जिसमें यह सुझाव दिया

हो कि आप अपने मूल में लौट जाएं। इसलिए मैं मानता हूं कि वे टीकाएं शाब्दिक हैं। और उनसे सत्य नहीं पकड़ा जा सकता। उनसे जो आप पकड़ेंगे, वह भी शाब्दिक ही होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर में बड़े चूहे थे। और वह परेशान था। और कंजूसी
की वजह से चूहादान भी नहीं खरीद सकता था। लेकिन फिर हिम्मत की और खरीद लाया। चूहादान तो खरीद लिया, लेकिन अब मुसीबत यह थी कि उसमें एक रोटी का टुकड़ा भी रखना है। वह भी कंजूसी की वजह से मुश्किल है। तो उसने तरकीब निकाली। होशियार आदमी था, मौलवी था, मुल्ला था, जानता था शास्त्रों को। उसने एक अखबार में से रोटी की फोटो काटकर अंदर रख दी। और रात निश्चिंत सोया।
सुबह उसने अपना सिर पीट लिया। हुआ कुछ ऐसा कि जब उसने चूहादान खोला,
तो रोटी की तस्वीर के पास एक कुतरा हुआ अखबार का टुकड़ा और पड़ा था, जिसमें एक चूहे की तस्वीर थी।
अखबार में छपी रोटी ज्यादा से ज्यादा अखबार में छपे हुए चूहे को पकड़ सकती है, और तो कुछ उपाय नहीं। इन शब्दों की शब्दों से व्याख्या हो सकती है, लेकिन तब आप असली चूहे को नहीं पकड़ पाएंगे। इसलिए मैंने इस पहले ही सूत्र में ध्यान की प्रक्रिया की बात कही, क्योंकि उससे ही आपको दिखाई पड़ेगा कि आप एक उलटे वृक्ष हैं।
संसार हो या न हो, आप हैं। और जब आप हैं, तब सारा रहस्य खुल गया। तब आपको लगेगा, आपका मूल ऊपर है, शाखाएं नीचे की तरफ हैं। और जिसको आप विकास कह रहे हैं, वह पतन है। और जिसको आप पीछे कह रहे हैं, वही अंत है, वहीं पहुंच जाना है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 15
दूसरा प्रवचन

दृढ़ वैराग्य और शरणागति

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा। अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलम् असड्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। 3।।
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। 4।।
निर्मानमोहा जितसड्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैः
गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।। 5।।
इस संसार-वृक्ष का रूप जैसा कहा है, वैसा यहां नहीं पाया जाता है; क्योंकि न तो इसका आदि है और न अंत है तथा न अच्छी प्रकार से स्थिति ही है। इसलिए इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर, उसके उपरांत उस परम पद रूप परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिए कि जिसमें गए हुए पुरुष फिर पीछे संसार में नहीं आते हैं।
और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार-वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उस ही आदि पुरुष के मैं शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका तथा जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिन्होंने और परमात्मा के स्वरूप में है निरंतर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है कामना जिनकी, ऐसे वे सुख-दुख नामक द्वंद्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

सूत्र के पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कल माता और पिता के बारे में जो भी कहा, वह बहुत प्रिय था। माता-पिता बच्चों को प्रेम देते हैं, लेकिन बच्चे माता-पिता को प्रेम क्यों नहीं दे पाते हैं?

दो-तीन बातें समझनी जरूरी हैं।
एक तो आपसे मैंने कहा कि अपने माता-पिता को प्रेम दें। प्रश्न जिन्होंने पूछा है, वे बच्चों से अपने लिए प्रेम मांग रहे हैं। वहीं भूल हो गई है।
सभी मां-बाप बच्चों से प्रेम मांगते हैं। आपके मां-बाप ने भी आपसे मांगा होगा और आप नहीं दे पाए। आप भी अपने बच्चों से मांग रहे हैं और प्रेम पाने की संभावना बहुत कम है। आपके बच्चे भी अपने बच्चों से मांगेंगे।
जो मैंने कहा था, वह कहा था बच्चों के लिए मां-बाप को प्रेम देने के लिए। मां-बाप बच्चों से प्रेम मांगें, इसके लिए नहीं। और प्रेम कभी मांगकर मिलता नहीं; और मांगकर मिल भी जाए, तो उसका कोई मूल्य नहीं है। जहां मांग पैदा होती है, वहीं प्रेम मर जाता है।
दूसरी बात, मां-बाप का प्रेम बच्चे के प्रति स्वाभाविक, सहज, प्राकृतिक है। जैसे नदी नीचे की तरफ बहती है, ऐसा प्रेम भी नीचे की तरफ बहता है। बच्चे का प्रेम मां-बाप के प्रति बड़ी अस्वाभाविक, बड़ी साधनागत घटना है। वह जैसे पानी को ऊपर चढ़ाना हो।
तो गुरजिएफ का जो सूत्र था, वह यह था कि जो लोग अपने मां-बाप को प्रेम
दे पाते हैं, उन्हें ही मैं मनुष्य कहता हूं; क्योंकि अति कठिन बात है।

सभी मां-बाप अपने बच्चों को प्रेम देते हैं, वह सहज बात है। उसके लिए मनुष्य होना भी जरूरी नहीं है; पशु भी उतना करते हैं। मां-बाप से बच्चे की तरफ प्रेम का बहना नदी का नीचे उतरना है। बच्चे मां-बाप को प्रेम दें, तो ऊर्ध्वगमन शुरू हुआ। अति कठिन बात है।
मां-बाप सोचते हैं, हम इतना प्रेम बच्चों को देते हैं, बच्चों से हमें प्रेम क्यों नहीं मिलता? सीधी-सी बात उनकी स्मृति में नहीं है। उनका अपने मां-बाप के प्रति कैसा संबंध रहा? और अगर आप अपने मां-बाप को प्रेम नहीं दे पाए, तो आपके बच्चे भी कैसे दे पाएंगे? और जैसा आप अपने बच्चों को दे रहे हैं, आपके बच्चे भी उनके बच्चों को देंगे, आपको क्यों देंगे?
यह प्राकृतिक पशु में भी हो जाता है। इसलिए मां-बाप इसमें बहुत गौरव अनुभव न करें कि वे बच्चों को प्रेम करते हैं। यह सीधी स्वाभाविक, प्राकृतिक घटना है। मां-बाप बच्चों को प्रेम न करें, तो अप्राकृतिक घटना होगी। बच्चे मां-बाप को प्रेम करें, तो अस्वाभाविक घटना घटती है, बहुत बहुमूल्य। क्योंकि वहां प्रेम प्रकृति के चक्र से मुक्त हो जाता है; वहां प्रेम सचेतन हो जाता है।
इसलिए सभी प्राचीन संस्कृतियां माता-पिता के लिए परम आदर का स्थापन करती हैं। और इसे सिखाना होता है। इसके संस्कार डालने होते हैं। इसके लिए पूरी संस्कृति का वातावरण चाहिए, पूरी हवा चाहिए, जहां कि यह ऊपर की तरफ उड़ना आसान हो सके।
नीचे की तरफ उतरने में कुछ भी गौरव-गरिमा नहीं है। कठिन और भी है। जब
एक बच्चा पैदा होता है, तो बच्चा तो निर्दोष होता है, सरल होता है। और बड़ी बात है--वही उसका गुण है, जिसकी वजह से आपका प्रेम उसकी तरफ बहता है--असहाय होता है, हेल्पलेस होता है। असहाय को प्रेम देने में आपके अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। असहाय को बड़ा करने में आपको बड़ा रस आता है। फिर बच्चा निर्दोष होता है। उसको घृणा करने का तो कोई उपाय भी नहीं। उस पर कठोर होने में आपको मूढ़ता मालूम पड़ेगी।
पर जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, वैसे-वैसे आपका प्रेम सूखने लगता है; वैसे-वैसे आप कठोर होने लगते हैं! जैसे-जैसे बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे आप और बच्चे के बीच खाई बढ़ने लगती है। क्योंकि अब बच्चा असहाय नहीं है। और अब बच्चे का भी अहंकार पैदा हो रहा है। अब बच्चा भी संघर्ष करेगा, प्रतिरोध करेगा, बगावत करेगा, लड़ेगा। अब उसकी जिद्द और उसका हठ पैदा हो रहा है। उससे आपके अहंकार को चोट पहुंचनी शुरू होगी।
नवजात बच्चे को प्रेम करना बड़ा सरल है। लेकिन जैसे ही बच्चा बड़ा होना शुरू होता है, प्रेम करना मुश्किल, कठिन होने लगता है।
ठीक इससे उलटी बात ख्याल में रखें कि बच्चे के लिए आपको प्रेम करना बहुत कठिन है, घृणा करना सरल है। क्योंकि आप शक्तिशाली हैं। और निर्बल हमेशा शक्तिशाली को घृणा करेगा। शक्तिशाली दया बता सकता है निर्बल के प्रति, लेकिन निर्बल को दया बताने का तो कोई उपाय नहीं है। निर्बल शक्तिशाली को घृणा करेगा।
बच्चा अनुभव करता है, असहाय है और आप शक्तिशाली हैं। बच्चा अनुभव करता है, वह परतंत्र है और सारी शक्ति, सारी परतंत्रता का जाल आपके हाथ में है। जैसे ही बच्चे का अहंकार बड़ा होगा--बड़ा होगा ही, क्योंकि वही गति है जीवन की--जैसे ही बच्चा सजग होगा और समझेगा मैं हूं, वैसे ही आपके साथ संघर्ष शुरू होगा।
आप चाहेंगे आज्ञा माने, और बच्चा चाहेगा कि आज्ञा तोड़े। क्योंकि आज्ञा मनवाने में आपके अहंकार की तृप्ति है और आज्ञा तोड़ने में उसके अहंकार की तृप्ति है। और बच्चे के मन में आपके लिए घृणा होगी, और आपका प्रेम सिर्फ जालसाजी मालूम होगी। क्योंकि प्रेम के नाम पर आप बच्चे का शोषण कर रहे हैं, ऐसा बच्चे को प्रतीत होगा। और सौ में नब्बे मौके पर बच्चा गलती में भी नहीं है। प्रेम के नाम पर यही हो रहा है।
यह सारी घृणा बच्चे में इकट्ठी होगी। अगर बच्चा लड़का है, तो पिता के प्रति घृणा इकट्ठी होगी; अगर लड़की है, तो मां के प्रति घृणा इकट्ठी होगी। कोई बेटा अपने बाप को आदर नहीं कर पाता। आदर करना पड़ता है, मजबूरी है, लेकिन भीतर से बगावत करना चाहता है। कोई लड़की अपनी मां को प्रेम नहीं कर

पाती। दिखलाती है; वह शिष्टाचार है। लेकिन भीतर ईर्ष्या, जलन और संघर्ष है।
इसलिए गुरजिएफ की बात मूल्यवान है कि जो व्यक्ति अपने मां-बाप को प्रेम कर पाए, उसे ही मैं मनुष्य कहता हूं। क्योंकि यह बड़ी कठिन यात्रा है।
इसलिए आप अगर अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, तो बहुत गौरव मत मान लेना। सभी अपने बच्चों को प्रेम करते हैं; आपके बच्चे भी करेंगे। इसमें कोई विशेषता नहीं है। लेकिन अगर आप अपने मां-बाप के प्रति आदर करते हैं, प्रेम करते हैं, सम्मान रखते हैं, तो जरूर गौरव की बात है, जरूर महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि यह एक चेतनागत उपलब्धि है। और यह तब ही हो सकती है, जब आप मूल के प्रति श्रद्धा से भर जाएं।
अन्यथा हर बेटे को ऐसा लगता है कि बाप मूढ़ है। और जैसे-जैसे आधुनिक विकास हुआ है शिक्षा का, वैसे-वैसे यह प्रतीति और गहरी होने लगी है।
शायद बाप उतना पढ़ा-लिखा न हो, जितना बेटा पढ़ा-लिखा है। बाप बहुत-सी बातें नहीं भी जानता है, जो बेटा जान सकता है। रोज ज्ञान विकसित हो रहा है।
इसलिए बाप का ज्ञान तो पिछड़ा हो जाता है, आउट आफ डेट हो जाता है।
तो बेटे के मन में स्वभाविक हो सकता है कि बाप कुछ भी नहीं जानता।
श्रद्धा कैसे पैदा हो? श्रद्धा किन्हीं तथ्यों पर आधारित नहीं हो सकती।
श्रद्धा तो सिर्फ इस बात पर आधारित हो सकती है कि पिता उदगम है, स्रोत है; और जहां से मैं आया हूं, उससे पार जाने का कोई उपाय नहीं। मैं कितना ही जान लूं, मैं कितना ही बड़ा हो जाऊं अपनी आंखों में, मेरा अहंकार कितना ही प्रतिष्ठित हो जाए, लेकिन फिर भी मूल और उदगम के सामने मुझे नत होना है। क्योंकि कोई भी अपने उदगम से ऊपर नहीं जा सकता।
कोई वृक्ष अपने बीज से ज्यादा नहीं होता। हो भी नहीं सकता। बीज में पूरा वृक्ष छिपा है। कितना ही विराट वृक्ष हो जाए, वह छोटे-से बीज में छिपा है। और उससे अन्यथा होने की कोई नियति नहीं है। और अंतिम फल जो होगा वृक्ष का, वह यह होगा कि उन्हीं बीजों को वह फिर पुनः पैदा कर जाए।
उदगम से आप कभी बड़े नहीं हो सकते। मूल से कभी विकास बड़ा नहीं हो सकता। वृक्ष कभी बीज से बड़ा नहीं है, कितना ही बड़ा दिखाई पड़े। इस अस्तित्वगत घटना की गहरी प्रतीति माता-पिता के प्रति आदर से भर सकती है।
लेकिन आप माता-पिता की तरह इसको मत सुनना; इसको बेटे और बेटी की तरह सुनना। यह आपके माता-पिता के प्रति आपकी श्रद्धा के लिए कह रहा हूं। अब जाकर अपने घर में आप अपने बच्चों से श्रद्धा मत मांगने लगना। क्योंकि तब आप बात समझे ही नहीं, चूक ही गए।
और जिस समाज में भी माता-पिता के प्रति श्रद्धा कम हो जाएगी, उस समाज में ईश्वर का भाव खो जाता है। क्योंकि ईश्वर आदि उदगम है। वह परम स्रोत है।
अगर आप अपने बाप से आगे चले गए हैं तीस साल में, आपके और बाप के बीच अगर तीस साल की उम्र का फासला है, आप इतने आगे चले गए हैं बाप से, तो परम पिता से, परमेश्वर से तो आप बहुत आगे चले गए होंगे। अरबों-खरबों वर्ष का फासला है। अगर परमात्मा मिल जाए, तो वह बिल्कुल महाजड़, महामूढ़ मालूम पड़ेगा। जब पिता ही मूढ़ मालूम पड़ता है, अगर परमात्मा से आपका मिलन हो, तो वह तो आपको मनुष्य भी मालूम नहीं पड़ेगा।
पीछे की ओर, मूल की ओर, उदगम की ओर सम्मान का बोध अत्यंत विचार और विवेक की निष्पत्ति है। वह प्रकृति से नहीं मिलती। विमर्श, चिंतन, ध्यान से उपलब्ध होती है।
पर ध्यान रखना, जो भी मैं कह रहा हूं, वह आपसे बेटे और बेटियों की तरह
कह रहा हूं, पिता और माता की तरह नहीं।

दूसरा प्रश्नः आपने पहले कहा है, क्षण-क्षण जीयो, वर्तमान में जीयो।
अब आप कह रहे हैं, अतीत में लौटो। हम क्या करें?

वर्तमान में जीना तभी संभव है, जब अतीत से छुटकारा हो जाए। उसके पहले कोई वर्तमान में जी नहीं सकता। इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है।

वर्तमान में वही जी सकता है, जिसके मन पर अतीत का कोई बोझ नहीं। अतीत का बोझ हो, तो वर्तमान में जीने का उपाय नहीं।
और अतीत का बोझ आपके ऊपर है। यह अतीत में लौटने की प्रक्रिया उस बोझ
को काटने का उपाय है। उससे छुटकारा चाहिए, वह गिर जाए। जैसे वस्त्रों को छोड़कर कोई नग्न खड़ा हो जाए, ऐसा अतीत छूट जाए और आप नग्न वर्तमान में खड़े हो जाएं, तो ही वर्तमान में जी सकेंगे, तो ही क्षण-क्षण होने का अनुभव होगा।
ये दो बातें विरोधी मालूम पड़ सकती हैं। लेकिन अतीत में लौटना वर्तमान में जीने की कला है।
अतीत में जीने को नहीं कह रहा हूं आपसे कि आप अतीत में जीएं। अतीत में जीने का कोई उपाय नहीं है। जो जा चुका वह जा चुका, वह अब है नहीं। उसमें जीएंगे कैसे? कल तो बीत गया। और कल को लाने का अब कोई मार्ग नहीं है। लेकिन कल की स्मृति भीतर टंगी रह गई है। वह अभी भी मौजूद है। कल बीत चुका, सांप जा चुका; उसकी केंचुली आपके मन में अटकी रह गई है।
वह जो कल की स्मृति आपके मन में आज भी मौजूद है, उस स्मृति से छुटकारा चाहिए। उस स्मृति से आपका रस समाप्त हो जाए। उस स्मृति के न तो आप पक्ष में रहें, न विपक्ष में। न तो उस स्मृति से लगाव रहे और न घृणा। उस स्मृति से आपका सारा संबंध छूट जाए, जैसे वह हुई या नहीं हुई बराबर हो जाए। तो आप अतीत से मुक्त हो गए; तो आपने अतीत की स्लेट को पोंछकर साफ कर दिया। तब ही आप वर्तमान में जी पाएंगे। तब आपकी आंखें उज्ज्वल होंगी, ताजी होंगी, नई होंगी। और आप जो भी देखेंगे, उसमें आपकी आंखों पर पड़ी हुई अतीत की धूल बाधा नहीं देगी। वह धूल नहीं है वहां; दर्पण स्वच्छ है।
तो अतीत में लौटने की प्रक्रियाएं वर्तमान में जीने की विधियां हैं।
और जो व्यक्ति अतीत में लौटने से डरता है, वह डरता ही इसलिए है कि अतीत बहुत भारी है। अतीत का स्मरण ही उसको बेचैन और विचलित कर देता है। उसका अर्थ है कि मन में भीतर अतीत के घाव अभी हरे हैं। कैसे वर्तमान में जीएंगे?
कल किसी ने आपको गाली दी थी, वह आदमी आपको आज फिर सड़क पर दिखाई पड़ गया है। आपकी आंखें खाली नहीं हैं; गाली से भरी हैं। आपका मन खाली नहीं है; कल की गाली अभी भी अनुगूंज कर रही है; अभी भी गूंज रही है। और उस आदमी को देखते ही गाली फिर से सजग हो जाएगी। और इस आदमी को आप वैसा नहीं देखेंगे, जैसा वह अभी है। वैसा देखेंगे, जैसा वह कल गाली देते समय था।
और हो सकता है, वह आदमी क्षमा मांगने आ रहा हो। और हो सकता है, वह भूल
ही चुका हो गाली। हो सकता है, उसने पश्चात्ताप कर लिया हो, अपने को दंड दे लिया हो। लेकिन यह नया आदमी आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। आपके पास आंखें पुरानी हैं। आप आज देख ही नहीं रहे हैं; कल से देख रहे हैं।
और हमारा सारा देखना ऐसा है; हमारा सारा सुनना ऐसा है। हम होते ही यहां हैं न के बराबर, निन्यानबे प्रतिशत अतीत बीच में खड़ा होता है। उसके कारण वर्तमान से वंचित हो जाते हैं।
तो जो कल मैंने आपको कहा अतीत में लौटने के प्रयोग, वे अतीत से छूटने
के प्रयोग हैं। लौटकर वहां टिक नहीं जाना है। लौटकर वहां रुक नहीं जाना है। लौटना है सिर्फ इसलिए, ताकि अतीत को आप सचेतन रूप से जी लें। इस बात को थोड़ा ख्याल से समझ लें।
अतीत में आप रहे हैं, लेकिन तब आप अचेतन थे। कल इस आदमी ने गाली दी थी,
तब आपके पास होश नहीं था। तब गाली इतने जोर से चोट की थी, आप इतने धुएं से भर गए थे, क्रोध इतना उबल आया था कि आप देख नहीं सके क्या हुआ। उस क्रोध की मूर्च्छा में आप सचेतन रूप से अनुभव से गुजर नहीं सके।
लेकिन अब तो कल बीत गया। कल की गाली भी गई, आदमी भी गया, कल भी गया। अब
आप बैठकर चुपचाप कल की घटना में फिर से उतर सकते हैं। और अब आप सचेतन रूप से, कांशसली उतर सकते हैं। जो कल संभव नहीं हुआ, वह आज संभव हो सकता है।
और आप चकित हो जाएंगे। अगर आप होशपूर्वक कल की घटना में गए, तो आप अचानक पाएंगे, उस घटना का दंश समाप्त हो गया। उस घटना में कोई चोट न रही, उस गाली में अब कोई कांटे न रहे। और अगर यह स्मृति में हो सकता है, तो इससे एक

अनुभव मिलेगा कि अगर आप यह वस्तुतः भी कर सकें, तो आपकी जिंदगी में कोई कांटे नहीं रह जाएंगे।
तब कल फिर कोई गाली आपको देगा--जिंदगी के रास्ते पर बहुत कांटे हैं--और
जब कल आपको दुबारा कोई गाली दे, तो आपका यह सचेतन गाली में लौटने का अनुभव सहयोगी होगा। तब आप अतीत बनने ही मत देना; तब आप वहीं देख लेना। तब आप वहीं खड़े हो जाना शांत और इस घटना को ऐसे ही देखना, जैसे यह कोई स्मृति का एक खेल हो। वस्तुतः न घटती हो, सिर्फ मन में एक कल्पना हो रही हो। तो फिर आपका अतीत निर्मित ही न होगा।
अतीत के साथ दो काम करने हैं। जो बंधा हुआ अतीत है, जिसको हम इस मुल्क में कर्म और संस्कार कहते रहे हैं, उसकी निर्जरा करनी है, उसको झाड़ देना है। और दूसरा काम यह करना है कि अब आगे अतीत निर्मित न हो पाए। तो रोज-रोज झाड़ देना है। जैसे ही धूल पड़े, उसी समय झाड़ देना है। इकट्ठा करने का प्रयोजन भी क्या है? जिससे कल छूट ही जाना है, उसे आज बांध लेने की जरूरत क्या है? और जो कल बोझ बन जाएगा, उसे हम आज संग्रह क्यों करें?
तो जो संगृहीत है, उससे छूटना है। और जो संगृहीत हो सकता है, उसको संगृहीत नहीं करना है। पिछले संस्कार को पोंछना है; नए संस्कार को निर्मित नहीं होने देना है। तब आप दर्पण की तरह स्वच्छ हो जाएंगे। तब जगत आपको वैसा ही दिखाई पड़ेगा जैसा है। तब आप उसको बिगाड़ेंगे नहीं; तब आप उसमें जोड़ेंगे और घटाएंगे नहीं। और अगर ऐसी दर्पण जैसी स्थिति मिल जाए, तब जो हम जानते हैं, वह संसार नहीं है, वह परमात्मा है। तब जो हम जानते हैं, वह मूल है, उत्स है, उदगम है। उसे जानते ही जीवन के सारे दुख तिरोहित हो जाते हैं।
इन दोनों बातों में विरोध नहीं है। एक है लक्ष्य, वर्तमान में जीना।
और दूसरी है विधि, अतीत में उतरना, जिससे यह लक्ष्य पूरा हो सकता है। लेकिन कठिन हमें मालूम पड़ता है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को गाली देने की सहज आदत थी, अकारण भी, निर्जीव वस्तुओं को भी। अपनी बैलगाड़ी को हांककर ले जाता खेत तक, तो बैलों को भी गाली देता।
गांव में एक फकीर आया हुआ था और नसरुद्दीन को उसने रास्ते पर बैलों को गाली देते देखा। उसने नसरुद्दीन को समझाया। और बात तो सीधी थी; समझने का कोई खास कारण भी न था। बैलों को गाली देने का कोई अर्थ नहीं है। और उनसे दूर के कामुक रिश्ते जोड़ना--मां-बहन, उनकी मां और बहन से संबंध जोड़ना निपट पागलपन की बात है। नसरुद्दीन को समझ में भी आ गया। तो उसने प्रतिज्ञा कर ली, कसम खा ली कि अब, अब दुबारा ऐसी भूल नहीं करूंगा।
लेकिन कसमों से आदतें कभी टूटती नहीं। और कसमों से आदतें टूटती होतीं, तो सारी दुनिया कभी की बदल गई होती। और सिर्फ बुद्धि को बात ठीक लगती है, उतना ही काफी नहीं है जीवन रूपांतरण के लिए। क्योंकि जीवन बुद्धि से ज्यादा गहरा है। वहां अचेतन परतें हैं। और बुद्धि की खबर वहां तक नहीं पहुंचती।
पंद्रह दिन ही नहीं बीते होंगे कि फिर फकीर रास्ते पर मिल गया। फकीर दिखाई पड़ा, तो नसरुद्दीन उस वक्त बैलों को गाली दे रहा था और कोड़े मार रहा था। जैसे ही फकीर को देखा, तो उसने फकीर को अनदेखा कर दिया, और जोर से बैलों से कहा कि सुनो, अगर पंद्रह दिन पहले की बात होती, तो जो बातें मैंने कहीं, वह मैं तुमसे कहता। लेकिन चूंकि अब मैं कसम खा चुका हूं, इसलिए प्यारे बच्चो, जरा जल्दी-जल्दी चलो।
वह गालियां दे रहा था, लेकिन बैलों से कहा कि अगर पंद्रह दिन पहले की बात होती, तो ये बातें मैंने तुमसे कही होतीं। अब चूंकि कसम खा चुका... । जो भी हमने पीछे किया है, सोचा है, उस सबके गहरे खांचे हमारे मन पर होते हैं। और उन्हीं खांचों को हम रोज-रोज उपयोग करते हैं, तो खांचे और गहरे हो जाते हैं। आप निर्णय भी कर लें कि अब ऐसा नहीं करूंगा, तो इस निर्णय का खांचा तो इतना गहरा नहीं होता, यह तो निर्णय अभी पतली लकीर है। यह निर्णय कभी भी हार जाएगा, क्योंकि पुराने खांचे हैं, उनकी लीकें बन गई हैं।

जैसे गांव के कच्चे रास्तों पर गाड़ी की लीक बन जाती है। फिर आप बैलगाड़ी चलाएं, उसी लीक में चके फिर पहुंच जाएंगे, फिर पहुंच जाएंगे। वे गड्ढे खाली हैं; चकों को उनमें जाना आसान है।
ठीक मन पर लीकें हैं। अतीत का अर्थ है, अनंत लीकें। तो आप कितनी ही बातें समझ लेते हैं; बुद्धि सहमत हो जाती है; निर्णय ले लेते हैं; संकल्प कर लेते हैं। और जब संकल्प करते हैं, तब सोचते हैं कि कुछ होने-जाने वाला है। घड़ी भी नहीं बीत पाती कि जो आपने निर्णय लिया था, वह टूट जाता है। और तब सिर्फ आत्मग्लानि पैदा होती है, और कुछ भी नहीं।
आपके संत, आपके फकीर, आपके पंडित-पुरोहित, आप में सिर्फ आत्मग्लानि पैदा करवा पाते हैं और कुछ भी नहीं। क्योंकि उनकी बातें तो तर्कयुक्त हैं। आप भी कह नहीं सकते कि वे गलत कह रहे हैं। स्वीकार करना पड़ता है कि ठीक कह रहे हैं। उस स्वीकृति में आप निर्णय लेते हैं।
लेकिन निर्णय किसके खिलाफ ले रहे हैं! न मालूम कितनी लंबी लकीरें भीतर हैं, गहरे खांचे हैं। उनमें चलने की आदत हो गई है। उनमें चलना सुगम है। वे खांचे बार-बार आपको खींचेंगे।
अतीत में वापस उतरने का अर्थ यह है, इन खांचों को मिटाना जरूरी है। इसके पहले कि आप कसम खाएं, बदलाहट का कोई निर्णय लें, जिससे आप छूटना चाहते हैं, उससे सचेतन रूप से गुजर जाना जरूरी है। आप प्रयोग करके देखें, कि चीज से भी आप सचेतन रूप से गुजर जाएंगे, उससे छुटकारा हो जाएगा।
एक महिला मेरे पास लाई गई। उसके पति चल बसे हैं। तीन महीने हो गए, लेकिन वह रोई भी नहीं। बुद्धिमान है; एक युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। पढ़ी-लिखी है। किताबें लिखी हैं। कविताएं लिखती है। प्रवचन करती है। और जब नहीं रोई, और उसकी आंख से आंसू न गिरे, तो आस-पास के लोगों ने भी बड़ी प्रशंसा की। उस प्रशंसा ने अहंकार को और बल दिया। उससे वह और भी अकड़ गई। लेकिन तीन महीने के बाद उसे हिस्टीरिया के फिट आने शुरू हो गए; मूर्च्छा आने लगी। तो मूर्च्छा की चिकित्सा शुरू हो गई।
लेकिन किसी ने भी यह फिक्र न की कि उसने दुख की एक गहरी वेदना को बिना जीए दबा लिया। यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि वह रो लेती। और समझदार लोग आस-पास होते, तो उसे रोने में सहायता पहुंचाते। यह उचित था कि घाव जी लिया जाता। वह नहीं हो पाया। भीतर रोना भरा रहा। आंसू निकलना चाहते थे; रोक लिए गए। उन सबका बोझ भारी हो गया। मन हलका न हो पाया। उस मन के बोझ का परिणाम होने ही वाला था कि कोई भी भयानक बीमारी पैदा हो जाए।
उस स्त्री की पूरी बात सुनकर मैंने उसे कहा कि कुछ और इलाज की जरूरत नहीं है, तू जी भरकर रो ले। उसने कहा, लेकिन क्या फायदा रोने से? रोने से क्या मरा हुआ व्यक्ति मिलेगा?
मैं भी नहीं कह रहा हूं कि रोने से मरा हुआ व्यक्ति मिलेगा। रोने से
तू ठीक से जीवित हो सकेगी। मरा हुआ व्यक्ति तो नहीं मिलने वाला है। लेकिन अगर नहीं रोई, तो तू भी मरी हुई हो जाएगी। मरी हुई हो ही गई है। तेरा हृदय भी पत्थर जैसा हो जाएगा।
उसने कहा, अब बड़ा मुश्किल है। जिस क्षण पति मरे थे, उस समय तो आसान था;
अब तो समय भी काफी बीत चुका।
उससे कहा, तुझे लौटाना पड़ेगा; अतीत में वापस जाना पड़ेगा। तुझे उस दिन
से फिर कहानी शुरू करनी पड़ेगी, जिस दिन पति मरे थे। तो तू आंख बंद कर ले और जिस क्षण पहला तुझे समाचार मिला पति के मरने का, वहां से फिर से तू यात्रा शुरू कर। ये पीछे के जो दिन बीते, इनको भूल जा और फिर से जी।
वह मेरे सामने बैठी-बैठी ही विकल हो गई। उसके हाथ-पैर में कंपन आ गया। उसकी आंखें बंद हो गईं। उसके जबड़े भिंच गए। चीख और रोना शुरू हो गया। कोई पंद्रह दिन गहन पीड़ा रही। लेकिन तब हल्कापन आ गया। अब वह हंस सकती है।
इस फर्क को आप समझ लें।
रोने से सचेतन रूप से गुजरी, तो अब हंस सकती है। रोने को दबा लिया था,
तो हंसना तो दूर, हिस्टीरिया परिणाम था।
अतीत को सचेतन रूप से एक बार आप देख लें, तो आप हंस सकते हैं। तब बोझ तिरोहित हो जाता है। और उसके बाद ही वर्तमान में जीना संभव है।

आखिरी प्रश्नः गीता की धारणा है कि संसार श्रेष्ठ से अश्रेष्ठ की ओर पतन है। उसके अनुसार हिंदुओं की सतयुग से लेकर कलियुग के अवरोहण की धारणा भी सही लगती है। लेकिन ज्ञात इतिहास बताता है कि मनुष्य-जाति नरमेध, दासता और दरिद्रता से निकलकर क्रमशः समृद्धि और स्वतंत्रता की ओर गतिमान रही है। इसमें तथ्य क्या है?

पहली बात, बच्चा पैदा होता है, तब वह निर्दोष है, तब उसकी स्लेट कोरी है। न उस पर बुरा है कुछ, और न अच्छा है। बच्चा साधु नहीं है, निर्दोष है। असाधु भी नहीं है। असाधु तो है ही नहीं, साधु होने का दोष भी अभी उसके ऊपर नहीं है। अभी उसने हां और न कुछ भी नहीं कहा है। अभी उसने बुरा और अच्छा कुछ भी चुना नहीं है। अभी निर्विकल्प है। अभी उसका कोई चुनाव नहीं है। अभी च्वाइसलेस है। अभी उसे पता भी नहीं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। अभी भेद पैदा नहीं हुआ। अभी बच्चा अभेद में जी रहा है।
यह जो बच्चे की दशा है, यही दशा पूरे समाज की भी कभी रही है, उसी को हिंदू सतयुग कहते हैं। और ठीक मालूम होता है, वैज्ञानिक मालूम होता है। क्योंकि एक व्यक्ति की जीवन-कथा जो है, वही जीवन-कथा सभी व्यक्तियों की जीवन-कथा है।
बच्चा निर्दोष पैदा होता है और बूढ़ा सब दोषों से भरकर मरता है। सतयुग बचपन है समाज का। और कलियुग बुढ़ापा है समाज का; वह अंतिम घड़ी है। जब सब तरह के रोग इकट्ठे कर लिए गए। जब सब तरह की बीमारियां संगृहीत हो गईं। जब सब तरह के अनुभवों ने आदमी को चालाक और बेईमान बना दिया, भोलापन खो गया। हालांकि उस बेईमानी और चालाकी से कुछ मिलता नहीं है। क्योंकि मिलता होता, तो बूढ़े प्रसन्न होते और बच्चे दुखी होते। खोता ही है, मिलता कुछ नहीं है। लेकिन मन समझाता है कि होशियारी... ।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक फैक्टरी में काम करता था, तो उसका हाथ कट गया। मशीन के भीतर आ गया बायां हाथ और कट गया। महीनों के इलाज के बाद जब वह अस्पताल से वापस लौटा, उसके मित्र उसे देखने आए। और उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन, परमात्मा को धन्यवाद दो कि अच्छा हुआ कि दायां हाथ न कटा, नहीं तो जिंदगी बेकार हो जाती। नसरुद्दीन ने कहा कि धन्यवाद देने की कोई जरूरत नहीं। हाथ तो मेरा भी मशीन में दायां ही गया था, वह तो मैंने वक्त पर चालाकी की, दायां तत्काल खींचकर बायां अंदर कर दिया।
तो जिसे हम आदमी की समझदारी कहते हैं, वह इससे ज्यादा नहीं है। क्योंकि फल क्या है? सारी बुद्धिमत्ता कहां ले जाती है? हाथ में बचता क्या है? बच्चे को हानि क्या है? उसकी निर्दोषता से उसका क्या खो रहा है? निर्दोष चित्त का कुछ खो ही नहीं सकता। क्योंकि उसकी कोई पकड़ नहीं है। मनुष्य की जो, एक-एक व्यक्ति की जो कथा है, हिंदू विचार पूरे जीवन की कथा को भी वैसा ही स्वीकार करता है। मनुष्य-जाति का जो आदिम युग था, वह सतयुग है। जब लोग सरल थे और बच्चों की भांति थे। और यह बात सच मालूम पड़ती है। आज भी आदिम जातियां हैं, वे सरल हैं और बच्चों की भांति हैं।
फिर सभ्यता, समझ, गणित का विकास होता है। हृदय खोता है और बुद्धि प्रबल होती है। भाव क्षीण होते हैं और हिसाब मजबूत होता है। कविता खो जाती है और गणित ही गणित रह जाता है। आज जैसा अमेरिका है। सब चीज गणित हो जाती है। आंकड़े सब कुछ हो जाते हैं। सबसे ऊपर कैलकुलेशन, हिसाब हो जाता है। चालाकी है। लेकिन हिंदू हिसाब से कलियुग है। आखिरी वक्त है; सबसे बुरा वक्त है।
इसे विकास कहें या इसे पतन कहें? बूढ़े को बच्चे का विकास कहें? या बूढ़े को बचपन का खो जाना कहें, पतन कहें? अगर आप से कोई पूछे, तो दोनों में क्या होना चाहेंगे? उससे निर्णय हो जाएगा। क्योंकि जो आप होना चाहेंगे, वही पाने योग्य है, वही श्रेष्ठ है। जो आप न होना चाहेंगे, वहीं कुछ भ्रांति, भूल, कहीं कुछ अंधकार है।
कोई भी बूढ़ा नहीं होना चाहता और कोई भी सिर्फ गणित में नहीं जीना चाहता। क्योंकि जीवन के आनंद की कोई भी झलक मस्तिष्क में कभी नहीं उतरती। जीवन का आनंद, जीवन का नृत्य, जीवन की सुगंध तो हृदय ही अनुभव करता है।
मस्तिष्क सब कुछ दे सकता है, सिवाय आनंद को छोड़कर। और हृदय के साथ शायद सब

कुछ खो जाएगा, सिर्फ आनंद बचेगा। लेकिन सब कुछ खोकर भी आनंद बचाने जैसा है।
जिसको हम वैज्ञानिक विकास कहते हैं, वह विज्ञान का विकास होगा। ज्यादा बड़ी मशीनें हमारे पास हैं, ज्यादा बड़े मकान हमारे पास हैं। लेकिन वे आनंद का विकास तो नहीं हैं। क्योंकि उन बड़े मकानों में भी दुखी लोग रह रहे हैं। झोपड़ों में भी इतने दुखी लोग नहीं थे, जितने बड़े मकानों में दुखी लोग रह रहे हैं। और जिनके पास कुछ भी न था, कोई औजार न थे, कोई शस्त्र-साधन न थे, वे भी इससे ज्यादा आनंदित थे। हमारे पास एटामिक मिसाइल्स हैं, चांद पर पहुंचने के उपाय हैं, लेकिन सुख का कोई कण भी नहीं है।
कैसे हम नापते हैं, यह सवाल है। अगर आप सिर्फ रुपयों के ढेर से नापते हैं कि आदमी का विकास हुआ कि पतन, तो विकास हुआ है। अगर आप आदमी में देखते हैं और नापते हैं, तो पतन हुआ है। तो आपकी दृष्टि पर निर्भर करेगा। क्या दृष्टिकोण है? मापदंड क्या है? क्राइटेरियन क्या है? नापते कैसे हैं? हिंदू चिंतन, उपनिषद के ऋषि या गीता के कृष्ण, मनुष्यता से नापते हैं। क्या आपके पास है, यह मूल्यवान नहीं है; आप क्या हैं, यही मूल्यवान है। कितना आपके पास है, यह व्यर्थ हिसाब है। कितनी आत्मा है! कितना सत्व है! कितना चैतन्य है! आप क्या हैं! बीइंग से नापते हैं, हैविंग से नहीं। आपके बैंक बैलेंस से आपके होने का कोई नाता नहीं है। आप नग्न खड़े हों, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, तो भी आपके भीतर सत्व हो सकता है।
महावीर जैसे नग्न खड़े व्यक्ति के पास भी आत्मा है; सब कुछ है। बाहर से कुछ भी नहीं है। कैसे नापते हैं!
इस युग से ज्यादा दुखी कोई युग नहीं था। इस युग से ज्यादा विक्षिप्तता किसी युग में नहीं थी। फिर भी हम कहे चले जाते हैं, संपन्न हैं! फिर भी हम कहे चले जाते हैं, वैभवशाली हैं!
सच है, बात तो सच है। इतनी संपन्नता भी कभी नहीं थी। इतनी विपन्नता भी कभी नहीं थी। पर दो अलग कोण हैं नापने के। एक कोण है, जो धन से नापता है, पदार्थ से नापता है। और एक कोण है, जो चेतना से नापता है।
चेतना की दृष्टि से मनुष्य का पतन हुआ है परमात्मा से। इसलिए हम चेतना को फिर वापस उसी स्थिति में ले जाएं, जहां से परमात्मा से हमारा संबंध छूटता है। फिर हमारी धारा वहीं गिरे, तो वही परम निष्पत्ति होगी। लेकिन पदार्थ की दृष्टि से, साधन-सामग्री की दृष्टि से हम रोज विकास
कर रहे हैं। हम विकास कर रहे हैं, यह कहना भी शायद ठीक नहीं है; क्योंकि मशीनें खुद ही विकास कर रही हैं। अब तो आदमी को उसमें हाथ बंटाने की भी जरूरत नहीं है। कंप्यूटर हैं; वे विकास करते चले जाएंगे।
और वैज्ञानिक कहते हैं, इस सदी के पूरे होते-होते हम ऐसी मशीनें पैदा
कर लेंगे, जो मशीनों को जन्म दे सकें, अपने से बेहतर मशीनों को जन्म दे सकें। वह बिल्ट-इन हो जाएगा, कि मशीन जब टूटने के करीब आए, मिटने के करीब आए, तो अपने से बेहतर मशीन को जन्म दे जाए। जैसे आप एक बच्चे को जन्म दे जाते हैं। तब तो फिर आपकी बिल्कुल भी जरूरत नहीं होगी। तब मशीनें विकसित होती रहेंगी। आप अपने घर भी बैठे रहे, जैसे थे वैसे रहे, तो भी मशीनें विकसित होती रहेंगी।
मशीन ही विकसित हो रही है। आदमी खो रहा है। इस हिसाब से पतन है।
इसमें पूरा पूरब सहमत है। बुद्ध, लाओत्से, कृष्ण, सब सहमत हैं; जीसस, मोहम्मद, सब सहमत हैं; जरथुस्त्र, कनफ्यूसियस, सब सहमत हैं कि बचपन श्रेष्ठतम है, शुद्धता की दृष्टि से। और इसलिए जब कोई व्यक्ति, लाओत्से कहता है, पुनः बचपन को उपलब्ध हो जाता है, तब वह संत हो गया। वर्तुल पूरा हुआ। उदगम से फिर मिलना हो गया। कृष्ण भी यही गीता में कह रहे हैं।

अब हम सूत्र को लें।
इस संसार-वृक्ष का रूप जैसा कहा है, वैसा यहां नहीं पाया जाता है; क्योंकि न तो इसका आदि है और न अंत है तथा न अच्छी प्रकार से स्थिति ही है।
इसलिए इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर... ।

यह जो उलटे वृक्ष की कल्पना कृष्ण ने दी, ऐसा हम खोजने जाएंगे, तो हमें मिलेगा नहीं। उसके कई कारण हैं।
पहला तो कारण यह है कि हम उस वृक्ष की एक छोटी शाखा हैं। हम खोजने जा नहीं सकते। हम उस वृक्ष से दूर खड़े होकर देख नहीं सकते। हम उस वृक्ष के अंग हैं। इसलिए हम कैसे देख पाएंगे कि वृक्ष उलटा खड़ा है; जड़ ऊपर है और पत्ते नीचे हैं। हम पत्ते ही हैं या हम शाखाएं हैं। हम वृक्ष के अंग हैं, उससे हम दूर नहीं हो सकते हैं।
इसलिए संसार के वृक्ष की यह उलटी जो अवस्था है, ध्यान की परम गुह्य स्थिति में ही दिखाई पड़ती है। उसके पहले नहीं। क्यों? क्योंकि ध्यान की उस गुह्य स्थिति में आप वृक्ष के हिस्से नहीं रह जाते, आप संसार के हिस्से नहीं रह जाते। इसलिए सिर्फ समाधि में ही इस उलटे वृक्ष का पूरा रूप दिखाई पड़ता है। यह समाधिस्थ चित्त की अनुभूति है।
आप इसे समझ लें बुद्धि से, उतना ही काफी है। आप इसे देख न पाएंगे। वृक्ष विराट है। वैज्ञानिक कहते हैं, इसका हम कोई ओर-छोर नहीं उपलब्ध कर पाते हैं। जितनी खोज बढ़ती है, उतना ही यह वृक्ष विराट मालूम होता है। रोज नए तारे खोजे जाते हैं; नए सूरज खोजे जाते हैं।
अब तक कोई चार अरब सूरज खोजे जा चुके हैं। और कभी ऐसा लगता था कि एक सीमा आ जाएगी, जब खोज समाप्त हो जाएगी; हम पहुंच जाएंगे अंतिम सीमा पर। पर अब कोई सीमा नहीं मालूम होती है। जितना आगे बढ़ते हैं, नई खोज होती चली जाती है।
वृक्ष बहुत बड़ा मालूम होता है, विराट मालूम होता है। और हम उसके अंग हैं, इसलिए दूर खड़े होकर हम देख नहीं पाते हैं। देखने की कोई संभावना भी नहीं है।
फिर न तो इसका कोई आदि है और न अंत है। अगर इसका कोई प्रारंभ होता, तो
भी देखना आसान था। अगर कभी यह अंत होता होता, तो भी देखना आसान था। यह एक अनंतशृंखला है। एक तरफ एक ग्रह उजड़ता है, तो दूसरा ग्रह निर्मित हो जाता है। एक तरफ एक सूरज बुझता है, तो दूसरे सूरज में प्राण आ जाते हैं। वैज्ञानिक सोचते हैं कि शायदे पांच हजार वर्ष बाद हमारा सूरज ठंडा हो जाएगा, क्योंकि उसकी गरमी रोज चुकती जाती है। लेकिन कुछ दूसरे सूरज, जो ठंडे पड़े हैं, गरम होते जा रहे हैं। जैसे ही हमारा सूरज ठंडा होगा, कोई सूरज दूसरा गरम हो जाएगा। इस सूरज के ठंडे होते ही इस पृथ्वी से जीवन तिरोहित हो जाएगा। लेकिन किसी और पृथ्वी पर जीवन के अंकुरण शुरू हो जाएंगे।
वैज्ञानिक हिसाब से कोई पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन अभी है। होना चाहिए। वृक्ष की एक शाखा सूखती है, तो दूसरी शाखा निकल जाती है। वृक्ष मुरझाए, कि नए अंकुर आ जाते हैं। पुराने पत्ते गिर भी नहीं पाते कि नए पत्ते प्रकट होने लगते हैं।
शृंखला अनंत है। इसलिए न पीछे खड़े होने का उपाय है, न आगे खड़े होने का उपाय है। न किनारे खड़े होने का उपाय है, क्योंकि हम उसके हिस्से हैं; हमशृंखला हैं।
और इसलिए भी अच्छी प्रकार से नहीं समझा जा सकता, क्योंकि इसकी कोई ठीक स्थिति नहीं है। यह शब्द समझ लेने जैसा है। स्थिति केवल परमात्मा की है, संसार की केवल गति है, स्थिति नहीं है।
यहां सब चीजें हो रही हैं; कोई भी चीज है की अवस्था में नहीं है। इसलिए बुद्ध ने तो कहा कि है शब्द का प्रयोग ही मत करना। जैसे हम कहते हैं, वृक्ष है। तो बुद्ध कहते हैं, ऐसा कहना ही मत, क्योंकि है की कोई स्थिति नहीं है। वृक्ष हो रहा है। जब तुम कहते हो, वृक्ष है, तब भी वह हो रहा है। हम कहते हैं, यह जवान है, तब भी हम गलत कहते हैं। क्योंकि जब हम कहते हैं, जवान है, तब वह जवान हो रहा है या बूढ़ा हो रहा है। लेकिन है की कोई स्थिति नहीं है। हमेशा होने की स्थिति है, भवति। सभी कुछ बिकमिंग है। कहीं कुछ ठहरा नहीं है।
स्थिति का अर्थ है, ठहराव। परमात्मा के सिवाय और किसी की कोई स्थिति नहीं है। बाकी सब बहाव है। जैसे नदी बह रही है, ऐसे आप भी बह रहे हैं। ऐसी हर चीज बह रही है।

यह वृक्ष एक बहाव है, इसलिए भी देखना बहुत मुश्किल है। क्योंकि हर चीज बदल रही है। आप देख भी नहीं पाते कि बदल जाती है। आप इसके पहले कि समझ पाएं, स्थिति बदल जाती है। इसके पहले कि आप पकड़ पाएं, जिसको आप पकड़ रहे थे, वह वहां मौजूद न रहा। कुछ और हो गया। यहां सब धुआं-धुआं है, बादलों की तरह है। जैसे बादलों में हम आकृति नहीं पकड़ पाते हैं। आप देख रहे हैं कि एक हाथी बन रहा है बादलों में; और आप देख भी नहीं पाए कि हाथी बिखर गया, कुछ और बन गया। पूरा जगत धुआं-धुआं है। स्थिति केवल परमात्मा की है। और जब तक स्थिति उपलब्ध न हो, तब तक कोई भी ठहराव समझ का, बुद्धि का नहीं हो सकता। तब तक ज्ञान की कोई अवस्था नहीं है।
इसलिए हिंदुओं की सारी चेष्टा इस बात में रही है कि कैसे आप गति से मुक्त हों और स्थिति को प्राप्त हों। कैसे दौड़ना बंद हो और ठहरना आए। कैसे प्रवाह रुके, थम जाए। नदी बहते-बहते कैसे एकदम जम जाए, बर्फ हो जाए। सब चीजें ठहर जाएं।
इस भीतर के चित्त की दौड़ के रुक जाने का नाम ही ध्यान है। भीतर कुछ भी
न दौड़े, कोई गति न रहे, कोई प्रवाह न रहे, सब चीजें फ्रोजन हो जाएं, जड़ हो जाएं, ठहर जाएं, सब कंपन समाप्त हो जाएं; उसी क्षण आप परमात्मा हो गए। जब तक आप बहते हैं, तब तक संसार है। जब आप ठहरते हैं, तब आप परमात्मा हैं। परमात्मा ही समझा जा सकता है। यह बड़ा विरोधाभासी लगेगा। क्योंकि विज्ञान कहता है, संसार समझा जा सकता है; परमात्मा को समझने का कोई उपाय नहीं। परमात्मा का पता ही नहीं चलता है कि वह कहां है! समझना दूर, यह भी तय करना मुश्किल है कि है भी या नहीं। और गीता कहती है कि सिर्फ परमात्मा ही समझा जा सकता है, क्योंकि वह थिर है। वह जाना जा सकता है; उस पर भरोसा किया जा सकता है; वह रिलाएबल है। ऐसा नहीं कि आप एक आंख उठाकर देखेंगे और जब दुबारा आंख खोलेंगे, तो वह बदल गया। वह वही होगा--इस जन्म में, अगले जन्म में, कल्पों-कल्पों बाद, युगों-युगों बाद--आप जब भी लौटकर आएंगे, वह वही होगा।
वह कूटस्थ है, वह ठहरा हुआ है, वहां कुछ भी बदलता नहीं। आप कितना ही परिभ्रमण करें, कितना ही समय व्यतीत करें, जब भी आप लौटेंगे, आप पाएंगे, घर वैसा का वैसा है, सब वही है। वहां रत्तीभर कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।
यह अपरिवर्तित ही समझा जा सकता है। क्योंकि यह भरोसे योग्य है। इस पर श्रद्धा की जा सकती है। संसार तो भरोसे योग्य नहीं है। वह तो छाया की भांति है।
खलील जिब्रान की एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी है। एक लोमड़ी सुबह-सुबह उठी। भोजन की तलाश पर निकली। सूरज उगता था उसके पीछे। बड़ी लंबी छाया लोमड़ी की बनी। लोमड़ी ने अपनी छाया देखी और सोचा, आज तो एक हाथी मिले, तभी पेट भर पाएगा! इतनी लंबी छाया कि एक हाथी के बिना भोजन का कोई उपाय नहीं। और छाया से ही लोमड़ी जान सकती है कि मैं कितनी बड़ी हूं। और जानने का उपाय भी नहीं। आप भी दर्पण से ही जानते हैं कि आप कौन हैं। और तो कोई उपाय नहीं। दर्पण यानी छाया!
लोमड़ी बड़ी चिंतित भी हुई, क्योंकि कहां पाएगी हाथी? और भूख बढ़ने लगी
और खोजती रही, खोजती रही। दोपहर हो गई, सूरज ऊपर आ गया; अभी तक भोजन भी नहीं मिला। और हाथी को पाने का ख्याल, तो भूख भी हाथी जैसी, हाथी को पचाने जैसी भीतर हो गई। क्योंकि सारा मन का खेल है।
लेकिन हाथी मिला नहीं; भोजन मिला नहीं। नीचे झुककर उसने फिर छाया देखी। सूरज अब ऊपर आ गया, तो छाया करीब-करीब खो गई। तो लोमड़ी ने कहा, अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो भी काम चलेगा।
संसार छाया की तरह है। और बचपन में हर आदमी सोचता है कि हाथी नहीं मिला, तो काम नहीं चलेगा। और बुढ़ापे में हर आदमी जानता है कि चींटी भी मिल जाए, तो भी काम चलेगा। छाया छोटी होती जाती है।
सभी बच्चे सिकंदर होना चाहते हैं। सभी बूढ़े कहने लगते हैं, अंगूर खट्टे हैं। सभी बच्चे संसार को जीतने निकलते हैं। सभी बूढ़े वैराग्य की बातें करने लगते हैं। इसलिए नहीं कि वैराग्य आ गया। इसलिए कि छाया सिकुड़ गई। और अब इतने से भी काम चल जाएगा। और कुछ न भी मिला, तो भी काम चल जाएगा।

वैराग्य का मतलब है, छाया सिकुड़ गई। यह वैराग्य कोई वास्तविक नहीं है। अगर यह वैराग्य वास्तविक हो, तो जवानी में भी आ सकता था। इसके लिए बुढ़ापे तक रुकने की कोई जरूरत न थी।
यह जो लोमड़ी का कहना है कि चींटी से भी काम चल जाएगा, यह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। अगर यह बुद्धिमत्ता होती, तो सुबह भी छाया की भ्रांति में आने का कोई प्रयोजन न था। सिर्फ छाया सिकुड़ गई है।
इस संसार को समझने का ठीक-ठीक उपाय नहीं है, क्योंकि प्रतिपल बदल रहा है। इसकी कोई स्थिति नहीं है। इसलिए इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्य शस्त्र द्वारा काटकर... ।
इसको जानने में उलझने की भी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि इसको जान-जानकर भी कोई कभी जान नहीं पाता।
विज्ञान सोचता था, इसी सौ वर्ष पहले, कि जल्दी ऐसा दिन आ जाएगा, जब हम
सब जान लेंगे। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वह दिन कभी भी नहीं आएगा। क्योंकि जितना हम जानते हैं, उतना पता चलता है कि और भी जानने को शेष है। जितना हम जानते हैं, उतने ही अनजान तथ्य सामने आ जाते हैं जिनको जानने की चुनौती मिल जाती है। एक समस्या हल नहीं होती, पचास खड़ी हो जाती हैं। उसको हल करने के कारण ही पचास समस्याएं उठ आती हैं, पचास प्रश्न उठ आते हैं।
अब विज्ञान का भरोसा डगमगा गया है। अब विज्ञान भी मानता है कि कोई अंतिम ज्ञान उपलब्ध हो सकेगा, इसकी आशा नहीं है। सब कामचलाऊ ज्ञान है। रिलेटिविटी का यही मतलब है कि सब ज्ञान कामचलाऊ है। हम जितना जानते हैं, उतने तक ठीक है। बाकी जितना हम और ज्यादा जानेंगे, सब गड़बड़ हो जाएगा। परमात्मा ही जाना जा सकता है। उसकी स्थिति है। इसलिए धर्म के अतिरिक्त ज्ञान का कोई भी द्वार नहीं है।
विज्ञान कामचलाऊ उपयोगिता का द्वार है, ज्ञान का नहीं। उससे जो भी हम जानते हैं, वह करीब-करीब सत्य है, एप्राक्सिमेटली। लेकिन करीब-करीब सत्य का कोई मतलब नहीं होता। करीब-करीब सत्य का असत्य ही मतलब होता है। या तो कोई चीज सत्य होती है या नहीं होती। करीब-करीब सत्य का कोई अर्थ नहीं होता। पर उपयोगिता विज्ञान की है।
ज्ञान धर्म के माध्यम से उपलब्ध होगा। और ज्ञान तभी उपलब्ध होगा, जब
हम स्थिति को उपलब्ध हो जाएं। अगर परमात्मा की स्थिति है और हमारी गति है, तो मिलन नहीं हो सकता। समान समान का ही मिलन संभव है। जब हम भी स्थित होंगे, तो उससे मिलन हो जाएगा। उस जैसे जब होंगे, तब हमारा उससे मिलन हो जाएगा।
ठहरते ही उस ठहरे हुए का अनुभव शुरू हो जाता है। और ठहरने का एक ही उपाय है। इस संसार के वृक्ष को समझने से कुछ न होगा, वरन अहंता, ममता और वासना, इन तीनों को वैराग्यरूपी शस्त्र द्वारा काटकर, उसके उपरांत उस परम पद परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिए।
वृक्ष को खोजने में न पड़ें। वृक्ष को तो काट ही दें। और उसको खोजने में चलें, जिसका पतन वृक्ष है। जिससे गिरकर वृक्ष पैदा हो रहा है, उस मूल उदगम को खोजने चलें। उस बीज को पकड़ें, उस मूल स्रोत को पकड़ें।
कभी आपने बीज को तोड़कर देखा? बीज आप बोते हैं; एक वृक्ष उससे निकल आता है। लेकिन जो बीज आप बोते हैं, उससे यह वृक्ष निकलता है? क्योंकि वह बीज तो सड़ जाता है, गल जाता है, मिट्टी में मिल जाता है। उस बीज से यह वृक्ष निकलता नहीं। उस बीज को कभी तोड़कर आपने देखा है? कहीं आप इस वृक्ष को खोज पाएंगे? उस बीज में कहीं यह वृक्ष मिलता भी नहीं है खोजने से।
वैज्ञानिक, वनस्पतिशास्त्री भी कहते हैं कि बीज में कोई शून्य से ही वृक्ष निकलता है। बीज तो केवल उस शून्य को अपने भीतर छिपाए हुए है। बीज तो सिर्फ खोल है; भीतर कोई शून्य छिपा है। बीज की खोल टूटकर मिट्टी में मिल जाती है; उस शून्य से ही वृक्ष निकलता है।
तो बीज के भीतर जो छिपा शून्य है, वही उदगम है। और जब तक हम उस शून्य में प्रवेश न कर जाएं, तब तक मूल का, सत्य का कोई अनुभव संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध ने तो अपने सारे धर्म को शून्यता की छाया दे दी, शून्यता
का रंग दे दिया। और कहा कि शून्य में प्रवेश कर जाओ, तो ब्रह्म की उपलब्धि है। और कोई ब्रह्म नहीं है।
जो भी दिखाई पड़ता है, वह खोल है। उस खोल के भीतर न दिखाई पड़ने वाला छिपा है। उस अदृश्य को जानने की दो बातें कृष्ण कह रहे हैं। पहले तो वैराग्य से अहंकार, ममता और वासना को काट डालें।
वैराग्य का क्या मतलब है? वैराग्य का मतलब है, यह बोध कि जहां-जहां मुझे सुख का ख्याल होता है, वहां सुख नहीं है। यह शास्त्र से पढ़कर नहीं आ जाएगा। संसार को ही उसके पूरे तत्व में समझने से आएगा।
आपने बहुत प्रयोग किए हैं। जहां-जहां सुख की छाया दिखी है, वहां-वहां दौड़े हैं। फिर वहां सुख पाया या नहीं? अगर नहीं पाया, कभी भी नहीं पाया... । जहां भी प्रतिबिंब दिखा, वहीं गए और मृग-मरीचिका मिली। जहां भी ध्वनि मिली, वहीं गए, लेकिन पाया कि सिर्फ खाली घाटियों में गूंजती आवाज थी। इंद्रधनुषों की खोज की। बड़े रंगीन थे दूर से; पास गए, खो गए। हाथ में कुछ भी न आया। इन सारे जीवन के अनुभवों का जो निचोड़ है, वह वैराग्य है।
तो किसी शास्त्र को पढ़ने से वैराग्य नहीं आ जाएगा; कि आप भर्तृहरि का वैराग्य-शतक पढ़ लें और सोचें कि वैराग्य आ जाएगा। भर्तृहरि को वैराग्य-शतक का अनुभव आया गहन भोग से।
भर्तृहरि ने दो किताबें लिखी हैं। एक का नाम है,शृंगार-शतक। वह उसका पहला अनुभव है, संसार का अनुभव। तब उसने भोगा। उसने सब भूलें कीं, जो कोई भी समझदार आदमी करेगा। जो कोई भी हिम्मती आदमी करेगा, उसने वे सब भूलें कीं। उसने अपने को भूलों से बचाया नहीं। क्योंकि भूलों से जो बचता है, वह अनुभव से भी बच जाता है। वह संसार के सब गली-कूचों में भटका। उसने संसार की सब पगडंडियां छान डालीं। उसने बुरे और भले का भेद भी नहीं किया। जहां उसकी वासना ले गई, गया। लेकिन होश सजग रखा और इस बात को जांचता रहा कि जहां-जहां वासना ले जाती है, वहां कुछ मिलता है या नहीं!
हर बार असफलता मिली। सुख कभी भी न पाया। सदा ही भ्रांति सिद्ध हुई। वासना ने जहां-जहां मार्ग दिखाया, वहीं-वहीं व्यर्थता हाथ आई, वहीं-वहीं विषाद मिला।
हजारों वासनाओं के मार्गों पर चलकर जब एक ही अनुभव होता है निरपवाद रूप से, तो वैराग्य का जन्म होता है। वैराग्य वासना की असफलता का सतत अनुभव, उसका सार-निचोड़ है। और तब यह बात कठिन नहीं रह जाती; अहंकार को, ममता को, वासना को काट देना जरा भी कठिन नहीं रह जाता।
वैराग्य की प्रतीति का अर्थ है, जहां-जहां वासना कहती है सुख है, वहां- वहां सुख नहीं है। जहां-जहां वासना कहती है सुख है, वहां-वहां दुख है; और जहां-जहां वासना कहती है दुख है, वहां-वहां सुख है। वासना धोखा देती है, प्रवंचक है, दि ग्रेट डिसीवर। इस प्रतीति का नाम वैराग्य है। और तब सुख में खोजना बंद, और दुख में खोज शुरू होती है।
दुख की खोज को हम तप कहते हैं। तपश्चर्या का अर्थ है, अब मैं सुख में नहीं खोजता; सुख में खोजा और नहीं पाया; अब मैं दुख में खोजूंगा। क्योंकि अगर सुख में खोजने से दुख मिला, तो संभावना है कि शायद दुख में खोजने से सुख मिल सके। विपरीत यात्रा करूंगा।
वैराग्य अनुभव है वासना की विफलता का। और जैसे ही यह अनुभव गहरा हो जाता है, यह अनुभव शस्त्र बन जाता है। तब साधक अपने भीतर वैराग्य के शस्त्र को लिए रहता है। जैसे ही वासना उससे कहती है वहां सुख, वहीं वह शस्त्र से गिराकर काट डालता है। वह कहता है, मैं जानता हूं; यह बहुत बार हो चुका।
बुद्ध को जब पहली समाधि उपलब्ध हुई, तो उन्होंने जो पहले शब्द अपने भीतर कहे--किसी और से नहीं, खुद से कहे--वे ये थे कि बस, हे काम के देवता, अब तुझे मेरे लिए कष्ट न करना पड़ेगा। मैं भी दौड़ा और मेरे कारण तू भी काफी दौड़ा। अब तुझे मेरे लिए नए घर न बनाने पड़ेंगे। क्योंकि मैंने आधार ही गिरा दिया, अब कोई बुनियाद ही न रही।

वैराग्य के शस्त्र का अर्थ है, भीतर एक सजगता। वासना जहां-जहां धोखा देने लगे, वहां-वहां सजगता रुकावट बन जाए। वहां-वहां हम पुनः स्मरण कर सकें कि इस तरह की वासना में हम बार-बार उतर चुके हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरने के करीब थी। तो उसने मुल्ला से कहा
कि मुल्ला, शादी तो तुम करोगे ही मेरे मरने के बाद। शादी तो तुम करोगे ही, यह निश्चित है। नसरुद्दीन ने कहा, जल्दी नहीं करूंगा। पहले कुछ दिन आराम करूंगा।
यह विवाह काफी थका दिया है। इस विवाह ने काफी दुख दे दिया है। लेकिन इससे कोई वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ है। थोड़े दिन आराम करके वासना फिर सजग हो जाएगी। वासना फिर ताजी हो जाएगी। विश्राम के बाद वासना की मांग फिर खड़ी हो जाएगी।
आप भी बहुत बार वैराग्य की हलकी झलक से भरते हैं। हर वासना के बाद वैराग्य की झलक हर आदमी को आती है। हर संभोग के बाद क्षणभर को प्रत्येक स्त्री-पुरुष को यह प्रतीति होती है कि बस, बहुत हुआ; व्यर्थ है। लेकिन थोड़ी देर आराम के बाद फिर वासना सजग हो जाती है। तो वह जो क्षणभर का अनुभव था, वह शस्त्र नहीं बन पाता। वह जो अनुभव था, संगृहीत नहीं होता। वह बूंद-बूंद की तरह खो जाता है, कभी गागर भर नहीं पाती। साधक बूंद-बूंद अनुभव को इकट्ठा करता है और गागर को भरता है। वह बूंद-बूंद को खो जाने नहीं देता। आपके अनुभव में और बुद्ध के अनुभव में बहुत फर्क नहीं है। बस, इतना ही फर्क है कि आपके पास कोई गागर नहीं है, जिसमें आप अपनी बूंदें भर लेते। आपको उतने ही अनुभव हुए हैं, ज्यादा हो गए होंगे, क्योंकि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ साल हो गए। बुद्ध से ज्यादा अनुभव आपको हो चुके हैं। लेकिन बूंद-बूंद होते हैं, खो जाते हैं। इकट्ठे नहीं हो पाते हैं; उनकी चोट नहीं बन पाती। शस्त्र निर्मित नहीं हो पाता।
अपने अनुभवों को इकट्ठा करें। अनुभवों को खो जाने मत दें। क्योंकि उनके अतिरिक्त ज्ञान का और कोई मार्ग नहीं है। बूंद-बूंद इकट्ठा करके आपके पास इतनी अनुभव की क्षमता हो जाएगी कि वासना कमजोर पड़ जाएगी। काटना भी नहीं पड़ता, अनुभव ही काफी होता है। अनुभव ही काफी होता है, वासना से लड़ना भी नहीं पड़ता। वासना धीरे-धीरे निर्वीर्य हो जाती है।
इस वृक्ष को वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर, उसके उपरांत उस परम पद परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिए कि जिसमें गए हुए पुरुष फिर पीछे संसार में नहीं आते। और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार-वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उस ही आदि पुरुष के मैं शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके... ।
इस प्रक्रिया को थोड़ा सजगता से समझ लें।
हम सब बार-बार जन्मते हैं, बार-बार मरते हैं। लेकिन हर मरण मूर्च्छा में है, और हर जन्म भी मूर्च्छा में है। इसलिए आपको कुछ याद नहीं कि पहले भी आप थे। यह जन्म आपको पहला मालूम पड़ता है, और यह मौत जो आती है, आखिरी मालूम पड़ती है। क्योंकि दोनों तरफ अंधकार है। स्मृति खो गई है। होशपूर्वक मर सकें, तो होशपूर्वक जन्म होगा।
लेकिन मरना अभी दूर है, भविष्य में है। पीछे लौटा जा सकता है। और जो जन्म हो चुका है आपका चालीस, पचास, साठ साल पहले, उस जन्म को होशपूर्वक फिर से देखा जा सकता है। उसकी पूरी फिल्म आपके भीतर संगृहीत है। जैसे मैं बोल रहा हूं और टेप रिकार्ड कर रहा है। मैं बोल चुकूंगा, फिर आप टेप को लौटा लें, तो फिर से सुन सकेंगे।
आपका मस्तिष्क बिल्कुल टेप का यंत्र है। वह सब रिकार्ड कर रहा है। वहां कुछ भी नहीं खोया है। जो भी आपने कभी जाना है, वह वहां अंकित है। आप पीछे इस रिकार्ड का उपयोग करना सीख जाएं, इसे लौटाकर बजाना सीख जाएं, तो आप उन अनुभवों से फिर गुजर सकते हैं, जिनसे आप बेहोशी में गुजर गए हैं। आप पिछले जन्म में वापस जा सकते हैं, और पिछले जन्म के पीछे मृत्यु में जा सकते हैं। और तब यात्रा का द्वार खुल जाता है।
इस भांति जो व्यक्ति पीछे लौटता है होशपूर्वक, उसकी आगे के लिए भी होश
की क्षमता निर्मित हो जाती है। वह मरेगा, लेकिन होशपूर्वक मरेगा। वह जन्मेगा, लेकिन होशपूर्वक जन्मेगा। वह जीएगा, लेकिन होशपूर्वक जीएगा। और

जो व्यक्ति होशपूर्वक जीने लगा, संसार उसे नहीं बांध पाता। बांधती है हमारी मूर्च्छा।
वैराग्य के द्वारा ममता, अहंता और वासना को काटकर जो व्यक्ति परमेश्वर को खोजता है, मूल उदगम को खोजता है, वह व्यक्ति फिर संसार में वापस नहीं आता।
फिर संसार में वापस आने का कोई कारण नहीं रह जाता। संसार में हम वापस होते हैं बार-बार मूर्च्छा के कारण, सोए हुए होने के कारण।
और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार-वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उस ही आदि पुरुष के मैं शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका तथा जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिन्होंने और परमात्मा के स्वरूप में है निरंतर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है कामना जिनकी, ऐसे वे सुख-दुख नामक द्वंद्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।
यह सूत्र, कि मैं उस आदि पुरुष, उस आदि उदगम के शरण हूं, बहुमूल्य है। शरण का भाव बहुमूल्य है। क्योंकि वासना भी काटी जा सकती है वैराग्य से, फिर भी अहंकार शेष रह जाता है। वासना तोड़ी जा सकती है वैराग्य से, लेकिन तब वैराग्य का अहंकार सघन हो जाता है कि मैं विरागी हूं, कि मैं त्यागी हूं, कि मैंने इतना छोड़ा, कि मैंने वासना नष्ट कर दी। एक गहन अग्नि जलने लगती है। अहंकार नए रूप ले लेता है, सूक्ष्म, पर और भी प्रगाढ़।
इसलिए कृष्ण एक शर्त जोड़ते हैं, वैराग्य के शस्त्र से काटकर मैं उस आदि पुरुष के शरण हूं, ऐसा दृढ़ भाव करें।
यह वैराग्य कहीं मेरे अहंकार को भरने का कारण न बने। क्योंकि जब तक मैं हूं, तब तक मूल उदगम में खोना आसान नहीं; तब तक बूंद अपने को पकड़े है, सागर में खोने को राजी नहीं है।
मूल उदगम में मैं मैं नहीं रह जाऊंगा, मेरी अस्मिता खो जाएगी। मेरा सत्व बचेगा, मेरी चेतना बचेगी, लेकिन मैं का रूप खो जाएगा, मैं का नाम खो जाएगा। सभी नाम-रूप विलीन हो जाएंगे।
यदि साधक वैराग्य को साधते-साधते साथ में शरणागति के भाव को न साधे,
तो भटक जाता है। तब वैसा साधक हो सकता है शुद्ध हो जाए, लेकिन उसकी शुद्धि में भी जहर होगा। पवित्र हो जाए, लेकिन उसकी पवित्रता निर्दोष न होगी। उसकी पवित्रता में भी दोष होगा। शुभ हो जाए, सच्चा हो जाए, नैतिक हो जाए; लेकिन उसकी नीति, उसकी सचाई, उसकी शुभ्रता, भीतर एक मूल गलत भित्ति पर खड़े होंगे। वे अस्मिता की भित्ति पर खड़े होंगे। मैं शुद्ध हूं, मैं शुभ हूं, मैं नैतिक हूं, यह भाव बना ही रहेगा। और यह आखिरी दीवार हो जाएगी। मैं हूं, यह बना ही रहेगा। और जब तक मैं हूं, तब तक परमात्मा नहीं है।
लोग मुझसे पूछते हैं कि परमात्मा को हम खोजते हैं, मिलता नहीं है। मैं उनसे कहता हूं, तुम जब तक खोजोगे, तब तक मिलने का कोई उपाय भी नहीं है! क्योंकि तुम ही बाधा हो। यह खोजने वाला ही उपद्रव है। और जब तक यह खोजने वाला न खो जाए, तब तक मिलने की कोई आशा नहीं है।
बुद्ध ने परमात्मा को अस्वीकार किया है। और कहा कि कोई परमात्मा नहीं है।
लेकिन तब एक मुसीबत शुरू हुई। दार्शनिक रूप से कोई अड़चन नहीं है परमात्मा को अस्वीकार करने में, लेकिन तब साधक में शरणागति का भाव कैसे पैदा करोगे? परमात्मा हो या न हो, यह मूल्यवान भी नहीं है। है, इसको सिद्ध करने की कोई जरूरत भी नहीं है।
बुद्ध ने कह दिया कि नहीं कोई परमात्मा है। लेकिन तब एक अड़चन शुरू हुई। और वह अड़चन यह थी कि शरणागति कैसे हो? व्यक्ति अपने अहंकार को कैसे खोएगा? तो उसके लिए नए सूत्र खोजने पड़े। वे नए सूत्र फिर वही के वही हो गए; उससे कोई फर्क न पड़ा।
तो बुद्ध-भिक्षु कहता है, बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। पर शरणं गच्छामि, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है! बुद्ध कहते हैं, कोई भगवान नहीं है। लेकिन बुद्ध के साधक को बुद्ध को
ही भगवान कहना पड़ता है। और बुद्ध भी इनकार नहीं करते कि मुझे भगवान मत कहो। क्योंकि बुद्ध को एक अड़चन साफ दिखाई पड़ती है। बुद्ध कह सकते हैं,

मुझे भगवान मत कहो। क्योंकि बुद्ध को कोई रस आता होगा किसी के भगवान कहने से, यह धारणा ही मूढ़तापूर्ण है।
फिर बुद्ध इनकार क्यों नहीं कर देते? और जब कोई बुद्ध के सामने आकर कहता है, बुद्धं शरणं गच्छामि--हे बुद्ध, तुम्हारी शरण जाता हूं, तब वे क्यों नहीं कहते कि मैं कोई भगवान नहीं हूं। मेरी शरण क्यों जाते हो! कारण है। बुद्ध को कोई रस नहीं है कि कोई उन्हें भगवान कहे, न कहे। लेकिन यह जो जा रहा है शरण, इसके शरण जाने का कोई मार्ग खोजना पड़े। और परमात्मा को इनकार कर दिया है; तो परमात्मा को जिस झंझट से छुटकारा दिला दिया, उसी झंझट में खुद को बैठ जाना पड़ा। वह परमात्मा की जगह खाली कर दी। और कोई चाहिए, जिसकी शरण जा सकें।
लेकिन बुद्ध तो कल मर जाएंगे। परमात्मा तो कभी नहीं मरता; बुद्ध कल मर जाएंगे। फिर क्या होगा? फिर किसकी शरण जाएंगे? क्योंकि लोग पूछेंगे, बुद्ध अब कहां हैं? अगर कहते हो, आकाश में हैं, तो फिर परमात्मा बन गया।
अगर कहते हो, कहीं भी बुद्ध हैं और वहां से सहायता करेंगे, तो परमात्मा बन गया।
तो संघं शरणं गच्छामि। इसलिए दूसरा सूत्र जोड़ना पड़ा कि यह जो भिक्षुओं का संघ है, साधकों का, सिद्धों का, इसकी शरण जाओ। यह रहेगा। लेकिन यह भी जरूरी नहीं कि सदा हो। हिंदुस्तान से खो गया, बुद्धों का कोई संघ न रहा। तो किसकी शरण जाओ? तो बुद्ध को तीसरा सूत्र खोजना पड़ा, धम्मं शरणं गच्छामि--धर्म की शरण जाओ। धर्म सदा रहेगा।
लेकिन क्या फर्क पड़ता है! शरण जाना ही पड़ेगा। क्योंकि शरण जाए बिना साधक का अहंकार नहीं खोता। इसलिए पतंजलि ने अनूठी बात कही है, और वह यह कि परमात्मा स्वयं को खोने की एक विधि है। परमात्मा है या नहीं, यह सवाल ही नहीं है। यह परमात्मा तो सिर्फ एक तरकीब है खुद को खोने की। इस दार्शनिक विवेचन का कोई भी मूल्य नहीं है हिंदुओं के लिए कि ईश्वर है या नहीं। ईसाइयों ने बड़ी मेहनत की ईश्वर को सिद्ध करने की कि वह है। मगर उनकी मेहनत से कुछ सिद्ध नहीं होता। क्योंकि जिन दलीलों से सिद्ध करो, वे दलीलें काटी जा सकती हैं। कट जाती हैं। उनमें कोई बड़ी दलील ऐसी नहीं है, जो न काटी जा सके।
हिंदुओं ने कभी कोशिश नहीं की ईश्वर को सिद्ध करने की। क्योंकि वे कहते हैं, यह तो सिर्फ एक ट्रिक है; यह तो सिर्फ एक युक्ति है; यह तो सिर्फ एक उपाय है। उपाय है कि तुम शरण जा सको।
इसलिए जब पहली दफा ईसाई भारत आए या इस्लाम भारत आया, तो उनको बड़ी हैरानी हुई कि हिंदू भी कैसे मूढ़ हैं! कोई पत्थर को रखकर पूज रहा है, कोई झाड़ को पूज रहा है, कोई नदी को पूज रहा है। पत्थर! कोई मूर्ति भी नहीं है। ऐसे ही अनगढ़ पत्थर पर सिंदूर पोत दिया है, उसको पूज रहे हैं। हनुमान जी हैं! बहुत अजीब लगा उनको कि यह सब क्या हो रहा है!
लेकिन उन्हें पता नहीं कि हिंदुओं ने बड़े गहन तत्व को खोज लिया है। वे
यह कहते हैं कि इससे फर्क ही नहीं पड़ता कि तुम किसको पूज रहे हो। तुम पूज रहे हो, यह सवाल है। तुम कहां झुक रहे हो, यह बेमानी है। तुम झुक रहे हो, बस इतना काफी है।
तो तुम पीपल के वृक्ष के सामने झुक जाओ। यह तो बहाना है। यह पीपल का वृक्ष बहाना है। परमात्मा भी बहाना है। है या नहीं, इससे हमें कोई प्रयोजन भी नहीं है। हमें झुकने में सहयोगी है, तो झुक जाओ। क्योंकि झुकने से तुम उसे जान लोगे, जिसे बिना झुके तुम कभी नहीं जान सकते हो। और वह तुम्हारे भीतर छिपा है।
इसलिए दुनिया में हिंदू धर्म को समझने में बड़ी अड़चन हुई है। हिंदू धर्म सबसे कम समझा गया धर्म है। क्योंकि उसके रूप ऐसे अनगढ़ दिखाई पड़ते हैं। पर उनके अनगढ़ होने का कारण है। कारण है कि बड़ी गहरी बात हिंदुओं की पकड़ में आ गई। ईश्वर महत्वपूर्ण नहीं है; झुकता हुआ साधक, झुका हुआ साधक, शरण में गया हुआ साधक।
तो जहां शरण मिल जाए, जिसके माध्यम से मिल जाए। वह है या नहीं, यह भी गौण है। शरण मिल जाए, तो सब हो जाता है।

कृष्ण कह रहे हैं, उस आदि पुरुष के मैं शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके नष्ट हो गया है मान और मोह जिसका... ।
स्वाभाविक है; जो भी शरण जाएगा, उसका मान और मोह नष्ट हो जाएगा। और जो शरण नहीं गया, उसका मान और मोह कभी नष्ट नहीं होता।
इसलिए मैं कई दफा चकित होता हूं। जैन या बौद्ध भिक्षु गहन मान से भर जाते हैं। जैनों को तो शरण जाने का और भी उपाय नहीं। बौद्धों ने तो बुद्ध को ही शरण जाने का उपाय बना लिया। महावीर ने कहा, अशरण रहो; किसी की शरण मत जाओ।
बात में कुछ गलती नहीं है। अगर अशरण रहकर भी निरअहंकारी हो सको, तो इससे बड़ी और कोई बात नहीं है। फिर जरूरत भी नहीं है शरण जाने की। लेकिन कौन रह सकेगा बिना शरण जाए निरअहंकारी? कभी करोड़ में एकाध कोई व्यक्ति, जो शरण न गया हो और निरअहंकारी हो जाए। शरण जा-जाकर भी अहंकार नहीं मिटता। झुक-झुककर भी नहीं झुकता, तो बिना झुके बहुत कठिन है। महावीर का झुक गया होगा; महावीर के पीछे चलने वालों को मुश्किल खड़ी है। वह झुक नहीं पाता।
इसलिए जैन साधु बड़ी साधना करता है। वैसी साधना संभवतः दुनिया में कोई
भी धर्म का साधु नहीं करता है। उसकी साधना प्रगाढ़ है। लेकिन उसका अहंकार भी उतना ही प्रगाढ़ है। इसलिए जैन साधु जिस अकड़ से चलता है, वैसी अकड़ की हम सूफी फकीर में कल्पना भी नहीं कर सकते। सूफी फकीर तो सोचकर चकित ही हो जाएगा कि क्या कर रहे हो तुम! इतनी अकड़! जैन साधु किसी को नमस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि कोई है ही नहीं जिसकी शरण जाना है।
मैं एक बड़े जैन साधु आचार्य तुलसी के साथ मौजूद था; कई वर्ष पहले। मोरारजी देसाई उनको मिलने आए। तब वे सत्ता में थे। नेहरू जिंदा थे और मोरारजी सत्ता में थे। मोरारजी ने नमस्कार किया आचार्य तुलसी को। आचार्य तुलसी तो नमस्कार किसी को कर नहीं सकते, सिर्फ आशीर्वाद दे सकते हैं। मोरारजी किसी साधु से कम साधु नहीं हैं। कोई जैन साधु उतना अहंकारी नहीं हो सकता। वे भी पक्के नैतिक पुरुष हैं; बिल्कुल पत्थर की तरह। चोट तत्काल लग गई। और जो पहला सवाल उन्होंने पूछा वह यह कि मैंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया; आपने हाथ जोड़कर जवाब क्यों नहीं दिया? और आप ऊपर क्यों बैठे हैं; और मुझे नीचे क्यों बिठाया है?
दोनों साधु पुरुष हैं! और बड़ी अड़चन खड़ी हो गई। और दस-बीस विद्वान सारे मुल्क से बुलाए गए थे गोष्ठी के लिए; उसी में मुझे भी निमंत्रित किया था उन्होंने। मैं समझा कि गोष्ठी तो समाप्त हो गई। क्योंकि अब वह कैसे चलेगी! यह पहला ही प्रश्न है। और मोरारजी ने कहा, जब तक इसका जवाब न मिले, आगे कुछ बात करने का प्रयोजन नहीं है।
तुलसीजी चुप रहे। अब क्या कहें! क्योंकि जैन साधु को आज्ञा नहीं है कि नमस्कार करे किसी को। कोई नमस्कार योग्य है भी नहीं। शरण किसी की जाना नहीं है।
मैंने कहा कि अगर यह नियम है, तो दूसरे को भी नमस्कार करने से रोकना चाहिए। जैसे ही कोई दूसरा नमस्कार करे, कहना चाहिए, रुको! उसका नमस्कार ले लेना और फिर अपनी तरफ से नमस्कार न देने का नियम जरा बेईमानी है। या उसको कहना चाहिए कि सावधान! आप करो; आपकी मरजी। हम लौटाएंगे नहीं।
और मोरारजी को मैंने कहा कि आपको उनका ऊपर बैठना अखर रहा है कि अपना नीचे बैठना अखर रहा है, यह साफ हो जाना चाहिए, फिर कुछ बात आगे चले। क्योंकि ऊपर तो एक छिपकली भी चल रही है; उससे आपको कोई एतराज नहीं है। आप नीचे बिठाए गए हैं, इससे अड़चन है। अगर आपको भी ऊपर बिठाया गया होता, तो कोई अड़चन न थी।
नैतिक पुरुष कितना ही नैतिक हो जाए, धार्मिक नहीं हो पाता। मोरारजी
की नैतिकता में संदेह नहीं है। आचार्य तुलसी की नैतिकता में कोई संदेह नहीं है। दोनों साधु पुरुष हैं। पर अहंकार सघन है। और जब साधु का अहंकार सघन हो, तो असाधु से भी खतरनाक होता है। उसको झुकाया नहीं जा सकता। असाधु तो थोड़ा डरता भी है कि मैं असाधु हूं; साधु डरता ही नहीं। उसको झुकाएंगे कैसे? असाधु तो खुद अपने डर के कारण झुका रहता है। साधु की अकड़ तो सख्त है। वह टूट जाएगा, झुक नहीं सकता।

लेकिन हिंदुओं ने मौलिक तत्व को पकड़ लिया है, कि कहीं से भी झुकना आ सके, और किसी भी तरह शरण जाने का भाव पैदा हो सके, तो वही परम साधना है।
स्वभावतः, मान और मोह नष्ट हो जाएगा। और जैसे-जैसे मान-मोह-आसक्ति नष्ट होते हैं, वैसे-वैसे परमात्मा के स्वरूप में स्थिति बनने लगेगी।
क्योंकि ये ही हिलाते हैं। इनकी वजह से कंपन होता है। इनकी वजह से बेचैनी और अशांति होती है। इनकी वजह से गति होती है।
परमात्मा में जिसकी स्थिति बनने लगती है, सुख-दुख नामक द्वंद्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी पद को, परम पद को प्राप्त होते हैं।
वह परम पद छिपा है भीतर। जैसे ही हमारा हिलन-डुलन बंद हो जाता है, कंपन शांत हो जाता है, ज्योति थिर हो जाती है, वह परम पद हमें उपलब्ध हो जाता है।
जो सदा से हमारा है, जो सदा से हमारा रहा है, हम उसके प्रति प्रत्यभिज्ञा से भर जाते हैं। हम पहचान जाते हैं कि हम कौन हैं!
मैं के मिटते ही मैं कौन हूं, इसकी पहचान आ जाती है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 15
तीसरा प्रवचन

संकल्प--संसार का या मोक्ष का

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः शरणागत-भाव को कैसे उपलब्ध हुआ जा सकता है?
न तद्भासयते सूर्यो न शशाड्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।। 6।।
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। 7।।
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।। 8।।
श्रोत्रं च्रुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।। 9।।
उस स्वयं प्रकाशमय परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चंद्रमा
और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है तथा जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते हैं, वही मेरा परम धाम है।
और हे अर्जुन, इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इंद्रियों को आकर्षण करता है।
जैसे कि वायु गंध के स्थान से गंध को ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिकों का स्वामी जीवात्मा भी जिस पहले शरीर को त्यागता है, उससे इन मन सहित इंद्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है।
और उस शरीर में स्थित हुआ यह जीवात्मा श्रोत्र, च्रु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात इन सबके सहारे से ही विषयों को सेवन करता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः शरणागत-भाव को कैसे उपलब्ध हुआ जा सकता है?

जीवन में सर्वाधिक कठिन, सब से ज्यादा दुरूह अगर कोई भाव-दशा है, तो शरणागति की है।
मन अहंकार के आस-पास निर्मित है। मन को मानना आसान है कि मैं ही केंद्र हूं सारे जगत का। जैसे पृथ्वी और सूर्य, तारे, सब मेरे आस-पास घूमते हों, मेरे लिए घूमते हों; पूरा जीवन साधन है और साध्य मैं हूं।
अहंकार की भाव-दशा का अर्थ है कि मैं साध्य हूं और सभी कुछ साधन है। सब कुछ मेरे लिए है और मैं किसी के लिए नहीं हूं। मैं ही लक्ष्य हूं; मेरे लिए ही सब घटित हो रहा है। सभी कुछ मेरी सेवा का आयोजन है। यह अहंकार भाव है। शरणागति का भाव ठीक इससे विपरीत है; कि मैं कुछ भी नहीं हूं। मेरा होना शून्यवत है और केंद्र मुझसे बाहर है। वह केंद्र आप कहां रखते हैं, यह बड़ा महत्वपूर्ण नहीं है। कोई उसे बुद्ध में रखे, कोई उसे क्राइस्ट में रखे, कोई उसे राम में, कृष्ण में, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। मेरे होने का केंद्र मैं नहीं हूं, मुझसे बाहर है; और मैं उसके लिए जी रहा हूं। मैं साधन हूं, वह साध्य है।
अति कठिन बात है। क्योंकि अहंकार बिल्कुल स्वाभाविक मालूम होता है। लेकिन इस क्रांति के बिना घटे कोई भी व्यक्ति सत्य को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि सत्य यही है कि आपका केंद्र आपके भीतर नहीं है।
इस सारे जगत का केंद्र एक ही है। सभी का केंद्र एक है। इसलिए प्रत्येक
के भीतर अलग-अलग केंद्र होने का कोई उपाय नहीं है। हम संयुक्त जीते हैं, वियुक्त नहीं। व्यक्ति होना भ्रांति है। सारा अस्तित्व जुड़ा हुआ इकट्ठा

है। यह विश्व एक इकाई है, एक यूनिट है। यहां खंड-खंड अलग-अलग नहीं हैं। यहां कोई एक पत्ता भी अलग नहीं है।
हमने सुन रखा है कि राम की मरजी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। और हमने
जो उसको अर्थ दिए हैं, वे नासमझी से भरे हैं। राम की बिना मरजी के पत्ता भी नहीं हिलता, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि इस संसार में दो मरजियां काम नहीं कर रही हैं। पत्ते की मरजी और इस अस्तित्व की मरजी, दो नहीं हैं। यह पूरा अस्तित्व इकट्ठा है। और जब पत्ता हिलता है, तो पूरे अस्तित्व के हिलने के कारण ही हिलता है।
अकेला पत्ता हिल नहीं सकता है। हवाएं न हों, फिर पत्ता न हिल सकेगा। सूरज न हो, तो हवाएं न हिल सकेंगी। सब संयुक्त है। और एक छोटा-सा पत्ता भी हिलता है, तो उसका अर्थ यह हुआ कि सारा अस्तित्व उसके हिलने का आयोजन कर रहा है। उस क्षण में सारे अस्तित्व ने उसे हिलने की सुविधा दी है। उस सुविधा में रत्तीभर भी कमी हो और पत्ता नहीं हिल पाएगा।
राम की बिना मरजी के पत्ता नहीं हिलता है, इसका केवल इतना ही अर्थ है। ऐसा कुछ अर्थ नहीं कि कोई राम जैसा व्यक्ति ऊपर बैठा है और एक-एक पत्ते को आज्ञा दे रहा है कि तुम अब हिलो, तुम अब मत हिलो। वैसी धारणा मूढ़तापूर्ण है।
लेकिन अस्तित्व एक है। दूर, अरबों प्रकाश वर्ष दूर जो तारे हैं, उनका
भी हाथ आपके बगीचे में हिलने वाले पत्ते में है। उनके बिना ये पत्ते नहीं हिल सकते।
समुद्र में लहर उठती है, चांद का हाथ उसमें है। चांद के बिना वह लहर नहीं उठ सकती। चांद में रोशनी है, क्योंकि सूरज का हाथ उसमें है। चांद के पास अपनी कोई रोशनी नहीं है। सूरज से उधार प्रतिबिंब है, प्रतिफलन है। चांद से सागर हिलता है। और जब सागर हिलता है, तो आपके भीतर भी कुछ हिलता है। क्योंकि सारा जीवन सागर से पैदा हुआ है।
आपके भीतर पचहत्तर प्रतिशत सागर का पानी है। आप पचहत्तर प्रतिशत सागर हैं। और आपके भीतर जो जल है, उसका स्वाद ठीक सागर के जैसा स्वाद है। उतनी ही नमक की मात्रा है, उतना ही खारा है, उतने ही रासायनिक द्रव्य हैं उसमें। मछली ही सागर में नहीं जीती, आप भी सागर में जीते हैं। फर्क इतना है कि मछली के चारों तरफ सागर है; आपके भीतर सागर है। आपके भीतर नमक कम हो जाए, आपकी मृत्यु हो जाएगी। ज्यादा हो जाए, आप अड़चन में पड़ जाएंगे। ठीक सागर की जितनी मात्रा है, उतनी ही आपके भीतर होनी चाहिए।
वह जो बच्चा पहली दफा मां के गर्भ में पैदा होता है, तो मां के गर्भ में ठीक सागर की स्थिति हो जाती है। ठीक सागर जैसे पानी में ही बच्चे का पहला जन्म होता है। बच्चा पहले मछली की तरह बड़ा होता है।
जब सागर हिलता है, तो आपके भीतर भी कुछ हिलता है। अगर सागर के पास बैठकर आपको सुख मालूम होता है, तो आपने कभी सोचा नहीं होगा, क्यों? वह जो सागर का कंपन है, जीवन है, वह आपके छोटे-से सागर को भी कंपाता है, जीवंत करता है।
अगर रात चांद को देखकर आपको अच्छा लगता है, सुखद मालूम होता है, एक शांति मिलती है, तो वे चांद की किरणें हैं, जो आपके भीतर के सागर को कंपित कर रही हैं, जीवंत कर रही हैं।
पूर्णिमा की रात दुनियाभर में सबसे ज्यादा लोग पागल होते हैं; अमावस
की रात सबसे कम। पागलपन में भी एक ज्वार-भाटा है। पूर्णिमा की रात दुनिया में सबसे ज्यादा अपराध होते हैं; अमावस की रात सबसे कम। आप शायद उलटा सोचते होंगे कि अमावस की अंधेरी रात सबसे ज्यादा अपराध होने चाहिए। अपराध नहीं होते हैं। क्योंकि अमावस की रात लोग उत्तेजित नहीं होते हैं। पूर्णिमा की रात उत्तेजित हो जाते हैं।
पागलों के लिए पुराना शब्द है, चांदमारा। अंग्रेजी में शब्द है, लूनाटिक। लूनाटिक लूनार से बना है। लूनार का मतलब चांद है। पागलपन में चांद का हाथ है।
और अगर पागलपन में चांद का हाथ है, तो बुद्धिमत्ता में भी चांद का हाथ होगा। और अगर बुद्ध को पूर्णिमा की रात बुद्धत्व प्राप्त हुआ, तो चांद के हाथ को इनकार नहीं किया जा सकता।

सब जुड़ा है, सब संयुक्त है। हम अलग-अलग नहीं हैं।
शरणागति का अर्थ है, इस तथ्य को समझ लेना कि मेरे जीवन का केंद्र मेरे भीतर नहीं है, अस्तित्व में है। फिर उस केंद्र को भक्त भगवान कहता है; ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं। जो बहुत तार्किक ज्ञानी हैं, वे सत्य कहते हैं। यह सब शब्दों का फासला है। क्या आप कहते हैं, यह सवाल नहीं है। अपने से बाहर केंद्र को समझ लेना शरणागत हो जाना है।
और जब केंद्र मेरे भीतर नहीं, तो अकड़ किस बात की है? जब मैं सिर्फ एक लहर हूं, और खुद सागर नहीं हूं, तो अकड़ किस बात की है? इतना अहंकार किस बात का है? अपने आपको इतना समझ लेना पागलपन है। ठीक से जो अपने को समझेगा, वह शून्य समझेगा। गलत जो अपने को समझेगा, वह अपने को बहुत कुछ समझेगा।
तो जितना ज्यादा आप अपने को समझते हों, उतने ही कम धार्मिक होने की संभावना है। जितना कम आप समझते हों अपने आपको, उतने धार्मिक होने की संभावना ज्यादा है। और जिस दिन आप समझ लें कि आप शून्य हैं, उस दिन आप स्वयं भगवान हैं। शून्य होते ही शरणागति घटित हो जाती है।
इसलिए शरणागति के दो उपाय हैं। और दुनिया में दो ही तरह के धर्म हैं। क्योंकि शरणागति के दो ही उपाय हैं।
एक तो उपाय यह है कि आप शून्य हो जाएं। बुद्ध, महावीर जो कहते हैं, अशरण हो जाओ, वह आपको शून्य होने के लिए कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, बिल्कुल शांत हो जाएं, शून्य हो जाएं। शून्य होते से वही घटना घट जाती है, केंद्र आपके भीतर नहीं रह जाता।
दूसरा मार्ग है कि आप अपने को विचार ही मत करें, राम के चरणों में रख दें सिर, कि कृष्ण के चरणों में रख दें। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज--सब छोड़, सब धर्म; मेरी शरण आ जा। आप किसी के चरण में सिर रखते हैं।
या तो आप शून्य हो जाएं, तो केंद्र मिट गया भीतर से। और या आप किसी को पूर्ण मान लें, तो भीतर से केंद्र मिट गया। दोनों ही अवस्था में आप मिट जाते हैं।
जैन-बौद्ध पहली धारणा को मानकर चलते हैं। परिणाम वही है। शून्य हो जाना है, शांत हो जाना है, मौन हो जाना है। अहंकार को भूल जाना है, विसर्जित कर देना है। इसलिए वे अशरण की बात बोल सकते हैं। अशरण की इसलिए--थोड़ा समझ लेना जरूरी है--क्योंकि महावीर कहते हैं कि अहंकार इतना सूक्ष्म है कि तुम जब शरणागति करोगे, तो उसमें भी बच सकता है।
उनकी बात में सचाई है। महावीर कहते हैं कि जब तुम किसी की शरण में जाओगे, तो तुम ही जाओगे। यह तुम्हारा ही निर्णय होगा। तुम ही सोचोगे, तय करोगे, कि मैं शरण जाता हूं। तो यह तुम्हारे मैं का ही निर्णय है। इसमें डर है कि मैं छिप जाएगा, मिटेगा नहीं। क्योंकि तुम सदा मालिक रहोगे। जब चाहो, अपनी शरण वापस ले सकते हो।
अर्जुन कृष्ण से कह सकता है कि बस, बहुत हो गया। अब मैंने आपके चरणों में जो सिर रखा था, वापस लेता हूं। तो कृष्ण क्या करेंगे?
आप किसी व्यक्ति को गुरु चुनते हैं, वह आपका ही चुनाव है। कल आप गुरु
को छोड़ देते हैं, तो गुरु क्या कर सकता है! अगर आप शरण जाने के बाद भी छोड़ने में समर्थ हैं, तो यह शरण झूठी हुई और धोखा हुआ; और आपने सिर्फ अपने को भुलाया, विस्मृत किया, लेकिन मिटे नहीं।
यह डर है। इस डर के कारण महावीर ने कहा, यह बात ही उपयोगी नहीं है। दूसरे की शरण मत जाओ; अपने को ही सीधा मिटाओ। दूसरे के बहाने नहीं, सीधा। यह सीधा आक्रमण है।
कृष्ण, राम, मोहम्मद, क्राइस्ट, जरथुस्त्र, वे सब शरण को मानते हैं कि शरण जाओ। उनकी बात में भी बड़ा बल है। क्योंकि वे कहते हैं कि जब तुम शरण जाकर भी नहीं मिटते हो और अपने को धोखा दे सकते हो, तो जो व्यक्ति दूसरे के बहाने अपने को धोखा दे सकता है, वह अकेले में तो धोखा दे ही लेगा। जो दूसरे की मौजूदगी में भी धोखा देने से नहीं बचता, जहां कि एक गवाह भी था, जहां कि कोई देख भी रहा था, वह अकेले में तो धोखा दे ही लेगा।
आप ताश खेलते हैं, तो आप दूसरों को धोखा देते हैं। लेकिन लोग हैं, जो
कि पेशेंस खेलते हैं, अकेले ही खेलते हैं, अपने को ही धोखा दे देते हैं।

अगर आपने अकेले ही ताश के पत्ते दोनों तरफ से चले हैं, तो आपको पता होगा कि आपने कई दफा धोखा दिया। किसको धोखा दे रहे हैं! लेकिन अकेले ताश खेलने में भी लोग धोखा देते हैं।
अड़चन है। अड़चन आदमी के साथ है। कोई भी विधि हो, अड़चन रहेगी। तो कृष्ण
और जरथुस्त्र और क्राइस्ट की मान्यता है कि जो आदमी गुरु के सामने भी धोखा दे लेता है और अपने अहंकार को बचा लेता है, उसको अकेला छोड़ना खतरनाक है। कम से कम दूसरे की आंखें, दूसरे की मौजूदगी सम्हलने का मौका बनेगी। और इसमें सचाई है।
जैन साधना ने बड़े अहंकारी साधु पैदा किए। जैन साधु में विनम्रता दिखाई नहीं पड़ती, अकड़ दिखाई पड़ती है। अकड़ का कारण भी है, क्योंकि साधना करता है, सचाई से जीता है, ब्रह्मचर्य साधता है, उपवास करता है, तप करता है। अकड़ का कारण भी है। अकारण नहीं है अकड़। लेकिन कारण हो या अकारण हो, अकड़ रोग है। और चूंकि शरण जाने का कहीं कोई उपाय नहीं है, इसलिए मैं कर रहा हूं, यह धारणा मजबूत होती है।
दोनों के खतरे हैं। दोनों के लाभ हैं। जिस व्यक्ति को लगे कि खतरा कहां है, वहां वह न जाए।
अगर आप बहुत धोखेबाज हैं और बहुत बेईमान हैं, और अपने को भी धोखा देने में समर्थ हैं, सेल्फ डिसेप्शन आपके लिए आसान है, तो महावीर का मार्ग आपके लिए खतरनाक है। अगर आप अपने को धोखा देने में असमर्थ हैं, तो महावीर का मार्ग आपके लिए सुगम है।
साधक को निर्णय करना होगा, कैसे जाए। लेकिन प्रयोजन एक ही है कि साधक
को मिटना पड़ेगा। या तो सीधा मिट जाए, शून्य हो जाए; या दूसरे के चरण में जाकर खो जाए और लीन हो जाए।
यह शरणागति कैसे आएगी?
अपनी स्थिति समझने से। अपनी वास्तविक स्थिति समझने से। यह ठीक-ठीक समझ लेने से कि मैं क्या हूं।
च्वांग्त्सू एक कब्रिस्तान से निकल रहा था। सुबह का अंधेरा था; भोर होने में देर थी। एक आदमी की खोपड़ी से उसका पैर टकरा गया। तो उस खोपड़ी को अपने साथ ले आया। उसे सदा अपने पास रखता था। अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा भी, इस खोपड़ी को फेंकें; यह भद्दी मालूम पड़ती है। और इसे किसलिए रखे हैं? तो च्वांग्त्सू कहता था, इसे मैं याददाश्त के लिए रखे हूं। जब भी मेरी खोपड़ी भीतर गरम होने लगती है, मुझे लगता है कि मैं कुछ हूं, तभी मैं इसकी तरफ देखता हूं कि आज नहीं कल मरघट में पड़े रहोगे; लोगों की ठोकरें लगेंगी। कोई क्षमा भी मांगने रुकेगा नहीं। जब मुझे कोई गाली देता है या जब कोई मुझे मारने को तैयार हो जाता है, तब मैं उसकी तरफ नहीं देखता, इस खोपड़ी की तरफ देखता हूं। तब मेरा मन भीतर ठंडा हो जाता है कि ठीक ही है। इस खोपड़ी को कब तक बचाऊंगा? फिर अनंत काल तक यह पड़ी रहेगी, ठोकरें खाएगी। तो क्या फर्क पड़ता है कि अभी कोई मार जाता है कि कल कोई मार जाएगा, जब मैं बचाने के लिए मौजूद न रहूंगा!
तो यह खोपड़ी भी शून्यता में ले जाएगी।
अपनी वास्तविक स्थिति का स्मरण कि मैं मरणधर्मा हूं; कि यह देह थोड़ी देर के लिए है; कि मेरी सीमाएं हैं; कि मेरे ज्ञान की सीमा है, मेरे सामर्थ्य की सीमा है; और मैं स्वतंत्र नहीं हूं, परतंत्र हूं; सब तरफ से मैं घिरा हूं और सब तरफ से परस्पर आश्रित हूं; मेरी कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है। ऐसी प्रतीति गहरी होती जाए, यह विचार गहन होता जाए, यह ध्यान में उतरता जाए, यह हृदय में बैठ जाए, तो शरणागति फलित होगी।
कठिन इसलिए है, कि मैं कुछ भी नहीं हूं, यह मानने का मन नहीं होता। मैं कुछ हूं, ऐसा मोह है। बहुत दीन मोह है, बहुत दुर्बल मोह है, किसी मूल्य का भी नहीं; दो कौड़ी उसकी कीमत नहीं है, लेकिन मैं कुछ हूं... ।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के बड़े भाई ने उसे अपनी पत्नी को लेने ससुराल भेजा। और जाते वक्त कहा कि नसरुद्दीन, व्यर्थ की बकवास मत करना। ज्यादा उलटी-सीधी बात करने की तुम्हारी आदत है, इसका उपयोग मत करना।
तुम तो न या हां में ही जवाब दे देना।

तो नसरुद्दीन ने गांठ बांध ली कि न और हां से दूसरा शब्द बोलेगा ही नहीं। पहुंचा, तो भाई के ससुर ने पूछा कि तुम आए हो नसरुद्दीन, तुम्हारे बड़े भाई नहीं आए? तो नसरुद्दीन ने कहा, न। तो पूछा ससुर ने कि क्या बीमार हैं? तो नसरुद्दीन ने कहा, हां। तो पूछा ससुर ने कि क्या बचने की कोई आशा नहीं? तो नसरुद्दीन ने कहा, हां।
तो घर में कोहराम मच गया। लोग छाती पीटने लगे, रोने लगे। और फिर ससुर
ने कहा कि जब तुम्हारे भाई आखिरी क्षण में हैं, तो अब मेरी लड़की को लिवा ले जाकर क्या करोगे! मैं भेजने से मना करता हूं। वह तो बेवा हो ही गई।
तो नसरुद्दीन दुखी और रोता हुआ वापस लौटा। रोता हुआ लौटा, तो भाई ने पूछा कि क्या हुआ? और भाभी कहां है? तो नसरुद्दीन ने कहा, वह बेवा हो गई। तो भाई ने कहा, नालायक, मैं जिंदा बैठा हूं, तो वह बेवा हो कैसे सकती है! तो नसरुद्दीन ने कहा कि तुम जिंदा बैठे हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। जब बुआ बेवा हुई थीं, तब भी तुम जिंदा थे। जब चाची बेवा हुईं, तब भी तुम जिंदा थे। सैकड़ों औरतें गांव में बेवा हो गईं, तुम जिंदा थे। किसी को न रोक पाए बेवा होने से। तो अब तुम क्या कर सकते हो? किसी का बेवा होना, न होना, तुम पर निर्भर है क्या?
नसरुद्दीन ठीक ही कह रहा है। लेकिन वह जो भीतर मैं है, वह पूरे समय अपने को केंद्र मानकर बैठा है। नसरुद्दीन का व्यंग्य बिल्कुल ही ठीक है। तुम्हारे रहने से क्या होता है? लेकिन प्रत्येक सोच रहा है कि उसके रहने से ही सब कुछ होता है। छिपकली भी सोचती है कि उसका सहारा नहीं होगा, तो मकान गिर जाएगा। हम सब भी उसी भाषा में सोचते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं; कहते हैं, ध्यान करना चाहते हैं, शांत होना चाहते हैं। लेकिन अगर हम शांत हो जाएंगे, तो क्या होगा? परिवार है, पत्नी है, बच्चे हैं।
हर एक को ख्याल है कि सारा संसार उसकी वजह से चल रहा है; उसके सहारे चल रहा है। और कब्रिस्तान भरे पड़े हैं इस तरह के लोगों से, जिनको सभी को यह ख्याल था। जिस जगह पर आप बैठे हैं, उस जगह पर कम से कम दस आदमी मर चुके और गड़ चुके। जमीन पर कोई ऐसी जगह नहीं है, जहां दस-दस परतें लाशों की न बिछ चुकी हों। उन सभी को यही ख्याल था जो ख्याल आपको है कि मैं कुछ हूं।
यह भ्रांति टूट जाए, तो शरणागति आनी शुरू होती है। और इसे तोड़ने के लिए कुछ करना नहीं है, सिर्फ आंख खोलनी काफी है। अपने चारों तरफ आंख भर खोलनी काफी है।
स्थिति ही यही है कि आप कुछ भी नहीं हैं। छोटा-सा संयोग है। वह भी पानी
की लहर की तरह संयोग है। बन भी नहीं पाता और मिट जाता है। कोई पत्थर की लकीर भी नहीं है; पानी पर खिंची लकीर है। अपने को जो ठीक से सोचना-समझना, अपनी स्थिति को पहचानना शुरू करेगा, जागतिक संदर्भ में जो अपने को रखेगा और पहचानने की कोशिश करेगा, वह अनुभव करेगा कि मैं एक पानी की बूंद हूं, सागर होने का भ्रम गलत है।
और जो अपनी तरफ सोच-विचार में लगेगा, विमर्श करेगा, चिंतन करेगा, उसे
यह भी दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि जगत मुझसे बहुत बड़ा है। मेरे पीछे, मुझसे आगे, मेरे चारों ओर विराट जगत है। उस विराट जगत में मैं एक छोटा-सा कंपित होता हुआ जीवन-कण हूं; केंद्र मैं नहीं हूं।
शरणागति सहज हो जाएगी। और अगर कोई परमात्मा न दिखाई पड़ता हो, कोई ईश्वर की प्रतीति न होती हो, तो शून्यता सध जाएगी।
दोनों के परिणाम एक हैं। या तो शून्यता सध जाए या शरण-भाव आ जाए। आपका मिटना जरूरी है। जैसे ही आप खोते हैं, वैसे ही जीवन का सत्य प्रकट हो जाता है।

दूसरा प्रश्नः अपने स्रोत की ओर लौटने के लिए प्राइमल स्क्रीम का होना आपने जरूरी बताया। पर हम कैसे पहचानेंगे कि कौन-सी रेचन-प्रक्रिया वांछित प्राइमल स्क्रीम है?

आपको पहचानने की जरूरत ही न पड़ेगी। उसके बाद आप तत्क्षण दूसरे हो जाएंगे। आप बीमार हों, तो आप कैसे पहचानते हैं जब आप स्वस्थ हो जाते हैं?

कोई उपाय है आपके पास पहचानने का? नहीं; बीमारी जाती है, तो आप तत्क्षण अनुभव करते हैं कि स्वस्थ हो गए। जब आपका सिरदर्द खो जाता है, तो आप कैसे पता लगा पाते हैं कि अब सिरदर्द नहीं है और सिर ठीक हो गया?
प्राइमल स्क्रीम का जो रेचन है, जो कैथार्सिस है, जिस क्षण हो जाएगी, उसी क्षण आप फूल की तरह हलके हो जाएंगे, जैसे सारा बोझ खो गया। बोझ है भी नहीं आप पर, सिर्फ आपको ख्याल है। पर इस बोझ को आप खींचते हैं, क्योंकि बिना बोझ के अहंकार नहीं चल सकता।
इसलिए जितना अहंकारी आदमी हो, उतना बड़ा बोझ ले लेता है। अहंकारी हो,
तो राष्ट्रपति हो जाना जरूरी है, प्रधानमंत्री हो जाना जरूरी है। क्योंकि पूरे मुल्क का बोझ चाहिए, पूरी पृथ्वी का बोझ चाहिए, तब अहंकार को लगता है कि मैं कुछ हूं। हालांकि कुछ राजनीतिज्ञ कर नहीं पाते हैं। बोझ को घटाते हैं, ऐसा लगता नहीं, बढ़ाते भला हों। लेकिन बड़ा बोझ लेकर उन्हें अनुभव होता है कि हम कुछ हैं।
मैंने सुना है कि स्टैलिन ने मरने के पहले ख्रुश्चेव को दो पत्र दिए।
और कहा कि जब मैं मर जाऊं और तू ताकत में आ जाए, तो इन पत्रों को सम्हालकर रखना। इसमें नंबर एक का जो पत्र है, वह तू तब खोलना, जब तेरी कोई योजना इतनी असफल हो जाए कि तेरा तख्ता डांवाडोल हो उठे। और दूसरा तब खोलना, जब कि कोई भरोसा ही न रह जाए तेरे बचने का, सब डूबने की हालत हो जाए और तुझे उतरने के सिवा कोई चारा न रहे, तब तू दूसरा खोलना।
जब ख्रुश्चेव असफल हुआ... ।
और सभी राजनीतिज्ञ असफल होते हैं। अब तक कोई राजनीतिज्ञ जमीन पर सफल नहीं हुआ। होंगे भी नहीं। क्योंकि सफलता से राजनीति का कोई संबंध भी नहीं है।
समस्याएं बड़ी हैं, और आदमी का अहंकार भर उसे ख्याल देता है कि मैं हल
कर लूंगा। समस्याएं विराट हैं। किसी से हल नहीं होतीं। पर थोड़ी देर को यह वहम भी मन को बड़ा सुख देता है, अहंकार को बड़ी तृप्ति देता है कि मैं हल करने की कोशिश कर रहा हूं। यह ख्याल भी कि सारी समस्याओं के हल मुझ पर निर्भर हैं और लोगों की आशा मुझ पर लगी है, काफी सुख देता है।
जब ख्रुश्चेव की योजनाएं असफल हुईं, तो उसने मजबूरी में पहला पत्र खोला। उस पहले पत्र में स्टैलिन ने लिखा था कि सब जिम्मेवारी मेरे सिर पर थोप दे।
यह पुरानी तरकीब है राजनीतिज्ञों की कि जो ताकत में नहीं हैं, जो पीछे ताकत में थे, जो मर गए हैं, उन पर सारी जिम्मेवारी थोप देना कि उनके कारण... ।
ख्रुश्चेव ने वही किया। थोड़े दिन नाव और चली। फिर नाव के डूबने के दिन फिर आ गए। तब उसने दूसरा पत्र खोला। दूसरे पत्र में स्टैलिन ने लिखा था कि अब तू भी दो पत्र लिख।
आदमी की बड़ी से बड़ी समस्या है और वह यह कि बिना समस्याओं के आपका अहंकार निर्मित नहीं हो सकता। लोग कहते हैं, हम कैसे शांत हों! लेकिन वे शांत होना नहीं चाहते। क्योंकि अगर आप शांत होंगे, तो आपका अहंकार खड़ा कैसे होगा? बड़ी समस्याएं चाहिए, चुनौती चाहिए, संघर्ष चाहिए, उसके मुकाबले अहंकार खड़ा होगा।
अहंकार को बड़ा करने के लिए लोग समस्याएं खड़ी करते हैं। आप भी खड़ी करते हैं। और अगर दो-चार दिन कोई समस्या न हो, तो बड़ी बेचैनी शुरू हो जाती है। खाली लगते हैं। कुछ करने को नहीं सूझता। पृथ्वी पर होना न होना बराबर मालूम पड़ता है। जिंदा अगर हैं, तो कुछ उपद्रव चाहिए। जितना ज्यादा उपद्रव, उतने आप जिंदा मालूम होते हैं।
मनसविद कहते हैं, अपराधी और राजनीतिज्ञ एक ही कोटि के लोग हैं। अपराधी भी बिना अपराध किए नहीं रह सकता। क्योंकि अपराध करके वह उपद्रव खड़े कर लेता है, और उनके बीच में महत्वपूर्ण हो जाता है। और राजनीतिज्ञ भी बिना उपद्रव खड़े किए नहीं रह सकता, क्योंकि उपद्रव के बिना उसका कोई मूल्य नहीं, कोई अर्थ नहीं।

इसीलिए युद्ध के समय में बड़े नेता पैदा होते हैं, क्योंकि युद्ध से बड़ा उपद्रव और किसी समय में पाना मुश्किल है। इसलिए जिसको बड़ा नेता होना हो, उसे युद्ध को पैदा करवाना ही पड़ता है।
आप भी यही कर रहे हैं। उपद्रव खड़े करते हैं, खोजते हैं, निर्माण करते हैं; न हों, तो कल्पना करते हैं। ये सारे उपद्रव आपके भीतर अपनी छाया, अपने दाग, अपने घाव छोड़ जाते हैं, अपना दुख छोड़ जाते हैं। आपके भीतर एक खंडहर निर्मित हो जाता है।
प्राइमल स्क्रीम, मूल रुदन इस सारे घाव का इकट्ठा रेचन है। जो कुछ आपने इकट्ठा किया है--कूड़ा-कर्कट, दुख-पीड़ाएं, झूठ, असत्य, धोखे--वह जो आपने एक खंडहर अपने भीतर निर्मित किया है, वह पूरा का पूरा एक चीख में बाहर आ जाए। उसके बाद आप एकदम हलके हो जाते हैं। मन की सारी व्यथा खो जाती है। इतना ही कहना ठीक नहीं; मन ही खो जाता है।
पहचानने की जरूरत नहीं पड़ेगी; अचानक आप पाएंगे कि पंख लग गए, आप उड़ सकते हैं। अचानक पाएंगे, ग्रेविटेशन समाप्त हो गया; जमीन आपको खींचती नहीं, वजन न रहा; आप निर्भार हो गए। कोई चिंता न आगे है, न पीछे है। यह क्षण पर्याप्त है। और यह क्षण बहुत सुखद है। आनंद की अनुभूति आपको बताएगी कि रेचन हो गया है। दुख बताता है कि रेचन बाकी है।
और आप रेचन भी नहीं होने देते। हृदयपूर्वक रो भी नहीं सकते, चीख भी नहीं सकते। हृदयपूर्वक कुछ भी करने का उपाय नहीं है। सब अधूरा-अधूरा, झूठा-झूठा करते हैं। और तब अगर पूरी जिंदगी एक उदास ऊब हो जाए, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
इसलिए साधक को साहस चाहिए कि जो भीतर दबा है, उसे वह बाहर फेंक सके। और
एक बार भी आप हिम्मत जुटा लें, तो बाहर फेंकना बहुत कठिन नहीं है। और एक बार रस अनुभव होने लगे, जैसे ही बोझ अलग हो और रस अनुभव होने लगे... ।
मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन रास्ते से गुजर रहा है। और बड़ी अश्लील, भद्दी गालियां दे रहा है अपने जूतों को। उसके एक मित्र ने पूछा कि क्या बात है? और इतने उदास, इतने दुखी, और चेहरे पर ऐसे भाव जैसे कांटे चुभ रहे हों। उसने कहा कि जूते छोटे हैं, और पैरों में बड़ा कष्ट है। तो मित्र ने कहा, तुम इन्हें उतार क्यों नहीं देते हो? नसरुद्दीन ने कहा कि वह मैं नहीं कर सकता।
मित्र कुछ समझा नहीं। उसने पूछा कि कारण न करने का? तो नसरुद्दीन ने कहा, बस यही एक मेरे सुख का सहारा है। जब दिनभर का थका-मांदा, हारा, पराजित, दुकान-धंधे से उदास घर वापस लौटता हूं। पत्नी देखते ही टूट पड़ती है; बकने लगती है, चीखने-चिल्लाने लगती है। बच्चे अपनी मांगें मौजूद कर देते हैं। पास में पैसा नहीं है। पूरे दिनभर के इस दुख और पीड़ा के बाद जब घर जाकर मैं अपने पैर के जूते निकालता हूं, तो मोक्ष का आनंद उपलब्ध होता है। जूते उतारते से ही लगता है कि जिंदगी में सुख है। और कोई सहारा नहीं है सुख का। बस, यह एक जूता ही सहारा है।
आप भी अपने दुख को पकड़े हैं। क्योंकि वह दुख ही आपके सुख की छोटी-मोटी झलक है, बस। जब उसको आप उतारकर रखते हैं, थोड़ा-सा लगता है अच्छा।
नसरुद्दीन कहता है, ये जूते मैं उतार नहीं सकता। क्योंकि इनके सिवाय
तो जीवन में कोई सुख नहीं है।
आप किस-किस बात को सुख कहते हैं, आपने कभी ख्याल किया? लोग काम को, सेक्स को सुख कहते हैं; वह सिर्फ आपका जूता उतारने से ज्यादा नहीं है।
तनाव इकट्ठे हो जाते हैं। दिनभर आप तनाव इकट्ठे करते हैं। शरीर से बाहर जाती ऊर्जा के कारण तनाव शिथिल हो जाते हैं। लगता है, सुख मिला।
महावीर या बुद्ध कामवासना को जीतकर आनंद को उपलब्ध नहीं होते हैं। चूंकि आनंद को उपलब्ध होते हैं, इसलिए कामवासना व्यर्थ हो जाती है। जूता उतारकर सुख अनुभव नहीं करते। सुख अनुभव हो रहा है, इसलिए जूते के दुख को झेलने की और सुख की आशा बनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
दिनभर के तनाव से भरे हुए जाकर एक फिल्म में बैठ जाते हैं; सुख मिलता है। कैसा सुख मिलता होगा! आंखें और थकती हैं। लेकिन कम से कम दो घंटे, तीन घंटे के लिए अपने को भूल जाते हैं; व्यस्त हो जाते हैं कथा में। व्यस्तता ज्यादा हो जाती है, स्वयं का विस्मरण हो जाता है।

लेकिन जिसको दिनभर स्वयं का विस्मरण रहा हो, जिसको अहंकार ही न हो, विस्मरण करने को कुछ न हो, उसे तीन घंटा भुलाने के लिए किसी फिल्म में बैठने की कोई जरूरत नहीं है। उसने जूते ही उतार दिए।
शराब पीकर थोड़ी देर सुख मिलता है। वही अहंकार शराब पीकर मिट जाता है। इसलिए शराब पीने वाले लोग विनम्र होते हैं। जो लोग शराब छोड़े होते हैं, वे लोग अकड़ैल, दुष्ट प्रकृति के होते हैं। उन्हें अहंकार को हटाने का कोई उतना भी उपाय नहीं है।
इसलिए अक्सर आप पाएंगे कि शराब पीने वाला मृदु होगा, मैत्रीपूर्ण होगा, भला होगा; वक्त पर काम पड़ सकता है। आप उस पर भरोसा कर सकते हैं। कंजूस नहीं होगा, कठोर नहीं होगा। क्योंकि थोड़ी शराब के द्वारा कम से कम अहंकार भूलता है; मिटता तो नहीं, लेकिन थोड़ी देर को भूल जाता है।
इसलिए आप शराब पीएं, तो थोड़ी देर में चेहरे की उदासी खो जाती है और एक प्रसन्नता प्रकट होने लगती है। पैरों में गति आ जाती है और नाच आ जाता है। यह वही आदमी है, थोड़ी देर पहले ऐसा मरा हुआ चल रहा था, चेहरा ऐसा था जैसे कि बस, जीवन में कोई अर्थ नहीं है। इसकी आंखों में रौनक आ गई, चेहरे पर चमक आ गई, पैर में गति आ गई।
यह हलका-फुलका कैसे हो गया? शराब किसी को हलका- फुलका नहीं करती। शराब केवल अहंकार को सुला देती है।
इसलिए सूफी फकीर कहते हैं कि जिन्होंने परमात्मा की शराब पी ली, फिर
इस शराब में उन्हें कोई भी अर्थ नहीं है। परमात्मा की शराब का मतलब इतना ही है कि जिन्होंने अहंकार ही छोड़ दिया, जिन्होंने उसकी शरण पकड़ ली, उनको अब भुलाने को कुछ नहीं बचा।
इसलिए फकीरों की मस्ती शराबियों की ही मस्ती है, पर बड़ी गहन शराब की है। और शराबी की मस्ती बड़ी महंगी है। क्योंकि पाता बहुत ना-कुछ है और बहुत-से दुख उठाता है। फकीर की मस्ती बिना कुछ खोए बहुत कुछ पाने की है।
हम दुख को पकड़े बैठे हैं और दुख को हम इकट्ठा करते हैं। हम रस भी लेते हैं।
लोगों को देखें, जब वे अपने दुख की कथा किसी को सुनाते हैं, तो कितने प्रसन्न मालूम होते हैं! यह बड़ी हैरानी की बात है। अगर कोई आपकी दुख की कथा न सुने, तो आपको दुख लगता है। सुने, आपको रस आता है। और हर आदमी अपने दुख की कहानी बढ़ा-चढ़ाकर बताता है।
एक मेरे मित्र ने मुझसे कहा--उनकी पत्नी मेरे पास आती थी--उन्होंने कहा, आप इसकी बातों में ज्यादा मत पड़ना। क्योंकि इसको फुंसी हो जाती है, और कैंसर बताती है। और मैंने पाया कि वे ठीक कहते थे। फुंसी भी कोई बीमारी है! जब तक कैंसर न हो, तब तक अहंकार को रस नहीं आता।
आपने ख्याल न किया होगा, जब आप डाक्टर की तरफ जाते हैं सोचकर कि बड़ी बीमारी पकड़ गई है, और डाक्टर कहता है कुछ भी नहीं है, तो आपको अच्छा नहीं लगता। मन में थोड़ी-सी चोट लगती है; शक होता है कि शायद यह डाक्टर ठीक नहीं है। मुझ जैसे आदमी को और छोटी-मोटी बीमारी या कुछ भी नहीं! यह उलटा मालूम पड़ता है, लेकिन भीतर यह लगता है कि बेकार आना-जाना हुआ।
तो जो बेईमान डाक्टर हैं या कुशल, वे आपको देखकर बड़ा गंभीर चेहरा बना लेंगे। उससे आपका चित्त प्रसन्न होता है। और जब आपका हाथ हाथ में लेते हैं, तो ऐसा लगता है कि बहुत गंभीर स्थिति है। आपको कोई बीमारी न भी हो, तो भी वे बीमारी को बढ़ा-चढ़ाकर खड़ा करते हैं। उससे मरीज प्रसन्न होता है। किसी मरीज को कह दें कि आपको मानसिक ख्याल है, बीमारी है नहीं। वह आपका दुश्मन हो जाता है।
कोई यह बात मानने को राजी नहीं है कि हम दुख को भी पकड़ते हैं, लेकिन हम पकड़ते हैं। दुख को भी हम बड़ा करते हैं। फिर वह दुख बड़ा होकर हमारे सिर पर पत्थर की तरह, छाती पर पत्थर की तरह सवार हो जाता है। फिर हम उसको ढोते हैं।
रेचन का अर्थ है, दुख को उतार देना। प्राइमल स्क्रीम का अर्थ है, दुख
को प्रकट हो जाने देना, निकल जाने देना। एक भयंकर चीत्कार में वह बाहर हो जाए और छाती हलकी हो जाए; हृदय का बोझ उतर जाए।

तो कोई आपको पता नहीं लगाना पड़ेगा कि कैसे पता चले कि यह प्राइमल स्क्रीम थी! ऐसे पता चलेगा कि उसके बाद एकदम आप हलके हो जाएंगे। आप पाएंगे कि जैसे आपके पास कोई दुख कभी था ही नहीं। आप सदा ही आनंद में रहे। जैसे एक स्वप्न देखा हो दुख का और नींद टूट गई। और अब कोई स्वप्न नहीं है। और आप हंस रहे हैं।

तीसरा प्रश्नः कल आपने बताया कि वासनाओं की जड़ें गहरे अचेतन में हैं
और केवल बौद्धिक तल पर घटित वैराग्य का निर्णय अपर्याप्त है। वैराग्य का जागरण गहरी अचेतन जड़ों तक कैसे हो सकता है?

अनुभव के अतिरिक्त कोई भी उपाय नहीं। और हम सब चाहते हैं कि अनुभव के बिना कुछ हो जाए। अनुभव से बिना गुजरे कोई उपाय नहीं है, चाहे अनुभव कितनी ही पीड़ा दे, कितना ही जलाए। हमारी आकांक्षा ऐसी है, जैसे सोना सोचता हो कि बिना आग से गुजरे और मैं शुद्ध हो जाऊं। आग से गुजरना ही पड़ेगा। पहली बात। अनुभव से गुजरना ही पड़ेगा।
और दूसरे के अनुभव आपके काम न आएंगे, यह ध्यान में रखें। बुद्ध कहते हैं, संसार दुख है। आप पढ़ लें, सुन लें। मैं कहता हूं, संसार दुख है। आप सुन लें, समझ लें। इससे कुछ होगा नहीं। इससे खतरा है कि आप पाखंडी हो जाएंगे।
यह अनुभव आपका ही होना चाहिए कि संसार दुख है। इसीलिए इस तरह के सवाल उठते हैं कि वैराग्य कैसे गहरा हो? वैराग्य को गहरा करने का सवाल नहीं है। जीवन के अनुभव को पूरा का पूरा भोगने का है। लेकिन हम सब का मन यह होता है कि... ।
बुद्ध तो दुख भोगकर वैराग्य को उपलब्ध हुए, फिर उन्होंने आनंद पाया।
हम बुद्ध से भी ज्यादा कुशलता दिखाना चाहते हैं। दुख भोगने से भी बचना चाहते हैं; और जैसा वैराग्य बुद्ध को हुआ, वैसा वैराग्य चाहते हैं; और वैसा आनंद चाहते हैं, जैसा वैराग्य के बाद उन्हें हुआ!
नहीं, यह नहीं होगा। वैराग्य का अपना गणित है। और कोई शार्टकट न कभी रहा है और न कभी होने वाला है। और अगर आप इतने लंबे दिनों से भटक रहे हैं, तो शार्टकट की तलाश की वजह से। नहीं तो कभी का आपको भी... ।
कितने जन्मों तक आप भी गुजरे हैं! पर आपकी आशा यह है कि बिना दुख से गुजरे, बिना अनुभव से गुजरे और वैराग्य हो जाए। और फिर वैराग्य से मोक्ष मिले और परम आनंद की उपलब्धि हो। आप पहली सीढ़ी चूक रहे हैं। बुद्ध जैसे दुख से गुजरना पड़े, तो ही बुद्ध जैसा वैराग्य उत्पन्न होगा।
और ऐसा नहीं है कि दुख की आपको कोई कमी है। दुख काफी है। लेकिन आप उससे गुजरते नहीं, बचते हैं। आपने पलायन, एस्केप को अपना रास्ता बनाया हुआ है। कैसे बच जाएं, इसकी फिक्र में रहते हैं।
जो दुख से बचेगा, उसे वैराग्य कभी उत्पन्न नहीं होगा। क्योंकि दुख की गहनता ही वैराग्य का जन्म है।
आपका प्रियजन मर जाता है, आप बचने की तलाश में लग जाते हैं। आप मृत्यु
का दुख नहीं भोगते। आप पूछने चले जाते हैं पंडित से, पुरोहित से कि आत्मा अमर है? पत्नी मर गई है, या पति मर गया, या बेटा मर गया; मौत सामने खड़ी है। आप साधु-संन्यासियों से पूछ रहे हैं कि आत्मा अमर है?
आप झुठलाना चाहते हैं मौत को, कि कोई कह दे कि आत्मा अमर है, भरोसा दिला दे, तो रोने की जरूरत न रहे, दुख की जरूरत न रहे। क्यों? क्योंकि अगर आत्मा अमर है, तो कुछ बात नहीं। शरीर ही छूटा, वस्त्र बदले; लेकिन बेटा कहीं न कहीं जिंदा है; कभी न कभी मिलना होगा।
ईसाई, मुसलमान, सभी सोचते हैं कि मरने के बाद फिर अपने संबंधियों से मिलना हो जाता है। तो थोड़े दिन का फासला है, थोड़े दिन की बात है; झेल लो। और कोई मिटा नहीं, कोई मरा नहीं। आप दुख से बचने का उपाय खोज रहे हैं।
मौत सामने खड़ी है, इसके दुख को भोगो। झुठलाओ मत। तरकीबें मत खोजो। जिस पत्नी से सुख पाया है, उसका दुख भी भोगो। जिस पति से आनंद अनुभव किया था, उस पति के जाने पर अभाव का जो नरक है, उससे गुजरो। न तो शराब पीकर भुलाओ, न सिद्धांतों को पीकर भुलाओ। न भजन-कीर्तन करके अपने को समझाओ; न गीता पढ़कर

अपने मन को यहां-वहां लगाओ। दुख सामने खड़ा है, दुख को सीधा भोगो। दुख को ही तुम्हारा ध्यान बन जाने दो।
तो उस मृत्यु से तुम निखरकर बाहर आओगे। तुम आग से गुजर जाओगे, तुम्हारा सोना निखर जाएगा; वैराग्य का उदय होगा। फिर तुम्हें मुझसे नहीं, किसी से भी नहीं पूछना पड़ेगा कि वैराग्य गहरा कैसे हो? वैराग्य गहरा हो जाएगा।
एक मौत को भी तुम ठीक से देख लो, तो जिंदगी व्यर्थ हो जाती है। एक सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता हुआ भी तुम ठीक से समझ लो, तो जिंदगी में कुछ पाने जैसा नहीं रह जाता।
लेकिन नहीं, जब कोई मरता है, तब तुम अपने को समझाने में लग जाते हो। और
जब कोई मर भी जाता है, तब भी तुम यही सोचते हो कि दुर्घटना है।
मौत जीवन का वास्तविक तथ्य है, दुर्घटना नहीं। यह कोई संयोग नहीं है।
यह होने ही वाला है; यह जीवन की नियति है।
जब कोई मरता है, तो तुम ऐसा सोचते हो कि कुछ भूल-चूक हो गई, कहीं कुछ गड़बड़ हो गई, कुछ कर्म का फल रहा होगा। तुम यह बात भूल रहे हो कि मौत हर जीवन के पीछे लगी ही है, होगी ही; उससे ज्यादा निश्चित और कुछ भी नहीं है। वही एकमात्र निश्चित तथ्य है।
फिर जब दूसरा मरता है, तब तुम्हें कभी ख्याल नहीं आता कि यह मेरे मरने
की भी खबर है। तब तुम दूसरे पर दया करने का विचार करते हो, कि बड़ा बुरा हुआ; बेचारा! तुम्हें यह ख्याल कभी भी नहीं आता कि कोई भी जब मरता है, तब तुम ही मर रहे हो।
लेकिन हर आदमी यह सोचकर चलता है कि हमेशा दूसरा मरता है, मैं तो कभी मरता नहीं। और एक लिहाज से आपका तर्क ठीक भी है। कम से कम अभी तक तो आप मरे नहीं। इसलिए... ।
मैंने सुना है कि एक आदमी एक पक्षियों की दुकान से एक तोता खरीदकर ले गया। दूसरे दिन ही वापस आया और तोता बेचने वाले पर नाराज होने लगा और कहा कि तुमने किस तरह का तोता दिया! वह घर जाकर मर गया। तो उस दुकानदार ने कहा, लेकिन यह मैं मान ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसी हरकत उसने इसके पहले कभी नहीं की। तोता यहां भी था, महीनों तक रहा, ऐसी हरकत उसने पहले कभी की नहीं। इसलिए मैं भरोसा कर ही नहीं सकता।
आपका भी तर्क यही है। अभी तक आप मरे नहीं, तो भरोसा कैसे कर सकते हैं
कि मर जाएंगे! और जो अब तक नहीं हुआ, वह आगे भी क्यों होगा!
जब दूसरा मरता है, तब भी आप सोचते हैं, दूसरा मरता है। तब आपको ख्याल नहीं आता है कि मैं भी मरूंगा या मैं भी मर रहा हूं या यह खबर मेरी मौत की खबर है।
अगर आप दुख को ठीक से जीएं, तो हर मौत आपको अपनी मौत मालूम पड़ेगी। तब वैराग्य गहरा हो जाएगा।
जब कोई दूसरा असफल होता है या जब आप खुद भी असफल होते हैं जीवन में, तो
आप सोचते हैं, संयोग ठीक न थे, भाग्य साथ न था, दूसरे लोगों ने बेईमानी की, चालबाजी की, चार सौ बीस थे, इसलिए वे सफल हुए; मैं असफल हुआ। लेकिन आप यह कभी नहीं देख पाते हैं कि पूरा जीवन असफलता है। इसमें सफल होना होता ही नहीं। लेकिन कोई तरकीब आप निकाल लेते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक गांव से गुजर रहा है। कोई मर गया है; घर के आस-पास भीड़ है; लाश सामने रखी है। नसरुद्दीन भूखा है। छोटा गांव है। सारा गांव वहीं इकट्ठा है। कोई भोजन देने के लिए भी अभी उत्सुक नहीं होगा। अभी कोई मेहमान बनाने की भी तैयारी में नहीं है। और गांव इतने दुख में है कि वह यह बात भी करे कि मुझे भूख लगी है, कि मुझे भोजन चाहिए, तो भद्दा मालूम पड़ेगा। वह भी भीड़ में जाकर खड़ा हो गया और उसने पूछा कि क्या बात है? क्यों रो रहे हो? तो उन्होंने कहा कि क्यों रो रहे हैं, यह भी पूछने की कोई बात है? घर का आदमी मर गया है। गांवभर का प्यारा था।
नसरुद्दीन ने कहा कि मैं उसे जिला सकता हूं। लेकिन अभी मैं भूखा हूं।
पहले मेरा पेट भर जाए, मैं स्नान कर लूं, पूजा-पाठ कर लूं; इसे मैं जिला सकता हूं। रोने की कोई भी जरूरत नहीं है।

भूख में ऐसा कह तो गया। फिर जब पेट भर गया, हाथ-मुंह धोकर पूजा-पाठ जब उसने की, तब पूजा-पाठ कर नहीं सका, क्योंकि अब उसको झंझट मालूम हुई कि अब क्या करना? कहीं मरा हुआ कभी कोई जिंदा हुआ है!
फिर भी वह आया, लाश के पास बैठा; और उसने कहा कि यह आदमी कौन था? इसका धंधा क्या था? उन्होंने कहा कि यह आदमी! जाहिर आदमी है, यह बड़ा नेता था; राजनीति इसका धंधा था। नसरुद्दीन क्रोध से खड़ा हो गया और उसने कहा कि नालायको, मेरा समय खराब किया! राजनीतिज्ञ मरकर कभी जिंदा नहीं होते। तुम्हें पहले ही बताना था; नाहक मेरा समय खराब करवा दिया। अब तक मैं दूसरे गांव पहुंच गया होता।
आप भी जिंदगी में बहाने खोज रहे हैं। कभी यह, कभी वह। लेकिन हमेशा समझा लेते हैं अपने को कि असफलता का कोई कारण है।
बुद्ध का वैराग्य गहरा हुआ, क्योंकि बुद्ध ने अपने को समझाया नहीं, बल्कि सीधा देखा और पाया कि जीवन पूरी की पूरी असफलता है; इसमें कारण की कोई जरूरत नहीं है। यहां कुछ भी करो, सफलता तो हो नहीं सकती। क्योंकि यहां कुछ भी करो, सुख तो मिल नहीं सकता। यहां कुछ भी करो, कहीं पहुंचना नहीं हो सकता। स्वप्नवत है।
जो सीधा देखना शुरू करेगा, उसका वैराग्य गहरा हो जाता है। और वैराग्य
के बिना गहरा हुए, कोई शास्त्र सहयोगी नहीं है, कोई गुरु अर्थ का नहीं है। वैराग्य गहरा हो, तो गुरु से संबंध हो सकता है। वैराग्य गहरा हो, तो शास्त्र का अर्थ प्रकट हो सकता है। और वैराग्य गहरा हो, तो गुरु भी न हो, शास्त्र भी न हो, तो पूरा जीवन ही गुरु और शास्त्र बन जाता है।
लेकिन वैराग्य को गहरा करने की तरकीबें नहीं हैं। वैराग्य को गहरा करने का एक ही मार्ग है, आपका अनुभव पूरी सचाई में जीया जाए। जो भी अनुभव हो--सुख का हो, दुख का हो; संताप हो, चिंता हो, असफलता हो--जो भी अनुभव हो, उसे पूरी तरह जीया जाए, होशपूर्वक जीया जाए। वह अनुभव ही आपको बताएगा कि जीवन व्यर्थ है, छोड़ देने योग्य है। पकड़ने योग्य यहां कुछ भी नहीं है।

अब हम सूत्र को लें।
उस स्वयं प्रकाशमय परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चंद्रमा
और न अग्नि ही। तथा जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।
पहली बात, इस जगत में जो भी हम देखते हैं, वह दूसरे से प्रकाशित है। आप मुझे देख रहे हैं; बिजली बुझ जाए, फिर आप मुझे नहीं देख सकेंगे। मैं आपको देख रहा हूं; बिजली बुझ जाए, फिर मैं आपको नहीं देख सकूंगा। आप हैं, लेकिन कोई और चीज चाहिए, जिसके द्वारा आप प्रकाशित हैं।
दिन में दिखाई पड़ता है, रात में दिखाई नहीं पड़ता। आंख तो होती है, चीजें भी होती हैं, लेकिन सूरज नहीं होता। सभी चीजें पर-प्रकाश चाहती हैं। कोई और चाहिए, जो प्रकाशित कर सके।
कृष्ण कह रहे हैं, लेकिन मेरा परम धाम वहां है, जहां न तो सूर्य के प्रकाश की कोई जरूरत है; न चंद्र के प्रकाश की कोई जरूरत है; न अग्नि की कोई जरूरत है; जहां दूसरे प्रकाश की कोई जरूरत नहीं है। मेरा परम धाम स्व-प्रकाशित है, सेल्फ इल्युमिन्ड है।
यह बात बड़ी समझ लेने जैसी है। क्योंकि यह बहुत गहरा और मौलिक आधार है समस्त साधना का। और इसकी खोज ही साधक का लक्ष्य है। ऐसी कौन-सी घटना है जो स्व-प्रकाशित है? ऐसा क्या अनुभव है जो स्व-प्रकाशित है?
आप आंख बंद कर लें, तो मैं नहीं दिखाई पडूंगा। आंख बंद करके लेकिन आप
तो अपने को दिखाई पड़ते ही रहेंगे। शरीर दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन स्वयं का होना तो प्रतीत होता ही रहेगा। दीया बुझ जाए, मैं आपको दिखाई नहीं पडूंगा। लेकिन आप अपने को तो अनुभव करते ही रहेंगे कि मैं हूं। आपके होने के लिए तो किसी और प्रकाश की जरूरत नहीं है।
तो आपके होने में कोई एक तत्व चेतना का है, जो स्वयं प्रकाशित है; जिसका होना अपने आप में काफी है। यह जो चेतना की हल्की-सी झलक आपके भीतर

है, यही झलक जब पूरी प्रकट हो जाती है, तो कृष्ण कहते हैं, वह परम धाम मेरा है; वही मैं हूं।
उस स्वयं प्रकाशमय परम पद को न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता है--न करने
की कोई जरूरत है--न चंद्रमा और न अग्नि, तथा जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।
यहां कृष्ण कह रहे हैं कि जितना ही व्यक्ति चेतन होता चला जाता है, उतना ही वह परम धाम की तरफ गति करता है। और जिस दिन परम चैतन्य प्रकट होता है, उस परम चैतन्य को प्रकाशित करने के लिए किसी की भी कोई जरूरत नहीं है; वह स्व-प्रकाशित है।
और एक ही बात इस जगत में स्व-प्रकाशित है, वह स्वयं का होना है। उसके लिए किसी प्रमाण की कोई जरूरत नहीं है। उसको असिद्ध करने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर आप यह भी कहें कि मैं नहीं हूं, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके कहने से सिर्फ आपका होना ही सिद्ध होता है।
और अंधा आदमी भी अपने को अनुभव करता है। अंधेरे में भी आप अपने को अनुभव करते हैं। आपकी आंखें चली जाएं, आपके कान खो जाएं, आपके हाथ काट दिए जाएं, आपकी जीभ काट दी जाए, आपकी नाक नष्ट कर दी जाए, तो भी आप अपना अनुभव कर सकते हैं; तो भी आप होंगे और आपकी प्रतीति में रत्तीभर का भी फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि आंखों से दूसरे देखे जाते हैं, स्वयं नहीं। कानों से दूसरे सुने जाते हैं, स्वयं नहीं। सारी इंद्रियां भी खो जाएं, तो भीतर के होने में जरा भी अंतर नहीं पड़ता।
वह जो भीतर का होना है, वहां कोई प्रकाश नहीं है, फिर भी आप जानते हैं
कि आप हैं। और आप कभी भीतर नहीं गए हैं अभी। अगर आप भीतर जाएं, तो आपको वहां भी प्रकाश का अनुभव होना शुरू हो जाएगा।
ध्यान में जो लोग भी गति किए हैं, उन सभी का अनुभव प्रकाश का अनुभव है।
वे किस प्रकाश को जानते हैं?
कबीर कहते हैं कि जैसे आकाश में बिजलियां चमक रही हैं, ऐसा मेरे भीतर कुछ हो रहा है। दादू कहते हैं कि जैसे हजार सूरज एक साथ उग गए हों, ऐसा मेरे भीतर कुछ उग आया है। फिर चाहे मुसलमान फकीर हों, ईसाई फकीर हों, सभी फकीरों का अनुभव है कि जब भीतर ध्यान की गहराई उतरती है, तो परम प्रकाश के अनुभव होते हैं।
वह प्रकाश न तो सूरज का है, न अग्नि का है, न चांद का है। वह प्रकाश कहां से आता है? वह प्रकाश कहीं से भी नहीं आता; आप स्वयं ही वह प्रकाश हैं। आपका होना ही वह प्रकाश है।
इस प्रकाश को कह रहे हैं कृष्ण कि वह मेरा परम धाम है। और जो उस स्थिति
को उपलब्ध हो जाता है, वह इस संसार में वापस नहीं लौटता। वही मूल-स्रोत है, वही उदगम है।
और हे अर्जुन, इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इंद्रियों को आकर्षण करता है।
उस स्व-प्रकाशित ज्योति-पुंज का एक हिस्सा ही प्रत्येक देह के भीतर छिपा है।
इसे हम ऐसा समझें। आप आंख बंद कर लें, तो आप अपने विचारों को देख सकते हैं। आंख बंद है; विचार देखे जा सकते हैं। कौन देखता है? भीतर क्रोध उठे, कामवासना उठे, आप उसे भी देख सकते हैं। कौन देखता है? वह जो देखने वाला है, उसको आप नहीं देख सकते।
जिस-जिसको आप देख सकते हैं, वह-वह आप नहीं हैं; यह गणित है। और जो सबको देखता है, लेकिन स्वयं नहीं देखा जा सकता, वह आप हैं। वही आपका मूल उत्स है। उससे पीछे जाने का कोई उपाय नहीं। नहीं तो उसको भी आप देख लेते। उससे पीछे खड़े हो जाते, उसको भी देख लेते। लेकिन उसे आप नहीं देख सकते।
सब देख सकते हैं। शरीर देखा जा सकता है; मन के विचार देखे जा सकते हैं; हृदय की भावनाएं देखी जा सकती हैं; कुंडलिनी के अनुभव देखे जा सकते हैं; सब देखा जा सकता है। जो भी देखा जा सकता है, वह आपका स्वभाव नहीं है। देखने वाला जो है, वही आपका स्वभाव है। वह जो द्रष्टा है, वह इररिड्यूसिबल है।

उसे आप दृश्य नहीं बना सकते। उसको आप विषय नहीं बना सकते। वह हमेशा विषयी है। वह हमेशा सब्जेक्ट है; वह आब्जेक्ट नहीं हो सकता।
जैसे ही सारे विषय खो जाते हैं, और सिर्फ जानने वाला ही रह जाता है, और जानने को कुछ नहीं बचता, परम प्रकाश का उदय होता है। यह परम प्रकाश बाहर से नहीं आता, न सूरज से, न चांद से; यह आपके भीतर ही छिपा है।
सूरज भी चुक जाएगा। उसकी गरमी भी कम होती है। यह बिजली भी चुक जाएगी। दीया जलता है; तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा। सिर्फ एक ज्योति है, जो कभी नहीं बुझती, क्योंकि वह बिना ईंधन के जलती है, वह चेतना की ज्योति है। कोई तेल उसे नहीं जलाता। कोई ईंधन, कोई पेट्रोल, कोई बिजली, कोई हीलियम गैस उसे नहीं जलाती। इसलिए उसके समाप्त होने का कोई उपाय नहीं है। वह शाश्वत है। वैज्ञानिक बड़ी खोज करते हैं कि कोई ऐसा प्रकाश उपलब्ध हो जाए, जो बिना ईंधन के चले। क्योंकि सब ईंधन चुकते जाते हैं, सब ईंधनों की सीमा है। कोयला खत्म होता जाता है, पेट्रोल खत्म होता जाता है। आज नहीं कल सब ईंधन चुक जाएंगे। और आदमी बिना ईंधन के जी नहीं सकता। तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई है। वैज्ञानिक सोचते हैं, ईंधनरहित कोई प्रकाश... ।
और कृष्ण उसी प्रकाश की बात कर रहे हैं। वह प्रकाश प्रत्येक के भीतर है। लेकिन उसे यंत्र से पैदा करने का कोई भी उपाय नहीं है। चैतन्य उसी प्रकाश का नाम है।
इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है--उस परम प्रकाश का ही अंश है--और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इंद्रियों को आकर्षण करता है।
और यह जो चेतना का अंश आपके भीतर है, यही आपकी पांचों इंद्रियों को अपने में आकर्षित किए हुए है, सम्हाले हुए है। यह थोड़ा समझने जैसा है। क्योंकि बड़ी भ्रांति है इस संबंध में।
आमतौर से आदमी सोचते हैं कि इंद्रियों ने आपको बांधा हुआ है। कृष्ण
कह रहे हैं कि आप ही इंद्रियों को पकड़े हुए हैं। इंद्रियां आपको क्या बांधेंगी! इंद्रियां जड़ हैं, वे आपको बांधें, इसका कोई उपाय नहीं है। आप बंधे हुए हैं। और यह आपका ही संकल्प है; यह आपका ही निर्णय है। इस निर्णय की बड़ी प्रक्रिया है।
आप रूप देखना चाहते हैं। रूप देखने की जो वासना है, वह आपकी आंखों को आपसे बांधे रखती है। उस वासना के रज्जु से आंख बंधी रहती है। अगर आपकी देखने की इच्छा खो जाए, आप इसी क्षण अंधे हो जाएंगे।
मेरे पास एक युवती को लाया गया। वह अचानक अंधी हो गई। और चिकित्सकों
ने जांच की और पाया कि उसकी आंख में कोई शारीरिक भूल-चूक नहीं है। आंख बिल्कुल ठीक है। इसलिए इलाज का कोई उपाय नहीं है। और चिकित्सकों ने कहा कि यह तो मानसिक अंधापन है; कुछ किया नहीं जा सकता।
किसी ने सुझाव दिया; उसके मां-बाप उस युवती को मेरे पास ले आए। मैंने उससे पूछा कि कैसे हुआ? क्या हुआ? क्योंकि अगर मानसिक घटना है, तो उसका इतिहास होगा। क्योंकि मन तो अतीत से काम करता है, मन तो अतीत है। तो मैंने मां-बाप को कहा कि आप जाएं; मैं उस युवती से अलग से ही बात कर लूं।
उससे पूछताछ की, खोजा-बीना, तो पता चला कि पड़ोस के युवक से उसका प्रेम है। और उसके बिना वह नहीं रह सकती। लेकिन वह ब्राह्मण की लड़की है। पड़ोस में जो व्यक्ति है, वह ब्राह्मण तो है ही नहीं, हिंदू भी नहीं है। यह प्रेम चलाया नहीं जा सकता। यह विवाह हो नहीं सकता। तो सब तरफ से मां-बाप ने रोक लगा दी; और दोनों के मकान के बीच छत पर एक बड़ी दीवार खड़ी कर दी, जिससे कि आर-पार देखा न जा सके। जिस दिन दीवार बनी है, उसी दिन से उसकी आंखें चली गई हैं।
मैंने उसको पूछा कि तेरे भीतर क्या भाव है? उसने कहा कि जिसे मैं देखने के लिए जीती हूं, अगर उसे न देख सकूं, तो इन आंखों का कोई अर्थ नहीं है।
चिकित्सक इसका इलाज न कर सकेंगे। क्योंकि इसकी देखने की इच्छा वापस लौट गई है। आंखें निर्जीव पड़ी रह गई हैं। आंखों से देखने की इच्छा का जो प्रवाह है, वही आंखों में जीवन देता है।

मैंने उनके मां-बाप को कहा कि उपाय एक ही है, वह दीवार बीच से गिरा दो।
और जो-जो बंधन खड़े किए हैं; वह हटा लो। या फिर यह लड़की अंधी रहेगी, इसे स्वीकार कर लो।
उनको बात समझ में आ गई, जो कि बड़ा चमत्कार है। क्योंकि मां-बाप की समझ में कुछ आ जाए! वे राजी हो गए। दीवार नहीं गिरानी पड़ी; उनके राजी होते से ही, मेरे सामने ही बैठे-बैठे उस लड़की की आंखें वापस आ गईं। फिर से देखने की इच्छा प्रवाहित हो गई।
आप आंखों को पकड़े हैं, क्योंकि देखना चाहते हैं। कान को पकड़े हैं, क्योंकि सुनना चाहते हैं। हाथ को पकड़े हैं, क्योंकि छूना चाहते हैं। आपकी चाह आपकी इंद्रियों के और आपके बीच सेतु है।
इसलिए बुद्ध ने कहा है कि आंखें मत फोड़ो; कान बंद करने से कुछ भी न होगा। चाह को गिरा दो, चाह को हटा दो, तो इंद्रियों से संबंध धीरे-धीरे अपने आप छूट जाता है।
ध्यान रहे, आप आमतौर से यही सुनते रहे हैं कि इंद्रियों ने आपको बांधा है, इंद्रियां दुश्मन हैं। और कृष्ण बिल्कुल उलटी बात कह रहे हैं। कृष्ण कह रहे हैं कि आपने इंद्रियों को चाहा है; उनका उपयोग किया है। आपने ही उनको खींचा और आकर्षित किया है, इसलिए वे हैं। और जिस दिन आप निर्णय करेंगे, जिस दिन आपका रुख बदल जाएगा, आपकी धारा भीतर बहने लगेगी, उसी दिन इंद्रियां तिरोहित हो जाएंगी।
इंद्रियों को दोष मत दें। दोष किसी का भी नहीं है। आपका संकल्प है। आपकी चेतना ने इस शरीर में रहना चाहा है, इसलिए शरीर में है। जिस दिन नहीं रहना चाहेगी, उसी दिन शरीर छूट जाएगा।
अगर यह बात ख्याल में आ जाए, तो इंद्रियों से जो दुश्मनी चलती है, वह बंद हो जाए। वह मूढ़तापूर्ण है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। और वह गलत है। उसके परिणाम भयानक हैं। क्योंकि आप इंद्रियों से लड़ने में शक्ति गंवा देते हैं। और लड़ाई वहां अर्थहीन है। लड़ाई कहीं और होनी चाहिए। लड़ाई होनी चाहिए कि मेरा इंद्रियों को पकड़ने का रुख कम हो जाए।
मन सहित पांचों इंद्रियों को वही आकर्षण करता है। जैसे कि वायु गंध
के स्थान से गंध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिकों का स्वामी जीवात्मा भी जिस पहले शरीर को त्यागता है, उससे इन मन सहित इंद्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है। जब आप मरते हैं, तब भी आप सूक्ष्म इंद्रियों को अपने साथ ले जाते हैं। जैसे हवा फूलों की गंध को अपने साथ ले जाती है। फूल को तो नहीं ले जा सकती; फूल तो पीछे रह जाता है, लेकिन हवा का झोंका फूल की गंध को अपने साथ ले जाता है। आपकी चेतना शरीर को तो नहीं ले जा सकती, लेकिन शरीर को पकड़ने की जो वासना है, उसको गंध की तरह अपने साथ ले जाती है।
उसी वासना के आधार पर, उसको हिंदुओं ने सूक्ष्म इंद्रियां कहा है। आंख स्थूल इंद्रिय है; देखने की वासना सूक्ष्म इंद्रिय है। जीभ स्थूल इंद्रिय है; स्वाद की आकांक्षा सूक्ष्म इंद्रिय है। फूल तो पड़े रह जाते हैं।
आप जानकर चकित होंगे कि हिंदू मरे हुए आदमी के शरीर की हड्डियां जब मरघट से उठाकर लाते हैं, तो उनको फूल कहते हैं। बिल्कुल प्यारा शब्द है। फूल पड़े रह जाते हैं, लेकिन गंध आपके साथ चली जाती है। और वह जो गंध आपके साथ चली जाती है, वह नए जन्मों की तलाश करती है। वह नए शरीर खोजती है, नए गर्भ खोजती है। और जैसी आपकी वासना होती है, वैसा गर्भ आपको उपलब्ध हो जाता है।
जो आप होना चाहते हैं, जो आप होना चाहने की कामना इकट्ठी करते रहे हैं, वही संगृहीभूत हो जाती है, वही क्रिस्टलाइज हो जाती है। नई देह का निर्माण... आप नई देह को पकड़ लेते हैं।
यह तब तक चलता रहेगा, जब तक हवा गंध को ले जाती रहेगी। यह उस दिन बंद हो जाएगा, जिस दिन हवा फूल को ही नहीं छोड़ेगी, गंध को भी छोड़ देगी। हवा खाली उड़ जाएगी।
बुद्ध ऐसे ही उड़ते हैं। महावीर ऐसे ही उड़ते हैं। फूल भी छोड़ जाते हैं, गंध भी छोड़ जाते हैं। फिर कोई देह उपलब्ध नहीं होती, फिर कोई गर्भ उपलब्ध

नहीं होता। फिर किसी शरीर में प्रवेश का उपाय नहीं रह जाता। प्रवेश का उपाय आपको साथ लेकर चलना पड़ता है।
और उस शरीर में स्थित हुआ यह जीवात्मा श्रोत्र, च्रु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात इन सबके सहारे से ही विषयों का सेवन करता है।
फिर यात्रा शुरू हो जाती है। फिर वही भोग शुरू हो जाता है। फूल बदल जाते हैं, गंध की यात्रा चलती रहती है। इंद्रियां बदल जाती हैं, वासना की यात्रा चलती रहती है।
इंद्रियों को छोड़ना नहीं है, वासनाओं को छोड़ देना है। इंद्रियां अपने
से छूट जाती हैं। लेकिन हमें इंद्रियां छोड़ना आसान मालूम पड़ता है। कोई भोजन छोड़ देता है; कोई भोजन में नमक छोड़ देता है; कोई भोजन में घी छोड़ देता है; कोई भोजन में शक्कर छोड़ देता है; कोई आंखें नीची करके चलने लगता है; कोई स्त्री के स्पर्श से भयभीत हो जाता है; कोई कीमती वस्त्र का स्पर्श नहीं करता। यह सब इंद्रियों का छोड़ना है।
यह वैसे ही है, जैसे कोई जीवन से ऊबा हुआ आदमी आत्महत्या कर ले। और आत्महत्या से जीवन समाप्त नहीं होता; सिर्फ देह बदलती है। मरे नहीं कि नया शरीर ग्रहण हो जाएगा। और आत्महत्या करने वाले को और भी विकृत देह के उपलब्ध होने की संभावना है। क्योंकि जिसने अपने को नष्ट करना चाहा, उसका चित्त विकृत अवस्था में है। और इस विकृति की छाप उसके ऊपर रहेगी, आत्महत्या की।
आपने अपने को आग लगाकर जला लिया। तो एक क्षण में तो नहीं जल जाएंगे। जलने के पहले सोचेंगे, विचारेंगे, सब विकृति भीतर इकट्ठी होगी। फिर आग लगाएंगे। फिर तड़पेंगे। फिर उस तड़पती हुई आग में बचना भी चाहेंगे, और बच भी न सकेंगे। पुकारेंगे, चीखेंगे, सोचेंगे कि भूल हो गई; बड़ा विषाद उत्पन्न होगा, बड़ा संताप, बड़ी पीड़ा होगी। और उस पीड़ा में मरेंगे।
इस पीड़ा की छाप, ये कुंठित वासनाएं, ये जलती हुई आग की लपटें, सब की गंध आपके साथ चली जाएगी। गंध तो जाएगी ही, दुर्गंध भी जाएगी, उत्तप्तता भी जाएगी। और नया गर्भ आप लेंगे, वह गर्भ भी विकृत, उत्तप्त होगा। उसमें भी आप अपंग पैदा होंगे, अंधे पैदा होंगे, टूटे-फूटे पैदा होंगे, खंडहर की तरह पैदा होंगे। क्योंकि खंडहर करने की जो चेष्टा आपने की, उसका संस्कार अपने साथ ले आए।
लेकिन यह तो हमारी समझ में आ जाता है कि इस तरह कोई अपने को आत्मघात करे तो पाप है, बुरा है और इसके दुष्परिणाम होंगे। लेकिन छोटी-छोटी आत्महत्याएं लोग करते हैं, वे हमारी समझ में नहीं आती हैं।
एक आदमी आंखें बंद करके बैठ जाता है। वह एक बटे पांच आत्महत्या हुई, क्योंकि पांच इंद्रियां हैं। एक आदमी ने पांचों को जला लिया, और एक आंख बंद करके बैठ गया।
सूरदास की हमने कथा सुनी है। अगर सूरदास ढंग के आदमी रहे हों, तो कथा झूठी होनी चाहिए। अगर कथा सच्ची हो, तो सूरदास ढंग के आदमी नहीं हो सकते। कथा है कि एक सुंदर युवती को देखकर उन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं।
यह तर्क तो समझ में आता है। इस तरह के बहुत सूरदास हैं। लेकिन सुंदर स्त्री की जो वासना उठती है, वह सुंदर स्त्री से नहीं उठ रही है, वह मेरे भीतर से उठ रही है। वह मेरी आंखों से भी नहीं उठ रही। आंखों से मेरे भीतर से आ रही है; आंखों से गुजर रही है।
उस सुंदर स्त्री को शायद पता भी न हो कि कोई उसके पीछे सूरदास हो गया।
और इन आंखों का कोई कसूर भी न था। आंखें तो वहीं गईं, जहां मैं ले जाना चाहता था। आंखों ने वही देखा, जो मैं देखना चाहता था। आंखों ने वही चाहा, जो मेरी चाह थी। आंखें मेरा अनुसरण कर रही थी। और मैंने आंखें फोड़ दीं। यह आत्महत्या हुई, एक बटा पांच। इस तरह की आत्महत्या करने वाले को हम साधु कहते हैं। मगर यह भी विकृति है। और इस तरह की आत्महत्या करने वाला भी दुर्गति को उपलब्ध होता है।
सवाल इंद्रियों को नष्ट करने का है ही नहीं; सवाल इंद्रियों से मुक्त होने का है। और इंद्रियों ने आपको नहीं बांधा है, आपने उनको बांधा है।
इसलिए इंद्रियों का कहीं भी कोई कसूर नहीं है। आपका भी कोई कसूर नहीं है।

अगर आप चाहते हैं यही, तो कोई कसूर नहीं है। पर इसे होशपूर्वक होने दें।
फिर इसमें प्रसन्न हों। फिर वैराग्य की कामना न करें।
राग की कामना कर रहे हैं और वैराग्य के सवाल उठाते हैं, तब आप दुविधा में पड़ जाते हैं।
रोज मेरे पास लोग आते हैं, जिनका कष्ट एक ही है, राग और वैराग्य की दुविधा। राग तो उनके जीवन का रस है और किन्हीं सिरफिरों की बातें सुनकर वैराग्य उनको पकड़ गया है। तो वैराग्य भी उनके सिर में घूम रहा है। और राग उनकी अवस्था है। अब इन दो झंडों के नीचे उनकी यात्रा चल रही है। इससे वे बड़े कष्ट में हैं और खंडित हो गए हैं, टूट गए हैं, स्प्लिट। दो आदमी हैं उनके भीतर। एक राग की तरफ खींचता है, एक वैराग्य की तरफ खींचता है।
इस संताप से कोई आत्म-उपलब्धि होने वाली नहीं है। वैराग्य और राग साथ-साथ नहीं जी सकते हैं। जब तक राग है, तब तक वैराग्य को पकड़ भी नहीं सकते आप; सिर्फ सोच सकते हैं शब्दों में। शब्दों में सोचने का कोई अर्थ नहीं है; वह निष्प्राण है।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में कुछ खटापटी हो गई, बोलचाल बंद हो गया, जैसा पति-पत्नी में अक्सर हो जाता है। ऐसे तो बोलचाल चलता है, तब भी बंद ही रहता है। लेकिन कभी-कभी बिल्कुल ही बंद हो जाता है।
मुल्ला की पत्नी को सुबह कहीं जाना था जल्दी, सर्दी के दिन थे। तो वह कैसे पति को कहे? और जब भी बोलचाल बंद होता है, तो पति को ही शुरू करना पड़ता है। पत्नी कभी शुरू नहीं करती। वह स्त्री का स्वभाव नहीं है, पहल करने का, इनीशिएटिव लेने का।
तो पत्नी बड़ी मुश्किल में पड़ी। सर्दी के दिन हैं, सुबह जल्दी उठना है।
तो उसने एक कागज पर लिखकर नसरुद्दीन को दिया कि मुल्ला, सुबह पांच बजे मुझे उठा देना। नसरुद्दीन ने चिट्ठी खीसे में रख ली।
सुबह जब पत्नी की नींद खुली, तो वह चकित हुई; सूरज उग चुका था और कोई आठ
बज रहे थे। कुछ कह तो सकती नहीं नसरुद्दीन से, क्योंकि बोलचाल बंद है। आस-पास देखा; एक चिट रखी थी उसके बिस्तर पर, कि देवी जी, पांच बज गए हैं, उठिए। बस, आपका वैराग्य ऐसा कागजी हो सकता है। उससे आप उठेंगे नहीं; सोए ही रहेंगे राग में और वैराग्य की चिट्ठियां आपके आस-पास तैरती रहेंगी। शास्त्र से आया हुआ वैराग्य कागजी होगा।
अपने राग को ठीक से समझें। और यह भी समझें कि यह मेरा संकल्प है। यह मैंने ही तय किया है, चाहे अनंत जन्मों पहले तय किया हो। यह मेरा ही निर्णय है कि मैं शरीर की यात्रा पर जाता हूं; इस संसार के सागर में उतरता हूं; इस संसार के वृक्ष में डूबता हूं; यह मेरा निर्णय है। मैं नियंता हूं। जिस दिन मैं यह निर्णय बदलूंगा, उसी दिन धारा बदल जाएगी। कोई मुझे ले जा नहीं रहा है।
यह हिंदू विचार अनूठा है। कोई मुझे ले जा नहीं रहा है, मैं मालिक हूं;
इस गुलामी में भी मैं मालिक हूं। मैं जा रहा हूं, यह मेरा चुनाव है। और अगर इस गुलामी को भी मैंने चुना है, तो जिस क्षण मैं चाहूं, उसी क्षण तोड़ सकता हूं। यह ध्यान आते ही रुख बदल जा सकता है।
इसलिए एक क्षण में समाधि लग सकती है, और एक क्षण में बोध उत्पन्न हो सकता है। बुद्ध होने के लिए अनंत जन्मों की जरूरत नहीं है। एक क्षण में भी घटना घट सकती है।
कृष्ण यही अर्जुन को कह रहे हैं कि मेरा ही अंश तेरे भीतर है, सबके भीतर है। उसी अंश ने इंद्रियों को पकड़ा है। और वही अंश उन इंद्रियों की गंध को ले जाता है नई यात्राओं पर। जिस क्षण तू जान लेगा कि तेरा संकल्प ही तेरी यात्रा है, उस क्षण तू चाहे तो यात्रा रुक सकती है। और अगर तू यात्रा करना चाहे, तो कर सकता है। लेकिन तब यात्रा खेल होगी; तब यात्रा लीला होगी। क्योंकि तू ही कर रहा है; कोई करवा नहीं रहा है। तेरी ही मौज है।
इस संबंध में यह बड़ी क्रांतिकारी बात है। क्योंकि ईसाई सोचते हैं कि ईश्वर ने दंड दिया आदमी को, इसलिए संसार है। अदम ने भूल की, पाप किया, गुनाह किया, तो निष्कासित किया अदम को। मुसलमान भी वैसा ही सोचते हैं। जैन सोचते हैं कि आदमी ने कोई पाप किया, कोई कर्म-बंध किया, उसकी वजह से भटक रहा है।
बुद्ध भी ऐसा ही सोचते हैं।

हिंदुओं का सोचना बहुत अनूठा है। हिंदू चिंतना यह है कि यह तुम्हारा संकल्प है। न तुम्हारा पाप है, न किसी ने तुम्हें दंड दिया है, न कोई दंड देने वाला बैठा है। और पाप तुम करोगे कैसे? कभी तो तुमने शुरुआत की होगी! कभी तो पहले दिन तुमने किया होगा बिना किसी पिछले कर्म के! आज हो सकता है कि मैं जो कर रहा हूं--पिछले कर्मों के कारण; पिछले जन्म में और पिछले कर्मों के कारण। लेकिन प्रथम क्षण में तो बिना किसी कर्म के मैंने कुछ किया होगा। वह मेरा संकल्प रहा होगा। वह मैंने चाहा होगा।
अगर यह मेरी चाह से ही संसार का वृक्ष है, तो मेरी चाह से ही समाप्त हो
जा सकता है। राग संसार में उतरने का संकल्प है, वैराग्य संसार से पार होने का संकल्प है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 15
चौथा प्रवचन

समर्पण की छलांग

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानच्रुषः।। 10।।
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः।। 11।।
परंतु शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों
को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं जानते हैं, केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व से जानते हैं।
क्योंकि योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए इस आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्व से जानते हैं और जिन्होंने अपने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः किसे समर्पण करें? किसे समर्पण करना चाहिए, इसकी कैसे तसल्ली हो? और तब तक क्या जारी रखें?

तसल्ली कभी भी न होगी। क्योंकि जो मन तसल्ली मांगता है, तृप्त होना उसका स्वभाव नहीं। वह भूल-चूक खोज ही लेगा।
आप बुद्ध के पास से भी गुजरे हैं, कृष्ण के पास से भी, महावीर के पास से भी। आप पहली दफा पृथ्वी पर नहीं हैं। तसल्ली कोई आपको दे नहीं पाया। अगर किसी ने भी तसल्ली दी होती, तो आप यहां होते नहीं।
भूलें आपने सब में खोज ली हैं। इसलिए नहीं कि भूलें थीं। इसलिए कि भूल खोजने में आप पारंगत हैं, कुशल हैं। जहां भूल न हो, वहां भी आप देख ले सकते हैं। फिर व्याख्या आपके ऊपर निर्भर है। तथ्य तो केवल उन्हें दिखाई पड़ते हैं, जिनका मन खो गया। आप तो तथ्य की व्याख्या करते हैं। और आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आप देखना चाहते हैं, जो आप देख सकते हैं।
मेरे एक मित्र हाईस्कूल में ड्राइंग के शिक्षक थे। किसी कारण से उनको जेल हो गई। जब वे वापस लौटे और मैं गांव गया, तो मैंने उनसे पूछा कि जेल का जीवन कैसा रहा? उन्होंने कहा, और तो सब ठीक था, लेकिन जेल की मेरी जो कोठरी थी, उसके कोने नब्बे डिग्री के नहीं थे।
ड्राइंग का शिक्षक! उन्हें बड़ी तकलीफ रही होगी। वे जो दीवार के कोने थे, नब्बे डिग्री के नहीं थे!
आप पर निर्भर होता है, आप क्या देखेंगे। आप पर निर्भर है, आप कैसी व्याख्या करेंगे।
महावीर के पास से आप गुजरें, हो सकता है उनका नग्न खड़ा होना आपको कठिनाई में डाल दे। शायद आपको लगे कि नग्न खड़ा आदमी भला कैसे हो सकता है? भले आदमी तो सदा अपने को वस्त्र से ढांके हुए हैं। इस पर भरोसा न आएगा, तसल्ली न आएगी।
जीसस के पास से आप गुजरें, और यह जीसस दावा करता है कि मैं परमात्मा का पुत्र हूं। आपके अहंकार को चोट लगेगी कि आपके अतिरिक्त और कोई कैसे परमात्मा का पुत्र होने का दावा कर सकता है! जरूर यह धोखेबाज है, बेईमान है। और फिर जब जीसस को सूली लगेगी, तब भी आप व्याख्या करेंगे। आप कहेंगे, न मालूम किन कर्मों का फल भोग रहा है यह आदमी! और अगर सच में ईश्वर का पुत्र है, तो अब सूली पर चमत्कार दिखाना चाहिए। कोई चमत्कार नहीं हुआ।
मोहम्मद के पास से आप गुजरेंगे, तो भी अपनी व्याख्या ही आप करेंगे। मोहम्मद ने नौ स्त्रियों से शादी कर ली थी। तसल्ली आपको न होगी। आप अपने को ही बेहतर समझेंगे; कम से, एक से ही निबटारा कर रहे हैं। यह आदमी नौ स्त्रियों से शादी कर लिया है। महाकामी मालूम पड़ता है!

तसल्ली आपको कोई भी न दे सकेगा। कृष्ण तो आपको बिल्कुल तसल्ली न दे सकेंगे। आप में से एक भी तसल्ली उनके द्वारा नहीं पा सकेगा। इतनी सखियां हैं! इतना राग-रंग है! नाच है; युद्ध है; धोखाधड़ी है; बेईमानी है; झूठ बोलना है। सब उनमें है।
अगर आप तसल्ली की तलाश में हैं, तो आपके समर्पण का कोई उपाय नहीं है।
सच तो यह है कि तसल्ली की खोज समर्पण से बचने का ढंग है। जिन्हें समर्पण करना है, वे पत्थर को भी समर्पण कर सकते हैं।
और समझ लेने की बात यह है कि वह आदमी समर्पण के योग्य था या नहीं, यह बात ही व्यर्थ है। आपने समर्पण किया, आपको फल मिल जाएगा। वह आदमी गलत भी रहा हो, वह आदमी ठीक न भी रहा हो, योग्य भी नहीं था कि उसके चरणों में आप झुकें। लेकिन उस आदमी का सवाल भी नहीं है। आप झुके, आप झुक सके, आप बदल जाएंगे। और अगर समर्पण की तलाश स्वयं को बदलने के लिए है, तो तसल्ली की बात ही मत सोचो।
फिर एक और बात समझ लेने की है। अगर कोई व्यक्ति सच में ही आपको पूरी तसल्ली दे दे, तो आपके झुकने का अर्थ क्या रह जाएगा? अगर परमात्मा आपके सामने खड़ा हो और सब भांति आपको तसल्ली हो जाए, तब आपका सिर झुके, तो आपका अहंकार नहीं झुक रहा है। अगर सब तरह तसल्ली ही हो गई, तो सिर को झुकना ही पड़ रहा है, इसमें गुण क्या है? इसका मूल्य क्या है? इससे कोई आत्मक्रांति घटित न होगी।
इसलिए बहुत-से संत तो इस भांति जीते हैं, ताकि आपको तसल्ली न हो सके। उनके पूरे जीवन की व्यवस्था यह है कि आपको तसल्ली न होने देंगे।
गुरजिएफ के पास एक महिला थी, अलेक्जेंड्रा डि साल्जमन। एक बड़ी संगीतज्ञ की पत्नी थी। और गुरजिएफ की आदत थी कि जब भी कोई व्यक्ति उसके पास आए, तो पहले वह उससे कहता था, सारा रुपया-पैसा, जेवर, जायदाद, जो भी हो, मुझे दे दो। कई तो इसीलिए भाग जाते थे कि हम यहां धर्म की तलाश में आए, और यह आदमी सारा धन, जेवर पहले मांगता है!
यह डि साल्जमन और उसकी पत्नी बड़े भक्त थे। और जब गुरजिएफ ने उनसे कहा
कि तुम अपना सब जेवर पहले मेरे पास छोड़ दो, तुम खाली हाथ हो जाओ, क्योंकि तब ही मैं तुम्हें भर सकूंगा। तो साल्जमन, पति तो राजी हो गया। लेकिन जैसा स्त्रियों का मन होता है, साल्जमन की पत्नी का मोह अपने कुछ हीरे- जवाहरातों में था। बड़े परिवार की महिला थी। एक हीरे में तो उसका बहुत ही लगाव था।
तो उसने अपने पति को कहा कि मैं क्या करूं? उसके पति ने कहा, तेरे लिए
दो ही उपाय हैं। या तो तू सब दे दे। वह एक हीरा नहीं बचाने देंगे। और या कुछ भी मत दे। लेकिन तब तू निर्णय कर ले। क्योंकि मैं तो सब छोड़कर उसके चरणों में जा रहा हूं। अगर तू गुरजिएफ को छोड़ती है, तो मुझे भी छोड़ दे।
उसकी पत्नी ने हिम्मत की। अपना हीरा, अपने सब जवाहरात, अपने सब गहने-- लाखों रुपए के थे--वे सब एक पोटली में बांधे और गुरजिएफ के चरणों में जाकर रख दिए। दूसरे दिन गुरजिएफ ने बुलाया और पूरी पोटली उसे वापस कर दी।
कोई पंद्रह दिन बाद एक दूसरी महिला आई और गुरजिएफ ने उससे भी कहा कि
तू सारे अपने जेवर मुझे दे दे। उसने साल्जमन की पत्नी को पूछा कि क्या करना चाहिए? साल्जमन की पत्नी ने कहा, मैं नहीं जानती। मैंने दिए थे, वे मुझे वापस मिल गए। तो उसने सोचा, जब वापस ही मिल जाना है, तो डरना क्या? वह गुरजिएफ को दे आई। उसने कभी वापस न किए।
अब यह जो गुरजिएफ है, इसे कोई प्रयोजन हीरे और जवाहरात से नहीं है; लेकिन उस मन से तो प्रयोजन है, जो पकड़ता है, छोड़ नहीं सकता। जो छोड़ सकता है, उसके वापस लौटाए जा सकते हैं। जो छोड़ नहीं सकता, उसके वापस लौटाने असंभव हैं।
और गुरजिएफ यहां से पैसा लेता और दूसरी जगह बांट देता। एक से मांगता
और दूसरे को दे देता। उसके व्यवहार से लगेगा कि पैसे पर उसकी पकड़ है।
और गुरजिएफ ने अपने शिष्यों को कहा है कि मैं सब भांति अपने में अविश्वास पैदा करवाने की कोशिश करवाता हूं। और उसके बाद भी अगर कोई विश्वास कर ले, तो समर्पण है; तो उसका अहंकार उसी वक्त खो जाता है।

इसलिए जिनको आप साधारणतः संत पुरुष समझते हैं, जो सब भांति आपके मापदंड में साधु हैं, उनके पास आपके जीवन में कोई क्रांति कभी घटित नहीं होने वाली। आप सब भांति कसौटी पर कसकर उनको समर्पण करते हैं। समर्पण आप करते ही नहीं। क्योंकि समर्पण तो वही कर सकता है, जो जानता है, मेरी योग्यता क्या कि मैं कसौटी पर कसूं!
जो आपकी कसौटी पर खरा उतरा और उस पर आपने समर्पण किया, तो आपने समर्पण किया ही नहीं, आपकी कसौटी जिंदा है। यह आदमी आपसे छोटा है। आपने सब भांति इसे परख लिया। और आपका मन राजी हो गया कि बिल्कुल ठीक; तब आपने समर्पण किया। समर्पण की कोई क्रांति घटित नहीं होगी।
समर्पण की क्रांति तो तब ही घटित होती है, जब मन डांवाडोल है; जब मन डरता है, जब मन भरोसा भी नहीं कर पाता है। और जब अहंकार सब तरह के सुझाव देता है कि भाग जाओ, हट जाओ, तब भी आप साहस करते हैं और छलांग लगाते हैं। उसी छलांग में अहंकार की मृत्यु हो जाती है। पक्के भरोसे के साथ, तसल्ली के साथ जब आप समर्पण करते हैं, तो समर्पण झूठा है। समर्पण है ही नहीं। वहां कोई छलांग ही नहीं है।
आपने सब भांति परख कर ली कि रास्ता साफ-सुथरा है; यहां कोई गड्ढे नहीं हैं। और यहां कोई छलांग का खतरा नहीं है; यहां किसी खाई में गिर जाने का डर नहीं है। रास्ता है पक्का पटा हुआ, हाई-वे है। उस पर आप चल रहे हैं।
वे ही संत पुरुष आपके समर्पण में सफल हो पाते हैं, आपको समर्पण करवाने में, जो आपकी कसौटी पर बंधने को राजी नहीं हैं। लेकिन एक बड़े मजे की घटना घटती है, कि जैसे ही वैसा संत पुरुष चल बसता है, उसके जीवन का ढंग उसके भक्तों के लिए आगे आने वाले दिनों में फिर कसौटी बन जाता है।
महावीर नग्न खड़े हैं। यह नग्नता उस वक्त अड़चन की बात थी। और जिन्होंने इस नंगे आदमी को समर्पण किया, वे क्रांतिकारी लोग थे। उन्होंने बड़ी हिम्मत जुटाई होगी। लेकिन उसके बाद, महावीर की मृत्यु के बाद, उन क्रांति पुरुष, जो उनके भक्त बने थे, उनके बच्चे और बेटे, उनकी कोई क्रांति नहीं है। उनको अगर आप बुद्ध के पास ले जाएं, तो वे देखते हैं और सोचते हैं कि यह आदमी कपड़े पहने हुए है, इसलिए संत नहीं हो सकता। इसलिए उनका समर्पण बुद्ध के लिए नहीं होगा।
इसलिए अगर जैन को आप राम के मंदिर में ले जाएं, तो सिर नहीं झुका सकता। क्योंकि यह कैसा भगवान, जो गहनों से सजा हुआ खड़ा है! और यह कैसा भगवान, जिसकी सीता पास में है! यह असंभव है। तसल्ली नहीं होती है।
इसलिए जैन राम को भगवान नहीं मान सकता है। कोई उपाय नहीं उसके मन में मानने का। उसकी अपनी कसौटी है। और कसौटी उसने महावीर से ले ली है। लेकिन महावीर खुद अत्यंत क्रांतिकारी व्यक्ति थे। और जो लोग उनसे राजी हुए थे, उन्होंने समर्पण किया था।
इसलिए हर बुद्ध पुरुष के पास समर्पित लोग इकट्ठे होते हैं, लेकिन उसकी मृत्यु के बाद परंपरा बन जाती है, लीक बन जाती है। फिर लीक से लोग चलते चले जाते हैं। फिर सबके पास अपनी धारणाएं, मापदंड होते हैं।
आपका कोई मापदंड होगा, इसलिए पूछते हैं, तसल्ली कैसे करें? क्या है आपके पास मापदंड? कोई यंत्र नहीं है, जिससे जाना जा सके कि कौन व्यक्ति जाग गया, कौन प्रबुद्ध हुआ, किसका ज्ञान प्रज्वलित हुआ। कौन हो गया कृष्ण, कौन हो गया क्राइस्ट, कोई जांचने का उपाय नहीं है, कोई व्यवहार की कसौटी नहीं है। क्योंकि दुनिया में सैकड़ों बुद्ध पुरुष हुए हैं, सबका व्यवहार अलग-अलग है; सबकी निजता है, सबका व्यक्तित्व है।
हम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध नाराज हों। लेकिन क्राइस्ट नाराज होते हैं। तो जिसने बुद्ध को कसौटी मान लिया, वह क्राइस्ट को नाराज देखकर समझेगा कि यह आदमी योग्य नहीं है; इसको अभी ज्ञान नहीं हुआ।
क्राइस्ट इतने नाराज हो गए कि उन्होंने अपना कोड़ा हाथ में उठा लिया,
और यहूदियों के मंदिर में प्रवेश कर गए। और उन्होंने पुरोहितों को चोट मारी और जो ब्याज लेने वाले दुकानदार वहां बैठे थे, उनके तख्ते उलट दिए, और उनको खदेड़कर बाहर कर दिया।
जो बुद्ध को मानता है आधार, वह कहेगा, यह आदमी क्रांतिकारी हो सकता है; लेकिन अभी शांत नहीं हुआ है।

लेकिन जिसने क्राइस्ट को आधार माना है और उनके प्रेम में जो जीया है
और जिसने उनको समर्पण किया है, वह बुद्ध को देखकर कहेगा, यह शांति निर्जीव है; यह आदमी नपुंसक है। जहां इतनी कठिनाई है समाज में, वहां यह चुपचाप वृक्ष के नीचे बैठा हुआ है! जहां इतनी पीड़ा, इतना दुख, इतनी दरिद्रता है, वहां इसकी शांति में कुछ भी क्रांति पैदा नहीं होती, तो इसकी शांति का कोई भी मूल्य नहीं है।
कैसे कसौटी खोजिएगा? क्या रास्ता है? महावीर लात मार देते हैं धन पर; जनक साम्राज्य में सिंहासन पर बैठे हैं। दोनों बुद्ध पुरुष हैं। प्रत्येक बुद्ध पुरुष अनूठा है, इसलिए कोई कसौटी बनती नहीं। कोई सार निचोड़ा नहीं जा सकता है कि कैसे हम नापें! और नापने वाला कभी नहीं सोचता कि मैं कहां हूं? कैसे मैं नापूंगा?
किनारे पर आप खड़े हैं, और हिंद महासागर की गहराई को नापने की कोशिश कर रहे हैं! उस गहराई में उतरना पड़ेगा। जमीन पर आप बैठे हैं, और एवरेस्ट की ऊंचाई नापने की कोशिश कर रहे हैं! उस ऊंचाई पर चढ़ना पड़ेगा।
बुद्ध हुए बिना बुद्धों को पहचानने का कोई उपाय नहीं। तसल्ली कैसे होगी? तसल्ली कभी किसी को नहीं हुई है। अगर आप तसल्ली के लिए रुके हैं, तो सदा ही रुके रहेंगे।
हिम्मत करें। और जहां थोड़ा-सा भी आकर्षण मालूम होता हो, मत रुकें कि
जब सौ प्रतिशत तसल्ली होगी, तब छलांग लेंगे। वैसा कभी भी नहीं होगा। तो जहां मन आकर्षित होता हो और जिस व्यक्ति के द्वार से आपको किसी अज्ञात की हवा का हलका-सा झोंका भी लगता हो; जिसकी उपस्थिति में आपके भीतर ऊंचाइयों के द्वार खुलते हों; नए स्वप्न जगते हों, जिसकी मौजूदगी आपको बदलती हो; जिसके पास स्वाद आता हो किसी अनजान, अज्ञात का; वहां साहस करें और तसल्ली की फिक्र मत करें। गणित मत बिठाएं।
यह काम जोखम का है। इसलिए मैं अक्सर कहता हूं कि दुकानदार धर्म में असफल रहते हैं, जुआरी जीत जाते हैं। यह काम कोई हिसाब-किताब का नहीं है कि आप पूरा पक्का पता लगा लेंगे कि एक रुपया लगा रहे हैं, तो कितनी बचत होगी? कि नहीं होगी? यह दांव है। इसमें सब खो सकता है, सब मिल सकता है। इसमें छोटे हिसाब से नहीं चलेगा।
और जिंदगी बड़ी बेबूझ है; गणित की तरह नहीं है, पहेली की तरह है। यह पहेली की तरह जो जिंदगी है, इसमें अगर आप बहुत हिसाबी-किताबी हैं, तो धर्म आपके लिए नहीं है, फिर व्यवसाय आपके लिए है।
यह बिल्कुल जोखम का काम है। यहां कोई पक्की गारंटी नहीं है कि आप किसी
को समर्पण करेंगे, तो वह योग्य होगा ही। भूल हो सकती है। पर भूल से कोई खतरा नहीं है। क्योंकि समझने की बात यह है, जिसको आप समर्पण करते हैं, उसकी योग्यता से क्रांति घटित नहीं होती; समर्पण से क्रांति घटित होती है। इसलिए एक वृक्ष के नीचे रखे हुए पत्थर को आप समर्पण कर दें और क्रांति घटित हो जाएगी। असली सवाल आपके झुकने, अपने को मिटाने का है। किसके बहाने मिटाया, यह बात गौण है। और मैं आपसे कहता हूं, ऐसा अक्सर हुआ है कि अज्ञानी गुरुओं के पास भी कई बार शिष्य ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं।
यह बिल्कुल उलटा लगेगा, क्योंकि यह गणित नहीं समझ में आएगा। जब तक गुरु ज्ञानी न हो, तब तक कैसे शिष्य ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है? ज्ञानी गुरुओं के पास भी शिष्य वर्षों रहे हैं और अज्ञानी रहे हैं!
इसलिए मैं कहता हूं; जीवन पहेली जैसा है। क्योंकि ज्ञानी गुरु के पास
भी आप बैठे रहें बिना समर्पित, तो ज्ञानी गुरु कुछ भी नहीं कर सकता। उसकी आंखें आपके काम नहीं आ सकतीं, और न उसका हृदय आपके लिए धड़क सकता है, न उसकी अनुभूति आपकी अनुभूति बन सकती है। और अज्ञानी गुरु भी कभी काम आ सकता है, अगर आप समर्पण कर दें। क्योंकि समर्पण करना ही घटना है, गुरु तो सिर्फ बहाना है।
जैसे आप कमरे में आते हैं; कोट निकालते हैं; खूंटी पर टांग देते हैं। खूंटी तो सिर्फ बहाना है। कोई भी खूंटी काम दे जाएगी। लाल रंग की है, कि हरे रंग की है, कि पीले रंग की है, कि बेरंग की है; कि छोटी है, कि बड़ी है; कि लकड़ी की है, कि लोहे की है, कि सोने की है; इसकी तसल्ली करने की बहुत जरूरत

नहीं। खूंटी है; कोट टांगा जा सकता है। कोट टंग जाएगा। कोट होना चाहिए टांगने को आपके पास।
समर्पण चाहिए, तैयारी चाहिए अपने को खोने और मिटाने की, तो कोई भी गुरु काम दे देगा।
मगर यह जो सवाल है, यह सबके मन में उठता है, कि जब तक तसल्ली न हो... । तो
आप भटकेंगे। तसल्ली कभी भी न होगी। यह मन ऐसा है कि तसल्ली होने ही नहीं देगा। मन की सारी प्रक्रिया अविश्वास पैदा करवाने की है। इसे समझ लें। मन का ढांचा संदेह जन्माने का है। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में संदेह लगते हैं। तो मन में कभी श्रद्धा तो लगती ही नहीं; वह उस वृक्ष के बीज में ही नहीं है। कोई व्यक्ति मन के द्वारा श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होता; मन के द्वारा सिर्फ संदेह को उपलब्ध होता है। मन यानी संदेह। तो जिस मन से आप खोजने जाएंगे, उसमें आपको संदेह मिलते चले जाएंगे। और
जब संदेह आपको मिलेगा, तो कैसे समर्पण कर सकते हैं? समर्पण तो वे ही लोग कर सकते हैं, जो अपने मन से थक गए हैं।
तसल्ली के कारण नहीं किसी पर, अपने मन पर जिनकी श्रद्धा उठ गई है; जो अपने मन से ऊब गए हैं और परेशान हो गए हैं; और जिन्होंने मन के सब रास्ते टटोल लिए हैं; मन के साथ सब मार्गों पर चलकर देख लिया है; मन की सब बातें मान लीं और फिर भी कहीं कोई आनंद नहीं पाया; जो अपने मन से ऊब गए हैं, जो अपने मन से विषाद से भर गए; वे लोग समर्पण करते हैं।
मन को छोड़ना समर्पण है। क्योंकि मन को छोड़ा कि श्रद्धा का जन्म हुआ। जहां आपको कल संदेह दिखाई पड़ते थे, वहीं श्रद्धा दिखाई पड़ने लगेगी। जहां कल आपको तसल्ली पैदा नहीं होती थी, वहां अचानक तसल्ली हो जाएगी, ट्रस्ट हो जाएगा। एक गहरा भाव पैदा हो जाएगा और आप मार्ग पर चलना शुरू कर देंगे। कौन मांगता है तसल्ली? आप! अगर आप कहीं पहुंच गए हैं, तो तसल्ली की कोई जरूरत नहीं, समर्पण की कोई जरूरत नहीं। अगर कहीं नहीं पहुंचे हैं... ।
तो धार्मिक व्यक्ति और अधार्मिक व्यक्ति में एक ही फर्क है। अधार्मिक व्यक्ति सब पर संदेह करता है, अपने को छोड़कर। और धार्मिक व्यक्ति अपने पर संदेह करता है, सब को छोड़कर।
जो अपने पर संदेह करता है, उसको गुरु जल्दी मिल जाएगा, क्योंकि वह तसल्ली कर सकता है। जो दूसरे पर संदेह करता है, उसे गुरु कभी भी नहीं मिल सकता। क्योंकि वह कहीं भी जाए, अपने पर उसका भरोसा है, जिसने कहीं भी नहीं पहुंचाया है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन बहुत नाराज था; उछल-कूद रहा था, क्रोध में आगबबूला हो रहा था। उसके मित्र पंडित रामचरणदास उसके पास बैठे थे। वे उससे पूछ रहे थे कि नाराजगी क्या है? तो वह कह रहा था, मेरी पत्नी ने मुझे धोखा दिया! बेईमान है, दुश्चरित्र है। घर से निकाल देने योग्य है।
तो उसके मित्र ने पूछा कि आखिर क्या तुम्हारे पास प्रमाण है? किस आधार
पर कहते हो कि पत्नी दुश्चरित्र है? किस आधार पर इतने नाराज और पागल हुए जा रहे हो?
नसरुद्दीन ने कहा, मेरे पास प्रमाण है। कल पूरी रात वह घर से गायब रही। और सुबह जब आई और मैंने पूछा, तो उसने मुझे धोखा दिया है। वह कहती है कि मैं अपनी सहेली तारा के घर पर रात रुक गई। यह बात सरासर झूठ है। तो पंडित रामचरणदास ने पूछा कि इसका तुम्हारे पास प्रमाण है कोई? तो उसने कहा, पूरा प्रमाण है। क्योंकि तारा के घर तो रातभर मैं रुका था।
मन पूरे समय दूसरे पर संदेह कर रहा है। मन अपने पर लौटता ही नहीं।
तो अगर आप इस मन को लेकर खोजने चले हैं, तो गुरु से आपका मिलना कभी भी नहीं हो सकता। अगर इस मन से थक गए हैं या न थके हों, तो और थोड़ी मेहनत करें, और थक जाएं। जब थक जाएं, तो गुरु से मिलना हो जाएगा।
और गुरु को खोजने कोई हिमालय जाने की जरूरत नहीं है। गुरु हो सकता है आपके घर में मौजूद हो। लेकिन आपका मन उससे संबंध न जुड़ने देगा।
आपका मन हट जाए, तो आंखें साफ हो जाएंगी, खोज सरल हो जाएगी। और शायद आपको खोजने भी न जाना पड़े। वह व्यक्ति आपको खोजता आ जाए। लेकिन तसल्ली की खोज वाला मन कभी भी नहीं खोज पाता है।

और पूछा है, तब तक क्या करें?
तब तक इस मन के दुख जितने भोग सकें, भोगें। कोई और उपाय नहीं है। और जहां-जहां यह मन ले जाए और भटकाए, भटकें। इस मन से पूरी तरह थक जाना है। थक जाएं।
यह मन उसी तरह का है, जैसे एक छोटे बच्चे को कहें कि बैठ जाओ एक कोने में; शांत बैठो; हिलो-डुलो मत! तो बड़ी मुश्किल में हो जाता है बच्चा। क्योंकि सब शक्ति उसकी ऊर्जा भागती है। वह कुछ करना चाहता है। उसको बिठा देना कष्टपूर्ण है। उसको बिठाने का एक ही उपाय है कि पहले उससे कहो कि घर के दस चक्कर लगा। और जितनी तेजी से बन सके, उतनी तेजी से लगा। और जब वह थक जाए और हाथ-पैर जोड़ने लगे कि अब मैं नहीं दौड़ सकता; अब बस! तब उससे कहो कि बैठ जा।
इस मन को पहले दौड़ा लें। यह आधा-आधा दौड़ा हुआ होगा, तो यह कहीं रुकने न देगा। जहां भी आप जाएंगे, यह आपके लिए दौड़ के लिए कारण खोज लेगा। इसे दौड़ा ही लें अच्छी तरह।
जितना संदेह करना है, संदेह कर लें। जितने तर्क करने हैं, तर्क कर लें। जितना विचार करना है, विचार कर लें। कुनकुने नहीं, पूरे उबल जाएं। भाप बनने दें इसे। बड़ा कष्ट होगा; नर्क हो जाएगा खड़ा।
यही अड़चन है। न तो समर्पण करते हैं कि सब शांत हो जाए; और न उबलते हैं पूरे कि सब तरह से भाप पैदा हो जाए। कुछ भी नहीं करते। बीच में कुनकुनाते रहते हैं। यह जो कुनकुनापन है, यह आदमी का दुख है।
संदेह ही करना है, तो पूरा कर लें। पूरा संदेह भी श्रद्धा पर ले जाएगा। नर्क से गुजरना पड़ेगा। बड़ी पीड़ा होगी। लेकिन उस पीड़ा से गुजरकर एक बात हाथ में आ जाएगी कि यह मन सिवाय दुख के और कहीं भी नहीं ले जाता है। यह द्वार है दुख का। यह प्रतीति हो जाएगी, तो आप इस मन के द्वारा तसल्ली नहीं खोजेंगे। आप इस मन को हटा देंगे और सीधा संपर्क साधेंगे। फिर समर्पण आसान है।
जब तक समर्पण न होता हो, तसल्ली खोजने का मन जारी रहता हो, तब तक इसका दुख पूरी तरह भोगें। और धीमे-धीमे नहीं। होमियोपैथी के डोज मत लें। पूरा जहर इकट्ठा पी लें। या इस पार या उस पार। दो में से कहीं भी पार हो जाएं। बीच में मत उलझे रहें।
तो मैं यहां देखता हूं, अनेक लोग थोड़ी तसल्ली भी करते हैं, थोड़ी नहीं
भी करते हैं। यह उनकी स्थिति है; नपुंसकता की स्थिति है। इससे इंपोटेंस पैदा होती है। इससे कहीं जा नहीं सकते। मेरे पास कोई आता है और वह कहता है कि थोड़ा आप पर विश्वास आता है, थोड़ा नहीं भी आता।
मैं कहता हूं, दो में से तू कुछ भी चुन। यह थोड़ा विश्वास भी छोड़ दे, तो मुझसे छुटकारा हो। इस थोड़े विश्वास की वजह से तू मेरे से दूर भी नहीं जा सकता। अकारण समय खराब कर रहा है। और थोड़ा अविश्वास है, उसकी वजह से मेरे पास भी नहीं आ सकता। थोड़ा अविश्वास है, तो मुझसे संबंध भी नहीं बनता। और थोड़ा विश्वास है, तो मुझसे संबंध टूटता भी नहीं। यह बड़ी दुविधा की स्थिति है। मुझसे संबंध टूटे, तो किसी और से बन सके। हो सकता है, कहीं और विश्वास घटित हो जाए। वहां भी जाना नहीं हो पाता, क्योंकि थोड़ा विश्वास यहां है। यह ऐसी हालत है, जैसे किसी वृक्ष की हम आधी जड़ें बाहर निकाल लें और आधी जमीन में रहने दें। तो न तो वृक्ष में फूल लगें, न फल आएं, न पत्तों में हरियाली रहे और न वृक्ष मरे।
कभी आप अस्पतालों में जाएं; हिंदुस्तान के अस्पतालों में भी अब वैसी हालत आती जाती है। यूरोप और अमेरिका में तो बहुत है। लोग सौ वर्ष के हो गए हैं, सवा सौ वर्ष के हो गए हैं; और लटके हैं अस्पतालों में। उनको मरने नहीं दिया जाता और जीने का उनका कोई उपाय नहीं रहा है। तो किसी को आक्सीजन दी जा रही है; किसी के हाथ-पैर उलटे बांधे हुए हैं; उनको दवाइयां पिलाई जाती हैं। वे मुरदा जिंदा हैं। न तो मर सकते हैं, क्योंकि ये डाक्टर मरने न देंगे। और न जी सकते हैं, क्योंकि डाक्टरों के हाथ के बाहर है उनको जीवन देना। जीवन उनके भीतर से बह चुका है। पर मौत को भी नहीं आने दिया जा रहा है।

इस अधूरी अवस्था में लटके लोग पश्चिम में आवाज उठा रहे हैं अथनासिया की। वे कहते हैं कि हमें मरने का हक होना चाहिए। और जब हम लिखकर दे दें कि हम मरना चाहते हैं, तो हमें बचाने की कोशिश बंद हो जानी चाहिए। लेकिन अभी तक कोई राज्य इतनी हिम्मत नहीं कर पाता कि मरने का हक दे।
डाक्टर भी जानते हैं कि यह आदमी मर जाए तो अच्छा। लेकिन फिर भी उसे दवाइयां दिए जाते हैं जिंदा रखने के लिए; क्योंकि उनको उनके अंतःकरण की पीड़ा है। अगर हम दवा न दें और यह आदमी मरे, तो उनको जिंदगीभर लगेगा कि हमने मारा।
जो व्यक्ति थोड़ा-सा विश्वास करता है और थोड़ा-सा अविश्वास, वह अस्पतालों में लटके हुए इन व्यक्तियों की भांति हो जाता है; न जी सकता है, न मर सकता है; न दूर जा सकता है, न पास आ सकता है।
तो या तो छलांग लगा लें; या समझें कि यह खाई आपके लिए नहीं है। कहीं और कोई खाई होगी। तो इस खाई से हट जाएं।
निर्णायक होने की जरूरत है। अपना निर्णय लेने की जरूरत है। गलत निर्णय भी बुरा नहीं है; लेकिन अनिर्णय बुरा है। क्योंकि गलत निर्णय भी बल देता है। कुछ तो तय हुआ। उस तय होने के साथ आपके भीतर इंटीग्रेशन पैदा होता है, अखंडता आती है। लेकिन अनिर्णय, कुछ भी तय नहीं, इनडिसीसिवनेस, तो आप धीरे-धीरे भीतर बिखर जाते हैं। भीतर आत्मा संगृहीत नहीं हो पाती; खंड-खंड हो जाती है। यह खंडित स्थिति छोड़ें।
तो जब तक, पहली तो बात, तसल्ली की खोज बंद कर दें। न बंद कर सकते हों, तो खोज को पूरा करें। समर्पण कर दें। न समर्पण होता हो, तो असमर्पण का पूरा दुख भोग लें। मध्य में मत रहें। मध्य से कोई कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। छलांग केवल अति से ही लग सकती है।

दूसरा प्रश्नः दूसरों के अनुभव काम नहीं आते, ऐसा आपने कहा। फिर आप जैसे पुरुषों के बोलने में सार्थकता क्या है कि जिसके लिए लोक प्रार्थना करता है?

दूसरों के अनुभव काम नहीं आते, इसका अर्थ है कि दूसरों के अनुभव आपके अनुभव नहीं बन सकते हैं, दूसरे की प्रतीति आपकी प्रतीति नहीं बन सकती है। लेकिन दूसरे का संपर्क संक्रामक हो सकता है। दूसरे की सन्निधि संक्रामक हो सकती है। अगर आप दूसरे के प्रति खुले हों, तो जैसे बीमारियां पकड़ सकती हैं आपको, वैसे ही स्वास्थ्य भी पकड़ सकता है।
अनुभव दूसरे के काम नहीं आते। अगर आप कृष्ण के पास हों, तो कृष्ण के अनुभव आपके अनुभव नहीं बन सकते। लेकिन कृष्ण की मौजूदगी में अगर आप समर्पित हों, तो आपके अपने जीवन का विकास शुरू हो जाता है। उस विकास में कभी अनुभव घटित होंगे। वे अनुभव कोई दूसरा आपको नहीं दे सकता, लेकिन दूसरे की मौजूदगी कैटेलिटिक एजेंट का काम कर सकती है। उससे स्फुरणा हो सकती है। वह प्रेरणा बन सकती है। उससे धक्का लग सकता है।
लेकिन उसके लिए जरूरी है कि आप खुले हों। आपका हृदय बंद न हो; आपके मस्तिष्क पक्षपात से न घिरे हों। आप राजी हों अनजान में जाने के लिए, अपरिचित में उतरने के लिए; जिसको आपने कभी नहीं जाना है, उस रास्ते पर किसी के पीछे चलने के लिए। अनहोना घटित हो सकता है। अनचाहा घटित हो सकता है। उस जोखम को उठाने की तैयारी भीतर हो।
इसीलिए तो हम अपने को बंद रखते हैं कि कहीं कोई जोखम न हो जाए।
एक मित्र मेरे पास आए। और उन्होंने मुझे कहा कि मैं शिविर में आने से डरता हूं कि कहीं कुछ सच में ही हो न जाए। बच्चे हैं, पत्नी है, घर-द्वार है। और अभी इन सबको बड़ा करना है, सम्हालना है। अभी संसार का दायित्व है, उसे पूरा निभाना है। डर लगता है कि कहीं जाएं और कहीं कुछ हो ही न जाए! उनका डर ऐसे स्वाभाविक है। और ठीक भी है। मगर इस डर के कारण वे बंद हैं। तो मैंने उनसे कहा, मेरे पास भी क्यों आए हो? क्योंकि आना फिजूल है। यहां भी डर तो भीतर होगा ही। उस डर की आड़ से अगर तुम मुझसे मिलोगे, तो मिलन हो ही न पाएगा। वह डर भीतर बैठा है, कहीं कुछ हो न जाए। तो जब डर चला जाए, तब ही आना।

और जल्दी कुछ भी नहीं है। समय अनंत है। और इतने जन्म आपके हुए हैं; और इतने ही जन्म हो जाएंगे; कोई जल्दी नहीं है। मगर डर की दीवार अगर भीतर हो, तो फिर आप किसी के भी पास जाएं, जाने से कुछ न होगा। अकेली पार्थिव मौजूदगी कुछ भी नहीं कर सकती है। मेरा जो अनुभव है, वह मैं आपको दे नहीं सकता। लेकिन अगर आप खुले हों, अगर आप मेरे साथ बहने को राजी हों, तो आपके अनुभव घटने शुरू हो जाएंगे। वे आपके ही होंगे।
लेकिन मैं आपका हाथ पकड़कर कहीं ले चलूं, कहूं कि आओ मकान के बाहर सूरज निकला है, और फूल खिले हैं, और आकाश में बड़ी रंगीनी है! तो मैं आपका हाथ पकड़कर बाहर ले जा सकता हूं, लेकिन जब आप आंख खोलेंगे और सूरज को देखेंगे, तो वह अनुभव आपका ही होगा, वह मैं आपको नहीं दे सकता। इस कमरे में बैठा हुआ मैं आपको वह अनुभव नहीं दे सकता। मैंने कितना ही सूरज देखा हो, और कितने ही फूल खिले देखे हों, और कितना ही आकाश रंगीन हो, यहां बैठकर मैं आप से आकाश की बात कर सकता हूं, सूरज की बात कर सकता हूं, लेकिन अनुभव नहीं दे सकता। शब्द अनुभव नहीं हैं। और अगर आप मेरे शब्दों से राजी हो जाएं, तो मैं आपका दुश्मन हूं। क्योंकि आप समझ लें कि शब्द सूरज सूरज है, आकाश शब्द आकाश है, तो फिर आप बाहर जाना, खोजना, आकाश की तलाश ही बंद कर देंगे। यहीं बैठे सब मिल गया।
लेकिन मैं यहां आपके भीतर प्यास जगा सकता हूं, अनुभव नहीं दे सकता। या मेरी मौजूदगी को अगर आप देखें, तो प्यास जग सकती है। और अगर मेरे साथ दो कदम चलने को राजी हों, तो बाहर भी पहुंच सकते हैं। फिर जो आप देखेंगे, वह आपका ही अनुभव होगा।
अनुभव निजी है और कभी भी हस्तांतरित नहीं हो सकता। इसलिए मैंने कहा
कि अनुभव, दूसरे के अनुभव काम नहीं आते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आप दूसरों से सीख नहीं सकते हैं। अनुभव नहीं सीख सकते, लेकिन कैसे वे अनुभव तक पहुंचे, वे सारी विधियां, वे सारे मार्ग आप सीख सकते हैं।
इसलिए बुद्ध पुरुष सिद्धांत नहीं देते, केवल विधियां देते हैं। निष्पत्ति नहीं देते, केवल मार्ग देते हैं। क्या होगा वहां पहुंचकर, यह नहीं बताते; कैसे वहां पहुंच सकोगे, इतना ही बताते हैं।
बुद्ध ने कहा है, मैं मार्ग बताता हूं; चलना तुम्हें है, पहुंचना तुम्हें है, जानना तुम्हें है। मैं सिर्फ मार्ग बता सकता हूं।
जो उस मार्ग से गुजरे हैं, उस मार्ग की खबर आपको दे सकते हैं। उनके अनुभव काम नहीं आते, लेकिन उनकी मौजूदगी, उनका व्यक्तित्व, उनका प्रकाश, उनका मौन, अगर आप खुले हों, तो संक्रामक हो जाता है। जैसे मलेरिया पकड़ता है, वैसे ही बुद्धत्व भी पकड़ता है।
लेकिन मलेरिया के लिए हम खुले होते हैं, तैयार होते हैं। अभी यहां एक आदमी खांस दे, दस-पंद्रह आदमी खांसेंगे। उसके लिए हम तैयार हैं। रोग के लिए हम तैयार हैं! लेकिन अभी यहां एक आदमी शांत हो जाए, तो दस-पंद्रह आदमी शांत नहीं हो जाएंगे।
दुख के प्रति हम संवेदनशील हैं। आनंद के प्रति ऐसी ही संवेदनशीलता का नाम समर्पण है।

तीसरा प्रश्नः इस विराट विश्व के संदर्भ में अपनी तुच्छता का बोध आदमी में हीनता की ग्रंथि को मजबूत बनाकर उसे पंगु बना सकता है। और हीनता- भाव निरअहंकारिता नहीं है। कृपया बताएं कि हीनता से बचकर अहंकार-विसर्जन के लिए क्या किया जाए?

पहली बात, हीनता की ग्रंथि, इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स अहंकार का ही हिस्सा है। अहंकार के कारण ही हमें हीनता मालूम होती है।
यह जरा कठिन लगेगा। अगर आप में अहंकार न हो, तो आप में हीनता हो ही नहीं सकती। हीनता इसलिए मालूम होती है कि आप समझते तो अपने को बहुत बड़ा हैं और उतने बड़े आप अपने को पाते नहीं। जितना बड़ा आप अपने को समझते हैं, उतना बड़ा पाते नहीं हैं। वास्तविक जगत में आप पाते हैं, छोटे हैं। उससे हीनता पैदा होती है।

अहंकार जितना बड़ा होगा, उतनी ज्यादा हीनता मालूम होगी। अहंकार जितना
कम होगा, हीनता उतनी ही कम होगी। अहंकार नहीं होगा, हीनता खो जाएगी। हीनता और अहंकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
इसलिए जो आदमी विनम्र है, वह हीन नहीं होता। उसको हीनता पकड़ ही नहीं सकती। जो आदमी दंभी है, उसको ही हीनता पकड़ती है।
मेरे पास न मालूम कितनी बार तरह-तरह के लोग आते हैं। कोई आकर कहता है
कि मेरा आत्म-विश्वास ज्यादा कैसे हो? मुझमें बड़ा आत्म-अविश्वास है, कोई आकर कहता है। कोई कहता है कि मुझमें हीनता की ग्रंथि है, तो यह कैसे मिटे? ठीक बीमारी को नहीं पकड़ पा रहे हैं वे, केवल लक्षण को पकड़ रहे हैं।
अगर आत्म-अविश्वास है, तो इसे स्वीकार कर लें कि यह मेरा हिस्सा हुआ। जैसे आपकी छः फीट ऊंचाई है या पांच फीट ऊंचाई है, तो आप क्या करते हैं? स्वीकार कर लेते हैं कि मैं पांच फीट ऊंचा हूं।
लेकिन आप सोचते हैं कि छः फीट होना था। कोई दूसरा छः फीट है। तो फिर हीनता शुरू हुई। एक फीट आप कम हैं; अब इसको किसी तरह पूरा करना जरूरी है। तब आप पंजे के बल खड़े होकर चलना शुरू करेंगे। उससे कष्ट पाएंगे; उससे बड़ी पीड़ा होगी।
सारी दुनिया में स्त्रियां बड़ी एड़ी का जूता पहनती हैं। वह सिर्फ पुरुष की ऊंचाई पाने की चेष्टा है। उससे बड़ा कष्ट होता है, क्योंकि चलने में वह आरामदेह नहीं है। जितनी ऊंची एड़ी हो, उतनी ही कष्टपूर्ण हो जाएगी। लेकिन फिर धीरे-धीरे उसी कष्ट की आदत हो जाती है। फिर हड्डियां वैसी ही जकड़ जाती हैं; फिर सीधे पैर से जमीन पर चलना मुश्किल हो जाता है। लेकिन स्त्री के मन में थोड़ा-सा संकोच है। पुरुष से थोड़ी उसकी ऊंचाई कम है। पूरब की स्त्रियों ने इतनी फिक्र नहीं की ऊंची एड़ी के जूतों की। क्योंकि उनमें अभी भी पुरुष के साथ बहुत प्रतिस्पर्धा नहीं है। लेकिन पश्चिम में भारी प्रतिस्पर्धा है।
दूसरा बड़ा है, उससे कष्ट शुरू होता है। लेकिन कष्ट की क्या बात है! आप
छः फीट के हैं, मैं पांच फीट का हूं। न तो एक फीट बड़े होने से कोई बड़ा होता है, न एक फीट छोटे होने से कोई छोटा होता है। कि आप बहुत अच्छा गा सकते हैं, मैं नहीं गा सकता हूं। तो अड़चन कहां खड़ी होती है!
यह सब मुझमें भी होना चाहिए। यह मेरा अहंकार मान नहीं सकता कि कुछ है,
जो मुझमें कम है। फिर जीवन में अनुभव होता है, बहुत कम है। तो हीनता आती है, आत्म-अविश्वास आता है। फिर इससे दूर होने के लिए हम उपाय करते हैं और एड़ियों वाले जूते पहनते हैं; उनसे और कष्ट पैदा होता है; और सारा जीवन विकृत हो जाता है।
इन सारे रोगों से मुक्त होने का एक ही उपाय है, आप जैसे हैं, वैसे अपने
को स्वीकार करें। आपके पास दो आंखें हैं, तो आपने स्वीकार किया। आंखों का रंग काला है या हरा है, तो आपने स्वीकार किया। किसी की नाक लंबी है, किसी की छोटी है, तो उसने स्वीकार किया। ये तथ्य हैं; उन्हें स्वीकार कर लें कि ऐसा मैं हूं। और जो मैं हूं, इस मेरी स्थिति से क्या उपलब्धि हो सकती है, उसकी चेष्टा, उस पर सृजनात्मक श्रम।
लेकिन दूसरे से स्पर्धा हो, तो आप पागल हो जाएंगे। और करीब-करीब सारे लोग पागल हो गए हैं। स्पर्धा विक्षिप्तता लाती है। और ऐसा तो कभी भी नहीं होगा... ।
ऐसी हालत है करीब-करीब। मैं एक यात्रा पर था। एक मेरे मित्र खुद ही ड्राइव कर रहे थे। तो जैसे ही कोई गाड़ी उनको आगे दिखाई पड़ती रोड पर, वे अपनी गाड़ी तेज कर देते। कोई गाड़ी उनसे आगे कैसे हो सकती है! मैं थोड़ी देर तो देखता रहा कि जैसे ही उनको गाड़ी दिखाई पड़ती कोई आगे कि वे पगला जाते। वे गाड़ी तेज करके जब तक उसको पीछे न कर दें, तब तक उनको बेचैनी रहती।
मैंने उनसे पूछा कि क्या तुम सोचते हो इस रास्ते पर कभी ऐसी हालत आएगी
कि आगे कोई गाड़ी न हो? तुम पगला जाओगे। रास्ते पर कोई न कोई गाड़ी आगे होगी ही।
तुम अपनी रफ्तार से चलो। तुम्हें अपनी मंजिल पर पहुंचना है, उसके हिसाब से चलो। मगर कोई भी गाड़ी आगे हो, तो उसे पार करने की क्या तकलीफ है?

कोई बहुत गहरी हीनता की ग्रंथि होगी कि मैं किसी दूसरे से पीछे कैसे
रह सकता हूं! और ऐसा जीवन के रास्ते पर भी यही है। आप इसकी फिक्र में नहीं होते कि आपको कहां जाना है। इसकी भी कोई चिंता नहीं कि कहीं पहुंचना है। लेकिन कोई आपके आगे न हो! वह चाहे नरक जा रहा हो, तो भी आपको उसको पीछे करना है!
मैंने सुना है कि अमेरिका का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक ओपेनहेमर अमेरिकी प्रेसिडेंट को सलाह दिया कि जल्दी करें, क्योंकि रूसी चांद पर पहुंचने में हमसे आगे हैं। शुरू में वे थे भी। तो ओपेनहेमर ने कहा अमेरिका के प्रेसिडेंट को कि हम जल्दी करें, नहीं तो वे चांद पर हमसे पहले पहुंच जाएंगे। प्रेसिडेंट ने ऐसे ही कहा कि लेट देम गो टु हेल--जाने दो उनको नरक, जाने दो उनको दोजख। ओपेनहेमर ने कहा कि अगर इस रफ्तार से गए, तो वहां भी वे हमसे पहले पहुंच जाएंगे। और यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता!
तो कौन कहां जा रहा है, यह बड़ा सवाल नहीं है आपको, आप से आगे भर न जा पाए।
आपकी जिंदगी में कई बार आपके रास्ते इसीलिए बदल गए कि संयोग से आगे एक आदमी मिल गया, जो कहीं और जा रहा था।
आपको ख्याल में नहीं है। अगर आप विश्लेषण करेंगे, तो आपको साफ दिखाई पड़ेगा कि आप चले जा रहे थे और एक आदमी और अच्छी कार में चला जा रहा था, आपकी जिंदगी बदल गई। क्योंकि आपको उससे अच्छी कार चाहिए। आप चले जा रहे थे, किसी से मित्रता हो गई, जिसके पास आपसे बड़ा मकान था। अब आप मुश्किल में पड़ गए; आपके पास उससे बड़ा मकान होना चाहिए।
और आप भूल ही जाते हैं कि आप कहां जाना चाहते हैं? क्या होना चाहते हैं? यह अहंकार बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई मुझसे आगे हो; इससे हीनता अनुभव होती है। और कोई न कोई आगे होगा। जीवन के रास्ते पर कभी किसी आदमी ने अनुभव नहीं किया कि मैं सबके आगे हूं।
नेपोलियन सब कुछ जीत ले, तो भी छोटी-छोटी चीजों में दुखी हो जाता था।
एक दिन उसकी घड़ी बिगड़ गई, तो उसे सुधारने की कोशिश में उसने हाथ बढ़ाया। उसकी ऊंचाई ज्यादा नहीं थी, पांच ही फीट थी। तो उसका हाथ नहीं पहुंचा घड़ी तक, तो उसका जो अर्दली था, वह छः फीट लंबा जवान था। उसने जल्दी से आकर ठीक कर दिया। नेपोलियन ने अपनी डायरी में लिखा है कि मुझे इतनी पीड़ा हुई कि जैसे मैं सारा संसार हार गया। अर्दली! और उसका हाथ पहुंच गया और मेरा नहीं पहुंचा!
आप थोड़ा सोचें, नेपोलियन की जगह आप भी होते, तो ऐसी ही पीड़ा होती। रोज यही पीड़ा हो रही है।
हीनता अनुभव होने लगती है, क्योंकि बड़ा अहंकार है। अगर नेपोलियन स्वीकार करता कि मैं पांच फीट का हूं; ठीक है। और यह छः फीट का है। तो इसका हाथ पहुंचेगा, मेरा नहीं पहुंचा। यह तथ्य की बात है; इसमें अड़चन क्या है? और हाथ पहुंच जाने से कौन-सी ऊंचाई सिद्ध हो गई? तब फिर कोई हीनता नहीं है। और जब हम निरंतर जोर देते हैं समर्पण के लिए, शून्य होने के लिए, तो हीनता पैदा करने के लिए नहीं, विनम्रता पैदा करने के लिए। और विनम्रता हीनता से बिल्कुल उलटी बात है। क्योंकि विनम्रता तब पैदा होती है, जब अहंकार जाता है। और जब अहंकार जाता है, तो हीनता अपने आप चली जाती है; वह उसकी छाया है। आप विनम्र आदमी को तो कभी हीन कर ही नहीं सकते।
लाओत्से ने कहा है कि मुझे कभी कोई हरा नहीं पाया, क्योंकि मैं पहले
से ही हारा हुआ हूं। और मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका, क्योंकि मैंने कभी सम्मान चाहा नहीं।
कहा जाता है, लाओत्से किसी सभा में जाता--अगर वह यहां आता सुनने, तो वह बिल्कुल अंत में, जहां जूते उतारे जाते हैं, वहां बैठता। क्योंकि वह कहता, वहां से कभी कोई उठा नहीं सकता।
आप लाओत्से को हीन नहीं कर सकते। कोई उपाय नहीं है उसे हीन करने का।
और ध्यान रखें, जो आदमी अंतिम बैठने में समर्थ है, उसके पास बड़ी आत्मा चाहिए। वह इतना आश्वस्त है अपने होने से कि अंतिम बैठने से अंतिम नहीं होता हूं।

और जो आदमी पहले बैठने की कोशिश कर रहा है, वह आश्वस्त नहीं है। वह डरा हुआ है। वह जानता है कि अगर मैं पहला बैठा नहीं, तो लोग समझेंगे कि मैं पहला नहीं हूं। उसे अपने पर भरोसा नहीं है। जिसे अपने पर भरोसा है, वह कहीं भी बैठे, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता।
विनम्रता हीनता नहीं है। विनम्रता अहंकार का विसर्जन है। विनम्रता
इस बात की घोषणा है कि मैं जैसा हूं, वैसा हूं। और मेरी किसी दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं है। और अगर मुझे विकास करना है, तो वह मेरा विकास है; वह दूसरे से संबंधित नहीं है। वह दूसरे की तुलना और कंपेरिजन में नहीं है। जैसे ही यह बोध आना शुरू हो जाता है, कि मैं मैं हूं, तुम तुम हो। तुम जैसे हो, तुम्हारे लिए भले हो; मैं जैसा हूं, मेरे लिए भला हूं। न तुमसे कोई स्पर्धा है, न तुम्हारी जगह लेने की कोई आकांक्षा है। मेरी अपनी जगह है; परमात्मा ने मुझे मेरी जगह दी है। मुझे मेरी जगह पर अंकुरित होना है। और जैसे ही व्यक्ति दूसरों से प्रतिस्पर्धा छोड़ देता है, वैसे ही परमात्मा में उसका विकास शुरू हो जाता है। और जब तक व्यक्ति दूसरों से उलझता रहता है, तब तक परमात्मा के जगत में उसका कोई विकास नहीं हो पाता। क्योंकि उसका ध्यान दूसरों पर लगा है, परमात्मा पर तो ध्यान ही नहीं है उसका।
अगर तुम मंदिर में भी जाते हो, तो भी तुम इस बात की फिक्र करते हो कि प्रार्थना उस जगह पर बैठकर करो जो नंबर एक है! प्रार्थना का क्या संबंध नंबर एक से! मंदिर में भी कतारें हैं। वहां भी अहंकारी आगे बैठा है! वह दूसरे को आगे नहीं बैठने देगा।
अभी कुंभ का मेला भरने को है, वहां अहंकारी पहले स्नान करेंगे। उस पर दंगा-फसाद हो जाता है, हत्याएं हो जाती हैं, लट्ठ चल जाते हैं। और चलाने वाले संन्यासी हैं। क्योंकि वे कहते हैं, पहले हमारा हक है, पहले हम स्नान करेंगे।
धर्म का क्या संबंध है पहले से? धर्म का संबंध अगर कुछ है, तो अंतिम से है। आखिरी होने के लिए जो राजी है, वह परमात्मा का प्यारा हो जाता है। प्रथम होने की जो दौड़ में है, वह परमात्मा से लड़ रहा है। प्रथम होने की दौड़ नदी में उलटी धारा में तैरने की कोशिश है। अंतिम होने के लिए राजी होने का मतलब है, धारा में बह जाना, धारा के साथ एक हो जाना। जहां नदी ले जाए, हम वहीं जाने को राजी हैं।
समर्पण बहने की कला है। और यह पूरा अस्तित्व परमात्मा है। इसमें जो बहने की कला सीख लेता है, मंदिर उसके लिए दूर नहीं है। मंदिर में वह पहुंच ही गया है।

अब हम सूत्र को लें।
परंतु शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों
को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं जानते हैं, केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व से जानते हैं। शरीर छोड़कर जाते हुए को... ।
जब शरीर छूटता है, और आपका बहुत बार छूटा है, लेकिन वह घड़ी चूक-चूक जाती है। क्योंकि शरीर छूटने के पहले ही आप बेहोश हो जाते हैं। जब भी कोई मरता है, मरने के पहले ही बेहोश हो जाता है। तो मौत का अनुभव नहीं हो पाता और मृत्यु की जो रहस्यमय घटना है, वह अनजानी रह जाती है।
मरने के पहले आदमी मूर्च्छित हो जाता है। इसलिए मृत्यु में जो भेद घटित होता है, शरीर अलग होता है, आत्मा अलग होती है; इंद्रियों के फूल पीछे पड़े रह जाते हैं, सुगंध, सूक्ष्म वासनाएं, संस्कार आत्मा के इर्द-गिर्द सुगंध की तरह लिपटे हुए नई यात्रा पर निकल जाते हैं। यह घटना हमारी समझ में नहीं आ पाती; क्योंकि हम मूर्च्छित होते हैं। मूर्च्छित हम क्यों हो जाते हैं मरते क्षण में?
एक जीवन की व्यवस्था है कि दुख एक सीमा तक झेला जा सकता है। जहां दुख असह्य हो जाता है, वहीं मूर्च्छा आ जाती है। इसलिए जब आप कभी-कभी कहते हैं कि मैं असह्य दुख में हूं, तो आप गलत कहते हैं। क्योंकि असह्य दुख में आप

होश में नहीं रह सकते, आप बेहोश हो जाएंगे। तभी तक होश रहता है, जब तक सहने योग्य हो।
इसलिए जब भी कोई पीड़ा बहुत हो जाएगी, आप बेहोश हो जाएंगे। कोई भी आघात गहरा होगा, आप बेहोश हो जाएंगे।
मूर्च्छा दुख का असह्य हो जाना है। और मृत्यु सब से बड़ा दुख है, हमारे लिए। हम डरते हैं मिटने से, इसलिए। मृत्यु के कारण नहीं है दुख; मिटने से डरते हैं इसलिए; कि मैं मिट जाऊंगा; मैं मिटा! इससे जो भय, पीड़ा और संताप पैदा होता है, उसके धुएं में चित्त बेहोश हो जाता है।
लेकिन जिन लोगों ने जीवन में ही समर्पण की कला साधी हो, मृत्यु उन्हें बेहोश नहीं कर पाएगी। क्योंकि मिटने के लिए वे पहले से ही तैयार हैं। वे तलाश कर रहे हैं। वे मिटने का ही विज्ञान खोज रहे हैं। जिन्होंने योग साधा हो, तंत्र साधा हो, जिन्होंने ध्यान के कोई प्रयोग किए हों, प्रार्थना की हो कभी, उनकी तलाश एक ही है कि मैं कैसे मिट जाऊं, क्योंकि मेरा होना पीड़ा है। मृत्यु के क्षण में ऐसे लोग सहर्ष मृत्यु के लिए राजी होंगे।
संत अगस्तीन एक चर्च बनवा रहा था। उसने एक बहुत बड़े चित्रकार को बुलाया और कहा कि इस चर्च के प्रथम द्वार पर मृत्यु का चित्र अंकित कर दो। क्योंकि जो मृत्यु को नहीं समझ पाता, वह मंदिर में प्रवेश भी कैसे कर पाएगा!
अगस्तीन ने चर्च के द्वार पर मृत्यु का चित्र बनवाया। जब चित्र बन गया, तो अगस्तीन उसे देखने आया। पर उसने कहा कि और तो सब ठीक है, लेकिन यह जो मृत्यु की काली छाया है, इसके हाथ में तुमने कुल्हाड़ी क्यों दी है? चित्रकार ने मृत्यु की काली छाया बनाई है, एक भयंकर विकराल रूप और उसके हाथ में एक कुल्हाड़ी दी है।
उस चित्रकार ने कहा, यह प्रतीक है कि मृत्यु की कुल्हाड़ी सभी को काट डालती है, तोड़ डालती है। अगस्तीन ने कहा, और सब ठीक है; कुल्हाड़ी अलग कर दो और हाथ में चाबी दे दो।
चित्रकार ने कहा, कुछ समझ में नहीं आया! चाबी से क्या लेना-देना? अगस्तीन ने कहा, जो हमारा अनुभव है, वह यह है कि मृत्यु सिर्फ एक नया द्वार खोलती है; किसी को मिटाती-करती नहीं। इसलिए चाबी! नया द्वार खोलती है। लेकिन नया द्वार उनके लिए खोलती है, जो होशपूर्वक मरते हैं। जो बेहोशी से मरते हैं, उनकी तो गरदन ही काटती है। उनके लिए तो मृत्यु के हाथ में कुल्हाड़ी ही है।
शरीर छोड़कर जाते हुए को हम नहीं जान पाते, क्योंकि हम बेहोश होते हैं।
और हम तभी जान पाएंगे, जब मृत्यु में होश सधे। इसका अभ्यास करना होगा। इसका इतना अभ्यास करना होगा कि यह चेतन से उतरते-उतरते अचेतन में चला जाए। और जब तक यह अचेतन में न चला जाए अभ्यास... ।.
इसलिए योग दो शब्दों का उपयोग करता है, वैराग्य और अभ्यास। बस, प्रक्रिया पूरी उन दो में समाई हुई है। वैराग्य की हमने बात की, क्या है वैराग्य। और दूसरा है कि उसका गहन अभ्यास, रोज-रोज साधना। ताकि मरने के पहले आपके भीतर इतना उतर जाए कि मृत्यु उसको हिला न सके।
मेरे एक मित्र हैं। मिलिट्री में मेजर हैं। उनकी पत्नी मेरे पड़ोस में रहती थीं। वे तो कभी-कभी आते थे। जगह-जगह उनकी बदलियां होती रहती थीं। पत्नी उनकी एक कालेज में प्रोफेसर थीं।
जब भी मित्र आते, तो पत्नी थोड़ी परेशान हो जाती। क्योंकि और तो सब ठीक था, बहुत प्यारे आदमी हैं, लेकिन रात में घुर्राते बहुत थे। और पत्नी अकेली रहने की आदी हो गई थी वर्षों से। तो जब भी साल में महीने, दो महीने के लिए आते, तो उसकी नींद हराम हो जाती थी।
उसने मुझे एक दिन कहा कि बड़ी अजीब हालत है। कहते भी अच्छा नहीं मालूम पड़ता; वे कभी आते हैं। लेकिन मेरी नींद मुश्किल हो जाती है। या मैं यह कहूं कि मैं दूसरे कमरे में सोऊं, तो भी अशोभन मालूम पड़ता है, इतने दिन के बाद पति घर आते हैं। और रात में तो सो ही नहीं पाती।
मैंने उनसे पूछा कि मुझे पूरा ब्यौरा दो।
तो उसने कहा कि जब भी वे बाएं सोते हैं, तो घुर्राते हैं। जब दाएं बदल लेते हैं करवट, तो ठीक सो जाते हैं। पर रात में उनको सोते में करवट कौन

बदलवाए! और वजनी शरीर है, भारी; सैनिक हैं। और बदलाओ उनको करवट, तो नींद टूट जाएगी।
तो मैंने उसको कहा कि मैं तुझे एक मंत्र देता हूं; उनके कान में अभ्यास करना। दूसरे दिन उसने अभ्यास करके मुझे कहा कि अदभुत मंत्र है! छोटा-सा मंत्र था। मैंने कहा, उनके कान में कहना राइट टर्न। मिलिट्री
के आदमी। जिंदगीभर का अभ्यास। मंत्र काम कर गया। जैसे ही उसने कहा राइट टर्न, उन्होंने नींद में अपनी करवट बदल ली।
मौत के क्षण में तो आप तभी होश रख पाएंगे, जब जिंदगीभर अभ्यास किया हो। और वह इतना गहरा हो गया हो कि मौत भी सामने खड़ी हो, तो भी चित्त बेहोश न हो। अचेतन तक, अनकांशस तक पहुंच जाना जरूरी है।
इसलिए समर्पण का जितना से जितना प्रयोग हो सके, जितना ज्यादा प्रयोग
हो सके; जिन-जिन स्थितियों में आप अपने को खो सकें, खोएं। अपने को सम्हालें मत। क्योंकि वह खोना इकट्ठा होता जाएगा। रत्ती-रत्ती इकट्ठा होते-होते उसका पहाड़ बन जाएगा। और जब मौत आएगी, तो आप होशपूर्वक जा सकेंगे।
और जो व्यक्ति होशपूर्वक मर गया, उसका दूसरा जन्म होशपूर्वक होता है। क्योंकि जन्म और मृत्यु एक ही द्वार के दो हिस्से हैं। इस तरफ से जब हम प्रवेश करते हैं, तो मृत्यु; और जब उसी दरवाजे से उस तरफ निकलते हैं, तो जन्म। जैसे एक ही दरवाजे पर लिखा होता है, भीतर। तो बाहर से जब हम प्रवेश करते हैं, तो भीतर, वह बाहर जब हम खड़े थे दरवाजे के। लेकिन जैसे ही दरवाजे के भीतर गए, दूसरा जगत शुरू हो गया।
मृत्यु, इस शरीर से बाहर; और जन्म, दूसरे शरीर में भीतर। लेकिन प्रक्रिया एक ही है। अगर आप होशपूर्वक मर सकते हैं, तो आपका जन्म होशपूर्वक होगा। और तब आपको पिछले जन्म की याद रहेगी। और तब पिछले जन्म के अनुभव व्यर्थ नहीं जाएंगे। उनका निचोड़ आपके हाथ में होगा। और तब आपने जो भूलें पिछले जन्म में कीं, वे आप इस जन्म में न कर सकेंगे। अन्यथा हर बार वही भूल है। और यह चक्र दुष्टचक्र है, विशियस सर्किल है। हर बार भूल जाते हैं; फिर वही भूल करते हैं।
ऐसा आप बहुत बार कर चुके हैं। यही काम जो आप आज कर रहे हैं, इसको आप अनंत बार कर चुके हैं। यही शादी, यही बच्चे, यही धन, यही पद-प्रतिष्ठा; यही लड़ाई-झगड़ा, कलह, अदालत, दुकान; यह आप बहुत बार कर चुके हैं।
काश, आपको एक दफे भी याद आ जाए कि यह आप बहुत बार कर चुके हैं, तो इसमें
जो आज आप इतना रस ले रहे हैं, वह एकदम खो जाएगा। यह पागलपन मालूम पड़ेगा। आप एकदम ठहर जाएंगे।
मृत्यु में जो होशपूर्वक मरे, वह जन्म में भी होशपूर्वक पैदा होता है। और जो मृत्यु और जन्म में होशपूर्वक रह जाए, वह जीवन में होशपूर्वक रहता है। क्योंकि मृत्यु और जन्म छोर हैं; बीच में जीवन है। और हम तीनों में बेहोश हैं।
इसलिए हम कितना ही सुनें कि शरीर नहीं है, आत्मा है, यह बात बैठती नहीं है। कितना ही कोई कहे कि आप शरीर नहीं, आत्मा हैं; मान भी लें, तो भी यह बात भीतर उतरती नहीं। क्योंकि हमारा अनुभव नहीं है। लगता तो ऐसे ही है कि शरीर ही होंगे। यह आत्मा हवा मालूम पड़ती है; हवाई बात मालूम पड़ती है।
कृष्ण कहते हैं, परंतु शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं जानते हैं। क्योंकि मूर्च्छा सतत है। केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व को जानते हैं।
कौन-सा है ज्ञान-नेत्र जो ज्ञानियों को मिल जाता है? उसको ही मैं अमूर्च्छा कह रहा हूं। होशपूर्वक घटनाओं को घटने देना, मृत्यु को, जन्म को, जीवन को। ये तीन घटनाएं हैं। अगर ये तीनों होशपूर्वक घट जाएं, तो आपके पास ज्ञान-नेत्र उपलब्ध हो गया।
जहां आप हैं, वहीं से शुरू करना पड़ेगा। जन्म तो पीछे छूट गया। मौत आगे
आ रही है। वह अभी दूर है। जीवन अभी है। जीवन के साथ शुरू करना जरूरी है कि हम जीएं, तो ज्ञानपूर्वक जीएं। जो भी करें, होशपूर्वक करें। बार-बार होश छूट जाएगा; फिर उसे पकड़ें।

रास्ते पर चलें, तो होश से। भोजन करें, तो होश से। किसी से बात करें, तो होश से। एक बात सतत बनी रहे कि मेरे द्वारा मूर्च्छा में कुछ न हो। कोई गाली दे, तो पहले होश को सम्हालें, फिर उत्तर दें।
आप चकित हो जाएंगे, होश सम्हल जाए, तो उत्तर निकलेगा नहीं। और होश न सम्हला हो, तो जो आप नहीं करना चाहते, वह भी हो जाता है, वह भी निकल जाता है। मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा पर गया। दो मित्र साथ थे। तीनों बैलगाड़ी
से यात्रा कर रहे थे। तीनों ने चिटें डालकर तय किया कि भोजन कौन बनाएगा। एक का नाम आ गया। पर उसमें भी एक शर्त थी। वह शर्त यह थी कि जिसका नाम आ जाएगा, वह भोजन बनाएगा; लेकिन बाकी दो में से कोई भी भोजन की शिकायत न कर सकेगा। और जिसने शिकायत की, उसी दिन से भोजन उसको बनाना पड़ेगा।
मुल्ला बड़ी मुश्किल में पड़ गया। नाम तो दूसरे का आया, इससे प्रसन्न हुआ। लेकिन भोजन उसने इतना रद्दी बनाना शुरू किया कि वह खाया न जाए और शिकायत कर नहीं सकते। शिकायत की, तो खुद बनाना पड़े।
एक दिन, दो दिन, तीन दिन, फिर उसने होश खो दिया। तीसरे दिन उसने कहा कि
इट टेस्ट्स लाइक हार्स शिट--घोड़े की लीद जैसा इसका स्वाद है। लेकिन तभी उसको ख्याल आया, तो उसने कहा, बट डिलीशियस--पर बड़ा स्वादिष्ट है। क्योंकि कंप्लेंट नहीं करनी है, शिकायत नहीं करनी है।
अगर आप ख्याल रखेंगे, तो चौबीस घंटे ऐसे मौके आपको आएंगे, जब आधा वाक्य बेहोशी में निकलेगा, और तब आपको ख्याल आएगा; आधा तब आप पीछे से कहेंगे, बट डिलीशियस।
जीवन है हाथ में अभी, और अभी ही कुछ किया जा सकता है। वाणी, विचार, आचरण, सब पहलुओं पर होश की साधना। जो भी मैं कहूं, जो भी मैं सोचूं, जो भी मैं करूं, वह होशपूर्वक हो, इतना भर काफी है। तो धीरे-धीरे आप पाएंगे कि बेहोशी टूटने लगी। और बेहोशी के टूटने के साथ ही दुख टूटने शुरू हो जाते हैं। बेहोशी के कारण ही दुखों को हम निमंत्रण देते हैं। और बेहोशी के कारण ही हम वे क्षण चूक जाते हैं जिनसे आनंद उपलब्ध हो सकता था।
मुल्ला नसरुद्दीन के पास एक गधा था। और गधे को अक्सर सर्दी लग जाती,
तो वह कंपने लगता, बुखार आ जाता। तो वह लेकर गया उसको एक जानवरों के डाक्टर के पास।
उस डाक्टर ने जांच-पड़ताल की और उसको दो गोलियां दीं और एक पोली नली दी। और कहा कि नली में गोलियों को रखना और एक छोर गधे के मुंह में डालना और दूसरे से फूंक मार देना, तो गोलियां इसके पेट में चली जाएंगी। गोलियां बहुत गरम हैं, एक ही दिन में ठीक हो जाएगा।
शाम को ही नसरुद्दीन लौटा, तो वह लट्ठ लिए हुए था। उसने जाकर दरवाजे
पर लट्ठ मारा और कहा, कहां है वह डाक्टर का बच्चा? डाक्टर भी डरा, क्योंकि उसकी आंखें लाल, चेहरा सुर्ख, पसीने से भरा हुआ।
डाक्टर ने पूछा कि क्या हुआ?
उसने कहा, तूने पूरी बात क्यों न बताई?
कौन-सी पूरी बात?
नसरुद्दीन ने कहा, गधे ने पहले फूंक मार दी; गोलियां मेरे पेट में चली गईं!
उस डाक्टर ने पूछा, तुम करने क्या लगे?
उसने कहा, मैं जरा दूसरे सोच में पड़ गया, जरा देर हो गई। गोली रखकर, मुंह में नली लगाकर मैं बैठा और कुछ दूसरा ख्याल आ गया।
उतने ख्याल में तो बेहोशी हो जाएगी।
हम सब ऐसे ही जी रहे हैं। कुछ कर रहे हैं, कुछ ख्याल आ रहा है। कुछ करना चाहते हैं, कुछ हो जाता है। कुछ सोचा था, कुछ परिणाम आते हैं। कभी भी वही नहीं हो पाता, जो हम चाहते हैं। वह होगा भी नहीं, क्योंकि वह केवल तभी हो सकता है, जब होश पूरा हो।
जिसका होश पूरा है, उसके जीवन में वही होता है, जो होना चाहिए। उससे अन्यथा का कोई उपाय नहीं है। जिसका जीवन मूर्च्छा में चल रहा है, वह शराबी की तरह है। जाना चाहता था घर, पहुंच गया कहीं और। क्योंकि पैर का उसे कोई पता नहीं कि कहां जा रहे हैं। वह शराबी की तरह है। करना चाहता था कुछ और, हो गया कुछ और।

मैं पढ़ता था एक शराबी के संस्मरणों को। वह एक रात ज्यादा पीकर लौटा। पत्नी से बचने के लिए कि पत्नी को पता न चले... । और ज्यादा पी गया, तो रास्ते पर कई जगह गिरा था। तो चेहरे पर कई जगह खरोंच और चोट लग गई। तो वह बाथरूम में गया और उसने मलहम की पट्टियां अपने चेहरे पर लगाईं। जाकर चुपचाप बिस्तर में सो गया। और बड़ा प्रसन्न हुआ कि पत्नी को पता भी नहीं चला; शोरगुल भी नहीं हुआ; खरोंच वगैरह भी सुबह तक काफी ठीक हो जाएगी; पता भी नहीं चलेगा। बात निपट गई।
लेकिन सुबह ही उसकी पत्नी चिल्लाती बाथरूम से बाहर आई कि तुमने बाथरूम का दर्पण क्यों खराब किया है? पति ने पूछा, कैसा दर्पण!
क्योंकि वह रात बेहोशी में जो मलहम-पट्टी चेहरे पर लगानी थी, दर्पण पर लगा आया था। होश न हो, तो यही होगा। करेंगे कुछ, हो जाएगा कुछ। और शराबी को होना बिल्कुल आसान है। क्योंकि चेहरा दिखाई दर्पण में पड़ रहा था, वहीं उसने पट्टियां लगा दीं।
कृष्ण कह रहे हैं कि केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व से जानते हैं।
केवल वे ही, जो होश से जगे हुए हैं और प्रतिपल जिनका ज्ञान जाग्रत है,
वे ही जन्म में, मृत्यु में, जीवन में, भीतर के तत्व को पूरी तरह पहचानते हैं।
क्योंकि योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए इस आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्व से जानते हैं। और जिन्होंने अपने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं।
यत्न ही काफी नहीं है। यत्न जरूरी है, पर्याप्त नहीं है। प्रयास तो करना होगा सघन, लेकिन अकेला प्रयास काफी नहीं है; हृदय की शुद्धि भी चाहिए।
यहां थोड़ा-सा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि बहुत बार ऐसा होता है कि लोग सिर्फ प्रयास ही करते रहते हैं, बिना इस बात की फिक्र किए कि भाव शुद्ध नहीं है, हृदय शुद्ध नहीं है। तो उसके परिणाम भयानक हो सकते हैं। कोई आदमी हृदय को शुद्ध न करे और एकाग्रता को साधे, कनसनट्रेशन को साधे। साध सकता है।
बुरे से बुरा आदमी भी एकाग्रता साध सकता है। एकाग्रता से बुराई का कोई लेना-देना नहीं है, बल्कि बुरा आदमी शायद एकाग्रता ज्यादा आसानी से साध सकता है। क्योंकि बुरे आदमी का एक लक्षण होता है कि वह जिस काम में भी लग जाए, पागल की तरह लगता है। और बुरा आदमी जिद्दी होता है, क्योंकि बुराई बिना जिद्द के नहीं की जा सकती। तो बुरे आदमी के लिए हठयोग बिल्कुल आसान है। उसको पकड़ भर जाए, उसके ख्याल में भर आ जाए। और बुरा आदमी दुष्टता कर सकता है, दूसरों के साथ भी, अपने साथ भी। दुष्टता करने में उसे अड़चन नहीं है।
अगर आप हठयोग साधेंगे, तो ऐसा लगेगा कि क्यों सताओ इस शरीर को! क्यों इतना आसन लगाकर बैठो! पैर दुखने लगते हैं; आंख से आंसू झरने लगते हैं। दुष्ट आदमी इनकी फिक्र नहीं करता। वह दूसरे को भी सता सकता है, उतनी ही मात्रा में खुद को भी सता सकता है।
इसलिए आप हैरान होंगे जानकर कि आपके तथाकथित योगियों में, महात्माओं में आधे से ज्यादा तो दुष्टजन हैं। पर उनकी दुष्टता दूसरों की तरफ नहीं है। इतनी भी उनकी बड़ी कृपा है। अपनी ही तरफ किए हुए हैं। इससे समाज को उनसे कोई हानि नहीं है। अगर हानि है, तो उनको खुद को है।
अगर एक दुष्ट हत्यारा एकाग्रता साधे, तो साध सकता है। लेकिन उसकी एकाग्रता से खतरा होगा। क्योंकि एकाग्रता से शक्ति आएगी, और हृदय शुद्ध नहीं है। उस शक्ति का दुरुपयोग होगा। आपने दुर्वासा ऋषि की कहानियां पढ़ी हैं। बस, वह इस तरह का आदमी दुर्वासा हो जाएगा। उसके पास शक्ति होगी; क्योंकि अगर वह कुछ भी कह दे, तो उसका परिणाम होगा।
अगर कोई व्यक्ति बहुत एकाग्रता साधा हो, तो उसके वचन में एक शक्ति आ जाती है, जो सामान्यतः दूसरों के वचन में नहीं होती। उसका वचन आपके हृदय के अंतस्तल तक प्रवेश कर जाता है। वह जो भी कहेगा, उसके पीछे बल होगा।
हमारी जो कथाएं हैं, वे झूठी नहीं हैं; उन कथाओं में सच है।

अगर एकाग्रता साधने वाला आदमी कह दे कि तुम कल मर जाओगे, तो बचना बहुत मुश्किल है। इसलिए नहीं कि उसके कहने में कोई जादू है, बल्कि उसके कहने में इतना बल है कि वह बात आपके हृदय में गहरे तक प्रवेश कर जाएगी। उसका तीर गहरा है, एकाग्र है, और उसने वर्षों तक अपने को साधा है। वह एक विचार पर अपनी पूरी शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। तो उसका विचार आपके लिए सजेशन बन जाएगा।
वह कह देगा, कल मर जाओगे! तो उसकी आंखें, उसका व्यक्तित्व, उसका ढंग, उसकी एकाग्रता, उसकी अखंडता, उस विचार को तीर की तरह आपके हृदय में चुभा देगी। अब आप लाख कोशिश करो, उस विचार से छुटकारा मुश्किल है। वह आपका पीछा करेगा। कल आने तक, वह कल आने के पहले ही आपको आधा मार डालेगा। कल आप मर जाएंगे।
अभिशाप इसलिए लागू नहीं होता कि परमात्मा अभिशाप पूरा करने को बैठा है; कि दुर्वासाओं का रास्ता देख रहा है कि अभिशाप दें, और परमात्मा पूरा करे। लेकिन दुर्वासा ने एकाग्रता साधी है वर्षों तक; पर हृदय शुद्ध नहीं है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, सिर्फ यत्न काफी नहीं है। अगर अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है, तो यत्न करते हुए भी अज्ञानीजन आत्मा को नहीं जानते हैं।
इसलिए दो बातें हैं। प्रयत्न चाहिए और साथ-साथ हृदय की शुद्धि चाहिए।
तो बुद्ध और महावीर जैसे साधकों ने तो हृदय की शुद्धि को पहले रखा है, ताकि भूल-चूक जरा भी न हो पाए। आहार शुद्धि, शरीर शुद्धि, आचरण शुद्धि, सब तरह से शुद्ध हो जाए व्यक्ति, फिर वे कहते हैं, यत्न करो। नहीं तो खतरा है। ऐसे खतरे कोई अतीत में कहानियों में घटे हैं, ऐसा ही नहीं है। अभी इस सदी के प्रारंभ में रूस में एक बहुत अदभुत व्यक्ति था, रासपुतिन। अनूठी प्रतिभा का आदमी था। ठीक उसी हैसियत का आदमी था, जिस हैसियत के आदमी गुरजिएफ या रमण। लेकिन एक खतरा था कि हृदय की शुद्धि नहीं थी।
रासपुतिन गहन साधना किया था। और पूरब की जितनी पद्धतियां हैं, सब पर काम किया था। ठेठ तिब्बत तक उसने खोजबीन की थी, और अनूठी शक्तियों का मालिक हो गया था। लेकिन हृदय साधारण था। साधारण आदमी का हृदय था। इसलिए जो चाहता, वह हो जाता था। लेकिन जो वह चाहता, वह गलत ही चाहता था। वह ठीक तो चाह नहीं सकता था।
पूरे रूस को डुबाने का कारण रासपुतिन बना, क्योंकि उसने.जार को प्रभावित कर लिया। खासकर.जार की पत्नी.जारीना को प्रभावित कर लिया। उसमें ताकत थी।
और ताकत सच में अदभुत थी। उसके दुश्मनों ने भी स्वीकार किया। क्योंकि
जब उसको मारा, हत्या की गई उसकी, तो उसको पहले बहुत जहर पिलाया, लेकिन वह बेहोश न हुआ। एकाग्रता इतनी थी उसकी। उसको जहर पिलाते गए, वह बेहोश न हुआ। जितने जहर से कहते हैं, पांच सौ आदमी मर जाते, उनसे वह सिर्फ बेहोश ही नहीं हुआ; मरने की तो बात ही अलग रही।
फिर उसको गोलियां मारीं, तो कोई बाईस गोलियां उसके शरीर में मारीं, तो
भी नहीं मरा! तो फिर उसको बांधकर और पत्थरों से लपेटकर वोल्गा के अंदर उसको डुबो दिया। और जब दो दिन बाद उसकी लाश मिली, तो उसने पत्थरों से अपने को छुड़ा लिया था। बंधन काट डाले थे। और डाक्टरों ने कहा कि वह पत्थरों की वजह से नहीं मरा है; उसके दो घंटे बाद मरा है।
अंदर भी वोल्गा में वह इतना सारा--इतना नशा, इतनी जहर, इतनी गोलियां, पत्थर बंधे--फिर भी उसने अपने पत्थर छोड़ लिए थे और अपने बंधन भी अलग कर डाले थे। हो सकता था, वह निकल ही आता। गहन शक्ति का आदमी था। लेकिन सारा प्रयोग उसकी शक्ति का उलटा हुआ।
रूस की क्रांति में लेनिन का उतना हाथ नहीं जितना रासपुतिन का है।
क्योंकि रासपुतिन ने रूस को बरबाद करवा दिया।.जार के ऊपर उसका प्रभाव था।
उसने जो चाहा, वह हुआ। सारा उपद्रव हो गया। उस उपद्रव का फल लेनिन ने उठाया। क्रांति आसान हो गई। आधा काम रासपुतिन ने किया, आधा लेनिन ने।

अगर हृदय शुद्ध न हो, तो शक्ति तो यत्न से आ सकती है। लेकिन उससे आत्मा नहीं आ जाएगी। यह रासपुतिन के पास इतनी ताकत है, लेकिन आत्मा नहीं है। यह शक्ति भी मन और शरीर की है।
हृदय की शुद्धि का अर्थ है, भावों की निर्मलता। बच्चे जैसा हृदय हो जाए। कठोरता छूटे, क्रोध छूटे, अहंकार छूटे, ईर्ष्या-द्वेष छूटे, घृणा- वैमनस्य छूटे और हृदय शुद्ध हो; और साथ में योग का यत्न हो। यत्न और शुद्ध भाव।
इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि सिर्फ योगी होना काफी नहीं है, भक्त होना
भी जरूरी है। सिर्फ योगी खतरनाक है, सिर्फ भक्त कमजोर है।
भक्त निर्बल है। वह सिर्फ दीनता-हीनता की प्रार्थना कर सकता है कि तुम पतित-पावन हो और मैं पापी हूं, मुझे मुक्त करो। यह सब कह सकता है।
लेकिन निर्बल है। उसके पास कोई शक्ति नहीं है। योगी के पास बड़ी शक्ति इकट्ठी हो सकती है, लेकिन उसके पास भाव नहीं है।
जहां भक्त और योगी का मिलन होता है, जहां भाव और यत्न दोनों संयुक्त
हो जाते हैं, वहां आत्मा उपलब्ध होती है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 15
पांचवां प्रवचन

एकाग्रता और हृदय-शुद्धि

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल आपने रासपुतिन की जो घटना कही, वह विस्मयजनक है। हमने तो अब तक यही सुना था कि शक्ति जब जागती है--उसे चाहे कुंडलिनी कहें या त्रिनेत्र--तो उसकी अग्नि में मनुष्य के सभी मैल, सभी कलुष जल जाते हैं, और वह शुद्ध और पवित्र हो जाता है!
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।। 12।।
गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।। 13।।
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। 14।।
सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैंरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। 15।।
और हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थित हुआ संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चंद्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान।
और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूं और रस-स्वरूप अर्थात अमृतमय सोम होकर संपूर्ण औषधियों को अर्थात वनस्पतियों को पुष्ट करता हूं।
मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता हूं।
और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन अर्थात संशय-विसर्जन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूं तथा वेदांत का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल आपने रासपुतिन की जो घटना कही, वह विस्मयजनक है। हमने तो अब तक यही सुना था कि शक्ति जब जागती है--उसे चाहे कुंडलिनी कहें या त्रिनेत्र--तो उसकी अग्नि में मनुष्य के सभी मैल, सभी कलुष जल जाते हैं, और वह शुद्ध और पवित्र हो जाता है!

इस संबंध में कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं।
एक, शक्ति स्वयं में निष्पक्ष और निरपेक्ष है। शक्ति न तो शुभ है और न अशुभ। उसका शुभ उपयोग हो सकता है; अशुभ उपयोग हो सकता है।
दीए से अंधेरे में रोशनी भी हो सकती है, और किसी के घर में आग भी लगाई
जा सकती है। जहर से हम किसी के प्राण भी ले सकते हैं, और किसी मरणासन्न व्यक्ति के लिए जहर औषधि भी बन सकता है।
शक्ति सभी--भौतिक या अभौतिक--निष्पक्ष और निरपेक्ष है। क्या उपयोग करते हैं, इस पर परिणाम निर्भर होंगे।
शुद्ध अंतःकरण न हुआ हो, तो भी शक्ति उपलब्ध हो सकती है। क्योंकि शक्ति की कोई शर्त भी नहीं कि शुद्ध अंतःकरण हो, तो ही उपलब्ध होगी।
अशुद्ध अंतःकरण को भी उपलब्ध हो सकती है। और अक्सर तो ऐसा होता है कि अशुद्ध अंतःकरण शक्ति को पहले उपलब्ध कर लेता है। क्योंकि शक्ति की आकांक्षा भी अशुद्धि की ही आकांक्षा है।

शुद्ध अंतःकरण शक्ति की आकांक्षा नहीं करता, शांति की आकांक्षा करता है। अशुद्ध अंतःकरण शक्ति की आकांक्षा करता है, शांति की नहीं। शुद्ध अंतःकरण को शक्ति मिलती है, वह प्रसाद है; वह परमात्मा की कृपा है, अनुकंपा है। वह उसने मांगा नहीं है; वह उसने चाहा भी नहीं है। वह उसने खोजा भी नहीं है। वह उसे सहज मिला है।
अशुद्ध अंतःकरण को शक्ति मिलती है, वह उसकी वासना की मांग है। वह प्रभु का प्रसाद नहीं है। वह उसने चाहा है, यत्न किया है, और उसे पा लिया है। शक्ति की चाह ही हमारे भीतर इसलिए पैदा होती है कि हम कुछ करना चाहते हैं। शक्ति के बिना न कर सकेंगे।
शुद्ध अंतःकरण कुछ करना नहीं चाहता। शक्ति की कोई जरूरत भी नहीं है। अशुद्ध अंतःकरण बहुत कुछ करना चाहता है। वासनाओं की पूर्ति करनी है; महत्वाकांक्षाएं भरनी हैं; मन की पागल दौड़ है, उस दौड़ के लिए सहारा चाहिए, ईंधन चाहिए। तो शक्ति की मांग होती है।
और शक्ति मिलती है न तो शुद्धि से, न अशुद्धि से। शक्ति मिलती है यत्न, प्रयत्न, साधना से। अगर कोई व्यक्ति अपने चित्त को एकाग्र करे, तो शुभ विचार पर भी एकाग्र कर सकता है, अशुभ विचार पर भी।
इस संबंध में महावीर की अंतर्दृष्टि बड़ी गहरी है। महावीर ने ध्यान के
दो रूप कर दिए हैं। एक को वे धर्म-ध्यान कहते हैं; एक को अधर्म-ध्यान। ऐसा भेद मनुष्य जाति के इतिहास में किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया। यह भेद बड़ा कीमती है। हमें तो लगेगा कि सभी ध्यान धार्मिक होते हैं। लेकिन महावीर दो हिस्से करते हैं, अधर्म-ध्यान और धर्म-ध्यान।
तो ध्यान अपने आप में धार्मिक नहीं है। शुद्ध अंतःकरण के साथ जुड़े तो
ही धार्मिक है, अशुद्ध अंतःकरण के साथ जुड़े तो अधार्मिक है।
आपको भी अनुभव हुआ होगा। धार्मिक ध्यान का तो अनुभव शायद न हुआ हो, लेकिन अधार्मिक ध्यान का आपको भी अनुभव हुआ है।
जब आप क्रोध में होते हैं, तो चित्त एकाग्र हो जाता है। जब कामवासना
से भरते हैं, तो चित्त एकाग्र हो जाता है। परमात्मा पर मन को लगाना हो, तो यहां-वहां भटकता है। एक सुंदर स्त्री मन में समा जाए, तो भटकता नहीं है; सुंदर स्त्री में रुक जाता है। परमात्मा की मूर्ति पर ध्यान को लगाएं, तो बड़ी मेहनत करनी पड़ती है तो भी नहीं रुकता। एक नग्न स्त्री का चित्र सामने रखा हो, तो मन एकदम रुक जाता है; कहीं जाता नहीं। पास शोरगुल भी होता रहे, तो भी मन विचलित नहीं होता।
इसे महावीर अधर्म-ध्यान कहते हैं। यह भी ध्यान तो है ही। क्योंकि ध्यान का तो मतलब है, मन का ठहर जाना। वह कहां ठहरता है, यह सवाल नहीं है। जब आप क्रोध में होते हैं, तब मन ठहर जाता है। इसलिए आपको अनुभव होगा
कि क्रोध में आपकी शक्ति बढ़ जाती है। साधारणतः हो सकता है आपमें इतनी शक्ति न हो, लेकिन जब क्रोध में आप होते हैं, तो अनंत गुना शक्ति हो जाती है। क्रोध की अवस्था में लोगों ने ऐसे पत्थरों को हटा दिया है, जिनको सामान्य अवस्था में वे हिला भी नहीं सकते। क्रोध की अवस्था में अपने से दुगुने ताकतवर आदमियों को लोगों ने पछाड़ दिया है, जिनको साधारण अवस्था में वे देखकर भाग ही खड़े होते।
क्रोध में मन एकाग्र हो जाता है; शक्ति उपलब्ध होती है। वासना के क्षण में मन एकाग्र हो जाता है; शक्ति उपलब्ध होती है। एकाग्रता शक्ति है। कहां एकाग्र कर रहे हैं, यह बात... एकाग्रता के लिए आवश्यक नहीं है कि वह शुभ हो या अशुभ हो।
रासपुतिन जैसे व्यक्ति बड़ी एकाग्रता को साधते हैं। लेकिन हृदय अशुद्ध है, तो उस एकाग्रता का अंतिम परिणाम अशुभ होता है। रासपुतिन ने अपनी शक्तिओं का जो उपयोग किया... ।
.जार का एक ही लड़का था; रूस के सम्राट का एक ही लड़का था। और सम्राट और सम्राज्ञी दोनों ही उस लड़के के लिए बड़े चिंतातुर थे। वह बचपन से ही बीमार था, अस्वस्थ था। रासपुतिन की किसी ने खबर दी कि वह शायद ठीक कर दे। रासपुतिन ने उसे ठीक भी कर दिया। रासपुतिन ने उसके सिर पर हाथ रखा और वह बच्चा पहली दफा ठीक स्वस्थ अनुभव हुआ।

लेकिन तब से सम्राट के पूरे परिवार को रासपुतिन का गुलाम हो जाना पड़ा। क्योंकि रासपुतिन दो दिन के लिए कहीं चला जाए, तो वह बच्चा अस्वस्थ हो जाए। रासपुतिन का रोज राजमहल आना जरूरी है। और यह बात थोड़े दिन में साफ हो गई कि रासपुतिन अगर न होगा, तो बच्चा मर जाएगा। इलाज तो कम हुआ, इलाज बीमारी बन गया! पहले तो कुछ चिकित्सकों का परिणाम भी होता था, अब किसी का भी कोई परिणाम न रहा। अब रासपुतिन की मौजूदगी नियमित चाहिए।
और उस लड़के के आधार पर रासपुतिन जितना शोषण कर सकता था.जार का और .जारीना का, उसने किया। उसने जो चाहा, वह करवाया। मुल्क का प्रधानमंत्री भी नियुक्त करना हो, तो रासपुतिन जिसको इशारा करे, वह प्रधानमंत्री हो जाए। क्योंकि वह लड़के की जान उसके हाथ में हो गई। जिस व्यक्ति ने चित्त को बहुत एकाग्र किया हो, यह बड़ा आसान है। वह बच्चा सम्मोहित हो गया। वह बच्चा हिप्नोटाइज्ड हो गया। अब यह सम्मोहित अवस्था उस बच्चे की, शोषण का आधार बन गई।
जीसस ने भी लोगों को स्वस्थ किया है। जीसस ने भी लोगों के सिर पर हाथ रखकर उनकी बीमारियां अलग कर दी हैं। रासपुतिन के पास भी ताकत वही है, जो जीसस के पास है। रासपुतिन भी बीमारी दूर कर सकता है। लेकिन रासपुतिन बीमारी को रोक भी सकता है; जीसस वह न कर सकेंगे। रासपुतिन बीमारी का शोषण भी कर सकता है; जीसस वह न कर सकेंगे।
हृदय शुद्ध हो, तो वही शक्ति सिर्फ चिकित्सा बनेगी। हृदय अशुद्ध हो,
तो वही शक्ति शोषण भी बन सकती है।
कठिनाई हमें समझने में यह होती है कि अशुद्ध हृदय एकाग्र कैसे हो सकता है! कोई अड़चन नहीं है। एकाग्रता तो एक कला है; मन को एक जगह रोकने की कला है। इसलिए अगर दुनिया में बुरे लोगों के पास भी शक्ति होती है, तो उसका कारण यही है कि उनके पास भी एकाग्रता होती है।
हिटलर के पास बड़ी एकाग्रता है। जर्मन जैसी बुद्धिमान जाति को इतने बड़े पागलपन में उतार देना सामान्य व्यक्ति की क्षमता नहीं है। हिटलर ने जो भी कहा, वह जर्मन जाति ने स्वीकार कर लिया। उसकी आंखों में जादू था। उसके कहने में बल था। उसके खड़े होते से सम्मोहन पैदा हो जाता।
जर्मनी की पराजय के बाद जिन लोगों ने अंतर्राष्ट्रीय अदालत में वक्तव्य दिए--उसमें बड़े बुद्धिमान लोग थे, प्रोफेसर थे, युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे--उन्होंने यही कहा कि हम अब सोच भी नहीं पाते कि हमने यह सब कैसे किया! जैसे कोई शक्ति हमसे करवा रही थी।
दुनिया में बुरे आदमी के पास भी ताकत होती है; भले आदमी के पास भी ताकत होती है। ताकत एक ही है। बुरे आदमी के पास हृदय का यंत्र बुरा है। वही ताकत उसके बुरे यंत्र को चलाती है।
यह बिजली दौड़ रही है। इससे बिजली भी चल रही है, पंखा भी चल रहा है।
पंखा खराब हो, बिजली वही दौड़ती रहेगी, लेकिन पंखे में खड़-खड़ शुरू हो जाएगी। पंखा बहुत खराब हो, तो टूटकर गिर भी सकता है, और किसी के प्राण भी ले सकता है। कसूर बिजली का नहीं है।
मनुष्य तो एक यंत्र है। शक्ति तो सभी परमात्मा की है, चाहे बुरे आदमी में हो, चाहे भले आदमी में हो। शक्ति का स्रोत तो एक ही है। राम में भी वही स्रोत है; रावण में भी वही स्रोत है। रावण के लिए कोई अलग मार्ग नहीं है शक्ति को पाने का। उसी महास्रोत से रावण भी शक्ति पाता है, जिस महास्रोत से राम शक्ति पाते हैं।
शक्ति के स्रोत में कोई भी फर्क नहीं है, लेकिन दोनों के हृदय में फर्क है। एक के पास शुद्ध हृदय है; एक के पास अशुद्ध हृदय है। उस अशुद्ध हृदय में से शक्ति विनाशक हो जाती है। शुद्ध हृदय से शक्ति निर्मात्री, सृजनात्मक हो जाती है। शुद्ध से जीवन बहने लगता है; अशुद्ध से मृत्यु बहने लगती है। शुद्ध से प्रकाश बन जाता है, अशुद्ध से अंधकार बन जाता है। लेकिन शक्ति का स्रोत एक है। दो स्रोत हो भी नहीं सकते; दो स्रोत का कोई उपाय भी नहीं है। कितना ही बुरा आदमी हो, परमात्मा उसके भीतर वही है। इसलिए जो सदगुरु वस्तुतः सैकड़ों लोगों पर साधना के प्रयोग किए हैं, करवाए हैं, उन्होंने अनिवार्यरूप से कुछ व्यवस्था की है जिससे कि अंतःकरण शुद्ध हो। या तो साधना के साथ शुद्ध हो या साधना के पूर्व शुद्ध हो; शक्ति

की घटना घटने के पहले अंतःकरण शुद्ध हो जाए। अन्यथा हित की जगह अहित की संभावना है।
आप सोचें, अगर आपको अभी शक्ति मिल जाए, तो आप क्या करेंगे? अगर आपको एक शक्ति मिल जाए कि आप चाहें तो किसी को जीवन दे सकें और चाहे तो किसी को मृत्यु दे सकें, तो आपके मन में सब से पहले क्या ख्याल उठेगा?
शायद यह आपके मन में ख्याल उठे कि मित्र को मैं शाश्वत बना दूं। लेकिन शत्रु को नष्ट कर दूं, यह ख्याल पहले उठेगा। वह जो अंतःकरण भीतर है, जैसा है, वैसे ही ख्याल देगा।
अगर आपको यह शक्ति मिल जाए कि आप अदृश्य हो सकते हैं, तो आपको यह ख्याल शायद ही आए कि अदृश्य होकर जाऊं और लोगों के पैर दबाऊं, सेवा करूं। मैं नहीं सोचता कि यह ख्याल भी आ सकता है। अदृश्य होने का ख्याल आते ही से, किसकी पत्नी को आप ले भागें, किसकी तिजोरी खोल लें, जहां कल तक आप प्रवेश नहीं कर सकते थे, वहां कैसे प्रवेश कर जाएं, वही ख्याल आएगा।
सोचने भर से कि आपको अगर अदृश्य होने की शक्ति मिल जाए, तो आप क्या करेंगे? एक कागज पर आप बैठकर आज ही रात लिखना, तो आपको ख्याल में आ जाएगा कि... अभी शक्ति मिल नहीं गई है, सिर्फ ख्याल है, लेकिन मन सपने संजोना शुरू कर देगा कि क्या करना है।
और शक्ति अशुद्ध को भी मिल सकती है। इसलिए शक्ति के स्रोत छिपाकर रखे
गए हैं। सीक्रेसी; योग, तंत्र और धर्म के आस-पास इतनी गुप्तता का कुल कारण यही है। क्योंकि शक्ति का स्रोत गलत आदमी को भी मिल सकता है; खतरनाक आदमी को भी मिल सकता है। और जब भी कोई विज्ञान--कोई भी विज्ञान, चाहे आंतरिक, चाहे बाह्य--ऊंचाइयों पर पहुंचता है, तो खतरे शुरू हो जाते हैं।
अभी पश्चिम में विचार चलता है कि विज्ञान की जो नई खोजें हैं, वे गुप्त रखी जाएं; अब उनको प्रकट न किया जाए। क्योंकि विज्ञान की नई खोजें अब खतरे की सीमा पर पहुंच गई हैं। वे बुरे आदमी के हाथ में पड़ सकती हैं। पड़ ही रही हैं; क्योंकि राजनीतिज्ञ के हाथ में पड़ जाती है सारी खोज। आइंस्टीन, जिसने हाथ बंटाया अणु शक्ति के निर्माण में, उसने कभी सोचा
भी नहीं था कि हिरोशिमा और नागासाकी में एक-एक लाख लोग जलकर राख हो जाएंगे मेरी खोज से।
आइंस्टीन से मरने के पहले किसी ने पूछा कि तुम अगर दुबारा जन्म लो तो क्या करोगे? तो उसने कहा, मैं एक प्लंबर होना पसंद करूंगा बजाय एक वैज्ञानिक होने के। क्योंकि वैज्ञानिक होकर देख लिया कि मेरे माध्यम से, मेरे बिना जाने, मेरी बिना आकांक्षा के, मेरे विरोध में, मेरे ही हाथों से जो काम हुआ, उसके लिए मैं रोता हूं।
क्योंकि शक्ति तो खोजता है वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ के हाथ में पहुंच जाती है। और राजनीतिज्ञ शुद्ध रूप से अशुद्ध आदमी है। वह पूरा अशुद्ध आदमी है। क्योंकि उसकी दौड़ ही शक्ति की है। उसकी चेष्टा ही महत्वाकांक्षा की है। दूसरों पर कैसे हावी हो जाए!
तो आइंस्टीन ने अपने अंतिम पत्रों में अपने मित्रों को लिखा है कि भविष्य में अब हमें सचेत हो जाना चाहिए। और हम जो खोजें, वह गुप्त रहे।
यह ख्याल पश्चिम को अब आ रहा है। लेकिन हिंदुओं को यह ख्याल आज से तीन हजार साल पहले आ गया।
पश्चिम में बहुत लोग विचार करते हैं कि हिंदुओं ने, जिन्होंने इतनी गहरी चिंतना की, उन्होंने विज्ञान की बहुत-सी बातें क्यों न खोजीं!
चीन को आज से तीन हजार साल पहले यह ख्याल आ गया कि विज्ञान खतरनाक है। चीन में सबसे पहले बारूद खोजी गई। लेकिन चीन ने बम नहीं बनाए; फुलझड़ी- फटाके बनाए। बारूद वही है, लेकिन चीन ने फुलझड़ी-फटाके बनाकर बच्चों का खेल किया, इससे ज्यादा उनका उपयोग नहीं किया।
यह तो बिल्कुल साफ है कि जो फुलझड़ी-फटाके बना सकता है, उसको साफ है कि इससे आदमी की हत्या की जा सकती है। क्योंकि कभी-कभी तो फुलझड़ी-फटाके से हत्या हो जाती है। हर साल दीवाली पर न मालूम कितने बच्चे इस मुल्क में मरते हैं; अपंग हो जाते हैं; आंख फूट जाती है; हाथ जल जाते हैं।
तो तीन हजार साल पहले चीन को फटाके बनाने की कला आ गई। बम बड़ा फटाका है। लेकिन चीन ने उस कला को उस तरफ जाने ही नहीं दिया, उसको खेल बना दिया।

जैसे ही यूरोप में बारूद पहुंची कि उन्होंने तत्काल बम बना लिया। बारूद की ईजाद पूरब में हुई और बम बना पश्चिम में।
हिंदुओं को, चीनिओं को तीन हजार साल पहले बहुत-से विज्ञान के सूत्रों
का ख्याल हो गया। और उन्होंने वे बिल्कुल गुप्त कर दिए। वे सूत्र नहीं उपयोग करने हैं।
न केवल विज्ञान के संबंध में, बल्कि धर्म के संबंध में भी हिंदुओं को, तिब्बतिओं को, चीनिओं को, पूरे पूरब को कुछ गहन सूत्र हाथ में आ गए। और यह बात भी साफ हो गई कि ये सूत्र गलत आदमी के हाथ में जाएंगे, तो खतरा है। तो उन सूत्रों को अत्यंत गुप्त कर दिया। जब गुरु समझेगा शिष्य को इस योग्य, तब वह उसके कान में दे देगा। सीक्रेसी, अत्यंत गुप्तता और गुह्यता है। और वह तब ही देगा, जब वह समझेगा कि शिष्य इस योग्य हुआ कि शक्ति का दुरुपयोग न होगा।
इसलिए जो भी महत्वपूर्ण है, वह शास्त्रों में नहीं लिखा हुआ है। शास्त्रों में तो सिर्फ अधूरी बातें लिखी हुई हैं। कोई भी गलत आदमी शास्त्र के माध्यम से कुछ भी नहीं कर सकता। शास्त्र में मूल बिंदु छोड़ दिए गए हैं। जैसे सब बता दिया गया है, लेकिन चाबी शास्त्र में नहीं है। महल का पूरा वर्णन है। भीतर के एक-एक कक्ष का वर्णन है। लेकिन ताला कहां लगा है, इसकी किसी शास्त्र में कोई चर्चा नहीं है। और चाबी का तो कोई हिसाब शास्त्र में नहीं है। चाबी तो हमेशा व्यक्तिगत हाथों से गुरु शिष्य को देगा।
जिसको हम मंत्र कहते रहे हैं और दीक्षा कहते रहे हैं, वह गुप्तता में,
जो जानता है उसके द्वारा उसको चाबी दिए जाने की कला है, जिससे खतरा नहीं है, जो दुरुपयोग नहीं करेगा; और चाबी को सम्हालकर रखेगा, जब तक कि योग्य आदमी न मिल जाए। और अगर योग्य आदमी न मिले, तो हिंदुओं ने तय किया कि चाबी को खो जाने देना; हर्जा नहीं है। जब भी योग्य आदमी होंगे, चाबी फिर खोजी जा सकती है। लेकिन गलत आदमी के हाथ में चाबी मत देना। वह बड़ा खतरा है। और एक बार गलत आदमी के हाथ में चाबी चली जाए, तो अच्छे आदमी के पैदा होने का उपाय ही समाप्त हो जाता है।
तो ज्ञान चाहे खो जाए, लेकिन गलत को मत देना। यह जो हिंदुओं ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की व्यवस्था की, उस व्यवस्था में यह सारा का सारा ख्याल था। ब्राह्मण के अतिरिक्त चाबी किसी को न दी जाए। शूद्र के हाथ तक तो पहुंचने न दी जाए।
शूद्र से कोई मतलब उस आदमी का नहीं, जो शूद्र घर में जन्मा है। हिंदुओं का हिसाब बहुत अनूठा है। हिंदुओं का हिसाब यह है कि पैदा तो हर आदमी शूद्र ही होता है। शूद्रता तो जन्म से सभी को मिलती है। इसलिए ब्राह्मण को हम द्विज कहते हैं। उसका दुबारा जन्म होना चाहिए। वह गुरु के पास फिर से उसका जन्म होगा।
मां-बाप ने जो जन्म दिया, उसमें तो शूद्र ही पैदा होता है। उससे कोई कभी ब्राह्मण पैदा नहीं होता है। और जो अपने को मां-बाप से पैदा होकर ब्राह्मण समझ लेता है, उसे कुछ पता ही नहीं है।
ब्राह्मण तो पैदा होगा गुरु की सन्निधि में। वह दुबारा उसका जन्म होगा, वह ट्वाइस बॉर्न होगा। इसलिए हम उसे द्विज कहते हैं, जिसका दूसरा जन्म हो गया। और दूसरे जन्म के बाद वह अधिकारी होगा कि गुरु उसे जो गुह्य है, जो छिपा है, वह दे। जो नहीं दिया जा सकता सामान्य को, वह उसे दे। वह उसकी धरोहर होगी।
इसलिए बहुत सैकड़ों वर्ष तक हिंदुओं ने चेष्टा की कि उनके शास्त्र लिखे न जाएं, कंठस्थ किए जाएं। क्योंकि लिखते ही चीज सामान्य हो जाती है, सार्वजनिक हो जाती है। फिर उस पर कब्जा नहीं रह जाता। फिर नियंत्रण रखना असंभव है।
और जब लिखे भी गए शास्त्र, तो मूल बिंदु छोड़ दिए गए हैं। इसलिए आप शास्त्र कितना ही पढ़ें, सत्य आपको नहीं मिल सकेगा। सब शास्त्र पढ़कर आपको अंततः गुरु के पास ही जाना पड़ेगा।

तो सभी शास्त्र गुरु तक ले जा सकते हैं; बस। और सभी शास्त्र आप में प्यास जगाएंगे और बेचैनी पैदा करेंगे, और चाबी कहां है, इसकी चिंता पैदा होगी। और तब आप गुरु की तलाश में निकलेंगे, जिसके पास चाबी मिल सकती है। आध्यात्मिक विज्ञान तो और भी खतरनाक है। क्योंकि आपको ख्याल ही नहीं
कि आध्यात्मिक विज्ञान क्या कर सकता है। अगर कोई व्यक्ति थोड़ी-सी भी एकाग्रता साधने में सफल हो जाए, तो वह दूसरे लोगों के मनों को बिना उनके जाने प्रभावित कर सकता है। आप छोटे-मोटे प्रयोग करके देखें, तो आपको ख्याल में आ जाएगा।
रास्ते पर जा रहे हों, किसी आदमी के पीछे चलने लगें; कोई तीन-चार कदम
का फासला रखें। फिर दोनों आंखों को उसकी चेथी पर, सिर के पीछे थिर कर लें। एक सेकेंड भी आप एकाग्र नहीं हो पाएंगे कि वह आदमी लौटकर पीछे देखेगा। आपने कुछ किया नहीं; सिर्फ आंख... ।
लेकिन ठीक रीढ़ के आखिरी हिस्से से मस्तिष्क शुरू होता है। मस्तिष्क रीढ़ का ही विकास है। जहां से मस्तिष्क शुरू होता है, वहां बहुत संवेदनशील हिस्सा है। आपकी आंख का जरा-सा भी प्रभाव, और वह संवेदना वहां पैदा हो जाती है; सिर घुमाकर देखना जरूरी हो जाएगा।
और अगर आप दस-पांच लोगों पर प्रयोग करके समझ जाएं कि यह हो सकता है, तो
उस संवेदनशील हिस्से से कोई भी विचार किसी व्यक्ति में डाला जा सकता है। बहुत बार ऐसा होता है; आपको पता भी नहीं होता है कि बहुत-से विचार आप में किस भांति प्रवेश कर जाते हैं। बहुत बार ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति के पास आप जाते हैं और आपके विचार तत्काल बदलने लगते हैं; बुरे या अच्छे होने लगते हैं।
संतों के पास अक्सर अनुभव होगा कि उनके पास जाकर आपके विचारों में एक झोंका आ गया; कुछ बदलाहट हो गई। बुरे आदमी के पास जाकर भी एक झोंका आता है; कुछ बदलाहट हो जाती है।
संत किसी भावना में जीता है। उस भावना में वह इतनी सघनता से जीता है
कि जैसे ही आप उसके पास जाते हैं, आपके मस्तिष्क में उसकी चोट पड़नी शुरू हो जाती है। वहां एक सतत वातावरण है।
बुरा आदमी भी एक भावना में जीता है। वह उसकी एकाग्रता है। उसके पास आप जाते हैं कि चोट पड़नी शुरू हो जाती है।
भीड़ में जब भी आप जाते हैं, तभी आप लौटकर अनुभव करेंगे कि मन उदास हो गया, थक गया; जैसे आप कुछ खोकर लौटे हैं। क्योंकि भीड़ एक उत्पात है; उसमें कई तरह के मस्तिष्क हैं, कई तरह की एकाग्रताएं हैं। वे सब एक साथ आपके ऊपर हमला कर देती हैं।
इसलिए सदियों से साधक एकांत की तलाश करता रहा है। एकांत की तलाश, आप जानकर हैरान होंगे, जंगल और पहाड़ के लिए नहीं है। एकांत की तलाश आपसे बचने के लिए है। वह कोई जंगल की खोज में नहीं जा रहा है, न पहाड़ की खोज में जा रहा है। वह आपसे दूर हट रहा है। वह आपसे बच रहा है। नकारात्मक है खोज। पहाड़ क्या दे सकते हैं! पहाड़ कुछ नहीं दे सकते। लेकिन आप बहुत कुछ छीन सकते हैं। पहाड़ों के पास कोई मस्तिष्क नहीं है। इसलिए पहाड़ों के पास आप निश्चिंत रह सकते हैं। वे न तो बुरा देंगे, न भला देंगे। जो आपके भीतर है, वही होगा। लेकिन आदमियों के पास आप निश्चिंत नहीं रह सकते। क्योंकि पूरे समय उनके विचार आप में प्रवाहित हो रहे हैं--वे न भी बोलें तो भी, वे न भी चाहें तो भी। उनका कचरा आप में बह रहा है; आपका कचरा उनमें बह रहा है।
तो जब भी आप भीड़ में जाते हैं, आप कचरे से भरकर लौटते हैं। एक कनफ्यूजन, एक भीतर भीड़ पैदा हो जाती है।
अगर आपको थोड़ी सी भी एकाग्रता अनुभव हो जाए, तो आप किसी के भी विचार बदल सकते हैं। बड़ी ताकत है विचार बदलने में। तर्क करने की जरूरत नहीं है। विवाद करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ एक विचार सतत किसी की तरफ फेंकने की जरूरत है। उसके विचार बदलने शुरू हो जाते हैं।
और अगर आप कोई अशुभ काम करवाना चाहें, तो कोई अड़चन नहीं है। उसकी जेब में हाथ डालकर उसके नोट निकालने की जरूरत नहीं है। उससे ही कहा जा सकता है कि निकालो नोट और सड़क पर गिरा दो। वह खुद ही रूमाल निकालने के बहाने रूमाल के साथ नोट भी गिरा देगा। और वह सोचेगा कि भूल से गिर गया।

जीवन के गहन में प्रवेश किया जा सकता है एकाग्रता के सेतु से। शुभ भी किया जा सकता है, अशुभ भी किया जा सकता है। इसलिए एकाग्रता की कला किसी शास्त्र में लिखी हुई नहीं है। और जो भी लिखा हुआ है, उसको आप वर्षों करते रहें, तो भी एकाग्र न होंगे।
इसलिए बहुत लोग मेरे पास आते हैं; वे कहते हैं कि हम वर्षों से एकाग्रता साध रहे हैं, लेकिन कुछ हो नहीं रहा है! वे किताब पढ़कर साध रहे हैं। कभी होगा भी नहीं। थोड़े दिन में थक जाएंगे। किताब भी फेंक देंगे, एकाग्रता को भी भूल जाएंगे।
वह एकाग्रता तभी कोई उनको बता सकेगा, जब पाया जाएगा कि उनका हृदय उस शुद्धि में है कि अब वे किसी को नुकसान नहीं पहुंचा सकते हैं। बच्चों के हाथ में तलवार नहीं दी जा सकती। और जो दे, वह आदमी मंगलदायी नहीं है। रासपुतिन या दुर्वासा, या उस तरह के लोग शक्तिशाली लोग हैं। अदम्य उनके पास ऊर्जा है; लेकिन हृदय की शुद्धि नहीं है।
रासपुतिन जैसे लोग कैसे सूत्र खोज लेते हैं? रासपुतिन भटका है। जैसे गुरजिएफ सूफी फकीरों, लामाओं, ईरान, तिब्बत, भारत, मिस्र, सब जगह जैसे गुरजिएफ भटका कोई बीस साल तक सूत्रों की तलाश में, वैसे ही रासपुतिन भी भटका है। और आज की नैतिकता इतनी कमजोर है कि जिनको आप साधारणतः साधु भी कहते हैं, वे भी खरीदे जा सकते हैं। और छोटी-मोटी बातें लीक आउट हो जाती हैं।
रासपुतिन भटका तलाश में कि कहां से सूत्र मिल सकते हैं। और उसने जरूर कहीं से सूत्र खरीद लिए। उसने अथक मेहनत की। और वर्षों के श्रम के बाद उसने कुछ रास्ते निकाल लिए। कुछ छोटी-मोटी कुंजियां उसके हाथ में आ गईं। और उसने उनका उपयोग किया।
आज भी कुछ लोगों के पास छोटे-मोटे सूत्र हैं। अनेक कारणों से गलत लोगों के पास भी सूत्र पहुंच गए हैं। कभी मोह के कारण पहुंच जाते हैं; कभी भूल-चूक से भी पहुंच जाते हैं। कभी बाप मरता है और सिर्फ मोह के कारण कुछ जानता है, वह बेटे को दे जाता है। बेटा योग्य नहीं भी होता है तो भी। कभी गुरु मरता है और सिर्फ इस आशा में दे जाता है कि आज नहीं कल शिष्य योग्य हो जाएगा।
कई बार सूत्रों की चोरी भी हो जाती है। धन की ही चोरी नहीं हो सकती, सूत्रों की भी चोरी हो सकती है।
हिंदुस्तान में बहुत दिन तक वैसा हुआ। बौद्धों के पास कुछ सूत्र थे,
जो हिंदुओं के पास नहीं थे। तो हिंदू बौद्ध भिक्षु बनकर वर्षों तक बौद्ध गुरुओं की शरण में रहे, ताकि कुछ सूत्र वहां से पाए जा सकें। कुछ सूत्र हिंदुओं के पास थे, जो जैनों या बौद्धों के पास नहीं थे। तो जैन और बौद्ध, हिंदू बनकर वर्षों तक हिंदू गुरुओं की शरण में रहे, ताकि कहीं से कुछ पाया जा सके। और जैसे ही उन्होंने पा लिया, वह दूसरी परंपरा को दे दिया गया। हजारों साल से खोज चलती है। उस खोज में ठीक और गलत सब तरह के लोग लगे हुए हैं।
रासपुतिन ने भी सूत्र खोज लिए। और मनुष्य तो शक्तिशाली था। क्योंकि सूत्रों से ही कुछ नहीं होता। आपको अगर कुंजी भी दे दी जाए, तो आप इतने कमजोर हैं कि कुंजी हाथ में रखे बैठे रहेंगे, ताले तक भी कुंजी नहीं पहुंचाएंगे। या भरोसा ही न करेंगे कि कुंजी खोल भी सकती है कुछ। या कुंजी को कुछ और समझते रहेंगे। या जहां ताला नहीं है, वहां कुंजी लगाते रहेंगे। लेकिन रासपुतिन अथक चेष्टा किया; और उसने कुछ पाया। और उसे पाकर उसने श्रम भी किया उस पर। और एक बड़ी अनूठी क्षमता बुराई की उसने पैदा कर ली। रासपुतिन प्रतीक बन गया इस सदी में बुरे से बुरे आदमी का। लेकिन बड़ा शक्तिशाली था।
ध्यान रहे, हृदय की शुद्धि अत्यंत अपरिहार्य है।
इसलिए बुद्ध ने तो अपने शिष्यों को पहले चार ब्रह्मविहार साधने को कहा है। जब तक ये चार ब्रह्मविहार न सध जाएं--ब्रह्मविहार, जब तक ब्रह्म में इनके द्वारा विहार न होने लगे--तब तक कोई योगिक साधना नहीं करनी है। तो करुणा पहले सध जाए; मैत्री पहले सध जाए; मुदिता पहले सध जाए; उपेक्षा पहले सध जाए।

ये चारः करुणा, मैत्री, मुदिता, उपेक्षा। क्योंकि जिसकी करुणा गहन है,
वह किसी को नुकसान न पहुंचा सकेगा। जिसकी मैत्री की भाव-दशा है, उसके लिए कोई शत्रु न रह जाएगा। और मुदिता का अर्थ है, प्रफुल्लता, प्रसन्नता। जो प्रसन्न है और प्रफुल्ल है, वह किसी को दुखी नहीं करना चाहता। सिर्फ दुखी आदमी ही दूसरे को दुखी करना चाहता है।
तो जब भी आप किसी को दुखी करना चाहते हों, समझना कि आप दुखी हैं। आनंदित आदमी किसी को दुखी नहीं करना चाहता। आनंदित आदमी चाहता है, सभी आनंदित हो जाएं। आनंदित आदमी आनंद को बांटना और फैलाना चाहता है। जो हमारे पास है, वही हम बांटते हैं; उसी को हम फैलाते हैं।
इसलिए बुद्ध ने मुदिता को अनिवार्य कहा। क्योंकि जब तक तुम प्रसन्नचित्त न हो जाओ, तब तक तुम खतरनाक हो।
दुखी आदमी खतरा है। वह किसी को सुखी नहीं देखना चाहेगा। दुखी आदमी चाहता है कि सब लोग मुझसे ज्यादा दुखी हों, तभी उसको लगता है कि मैं थोड़ा सुखी हूं, तुलना में।
और चौथा बुद्ध ने कहा, उपेक्षा, इनडिफरेंस। बुद्ध ने कहा, जब ऐसी उपेक्षा सध जाए कि जीवन हो या मृत्यु, बराबर मालूम पड़े। सुख हो या दुख, समान मालूम पड़े। हानि हो या लाभ, सफलता हो या विफलता, कोई चिंता न रह जाए। इन चार ब्रह्मविहारों के सध जाने के बाद साधक योग में प्रवेश करे।
इसलिए पतंजलि ने भी आठ यम-नियम की पहले ही व्यवस्था दी है। और इसके पहले कि धारणा, ध्यान और समाधि के अंतिम तीन चरण आएं, पांच चरणों में हृदय का पूरा रूपांतरण है। वे जो पांच प्राथमिक चरण हैं, जब तक उनसे हृदय का रूपांतरण न होता हो, तब तक तीन चरण, पतंजलि राजी नहीं हैं।
अभी पश्चिम में पूरब से कई कुंजियां पहुंच रही हैं। जैसे महेश योगी ध्यान की एक पद्धति पश्चिम ले गए। तो उन्होंने बाकी सारे यम-नियम अलग कर दिए। सिर्फ मंत्र-योग। उसका परिणाम होता है; लेकिन खतरनाक है। आग के साथ खेलना है। और लोग जल्दी उत्सुक होते हैं, क्योंकि न कोई नियम है, न कोई साधना है। बस, एक बीस मिनट बैठकर एक मंत्र-जाप कर लेना है; पर्याप्त है। तुम चोर हो, तो अंतर नहीं पड़ता; तुम बेईमान हो, तो अंतर नहीं पड़ता। तुम हत्यारे हो, तो अंतर नहीं पड़ता। बीस मिनट मंत्र-जाप कर लेना है।
उस मंत्र-जाप से शांति मिलती है, क्योंकि मंत्र मन को संगीत से भर देता है। लेकिन ध्यान रहे, हत्यारे को शांति मिलनी उचित नहीं है। क्योंकि हत्यारे की पीड़ा क्या है? कि उसने हत्या की है! यह उसकी पीड़ा है; यह अपराध उसके ऊपर है। इसको अगर शांति मिल जाए, यह दूसरी हत्या करेगा। इसको अशांत होना उचित है; यह इसके कर्म का सहज परिणाम है। और यह अशांत रहे, पीड़ा भोगे, तो शायद हत्या से बचेगा।
चोर को शांति मिलनी उचित नहीं है। उसके हृदय की धड़कन बढ़ी ही रहनी चाहिए। क्योंकि जैसे ही उसको शांति मिलती है, वह दुबारा चोरी करेगा। और करेगा क्या? बुरे आदमी को शांति मिलनी उचित नहीं है। यह ऐसे ही है, जैसे बुरे आदमी को स्वास्थ्य मिलेगा, तो वह करेगा क्या?
जीसस के जीवन में एक बड़ी प्यारी कथा है। और वह यह है कि जीसस एक गांव
से गुजरे। उन्होंने एक आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते हुए देखा। तो उन्होंने उस आदमी को रोका, क्योंकि चेहरा उसका पहचाना हुआ मालूम पड़ा। और जीसस ने कहा कि अगर मैं भूलता नहीं हूं, तो जब मैं पहली दफा आया, तुम अंधे थे। और मेरे ही स्पर्श से तुम्हारी आंखें वापस लौटीं। और अब तुम आंखों का क्या कर रहे हो! वेश्या के पीछे भाग रहे हो?
उस आदमी ने कहा, हे प्रभु, मैं तो अंधा था। तुमने ही मुझे आंखें दीं।
अब मैं इन आंखों का और क्या करूं? आंखें रूप देखने के लिए हैं। और अगर मैं तुम्हारे पास आंखें मांगने आया था, तो इसीलिए मांगने आया था कि आंखों से रूप देख सकूं।
जीसस ने सोचा भी नहीं होगा कि जिसको आंखें दी हैं, वह आंखों का क्या करेगा। सभी आदमी आंखों का एक ही उपयोग नहीं कर सकते। उपयोग तो आदमियों पर निर्भर होगा। आंखें तो उपकरण हैं।

तो अगर मंत्र-जाप से बेईमान को शांति मिले, तो वह बेईमानी में और कुशल
हो जाएगा। खतरनाक है यह बात। और मंत्र-जाप से अगर धन की दौड़ में कोई आदमी लगा है, उसको शांति मिले, तो उसकी धन की दौड़ और कुशल हो जाएगी; और क्या होगा! और महेश योगी से लोग पूछते हैं, तो वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक है। तुम जहां भी जा रहे हो, तुम जो भी कर रहे हो, उसमें ध्यान से सफलता मिलेगी। निश्चित सफलता मिलेगी। लेकिन तुम कहां जा रहे हो, यह पूछ लेना जरूरी है। तुम क्या कर रहे हो, यह पूछ लेना जरूरी है। सभी सफलताएं सफलताएं नहीं हैं। बुरे काम में विफल हो जाना बेहतर है। बुरे काम में सफल हो जाना बेहतर नहीं है। तो सफलता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है।
लेकिन यह परिणाम पश्चिम में घटित होगा; क्योंकि कोई भी यम और नियम के लिए तो राजी नहीं है। लोग चाहते हैं, जैसे वे इंस्टैंट काफी बना लेते हैं, वैसा इंस्टैंट मेडिटेशन हो! एक पांच मिनट में काम किया; और उस काम के लिए भी कुछ करना नहीं है। आप हवाई जहाज में उड़ रहे हों, तो भी मंत्र-जाप कर सकते हैं। कार में चल रहे हों, तो भी मंत्र-जाप कर सकते हैं। ट्रेन में बैठे हों, तो भी मंत्र-जाप कर सकते हैं। उसमें कोई कुछ आपको बदलना नहीं है। सिर्फ एक तरकीब है, जिसका उपयोग करना है।
वह तरकीब आपको भीतर शांत करेगी। वह शांति आत्मज्ञान नहीं बन सकती। वह शांति अक्सर तो आत्मघात बनेगी। क्योंकि आपके पास जो व्यक्तित्व है, वह खतरनाक है। वह उस शांति का उपयोग करेगा।
इसलिए अगर पतंजलि और बुद्ध और महावीर ने ध्यान के पूर्व कुछ अनिवार्य सीढ़ियां रखी हैं, तो अकारण नहीं रखी हैं। गलत आदमी के पास शक्ति न पहुंचे, इसलिए। और गलत आदमी अगर चाहे, तो पहले ठीक होने की प्रक्रिया से गुजरे। और उसके हाथ में चाबी तभी आए, जब कोई दुरुपयोग, अपने लिए या दूसरों के लिए, वह न कर सके।
यही सवाल नहीं है कि दूसरों के लिए आप हानि पहुंचा सकते हैं, खुद को भी पहुंचा सकते हैं। गलत आदमी खुद को भी पहुंचाएगा।
सच तो यह है कि बिना खुद को हानि पहुंचाए, कोई दूसरे को हानि पहुंचा ही नहीं सकता। इसका कोई उपाय ही नहीं है। इसके पहले कि मैं आपको आग लगाऊं, मुझे खुद जलना पड़ेगा। इसके पहले कि मैं आपको जहर पिलाऊं, मुझे खुद पीना पड़ेगा। जो मैं दूसरों के साथ करता हूं, वह मुझे अपने साथ पहले ही कर लेना पड़ता है।

दूसरा प्रश्नः साधन तत्व को अभ्यास और वैराग्य, ऐसे दो भागों में बांटने का क्या कारण है? क्या वे एक ही चीज के दो छोर नहीं हैं? क्या सम्यक साधना पद्धति के अभ्यास से वैराग्य का उदय अवश्यंभावी नहीं है? और वैराग्य क्या स्वयं एक साधन पद्धति नहीं है?

अभ्यास और वैराग्य बड़ी भिन्न बातें हैं। वैराग्य तो एक भाव है; और अभ्यास एक प्रयत्न, एक यत्न है। वैराग्य तो आपको कई बार अनुभव होता है। लेकिन उसकी हल्की झलक आती है। उसको अगर आप अभ्यास न बना सकें, तो वह खो जाएगा। अभ्यास का अर्थ है कि जिस वैराग्य की झलक मिली है, वह झलक न रह जाए, उसकी गहरी लकीर हो जाए आपके भीतर।
जैसे कि आप धन के लिए दौड़ते थे। और धन आपको मिल गया। धन के मिलने के बाद आपके मन में विषाद आएगा। क्योंकि आप पाएंगे कि कितनी आशा की थी; आशा तो कुछ पूरी न हुई! कितने सपने संजोए थे; वे सब सपने तो धूल में मिल गए! धन हाथ में आ गया। कितना नहीं सोचा था आनंद मिलेगा; वह आनंद तो कुछ मिला नहीं!
तो जो भी धन को पा लेगा, उसके पीछे एक छाया आएगी, जहां वैराग्य का अनुभव होगा। उसे लगेगा, धन बेकार है। लेकिन अगर इसे अभ्यास न बनाया, तो यह झलक खो जाएगी। और मन फिर कहेगा कि आनंद इसलिए नहीं मिल रहा है, क्योंकि धन आनंद के लिए पर्याप्त नहीं है, और चाहिए। दस हजार ही हैं, दस लाख ही हैं, करोड़ चाहिए।
करोड़ भी मिल जाएंगे एक दिन; कुछ अड़चन नहीं है। तब फिर वैराग्य का उदय होगा। फिर लगेगा कि वे सब इंद्रधनुष खो गए। वह सब मृग-मरीचिका हाथ नहीं आई। फिर खाली के खाली हैं। और इतना जीवन गया मुफ्त! क्योंकि धन कोई ऐसे ही

नहीं मिलता, जीवन से खरीदना पड़ता है। खुद को बेचो, तो धन मिलता है। जितना खुद को मिटाओ, उतना धन इकट्ठा होता है।
तो आत्मा नष्ट होती जाती है, सोने का ढेर लगता जाता है। फिर विषाद पकड़ेगा; फिर वैराग्य लगेगा; लेकिन उसकी झलक ही आएगी। मन फिर जोर मारेगा कि छोड़ो भी, एक करोड़ से कहीं दुनिया में सुख मिला है! यह वही मन है, जो दस लाख पर कहता था, करोड़ से मिलेगा। यह वही मन है, जो दस हजार पर कहता था, दस लाख पर मिलेगा। यह वही मन है, जो दस पैसे पर कहता था, दस हजार पर मिलेगा।
जब तक कोई पूरा अध्ययन न करे अपने जीवन की घटनाओं का; और वैराग्य की जो झलकें आती हैं, उनको पकड़ न ले; और फिर उन वैराग्य की झलकों का अभ्यास न करे... । अभ्यास का मतलब है, उनकी पुनरुक्ति, उनका बार-बार स्मरण, उनकी चोट निरंतर भीतर डालते रहना। और जब भी मन पुराना धोखा दे, तो वैराग्य का स्मरण खड़ा करना।
तो एक घटना बनेगी। जब वैराग्य पानी पर खींची लकीर न होगा, पत्थर पर खींची लकीर हो जाएगा। और उसी वैराग्य के सहारे मन का अंत होगा; नहीं तो मन का अंत नहीं होगा। एक-एक बूंद वैराग्य इकट्ठा करना होगा। उसका नाम अभ्यास है।
यह बड़े मजे की बात है कि वैराग्य तो सभी को आता है; ऐसा आदमी ही खोजना मुश्किल है, जिसको वैराग्य न आता हो। हर संभोग के बाद वैराग्य आता है। हर संभोग के बाद ब्रह्मचर्य की आकांक्षा उठती है। हर बार ज्यादा खा लेने के बाद उपवास की सार्थकता दिखाई पड़ती है। हर बार क्रोध करके पश्चात्ताप उठता है। हर बार बुरा करके न करने की प्रतिज्ञा मन में आती है। पर क्षणभर को रहती है, यह बात। मन प्रबल है, क्योंकि मन का अभ्यास जन्मों-जन्मों का है। तो दो तरह के अभ्यास हैं जगत में। एक मन का अभ्यास और एक वैराग्य का अभ्यास। तो आप मन का अभ्यास तो पूरी तरह करते हैं। वैराग्य मन का विपरीत है। वैराग्य का मतलब यह है कि मन का एंटीडोट। वह मन जब भी नया धोखा खड़ा करे, तब आपको वैराग्य की स्मृति खड़ी करनी है। यह तो मैं पहले भी सुन चुका; यह तो मैं पहले भी कर चुका; यह तो मेरा अनुभव है और परिणाम क्या हुआ?
निरंतर परिणाम का चिंतन पुराने अनुभव की स्मृति है, और पुरानी झलकों
का संग्रह है। इसको जब कोई साधता ही चला जाता है, तो धीरे-धीरे मन के विपरीत एक नई शक्ति का निर्माण होता है। जो मन के लिए नियंत्रण बन जाता है; और मन के लिए साक्षी बन जाता है; और मन की जो पागल दौड़ है, उसे तोड़ने में सहयोगी हो जाता है। कई बार मन आपको पकड़ लेगा फिर-फिर। लेकिन अगर वैराग्य का थोड़ा-सा संग्रह है, तो पुनः स्मरण आ जाएगा और आप रुक सकेंगे।
अभ्यास का केवल इतना ही अर्थ है, जीवन में जो सहज वैराग्य की झलक आती है, उसको संजो लेना है, इकट्ठा कर लेना है; उसकी शक्ति निर्मित कर लेनी है। और अभ्यास के उपाय हैं।
मृत्यु तो आपको कई दफा अनुभव होती है, लेकिन हमने ऐसी व्यवस्था कर ली
है कि उसके अनुभव की हमें चोट नहीं लगती।
कोई कहता है, कोई मर गया। अगर वह कोई बहुत निकट का नहीं है, तो हम कहते हैं, बुरा हुआ। बात समाप्त हो गई। उसके बाद हमारे मन में कुछ भी नहीं होता। कोई बहुत निकट का मर गया, तो दिन दो दिन ख्याल में रहता है। कोई बहुत ही निकट का मर गया--कि पत्नी चल बसी, कि बेटा, कि पति, कि पिता--तो थोड़ी चोट लगती है कुछ दिन। यह हमने इंतजाम किया है।
यह इंतजाम ऐसा ही है, जैसे ट्रेन में बफर लगे होते हैं। दो रेल के डब्बों के बीच में बफर लगे रहते हैं, ताकि धक्का बफर पी जाएं और यात्रियों को धक्का न लगे। कार में स्प्रिंग लगे रहते हैं कि गड्ढा आए, तो स्प्रिंग गड्ढे के धक्के को पी जाएं, भीतर बैठे यात्री को धक्का न लगे।
तो हमने अपने चारों तरफ बफर लगा रखे हैं। चोट आए, तो बफर पी जाए। तो अगर मुसलमान मर गया, तो हिंदू के लिए बफर है कि ठीक है, मुसलमान था; मर गया तो क्या हर्ज है! पहले ही मर जाना चाहिए था। आदमी बुरा था। और होने से कोई लाभ भी नहीं था। हिंदू मर गया, तो मुसलमान के लिए बफर है। नीग्रो मर जाए, तो अमेरिकी को फिक्र नहीं। अमेरिकी मरे, तो नीग्रो को प्रसन्नता है। ये हमने बफर पैदा किए हैं। शत्रु मर जाए, तो ठीक।

इन सब बफर के बाद दो-चार लोग ही बचते हैं हमारे आस-पास, जिनकी मौत से हमको थोड़ी-बहुत चोट पहुंचेगी। नहीं तो हर एक की मौत से चोट पहुंचती है। क्योंकि कौन मरता है, इससे क्या फर्क पड़ता है। मौत घटती है। और मौत की चोट पहुंचती है; और वैराग्य का उदय होता है। लेकिन हमने तरकीबें बना रखी हैं। फिर जो हमारे बिल्कुल निकट हैं, उनसे भी बचने के लिए हमने बफर बना रखे हैं। अगर पत्नी भी मर जाए, तो भी हम कहते हैं, जल्दी ही मिलना होगा, स्वर्ग में मिलेंगे। थोड़े ही दिन की बात है। और आत्मा अमर है, इसलिए पत्नी कुछ मरी नहीं है। यह तो सिर्फ शरीर छूट गया है। कोई रास्ता हम खोज लेते हैं।
बेटा मर जाए, तो हम कहते हैं, परमात्मा, जो प्यारे लोग हैं, उनको जल्दी उठा लेता है। यह बफर है। इससे हम अपने को राहत देते हैं, कंसोलेशन देते हैं। इससे सांत्वना बना लेते हैं कि ठीक है; परमात्मा के लिए प्यारा होगा, इसलिए बेटे को उठा लिया। आपका बेटा परमात्मा को प्यारा होना ही चाहिए! सिर्फ गलत लोग ज्यादा जीते हैं। अच्छे लोग तो जल्दी मर जाते हैं। कि अपना कोई कर्म होगा, जिसकी वजह से दुख भोगना पड़ रहा है।
मौत को बचाते हैं; कुछ और चीजें बीच में ले आते हैं। कर्म का फल है, इसलिए भोगना पड़ रहा है। अब फल है, तो भोगना पड़ेगा। तो मौत को हटा दिया, डायवर्शन पैदा हो गया। अब हम कर्म की बात सोचने लगे। लड़का, मौत, अलग हट गई। थोड़े दिन में सब भूल जाएगा, हम अपने काम-धंधे में लग जाएंगे।
इस तरह हमने बफर हर चीज में खड़े कर रखे हैं और वैराग्य उदय नहीं हो पाता।
अभ्यास का अर्थ है, बफर का तोड़ना। और हर जगह से, जहां से भी सूरज की किरण मिल सके, वैराग्य की किरण मिल सके, वहां से उसे भीतर आने देना। सब तरफ खुले होना।
बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, मरघट पर जाओ। पहला ध्यान मरघट पर। और तीन महीने मरघट पर रहो। भिक्षु कहते, लेकिन मरघट पर जाने की क्या जरूरत है? ध्यान यहीं कर सकते हैं! बुद्ध कहते, यहां न होगा। तुम मरघट पर ही बैठो दिन-रात। चिताएं जलेंगी; लोग आएंगे-जाएंगे; तुम वहीं ध्यान करना।
तीन महीने जो मरघट पर बैठकर ध्यान कर लेता, उसके मौत के संबंध में जितने बफर होते, सब टूट जाते। तब वह यह नहीं देखता, कौन मरा। मौत दिखाई पड़ती। कौन का कोई संबंध नहीं रह जाता।
और चौबीस घंटे मरघट पर बैठे-बैठे यह असंभव है तीन महीने में कि आपको
यह समझ में न आ जाए कि यह देह आज नहीं कल जलेगी। यह असंभव है कि आपको सपने न आने लगें कि आप जलाए जा रहे हैं चिता पर, तीन महीने मरघट में रहने पर। यह असंभव है कि मौत इतनी प्रगाढ़ न दिखाई पड़ने लगे कि जीवन का रस खो जाए।
तो मौत का अभ्यास हो जाएगा मरघट पर। अभ्यास से वैराग्य उदय होगा, घना होगा। जीवन के साथ जो हमारे राग के, लगाव के संबंध हैं, वे क्षीण और शिथिल हो जाएंगे।
अगर बुद्ध के जमाने में एक्सरे रहा होता, तो वे कहते कि अपनी पत्नी का एक्सरे अपने साथ रखो। और जब भी पत्नी की याद आए, एक्सरे देखो, तो समझ में आएगा कि देह कितनी सुंदर है।
लोग फोटो रखते हैं। फोटो रखना ठीक नहीं है। एक्सरे की कापी रख लेना एकदम अच्छा है। और जब भी मन में आ जाए, तो फिर-फिर उसको देख लेना उचित है। तो एक्सरे की फोटो अभ्यास बन जाएगी। उससे वैराग्य का जन्म होगा; सघन होगा। फिर धीरे-धीरे पत्नी को भी देखेंगे, तो आपके पास एक्सरे वाली आंखें हो जाएंगी। तो उसकी सुंदर चमड़ी के पीछे हड्डियां दिखाई पड़ने लगेंगी। जब उसको छाती से लगाएंगे, तो आपको अस्थिकंकाल छूता हुआ मालूम पड़ेगा।
ये बफर तोड़ने हैं और वैराग्य को जन्माना है। और उसका निरंतर अभ्यास चाहिए। क्योंकि मन का पुराना अभ्यास है। और मन से संघर्ष है। मन को काटना है। मन बहुत सबल है। आपने ही उसको सबल किया है।

अब हम सूत्र को लें।

और हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थित हुआ संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चंद्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान।
और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूं और रस-स्वरूप अर्थात अमृतमय सोम होकर संपूर्ण औषधियों को अर्थात वनस्पतियों को पुष्ट करता हूं।
मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान से युक्त अन्न को पचाता हूं। और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन अर्थात संशय-विसर्जन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं तथा वेदांत का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं। कुछ बातें। पहली बात, कृष्ण के ये सारे सूत्र अर्जुन का समर्पण संभव
हो सके, इसके लिए हैं। कृष्ण ये सारी बातें कह रहे हैं उस एक केंद्र की ओर इशारा करने को, जो सबका आधार है।
और अगर वह आधार हमें दिखाई पड़ने लगे, तो हम उस आधार की शरण सहज ही जा सकेंगे। अगर हमारी बुद्धि को उसकी झलक भी मिलने लगे, तो हम अपने होने का आग्रह, और अपने आपको कुछ समझने का आग्रह, अस्मिता और अहंकार की भ्रांति हमारी छूटनी शुरू हो जाएगी।
तो कृष्ण जब बार-बार यह कहते हैं कि मैं यह हूं, मैं यह हूं, मैं यह हूं,
तो बहुत-से पढ़ने वालों को गीता में ऐसा लगता है कि कृष्ण बड़े अहंकारी हैं। यह आदमी अजीब है। यह क्यों कहे चला जाता है कि सभी चांद-सूरज की रोशनी मैं हूं! कि सभी रसों में छिपा हुआ रस मैं हूं! कि सभी प्राणों में धड़कता प्राण मैं हूं!
आज के जमाने में तो गीता जैसी किताब लिखनी बड़ी मुश्किल हो जाए; कहनी
भी मुश्किल हो जाए। फौरन पत्थर पड़ जाएं। क्योंकि लोग कहें कि दिमाग खराब है आपका! सभी कुछ आप हैं?
और अगर हिंदुओं को गीता पढ़ते वक्त यह ख्याल नहीं आता, तो बफरों के कारण। उनको लगता है, कृष्ण भगवान हैं, इसलिए ठीक है। लेकिन मुसलमान जब गीता पढ़ता है, तो उसे फौरन ख्याल आता है कि यह आदमी ठीक नहीं मालूम पड़ता। जैन जब पढ़ता है, तो उसे फौरन समझ में आता है कि यह आदमी अहंकारी है।
हिंदू सोच लेता है कि भगवान हैं, ठीक है। बाकी अगर वह भी विचार करेगा,
तो उसको भी लगेगा कि यह बात क्या है? कृष्ण क्यों इतना जोर देते हैं कि मैं ही सब कुछ हूं?
और आपको अगर ऐसा लगे कि कृष्ण अहंकारी हैं, इतना जोर अपने मैं पर देते हैं, तो समझना कि यह चोट आपके अहंकार को लग रही है। यह आपका अहंकार क्रुद्ध हो रहा है।
कृष्ण का क्या प्रयोजन होगा? कृष्ण क्यों इतना जोर दे रहे हैं स्वयं पर? कृष्ण के जोर का कारण आप समझ लें।
कृष्ण का जोर स्वयं पर नहीं है; कृष्ण का जोर अर्जुन मिट जाए, इस पर है। पर इसके लिए एक ही उपाय है कि अर्जुन का केंद्र अर्जुन के बाहर हट जाए। अर्जुन का केंद्र अर्जुन के भीतर न हो, कहीं बाहर हो जाए। कृष्ण की यह सारी चेष्टा इसीलिए है कि अर्जुन देख पाए कि उसके भीतर जो मैं की आवाज है, वह व्यर्थ है; और वह संपूर्ण के केंद्र पर समर्पित हो जाए।
अर्जुन ने कहीं भी यह सवाल नहीं उठाया कि आप इतने अहंकार की बातें क्यों कर रहे हैं! यह भी जरा आश्चर्यजनक है। क्योंकि अर्जुन बुद्धिमान है; जैसा सोफिस्टिकेटेड होना चाहिए, उतना है। सुशिक्षित है, सुसंस्कारी है। उस समय के प्रतिभावान व्यक्तियों में एक है। मेधावी है। नहीं तो कृष्ण की मित्रता का कोई अर्थ भी न था। और कृष्ण जिसके सारथी बनने को राजी हो गए हैं, वह कोई साधारण गंवार नहीं है। पर अर्जुन एक बार भी नहीं कहता कि आप क्यों अपने अहंकार की घोषणा किए जा रहे हैं!
कृष्ण अर्जुन से कह सके, क्योंकि अर्जुन का एक प्रेम, एक सतत प्रेम कृष्ण के प्रति है। और जहां प्रेम हो, वहां हम समझ पाते हैं कि यह जो कहा जा रहा है इसमें कोई अहंकार नहीं है। और प्रेम हो, तो यह भी हम समझ पाते हैं कि यह मेरे लिए कहा जा रहा है।

तो अर्जुन को पूरे समय यह लगा है कि मैं मिट जाऊं, इसकी चेष्टा के लिए कृष्ण अपने मैं को बड़ा कर रहे हैं। वे अपने मैं को खड़ा कर रहे हैं, ताकि मेरा मैं उस बड़े मैं में खो जाए। वे अपने मैं के विराट रूप को मुझे दे रहे हैं, ताकि मैं एक बूंद की तरह उस सागर में खो जाऊं।
यह सिर्फ एक उपाय है। अर्जुन मिट सके, राजी हो सके मिटने को, इसके लिए
यह सिर्फ एक सहारा है।
प्रत्येक गुरु अपने शिष्य को यह सहारा देगा ही। जिस दिन शिष्य मिट जाएगा, उस दिन गुरु हंसकर उससे भी कह देगा कि तुम भी नहीं हो, मैं भी नहीं हूं।
लेकिन उसके पहले यह नहीं कहा जा सकता। यह बड़ी अड़चन की बात है। क्योंकि गुरु अगर यह कह दे, मैं भी नहीं हूं, तुम भी नहीं हो, तो शिष्य यह तो मान लेगा कि तुम नहीं हो, यह नहीं मान सकता कि मैं नहीं हूं। क्योंकि यह मानना बहुत कठिन बात है। यह तो कोई भी मान लेगा कि तुम नहीं हो; बिल्कुल ठीक है; सच है। यह तो हम पहले ही जानते थे। इसलिए जो गुरु कहे, मैं नहीं हूं, शिष्य बिल्कुल राजी होगा।
कृष्णमूर्ति के पास वैसी घटना रोज घट रही है। कृष्णमूर्ति उलटा प्रयोग कर रहे हैं, ठीक कृष्ण से उलटा। लेकिन वह प्रयोग सफल नहीं हो रहा है। वह सफल नहीं हो सकता। उस सफलता के लिए तो अर्जुन से भी श्रेष्ठ शिष्य चाहिए, जो कि बड़ा मुश्किल मामला है।
कृष्णमूर्ति कहते हैं, न मैं गुरु हूं, न मैं अवतार हूं; मैं कोई भी नहीं हूं। वे जो शिष्य बैठकर सुनते हैं, वे बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक है। लेकिन इससे यह ख्याल नहीं आता उनको कि हम भी नहीं हैं। अपने मैं से भरकर लौटते हैं, घटकर नहीं।
और एक खतरा हो जाता है कि अब जहां भी कृष्ण मिल जाएंगे उनको, और कृष्ण कहेंगे कि मैं हूं प्राणों का प्राण; मैं हूं ज्योतियों की ज्योति। वे कहेंगे, आपका दिमाग खराब है। क्योंकि कृष्णमूर्ति ने कहा है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। ज्ञानी तो सदा यह कहते हैं कि मैं कुछ भी नहीं हूं।
ज्ञानी सदा जानते हैं कि वे कुछ भी नहीं हैं। लेकिन अज्ञानियों से बात करना जोखम का काम है।
कृष्ण इतने जोर से कह रहे हैं कि मैं यह हूं, ताकि अर्जुन को प्रतीति होने लगे कि वह कुछ भी नहीं है।
यह ठीक वैसा ही है, जैसा कि एक बड़ी प्रसिद्ध घटना है, जो आपने सुनी होगी कि अकबर ने एक लकीर खींच दी दीवाल पर और अपने दरबारियों को कहा कि इसे बिना छुए छोटा कर दो। वे नहीं कर पाए, क्योंकि बुद्धि सीधी कहेगी कि बिना छुए कैसे छोटी होगी? हाथ लगाना पड़े, पोंछना पड़े। लेकिन बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके पास खींची। उस लकीर को नहीं छुआ, लेकिन वह छोटी हो गई।
ये कृष्ण इतना ही कर रहे हैं कि अर्जुन की लकीर के पास एक बहुत बड़ी लकीर खींच रहे हैं, कृष्ण की लकीर। वह अर्जुन का मैं है, छोटा-सा टिमटिमाता दीया; और कृष्ण कह रहे हैं, सूर्यों का सूर्य मैं हूं। तू इधर देख, तू इस तरफ मुड़, तू कहां छोटे-से दीए की टिमटिमाती लौ! और मिट्टी का तेल--वह भी मिलना मुश्किल--उसमें तू कब तक टिमटिमाता रहेगा, इस तरफ देख।
और अर्जुन का प्रेम है इतना कृष्ण के प्रति, वह देख सकता है। इतना भरोसा है कि यह आदमी कह रहा है, तो कोई सूरज होगा उसमें। और सूरज सबके भीतर छिपा है, इसलिए अड़चन कुछ भी नहीं है। अगर अर्जुन भाव से देख ले, तो कृष्ण के भीतर का सूरज दिख जाएगा। और जिस दिन कृष्ण के भीतर का सूरज दिखेगा, वह अपने टिमटिमाते दीए को छोड़ देगा।
टिमटिमाता दीया छूट जाए, तो अपने भीतर का सूरज भी दिखेगा। लेकिन यह गुरु जो है, वाया मीडिया है। अपने ही भीतर के सूरज को देखना अति कठिन है। क्योंकि अपनी नजर तो अपने दीए पर ही लगी है। इस दीए का बुझना जरूरी है। यह गुरु के सहारे बुझ जाएगा। और एक बार बुझ जाए, तो गुरु के सूरज को देखने की कोई जरूरत नहीं है; अपना सूरज भी दिखाई पड़ने लगेगा।
हम दीए से आविष्ट होकर बैठे हैं। हमारी हालत ऐसी है, सूरज निकला है खुले मैदान में, हम अपना दीया रखे उस पर आंख गड़ाए बैठे हैं। इतने जन्मों से आंख गड़ाए हैं कि हिप्नोटाइज्ड हो गए हैं। वह दीया ही दिखाई पड़ता है। और

दीया देखते-देखते आंखें भी इतनी छोटी हो गई हैं कि अगर एक दफे सूरज की तरफ देखें, तो अंधेरा ही दिखाई पड़ेगा।
कृष्ण का सहारा सिर्फ इतना है कि आहिस्ता से अर्जुन को उसके दीए से हटा लें। और एक बार वह सूरज कृष्ण का देख ले, तो वह कृष्ण का सूरज नहीं है, वह सभी का सूरज है; वह सभी के भीतर बैठा है। इसे ख्याल में रखें।
और हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थित हुआ संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चंद्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान। और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण किए हूं और रस-स्वरूप अर्थात अमृतमय सोम होकर संपूर्ण औषधियों को अर्थात वनस्पतियों को पुष्ट करता हूं।
सोम दो अर्थ रखता है। एक तो सोम का अर्थ है, चंद्रमा। हिंदुओं का जो रस-विज्ञान है, उसमें औषधियों को जो पुष्टि मिलती है, वह चंद्रमा से मिलती है। सूर्य उनको प्राण देता है। सूर्य के बिना औषधियां बड़ी नहीं होंगी; वनस्पतियां बड़ी नहीं होंगी; वृक्ष बड़े नहीं होंगे। सूरज उन्हें प्राण देता है। लेकिन जो रस है, जो उनमें जीवनदायी तत्व है, वह उन्हें चांद से मिलता है; वह चांद के द्वारा मिलता है।
यह बात काल्पनिक समझी जाती थी आज तक कि आयुर्वेद और हिंदुओं की यह जो रस-विद्या है, यह काव्य है, प्रतीक है। लेकिन इधर पचास वर्षों में जो खोजबीन हुई है, उससे सिद्ध हो रहा है कि चांद निश्चित ही प्राण देने वाला है।
और सूरज जो कुछ भी देता है, उसमें एक उत्तेजना है; और चांद जो भी देता है, उसमें एक शांति है। इसलिए जितनी शांत औषधियां हैं, उन सब में चांद छिपा है। और जो सर्वाधिक शांतिदायी औषधि थी, इसी कारण--वह दूसरा अर्थ है सोम का--उसे हम सोम-रस कहते थे।
पश्चिम में वैज्ञानिक बड़ी खोज में लगे हैं कि वेदों ने जिसको सोम-रस कहा है, वह क्या है? पच्चीसों प्रस्ताव किए गए हैं, पच्चीसों दावे किए गए हैं कि यह वनस्पति सोम-रस होनी चाहिए। कुछ लक्षण मिलते हैं, लेकिन पूरे लक्षण किसी वनस्पति से नहीं मिलते। संभावना इस बात की है कि वह वनस्पति पृथ्वी से खो गई। या हिंदुओं ने उसे विलुप्त कर दिया।
काफी काम इस समय विज्ञान में चलता है। बड़े ग्रंथ लिखे जाते हैं, बड़ी शोध की जाती है सोम की खोज के लिए। क्यों? क्योंकि पश्चिम में इधर तीस वर्षों में वनस्पति के द्वारा, औषधि के द्वारा, रसायन के द्वारा समाधि कैसे प्राप्त की जाए, इस संबंध में बड़ा आंदोलन है। तो एल.एसड़ी., मारिजुआना, मेस्कलीन, इन सब की बड़ी पकड़ है। और सारी गवर्नमेंट्स डर गई हैं, सारी दुनिया में रुकावट लगा दी गई है कि कोई भी इन चीजों को न ले।
और यह बड़े मजे की बात है कि शराब सबसे ज्यादा खतरनाक है, लेकिन शराब सब जगह प्रचलित है! और ये औषधियां शराब जैसी खतरनाक नहीं हैं, लेकिन इन पर भारी रोक है। और डर इस बात का है कि ये औषधियां व्यक्ति में ऐसे क्रांतिकारी फर्क ले आती हैं कि आज का जो समाज है, वह उस व्यक्ति का उपयोग नहीं कर सकेगा।
जैसे अगर युवक एल.एसड़ी., मारिजुआना, और इस तरह की चीजों का उपयोग करने लगें, तो उनको युद्ध पर नहीं भेजा जा सकता। वे इतने शांत हो जाएंगे कि उनको युद्ध पर नहीं भेजा जा सकता। उनसे दंगे, उपद्रव नहीं करवाए जा सकते। उन्हें रस ही नहीं रह जाएगा लड़ने का।
इन सारी औषधियों के कारण पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक अल्डुअस हक्सले ने घोषणा की थी कि इस सदी के पूरे होते-होते हम सोम का पता लगा लेंगे। क्योंकि सोम इन्हीं से मिलती-जुलती कोई चीज होनी चाहिए। इनसे बहुत श्रेष्ठ, लेकिन इनसे मिलती-जुलती। क्योंकि वेद में जो वर्णन है सोम का कि ऋषि सोम को पी लेते हैं और समाधिस्थ हो जाते हैं, और परमात्मा के आमने- सामने उनकी चर्चा और बातचीत होने लगती है। इस लोक से रूपांतरित हो जाते हैं; किसी और आयाम में प्रविष्ट हो जाते हैं।
हो सकता है, सोम इस तरह का रासायनिक रस रहा हो कि समाज को उसे विलुप्त
कर देना पड़ा हो। क्योंकि समाज उसके सहारे नहीं चल सकता। अगर लोग बहुत आनंदित हो जाएं, नाचने-गाने लगें और तल्लीन रहने लगें, तो समाज नहीं चल

सकता है। समाज के लिए थोड़े दुखी, परेशान लोग चाहिए; वे ही चलाते हैं। उनके बिना नहीं चल सकता।
अगर सभी लोग प्रसन्न हों, तो बहुत मुश्किल है काम। किसको लगाइएगा दौड़ में कि तू फैक्टरी चला। वह कहेगा, ठीक है; रोटी मिल जाती है। किसको दौड़ में लगाइएगा कि तू दिल्ली जा! वह कहेगा, हम पागल नहीं हैं। हम जहां हैं, वहीं दिल्ली है। हम मजे में हैं।
यह जो इतनी दौड़ चलती है, अर्थ की, राजनीति की, सब तरह की विक्षिप्तता की, इसके लिए दुखी लोग चाहिए। युद्ध चलते हैं, संघर्ष चलता है, और चैन नहीं है एक क्षण को; इसके लिए बेचैन लोग चाहिए।
हिप्पियों से अमेरिका डरा हुआ है। क्योंकि अगर सारे लड़के और लड़कियां हिप्पियों जैसे हो जाएं, तो अमेरिका डूबेगा। इस अर्थ-तंत्र में उसकी कोई जगह न रह जाएगी।
इनको लड़वाया नहीं जा सकता है। ये लड़ने से इनकार करते हैं। और यह परिणाम है एल.एसड़ी. और मारिजुआना और मेस्कलीन का, तो सोम का क्या परिणाम रहा होगा!
सोम अदभुततम रस है। हिंदू धारणा से सभी वनस्पतियों में चांद उतरता है। लेकिन सोम नाम की जो वनस्पति है, उसमें चांद पूरा उतरता है। वह चांद की पूरी शांति को पी जाती है। उसके पत्ते-पत्ते में, उसके फूल में, उसकी जड़ों में चांद छिप जाता है। और उसका अगर विधिवत उपयोग किया जाए, तो समाधि फलित होती है।
निश्चित ही, उस पर रोक लगाई गई होगी; उसको छिपाया गया होगा या नष्ट कर दिया गया होगा। इसलिए बहुत खोज करके हिमालय में भी सोम वनस्पति उपलब्ध नहीं होती।
लेकिन कृष्ण यहां कह रहे हैं कि मैं वही सोम हूं। चांद भी मैं हूं, सूरज भी मैं हूं। इस जगत में जो तेज है, वह भी मेरा है; और इस जगत में जो शांति है, सन्नाटा है, वह भी मेरा है। इस जगत में जो तरंगें हैं, वे भी मेरी हैं। इस जगत में जो मौन है, वह भी मेरा है। इस जगत का जो ताप-उत्तप्त व्यक्तित्व है, वह भी मैं हूं; और इस जगत का जो शांत समाधिस्थ व्यक्तित्व है, वह भी मैं हूं।
मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ अन्न को पचाता हूं। और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं।
यह काफी महत्वपूर्ण बात है, सभी प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप
से स्थित हूं।
आपके भीतर कहां अंतर्यामी है? अगर आप अपने अंतर्यामी को पकड़ लें, तो कृष्ण के चरण हाथ में आ गए। कौन-सा तत्व है आपके भीतर जो अंतर्यामी है? कैसे उस तत्व को पकड़ें?
अंतर्यामी का अर्थ होता है, भीतर का जानने वाला। भीतर जो छिपा है जानने वाला। तो जिस तत्व को आप जान नहीं सकते और जो सबको जानता है, धीरे- धीरे उसकी गहराई में डूबना है।
शरीर को मैं जानता हूं। शरीर को देखता हूं। तो जिसे मैं जानता हूं और देखता हूं, वह अलग हो गया, पृथक हो गया; वह मेरा ज्ञाता न रहा, ज्ञेय हो गया; वह आब्जेक्ट हो गया। वह संसार का हिस्सा हो गया।
भीतर आंख बंद करता हूं, तो हृदय की धड़कन भी मैं सुनता हूं, अपने हृदय
की धड़कन भी सुनता हूं। तो यह हृदय की धड़कन मेरी न रही; यंत्रवत हो गई, शरीर की हो गई। मैं देखने वाला इसके पीछे खड़ा हूं। इसको भी मैं सुनता हूं; इससे मैं अलग हो गया, फासला हो गया।
आंख बंद करता हूं, विचारों की बदलियां घूमती हैं। उनको भी मैं देखता हूं कि यह विचार जा रहा है; यह अच्छा, यह बुरा; यह क्रोध, यह लोभ। इन विचारों के पार मैं देखने वाला हो गया।
समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं इतनी ही चेष्टा करती हैं कि तुम्हें यह समझ में आना शुरू हो जाए कि तुम क्या-क्या नहीं हो। नेति-नेति; यह भी मैं नहीं, यह भी मैं नहीं। काटते जाओ। जो भी दिखाई पड़ जाए, जो भी ज्ञेय बन जाए, जो भी आब्जेक्ट बन जाए, उसे छोड़ते जाओ; इलिमिनेट करो, नकार करो। और उस जगह

ही रुको, जहां सिर्फ जानने वाला ही रह जाए। वह अंतर्यामी है। वह जो भीतर छिपा और सब जानता है; और किसी के द्वारा कभी जाना नहीं जाता। क्योंकि उसके पीछे जाने का कोई उपाय नहीं है। वह सबसे पीछे है। वह अंत है। वह मूल है। वह उत्स है।
अगर हम अपने भीतर के अंतर्यामी को पकड़ लें, वही हम हैं, अगर उसमें हम खड़े हो जाएं और ठहर जाएं, तो हम कृष्ण में खड़े हो गए। और तब हम भी कह सकेंगे कि यह सूरज मेरी ही रोशनी है, और यह चांद मुझसे ही चमकता है; औषधियां मुझसे ही बड़ी होती हैं; और इस जगत में जो सोम बरस रहा है, वह मैं ही हूं। अंतर्यामी को आप पकड़ लें, तो यही घोषणा जो कृष्ण की है, आपकी घोषणा हो जाएगी। और तभी आप समझ पाएंगे कि कृष्ण अहंकार के कारण यह घोषणा नहीं कर रहे हैं, यह एक आंतरिक अनुभव के कारण कर रहे हैं।
और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन, संशय-विसर्जन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूं तथा वेदांत का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।
मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन।
तीन शब्दों का कृष्ण ने उपयोग किया है, स्मृति, ज्ञान और अपोहन। अपोहन
का अर्थ है, संशय-विसर्जन। यह बड़ी समझने की बात है। अपोहन शब्द याद रखने जैसा है।
आपके भीतर सदा ऊहापोह चलता है। ऊहापोह का मतलब है, यह ठीक कि वह ठीक!
यह भी ठीक, वह भी ठीक! कुछ समझ नहीं पड़ता, क्या ठीक। संशय! मन डोलता रहता है घड़ी के पेंडुलम की तरह, बाएं-दाएं; कहीं ठहरता नहीं मालूम पड़ता। यह ऊहापोह की अवस्था है।
अपोहन का अर्थ है, इससे विपरीत अवस्था। जहां कोई ऊहापोह नहीं; जहां संशय चला गया; जहां असंशय आप खड़े हो गए। जहां पेंडुलम घूमता नहीं है; खड़ा हो गया है थिर। जहां कोई कंपन नहीं है। जहां यह ठीक या वह ठीक, ऐसा भी कोई सवाल नहीं है। जहां आप सिर्फ खड़े हैं; जहां चुनाव न रहा। जिसको कृष्णमूर्ति च्वाइसलेसनेस कहते हैं, वह अपोहन है। जहां सब चुनाव शांत हो गए; जहां मुझे चुनना नहीं कि यहां जाऊं कि वहां जाऊं। जहां आप बिना चुनाव चुपचाप खड़े हैं; जहां चित्त थिर है।
कृष्ण कहते हैं, स्मृति मैं हूं। क्योंकि आपके भीतर जिसको आप स्मृति कहते हैं; उसको कृष्ण स्मृति नहीं कह रहे हैं। जिसको आप मेमोरी कहते हैं, वह नहीं। कि आपको पता है कि आपका नाम क्या है, आपकी तिजोरी में कितना रुपया जमा है, आपकी दुकान कहां है, इससे प्रयोजन नहीं है स्मृति का। स्मृति से इस बात का प्रयोजन है कि मैं कौन हूं। सेल्फ रिमेंबरिंग। मेमोरी नहीं, आत्म-बोध, कि मैं कौन हूं!
आप दुकानदार हैं, यह आत्म-बोध नहीं है। क्योंकि दुकानदार होना सांयोगिक है; कोई आपका स्वभाव नहीं है।
लेकिन हम उसको भी स्वभाव की तरह पकड़ लेते हैं। दुकानदार को दुकान से हटाओ, उसको लगता है, उसकी आत्मा जा रही है। नेता को पद से हटाओ, उसको लगता है, मरे; गए। पद के बिना वह कुछ भी नहीं है।
मैंने सुना है, एक गांव से चार चोर निकलते थे। उन्होंने देखा कि एक नट छलांग लगाकर बड़ी ऊंची रस्सी पर चढ़ गया। और रस्सी पर नाचने के कई तरह के करतब दिखाने लगा। उन चोरों ने कहा, यह आदमी तो काम का है! इसको उड़ा ले चलें। हमें बड़ी मेहनत पड़ती है मकानों में चढ़ने में रात। यह तो गजब का आदमी है! एक इशारा करो कि दूसरी मंजिल पर पहुंच जाए।
उस नट को उन्होंने उड़ा लिया। रात उन्होंने बड़े से बड़ा जो नगर का सेठ था, उसकी हवेली चुनी; जिसको वे अब तक नहीं चुन पाए थे, क्योंकि हवेली बड़ी थी, चढ़ने में अड़चन थी।
नट को लेकर वे पहुंचे। बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने नट से कहा, अब तू देर
न कर भाई। एक, दो, तीन, छलांग लगा; ऊपर चढ़। लेकिन नट वहीं खड़ा रहा। उन्होंने फिर दुबारा कहा; नट वहीं फिर खड़ा रहा। उन्होंने फिर तीसरी बार कहा। तीसरी बार एक चोर बिल्कुल नाराज हो गया, उसने कहा, अभी तू खड़ा क्यों है? चढ़! हमारे पास ज्यादा समय नहीं है।

नट ने कहा, पहले नगाड़ा बजाओ। बिना नगाड़े के कैसे नट चढ़ सकता है! नगाड़ा
जब बजे, तब उसने कहा, मैं... नहीं तो मेरे पैर में गति ही नहीं है। हम खड़े नहीं हैं, कोई उपाय ही नहीं है।
अब चोर नगाड़ा तो बजा नहीं सकता। पर नट ठीक कह रहा था। लेकिन उसको भी ख्याल नहीं है कि अगर वह छलांग लगा सकता है, तो नगाड़े से कुछ लेना-देना नहीं है।
दुकानदार होना आपका, कि डाक्टर होना, कि मजदूर होना, कि स्त्री होना,
कि पुरुष होना, सांयोगिक है। वह कोई आपका स्वभाव नहीं है। और आप वह नहीं रहेंगे, तो सब मिट गया, ऐसा कुछ नहीं है। कुछ नहीं मिटता। उसकी जो स्मृति है, उसको कृष्ण नहीं कह रहे हैं कि वह मैं हूं; नहीं तो आप सोचें कि कृष्ण... ।
कृष्ण कह रहे हैं, आत्म-स्मरण मैं हूं, सेल्फ रिमेंबरेंस मैं हूं। जिस दिन आप स्मरण करेंगे इन सब संयोगों से हटकर आपका जो स्वभाव है, आप कौन हैं! मैं कौन हूं!
ये सारी सांयोगिक बातें हैं। मेरा नाम, मेरा घर, पता, ये सब कुछ मूल्य
के नहीं हैं। मेरा न कोई नाम है, और न मेरा कोई घर है, और न मेरा कोई रूप है।
मेरी वह जो अरूप और अनाम स्थिति है, उसको कृष्ण कहते हैं, वह स्मृति है।
स्मृति शब्द बाद में बिगड़ा और कबीर और दादू के समय में सुरति हो गया।
नानक और दादू और कबीर सुरति का उपयोग करते हैं। वे कहते हैं, सुरति जगाओ।
सुरति का मतलब है, जगाओ उसको, जो आपके भीतर परमात्मा है।
और जब रमण कहते हैं, जानो कि तुम कौन हो--हू एम आई; तो वे इसी कृष्ण के पीछे पड़े हैं। यही कह रहे हैं कि पीछे पहचानो। वह जो सब संयोगों के पार है; सब स्थितियों के पार है; सभी स्थितियों से गुजरता है, फिर भी किसी स्थिति के साथ एक नहीं है; सभी अवस्थाओं से गुजरता है... ।
कभी आप बच्चे हैं; कभी जवान हैं; कभी बूढ़े हैं; लेकिन आपके भीतर कोई है,
जो न बच्चा है, न जवान है, न ब.ूढा है; जो तीनों से गुजरता है। जैसे तीन स्टेशनें हों और आपकी ट्रेन तीनों से गुजर जाए। वह जो यात्री भीतर बैठा है, जो सदा चल रहा है, कहीं भी ठहरता नहीं है; किसी भी अवस्था के साथ एक नहीं हो जाता है; सदा अवस्था-मुक्त है, उसकी स्मृति को कृष्ण कहते हैं, मैं हूं। ज्ञान! यहां ज्ञान से अर्थ नालेज का नहीं है। विश्वविद्यालय ज्ञान देते हैं। कृष्ण उस ज्ञान की बात नहीं कर रहे हैं। शिक्षक ज्ञान देते हैं! स्मृति इकट्ठी कर लेती है ज्ञान को। संग्रह हो जाता है आपके पास; बड़ी सूचनाएं इकट्ठी हो जाती हैं। कृष्ण उसको ज्ञान नहीं कह रहे हैं।
ज्ञान से अर्थ नालेज नहीं है। ज्ञान से अर्थ प्रज्ञा है। ज्ञान से अर्थ विजडम है। बड़ी अलग बात है। क्योंकि यह हो सकता है, आप कुछ न जानते हों और ज्ञानी हों। और यह भी हो सकता है, बहुत कुछ जानते हों और निपट अज्ञानी हों। आपके जानने से कोई संबंध नहीं है।
एक आदमी बहुत कुछ जान सकता है। सब शास्त्र कंठस्थ हों; तोते की तरह कंठस्थ हो सकते हैं; जरा भी भूल न करे। यंत्रवत स्मृति हो। और फिर भी जीवन में व्यवहार जो करे, वहां अज्ञानी सिद्ध हो।
आपको वेद कंठस्थ हों; सारी बातें याद हों; और गीता आपकी जबान पर बैठी हो; और आपको मालूम है बिल्कुल कि न तो शस्त्रों से छिदता हूं, न अग्नि मुझे जला सकती है। और जरा-सा दुख आ जाए और आप छाती पीटकर रो रहे हैं! सब गीता वगैरह रखी रह जाती है! वहां पता चलता है कि यह प्रज्ञा है या नहीं। प्रज्ञा आपके अनुभव में काम आती है। और ज्ञान केवल बुद्धि की बातचीत है। और बुद्धि की बातचीत तो हम कुछ भी इकट्ठी कर ले सकते हैं।
मैं एक प्रोफेसर के घर मेहमान था। ऐसे अचानक मेरे कान में पति-पत्नी
की बात पड़ गई। मैं अपने कमरे में बैठा था, जहां उनके घर में रुका था। पति बाहर से आए। पत्नी से कहा--कुछ जोर से ही कहा, बड़े प्रसन्न थे--कि आज रोटरी क्लब में रात मेरा व्याख्यान है तिब्बत के ऊपर। पत्नी ने कहा, तिब्बत? लेकिन तुम तिब्बत तो कभी गए नहीं! पति ने कहा, छोड़ो भी। सुनने वाले ही कौन से तिब्बत होकर आए हैं!
यह मैं सुन रहा था। तब मुझे पता चला कि ज्ञान के लिए तिब्बत जाने की कोई जरूरत नहीं है; न सुनने वाले को, न बोलने वाले को।

अक्सर अध्यात्म के नाम पर ऐसे ही तिब्बत के यात्री चलते रहे हैं। न सुनने वाले को कुछ पता है कि ब्रह्म क्या; न बोलने वाले को कुछ पता है। जब दोनों को पता नहीं, तो कोई अड़चन ही नहीं है।
यहां जो कृष्ण कह रहे हैं ज्ञान, तो विजडम, प्रज्ञा से उसका संबंध है।
अनुभव में जिसके, जीवन में जिसका बोध सधा हुआ है; कैसी भी अवस्था हो, जिसके बोध को डिगाया नहीं जा सकता, वह मैं हूं।
स्मृति, ज्ञान और अपोहन, सब वेदों द्वारा जानने योग्य... ।
ये ही तीन बातें हैं। सारा वेदांत इन्हीं तीन की खोज करता है।
और न केवल सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूं, वरन वेदांत का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।
सारे वेद मुझे ही खोजते हैं। और सारे वेद मेरे ही अनुभव से निकलते हैं।
सारे वेदों की खोज क्या है? कि वह अंतर्यामी मिल जाए। वह जो भीतर छिपा हुआ राजों का राज है, वह मिल जाए। लेकिन वेद निकलते कहां से हैं?
जिनको वह मिल जाता है, उनकी वाणी वेद बन जाती है। जो उसे पा लेते हैं, उनकी सुगंध वेद बन जाती है। जो वहां तक पहुंच जाते हैं उस अंतर्यामी तक, फिर वे जो भी कहते हैं, वही वेद बन जाता है। वे न कहें, तो मौन उनका वेद हो जाएगा। वे चलें-फिरें, उठें, तो उनकी गतिविधि वेद हो जाएगी।
अगर बुद्ध को चलते हुए भी देख लो, तो भी उस चलने में समाधि है; उसमें भी इशारा है। अगर कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए देख लो, तो उस बांसुरी में वेद है; उसमें सारा वेदांत है; उसमें सारा इशारा है।
कृष्ण कहते हैं कि मैं ही सबकी खोज, और मैं ही सब का मूल उत्स। और यह जो मैं है, तुम्हारे भीतर छिपा हुआ अंतर्यामी है।
कृष्ण बाहर से बोल रहे हैं, लेकिन जिसकी तरफ इशारा कर रहे हैं, वह अर्जुन के भीतर है।
गुरु सदा बाहर से बोलता है, लेकिन जिस तरफ इशारा करता है, वह शिष्य के भीतर है। इसलिए दो पड़ाव हैं यात्रा के। एक तो बाहर का गुरु, वह पहला पड़ाव है। और फिर भीतर का गुरु, वह अंतिम पड़ाव है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 15
छठवां प्रवचन

पुरुषोत्तम की खोज

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल एकाग्रता का आपने भारी मूल्य बताया है, पर आप अपने ध्यान प्रयोगों में एकाग्रता की अपेक्षा साक्षी-भाव पर अधिक जोर देते हैं। ऐसा किस कारण है?
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। 16।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। 17।।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। 18।।
हे अर्जुन, इस संसार में क्षर अर्थात नाशवान और अक्षर अर्थात अविनाशी, ये दो प्रकार के पुरुष हैं। उनमें संपूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर अर्थात अविनाशी कहा जाता है।
तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी ईश्वर और परमात्मा, ऐसे कहा गया है।
क्योंकि मैं नाशवान जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित अक्षर, अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इसलिए लोक में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल एकाग्रता का आपने भारी मूल्य बताया है, पर आप अपने ध्यान प्रयोगों में एकाग्रता की अपेक्षा साक्षी-भाव पर अधिक जोर देते हैं। ऐसा किस कारण है?

एकाग्रता शक्ति को उपलब्ध करने की विधि है। साक्षी-भाव शांति को उपलब्ध करने की विधि है। शक्ति उपलब्ध करने से जरूरी नहीं है कि शांति उपलब्ध हो। लेकिन शांति उपलब्ध करने से शक्ति अनिवार्यरूपेण उपलब्ध हो जाती है।
जो व्यक्ति शक्ति की खोज में हैं, उनका रस एकाग्रता में होगा। जैसे सूरज की किरणें इकट्ठी हो जाएं, तो अग्नि पैदा हो जाती है। वैसे ही मन के सारे विचार इकट्ठे हो जाएं, तो शक्ति पैदा हो जाती है। थोड़े से प्रयोग करें, तो समझ में आ सकेगा।
जब भी मन एकजुट हो जाता है, तब आपके जीवन की पूरी ऊर्जा एक दिशा में बहने लगती है। और जितना संकीर्ण प्रवाह हो, उतनी ही शक्तिशाली हो जाती है। जितने विचार बिखरे हों, ऊर्जा उतने अनेक मार्गों से बहती है; तब क्षुद्र शक्ति हाथ में रह जाती है। जिस विचार के प्रति भी आप एकाग्र हो जाते हैं, वह विचार शीघ्र ही यथार्थ में परिणत हो जाएगा। जिस विचार में मन डांवाडोल होता है, उसके यथार्थ में परिणत होने की कोई संभावना नहीं है।
एकाग्रता तो सांसारिक मनुष्य भी चाहता है। और सांसारिक मनुष्य को भी अगर कहीं सफलता मिलती है, तो एकाग्रता के कारण ही मिलती है। वैज्ञानिक भी एकाग्रता के माध्यम से ही खोज कर पाता है। संगीतज्ञ भी एकाग्रता के माध्यम से ही संगीत की गहरी कुशलता को उपलब्ध होता है। लेकिन साक्षी-भाव में केवल धार्मिक व्यक्ति उत्सुक होता है।
सांसारिक व्यक्ति की साक्षी-भाव में कोई भी उत्सुकता नहीं होती। और अगर साक्षी-भाव उसे कहीं रास्ते पर पड़ा हुआ भी मिल जाए, तो भी वह उसे चुनना पसंद न करेगा। क्योंकि साक्षी-भाव का परिणाम शांति है। और साक्षी-भाव का

परिणाम शून्य हो जाना है। साक्षी-भाव का परिणाम मिट जाना है। वह महामृत्यु जैसा है।
एकाग्रता से तो आपका ही मन मजबूत होता है और अहंकार प्रबल होगा।
साक्षी-भाव से मन शांत होता है, समाप्त होता है, अंततः मिट जाता है और अहंकार विलीन हो जाता है। साक्षी-भाव मन के पीछे छिपी आत्मा की अनुभूति है। और एकाग्रता मन की ही बिखरी शक्तियों को इकट्ठा कर लेना है।
इसलिए एकाग्रता को उपलब्ध व्यक्ति जरूरी नहीं है कि धार्मिक हो जाए। लेकिन साक्षी-भाव को उपलब्ध व्यक्ति अनिवार्यरूपेण धार्मिक हो जाता है। एकाग्रता परमात्मा तक नहीं ले जाएगी। और अगर आप परमात्मा की खोज एकाग्रता के माध्यम से कर रहे हों, तो एक न एक दिन आपको एकाग्रता भी छोड़ देनी पड़ेगी। क्योंकि परमात्मा तभी मिलता है, जब आप ही बचे। इसे थोड़ा समझ लें।
अगर दो मौजूद हों, आप और आपका परमात्मा, तो परमात्मा की उपलब्धि नहीं होने वाली है। जब आप ही बचे, तब ही परमात्मा की उपलब्धि होने वाली है। या परमात्मा ही बचे, आप न बचें, तो उसकी उपलब्धि हो सकती है।
एकाग्रता में तो सदा दो बने रहते हैं। एक आप, जो एकाग्र हो रहा है; और
एक वह, जिसके ऊपर एकाग्र हो रहा है। एकाग्रता में द्वैत नहीं नष्ट होता; दुई तो बनी ही रहती है। साक्षी-भाव में द्वैत नष्ट होता है, अद्वैत की उपलब्धि होती है।
इसलिए मेरा जोर तो साक्षी-भाव पर ही है। और अगर कोई व्यक्ति एकाग्रता में उत्सुकता भी रखता है, तो भी मैं उसे साक्षी-भाव की तरफ ही ले जाने की कोशिश करता हूं।
एकाग्रता के माध्यम से भी साक्षी-भाव की तरफ जाया जा सकता है। क्योंकि जिसका मन बिखरा है, उसे साक्षी-भाव भी साधना कठिन होगा। जिसका मन एकजुट है, उसे साक्षी-भाव भी साधना आसान हो जाएगा। इसलिए कुछ धर्मों ने भी एकाग्रता का उपयोग साक्षी-भाव की पहली सीढ़ी की तरह किया है। लेकिन वह सीढ़ी ही है, साधन ही है, साध्य नहीं है।
और ध्यान रहे, साक्षी-भाव साधन भी है और साध्य भी। साक्षी-भाव साधना
भी है और साक्षी-भाव पाना भी है। साक्षी-भाव के पार कुछ भी नहीं है। इसलिए साक्षी-भाव की साधना पहले चरण से ही मंजिल की शुरुआत है।
एकाग्रता मंजिल की शुरुआत नहीं है। वह एक साधन है, एक रास्ता है। वह रास्ता वहां तक पहुंचा देगा, जहां से असली रास्ता शुरू होता है। और वह भी तभी पहुंचाएगा, जब आपको ध्यान में हो। अन्यथा खतरा है। एकाग्रता में भटक जाने की पूरी सुविधा है।
ऐसा हुआ, विवेकानंद एकाग्रता की साधना करते थे। शक्तिशाली व्यक्ति थे
और मन को इकट्ठा कर लेना शक्तिशाली व्यक्तियों के लिए बड़ा आसान है। सिर्फ कमजोरी के कारण ही हम मन को इकट्ठा नहीं कर पाते हैं। कमजोरी के कारण ही मन यहां-वहां भागता है, हम उसे खींच नहीं पाते। हाथ कमजोर हैं, लगाम कमजोर है, घोड़े कहीं भी भागते हैं। और इसलिए कमजोरी में हमसे सब भूलें होती हैं।
एक आदमी पर मुकदमा चल रहा था। उसने पहले एक आदमी को मारा, फिर दूसरे आदमी को धक्का देकर छत से नीचे गिरा दिया और तीसरे आदमी की हत्या कर दी। एक पंद्रह मिनट के भीतर तीन काम उसने किए।
जज उससे पूछ रहा था कि तू इतने भयंकर काम पंद्रह मिनट में कैसे कर पाया? उस आदमी ने कहा, क्षमा करें, कमजोरी के क्षण में ऐसा हो गया। कमजोरी के क्षण में, मोमेंट्स आफ वीकनेस।
आप जिनको कमजोरी के क्षण कहते हैं, वहीं आपकी ताकत दिखाई पड़ती है। आपकी ताकत गलत में ही दिखाई पड़ती है। और गलत में इसलिए दिखाई पड़ती है कि वहां आपको ताकत दिखानी नहीं पड़ती, मन ही आपको खींचकर ले जाता है। मन के विपरीत जहां भी आपको ताकत दिखानी पड़े, वहीं आप कमजोर हो जाते हैं। वहीं फिर आपसे कुछ बनता नहीं।
अगर आपसे कोई कहे कि पांच मिनट शांत होकर बैठ जाएं, तो बड़ी कठिन हो जाती है बात। पचास साल अशांत रह सकते हैं; उसमें जरा भी अड़चन नहीं है। पांच क्षण शांत होना कठिन है। जन्मों-जन्मों तक विचारों की भीड़ चलती रहे, आपको

कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन एक विचार पर मन को क्षणभर को लाना हो, तो बस कठिनाई हो जाती है।
पर विवेकानंद शक्तिशाली व्यक्ति थे। एकाग्रता के प्रयोग करते थे।
एकाग्रता सध भी गई। जैसे ही एकाग्रता सधी, जो खतरा होना चाहिए, वह हुआ।
क्योंकि एकाग्रता के सधते ही आपको लगता है कि मैं महाशक्तिशाली हो गया। रूस में एक महिला है, जो पांच मिनट तक अपने को एकाग्र कर लेती है, तो फिर आस-पास की वस्तुओं को प्रभावित कर सकती है। बीस फीट के घेरे में पत्थर पड़ा हो, तो वह उसको अपने पास खींच ले सकती है, सिर्फ विचार से। टेबल रखी हो, तो सिर्फ विचार से हटा दे सकती है। टेबल पर सामान रखा हो, तो सिर्फ विचार से नीचे गिरा दे सकती है।
रूस में उसके बड़े वैज्ञानिक परीक्षण हुए हैं। और उन्होंने अनुभव किया
कि जब विचार बिल्कुल एकाग्र हो जाता है, तो जैसे विद्युत के धक्के लगते हैं वस्तुओं को, ऐसे ही विचार के धक्के भी लगने शुरू हो जाते हैं। उसके फोटोग्राफ भी लिए गए हैं, और उसके वैज्ञानिक प्रयोग भी किए गए हैं। और सभी प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि उस स्त्री से कोई वैद्युतिक शक्ति प्रवाहित होती है, जो वस्तुओं को हटा देती है या पास खींच लेती है।
पंद्रह मिनट के प्रयोग में उस स्त्री का तीन पाउंड वजन कम हो जाता है। इतनी शक्ति प्रवाहित होती है कि उसका तीन पाउंड शरीर से वजन नीचे गिर जाता है।
तो दिखाई न पड़ती हो, लेकिन फिर भी शक्ति भौतिक है। नहीं तो तीन पाउंड वजन कम होने का कोई कारण नहीं है। अदृश्य हो, लेकिन मैटीरियल है, पदार्थगत है। इसलिए तीन पाउंड शरीर का वजन नीचे गिर जाता है। और वह स्त्री कोई एक सप्ताह तक अस्वस्थ अनुभव करती है। एक सप्ताह के बाद फिर प्रयोग कर सकती है, उसके पहले नहीं।
जब भी कोई चित्त को एकाग्र करता है, तो बड़ी शक्ति प्रकट होती है। अगर उसका उपयोग किया जाए, शक्ति क्षीण हो जाती है। अगर उसका उपयोग न किया जाए और सिर्फ उसका साक्षी रहा जाए, तो वह शक्ति स्वयं में लीन हो जाती है। और वह जो स्वयं में शक्ति की लीनता है, वह साक्षी का आधार बनने लगती है। विवेकानंद ने एकाग्रता साधी और जैसा सभी को होगा, उनको भी हुआ, लगा कि मैं परम शक्तिशाली हो गया हूं। और कोई भी काम करना चाहूं, तो केवल विचार से हो सकता है।
रामकृष्ण के आश्रम में एक बहुत सीधा-सादा आदमी था। कालू उसका नाम था, कालीचरण। वह भक्त आदमी था। अपने छोटे-से कमरे में उसने कम से कम नहीं तो सौ-पचास देवी-देवता रख छोड़े थे। सब तरह के देवी-देवताओं को नमस्कार करना... ! उसको कोई तीन घंटे से लेकर छः घंटे तक पूजा में लग जाते। क्योंकि सभी को थोड़ा-थोड़ा राजी करना पड़ता। इतने देवी-देवता थे।
और विवेकानंद उससे अक्सर कहते थे, क्योंकि विवेकानंद का मन वस्तुतः नास्तिक का मन था। शुरुआत से ही विचार और तर्क उनकी पकड़ थी। तो उस पर वे हंसते थे और उससे कहते थे, कालीचरण, फेंक। यह क्या कचरा इकट्ठा कर रखा है! और इन पत्थरों के पीछे तू तीन-तीन, छः-छः घंटे खराब करता है!
जैसे ही उनको एकाग्रता का पहला अनुभव हुआ, उनको ख्याल आया कालीचरण का,
कि वह पूजा कर रहा है बगल के कमरे में। तो उन्होंने अपने मन में ही सोचा कि कालीचरण, बस, अब बहुत हो गया। सारे देवी-देवताओं को एक कपड़े में बांध और गंगा में फेंक आ।
कालीचरण पूजा कर रहा था; अचानक उसे भाव आया कि सब बेकार है। सारे देवी- देवता उसने कपड़े में बांधे और गंगा की तरफ चला।
रामकृष्ण अपने कमरे में बैठे थे। उन्होंने कालीचरण को बुलाया कि कहां
जा रहे हो? उसने कहा, सब व्यर्थ है; कर चुके पूजा-पाठ बहुत; इससे कुछ होता नहीं। ये सब देवी-देवताओं को गंगा में फेंकने जा रहा हूं। कालीचरण को रामकृष्ण ने कहा, एक दो मिनट रुक। और आदमी भेजा कि विवेकानंद को उनकी कोठरी से निकालकर बाहर ले आओ। कालीचरण को कहा कि यह तू नहीं जा रहा है। विवेकानंद घबड़ाए हुए आए। रामकृष्ण ने कहा कि देख, यह तूने क्या किया!
और अगर यही करना है एकाग्रता से, तो तेरी कुंजी सदा के लिए मैं रखे लेता हूं। अब मरने के तीन दिन पहले ही तुझे कुंजी वापस मिलेगी।

विवेकानंद मरने के तीन दिन पहले तक फिर एकाग्रता न साध सके।
विवेकानंद जैसा व्यक्ति भी अगर शक्ति का ऐसा क्षुद्र उपयोग करने को तैयार हो जाए, तो किसी दूसरे व्यक्ति के लिए तो बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए एकाग्रता पर मेरा जरा भी जोर नहीं है। पहले आपको एकाग्रता सधवाई जाए, फिर चाबी रखी जाए, इस सब अड़चन में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। साक्षी-भाव सहज मार्ग है। और चूंकि शक्ति सीधी उपलब्ध नहीं होती, बल्कि शांति उपलब्ध होती है। जैसे-जैसे साक्षी सधता है, वैसे-वैसे आप परम शांत होते जाते हैं। उस परम शांति के कारण ऐसे उपद्रवी ख्याल आपमें उठेंगे ही नहीं। और दूसरे को कुछ करके दिखाना है, दूसरे के साथ कुछ करना है अपनी शक्ति से, ऐसी वासना नहीं जगेगी।
अन्यथा सभी तरह की शक्तियां भटकाव बन जाती हैं। धन की शक्ति से ही लोग बिगड़ते हैं, ऐसा मत सोचना आप; सभी तरह की शक्ति से बिगड़ते हैं। पद की शक्ति से लोग बिगड़ते हैं, ऐसा आप मत सोचना; सभी तरह की शक्ति से बिगड़ते हैं। सचाई तो यह है कि बिगड़ने की तो आपकी मनोदशा सदा ही है, सिर्फ आप कमजोर हैं और बिगड़ने के लायक आपके पास शक्ति नहीं है।
मेरे पास अक्सर लोग आते हैं। वे कहते हैं, फलां आदमी इतना भला था; सेवक था, भूदान में काम करता था; गरीबों के चरण दबाता था; मरीजों का इलाज करता था; विधवाओं के लिए आश्रम खोलता था। वह जब से राजपद पर चला गया है, कि मिनिस्टर हो गया है, तब से बिल्कुल बदल गया है! शक्ति ने उसे खराब कर दिया। शक्ति क्यों खराब करेगी? उस आदमी के भीतर खराबी के सारे मार्ग थे, लेकिन उन पर बहने की हिम्मत न थी; और कोई उपाय न था। जैसे ही हिम्मत मिली, उपाय मिला, साधन जुटे, वह आदमी बिगड़ गया।
लोग कहते हैं, फलां आदमी कितना भला था जब गरीब था। जब से उसके पास पैसा आया है, तब से वह पागलपन कर रहा है।
पागलपन सभी करना चाहते हैं, लेकिन पागलपन करने को भी तो सुविधा चाहिए। पाप सभी करना चाहते हैं, लेकिन पाप करने के लिए भी तो सुगमता चाहिए। बुरा सभी करना चाहते हैं, लेकिन आपकी सामर्थ्य भी तो बुरा करने की होनी चाहिए। जब भी सामर्थ्य मिलती है, बुराई तत्क्षण पकड़ लेती है।
पर मैं आपसे कहता हूं कि धन और पद की ही शक्तियां नहीं, एकाग्रता की शक्ति भी बुराई के रास्ते पर ले जाएगी। क्योंकि बुरे तो आप होना ही चाहते हैं। वे बीज वहां पड़े हैं, वर्षा की जरूरत है। शक्ति की वर्षा हो जाए, अंकुर फूट आएंगे। और जो बीज आप में छिपे हैं, वे प्रकट होने लगेंगे। और हम सब जहर के बीज लिए चल रहे हैं।
इसलिए मेरी पूरी चेष्टा रहती है निरंतर कि आपको शक्ति की दिशा में जाने का ख्याल ही न पकड़े। आप मौन, शांति और शून्यता की दिशा में जाएं। क्योंकि जैसे-जैसे आप शांत होंगे, वे जो जहर के बीज आपके भीतर पड़े हैं, उनके अंकुरित होने का कोई उपाय न रहेगा। आपके शांत होते-होते वे बीज दग्ध होने लगेंगे, जल जाएंगे। शक्ति आपको भी उपलब्ध होगी, लेकिन वह तभी उपलब्ध होगी, जब शांति इतनी घनी हो जाएगी कि सारे रोग के बीज जल चुके होंगे; तब आपको शक्ति उपलब्ध होगी। लेकिन उसका फिर कोई दुरुपयोग नहीं हो सकता है। और उस शक्ति का, सच पूछिए तो, आप उपयोग भी नहीं करेंगे। और जब कोई व्यक्ति शक्तिशाली हो जाता है और उपयोग नहीं करता, तब परमात्मा उस शक्ति का उपयोग करता है। इस कीमिया को ठीक से समझ लें।
जब तक आप उपयोग करने वाले हैं, तब तक परमात्मा आपका उपयोग नहीं करता।
जब तक आप कर्ता हैं, तब तक परमात्मा के लिए आप उपकरण नहीं बनते, निमित्त नहीं बनते। जैसे ही आपको ख्याल ही मिट जाता है कि कुछ करना है और शक्ति आपके पास होती है, उस शक्ति का उपयोग परमात्मा के हाथ में चला जाता है।
कृष्ण का पूरा जोर गीता में अर्जुन से यही है कि तू कर्तापन छोड़ दे।
और जैसे ही तेरा कर्तापन छूट जाएगा, वैसे ही परमात्मा तेरे भीतर से प्रवाहित होने लगेगा; तब तू निमित्त-मात्र है।
तो साक्षी का मार्ग और एकाग्रता का मार्ग बड़े भिन्न-भिन्न हैं।
पर आपकी आकांक्षा क्या है? अगर आप अपने अहंकार को और बड़ा करना चाहते हैं, उसको और महिमाशाली करना चाहते हैं, तो साक्षी की बात आपको न जमेगी। तब आप चाहेंगे कि एकाग्रता, कनसनट्रेशन, सिद्धियां, शक्तियां आपको उपलब्ध हो

जाएं। पर ध्यान रहे, वैसी खोज धार्मिक नहीं है। जहां भी आपको यह ख्याल होता है कि मैं कुछ हो जाऊं, आप धर्म से हट रहे हैं।
इस बात को आप कसौटी बना लें।
यह भावना आपकी रोज गहरी होती जाए कि मैं मिट रहा हूं; मैं ना-कुछ हो रहा हूं। और अंततः मुझे उस जगह जाना है, जहां मैं खो जाऊंगा, जहां बूंद को खोजने से भी न खोजा जा सकेगा; बूंद पूरी सागर में एक हो गई होगी। तो मुझे शक्ति की जरूरत भी क्या है? शक्ति परमात्मा की है और मैं परमात्मा में खो जाऊंगा, तो सारा परमात्मा मेरा है। मुझे अलग से शक्ति की खोज की जरूरत क्या है!
अलग से शक्ति की खोज का अर्थ है, आप अपने अहंकार को बचाने में लगे हैं।
और अहंकार ही संसार है।

दूसरा प्रश्नः सबको शास्त्र पढ़कर गुरु की खोज में निकलना पड़ता है। क्या शास्त्रों को पढ़ने की कष्ट-साध्य प्रक्रिया से गुजरना अनिवार्य है? क्या सीधे ही गुरु की खोज में नहीं निकला जा सकता है?

असंभव है; क्योंकि गुरु की खोज शास्त्र की असफलता से शुरू होती है। जब
आप शास्त्र में खोजते हैं, खोजते हैं, खोजते हैं और नहीं पाते हैं, तभी गुरु की खोज शुरू होती है। जहां बाइबिल, कुरान, गीता और वेद हार जाते हैं, वहीं से गुरु की खोज शुरू होती है। क्यों? और सीधे गुरु की तलाश में जाना क्यों असंभव है?
पहली बात, शास्त्र मुर्दा है। उससे आपके अहंकार को चोट नहीं लगती। गीता को सिर पर रखना बिल्कुल आसान है। कुरान पर सिर झुकाना बिल्कुल आसान है। लेकिन किसी जीवित व्यक्ति को सिर पर रखना बहुत कठिन है; और किसी जीवित व्यक्ति के चरणों में सिर रखना बहुत मुश्किल है।
किताब तो मुर्दा है। मरे हुए से आपके अहंकार को कोई खतरा नहीं है। एक जिंदा व्यक्ति खतरनाक है। और उसके चरणों में सिर झुकाते वक्त पीड़ा होती है। आपका अहंकार बल मारता है। इसलिए पहले व्यक्ति शास्त्र से खोज करता है कि अगर किताब से मिल जाए, तो क्यों झंझट में पड़ना!
फिर किताब आप खरीद सकते हैं, गुरु आप खरीद नहीं सकते। किताब दुकान-दुकान पर मिल जाती है। गुरु को बेचने वाली कोई दुकानें नहीं हैं। किताब के अर्थ आप अपने मतलब से निकालेंगे। किताब की व्याख्या करने के आप ही मालिक होंगे; क्या मतलब निकालते हैं, यह आप पर ही निर्भर होगा। और हमारा जो अचेतन है, वह अपने ही हिसाब से अर्थ निकालता है।
इसलिए कोई किताब आपको बदल नहीं सकती। कोई किताब आपको रूपांतरित नहीं
कर सकती। क्योंकि किताब का अर्थ कौन करेगा? आप गीता पढ़ेंगे, माना; लेकिन उस गीता से जो मतलब निकालेंगे, वे आपके ही होंगे, वह आपका ही अहंकार होगा; उसका ही प्रक्षेपण होगा।
और हम किताब से वही निकाल लेते हैं, उस पर ही हमारा ध्यान जाता है, जो हमारी चित्त-दशा होती है।
मैंने एक घटना सुनी है। पता नहीं सच है या झूठ। बंगला देश में याह्या खान ने अपनी सारी ताकतें लगा दीं। और रोज-रोज सूर्यास्त होने लगा। तो वह बहुत घबड़ाया हुआ था। और उसने अमेरिकी राजदूत को बुलाया कि हमें और शस्त्रास्त्रों की जरूरत पड़ेगी। इसके पहले कि अमेरिकी राजदूत आए, उसने बाइबिल पलटनी शुरू की इस ख्याल से कि कुछ बाइबिल से दो-चार वचन याद कर ले, तो अमेरिकी राजदूत को बाइबिल के आधार पर प्रभावित करना आसान होगा।
उसने किताब पलटी। जिस वाक्य पर पहली उसकी नजर पड़ी, तो वह थोड़ा धक्का खाया। पहला वचन जो उसने देखा, वह था, और जुदास ने अपने आपको फांसी लगा ली। उसकी हालत उस वक्त वही थी, फांसी लगाने जैसी। तो वह थोड़ा डरा। उसने जल्दी से पन्ना पलटा।
दूसरे पन्ने पर उसकी नजर पड़ी; एक वचन था कि और तुम भी उसी का अनुसरण करो। तब तो वह बहुत घबड़ा गया। उसने जल्दी से तीसरा पन्ना उलटा; उसकी नजर पड़ी कि समय क्यों खराब कर रहे हो? देर क्या है? सोच-विचार क्या है? इस पर शीघ्र अमल करो। उसने घबड़ाकर बाइबिल बंद कर दी।

इस आधार पर कि आपका अचेतन काम करता है, चीन में एक किताब है, आई चिंग।
यह दुनिया की अनूठी से अनूठी किताब है। और लाखों लोग हजारों वर्षों से इस किताब का उपयोग कर रहे हैं। आई चिंग ज्योतिष की अनूठी किताब है। और आपका कोई भी प्रश्न हो, आई चिंग में उसके उत्तर हैं। बस, आप अपना प्रश्न तैयार कर लें और आई चिंग को उलटें। और उसके उलटने के हिसाब हैं। पासे फेंकने का हिसाब है, उससे उसका पन्ना उलट लें। और आपको उत्तर मिल जाएगा।
आई चिंग बड़ी अदभुत किताब है। क्योंकि एक तो चीनी भाषा में है। उसका अनुवाद भी हुआ है, तो भी चीनी भाषा अनूठी है, उसमें एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। क्योंकि शब्द होता नहीं, सिर्फ चित्र होते हैं। और आई चिंग ऐसी रहस्यपूर्ण किताब है कि कोई भी वचन साफ नहीं है। किसी वचन का कोई साफ मतलब नहीं है; धुंधला-धुंधला है।
ऐसे ही जैसे कि आप आकाश में देखें, बादल घिरे हैं; और बादलों में जो भी चित्र आप देखना चाहें, देख लें। आपको घोड़ा बनाना हो, तो घोड़ा बन जाए; हाथी बनाना हो, तो हाथी बन जाए। जो भी आपको बनाना हो। क्योंकि बादल तो--न वहां हाथी है, न वहां घोड़ा है--सिर्फ धुआं है उड़ता हुआ। रेखाएं प्रतिपल बदल रही हैं। आप उनमें कोई भी कल्पना कर लें, वह आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। चांद पर बच्चे देखते हैं कि बुढ़िया चरखा चला रही है। वह उनको दिखाई पड़ने लगता है। एक बार ख्याल में आ जाए, फिर दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। आई चिंग को लोग पढ़ते हैं; उनका जो अपना प्रश्न है, उसके हिसाब से वे उत्तर निकाल लेते हैं। उत्तर उसमें मिल जाते हैं। लोग सोचते हैं, बड़ी अनूठी किताब है। अनूठी सिर्फ इसलिए है कि जिसने भी रची, वह आदमी मिस्टिफिकेशन में, चीजों को धुंधला करने में महान कारीगर रहा होगा। कोई भी चीज का साफ रेखा में उत्तर नहीं है। इतना धुंधला है उत्तर कि आप जो भी मतलब निकालना चाहें, निकल सकता है। तो हर आदमी अपने मतलब का मतलब निकाल लेता है।
सभी शास्त्र धुंधले हैं। उसका कारण है। इसलिए नहीं कि धुंधले लोगों
ने रखे हैं। लेकिन जिस सत्य की चर्चा है, शब्दों में आकर वह सत्य धुंधला हो जाता है। सत्य को शब्द के माध्यम में डालते ही धुंधलापन पैदा हो जाता है। फिर शास्त्र से अर्थ आप अपना निकालते हैं। तो जो आदमी पढ़ता है, वही आदमी अपने को ही शास्त्र के माध्यम से पढ़ रहा है। इसलिए कोई शास्त्र आपको आपके ऊपर नहीं ले जा सकते; आपके भीतर ही रखेंगे। आपसे ज्यादा कोई शास्त्र आपको नहीं दे सकता।
शास्त्र की हालत वैसी है, मैंने सुना है, एक आदमी, बूढ़ा आदमी, गांव का ग्रामीण, आंख के डाक्टर के पास गया। आंखों से उसको दिखना करीब-करीब बंद हो गया था। तो डाक्टर ने कहा, लेकिन आंखों में कोई मूलभूत खराबी नहीं है, चश्मा लगाने से सब ठीक हो जाएगा।
तो उस बूढ़े आदमी ने कहा, क्या आंखें इतनी ठीक हो जाएंगी कि मैं लिख-पढ़
भी सकूं? डाक्टर ने कहा, बिल्कुल। तुम लिख सकोगे, पढ़ सकोगे। तो उसने कहा, तब तो जल्दी करो, क्योंकि लिखना-पढ़ना मुझे आता नहीं।
अब जिसको लिखना-पढ़ना नहीं आता, वह चश्मा लगाने से भी लिख-पढ़ नहीं सकेगा। क्योंकि चश्मा उतना ही बता सकता है, जितना आपको आता हो, उससे ज्यादा नहीं।
शास्त्र में आप वह कैसे पढ़ सकते हैं, जो आपको आता ही नहीं। आप वही पढ़ सकते हैं, जो आपको आता है। इसलिए शास्त्र व्यर्थ हैं। शास्त्र आपको आपसे ज्यादा में नहीं ले जा सकता है; कोई आत्म-अतिक्रमण नहीं हो सकता है।
पर शास्त्र सुविधापूर्ण है। आप जो भी मतलब निकालना चाहें, निकालें। शास्त्र झगड़ा भी नहीं करता। वह यह भी नहीं कह सकता कि आप गलत अर्थ निकाल रहे हैं, कि यह मेरा भाव नहीं है, कि ऐसा मैंने कभी कहा नहीं है। शास्त्र कोई आज्ञा भी नहीं देता। सब आप पर निर्भर है।
इसलिए पहले अहंकार शास्त्र में खोजने की कोशिश करता है। और जब नहीं पाता... । और अभागे हैं वे लोग, जो सोचते हैं कि उनको शास्त्र में मिल गया। सौभाग्यशाली हैं वे लोग, जिनमें कम से कम इतनी बुद्धि है कि वे पहचान लेते हैं कि शास्त्र में हमें नहीं मिला। यह बुद्धिमान का लक्षण है।

अनेक तो बुद्धिहीन सोच लेते हैं कि उन्हें मिल ही गया। शास्त्र के शब्द कंठस्थ कर लेते हैं, और सोचते हैं, बात पूरी हो गई।
शास्त्र से जो असफल हो जाता है, उसकी नजर व्यक्तियों की तलाश में जाती है। क्योंकि अब अहंकार एक पराजय झेल चुका। और अब वह जीवित व्यक्ति में तलाश करेगा।
जीवित व्यक्ति के साथ अड़चनें हैं। पहली तो अड़चन यह है कि उसके सामने झुकना कठिन है। और बिना झुके सीखने का कोई उपाय नहीं है।
दूसरी अड़चन यह है कि आप अपना अर्थ न निकाल सकेंगे। वह जीवित व्यक्ति अपना ही अर्थ, अपने ही अर्थ पर आपको चलाने की कोशिश करेगा। जीवित आदमी को धोखा नहीं दिया जा सकता। अपनी मरजी उस पर थोपी नहीं जा सकती। और वह जीवित आदमी आपको आपके बाहर और आपसे ऊपर ले जाने में समर्थ है।
शास्त्र के द्वारा आत्म-क्रांति करने की कोशिश ऐसे है, जैसे कोई अपने जूते के बंधों को पकड़कर खुद को उठाने की कोशिश करे। आप ही पढ़ रहे हैं; आप ही अर्थ निकाल रहे हैं; आप ही साधना कर रहे हैं! अपने ही जूते के बंध पकड़े हैं और उठाने की कोशिश कर रहे हैं। इससे कुछ परिणाम नहीं है। लेकिन एक परिणाम हो सकता है कि इससे थक जाएं और गुरु की तलाश शुरू हो जाए।
इसलिए शास्त्रों की एक ही उपयोगिता है कि वे गुरु तक आपको पहुंचा दें। मृत जीवित तक आपको पहुंचा दे, तो काफी काम है।
और आप सोचते हों कि शास्त्र से बचकर हम गुरु तक पहुंच जाएं, तो बहुत कठिन है। क्योंकि वह असफलता जरूरी है। वह शास्त्र में भटकने की चेष्टा जरूरी है। वहां विषाद से, दुख से भर जाना जरूरी है।
दोनों तरह के लोग मेरे पास आ जाते हैं। ऐसा व्यक्ति भी आता है, जो शास्त्र से थक गया है। तो मैं पाता हूं, उसके साथ काम बहुत आसान है। क्योंकि वह व्यर्थ से ऊब चुका है। अब उसकी व्यर्थ में बहुत उत्सुकता नहीं है। अब वह सार की ही बात जानना चाहता है, जो की जा सके। अब वह व्यावहारिक है। अब वह शास्त्रीय नहीं है। अब उसकी बौद्धिक चिंता नहीं है बहुत। अब उसकी साधनागत चिंता है। शास्त्र से वह छूट चुका। अब साधना की प्यास उसमें जगी है।
जो लोग बिना शास्त्र को जाने आ जाते हैं, उनकी जिज्ञासा शास्त्रीय होती है। वे पूछते हैं, ईश्वर है या नहीं? संसार किसने बनाया? यह काम तो शास्त्र ही निपटा देता, इनके लिए मेरे पास आने की जरूरत नहीं है। आत्मा कहां से आई? ब्रह्म कहां है? यह सब बकवास तो शास्त्र ही निपटा देता। इस सबके लिए किसी जीवित आदमी की कोई जरूरत नहीं है। और कोई जीवित गुरु इस तरह की व्यर्थ की बातों में पड़ेगा भी नहीं, क्योंकि समय खराब करने को नहीं है। तो जो लोग शास्त्र से नहीं गुजरे हैं, उनके साथ तकलीफ यह होती है कि उनकी जिज्ञासाएं शास्त्रीय होती हैं और वे व्यर्थ समय जाया करते हैं। शास्त्र से गुजर जाना अच्छा है। आपकी जो बचपनी, बच्चों जैसी जिज्ञासाएं हैं, उनका या तो हल हो जाएगा या आपको समझ में आ जाएगा कि वे व्यर्थ हैं; उनका कोई मूल्य नहीं है। और आप जीवन में बदलाहट कैसे हो सके, इसकी प्यास से भर जाएंगे। यह प्यास बड़ी अलग है।
और शास्त्रों को आपने समझा हो, तो गुरु को समझना आसान हो जाएगा। क्योंकि जो-जो शास्त्र में छूट गया है, वही-वही गुरु में है। गुरु परिपूरक है। जहां-जहां इशारे थे, थोड़ी दूर तक यात्रा थी और फिर मार्ग छूट जाता था, वहीं से गुरु शुरू होता है। वह परिपूरक है। क्योंकि जहां तक शब्द ले जा सकते हैं, उसके आगे ही गुरु का काम है।
महावीर के जीवन में उल्लेख है, बड़ी हैरानी का उल्लेख है। बुद्ध के जीवन में भी वही उल्लेख है। और सांयोगिक नहीं मालूम होता। महावीर के जो बड़े शिष्य थे ग्यारह, वे ग्यारह के ग्यारह महापंडित ब्राह्मण थे।
महावीर ब्राह्मणों के शत्रु हैं, एक लिहाज से। क्योंकि वे एक नए धर्म
की उदभावना कर रहे थे, जो ब्राह्मण और पुरोहित के विरोध में थी। वे मंदिर, पुराने शास्त्र, वेद, उन सब का खंडन कर रहे थे। ईश्वर, उसका इनकार कर रहे थे। खुद क्षत्रिय थे, लेकिन उनके जो ग्यारह गणधर हैं, जो उनके ग्यारह विशेष शिष्य, जिनके आधार पर सारा जैन धर्म खड़ा हुआ, वे सब के सब महापंडित ब्राह्मण हैं। यह जरा हैरानी की बात है।

बुद्ध के साथ भी ठीक यही हुआ। बुद्ध क्षत्रिय हैं। उनके जो भी महाशिष्य हैं, वे सभी ब्राह्मण हैं। और साधारण ब्राह्मण नहीं, असाधारण पंडित हैं।
जब सारिपुत्त बुद्ध के पास आया, तो पांच सौ ब्राह्मण उसके शिष्य थे, उसके साथ आए थे। जब मौदगल्यायन बुद्ध के पास आया, तो उसके साथ पांच हजार उसके शिष्य थे। वह पांच हजार शिष्यों का तो स्वयं गुरु था।
ठीक ऐसा ही महावीर के जीवन में उल्लेख है। गौतम जब आया, सुधर्मा जब आया, तो ये सब बड़े-बड़े पंडित थे। और इनके साथ बड़े शिष्यों का समूह था। महावीर जिंदा गुरु हैं। ये ग्यारह जो उनके गणधर हैं, ये सब शास्त्र जान चुके थे। ये सब वेद के ज्ञाता थे। पारंगत विद्वान थे। ये महावीर को समझ सके तत्क्षण, क्योंकि जो-जो शास्त्र में छूट रहा था, वह-वह महावीर में मौजूद था। इनको पकड़ फौरन आ गई।
ये महाकाश्यप, सारिपुत्त, मौदगल्यायन, ये सब के सब महापंडित थे। इन्होंने सब शास्त्र तलाश लिए थे। शास्त्र में कहीं भी कुछ नहीं बचा था, जो इन्होंने न खोजा हो। फिर भी सब जगह बात अधूरी थी। बुद्ध को देखते ही सब बातें पूरी हो गईं। इस आदमी की मौजूदगी से शास्त्र में जो कमी थी, वह तत्काल भर गई। जहां-जहां शास्त्र का पात्र अधूरा था, वहां-वहां बुद्ध को देखकर पूरा हो गया। जिस तरफ शास्त्रों ने इशारा किया था, यह वही आदमी था। तो अपने से विपरीत के प्रति भी समर्पण में कठिनाई नहीं आई। ये ग्यारह पंडित महावीर के चरणों में सिर रख दिए। इन्होंने अपने शास्त्रों में आग लगा दी। इन्होंने कहा, अब उनकी कोई जरूरत नहीं। क्योंकि जिंदा आदमी मिल गया, जिसकी हम तलाश करते थे।
नक्शे की तभी तक जरूरत है, जब तक घर न मिल गया हो जिसकी आप खोज कर रहे हैं। फिर आप नक्शे को फेंक देते हैं। फिर आप कहते हैं, मिल गई वह जगह, जिसकी ओर नक्शे में इशारा था; जहां हम चल रहे थे।
तो महावीर ने जब इन गणधरों से कहा कि छोड़ दो वेद। उन्होंने कहा, आपको देखकर ही छूट गए; छोड़ने को अब कुछ बचा नहीं है।
जब बुद्ध ने कहा महाकाश्यप को कि छोड़ दो सब--कोई शास्त्र, कोई वेद, कोई ईश्वर। तो उसने कहा, छूट गया! आपको देखते से ही छूट गया। आपकी मौजूदगी काफी है। आप उस सब के सिद्ध प्रमाण हैं, जिसको हम खोजते थे। अब तक पकड़ा था उसको, क्योंकि उसके सहारे खोज चलती थी। अब खोज पूरी हो गई, अब उसकी हमें कोई जरूरत नहीं।
तो आप जानकर चकित होंगे कि शास्त्र अगर ठीक से समझा जाए, तो उसे छोड़ने में जरा भी कठिनाई नहीं आती। जिन्होंने ठीक से नहीं समझा है, उन्हीं को कठिनाई आती है। जिनको शास्त्र पचता नहीं है, उन्हीं की कठिनाई है। वे उसे पकड़े रहते हैं। जिनको शास्त्र पच जाता है, उन्हें छोड़ने में क्या अड़चन है! छूट ही गया; पचने में ही समाप्त हो गया। शास्त्र का काम पूरा हो गया। और जहां शास्त्र पूरा होता है, वहां गुरु की तरफ आंख उठनी शुरू होती है।
और गुरु के बिना कोई उपाय नहीं है। शास्त्र से तो कुछ होने वाला नहीं है। इतना ही हो जाए तो काफी है। इतना हो सकता है; पर वह भी आपकी बुद्धिमत्ता पर निर्भर है। आप अगर अपने अर्थ निकालते रहें, तो शायद यह भी न हो पाए।
मुल्ला नसरुद्दीन गुजर रहा था एक मंदिर के पास से। अपने बैलों को लिए
जा रहा था। मंदिर में पूजा हो रही थी; आरती चल रही थी; ढोल बज रहे थे; घंटे का नाद हो रहा था। बैल बिचक गए। मुल्ला बहुत नाराज हुआ। वह अंदर पहुंचा। और उसने कहा, यहां क्या हो रहा है? यह क्या कर रहे हो? तो लोगों ने कहा, हम आरती उतार रहे हैं। तो नसरुद्दीन ने कहा, चढ़ाई ही क्यों, जब उतारना नहीं आता?
यह अर्थ उसने निकाला! अर्थ तो बिल्कुल साफ है कि जब उतारना ही नहीं आता, इतना धूम-धड़ाका कर रहे हो, उपद्रव कर रहे हो, उतर नहीं रही, तो चढ़ाई किसलिए? पहले उतारना सीख लो, फिर चढ़ाओ।
आप शास्त्र पढ़ेंगे, क्या अर्थ निकालेंगे, वह अर्थ आपके भीतर से आएगा।
नसरुद्दीन को पता ही नहीं था कि आरती चढ़ाना क्या है; आरती उतारना क्या है।

वह समझा, कोई चीज चढ़ा दी; चढ़ गई है, अब उतर नहीं रही है। अब ये इतना शोरगुल मचा रहे हैं, कूद-फांद रहे हैं, और इनसे उतर नहीं रही है।
शब्द कभी भी पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि शब्द कोई वस्तु तो नहीं है। शब्द तो सिर्फ संकेत है। संकेत पूरा नहीं हो सकता। संकेत का अर्थ ही है कि वह सिर्फ इशारा है। वहां कुछ है नहीं, वहां सिर्फ तीर जाते हैं।
सड़क के किनारे पत्थर लगा हुआ है, दिल्ली की तरफ। उस पर लिखा है दिल्ली
और एक तीर लगा है। वहां दिल्ली नहीं है। नसरुद्दीन वहीं ठहर सकते हैं, कि आ गई दिल्ली; पत्थर पर लिखा हुआ है।
आप भी अगर शास्त्र को देखकर समझते हों, आ गई दिल्ली, तो भूल में पड़ रहे हैं। वह सिर्फ पत्थर है, जहां एक तीर लगा हुआ है कि यात्रा आगे की तरफ चलती है। अभी और आगे जाना है।
जब दिल्ली सच में आएगी, तो पत्थर पर शून्य बना होगा, वहां तीर नहीं होगा, जीरो होगा। और जिस दिन आपके भीतर भी जीरो आ जाए, शून्य आ जाए, समझना कि दिल्ली आ गई! उस दिन आप पहुंच गए; मुकाम आ गया। शून्य के पहले मुकाम नहीं है।
शास्त्र में खोजें। अगर समझ हो, तो शास्त्र बड़े प्यारे हैं। क्योंकि जिनसे वे निकले हैं, वे अनूठे लोग थे। उनमें उनकी थोड़ी सुवास तो है ही। जिस शब्द का उपयोग बुद्ध ने कर लिया, उसमें बुद्ध की थोड़ी सुवास तो आ ही गई। जो उनके होंठों पर रह लिया, जो इस योग्य समझा गया कि बुद्ध ने उसका अपनी वाणी से उपयोग कर लिया, उसमें बुद्ध थोड़े समा तो गए ही।
अगर आप में थोड़ी समझ हो, तो उतनी झलक उस शब्द से आपको आ सकती है। लेकिन उसके लिए बड़ा हल्का, बड़ा शांत और बुद्धिमत्तापूर्ण हृदय चाहिए। अत्यंत सहानुभूति से भरा हुआ हृदय चाहिए। तब उस शब्द में से थोड़ी-सी गंध आपको पता चलेगी। अगर जोर से झपट्टा मारकर शब्द को पकड़ लिया और कंठस्थ कर लिया, तो वह मर गया।
शब्द बहुत कमजोर हैं। उनकी गर्दन पकड़ने की जरूरत नहीं है। फूल की तरह हैं। तो जैसा कवि शब्दों का उपयोग करता है, वैसा ही जब कोई शास्त्र को पढ़ने वाला शब्दों का उपयोग करने लगता है; आहिस्ते चलता है; धीमे से स्पर्श करता है; शब्द को फुसलाता है, ताकि उससे अर्थ निकल आए। शब्द को निचोड़ता नहीं; पकड़कर उसकी गर्दन ही नहीं दबा देता कि इसकी जान निकालकर देख लें।
बहुत लोग वैसे ही हैं। आपने कहानी सुनी होगी; पुरानी यूरोप में प्रचलित कथा है। ईसप की कहानियों में एक है। कि एक आदमी के घर में एक मुर्गी थी, जो रोज एक सोने का अंडा दे देती थी। फिर लोभ पकड़ा। पति-पत्नी ने विचार किया कि ऐसे हम कब तक जिंदगीभर, एक-एक अंडा रोज मिलता है। और जब अंडा एक-एक रोज मिलता है, तो इस मुर्गी के भीतर अंडे भरे हैं। तो हम एक दफा इकट्ठे ही निकाल लें। यह रोज की चिंता, फिक्र, आशा, सपना, फिर बाजार जाओ, फिर बेचो--क्या फायदा?
उन्होंने मुर्गी मार डाली। एक भी अंडा न निकला उससे। तब बहुत पछताए, रोए-धोए; लेकिन फिर कोई अर्थ न था। क्योंकि मुर्गी में कोई अंडे इकट्ठे नहीं हैं। मुर्गी अगर जीवित हो, तो एक-एक अंडा निकल सकता है। अंडा रोज बनता है।
शास्त्रों में जो शब्द हैं, वे भी आपकी सहानुभूति से जीवित हो सकते हैं। और उनमें अर्थ भरा हुआ नहीं है कि आपने निचोड़ लिया और पी गए। वह कोई फलों का रस नहीं है कि आपने निचोड़ा और पीया! शब्द से अर्थ निकल सकता है, अगर सहानुभूति और प्रेम से आपने शब्द को समझा, शब्द को फुसलाया, राजी किया। इसलिए हिंदुस्तान में हम शास्त्रों का अध्ययन नहीं करते, पाठ करते हैं। पाठ और अध्ययन में यही फर्क है। अध्ययन का मतलब होता है, निचोड़ो; तर्क से, विश्लेषण से अर्थ निकाल लो। पाठ का अर्थ होता, सिर्फ गाओ; भजो। गीत की तरह उपयोग करो; जल्दी नहीं है कुछ अर्थ की। शब्दों को भीतर उतरने दो, डूबने दो; तुम्हारे खून में मिल जाएं, तुम्हारे अचेतन में उतर जाएं। तुम उनके साथ एकात्म हो जाओ। तब शायद मुर्गी अंडा देने लगे।
अति सहानुभूति से, सिम्पैथी से शास्त्र का थोड़ा-सा अर्थ आपको मिल सकता है। और वह अर्थ आपको गुरु की तरफ ले जाने में सहयोगी होगा। क्योंकि वह अर्थ यह कहेगा कि यह तो शास्त्र है; जिनसे शास्त्र निकला है, अब उनकी

खोज करो। क्योंकि जब शास्त्र में इतना है, तो जिनसे निकला होगा, उनमें कितना न होगा!
बुद्ध के वचन पढ़े, धम्मपद पढ़ा। तो धम्मपद बड़ा प्यारा है, लेकिन कितना
ही प्यारा हो, इससे बुद्ध की क्या तुलना है! इससे बुद्ध का अनुमान भी नहीं लगता कि बुद्ध क्या रहे होंगे! धम्मपद प्यारा है, तो अब बुद्ध की खोज करो। और बुद्ध कोई ऐसी बात थोड़े ही हैं कि एक दफा होकर नष्ट हो गए। रोज बुद्ध होते रहते हैं। अनेक लोगों में बुद्धत्व की घटना घटती है। इसलिए कभी पृथ्वी खाली नहीं होती। बुद्ध सदा मौजूद होते हैं। तो जरूरत नहीं है कि पच्चीस सौ साल पीछे अब जाओ, तब कहीं बुद्ध मिलेंगे। धम्मपद वाले बुद्ध न मिलें, तो कोई और बुद्ध मिल जाएगा। उसी को हम गुरु कहते हैं।
धम्मपद पढ़ा; गीता पढ़ी। गीता पढ़कर रस आया, तो अब कृष्ण की तलाश करो।
कृष्ण सदा मौजूद हैं। वही गुरु का अर्थ है।
गुरु का अर्थ है, अब हम उसको खोजेंगे, जिनसे ऐसे शास्त्र निकले हैं।
अब हम, जो निकला है, उससे राजी नहीं रहेंगे। अब हम गंगोत्री की तलाश करेंगे, जहां से गंगा निकलती है।
लोग गंगोत्री की यात्रा पर जाते हैं। पूरी गंगा का चक्कर लगाकर गंगोत्री तक पहुंचते हैं। ऐसे ही शास्त्रों की पूरी यात्रा करके गुरु तक पहुंचना होता है।
गुरु का अर्थ है, जहां से शास्त्र निकलते हैं। गुरु का अर्थ है, जिसने जाना, जिसने जीया सत्य को; और अब जिससे सत्य बहता है।
और गुरु से कभी पृथ्वी खाली नहीं होती। कहीं न कहीं कोई न कोई बुद्ध
है ही। कहीं न कहीं कोई न कोई कृष्ण है ही। कहीं न कहीं कोई न कोई क्राइस्ट है ही।
तकलीफ हमारी यह है कि आप पुराने लेबल से जीते हैं, कि उस पर कृष्ण लिखा हुआ हो। वह नहीं मिलेगा। कि उस पर महावीर लिखा हो, तो हम मानेंगे। महावीर जिस पर लिखा था, वह एक दफा हो चुका। अब गुरु तो मिल सकता है, लेकिन पुराने नाम से नहीं मिलेगा।
नाम भर मिटते हैं। नाम बदलते चले जाते हैं। और अगर शास्त्र को सहानुभूति से समझा हो, उसकी कविता को भीतर पच जाने दिया हो, उसका गीत आपमें गूंजने लगा हो, तो आप समझ जाएंगे कि नामों का कोई मूल्य नहीं है। तो फिर कृष्ण को पकड़ लेना कहीं भी आसान है।
और गीता अगर कृष्ण तक न ले जाए, तो गीता का कोई भी सार नहीं है। इसीलिए सदियों-सदियों तक गीता की, वेद की, कुरान की, बाइबिल की हम चर्चा करते हैं। वह चर्चा इसीलिए है। वह एक तरह का जाल है।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप क्यों गीता पर बोल रहे हैं?
वह एक तरह का जाल है। जो मैं गीता पर बोल रहा हूं, वह सीधे ही बोल सकता हूं क्योंकि मैं ही बोल रहा हूं, गीता सिर्फ बहाना है।
आखिर गीता का बहाना लेने की जरूरत भी क्या है?
तुम्हारी वजह से वह मुसीबत उठानी पड़ रही है। वह मैं सीधे ही बोल सकता हूं। लेकिन तुम्हें पुराने नाम का मोह है; कृष्ण का मोह है। अगर कृष्ण मार्का लगा हो, तो तुम को लगेगा कि ठीक है। बात ठीक होनी चाहिए।
जो मैं कह रहा हूं, वह मैं कह रहा हूं। कृष्ण को किनारे रखकर कह सकता हूं। क्या अड़चन है! कृष्ण को भी बीच में लूं, तो भी जो मुझे कहना है, वही मैं कहूंगा। कृष्ण उसमें कुछ उपद्रव खड़ा नहीं कर सकते। पर उनके नाम का उपयोग तुम्हारी वजह से है।
तुम्हें पुराने जालों का मोह है; और मुझे मछलियों से मतलब है। तुम पुराने में फंसते हो कि नए में, इससे क्या! तुम्हारा अगर पुराने जाल से ही मोह है, तो ठीक है।
गीता पर, कुरान पर, बाइबिल पर, ताओ तेह किंग पर, जो हजारों वर्ष तक चर्चा चलती है, उसका प्रयोजन यही है कि लोग पुराने के मोह में हैं। ठीक है। उनको कष्ट भी न हो और धीरे-धीरे उनको जब समझ में आ जाएगा, तो पुराने का मोह भी छूट जाएगा।

शास्त्र से गुरु, और गुरु से स्वयं--ऐसी यात्रा है। शास्त्र ले जाएगा गुरु तक; और गुरु पहुंचा देगा स्वयं तक। और जब तक स्वयं का शून्य न आ जाए, तब तक समझना कि अभी मंजिल नहीं आई।

अब हम सूत्र को लें।
हे अर्जुन, इस संसार में क्षर अर्थात नाशवान और अक्षर अर्थात अविनाशी, ये दो प्रकार के पुरुष हैं। उनमें संपूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर अर्थात अविनाशी कहा जाता है। तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी ईश्वर और परमात्मा, ऐसा कहा गया है।
क्योंकि मैं नाशवान जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित अक्षर अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इसलिए लोक में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।
यह सूत्र पुरुषोत्तम की व्याख्या है। पुरुषोत्तम शब्द हमें परिचित है। लेकिन कृष्ण का अर्थ ख्याल में लेने जैसा है।
कृष्ण कह रहे हैं कि तीन स्थितियां हैं। एक विनाशशील जगत है। उस विनाशशील जगत के भीतर छिपा हुआ एक अविनाशी तत्व है। और इस अविनाशी और विनाशी दोनों के पार, दोनों को अतिक्रमण करने वाला एक तीसरा तत्व है।
इसे हम ऐसा कहेंः शरीर, संसार, आत्मा और परमात्मा। शरीर क्षर है, प्रतिपल विनष्ट हो रहा है; प्रतिपल बह रहा है, परिवर्तन है। शरीर के भीतर छिपी हुई आत्मा अविनाशी है। इन दोनों के पार कृष्ण कहते हैं, मैं हूं; जो पुरुषोत्तम है। ये दो पुरुष, एक क्षर और एक अक्षर; और दोनों के पार मैं हूं।
जो लोग भी दार्शनिक चिंतन करते हैं, उनको सवाल उठता है कि दोनों से काम हो जाता है; तीसरे की क्या जरूरत है? जैनों की यही मान्यता है। वे कहते हैं, संसार है और आत्मा है। बात खतम हो गई। जीव है और अजीव है। क्षर है और अक्षर है। यह तीसरे की क्या जरूरत है! इन दो से काम हो जाता है। दोनों अनुभव के हिस्से हैं। इसलिए जैन विचार द्वैत पर पूरा हो जाता है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं तीसरा हूं। जैन विचार में इसलिए परमात्मा की कोई जगह नहीं है, क्योंकि तीसरे की कोई जगह नहीं है।
कृष्ण का यह जोर तीसरे के लिए क्यों है, यह समझना जरूरी है। क्योंकि अगर दो ही हैं, तो दोनों बराबर मूल्य के हो जाते हैं। दोनों का संतुलन हो जाता है। जैसे एक तराजू है; उस पर दो पलवे लगे हैं। और अगर एक तीसरा कांटा नहीं, जो दोनों का अतिक्रमण करता हो, तो तराजू बिल्कुल व्यर्थ हो जाता है। एक कांटा चाहिए जो दोनों का अतिक्रमण करता है। और चूंकि दोनों के पार है, इसलिए हिसाब भी बता सकता है कि किस तरफ बोझ ज्यादा है और किस तरफ बोझ कम है। तौल संभव हो सकती है।
अगर पदार्थ है और आत्मा है, और इन दोनों के पार कुछ भी नहीं है, तब बड़ी अड़चन है। क्योंकि तब पदार्थ और आत्मा के बीच न तो कोई जोड़ने वाला है, न कोई तोड़ने वाला है। पदार्थ और आत्मा के बीच जो संघर्ष है, उससे पार जाने का भी उपाय नहीं है।
इसलिए जैन चिंतन में एक पहेली सुलझती नहीं। जैन विचारकों से पूछा जाता रहा है कि आत्मा इस संसार में उलझी क्यों? तो उनकी बड़ी कठिनाई है। वे कैसे बताएं कि उलझी। अगर वे कहें कि पदार्थ ने खींच ली, तो पदार्थ ज्यादा शक्तिशाली हो जाता है। और अगर पदार्थ ज्यादा शक्तिशाली है, तो तुम मुक्त कैसे होओगे?
अगर वे कहते हैं, आत्मा खुद ही खिंच आई अपनी मरजी से, तो सवाल यह उठता
है कि कल हम मुक्त भी हो गए, फिर भी आत्मा खिंच आए, तो क्या करेंगे? क्योंकि कभी आत्मा अपने आप खिंच आई बिना किसी कारण के; तो मुक्ति फिर शाश्वत नहीं हो सकती। मोक्ष में भी पहुंचकर क्या भरोसा, दस-पांच दिन में ऊब जाएं और आत्मा फिर खिंच आए! इतनी मेहनत करें--तप, उपवास, तपश्चर्या, ध्यान, साधना-- मोक्ष में जाकर पंद्रह दिन में ऊब जाएं, और आत्मा फिर पदार्थ में खिंच आए।

फिर पूछा जाता है, इन दोनों के बीच नियम क्या है? किस नियम से दोनों का मिलना और हटना चलता है?
तीसरे को चूंकि वे स्वीकार नहीं करते, इसलिए बड़ी अड़चन है। और ध्यान रहे, गणित या तर्क की कोई भी चीज उलझ जाएगी, अगर दो के बीच तीसरी न हो। इसलिए हिंदू, ईसाई, मुसलमान, दो की जगह त्रैत में विश्वास करते हैं; ट्रिनिटी में, त्रिमूर्ति में।
जहां दो हैं वहां तीसरा भी मौजूद रहेगा। क्योंकि दो को जोड़ना हो, तो तीसरे की जरूरत है; दो को तोड़ना हो तो, तीसरे की जरूरत है। दो के पार जाना हो, तो तीसरे की जरूरत है। दो के बीच जो नियम है, जो शाश्वत व्यवस्था चल रही है, उसके लिए भी तीसरे की जरूरत है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं तीसरा हूं। और गहरे अनुभव से भी यही सिद्ध होता है।
एक तो शरीर है, जो दिखाई पड़ता है हमें। एक हमारा मन है, हमारी तथाकथित चेतना है, जो हमने अभी तक नहीं देखी। लेकिन अगर हम थोड़ा भीतर पीछे हटें और शांत हों, तो हमें मन भी दिखाई पड़ने लगेगा। और जब मन भी दिखाई पड़ेगा, तब हम तीसरे हो जाएंगे। तब एक तो शरीर होगा पदार्थ से निर्मित, और एक मन होगा चेतन कणों से निर्मित, और एक हम होंगे। और यह हमारा होना सिर्फ साक्षी का भाव होगा, द्रष्टा का भाव होगा। हम सिर्फ देखने वाले होंगे। ये दोनों का खेल चल रहा होगा, हम सिर्फ देखने वाले होंगे।
यह जो तीसरा है, यह पुरुषोत्तम है। यह पुरुषोत्तम प्रत्येक में छिपा है। पर्त शरीर की ऊपर है, फिर पर्त मन की ऊपर है। इन दोनों परतों को हम तोड़ दें, तो यह पुरुषोत्तम हमें उपलब्ध हो सकता है।
अब हम कृष्ण के सूत्र को ख्याल में लें।
इस संसार में क्षर अर्थात नाशवान और अक्षर अर्थात अविनाशी, ये दो प्रकार के पुरुष हैं। उनमें संपूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर अर्थात अविनाशी कहा जाता है। तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो कि तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी ईश्वर और परमात्मा, ऐसा कहा गया है।
क्योंकि मैं नाशवान जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित अक्षर अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इसलिए लोक में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।
ये तीन परतें दार्शनिक सिद्धांत नहीं हैं। ये तीन परतें आपके भीतर अनुभव की परतें हैं। जैसे-जैसे आप भीतर जाएंगे, वैसे-वैसे पर्त उघड़नी शुरू हो जाएगी।
अधिक लोग पहली पर्त पर ही रुके हैं, जो अपने को मान लेते हैं कि मैं शरीर हूं। जिस व्यक्ति ने अपने को मान लिया कि मैं शरीर हूं, वह अपने भीतरी खजानों से अपने ही हाथ से वंचित रह जाता है। उसका तर्क ही गलत नहीं है, उसका पूरा जीवन ही अधूरा अधकचरा हो जाएगा। क्योंकि जो वह हो सकता था, जो उसके बिल्कुल हाथ के भीतर था, वह उसने ही द्वार बंद कर दिए। जैसे अपने ही घर के बाहर आप बैठे हैं ताला लगाकर; और कहते हैं कि यही घर है। बाहर की जो छपरी है, उसको घर समझे हुए हैं। पोर्च में जी रहे हैं, उसको घर समझे हुए हैं।
नास्तिक की, शरीरवादी की भूल तार्किक नहीं है, जीवनगत है, एक्झिस्टेंशियल है। और एक दफा आप पक्का जड़ पकड़ लें कि यही मेरा घर है, तो खोज बंद हो जाती है। फिर आप डरते हैं; फिर आप आंख भी नहीं उठाते; फिर प्रयत्न भी नहीं करते।
आस्तिक के साथ संभावना खुलती है। क्योंकि आस्तिक कहता है, तुम जहां हो, उतना ही सब कुछ नहीं है और भीतर जाया जा सकता है। इसलिए नास्तिक बंद हो जाता है। आस्तिक सदा खुला है। और खुला होना शुभ है।
अगर आस्तिक गलत भी हो, तो भी खुला होना शुभ है, क्योंकि खोज हो सकती है। जो छिपा है, उसको हम प्रकट कर सकते हैं।
नास्तिक अगर ठीक भी हो, तो भी गलत है, क्योंकि खोज ही बंद हो गई; आदमी
जड़ हो गया। उसने मान लिया कि जो मैं हूं बस, यह बात समाप्त हो गई।

जैसे एक बीज समझ ले कि बस, बीज ही सब कुछ है; तो फिर अंकुरण होने का कोई कारण नहीं है। फिर अंकुरित हो, जमीन की पर्त को तोड़े, कष्ट उठाए, आकाश की तरफ उठे, सूरज की यात्रा करे--यह सब बंद हो गया। बीज ने मान लिया कि मैं बीज हूं।
जो व्यक्ति मान ले कि मैं शरीर हूं, उसने अपने ही हाथ से अपने पैर काट लिए। पोर्च भी हमारा है, लेकिन घर के और भी कक्ष हैं। और जितने भीतर हम प्रवेश करते हैं, उतने ही सुख, उतनी ही शांति, उतने ही आनंद में प्रवेश होता है। क्योंकि उतने ही हम घर में प्रवेश होते हैं। उतने ही विश्राम में हम प्रवेश होते हैं।
कृष्ण कहते हैं, शरीर, वह क्षर; आत्मा, वह अविनाशी, शरीर के साथ जुड़ा हुआ; और इन दोनों के पार साक्षी-आत्मा है, दोनों से मुक्त।
आत्मा और साक्षी-आत्मा में इतना ही फर्क है। वे दो नहीं हैं। एक ही चेतना की दो अवस्थाएं हैं।
आत्मा का अर्थ है, शरीर से जुड़ी हुई। आत्मा का अर्थ है, जिसे ख्याल है मैं का। आत्मा शब्द का भी अर्थ होता है, मैं, अस्मिता। जिस आत्मा को ख्याल है शरीर से जुड़े होने का, उसको ख्याल होता है मैं का।
शरीर से मैं भिन्न हूं, तो मैं भी खो जाता है। और मैं के खोते ही सिर्फ शुद्ध चैतन्य रह जाता है। वहां यह भी ख्याल नहीं है कि मैं हूं। उस शुद्ध चैतन्य का नाम पुरुषोत्तम है।
ये आपके ही जीवन की तीन परतें हैं। और पहली पर्त से तीसरी पर्त तक यात्रा करनी ही सारी आध्यात्मिक खोज और साधना है। और तीसरी का लक्षण है कि वह दोनों के पार है। न तो वह देह है, न वह मन है। न वह पदार्थ है, न अपदार्थ है। वह दो से भिन्न, तीसरी है।
आप अपने भीतर कभी-कभी उसकी झलक पाते हैं। और चेष्टा करें, तो कभी-कभी उसकी झलक आयोजन से भी पा सकते हैं।
भोजन कर रहे हैं, तब एक क्षण को देखने की कोशिश करें। भोजन शरीर में जा रहा है, भोजन क्षर है और क्षर में जा रहा है। लेकिन जो उसे शरीर में पहुंचा रहा है, वह आत्मा है। और आत्मा मौजूद न हो, तो शरीर भोजन न तो कर सकेगा, न पचा सकेगा।
भूख शरीर में लगती है, लेकिन जिसको पता चलता है, वह आत्मा है। आत्मा न हो, तो शरीर को भूख लगेगी नहीं, पता भी नहीं चलेगी। भूख शरीर में पैदा होती है, लेकिन जिसको एहसास होता है, वह आत्मा है।
भूख, भूख की प्रतीति, ये दो हुए तल। क्या आप तीसरे को भी खोज सकते हैं,
जो देख रहा है दोनों को कि शरीर में भूख लगी और आत्मा को भूख का पता चला और मैं दोनों को देख रहा हूं। इस तीसरे की थोड़ी-थोड़ी झलक पकड़ने की कोशिश करनी चाहिए।
कोई भी अनुभव हो, उसमें तीनों मौजूद रहते हैं। इन तीन के बिना कोई भी अनुभव निर्मित नहीं होता। लेकिन तीसरा छिपा है पीछे। इसलिए अगर आप बहुत संवेदनशील न हों, तो आपको उसका पता नहीं चलेगा। वह गुप्ततम है।
वह जो पुरुषोत्तम है, वह गुप्ततम भी है। जितनी संवेदना आपकी बढ़ेगी, धीरे-धीरे उसकी प्रतीति होनी शुरू होगी।
कोई आदमी आपको गाली दे रहा है। तत्क्षण गाली देने वाला और आप गाली सुनने वाले, गाली और आप, दो हो गए। अगर थोड़ी संवेदना को जगाएं, तो आपको वह भी भीतर दिखाई पड़ जाएगा जो दोनों को देख रहा है। गाली दी गई, तो गाली भौतिक है; कान पर चोट पड़ी; मस्तिष्क में शब्द घूमे; मस्तिष्क ने व्याख्या की; यह सब भौतिक है। मस्तिष्क ने कहा, यह गाली बुरी है।
मुल्ला नसरुद्दीन को उसका पड़ोसी एक दिन कह रहा था कि तुम्हारा लड़का
जो है फजलू, बहुत भद्दी और गंदी गालियां बकता है। नसरुद्दीन ने कहा, बड़े मियां, कोई फिक्र न करो; छोटा है, बच्चा है, नासमझ है। जरा बड़ा होने दो, अच्छी-अच्छी गालियां भी बकने लगेगा।
व्याख्या की बात है। कभी-कभी गाली अच्छी भी लगती है, जब मित्र देता है। सच में मित्रता की कसौटी यह है कि गाली अच्छी लगे। अगर मित्र एक-दूसरे को गाली न दें, तो समझते हैं कि कोई मित्रता में कमी है, मिठास नहीं है।

शत्रु भी गाली देते हैं, वही गाली; मित्र भी गाली देते हैं, वही गाली; शत्रु के मुंह से सुनकर बुरी लगती है; मित्र के मुंह से सुनकर भली लगती है, प्यारी लगती है। तो नसरुद्दीन एकदम गलत नहीं कह रहा है। अच्छी गालियां भी हैं ही। व्याख्या पर निर्भर है।
शरीर पर चोट पड़ती है, कान पर झंकार जाती है, मस्तिष्क व्याख्या करता है। यह सब भौतिक घटना है। व्याख्या जो करता है, वह चेतना है। इसलिए वही गाली भली भी लग सकती है कभी; वही गाली बुरी भी लग सकती है कभी। वह जो व्याख्या करने वाली है, वह चेतना है।
क्या आपके पास कोई तीसरा तत्व भी है, जो दोनों को देख सके? इस घटना को
भी देखे, इस बड़े यंत्र की प्रक्रिया को--गाली, कान में जाना, मस्तिष्क में चक्कर, शब्दों का व्याघात, ऊहापोह; फिर आत्मा का अर्थ निकालना। और क्या इनके पीछे दोनों को देख रहा हो कोई, ऐसी कभी आपको प्रतीति होती है? तो वही पुरुषोत्तम है। न प्रतीति होती हो, तो उसकी तलाश करनी चाहिए। और हर अनुभव में क्षणभर रुककर उसकी तरफ ख्याल करना चाहिए।
लेकिन हमारी मुसीबत यह है कि जब भी कोई अनुभव होता है, हम बाहर दौड़ पड़ते हैं। किसी ने गाली दी; व्याख्या की, हम बाहर गए। उस आदमी पर नजर पड़ जाती है, जिसने गाली दी। क्यों दी गाली? या उसको कैसे हम बदला चुकाएं? तो जब हमें भीतर जाना था और तीसरे को खोजना था, तब हम बाहर चले गए। वह क्षणभर का मौका था, खो गया। रोज ऐसे अवसर खो जाते हैं।
तो जब भी आपके भीतर कोई घटना घटे, बाहर न दौड़कर भीतर दौड़ने की फिक्र करें। तत्क्षण! ध्यान बाहर न जाए, भीतर चला जाए। और भीतर अगर ध्यान जाए, तो आप पाएंगे साक्षी को खड़ा हुआ। और अगर साक्षी आपके ख्याल में आ जाए, तो पूरी स्थिति बदल जाएगी, पूरी स्थिति का अर्थ बदल जाएगा।
किसी ने गाली दी हो; आत्मा व्याख्या करती है कि बुरा है या भला है, कोई प्रतिक्रिया करती है। अगर उसी वक्त तीसरा भी दिखाई पड़ जाए, तो भी आत्मा फिर व्याख्या करेगी। अब यह तीसरे की व्याख्या करेगी जो भीतर छिपा है। और हो सकता है, आपको हंसी आ जाए। शायद आप खिलखिलाकर हंस पड़ें।
वह जो बाहर गाली आई थी, वह भी मस्तिष्क में आई, उसकी व्याख्या आत्मा ने की। फिर आपने पीछे लौटकर देखा और साक्षी का अनुभव हुआ, यह भी अनुभव मस्तिष्क में आएगा और आत्मा इसकी भी व्याख्या करेगी।
अगर आपको साक्षी दिखाई पड़ जाए, तो आपकी मुस्कुराहट धीरे-धीरे सतत हो जाएगी। हर अनुभव में आप हंस सकेंगे। क्योंकि हर अनुभव लीला मालूम पड़ेगा। और हर अनुभव एक गहरी मजाक भी मालूम पड़ेगी कि यह क्या चल रहा है! क्या हो रहा है! और इतनी क्षुद्र बातों को मैं इतना मूल्य क्यों दे रहा हूं!
मैंने सुना है कि एक स्त्री ने अपने घर के भीतर झांककर अपने पति को कहा कि बाहर एक आदमी पड़ा है। पागल मालूम होता है। सामने सड़क पर लेटा है। पति ने भीतर से ही पूछा, लेकिन उसे पागल कहने का क्या कारण है? पत्नी ने कहा, पागल कहने का कारण यह है कि एक केले के छिलके पर फिसलकर वह गिर पड़ा है। उठ नहीं रहा है, केले को पड़ा-पड़ा गाली दे रहा है।
कोई भी सामान्य आदमी होता, तो पहला काम वह यह करता है कि किसी ने देख
तो नहीं लिया! कपड़े झाड़कर, जैसे कुछ भी नहीं हुआ। केले को गाली भी देगा, तो भीतर और बाद में।
पत्नी ने कहा, आदमी बिल्कुल पागल मालूम होता है। लेटा है वहीं, जहां गिर गया है; और सामने केले का छिलका पड़ा है, उसको गाली दे रहा है!
पति ने कहा, एक बात तय है, पागल हो या न हो, सामान्य नहीं है। मैं आया।
वह बाहर जाकर देख रहा है। वह आदमी गाली भी दे रहा है, मुस्कुरा भी रहा है। तो उसने आदमी को पूछा कि यह क्या कर रहे हो? उसने कहा, बाधा मत दो।
वह एक सूफी फकीर था। वह केले पर से गिर पड़ा है। एक घटना घटी, एक भौतिक घटना। उसके मस्तिष्क में खबर पहुंची, जो सामान्य आदमी के सभी के पहुंचेगी। और जो केले पर नाराजगी आएगी, वह भी आई। लेकिन वहां से भागा नहीं वह। क्योंकि वह चूक जाएगा क्षण। वह वहीं लेट गया। क्योंकि यह मौका खो देने जैसा नहीं है।
एक केले का छिलका क्या कर रहा है? भीतर क्या हो रहा है? तो मस्तिष्क जो
भी करना चाहता है, वह गाली भी दे रहा है। लेकिन एक तीसरी घटना वहां घट रही

है। वह इन दोनों को देख भी रहा है, अपनी इस पागलपन की अवस्था को, इस पड़े हुए छिलके को। इस पूरी घटना में वह पीछे है, और धीमे-धीमे मुस्कुरा भी रहा है। इसलिए अक्सर संत पागल भी मालूम पड़ सकते हैं। एक बात तो पक्की है कि वे सामान्य नहीं हैं। एबनार्मल तो हैं ही। असाधारण तो हैं ही। क्योंकि आप यह नहीं कर सकेंगे। मगर अगर कर सकें, तो जो हंसी आएगी भीतर से... ।
आप कभी एक बात को सोचते हैं कि जब दूसरा आदमी कुछ करता है, उसमें आपको हंसी आती है। जैसे एक आदमी केले के छिलके से फिसला और गिर पड़ा। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसको देखकर हंसी न आ जाए। अगर दूसरे को देखकर आपको इतनी हंसी आती है, कभी आपने खुद फिसलकर गिरकर और फिर हंसकर देखा? तब आपको तीसरे तत्व का थोड़ा-सा अनुभव होगा। क्योंकि उस वक्त गिरने वाले आप होंगे; गिरने वाले की जो प्रतिक्रिया है, वह भी आप होंगे; और देखने वाले भी आप होंगे। दूसरे को गिरते देखकर आप हंसते हैं, क्योंकि स्थिति पूरी की पूरी मजाक जैसी मालूम पड़ती है। पर कभी आपने इस पर विचार किया है कि ऐसा होता क्यों है? आखिर केले में, उसके छिलके पर से गिर जाने में ऐसा क्या कारण है जिससे हंसी आती है? इसमें हंसने योग्य क्या है?
मनोवैज्ञानिक बड़ी खोज करते हैं। क्योंकि इसमें हंसी सभी को आती है, सारी दुनिया में आती है। इसका कारण क्या है? इसमें ऐसी कौन-सी बात है जिसको देखकर हंसी आती है?
मेरी जो दृष्टि है, मुझे जो कारण दिखाई पड़ता है, वह यह है कि आदमी के अहंकार को केले का छिलका भी गिरा देता है, उसे देखकर हंसी आती है।
वह आदमी अकड़कर चला जा रहा था, हैट-वैट लगाए था, टाई वगैरह सब। ऐसा बिल्कुल शक्तिशाली आदमी, अचानक एक केले का छिलका उसको जमीन पर चारों खाने चित्त कर देता है। उसकी सब सामर्थ्य खो जाती है। अकड़ खो जाती है। क्षणभर में पाता है कि दीन है, सड़क पर पड़ा है। इस दीनता से एकदम हंसी आती है। आदमी की इस असहाय अवस्था पर। उसके अकड़पन की स्थिति और फिर एकदम जमीन पर पड़े होने में इतना अंतराल है, इतना फर्क है, कि यह आप पहचान ही नहीं सकते थे कि यह आदमी केले के छिलके से गिरने वाला है। गिरने वाला नहीं है। यह सम्राट हो सकता है।
इसलिए आप ख्याल रखें, अगर एक भिखारी गिरेगा, कम हंसी आएगी। अगर एक सम्राट गिरेगा, ज्यादा हंसी आएगी। आप सोचें, एक भिखारी गिर पड़े; आप कहेंगे, ठीक है। एक छोटा बच्चा गिरेगा, तो शायद हंसी न भी आए। क्योंकि बच्चे को हम समझते हैं, बच्चा ही है, इसकी अकड़ ही क्या है अभी! लेकिन अगर एक सम्राट गिरेगा, तो आप बिल्कुल पागल हो जाएंगे हंस-हंसकर।
जिस-जिस स्थिति में हंसी आती है आपको देखकर, कभी-कभी उस स्थिति में अपने को देखें। तब भी एक हंसी आएगी; और वह हंसी ध्यान बन जाएगी; और उस हंसी से आपको साक्षी की झलक मिलेगी।
कोई भी अनुभव हो, तीसरे को पकड़ने की कोशिश करें। पुरुषोत्तम की तलाश जारी रखें। और हर अनुभव में वह मौजूद है। इसलिए न मिले, तो समझना कि अपनी ही कोई भूल-चूक है। मिलना चाहिए ही। क्षुद्र अनुभव हो कि बड़ा अनुभव हो, कैसा भी अनुभव हो, पुरुषोत्तम भीतर खड़ा है।
स्वामी राम को कुछ लोगों ने गाली दी, तो वे हंसते हुए वापस लौटे। लोगों ने कहा, इसमें हंसने की क्या बात है? लोगों ने अपमान किया है! राम ने कहा कि मैं देख रहा था। और जब राम को गाली पड़ने लगीं, और राम भीतर-भीतर कुनमुनाने लगा, तो मुझे हंसी आने लगी। मैं भीतर कहने लगा कि ठीक हुआ, अब भुगतो राम! अब भोगो फल!
यह जो भीतर से अपने को भी दूर खड़े होकर देखना है, यही पुरुषोत्तम तत्व है। और जिस व्यक्ति को यह धीरे-धीरे सध जाए, वह जीवन-मुक्त है।
कृष्ण का इतना जो जोर है अर्जुन को, वह इसीलिए कि यह जो युद्ध हो रहा है, यह क्षर है। इसमें जो मरेगा, मिटेगा, वह मरने वाला, मिटने वाला ही है। उसमें तू परेशान मत हो। इसमें एक अक्षर भी छिपा है, वह जो यहां आत्माएं छिपी हैं लोगों में, वही अक्षर तेरे भीतर बेचैन हो रहा है। वही सोच रहा है कि इतनी हत्या मैं करूं? हिंसा होगी, पाप लगेगा, भटकूंगा। और फल क्या है? फायदा क्या है? परिणाम क्या है? राज्य भी मिल गया, तो क्या लाभ है? इतनों को मारकर लिए गए राज्य में इतना खून सन जाएगा कि इसमें सुख तो रहेगा ही

नहीं। यह तेरे भीतर जो बात कर रहा है, सोच रहा है, विचार कर रहा है, यह जो तेरा चेतन है, यह दूसरा तत्व है। मैं तीसरा हूं।
तो वहां अर्जुन के रथ पर सब मौजूद है। वहां क्षर तत्व मौजूद है; वह जो अर्जुन का रथ है, वे जो घोड़े हैं। वहां अर्जुन मौजूद है; वह चिंतनशील, जो बुद्धि है, आत्मा। और वहां पुरुषोत्तम मौजूद है; वह जो दोनों के पीछे साक्षी है। और वह हर रथ पर मौजूद है।
हर शरीर रथ है। और हर शरीर के भीतर यह सवाल उठते ही हैं, कि ऐसा करूं तो क्या होगा? वैसा करूं तो क्या होगा? करना उचित है या अनुचित है? शुभ है या अशुभ है? यह चिंतना उठती है। यह आत्मा का लक्षण है। लेकिन यह आखिरी तत्व नहीं है। इसलिए आत्मा जो भी निर्णय लेगी, वह अंतिम नहीं है। अंतिम निर्णय तो तभी उठ सकता है, जब पुरुषोत्तम ख्याल में आ जाए। और तब बड़े मजे की बात है, तब कोई निर्णय लिया नहीं जाता।
जैसे ही पुरुषोत्तम ख्याल में आया, आदमी जिंदगी में बहना शुरू कर देता है; फिर निर्णय नहीं लेता। क्योंकि वह जानता है, जो मिटने वाला है, वह मिटेगा; जो नहीं मिटने वाला है, वह नहीं मिटेगा; और जो देखने वाला है, इस पूरे खेल को देखे चला जाता है। तब यह सारा जीवन, सारे जीवन का चक्कर परदे पर चलती फिल्म से ज्यादा नहीं रह जाता। और वह जो देखने वाला है, देख रहा है।
इस तीसरे की खोज करें। तीसरा ज्यादा दूर नहीं है, बहुत पास है। जरा-सी चेष्टा से उसका स्वर सुनाई पड़ने लगता है। एक बार उसका स्वर सुनाई पड़ जाए, तो फिर आप वही आदमी नहीं हैं, जो कल तक थे। तब आपकी हालत ऐसी हो गई, जैसे कल तक आप भिखारी थे; और अचानक खीसे में हाथ डाला और हीरे पा गए। दुनिया भला देखती रहे कि अभी भी भिखारी हो, क्योंकि अभी दुनिया को कुछ पता नहीं है कि आपके खीसे में क्या है। लेकिन आप भिखारी नहीं रहे, आप सम्राट हो गए। पुरुषोत्तम की प्रतीति एकमात्र साम्राज्य है, जो पाने जैसा है। और उसकी प्रतीति के बिना हम सब भिखमंगे हैं।
मैंने सुना है, एक भिखमंगा भीख मांग रहा था एक द्वार पर। गरमी के दिन थे, मकान का मालिक भीतर खस की टट्टियों की आड़ में आराम कर रहा था। उस भिखारी ने कहा, कुछ मिल जाए। भीतर से आवाज आई, आगे बढ़ो। उसने कहा, दो-चार आने से भी चलेगा। भीतर से आवाज आई, कुछ भी नहीं है आने-वाने। कहीं और जाओ। उसने कहा, तो कुछ कपड़ा-लत्ता ही मिल जाए। भीतर से और नाराजगी की आवाज आई कि कह दिया बार-बार कि आगे बढ़ो। कपड़ा-लत्ता यहां कुछ भी नहीं है।
भिखारी भी जिद्दी था। और आदमी जिद्दी न हो, तो भीख मांगने की नौबत भी न आए। पर जिसको भीख मांगना हो, उसको जिद्द रखनी ही चाहिए, नहीं तो भीख मिले भी नहीं।
तो उसने कहा, न सही, रोटी ही मिल जाए, रोटी का टुकड़ा ही मिल जाए। अंदर
से आदमी बहुत ज्यादा तेजी से चिल्लाया कि कह दिया, कुछ भी नहीं है। तो उसने कहा, जब कुछ भी नहीं है, तो अंदर बैठे क्या कर रहे हो? चलो, मेरे साथ ही हो जाओ। जो मिलेगा, आधा-आधा कर लेंगे।
जब तक पुरुषोत्तम का स्वर न हो, तब तक पूछने जैसा है कि भीतर छिपे क्या
कर रहे हो? तब तक अवस्था भिखमंगे की है; चाहे खस की टट्टी में ही छिपे आप बैठे हों। कुछ है नहीं आपके पास। उसका स्वर मिलते ही सब मिल जाता है। क्योंकि फिर कुछ पाने की चाह भी नहीं रह जाती।
एक जवान लड़का एक लड़की के प्रेम में था। उसकी सोलहवीं वर्षगांठ थी। तो
वह बड़ी चिंता में था रातभर से कि क्या भेंट करे। सब सोचा, कुछ जंचता नहीं था। प्रेमी को कभी नहीं जंचता कि प्रेमिका को भेंट देने योग्य कुछ भी हो सकता है। ताजमहल भी भेंट कर रहे हों, तो भी लगेगा, क्या है! कुछ भी नहीं है। सब सोचा, लेकिन कुछ समझ में नहीं आया। और वक्त करीब आने लगा, जब जाना है और वर्षगांठ का भोज होने वाला है, तो उसने सोचा कि अपनी मां से पूछूं।
उसने अपनी मां से पूछा कि मां, एक बात पूछूं? जिस लड़की से मेरा प्रेम है, उसकी सोलहवीं वर्षगांठ है और मुझे कुछ भेंट देने जाना है। मैं तुझसे पूछता हूं कि अगर तेरी उम्र सोलह साल हो जाए, तो फिर तू क्या पसंद करेगी?

उसकी मां ने आंख बंद कर लीं। उसके चेहरे पर एक समाधि का भाव आ गया।
उसने कहा, बेटे, अगर सोलह साल की हो जाऊं, तो फिर कुछ चाहने को बचता भी नहीं है। उतना काफी है। उतना बहुत है; फिर कुछ चाहने को बचता नहीं है।
जैसे ही किसी को भीतर के पुरुषोत्तम का स्वर सुनाई पड़ता है, फिर कुछ चाहने को बचता नहीं है। वह पा लेना सब पा लेना है।
लेकिन उसकी तलाश करनी होगी। पास ही है बहुत, फिर भी खोदना पड़ेगा। और जितनी त्वरा से खोदेंगे, जितनी तीव्रता से, उतना ही निकट उसे पाएंगे। अगर तीव्रता परिपूर्ण हो, सौ प्रतिशत हो, तो बिना खोदे भी मिल सकता है। धीरे-धीरे बेमन से खोदेंगे, तो बहुत दूर है। ऐसे ही खोदेंगे कि चलो देख लें, शायद हो, कभी न मिलेगा। क्योंकि खोदने की भावना क्या है, इस पर सब निर्भर है। अगर कोई तीव्रता से, पूर्ण तीव्रता से चाहे, तो किसी भी क्षण उसके द्वार खुल जाते हैं।
और हमें अगर जन्मों-जन्मों से नहीं मिला पुरुषोत्तम, तो उसका कारण यह नहीं है कि वह दूर है। उसका एक कारण है कि एक तो हमने खोजा ही नहीं। कभी खोजा भी, तो बेमन से खोजा। कभी गहरी प्यास से न पुकारा। कभी पुकारा भी, तो ऐसा कि लोगों को दिखाने के लिए पुकारा। प्रार्थना भी की, तो वह हार्दिक न थी; ऊपर-ऊपर थी; शब्दों की थी।
अगर इतना स्मरण रहे, तो उसे किसी भी क्षण पाया जा सकता है। हाथ बढ़ाने
भर की बात है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 15
सातवां प्रवचन

प्यास और धैर्य

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।। 19।।
इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। 20।।
हे भारत, इस प्रकार तत्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ परमेश्वर को ही भजता है।
हे निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल आपने कहा कि बिना शास्त्रों को पढ़े गुरु की तलाश नहीं करनी चाहिए, मगर मैंने कभी शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया और आपको पहली बार सुनकर ही गुरु मान लिया है। तो क्या मेरा रास्ता गलत है? कल से मुझे सूझ नहीं पड़ता; क्या मैं सदा ही भटकता रहूंगा?

बहुत-सी बातें समझनी जरूरी हैं। पहली बात, यह जन्म आपका पहला नहीं है।
आप जमीन पर नए नहीं हैं। बहुत बार हुए हैं; बहुत बार खोजा है; बहुत बार शास्त्रों में भी खोजा है; बहुत बार गुरुओं के चरणों में भी बैठे हैं। सारे जन्मों का सार-संचित आपके साथ है।
यदि कभी ऐसा घटित होता हो कि किसी के निकट गुरु-भाव पैदा हो जाता हो,
तो उसका केवल एक ही अर्थ है कि पिछले जन्मों की अनंत यात्रा में गुरु के प्रति समर्पित होने की पात्रता अर्जित की है। अगर वैसा न हो, तो गुरु-भाव पैदा होना संभव नहीं है।
जैसे फूल तो तभी लगेंगे वृक्ष पर, जब वृक्ष बड़ा हो गया हो, शाखाएं फैल
गई हों, पत्ते लग गए हों, और फूल लगने का समय आ गया हो। बीज से सीधे फूल कभी नहीं लगते।
तो पहली बात तो यह ख्याल रखनी चाहिए कि यदि सच में गुरु-भाव पैदा हुआ हो, तो शास्त्रों की खोज पूरी हो गई होगी। वह चाहे ज्ञात न भी हो; चाहे आपके चेतन मन को उसका पता भी न हो।
और अगर गुरु-भाव भ्रांत हो, मिथ्या हो, सिर्फ ख्याल हो, पैदा न हुआ हो,
तो ज्यादा देर टिकेगा नहीं। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। वह ऐसे ही है, जैसे फूल को किसी ने बीज के ऊपर रख दिया हो; बीज से निकला न हो।
यदि गुरु-भाव वस्तुतः पैदा हुआ है, तो जीवन बदलना शुरू हो जाएगा। वही लक्षण है कि गुरु-भाव वास्तविक है या नहीं। क्योंकि गुरु-भाव एक बड़ी क्रांतिकारी घटना है। किसी के प्रति समर्पण की भावना जीवन को आमूल बदलना शुरू कर देती है। समर्पित होते ही आप दूसरे होने शुरू हो जाते हैं। वह जो व्यक्ति समर्पित हुआ था, मर ही जाता है। नए व्यक्ति का ही उदभव हो जाता है। अगर समर्पण की, शरण जाने की भावना वास्तविक हो--और वास्तविक का अर्थ
यह है कि पिछले जन्मों के अनुभव से निकली हो--तो आपके जीवन में क्रांति शुरू हो गई। वह अनुभव आने लगेगी।
आपकी वृत्तियों में फर्क होगा; आपके लोभ में, क्रोध में, काम में फर्क होगा। आपकी करुणा गहन होगी, मैत्री बढ़ेगी। सुख-दुख के प्रति उपेक्षा आनी शुरू होगी। भविष्य बहुत मूल्यवान नहीं मालूम होगा; वर्तमान ज्यादा मूल्यवान मालूम होगा। और जो दिखाई पड़ता है, उससे भी ज्यादा, जो नहीं दिखाई पड़ता है, उसकी तरफ आंखें उठनी शुरू हो जाएंगी। ऐसे जीवन में सब तरफ से फर्क पड़ने शुरू होंगे।

अगर गुरु-भाव, गुरु के प्रति समर्पण का भाव, अतीत के अनुभवों से निकला हो, तो पहचानने में अंतर नहीं पड़ेगा, कठिनाई नहीं पड़ेगी। लेकिन अगर ऐसे ही पैदा हो गया हो--ऐसे भी कभी पैदा हो जाता है--तब आपमें गुरु के प्रति भाव पैदा नहीं होता, गुरु के प्रभाव में आपके ऊपर फूल रख जाता है।
प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व में प्रभाव हो सकता है; उनकी वाणी में प्रभाव हो सकता है; उनके अस्तित्व में प्रभाव हो सकता है। उस प्रभाव की छाया में आपको लग सकता है कि आप समर्पित हो रहे हैं। लेकिन वह ज्यादा देर टिकेगा नहीं। वह सम्मोहन से ज्यादा नहीं है। जल्दी ही वर्षा, एक वर्षा भी उसे धुला देने के लिए काफी होगी।
तो यही कसौटी है कि अगर समर्पण आपको बदल रहा हो, टिकता हो और धीरे-धीरे स्थिर भाव बनता हो, तो समझना कि शास्त्रों की कोई जरूरत नहीं है; शास्त्रों का काम पूरा हो चुका होगा। अगर समर्पण-भाव कई बार आता हो, अनेक के प्रति आता हो, टिकता न हो; आता हो, चला जाता हो; जरा-सा पानी और सब बह जाता हो; तो समझना कि वह व्यक्तियों के प्रभाव में आपको लगता है कि समर्पण हो रहा है।
वह समर्पण आपका नहीं है। उससे कोई रद्दोबदल, कोई क्रांति कभी भी नहीं होगी। आप जैसे थे, आप वैसे ही रहेंगे। नुकसान भी हो सकता है। क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं बिना बदले प्रभावित हो जाता है, उसके जीवन की सारी व्यवस्था ऊपर-ऊपर, सतह पर होने लगती है। वह किसी से भी प्रभावित हो सकता है। वह जहां जाएगा, वहीं प्रभावित हो जाएगा। लेकिन प्रभाव होगा ऊपर लहरों पर; उसके प्राणों की गहराई में कुछ भी नहीं होगा।
प्राणों की गहराई में तो जो घटना घटती है, वह आपके ही अनुभव से घटती है। आपका अनुभव तैयार हो और गुरु का मिलन हो जाए, तो समर्पण, शरणागति पैदा होती है।
आपका अनुभव भीतर न हो और गुरु का मिलना हो जाए, तो प्रभाव पैदा होता है। लेकिन प्रभाव क्षण में आता है, क्षण में चला जाता है; उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। वह वैसे ही है, जैसे आप चित्र देखने गए; फिल्म देखी और थोड़ी देर को प्रभावित हो गए हैं। और बाहर निकलते ही बात समाप्त हो गई है।
यह भी हो सकता है कि फिल्म देखते क्षण में करुणा उमड़ आई हो, आंख आंसुओं
से भर गई हो। लेकिन जैसे ही परदे पर प्रकाश होता है, घंटी बजती है, स्मरण आ जाता है कि सिर्फ फिल्म थी, प्रकाश-छाया का खेल था; रोने जैसा कुछ भी न था; और आप हंसते हुए बाहर आ जाते हैं। हो सकता है अभी भी आंखें गीली हों, लेकिन वह सब ऊपर-ऊपर था; भीतर उसके कोई परिणाम नहीं है।
मुझे सुनकर भी प्रभाव हो सकता है। मेरी बात अच्छी लग सकती है, तर्कयुक्त मालूम हो सकती है। मेरी बात का काव्य मन को पकड़ ले सकता है। लेकिन उसका बहुत मूल्य नहीं है; मनोरंजन से ज्यादा मूल्य नहीं है। बाहर आप जाएंगे, वह सब खो जाएगा; धुआं-धुआं उड़ जाएगा।
लेकिन अगर आपके भीतर अनुभव भी पका हो और फिर मेरी बात का उससे मेल हो जाए; बीज भी पड़ा हो जमीन में और वर्षा हो, तो अंकुरण होगा। बीज आपको अपने साथ लाना है।
कोई भी गुरु आपको अनुभव नहीं दे सकता। गुरु वर्षा बन सकता है। अनुभव
का बीज भीतर हो, तो अंकुरित हो सकता है। गुरु की मौजूदगी माली का काम कर सकती है। लेकिन कोई भी गुरु बीज नहीं बन सकता आपके लिए। उसका कोई उपाय नहीं है।
इसकी भी जांच निरंतर रखनी चाहिए कि हम केवल प्रभावों से तो नहीं जीते? अपने भीतर भी खोज करते रहना चाहिए कि हम सिर्फ सम्मोहित तो नहीं हैं? हमारे भीतर कुछ अंतर हो रहा है या नहीं?
रोज लोग मंदिर में जाते हैं। मंदिर में उनके चेहरे देखें; भक्ति-भाव
से भरे हुए मालूम पड़ते हैं! मंदिर से बाहर निकलते ही चेहरे बदल जाते हैं। उस मंदिर को वे जन्मों से जा रहे होंगे, लेकिन मंदिर कहीं भी उनको बदल नहीं पाता। वे वही के वही हैं। मंदिर में जाकर एक चेहरा ओढ़ लेते हैं। उसकी भी आदत हो गई है! तो मंदिर में प्रवेश करते ही से भक्ति का भाव धारण कर लेते हैं।

लेकिन धारण किए हुए भाव का कोई मूल्य नहीं है। भाव भीतर से आना चाहिए।
और अगर भीतर से आएगा, तो मंदिर में ही क्यों, मंदिर के बाहर भी रहेगा, मंदिर के भीतर भी रहेगा।
तो जब आप मुझे सुनते हैं, तभी अगर ऐसा लगता हो कि समर्पण कर दें, उसका बहुत मूल्य नहीं है। जब मुझे सुनकर चले जाते हैं, और अगर वह भाव आपके भीतर गूंजता ही रहता हो; उठते-बैठते, सोते-जागते, उसकी धुन आपके भीतर बजती रहती हो, वह आपका पीछा करता हो; न केवल पीछा करता हो, बल्कि उसकी मौजूदगी के कारण आपके जीवन में फर्क पड़ता हो; कि आप किसी की जेब में हाथ डालकर रुपया निकालने ही वाले थे, कि वह जो भाव आपके भीतर उठा था, वह आपको रोक देता हो; कि गाली बस निकलने को ही थी मुंह से, कि वह जो भाव भीतर उठा है, बाधा बन जाता हो; कि कोई गिर पड़ा था, उसको उठाने के लिए हाथ बढ़ जाता हो; वह भाव कृत्य बनता हो; तो समझना कि वह आपके भीतर है।
अगर भाव कृत्य बनने लगे, तो उसका अर्थ है कि वह आचरण को बदलेगा। अगर भाव कृत्य न बने, तो आप तो वही रहेंगे। हो सकता है, बुद्धि में थोड़ी अच्छी बातें संगृहीत हो जाएं। अच्छी बातों का कोई भी मूल्य नहीं है। अच्छी बातें अच्छे सपनों जैसी हैं। सपना कितना ही अच्छा हो, तो भी सपना है। और सपने में आप सम्राट भी हो जाएं, तो सुबह आप पाते हैं कि आप भिखारी हैं। उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता।
तो मैं अगर कहूं कि आप स्वयं ब्रह्म हैं; और भीतर छिपा है अविनाशी अंतर्यामी; और मेरी बात सुनकर आपको लगे कि ठीक, और इससे जीवन में, कृत्य में कहीं कोई अंतर न पड़ता हो; तो इसका कोई भी मूल्य नहीं है; और इसे आप धोखा समझना। और इस धोखे से जितने जल्दी आप बाहर हो जाएं, उतना अच्छा है। क्योंकि इस धोखे में आपने न मालूम कितना समय गंवाया होगा।
लोग हैं, जो एक गुरु से दूसरे गुरु की यात्रा करते रहते हैं; एक आश्रम
से दूसरे आश्रम में चलते रहते हैं। कोई आश्रम उनको बदल नहीं पाता। और तब वे क्या सोचते हैं, कि सभी आश्रम बेकार हैं; कहीं कोई सार नहीं है। कोई गुरु उनको नहीं बदल पाता। तब वे सोचते हैं कि सब गुरु बेकार हैं, सदगुरु कोई है ही नहीं।
कठिनाई सदगुरु की नहीं है, कठिनाई आपकी है। आप बदलने को तैयार हों, तो
एक छोटा बच्चा भी आपको बदल दे सकता है। और आप बदलने को तैयार न हों; तो खुद कृष्ण भी आपके पास खड़े रहें, तो कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं।
इसे ख्याल रखें। जो भी प्रभाव हो, वह आपका कृत्य बनने लगे, इसका स्मरण रखें। और मौका दें कि वह कृत्य बने। जहां भी अवसर मिले, तत्क्षण जो आपका भाव है, उसे कर्म में रूपांतरित होने दें। जब भी कोई भाव कर्म बनता है, तो उसकी लकीर आपके भीतर गहरी हो जाती है।
जो आप सोचते हैं, उसका बहुत मूल्य नहीं है। जो आप करते हैं, उसी का बहुत मूल्य है। क्योंकि जो आप करते हैं, वह आपके अस्तित्व से जुड़ता है। जो आप सोचते हैं, वह बुद्धि में भटकता रहता है।
बहुत लोग हैं जिनके पास अच्छे-अच्छे विचार हैं। उन अच्छे विचारों का कोई भी मूल्य नहीं है। समय पर काम नहीं आते। और जो वे करते हैं, उस करने से उनके विचारों का कोई संबंध नहीं जुड़ता।
मैं जो भी आपसे बोलता हूं, उसका प्रयोजन आपको प्रभावित करना नहीं है। बच्चों का खेल है प्रभावित करना। आप तो मदारी से प्रभावित हो जाते हैं, इसलिए उसका कोई मूल्य भी नहीं है। सड़क पर एक मदारी डमरू बजा रहा है। आप वहीं खड़े हो जाते हैं। तो आपको प्रभावित करने का कोई मूल्य नहीं है, न कोई अर्थ है। आप तो किसी से भी प्रभावित हो जाते हैं!
आपके भीतर जीवन का संचरण शुरू हो जाए! आपकी जीवन-धारा नई गति ले ले!
तो न शास्त्रों की फिक्र करें, न प्रभावों की फिक्र करें; फिक्र इस बात की करें कि आपके भीतर क्या घटित हो रहा है। इसका सतत निरीक्षण चाहिए। और आपके भीतर जो घटित होगा, वही संपदा बनेगी।
मरते क्षण में न तो आप शास्त्र ले जा सकेंगे, न गुरु को साथ ले जा सकेंगे; न गुरु के वचन काम आएंगे; न आपने जो प्रभाव इकट्ठे किए हैं, वे काम आएंगे। मरते क्षण में, आपने क्या किया जीवनभर, वही बस आपके साथ होगा। मरते क्षण में आपके कृत्यों का सार-निचोड़ आपके साथ यात्रा पर निकलेगा। मरते

क्षण में सिर्फ आप ही बचेंगे; और आपके अपने सारे कृत्यों का संग्रह, जो-जो आपने किया, उसकी सब लकीरें आपके ऊपर हैं।
तो निरंतर यह सोचें कि आपके जीवन की धारा कैसी चल रही है। वही पहचान है।

दूसरा प्रश्नः इतने दिन से आपको बड़ी उत्कंठा से सुनकर भी मैं अपने आपको वहीं पा रहा हूं जहां मैं था! फिर मैं क्या आशा रख सकता हूं?

किससे आप आशा रख रहे हैं, मुझसे या अपने से? प्रश्न से ऐसा लगता है कि मुझसे कुछ आशा रख रहे हैं। जैसे मुझे सुनकर आप वहीं के वहीं हैं, तो कसूर मेरा है! मैंने कहा कब आपको कि आप सुनकर कुछ और हो जाएंगे? काश, इतना आसान होता कि लोग सुनकर बदल जाते, तो इस दुनिया में बदलाहट कभी की हो गई होती! लोग सुनकर नहीं बदलते हैं, यह तो साफ ही है। और सच तो यह है कि जितना ज्यादा सुनते हैं, उतना ही जड़ हो जाते हैं। क्योंकि सुनने की उनको आदत हो जाती है। तो पहली दफे सुनकर शायद थोड़ी-बहुत उनकी बुद्धि में गति भी आई हो, बार-बार सुनने से उतनी गति भी खो जाती है! फिर सुनने के आदी हो जाते हैं! फिर उनको लगता है, यह तो सब परिचित ही है। फिर सुनना भी एक नशा हो जाता है। तो उसकी तलब होती है।
अगर आप मुझे सुनते हैं उत्कंठा से और कोई फर्क नहीं हो रहा, तो आठ बजे
कि आप चले। वह तलब है। वह जैसे किसी को सिगरेट पीने की तलब है, कि आठ बजे और सिगरेट न पीए, तो उसको तकलीफ होती है। तो यह एक व्यसन हुआ, नशा हुआ।
नशे का एक मजा है। करो, तो कुछ मिलता नहीं; न करो, तो तकलीफ होती है। जाओ सुनने, कुछ फायदा नहीं; न जाओ, तो बेचैनी होती है! जब भी ऐसा हो, तो समझना कि यह व्यसन हो गया। यह रोग है। इस रोग से कुछ उपलब्धि होने वाली नहीं है।
पर निराश किससे होना है? यह सोचकर सुनना बंद कर दें, तो भी कुछ फर्क नहीं हो जाएगा। सुनने से नहीं हुआ, तो सुनना बंद करने से कैसे होगा! फर्क करने को कुछ आपको अपनी तरफ सोचना पड़ेगा। सुनने में बड़ी सुगमता है, क्योंकि आपको कुछ करना ही नहीं है; सिर्फ बैठे हैं!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आपकी किताब पढ़ने से तो आपको सुनने में ज्यादा आनंद आता है! क्योंकि पढ़ने में कम से कम आपको थोड़ी मेहनत करनी पड़ती है, पढ़ना पड़ता है, उतना कष्ट! सुनने में वह भी कष्ट नहीं है। और सुनने में मन लीन हो जाता है, तो उतनी देर को आपको शांति भी मिलती है। उतनी देर को कम से कम दूसरे उपद्रव आप नहीं कर पाते। कम से कम उतनी देर को आपका मन व्यस्त हो जाता है। तो मन की जो निरंतर की चलती धारा है, वह नहीं चल पाती।
यह सब ठीक है, लेकिन इससे आप बदल नहीं जाएंगे। और अगर कोई सोचता हो कि सुनने से बदल जाएंगे, तो गलती सोचता है। वह तो कभी बदलेगा ही नहीं। अगर बदलना है, तो सुनने से सूत्र खोजे जा सकते हैं, जो बदलने के काम आ जाएं। सिर्फ सुनने से कोई नहीं बदलेगा।
वह करीब-करीब बात, पुरानी कहावत है, कि आप घोड़े को जाकर पानी दिखा सकते हैं, पिला नहीं सकते। घोड़े को ले जाकर नदी के किनारे खड़ा कर सकते हैं। पिलाएंगे कैसे? पानी तो घोड़े को ही पीना पड़ेगा। वही मैं कर सकता हूं, घोड़े को नदी के किनारे खड़ा कर सकता हूं; पिला नहीं सकता।
अब आप कहें कि घोड़े की तरह मैं खड़ा हूं इतने दिन से और प्यास मेरी अभी
तक नहीं बुझी!
नदी बह रही है, घोड़ा खड़ा है। अब क्या करना है? और करना किसको है? वह जो घोड़े को नदी तक ले आया है, उसको कुछ करना है कि घोड़े को कुछ करना है? जन्मों तक खड़े रहें। नदी बहती रहेगी। नदी हर पल बह रही है। लेकिन थोड़ा झुकना पड़ेगा घोड़े को। थोड़ी गर्दन झुकाकर पानी तक मुंह को ले जाना पड़ेगा। तो मैं जब बोल रहा हूं, कुछ कह रहा हूं, तो नदी आपके पास बह रही है। आप बैठे रहें किनारे पर। कितने ही दिन तक बैठे रहें। नदी को देखने का मजा लेते रहें! नदी के बहने की ध्वनि आ रही है, उसका संगीत सुनते रहें। नदी पर सूरज की किरणें बिछी हैं, नदी सुंदर है, उसके सौंदर्य को देखते रहें। नदी

के पास पक्षी उड़ रहे हैं, वृक्ष खड़े हैं, उनको देखते रहें। लेकिन प्यास न बुझेगी।
और नदी कुछ भी नहीं कर सकती आपकी प्यास बुझाने को। आप झुकें, चुल्लू
से पानी भरें और पीएं। और आपकी तैयारी हो, तो पीने की क्या बात है, नदी में डूब सकते हैं, नदी के साथ एक हो सकते हैं। लेकिन सिर्फ नदी की मौजूदगी से यह नहीं हो जाएगा; आपको कुछ करना पड़ेगा।
आप कहते हैं, यहां सुनते हैं, उत्कंठा से सुनते हैं।
यह कुछ करना नहीं है। इस नदी की धारा में से कुछ चुनना पड़ेगा, जो आप पीएं। कोई विचार जो आपको लगता है सार्थक है, तो उसको सार्थक ही मत लगने दें, उसको सार्थक बनाएं। कोई विचार आपको लगता है कीमती है, तो सिर्फ ऐसा सोचते ही मत रहें कि कीमती है। अगर कीमती है, तो उसका उपयोग करें, उसको चखें, उसका स्वाद लें। उसको पी जाएं; कि वह आपके खून में बहने लगे, आपकी हड्डियों के साथ एक हो जाए।
अगर विचार इतना प्रीतिकर लगता है, तो जिस दिन वह आपका अंतस बन जाएगा,
उस दिन कितनी मधुरिमा पैदा होगी, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। जो मैं कह रहा हूं, अगर वह प्रीतिकर लगता है, तो जहां से वह कहना निकलता है, उस स्रोत पर जब आप डूब जाएंगे, एक हो जाएंगे, तो आपके जीवन में प्रकाश ही प्रकाश हो जाएगा।
लेकिन खतरा यही है कि बात अच्छी लगे, तो हम उसे स्मरण कर लेते हैं, वह हमारी बुद्धि में समा जाता है। उसका हम उपयोग भी करते हैं, तो एक ही उपयोग, किसी और से बात करने के लिए उपयोग कर सकते हैं। किसी और को बता देंगे; किसी और को समझा देंगे; बस इतना ही उपयोग है।
तो जो सुना है, उसे आप ज्यादा से ज्यादा अगर कुछ करेंगे, तो वाणी बना लेंगे। वह आपका जीवन नहीं बनेगा। और जीवन न बने, तो सुनने का कोई सार नहीं। वह व्यर्थ ही गया।
तो अगर आपको लगता हो कि सुनते हैं और कहीं जा नहीं रहे--कैसे जाएंगे? जाना आपको पड़ेगा। जाना शुरू करें।
और एक कदम भी उठाएं, तो भी बड़ा है। क्योंकि पहला कदम उठ जाए, तो दूसरे
के उठने में आसानी हो जाती है। और एक कदम से ज्यादा तो एक समय में कोई उठा नहीं सकता। एक कदम उठा लिया, तो पूरी मंजिल भी एक अर्थ में हल हो गई। क्योंकि एक-एक ही कदम उठाकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। लेकिन कदम उठाएं।
इसे नियम बना लें कि जो प्रीतिकर लगे, उसके अनुभव की कोशिश करें। जो
मन को आच्छादित कर ले, उसके अनुभव की कोशिश करें। फिक्र करें कि इसे मैं भी जानने की कोशिश करूं, क्या!
मेरे पास एक युवक आते थे। ध्यान पर बड़ी उत्सुकता रखते थे। ध्यान के शिविरों में भी आते थे। लेकिन कभी मैंने उनको ध्यान करते नहीं देखा। दो- चार शिविर में देखा; अनेक बार मुझसे मिलने आए; अनेक प्रश्न लेकर आए। प्रश्न भी अच्छे लाते थे। सुनते भी बड़ी उत्सुकता से थे।
मैंने पूछा कि कर क्या रहे हो? उन्होंने कहा, मैं ध्यान पर शोध कर रहा हूं, रिसर्च कर रहा हूं। एक थीसिस लिखनी है।
तो यह व्यक्ति ध्यान को समझने की बड़ी चेष्टा कर रहा है, लेकिन ध्यान
से इसे कोई प्रयोजन नहीं है। ध्यान से इसका निजी कोई संबंध नहीं है। थीसिस लिखकर बात समाप्त हो जाएगी। कोई युनिवर्सिटी इसको डिग्री दे देगी। बात खतम हो गई! ध्यान एक विषय है, जिस पर एक बौद्धिक व्यायाम करना है। लेकिन प्रयोग नहीं करना है।
यह करीब-करीब ऐसी हालत है, जैसे कहीं अमृत का सरोवर भरा हो, और कोई आदमी उस सरोवर के आस-पास खोज-बीन करता रहे कि अमृत पर उसको एक थीसिस लिखनी है और उसे पीए न! तो उस आदमी को हम महामूढ़ कहेंगे। क्योंकि थीसिस लिखने का काम तो पीकर भी हो सकता था; और पीकर ज्यादा ढंग से होता। क्योंकि जिसे खुद नहीं जाना, उसके संबंध में हम क्या कहेंगे! जो भी कहेंगे, वह उधार होगा। और जो भी कहेंगे, वह बासा और बाहर-बाहर का होगा। वह भीतर की प्रतीति नहीं है। एक वैज्ञानिक हुआ मैक्स प्लांक, उसने अपना एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि वह जीवशास्त्र का अध्ययन कर रहा था और मनोविज्ञान का भी अध्ययन

कर रहा था; और कोशिश कर रहा था कि मनोविज्ञान में और जीवशास्त्र में क्या भीतरी संबंध है। और जब मन प्रभावित होता है, तो शरीर कैसा प्रभावित होता है।
एक युवती से उसका प्रेम था। लेकिन एक दिन युवती एकदम झटके के साथ खड़ी
हो गई। उसके पास बैठी थी; चांद था आकाश में; वे दोनों बड़े प्रेम की बातें कर रहे थे। अचानक वह झटके से खड़ी हो गई। और उसने कहा कि क्षमा करो; यह बात खतम; अब मुझसे दुबारा मत मिलना। मैक्स प्लांक ने कहा, बात क्या है? उसने कहा कि मैं कई दिन से अनुभव कर रही हूं कि जब भी तुम मुझसे प्रेम की बातें करते हो, तो तुम अपना हाथ मेरी नाड़ी पर रखते हो।
वह जांच करता था कि जब मैं प्रेम की बात करता हूं, तो उसकी नाड़ी में कोई फर्क पड़ता है कि नहीं! प्रेम भी थीसिस की बात थी! उसे कुछ प्रेम में उतरने का कोई कारण नहीं था; सिर्फ जांच रहा था कि जब मन प्रभावित होता है, तो शरीर प्रभावित होता है कि नहीं!
होता तो जरूर है। क्योंकि जब आप गहरे प्रेम में हों, तो आपकी नाड़ी तेजी से चलेगी। जिसको आप प्रेम करते हैं, जब आप उसके पास होते हैं, तो आपका पूरा शरीर ज्यादा ज्वलंत हो जाता है। खून तेजी से बहता है। नाड़ी तेजी से चलती है। हृदय तेजी से धड़कता है। आप जीवित हो जाते हैं। और जब आपका प्रेमी आपसे दूर हटता है, तो आप मुर्दा हो जाते हैं, कुम्हला जाते हैं; सब चीजें शिथिल हो जाती हैं।
यह तो ठीक है। लेकिन उस लड़की ने ठीक ही किया। उसने कहा, यह बात खतम हो गई। क्योंकि प्रेम कोई वैज्ञानिक जिज्ञासा की बात नहीं है। और उसने कहा कि शक तो मुझे कई बार होता था। क्योंकि तुम बात करते-करते कुछ और भी कर रहे हो। लेकिन आज मैंने बिल्कुल साफ देख लिया कि तुम मेरी नाड़ी पकड़े बैठे हो। पहले वह लड़की समझती रही होगी कि मेरा हाथ प्रेम से पकड़े हुए है, और वह उसकी नाड़ी की जांच कर रहा है!
अब यह आदमी जरूर ही खोज लेगा संबंध मन के और शरीर के, लेकिन एक अनूठे अनुभव से वंचित रह जा सकता है। प्रेम से वंचित रह जा सकता है।
आप ध्यान में उत्सुक हो सकते हैं, एक बौद्धिक ऊहापोह की तरह। तब आप छिलके लेकर लौट आए जहां कि आपको फल मिल सकते थे।
मेरी बात जब आप सुनते हैं और आपको अच्छी लगती है, और प्रीतिकर लगती है,
और उत्कंठा जगती है; इतना काफी नहीं है। इतना जरूरी तो है, क्योंकि इसके बाद कुछ और हो सकता है; लेकिन इतना काफी नहीं है। यह केवल प्राथमिक है। दूसरा कदम उठाएं।
विचार से अनुभव की तरफ चलें। विचार पर मत ठहर जाएं। नहीं तो आप सोचते
ही रहेंगे, सोचते ही रहेंगे और समाप्त हो जाएंगे। और सोचने पर जो समाप्त हो गया, उसने जीवन को जाना ही नहीं। एक अपूर्व संपदा पास थी, वह उसे खो दिया अपने ही हाथों से। और विधि आपके पास भी रखी रही, तो भी आप उपयोग न कर सके! एक रात मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर वापस लौटा, बदहवास, पसीने से तरबतर, घबड़ाया हुआ। जल्दी से भीतर घुसकर दरवाजा बंद कर लिया।
पत्नी ने कहा, इतने घबड़ाए हुए हो! बात क्या है? कहां से आ रहे हो? उसने कहा कि दुकान से ही लौट रहा हूं। लेकिन एक बदमाश मिल गया। उसने मेरा चश्मा भी छीन लिया; फाउंटेन पेन भी खीसे से निकाल ली; रुपए भी खीसे से ले लिए; कोट भी उतार लिया। यहां तक कि मेरे जूते उतार लिए।
उसकी पत्नी ने कहा, और तुम तो पिस्तौल रखे हुए हो! तो नसरुद्दीन ने कहा, वह तो भाग्य की बात कहो कि बदमाश की नजर पिस्तौल पर नहीं पड़ी; नहीं तो क्या वह छोड़ देता!
अब पिस्तौल किस लिए रखे हुए है वह!
आपको ध्यान की विधि पता है। वह रखी रह जाएगी ऐसे ही जैसे पिस्तौल रखी है। उसको भी बचाने में लग जाएंगे और उसका उपयोग तो कभी कर ही न पाएंगे। आप क्या जानते हैं इसका मूल्य नहीं है, क्योंकि जाना हुआ तो पड़ा रह जाएगा। जिस-जिस ज्ञान को आपने जीवन बना लिया, वही बस आपके हाथ है।
मैंने सुना है, एक बहुत पुरानी यहूदी कथा है, कि परमात्मा ने जब संसार बनाया, तो उसने हिंदुओं के नेता से पूछा--शायद कृष्ण से पूछा हो--कि कुछ नियम हैं मेरे पास। ये उपयोगी होंगे। अगर तुम चाहो, तो मैं तुम्हें नियम

दे दूं। तो कृष्ण ने, या हिंदुओं के नेता ने पूछा कि जरा नमूने के लिए; कौन से नियम हैं? तो उसने कहा कि जैसे, व्यभिचार पाप है। तो हिंदुओं के नेता ने कहा, यह बात तो ठीक होगी, लेकिन संसार से सब रस चला जाएगा। कोई उत्सुकता न दिखाई नियम लेने की।
मुसलमानों के नेता से पूछा--शायद मोहम्मद से पूछा होगा--उन्होंने भी कहा, लेकिन पहले मैं जान लूं कि कौन से नियम हैं, फिर लूं। तो ईश्वर ने यह सोचकर कि पहला नियम तो पसंद नहीं किया गया, तो उसने दूसरा नियम बताया कि हत्या मत करो। तो मोहम्मद ने कहा, यह बात तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन अगर हत्या बिल्कुल न की जाए, तो दूसरे हमारी हत्या कर देंगे। और दुष्टों के हाथ में संसार चला जाएगा। और फिर बिना युद्ध के शांति कैसे स्थापित हो सकती है?
ऐसा ईश्वर घूमता रहा। आखिर में वह मूसा को मिला, यहूदियों के नेता को मिला। और जैसे कि यहूदी होते हैं, व्यापारी; ईश्वर भी चौंका। क्योंकि उसने और लोगों से पूछा था, सब ने नमूने मांगे। मूसा ने पूछा, हाऊ मच इट कॉस्ट्स, इसकी कीमत कितनी है? वह जो नियम आप देते हो, उसका मूल्य कितना है?
ईश्वर भी चौंका; क्योंकि वह यह पूछ ही नहीं रहा है कि नियम क्या है! वह कहता है, मूल्य कितना है! तो ईश्वर ने कहा, मूल्य तो बिल्कुल नहीं है; मुफ्त दे रहे हैं! तो उसने कहा, देन आई विल टेक टेन। मूसा ने कहा, तो फिर हम दस ले लेंगे। जब मुफ्त ही दे रहे हैं, तो क्या दिक्कत है। इसलिए टेन कमांडमेंट्स, दस आज्ञाएं ईश्वर की! मगर वे किताब में रखी हैं।
आप भी मुफ्त कुछ मिल रहा हो, तो एक की जगह दस ले लेंगे। कुछ करना न पड़ रहा हो, कुछ आपके जीवन में रूपांतरण न होता हो, कोई क्रांति न होती हो, बैठे-ठाले कुछ मिल जाता हो, तो एक की जगह दस ले लेंगे। लेकिन वह किताब में रखा रह जाएगा; उसका कोई मूल्य नहीं है।
आप यहां बैठकर सुन रहे हैं। आपको कुछ करना नहीं पड़ रहा है। बल्कि घंटे, डेढ़ घंटे के लिए कुछ करना पड़ता, उससे भी आप बच गए। राहत है! सुख लगता है।
इस सुख को आप व्यसन मत बना लें। अगर सुख लगता है बातों में, तो जहां से बातें आती हों, उस दिशा में यात्रा शुरू करें। और जो मैं कह रहा हूं, वह अगर आपको भी किसी दिन दिखाई पड़ सके, तभी रुकें, तभी समझें कि मंजिल आई। उसके पहले रुकना उचित नहीं है। और यह मैं न कर सकूंगा; यह आपको खुद ही करना पड़ेगा।
कोई दूसरा आपके लिए नहीं चल सकता। कोई दूसरा आपके लिए देख नहीं सकता। कोई दूसरा आपके लिए अनुभव नहीं कर सकता। और अच्छा ही है कि कोई दूसरा नहीं कर सकता। अन्यथा आप सदा के लिए वंचित रह जाते; आप पंगु रह जाते।
अगर दूसरा आपके लिए चले, तो आपके पैर नष्ट हो जाएंगे। और दूसरा आपके लिए अनुभव करे, तो आपका हृदय नष्ट हो जाएगा। और दूसरा आपके लिए देख सके, तो आपकी आंखों की कोई जरूरत नहीं। और दूसरा अगर आपके लिए आत्म-अनुभव कर सके, तो आपकी आत्मा सदा के लिए खो जाएगी।
इसलिए परमात्मा के गहरे नियमों में से एक नियम यह है कि दूसरा आपके लिए, जो भी मूल्यवान है, वह नहीं कर सकता। वह आपको ही करना पड़ेगा। क्योंकि करने से ही विकास होता है। करने से ही आप निर्मित होते हैं। करने से ही आपका वास्तविक जीवन और जन्म होता है।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि प्राण यदि प्रभु के लिए समग्ररूपेण आतुर
हो जाएं, तो एक क्षण में मिलन घटित हो सकता है। और आप यह भी कहते हैं कि इस मिलन के लिए अनंत धैर्य अपेक्षित है। ये दोनों अति स्थितियां हैं!

नहीं; ये दोनों एक ही स्थिति के दो रूप हैं। या एक ही स्थिति के दो चरण हैं।
समझें! निरंतर मैं कहता हूं कि उसे पाने के लिए अनंत धैर्य चाहिए। और निरंतर यह भी कहता हूं कि उसे एक क्षण में पाया जा सकता है। दोनों बातें विपरीत मालूम पड़ती हैं। क्योंकि अगर उसे एक ही क्षण में पाया जा सकता है,

तो अनंत धैर्य की जरूरत क्या? तब तो क्षणभर भी धैर्य रखने की जरूरत नहीं है। जिसे एक क्षण में ही पाया जा सकता है, उसे हम अभी ही पा लें।
और जब मैं कहता हूं कि उसको अनंत धैर्य रखें, तो ही पा सकेंगे, तब आपको लगता है कि अनंत धैर्य रखने का मतलब ही यह हुआ कि एक क्षण में पाना तो संभव नहीं; अनंत जन्म में भी पा लें, तो जल्दी पाया।
दोनों बातें विपरीत लगती हैं, पर ये दोनों बातें विपरीत नहीं हैं। और जीवन का गणित पहेली जैसा है। ये दोनों बातें परिपूरक हैं। समझने की कोशिश करें!
उसे एक क्षण में पाया जा सकता है, अगर आप में अनंत धैर्य हो। और अगर आप में धैर्य की कमी हो, तो उसे अनंत काल में भी नहीं पाया जा सकता। क्योंकि आपका धैर्य ही उसे पाने की योग्यता है। तो जितना धैर्य हो, उतने जल्दी वह घटित होता है।
अनंत धैर्य का अर्थ है, एक ही क्षण में घटित हो जाएगा। क्योंकि कोई कमी नहीं रही; आप पूरा धैर्य रखे हुए हैं। अनंत धैर्य का अर्थ है कि अगर वह कभी भी न घटे, तो भी मैं धीरज खोने वाला नहीं हूं। अनंत धैर्य का मतलब यह है कि वह कभी भी न घटे--कभी भी--तो भी मैं प्रतीक्षा करूंगा। ऐसा जिसका मन हो, उसके लिए इसी क्षण घट जाएगा। क्योंकि इसको अब प्रतीक्षा कराने का कोई प्रयोजन ही न रहा। बात ही खतम हो गई। यह तैयार है।
और जो इतने धैर्य के लिए तैयार है, क्या वह अशांत होगा? क्योंकि अशांत
तो अधैर्य के साथ जुड़ा है। इतना धैर्य वाला व्यक्ति तो परिपूर्ण शांत होगा, तभी इतना धैर्य रख सकेगा। और जो इतने धैर्य के लिए राजी है, क्या वह दुखी होगा? क्योंकि दुखी तो अधीर होता है।
दुखी जल्दी में होता है। सिर्फ जो आनंद में है, वह धीरे चलता है। सम्राट जब चलता है, तो तेजी से नहीं चलता। सम्राट अगर तेजी से चले, तो उससे पता चलता है कि सम्राट होने की कला उसे नहीं आती।
तेजी से तो वह भागता है, जिसको कुछ पाना है। जिसके पास सब है, वह क्यों भागे? भाग-दौड़ कमी की खबर देती है। अनंत धैर्य का अर्थ है कि मेरे पास सब है, जल्दी कुछ भी नहीं है। अगर प्रभु भी मिलेगा, तो वह अतिरिक्त है। इसे थोड़ा समझ लें।
मेरे पास सब था और अगर प्रभु मिलेगा, तो वह अतिरिक्त है। वह न मिलता तो कोई कमी न थी। वह मिल गया, तो मैं पूरे से भी ज्यादा पूरा हो जाऊंगा। लेकिन पूरा मैं था, क्योंकि मुझे कोई जल्दी न थी; न कोई प्रयोजन था; न कोई भाग-दौड़ थी।
पूरे धैर्य का अर्थ यह होता है कि आप जैसे हैं, उससे राजी हैं। वह तथाता की घड़ी है। आप पूरी तरह राजी हैं कि ठीक, सब ठीक है। और यह सब ठीक किसी सांत्वना के लिए नहीं कि अपने को समझाने के लिए। ठीक तो कुछ भी नहीं है, लेकिन अपने को समझा रहे हैं कि सब ठीक है। जानते हैं, ठीक कुछ भी नहीं है। लेकिन कह रहे हैं कि सब ठीक है, ताकि मन माना रहे।
नहीं, वैसा सब ठीक नहीं। कुछ भी गैर-ठीक मालूम नहीं होता। सब ठीक है। कहीं कोई असंतोष नहीं है। और कुछ पाने की दौड़ भी नहीं है। और प्रभु जब मिले, तब उसकी मरजी पर हम छोड़ सकते हैं समय को। हमारी तरफ से समय हम देते नहीं। आज न मिले, तो हम सांझ को पश्चात्ताप न करेंगे, रोएंगे न, धोएंगे न, चिल्लाएंगे न, कि दिन निकल गया और आज तक... । एक दिन खराब हुआ।
कल फिर राह देखेंगे। उस राह में कहीं भी धूमिलता न आएगी; उस प्रतीक्षा में हम कहीं भी चाह को न जुड़ने देंगे, जल्दबाजी न जुड़ने देंगे, अधैर्य न जुड़ने देंगे। ऐसा अनंत धैर्य हो, तो परमात्मा क्षणभर में मिल जाता है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, आप कहते हैं क्षणभर में मिल जाता है, लेकिन मिलता क्यों नहीं?
उनका जो कहना है, मिलता क्यों नहीं? वही बाधा है। अगर क्षणभर में मिल जाता है, तो अभी मिलना चाहिए! और जो इतनी जल्दी में है कि अभी मिलना चाहिए, उसका मन इतने तनाव से भरा है, वह इतने दुख से भरा है, वह इतने असंतोष से भरा है, इतनी अशांति से भरा है कि परमात्मा से मिलना हो कैसे सके?
और जो कहता है, अभी मिलना चाहिए, वह परमात्मा को बहुत मूल्य भी नहीं दे रहा है। वह कह रहा है, मिलना हो तो अभी मिल जाओ, नहीं तो दूसरे काम हजार पड़े

हैं; और अगर देरी हो, तो पहले हम उनको निपटा लें। परमात्मा उसके लिए कोई बहुत मूल्य की बात नहीं कि वह उसके लिए समय देने को तैयार हो!
जितनी मूल्यवान चीज हो, आप उतना ज्यादा समय देने को तैयार होते हैं। मौसमी फूल हम लगाते हैं, तो वे महीनेभर में आ जाते हैं, लेकिन महीनेभर में समाप्त भी हो जाते हैं।
अगर आकाश को छूने वाले वृक्ष हमें लगाने हैं, तो प्रतीक्षा करनी पड़ती
है वर्षों तक। एक पीढ़ी लगाती है, दूसरी पीढ़ी उनके फल पाती है। अगले जन्म में आपको फल मिलेगा, इस जन्म में नहीं मिल सकता। बड़ा वृक्ष है!
परमात्मा का जिनकी नजर में मूल्य है, वे तो कभी भूलकर भी यह न कहेंगे
कि अभी मिल जाए। क्योंकि वे जानते हैं, यह बात ही बेहूदी है। यह बात ही मुंह से निकालनी अधार्मिक है। यह सोचना भी कि अभी मिल जाए अधार्मिक है। इतनी बड़ी घटना, इतना विराट विस्फोट, प्रतीक्षा से होगा। और जब इतनी बड़ी घटना है, तो जब भी घटेगी, मानना कि वह जल्दी घटी, क्योंकि देर का तो कोई कारण नहीं है। जब भी घटे, तभी भक्त कहेगा कि जल्दी घट गई; अभी मेरी पात्रता न थी और घट गई। इतनी बड़ी घटना, इतनी जल्दी घट गई! अपात्र कहता है, अभी घटे।
और अभी नहीं घटती, तो फिर छोड़ो।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, शाम की ट्रेन से हम जा रहे हैं।
कुछ ऐसा बता दें कि बस, जीवन बदल जाए।
पता नहीं जीवन का क्या मूल्य समझते हैं! कोई मूल्य भी है जीवन का या नहीं है! भागे हुए हैं! और ऐसा पूरा जीवन खो जाएगा, कुछ भी उनको मिलेगा नहीं।
बुद्ध के पास कोई आता, तो बुद्ध कहते थे, एक साल तो बिना पूछे मेरे पास बैठ जाओ। एक साल बाद तुम पूछना शुरू करना। जो जल्दी में होता, वह कहता, तो फिर मैं एक साल बाद ही आ जाऊं! बुद्ध कहते, तब तुझे दो साल बिठाऊंगा। क्योंकि एक साल तो यह जो तूने गंवाया, और एक तो बाकी रहा ही।
झेन फकीर रिंझाई के पास कोई आया। और उसने कहा कि मेरा पिता बूढ़ा है; और ज्यादा समय मेरे पास नहीं है। मैं अकेला ही बेटा हूं और बाप बूढ़ा है; उसकी सेवा करनी जरूरी है। लेकिन ध्यान मुझे सीखना है। रिंझाई ने कहा कि कोई तीस साल लगेंगे, क्योंकि तुम इतनी जल्दी में हो! वह युवक कुछ समझ नहीं पाया। उसने कहा, जल्दी में हूं तो जल्दी करवाइए, कि तीस साल! मेरे पिता चल ही बसे होंगे।
उस युवक ने कहा कि अगर मैं दुगुनी मेहनत करूं, तो क्या होगा? रिंझाई ने कहा, तब साठ साल लग जाएंगे। क्योंकि मैं तो यह मानता था कि तू पहले ही पूरी मेहनत करने को तैयार है। तू कह रहा है, दुगुनी करूंगा; मतलब तूने आधी पहले ही बचा रखी थी। तू आदमी भी बेईमान है। वह तीस तो मैंने सोचकर बताए थे कि तू अगर पूरी मेहनत करे। तू कहता है, अगर मैं दुगुनी मेहनत करूं। साठ लग जाएंगे।
उस युवक ने कहा कि अब मैं आगे नहीं पूछता। क्योंकि यही ठीक है, साठ ही ठीक है। पता नहीं, तुम एक सौ बीस कर दो!
और वह युवक रुक गया। तीन वर्ष तक वह रिंझाई के पास था। रिंझाई ने उससे फिर पूछा ही नहीं कि तुम कैसे आए? क्या सीखना है?
कई दफा उस युवक को भी ख्याल उठा कि क्या करना? क्या नहीं करना? साल निकले जा रहे हैं! बाप बूढ़ा हुआ जा रहा है। और अभी तो कुछ शुरू भी नहीं हुआ! पर उसने कहा कि पूछना खतरनाक है। यह आदमी तो बड़ा उपद्रवी है! अगर पूछा और कहीं यह कहने लगे कि सौ साल लगेंगे! इसलिए उसने कहा कि चुप ही रहो। देखें, क्या होता है।
तीन साल बाद उसने कहा, अब तेरा पहला पाठ शुरू होता है--रिंझाई ने कहा--
और तू योग्य है। अगर तू तीन साल में पूछता, तो मैंने तेरे एक सौ बीस साल कर दिए थे। फिर मुझसे यह काम पूरा होने वाला नहीं था। क्योंकि मैं भी बूढ़ा हो रहा हूं। आधा ही मैं करता, आधा मेरे शिष्य करते। लेकिन तूने तीन साल नहीं पूछा; अब मैं काम शुरू करता हूं।
पांचवें वर्ष रिंझाई का शिष्य समाधि को उपलब्ध हो गया। जब वह समाधि
को उपलब्ध हुआ, तो उसने रिंझाई को कहा, इतने जल्दी! मैं तो सोच भी नहीं सकता

था! रिंझाई ने कहा, चूंकि तू साठ के लिए राजी हो गया। वह तेरा राजीपन साठ साल के लिए, तेरी प्रतीक्षा की तैयारी थी।
साठ साल का मतलब होता है, पूरा जीवन गंवाने की तैयारी। वह युवक कम से
कम पच्चीस साल का था, जब आया था। साठ साल का मतलब है कि मरेगा अब; अब लौटने का कोई उपाय नहीं है।
साठ साल के लिए तेरी तैयारी... ।
अनंत प्रतीक्षा का अर्थ ही यह होता है कि हमारी तैयारी इतनी है कि कभी
भी न घटे, तो भी हम शिकायत न करेंगे। भक्त का अर्थ ही यह होता है, जो शिकायत न करे। और जिसकी शिकायत है, वह भक्त नहीं है।
पर आप हैरान होंगे, नास्तिक तो मिल जाएंगे आपको जिनकी कोई शिकायत नहीं है; आस्तिक खोजना मुश्किल है बिना शिकायत के। और आस्तिक का लक्षण यह है कि उसकी कोई शिकायत न हो।
तो दुनिया में दो तरह के नास्तिक हैं। एक तो नास्तिक हैं, जो घोषणा किए हैं कि ईश्वर नहीं है। इसलिए शिकायत करने का उपाय भी नहीं है; किससे शिकायत करें? इसलिए जो है, ठीक है। दूसरे नास्तिक वे हैं, जो माने हुए हैं कि ईश्वर है। लेकिन माने सिर्फ इसीलिए हैं, ताकि शिकायत करने को कोई हो। बस, उनका ईश्वर सिर्फ शिकायत के लिए है; कि वे कह सकें कि देखो यह नहीं हो रहा; यह नहीं हो रहा; यह करो; यह क्यों नहीं किया? इतनी देर क्यों हो रही है? बिना ईश्वर के किससे शिकायत करिएगा?
आपका ईश्वर सिर्फ आपकी शिकायतों का पुंजीभूत रूप है। और भक्त का शिकायत से कोई संबंध नहीं है।
यह जो मैं कहता हूं अनंत प्रतीक्षा, यह शिकायत-शून्य, शर्तरहित धैर्य है। इसे जरा सोचें। अगर ऐसी आपके पास चित्त की दशा हो, तो कोई कारण नहीं है कि अभी क्यों घटना न घट जाए।
अनंत धैर्य खुले आकाश की तरह हो जाता है। फिर हृदय के कहीं कोई द्वार, सीमाएं कुछ भी न रहीं। सब खुला है, कुछ बंद न रहा। अब और ज्यादा परमात्मा को उतरने के लिए चाहिए भी क्या? इतना ही चाहिए।
इसलिए इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, पहली बात। ये दोनों एक ही साधना के हिस्से हैं।
रह गई दूसरी बात, निश्चित ही ये दोनों अतियां हैं, एक्सट्रीम्स हैं। लेकिन एक ही रेखा की दो अतियां हैं। और इस जगत में कोई भी रेखा रेखा नहीं है सीधी। सभी रेखाएं वर्तुलाकार हैं। सभी रेखाएं बड़े वर्तुल का हिस्सा हैं।
यूक्लिड कहता था, जिसने ज्यामिति खोजी, कि सीधी रेखा होती है। लेकिन फिर आइंस्टीन और बाद के खोजियों ने सिद्ध किया कि सीधी रेखा होती नहीं, स्ट्रेट लाइन होती ही नहीं। क्योंकि जिस जमीन पर आप बैठे हैं, वह गोल है; आप उस पर कोई भी रेखा खींचें, अगर उसको बढ़ाए चले जाएं, तो वह पूरी जमीन को घेर लेगी, बड़े वर्तुल का हिस्सा हो जाएगी।
तो सभी रेखाएं किसी बहुत बड़े वर्तुल का हिस्सा हैं। इसलिए कोई रेखा सीधी नहीं है। सभी रेखाएं तिरछी हैं, घूमती हुई हैं; वर्तुल का अंग हैं। सीधी रेखा जैसी कोई चीज है ही नहीं जगत में।
इसलिए सभी चीजें गोल घूमती हैं। चांद, पृथ्वी, तारे, सूरज, मौसम, आदमी
का जीवन, सब वर्तुलाकार घूमता है। और जब दो अतियां एक रेखा की करीब आती हैं, तो वर्तुल पूरा होता है। किसी भी रेखा को, उसकी अतियों को पास ले आएं; जहां दोनों अतियां मिलती हैं, वहीं वर्तुल पूरा होता है।
अनंत धैर्य रेखा का एक कोना है। और क्षण में घट सकती है घटना, सडेन, यह रेखा का दूसरा कोना है। जहां ये दोनों कोने मिलते हैं, वहां वर्तुल पूरा होता है। और इन दोनों के बीच जरा-सा भी फासला नहीं है। ये अतियां जरूर हैं, लेकिन अतियां मिलती हुई अतियां हैं।
और यह भी ध्यान रहे कि जीवन में जो भी छलांग लगती है, वह हमेशा अति से लगती है, मध्य से नहीं लगती। इस कमरे के बाहर जाना हो, तो या तो इस तरफ की खिड़की खोजनी पड़े या उस तरफ की खिड़की खोजनी पड़े। लेकिन यहां कमरे के मध्य में खड़े होकर बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। मध्य से कोई द्वार जाता ही

नहीं। मध्य का मतलब ही यह हुआ कि द्वार से दूरी है। परिधि पर जाना पड़ेगा।
अति को पकड़ना पड़ेगा।
इसलिए दुनिया की सभी साधना-पद्धतियां अतियां हैं। अति का मतलब है, आखिरी छोर। वहां से छलांग लग सकती है। मध्य से कहां कूदिएगा? कमरे में ही उछलते रहेंगे। किनारे पर जाना पड़े।
एक अति है कि क्षण में घटना घट सकती है। सडेन एनलाइटेनमेंट को मानने वाला वर्ग है। विशेषकर जापान में झेन फकीर, तत्क्षण मानते हैं कि घटना घट सकती है, एक क्षण में घट सकती है। और इसी के लिए तैयार करते हैं साधक को कि वह एक क्षण के लिए तैयार हो। तैयारी में वर्षों लगते हैं। घटना एक ही क्षण में घटती है, लेकिन तैयारी में वर्षों लगते हैं; कभी-कभी जन्म भी लगते हैं। ऐसे ही जैसे हम पानी को गरम करते हैं, तो पानी भाप तो एक क्षण में बन जाता है, सौ डिग्री पर पहुंचा कि भाप बनना शुरू हुआ। लेकिन सौ डिग्री तक पहुंचने में घंटों लग जाते हैं। और इस पर निर्भर करता है कि कितना ताप नीचे है, कितनी आग नीचे है।
अगर आप राख रखे बैठे हों, तो कभी नहीं पहुंचेगा। अंगारे हों, लेकिन राख से ढंके हों, तो बड़ी देर लगेगी। ज्वलित अग्नि हो, भभकती हुई लपटें हों, तो जल्दी घटना घट जाएगी।
तो कितनी त्वरा है भीतर, कितनी अभीप्सा है, कितनी आग है घटना को घटाने की, उतने जल्दी घट जाएगी। लेकिन घटना एक ही क्षण में घटेगी।
पानी गरम होता रहेगा, गरम होता रहेगा, निन्यानबे डिग्री पर भी पानी पानी ही है। अभी भाप नहीं बना। एक सेकेंड में सौ डिग्री, पानी छलांग लगा लेगा। छलांग कीमती है। जब तक पानी था, पानी नीचे की तरफ बहता है। जैसे ही भाप बना, ऊपर की तरफ उठना शुरू हो जाता है। सारी दिशा बदल जाती है।
जब तक पानी था, तब तक दिखाई पड़ता था, पदार्थ था। जैसे ही छलांग लगती है, अदृश्य हो जाता है, वायवीय हो जाता है, आकाश में खो जाता है। जब तक दिखाई पड़ता था, जमीन उसको नीचे की तरफ खींच सकती थी। गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव था। जैसे ही भाप बना, गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाता है; आकाश की तरफ उठने लगता है। कोई दूसरे जगत के नियम काम करने शुरू कर देते हैं।
एक क्षण में घटना घटती है, लेकिन तो भी झेन फकीरों को जन्मों-जन्मों
तक और एक जीवन में भी वर्षों तक गरमी पैदा करने के उपाय करने पड़ते हैं। दूसरे फकीर हैं, सूफियों का एक समूह है इस्लाम में, वे अनंत प्रतीक्षा में मानते हैं। वे क्षण की बात ही नहीं करते हैं। वे कहते हैं, अनंत प्रतीक्षा करनी है। बैठे रहो, प्रतीक्षा करो। जागते रहो, प्रतीक्षा करो। कभी अनंत जन्म में घटेगी।
अब यह बड़े मजे की बात है। ये दोनों बिल्कुल विपरीत साधना-पद्धतियां हैं, अतियां हैं। लेकिन झेन फकीर भी पहुंच जाता है और सूफी फकीर भी पहुंच जाता है। और मजे की बात यह है कि झेन फकीर जब पहुंचता है, तो उसको भी वर्षों तक श्रम करके क्षणभर की घटना पर पहुंचना पड़ता है। और जब सूफी फकीर पहुंचता है, तो वह भी अनंत प्रतीक्षा करके क्षणभर की घटना पर पहुंचता है। घटना तो वही है।
तो दो बातें हो गईं। पानी को हम गरम करते हैं, सौ डिग्री पर पानी भाप
बन जाता है; एक। और पानी को गरम करना पड़ता है; दो। इनमें से जिस पर आप जोर देना चाहें।
अगर आपको गरमी पर जोर देना है, तो आप कह सकते हैं, लंबी यात्रा है। बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। पानी गरम होगा, गरम होगा, गरम होगा; कभी अंत में भाप बनेगा। प्रोसेस, प्रक्रिया पर जोर दें। और अगर अंत पर जोर देना हो, तो कहें कि पानी कभी भी भाप बने, कितनी ही देर लगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, भाप तो क्षणभर में बन जाती है। पानी छलांग लगा लेता है।
पर ये दोनों एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं। इसलिए मैं दोनों को जोड़कर इकट्ठा कहता हूं। अनंत हो प्रतीक्षा, तो क्षणभर में घट जाता है। क्षण में घटाना हो, तो अनंत की तैयारी चाहिए। और इनमें विरोध नहीं है।

चौथा प्रश्नः क्या गुरु के जाल में फंसना, तड़पना, मर जाना, रूपांतरण
की प्रक्रिया के अनिवार्य अंग हैं?

निश्चित ही। फंसना पड़े, तड़पना भी पड़े और मरना भी पड़े। लेकिन जिस अर्थ में आपने पूछा है, उस अर्थ में नहीं। पूछने वाले को तो ऐसा लगता है, बेचैनी है, भय है; फंसने से भय है, डर है।
डर किस बात का है? डर किसको है? वह जो अहंकार है हमारे भीतर, सदा डरता
है कि कहीं फंस न जाएं। और यह जो अहंकार है, कहीं भी नहीं फंसने देता। लेकिन तब हम पूरे जीवन से वंचित रह जाते हैं।
एक युवक ने मुझे आकर कहा कि प्रेम तो मुझे करना है, लेकिन फंसना नहीं है। कोई झंझट में नहीं पड़ना चाहता हूं।
प्रेम करना हो, तो फंसना ही पड़े। क्योंकि वह प्रेम घटेगा ही तब, जब आप डूबेंगे। आप ऐसे दूर अपने को सम्हालकर खड़े रहे संतरी की तरह, तो वह घटना ही घटने वाली नहीं है।
और बचेगा भी क्या! बचाने को है भी क्या आपके पास? यह जो बचने की तलाश
चल रही है, यह कौन है जो बचना चाहता है? यह जो इतना डरा हुआ प्राण है, इसको बचाकर भी क्या करिएगा? इसको स्वतंत्र रखकर भी क्या प्रयोजन है? और जो स्वतंत्रता इतनी भयभीत हो, वह स्वतंत्रता है भी नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात देर से घर लौटा। पत्नी ने शोरगुल शुरू कर दिया। और उसने कहा कि फिर देर से आए? और हजार बार कह दिया कि देर से आना बंद हो! कहां थे? तो नसरुद्दीन ने कहा कि समझदार पत्नियां इस तरह के प्रश्न नहीं पूछतीं।
पत्नी आगबबूला थी; उसने कहा, और समझदार पति... ?
वह आगे कुछ कहे, उसके पहले ही नसरुद्दीन बोला कि ठहर! समझदार पति सदा कुंआरे रहते हैं।
वह जो डरा हुआ है, वह कितना ही समझदार मालूम पड़ता हो, लेकिन जीवन के अनुभव से वंचित रह जाएगा।
प्रेम एक अनुभव है। और उसमें उतरने से ही पता चलता है। और उसका फंसना उपयोगी है। क्योंकि उस फंसने के भीतर भी अगर तुम बिना फंसे रह सको, तो तुम्हारे जीवन में अमृत बरस जाएगा। उस कारागृह में प्रवेश करके भी तुम्हारी मुक्ति नष्ट न हो, तुम्हारी भीतरी मुक्ति तुम कायम रख सको, वही कला है।
तो एक तो प्रेम है जीवन में। गुरु और शिष्य का संबंध भी प्रेम का आखिरी संबंध है। वह और भी बड़ा फंसाव है। क्योंकि पत्नी के साथ रहकर स्वतंत्र रहना आसान है, गुरु के साथ रहकर स्वतंत्र रहना और भी मुश्किल है, और भी जटिल है, क्योंकि उसका जाल और भी बड़ा है। वह हृदय तक ही नहीं जाता, उसका जाल आत्मा तक चला जाता है। पर वहां भी स्वतंत्र रहने की संभावना है। और मजा यही है कि वहां जितने पूरे मन से कोई अपने को छोड़ देगा, उतना ही स्वतंत्र रहेगा।
परतंत्रता पैदा इसलिए होती है कि तुम छोड़ नहीं पाते। अगर तुम छोड़ दो,
तो परतंत्र रहने का कोई अर्थ ही नहीं है। जेलखाना जेलखाना मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम जेलखाने में रहना नहीं चाहते। और अगर तुम जेलखाने में रहना ही चाहते हो, तब? तब जेलखाना समाप्त हो गया। फिर अगर जेल के लोग तुम्हें बाहर निकालने लगें, तो वह परतंत्रता होगी। जिस बात से हमारा प्रतिरोध है, विरोध है, रेसिस्टेंस है, वहीं फंसना मालूम होता है।
अगर एक युवक एक युवती को सच में ही प्रेम करता है, तो फंसना मालूम होता
ही नहीं। युवती अगर सच में प्रेम करती है, तो फंसना मालूम नहीं होता; तब प्रेम मुक्ति मालूम होता है। और अगर प्रेम न हो, डर हो, भय हो, बचाव की चेष्टा हो, तो फंसना मालूम होता है; तो बंधन और कारागृह मालूम होता है। मैं यह कह रहा हूं आपसे कि वहीं आपको बंधन मालूम होता है, जहां आप लड़ते हैं।
भूमिदान आंदोलन असफल हुआ, तो सारे मुल्क में भूमि हथियाओ आंदोलन चला।
तो मैंने एक घटना सुनी है कि उसकी नकल पर एक गांव में--निश्चित ही गांव गुजरात में रहा होगा--पत्नियां हथियाओ आंदोलन लोगों ने चला दिया। और उन्होंने कहा कि समाजवाद में जब कि सभी के पास एक-एक पत्नी नहीं है, तो कुछ लोगों के पास दो-दो हैं, यह नहीं हो सकता। यह बर्दाश्त के बाहर है।

तो जिन युवकों के पास पत्नियां नहीं थीं, उन्होंने एक जुलूस निकाला
और कहा कि पत्नियां हथियाओ। जिनके पास दो हैं, उनसे एक छीनो, और उनको दो जिनके पास एक भी नहीं है। और यह समाजवाद के लिए बिल्कुल जरूरी है।
मुल्ला नसरुद्दीन बाहर गया था; उसकी दो पत्नियां थीं। वह घर पहुंचा,
तो हाय-तोबा मची थी। जुलूस उसकी एक पत्नी को लेकर आगे बढ़ गया था। मुल्ला भागा; जाकर नेता के हाथ पकड़ लिए और कहा कि अन्याय मत करो। उस नेता ने कहा, अन्याय कौन कर रहा है? तुम अन्याय कर रहे हो जनता पर कि हम? जब कि गांव में सौ आदमी मौजूद हैं जिनके पास एक भी पत्नी नहीं, और तुम दो-दो पर कब्जा जमाए बैठे हो? तुम दो-दो का सुख ले रहे हो? और ज्यादा हमारे पास समय नहीं। अभी हमें और कोई पचास पत्नियां हथियानी हैं। उसने घड़ी देखी, उसने कहा, हटो रास्ते से।
नसरुद्दीन ने फिर भी हाथ पकड़ लिया और बिल्कुल कंपने लगा और कहा कि नहीं, ऐसा अन्याय मत करो। भीड़ को भी दया आ गई और नेता ने कहा, मर्द जैसे मर्द होकर भी इस तरह रिरिया रहे हो औरतों की तरह! ले जा अपनी पत्नी को! नसरुद्दीन एकदम जमीन पर गिर पड़ा और पैर पकड़ लिए और कहा कि आप समझे नहीं; दूसरी को भी लेते जाइए।
बंधन! जहां प्रेम समाप्त हुआ, वहां विवाह बंधन बन जाता है, परतंत्रता
बन जाता है। जहां श्रद्धा खो गई, वहां गुरु जेलखाना हो जाता है।
श्रद्धा हो, तो गुरु मुक्ति है। प्रेम हो, तो प्रेम का संबंध स्वतंत्रता है। और प्रेमी एक-दूसरे को और स्वतंत्र कर देते हैं, जितने अकेले होकर वे कभी भी नहीं हो सकते थे। क्योंकि दो स्वतंत्रताएं मिलती हैं।
और गुरु तो परम मुक्त है। उसके मोक्ष से जब आपका मिलना होता है या उसके जाल में जब आप फंसते हैं, तो अगर आपका विरोध न हो तो आप परम मुक्त हो जाएंगे। और अगर विरोध हो, तो ही आपको लगेगा कि जाल में फंसे हैं। जाल में फंसा हुआ होना जाल के कारण नहीं लगता; मुझे फंसना नहीं है, इसलिए लगता है। नदी में एक आदमी तैर रहा है, तो उसको लगता है, नदी मेरे खिलाफ बह रही है! क्योंकि वह नदी से उलटा जाने की कोशिश कर रहा है। उसको लगता है, नदी मेरी दुश्मन है। और एक आदमी नदी में बह रहा है; जहां नदी जा रही है, उसी में बह रहा है। उसको लगता है, नदी मेरी मित्र है, नदी मेरी नाव है। और नदी मुझे ले जा रही है; जरा भी श्रम नहीं करना पड़ रहा है।
अगर गुरु के साथ आप उलटी धारा में बह रहे हों, तो फंसना लगेगा। और अगर गुरु के साथ बह रहे हों, तो मुक्ति अनुभव होगी। आप पर निर्भर है, शिष्य पर निर्भर है कि गुरु परतंत्रता बन जाएगा कि स्वतंत्रता।
तड़पना भी पड़ेगा। क्योंकि यह खोज बड़ी है और यह खोज गहन है। और मिलने के पहले बहुत पीड़ा है। पानी मिले, उसके पहले गहन प्यास से गुजरना होगा। और जैसे ही आप किसी गुरु के पास पहुंचेंगे, आपकी तड़प बढ़ेगी, घटेगी नहीं। अगर घट जाए, तो समझना कि यह गुरु आपके काम का नहीं है। क्योंकि घटने का मतलब यह हुआ कि आग ठंडी हो रही है।
गुरु के पास पहले पहुंचकर तो प्यास बढ़ेगी, क्योंकि गुरु को देखकर आपको पहली दफा पता चलेगा कि पानी पीए हुए लोग किस आनंद में हैं! पहली दफा तुलना पैदा होगी, तकलीफ पैदा होगी। पहली दफा तृषा गहन होगी। पहली दफा लगेगा कि ऐसा मैं भी कब हो जाऊं? कैसे हो जाऊं? यह मुझे भी कब हो?
आनंद की पहली झलक आपके दुख को बहुत गहन कर जाएगी। ऐसे ही जैसे रास्ते
से आप गुजर रहे हों, अंधेरे रास्ते से, लेकिन अंधेरे में ही गुजर रहे हों, तो अंधेरे में भी दिखने लगता है। फिर एक कार गुजर जाए तेज प्रकाश को करती हुई, तो कार के गुजरने के बाद रास्ता और भी भयंकर अंधकार मालूम होता है। तुलना पैदा होगी।
गुरु के पास आकर पहली दफा तुलना पैदा होगी। पहली दफा आपको लगेगा, आप कहां हैं! किस नरक में हैं! किस पीड़ा में हैं!
तो तड़प तो पैदा होगी। और गुरु की कोशिश होगी कि और जोर से तड़पाए। क्योंकि जितने जोर से आप तड़पें, उतनी ही आग पैदा होगी, उतना ही उबलने का बिंदु करीब आएगा। और जितने आप तड़पें, उतनी ही खोज जारी होगी, सरोवर के निकट

पहुंचना आसान होगा। अगर आप पूरी तरह तड़प उठें, तो सरोवर उसी क्षण प्रकट हो जाता है।
इसलिए तड़पना भी होगा और मरना भी होगा। क्योंकि वह आखिरी है। गुरु का काम ही वही है। गुरु यानी मृत्यु। जो आपको मार न सके, वह गुरु नहीं; जो आपको मिटा न सके, वह गुरु नहीं। वह आपको काटेगा ही। और जब आप बिल्कुल समाप्त हो जाएंगे, तभी आपको छोड़ेगा कि बस, अब काम पूरा हुआ। बिना मिटे परमात्मा को पाने की कोई व्यवस्था नहीं है। बिना खोए उसकी खोज पूरी नहीं होती।
इसलिए पुराने सूत्रों में कहा है कि आचार्य, गुरु मृत्यु है। और वह जो कठोपनिषद में नचिकेता को भेजा है यम के पास, वह गुरु के पास भेजा है। यम गुरु का प्रतीक है। वहां जाकर आप मर जाएंगे।
इसलिए गुरु से लोग बचते हैं। पच्चीस तरह की युक्तियां खोजते हैं कि कैसे बच जाएं; रेशनलाइजेशन खोजते हैं कि कैसे बच जाएं। गुरु को सुन भी लेते हैं, तो कहते हैं, बात अच्छी है, लेकिन अभी अपना समय नहीं आया! करेंगे कभी जब समय आएगा! हजार तरकीब आदमी करता है अपने को बचाने की।
जैसे आप मृत्यु से बचते हैं, वैसे ही आप गुरु से बचते हैं। और जिस दिन
आप ठीक से समझ लेंगे... । गुरु के पास जाने का मतलब ही यह है कि मैं गलत हूं और गलत को जला डालना है। और मैं भ्रांत हूं और भ्रांत को मिटा देना है। और मैं जैसा अभी हूं, मरणधर्मा हूं; इस मरणधर्मा को मर जाने देना है, ताकि अमृत का उदय हो सके।
मृत्यु द्वार है अमृत का। और जो मिटने को राजी है, वह उसको उपलब्ध हो जाता है, जो कभी नहीं मिटता है। एक तरफ गुरु मारेगा और दूसरी तरफ जिलाएगा। वह मृत्यु भी है और पुनर्जन्म भी, नव-जीवन भी।
क्या गुरु के जाल में फंसना, तड़पना, मर जाना, रूपांतरण की प्रक्रिया
के अनिवार्य अंग हैं?
बिल्कुल अनिवार्य अंग हैं। और इसके पहले कि फंसो या तो भाग खड़े होना चाहिए; फिर लौटकर नहीं देखना चाहिए। गुरु खतरनाक है। जरा भी रुके, तो डर है कि फंस जाओगे। और फंस गए, फिर तड़पना पड़ेगा। तड़पे, कि फिर मरना पड़ेगा। वे एक ही मार्ग की सीढ़ियां हैं।
लेकिन जो व्यक्ति स्वयं का रूपांतरण चाहता है, वह चाहता क्या है? वह चाहता यही है कि मैं गलत हूं, जैसा हूं। जो मुझे होना चाहिए, वह मैं नहीं हूं। और जो मुझे नहीं होना चाहिए, वह मैं हूं। तो वह मिटने के लिए तैयार है, वह बिखरने के लिए तैयार है, वह शून्य होने को राजी है। और जो व्यक्ति शून्य होने को राजी है, उसी का गुरु से मिलन हो पाता है।

अब हम सूत्र को लें।
हे भारत, इस प्रकार तत्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ परमेश्वर को ही भजता है।
हे निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।
एक-एक शब्द समझें।
इस प्रकार से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ परमेश्वर को ही भजता है।
जिसको भी यह स्मरण आ गया कि परिधि पर शरीर है, मध्य में चेतना है और अंत में केंद्र पर अंतर्यामी पुरुषोत्तम है; जिसको भी यह स्मरण आ गया कि केंद्र परमात्मा है, फिर उसकी परिधि भी परमात्मा के ही गुणगान करने लगती है। फिर उसकी परिधि पर भी परमात्मा का ही स्वर गूंजने लगता है। फिर उसके बाहर भी वही प्रकट होने लगता है, जो भीतर है। फिर वह उठता भी है, तो परमात्मा में; बैठता भी है, तो परमात्मा में। फिर परमात्मा उसके लिए कुछ पृथक नहीं रह जाता, उसके अपने होने का अभिन्न अंग हो जाता है। फिर वह जो भी करता है, वह सब परमात्मा में ही घटित होता है। जैसे मछली सागर में होती है, ऐसा फिर वह परमात्मा में होता है। भजने का यही अर्थ है।

भजने का यह अर्थ नहीं कि आप बैठे हैं, कभी-कभी राम-राम, राम-राम कर लिया। भजने का यह अर्थ है कि आपके जीवन की कोई भी गतिविधि परमात्मा से शून्य न हो। आप जो भी करें, जो भी न करें, सब में परमात्मा का स्मरण सतत भीतर बना रहे। आपके जीवन के कृत्य माला के मनके हो जाएं और परमात्मा आपके भीतर का धागा हो जाए। हर मनके में दिखाई पड़े या न दिखाई पड़े, वह धागा भीतर समाया रहे। सभी मनके उसी धागे से बंध जाएं, भजन का यह अर्थ है।
पर हम तो हर चीज को विकृत कर लेते हैं। तो हम काम करते जाते हैं और सोचते हैं, भीतर राम-राम करते जाओ। लोग अभ्यास कर लेते हैं उसका। तो वे कार ड्राइव करते रहेंगे और भीतर राम-राम करते रहेंगे! वह अभ्यस्त हो जाता है। मन जो है, आटोमैटिक किया जा सकता है। तो मन स्वचालित यंत्र बन जाता है। आप अपना काम करते रहें, वहां राम-राम, राम-राम, राम-राम चलता रहे। उसका कोई मूल्य नहीं है। वह मन का एक कोना दोहराता रहता है।
भजन का अर्थ है, आपके जीवन में डूब जाए स्मृति परमात्मा की। कैसे यह हो?
किसी मित्र की आंख में झांकें, तब आपको मित्र तो दिखाई पड़े, वह परिधि रहे, लेकिन उसमें पुरुषोत्तम भी दिखाई पड़े, तो वह भजन हो जाएगा। फूल को देखें, फूल तो परिधि रहे और फूल में जो सौंदर्य प्रकट हुआ है, वह जो खिलावट, वह जो जीवन की अभिव्यक्ति हुई है, वह जो पुरुषोत्तम वहां मौजूद है, उसका स्मरण आ जाए। चाहे फूल देखें, चाहे आंख देखें, चाहे आकाश देखें, जो भी देखें वहां आपको पुरुषोत्तम की स्मृति बनी रहे।
ऐसा नहीं कि फूल देखें, तो भीतर राम-राम, राम-राम करने लगें। उसमें तो फूल भी चूक जाएगा। राम-राम करने की शाब्दिक बात नहीं है। फूल के अनुभव में पुरुषोत्तम का अनुभव मौजूद रहे। भोजन करें, पुरुषोत्तम का अनुभव मौजूद रहे। स्नान करें, पुरुषोत्तम का अनुभव मौजूद रहे।
लोग नदी में स्नान करने जाते हैं। मेरे गांव में नियम से लोग सुबह नदी में स्नान करने जाते हैं। सर्दी के दिनों में भी जाते हैं। सर्दी के दिनों में वे ज्यादा भजन करते हैं। और राम-राम, जय शिव शंकर... !
पानी में ठंड लगती है, भुलाने के लिए वे जोर से भगवान का नाम लेते हैं। इधर मन भगवान के नाम में लग जाता है, एक डुबकी लगाई और बाहर निकल आए। फिर वे भगवान का नाम नहीं लेते। जैसे ही बाहर हुए, वे भूले। तो वे जब भगवान का नाम ले रहे हैं, ऐसा लगेगा सुबह नदी के किनारे कि बड़े भक्त आए हुए हैं। वह सिर्फ ठंड से बचने का उपाय है।
वह वैसे ही जैसे आप अकेले गली में जा रहे हों, तो जोर से सीटी बजाने लगें; उससे ऐसा लगता है कि अकेले नहीं हैं। सीटी सुनाई पड़ती है, अपनी ही सीटी! जो नहीं हैं धार्मिक, वे फिल्मी गाना गाकर भी स्नान कर लेते हैं। उसमें भी फर्क नहीं पड़ता।
भजन का अर्थ कोई शब्दों से राम की स्मृति नहीं है। क्योंकि वह धोखा भी
हो सकती है; दुख से बचने का उपाय हो सकती है; ठंड से बचने का उपाय हो सकती है; अकेलेपन से बचने का उपाय हो सकती है। वह एक तरह की व्यस्तता हो सकती है।
नहीं, भगवान को अनुभव में जानना है, अनुभव से पलायन करके नहीं। उससे बचना नहीं, उससे भागना नहीं। जैसा भी जीवन है, जहां भी जीवन ले जाए, वहां मेरी आंख परिधि पर ही न रहे, केंद्र पर सदा पहुंचती रहे। जो भी मैं देखूं, उसमें मुझे केंद्र की प्रतीति बनी रहे, वह धारा भीतर बहती रहे कि पुरुषोत्तम मौजूद है। ऐसी अगर प्रतीति हो जाए, तो आपका पूरा जीवन भजन हो जाएगा।
वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ परमेश्वर को भजता है।
तभी निरंतर भजन हो सकता है। अगर राम-राम जपेंगे, तो निरंतर तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि दो राम के बीच में भी जगह छूट जाएगी। एक दफा कहा राम, दूसरी दफा कहा राम, बीच में खाली जगह छूट गई; तो निरंतर तो हो ही नहीं पाया। फिर कब तक कहिए! जब तक होश रहेगा कहिए, रात नींद लग जाएगी, वह चूक जाएगा। कोई डंडा सिर पर मार देगा, क्रोध आ जाएगा; वह निरंतर का चूक जाएगा, निरंतर नहीं रह पाएगा। कितनी ही तेजी से कोई राम-राम जपे, तो भी दो राम के बीच में जगह छूटती रहेगी; उतनी खाली जगह में परमात्मा चूक गया।

निरंतर तो तभी हो सकता है कि जो भी हो रहा हो, उसी में परमात्मा हो। जो डंडा मार रहा है सिर पर, अगर उसमें भी पुरुषोत्तम दिखे, तो भजन निरंतर हो सकता है। और जो राम-राम के बीच में खाली जगह छूट जाती है, उस खाली जगह में भी पुरुषोत्तम दिखे, तभी पुरुषोत्तम निरंतर हो सकता है।
और जब तक भजन निरंतर न हो जाए, सतत न हो जाए, तब तक ऊपर-ऊपर है; तब तक चेष्टित है; तब तक वह हमारी सहज आत्मा नहीं बनी है।
हे निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्यमय-रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।
कृष्ण निरंतर अर्जुन को निष्पाप कहते हैं। कहे चले जाते हैं, निष्पाप! क्योंकि यह हिंदू धारणा है और बड़ी मूल्यवान है कि निष्पापता हमारा स्वभाव है। उससे वंचित होने का उपाय नहीं है। पाप करके भी आपके निष्पाप होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। यह हिंदू विचार की बड़ी गहन धारणा है।
पश्चिम, विशेषकर ईसाइयत इसको समझने में बिल्कुल असमर्थ होती है। क्योंकि जब पाप किया, तो निष्पाप कैसे रहे? पाप किया, तो पापी हो गए।
यहीं हिंदू चिंतन बड़ा कीमती है। हिंदू चिंतन कहता है, क्या तुम करते हो, यह ऊपर ही ऊपर रह जाता है। जो तुम हो, उसे तुम्हारा कोई भी करना नष्ट नहीं कर पाता। तुम्हारी निर्दोषता तुम्हारा स्वभाव है। तो जिस दिन भी तुम यह समझ लोगे कि कृत्य से मैं दूर हूं, उसी दिन तुम पुनः अपनी निष्पाप स्थिति को उपलब्ध हो जाओगे। उसे तुमने कभी खोया नहीं है, चाहे तुम भूल गए हो।
तो ज्यादा से ज्यादा संसार एक विस्मरण है। ज्यादा से ज्यादा पाप अपनी निष्पाप दशा का विस्मरण है। हमने उसे खोया नहीं है; हम उसे खो भी नहीं सकते। हमारी निर्दोषता, हमारी जो इनोसेंस है, वह हमारी सहज अवस्था है, वह सांयोगिक नहीं है। उसे नष्ट करने का उपाय नहीं है।
जैसे आग गरम है, ऐसे हम निष्पाप हैं। चेतना का निष्पाप होना धर्म है। अर्जुन को इसीलिए कृष्ण निष्पाप कहते हैं। हे निष्पाप अर्जुन!
अर्जुन को स्मरण नहीं है इस निष्पाप स्थिति का, इसलिए वह भयभीत है। वह डरा हुआ है कि पाप हो जाएगा। युद्ध मैं लडूंगा, काटूंगा, मारूंगा--पाप हो जाएगा। फिर इस पाप के पीछे भटकूंगा अनंत जन्मों तक। और कृष्ण कह रहे हैं, तू निष्पाप है।
जैसे ही कोई व्यक्ति पहली पर्त से पीछे हटेगा, वैसे ही निष्पापता की धारा शुरू हो जाती है। और तीसरी पर्त पर सब निष्पाप है।
इसे मैं ऐसा समझ पाता हूं। पहली पर्त पर सभी पाप है। शरीर के पर्त पर सभी पाप है। वह शरीर का स्वभाव है। पुरुषोत्तम के पर्त पर सभी निष्पाप है। वह पुरुषोत्तम का स्वभाव है, केंद्र का स्वभाव है। और दोनों के बीच में हमारा जो मन है, वहां सब मिश्रित है; पाप, निष्पाप, सब वहां मिश्रित है। इसलिए मन सदा डांवाडोल है। वह सोचता है, यह करूं न करूं? पाप होगा कि पुण्य होगा? अच्छा होगा कि बुरा होगा?
अर्जुन वहीं खड़ा है, दूसरे बिंदु पर। कृष्ण तीसरे बिंदु से बात कर रहे हैं। अर्जुन दूसरे बिंदु पर खड़ा है। भीम और दूसरे, पहले बिंदु पर खड़े हैं। उनको सवाल भी नहीं है।
उस महाभारत के युद्ध में तीन तरह के लोग मौजूद हैं। पहली पर्त पर सभी लोग खड़े हैं। वह पूरे युद्ध में जो सैनिक जुटे हैं, योद्धा इकट्ठे हुए हैं, वे पहली पर्त में हैं। उनको सवाल ही नहीं है कि क्या गलत और क्या सही! इतना भी उनको विचार नहीं है कि जो हम कर रहे हैं, वह ठीक है या गलत है! वह शरीर के तल पर कोई विचार होता भी नहीं। शरीर मूर्च्छित है, वहां सभी पाप है। अर्जुन बीच में अटका है। उसके मन में संदेह उठा है। उसके मन में चिंतना जग गई है; विमर्ष पैदा हुआ है। वह सोच रहा है। सोचने से दुविधा में पड़ गया है। वे जो पहली पर्त में खड़े लोग हैं, उनकी कोई दुविधा नहीं है, स्मरण रखें। वे निःसंदिग्ध लड़ने को खड़े हैं। उनके मन में कोई संदेह, कोई सवाल नहीं है। लड़ने आए हैं, लड़ना उनका धर्म है, लड़ना नियति है; उसमें कोई विचार नहीं है।

अर्जुन दुविधा में पड़ा है। उसकी बुद्धि अड़चन में है। बुद्धि सदा अड़चन में होगी, क्योंकि वह मध्य में खड़ी है। वह पाप के जगत की तरफ भी जा सकती है और निष्पाप के जगत की ओर भी जा सकती है। वह दोनों की तरफ देख रहा है। और पीछे कृष्ण हैं, वे पुरुषोत्तम हैं, वहां सभी निष्पाप है।
एक बात मजे की है कि जो पाप के तल पर खड़े हैं, उन्हें भी कोई संदेह नहीं। जो निष्पाप के तल पर खड़ा है, उसे भी कोई संदेह नहीं। क्योंकि वहां सभी निष्पाप है। कुछ पाप हो ही नहीं सकता। जो पाप के तल पर खड़े हैं, उसे निष्पाप का कोई पता ही नहीं है, इसलिए तुलना का कोई उपाय नहीं है। अर्जुन मध्य में खड़ा है।
अर्जुन शब्द का अर्थ भी बड़ा कीमती है। अर्जुन शब्द बनता है ऋजु से। ऋजु का अर्थ होता है, सीधा। अऋजु का अर्थ होता है, तिरछा, डांवाडोल, कंपता हुआ। अर्जुन का अर्थ है, कंपता हुआ, लहरों की तरह डांवाडोल, इरछा-तिरछा। कुछ भी सीधा नहीं है। और दोनों तरफ उसके कंपन हैं। वह तय नहीं कर पा रहा है।
कृष्ण निष्पाप पुरुषोत्तम हैं। वहां कोई कंपन नहीं है। इसलिए अर्जुन कृष्ण से पूछ सकता है और इसलिए कृष्ण अर्जुन को उत्तर दे सकते हैं। कृष्ण की पूरी चेष्टा यह है कि अर्जुन पीछे सरक आए, निष्पाप की जगह खड़ा हो जाए; वहां से युद्ध करे। यही गीता का पूरा का पूरा सार है। कैसे अर्जुन सरक आए निष्पाप की दशा में और वहां से युद्ध करे!
दो हालतों में युद्ध हो सकता है। एक तो अर्जुन सरक जाए शरीर के तल पर, जहां भीम और दुर्योधन खड़े हैं, वहां; वहां युद्ध हो सकता है। और या वह कृष्ण के तल पर सरक आए, तो युद्ध हो सकता है।
पहले तल पर सरक जाए, तो युद्ध साधारण होगा। जैसा रोज होता रहता है। तीसरे तल पर सरक जाए, तो युद्ध असाधारण होगा। असाधारण होगा, जैसा कभी-कभी होता है, सदियों में कभी कोई एक आदमी तीसरे तल पर खड़े होकर युद्ध में उतरता है। और अगर वह बीच में खड़ा रहे, तो वह कुछ भी न कर पाएगा; युद्ध होगा ही नहीं। वह सिर्फ दुविधा में नष्ट हो जाएगा। वह संदेह में डूबेगा और समाप्त हो जाएगा। अधिक लोग संदेह में ही डूबते-उतराते रहते हैं।
हे निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।
सुनकर नहीं; क्योंकि सुन तो अर्जुन ने लिया। अगर सुनकर ही होता होता,
तो अर्जुन कहता कि बात खतम हो गई, कृतार्थ हो गया। सुन आपने भी लिया... । तत्व से जानकर! ऐसा जो कृष्ण ने कहा है; जब अर्जुन ऐसा स्वयं जान ले; जब
यह उसकी अनुभूति बन जाए; जब उसकी प्रतीति हो जाए; जब वह कह सके, हां, पुरुषोत्तम मैं हूं; तो कृतार्थ हो जाता है। तो फिर जीवन में अर्थ आ जाता है। फिर प्रत्येक क्रिया अर्थवान हो जाती है। फिर व्यक्ति जो भी करता है, सभी में फल और फूल लग जाते हैं। फिर व्यक्ति जो भी, जिस भांति भी जीता है, सभी तरह के जीवन से सुगंध आनी शुरू हो जाती है। उस व्यक्ति में पुरुषोत्तम के फल लगने शुरू हो जाते हैं, पुरुषोत्तम के फूल आने शुरू हो जाते हैं।
और कृष्ण कहते हैं, इस रहस्यमय गोपनीय शास्त्र को मैंने तुझसे कहा।
यह रहस्यमय तो बहुत है, और गोपनीय भी है। रहस्यमय इसलिए है कि जब तक आपने नहीं जाना, इससे बड़ी कोई पहेली नहीं हो सकती कि पाप करते हुए कैसे निष्पाप! संसार में खड़े हुए कैसे पुरुषोत्तम! दुख में पड़े हुए कैसे अमृत का धाम! इससे ज्यादा पहेली और क्या होगी? स्पष्ट उलझन है। इसलिए रहस्यमय। और गोपनीय इसलिए कि इस बात को, कि तुम पुरुषोत्तम हो, कि तुम निष्पाप हो, अत्यंत गोपनीय ढंग से ही कहा जाता रहा है। क्योंकि पापी भी इसको सुन सकता है। और पापी यह मान ले सकता है कि जब निष्पाप हैं ही, तो फिर पाप करने में हर्ज क्या है? और जब पाप करने से निष्पाप होने में कोई अंतर ही नहीं पड़ता, तो किए चले जाओ।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, गोपनीय भी, गुप्त रखने योग्य भी।
हम सब इसी तरह के लोग हैं। हम अपने मतलब का अर्थ निकाल ले सकते हैं। हम सोच सकते हैं, जब निष्पाप हैं, तो बात खत्म हो गई। अब हम चोरी करें, बेईमानी

करें, डाका डालें, हत्या करें, कोई हर्ज नहीं। क्योंकि भीतर का निष्पाप तो निष्पाप ही बना रहता है; पुरुषोत्तम को तो कोई अंतर पड़ता नहीं है!
इसलिए बात गोपनीय है। उन्हीं से कहने योग्य है, जो सोचने को, बदलने को तैयार हुए हों। उन्हीं को समझाने योग्य है, जो उसे ठीक से समझेंगे; जो उसे सम्यकरूपेण समझेंगे; जो उसका विपरीत अर्थ निकालकर अपने को नष्ट न कर लेंगे। क्योंकि सभी कुंजियां ज्ञान की खतरनाक हैं। उनसे आप नष्ट भी हो सकते हैं। जरा-सा गलत उपयोग, और जो अग्नि आपके जीवन को बदलती, वही अग्नि आपको भस्मीभूत भी कर दे सकती है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह गोपनीय है शास्त्र, रहस्यमय है। क्योंकि जब
तक तू अनुभव न कर ले, तब तक यह पहेली बना रहेगा। और इसको तत्व से जानकर ही मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।
सुनकर नहीं, समझकर नहीं; अनुभव करके।
आपने भी सुना। उसमें से थोड़ा कुछ सोचना, पकड़ना, थोड़ा-सा, एक रंचमात्र।
और उस रंचमात्र के आस-पास जीवन को ढालने की कोशिश करना। एक छोटा-सा बिंदु भी इसमें से पकड़कर अगर आपने जीवन को बसाने की कोशिश की, तो वह छोटा-सा बिंदु आपके पूरे जीवन को बदल देगा।
छोटी-सी चिंगारी पूरे पर्वत को जला डालती है। चिंगारी असली हो, चिंगारी जीवंत हो। चिंगारी शब्द नहीं जंगल को जला देगा, चिंगारी जलाएगी। बहुत-सी चिंगारियां कृष्ण ने अर्जुन को दी हैं। अगर मनपूर्वक सहानुभूति से समझा हो, तो उसमें से कोई चिंगारी आपके मन में भी बैठ सकती है, आग बन सकती है।
लेकिन सिर्फ मुझे सुन लेने से यह नहीं होगा। करने का ख्याल मन में जगाएं।
जल्दी परिणाम न आएं, घबड़ाएं मत। आपने शुरू किया, इतना ही काफी है।
परिणाम आएंगे; परिणाम सदा ही आते हैं। परमात्मा की तरफ उठाया गया कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
पहला प्रवचन

दैवी संपदा का अर्जन

श्रीमद्भगवद्गीता
अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।। 1।।
उसके उपरांत श्रीकृष्ण भगवान फिर बोले कि हे अर्जुन, दैवी संपदा जिन पुरुषों को प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक-पृथक कहता हूं।
दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैंः
अभय, अंतःकरण की अच्छी प्रकार से शुद्धि, ज्ञान-योग में निरंतर दृढ़ स्थिति और दान तथा इंद्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय तथा तप एवं शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।

मनुष्य एक दुविधा है, एक द्वैत। मनुष्य के पास इकहरा व्यक्तित्व नहीं है; जो भी है, बंटा हुआ और द्वंद्व में है। जैसे प्रकाश और अंधेरा साथ-साथ मनुष्य में जुड़े हों। पशु और परमात्मा मनुष्य में साथ-साथ मौजूद हैं। मनुष्य जैसे एक सीढ़ी है, एक छोर नरक में और दूसरा छोर स्वर्ग में है; और यात्रा दोनों ओर हो सकती है। और प्रत्येक के हाथ में है कि यात्रा कहां होगी, कैसे होगी, क्या अंतिम परिणाम होगा।
यात्रा के रुख को किसी भी क्षण बदला भी जा सकता है, क्योंकि सिर्फ रुख बदलने की बात है, दिशा बदलने की बात है। नरक जाने में जो शक्ति लगती है, वही शक्ति स्वर्ग जाने के लिए कारण बन जाती है। बुरे होने में जितना श्रम उठाना पड़ता है, उतने ही श्रम से भलाई भी फलित हो जाती है। शैतान होना जितना आसान या कठिन, उतना ही संत होना भी आसान या कठिन है।
और एक बात ठीक से समझ लें, एक ही ऊर्जा दोनों दिशाओं में यात्रा करती है। ऐसा मत सोचें कि बुरा आदमी तपश्चर्या नहीं करता। बुरे आदमी की भी तपश्चर्या है, उसकी भी बड़ी साधना है; उसे भी बड़ा श्रम उठाना पड़ता है। शायद भले आदमी की साधना से उसकी साधना ज्यादा दुस्तर है, क्योंकि मार्ग में दोनों को कष्ट मिलते हैं। भले आदमी को अंत में आनंद भी मिलता है, जो बुरे आदमी को अंत में नहीं मिलता। मार्ग दोनों बराबर चलते हैं; भला कहीं पहुंचता है, बुरा कहीं पहुंच भी नहीं पाता।
एक अर्थ में बुरे आदमी की साधना और भी कठिन है। जितनी बड़ी बुराई हो, उतना ही ज्यादा दुख है।
ऊर्जा एक, यात्रा की लंबाई एक, समय और जीवन का व्यय एक जैसा; फिर अंतर क्या है? अंतर केवल दिशा का है। इस जगह तक आने के लिए भी आप उसी रास्ते को चुनकर आए हैं, लौटते समय भी उसी रास्ते से लौटेंगे। उतना ही फासला होगा, सिर्फ आपकी दिशा बदली होगी। यहां आते समय मुंह मेरी तरफ था, जाते समय पीठ मेरी तरफ होगी। बस, इतना ही फर्क होगा। यात्रा वही की वही है।
जिसे हम शुभ कहते हैं, वह परमात्मा की तरफ मुंह करके चलने वाली यात्रा है। जिसे हम अशुभ कहते हैं, वह परमात्मा की तरफ पीठ करके चलने वाली यात्रा है। वे ही पैर चलते हैं, वे ही प्राण चलते हैं; जरा भी यात्रा में भेद नहीं है।
और यात्रा के ये जो दो पथ हैं; ये अगर आपके बाहर होते, तो बहुत आसानी हो जाती। ये दोनों पथ आपके भीतर हैं। चलने वाले भी आप हैं; जिस रास्ते से चलेंगे, वह भी आप हैं; और जिस मंजिल पर पहुंचेंगे, वह भी आप हैं।
आपके भीतर मूर्ति को बनाने वाला, मूर्ति बनने वाला पत्थर, मूर्ति को निखारने वाली छेनी, सभी कुछ आप हैं। इसलिए दायित्व भी बहुत गहन है। और दोष

किसी और को दिया नहीं जा सकता। जो भी फल होगा, सिवाय आपके अकेले के कोई और उसके लिए जिम्मेवार नहीं है।
इसके पहले कि हम कृष्ण के सूत्र में प्रवेश करें, दो-तीन बातें ख्याल में ले लें।
पहली बात, जिन नरकों की चर्चा है शास्त्रों में, जिन स्वर्गों का उल्लेख है, वे दो भौगोलिक स्थितियां नहीं हैं, मानसिक दशाएं हैं। नरक भी प्रतीक है, स्वर्ग भी प्रतीक है।
शास्त्रों में भगवान और शैतान की जो चर्चा है, वे केवल आपके ही दो छोर हैं। न तो शैतान कहीं खोजने से मिलेगा और न भगवान कहीं खोजने से मिलेगा। भगवान आपसे अलग होता, तो खोजने से मिल सकता था। शैतान भी अलग होता, तो खोजने से मिल जाता। वे दोनों ही आपकी संभावनाएं हैं। चाहें तो शैतान हो सकते हैं, कोई भी रुकावट नहीं है; और चाहें तो भगवान हो सकते हैं, कोई भी रुकावट नहीं है। और जिस दिन आप शैतान हो जाएंगे, तो कोई शैतान आपको नहीं मिलेगा; आप ही अपने को मिलेंगे। जिस दिन आप भगवान हो जाएंगे, तो भी कोई साक्षात्कार नहीं होगा; कोई परमात्मा की प्रतिमा नहीं होगी; आप ही परमात्मा हो गए होंगे।
शैतान और भगवान आपकी संभावनाएं हैं। और जो बुरे से बुरा आदमी है, उसके भीतर परमात्मा की संभावना उतनी ही सतेज है, जितनी भले से भले आदमी के भीतर शैतान होने की संभावना है। परम साधु एक क्षण में परम असाधु हो सकता है।
विपरीत भी सही है, परम असाधु के लिए क्षणभर में क्रांति घटित हो सकती है।
क्योंकि दोनों बातें दूर नहीं हैं; हमारे भीतर मौजूद हैं।
जैसे हमारे दो हाथ हैं और जैसे हमारी दो आंखें हैं, ऐसे ही हमारे दो यात्रा-पथ हैं। और उन दोनों के बीच हम हैं, हमारा फैलाव है।
दूसरी बात, शास्त्र को समझते समय ध्यान रखना जरूरी है कि शास्त्र कोई विज्ञान नहीं है; शास्त्र तो काव्य है। वहां गणित नहीं है; वहां प्रतीक हैं, उपमाएं हैं। और अगर आप गणित की तरह शास्त्र को पकड़ लेंगे, तो भ्रांति होगी, भटकेंगे। काव्य की तरह समझने की कोशिश करें।
इसलिए इस ग्रंथ को श्रीमद्भगवद्गीता कहा है। यह एक गीत है भगवान का;
यह एक काव्य है। टीकाकारों ने उसे विज्ञान समझकर टीकाएं की हैं।
कविता और विज्ञान में कुछ बुनियादी फर्क है। विज्ञान में तथ्यों की चर्चा होती है; शब्द बहुत महत्वपूर्ण नहीं होते; शब्द के पीछे तथ्य महत्वपूर्ण होता है। काव्य में तथ्यों की चर्चा नहीं होती; काव्य में अनुभूतियों की चर्चा होती है। अनुभूतियां हाथ में पकड़ी नहीं जा सकतीं, तराजू पर तौली नहीं जा सकतीं, कसौटी पर कसी नहीं जा सकतीं।
विज्ञान के तथ्य तो प्रयोगशाला में पकड़े जा सकते हैं। कोई कहे, आग जलाती है, तो हाथ डालकर देखा जा सकता है। लेकिन प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचा देती है; क्या करें? इस तथ्य को कैसे पकड़ें? प्रार्थना को हाथ में पकड़ने का उपाय नहीं, जांचने का उपाय नहीं, कोई कसौटी नहीं।
लेकिन प्रार्थना है। प्रार्थना काव्य का सत्य है, अनुभूति का सत्य है। अनुभूति के सत्य के संबंध में कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
एक, जब तक आपको अनुभव न हो, तब तक बात हवा में रहेगी; तब तक कोई लाख सिर पटके और समझाए, आपकी समझ में आएगी नहीं। स्वाद मिले, तो ही कुछ बने; और स्वाद अकेली बुद्धि की बात नहीं है। स्वाद के लिए तो हृदय से, वरन अपनी समग्रता से ही डूबना जरूरी है। जब तक कोई ऐसा न घुल जाए कि अनुभूति में और स्वयं में रत्तीभर का फासला न हो। जब तक आप प्रार्थना न हो जाएं, तब तक प्रार्थना समझ में न आएगी।
प्रार्थना कोई कृत्य नहीं है कि आपने कर लिया और मुक्त हुए। प्रार्थना तो एक जीवन की शैली है। एक बार जो प्रार्थना में गया, वह गया; फिर लौटने का कोई मार्ग नहीं है। और गहरे तो जाना हो सकता है, लौटने की कोई सुविधा नहीं है।
और जिस दिन प्रार्थना पूरी होगी, जिस दिन भक्ति परिपूर्ण होगी, उस दिन
आप भक्त नहीं होंगे, आप भक्ति होंगे। उस दिन आप प्रार्थी नहीं होंगे, आप प्रार्थना ही होंगे। उस दिन आप ध्यानी नहीं होंगे, आप ध्यान हो गए होंगे। उस दिन आपको योगी कहने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि योग कोई क्रिया नहीं

है; आप योग हो गए होंगे। योग एक अनुभव है। और अनुभव ऐसा, जहां अनुभोक्ता खो जाता है और एक हो जाता है।
गीता काव्य है। इसलिए एक-एक शब्द को, जैसे काव्य को हम समझते हैं वैसे समझना होगा। कठोरता से नहीं, काट-पीट से नहीं, बड़ी श्रद्धा और बड़ी सहानुभूति से। एक दुश्मन की तरह नहीं, एक प्रेमी की तरह। तो ही रहस्य खुलेगा और तो ही आप उस रहस्य के साथ आत्मसात हो पाएंगे।
जो भी कहा है, वे केवल प्रतीक हैं। उन प्रतीकों के पीछे बड़े लंबे अनुभव का रहस्य है। प्रतीक को आप याद कर ले सकते हैं, गीता कंठस्थ हो सकती है। पर जो कंठ में है, उसका कोई भी मूल्य नहीं। क्योंकि कंठ शरीर का ही हिस्सा है। जब तक आत्मस्थ न हो जाए। जब तक ऐसा न हो जाए कि आप गीता के अध्येता न रह जाएं, गीता कृष्ण का वचन न रहे, बल्कि आपका वचन हो जाए। जब तक आपको ऐसा न लगने लगे कि कृष्ण मैं हो गया हूं, और जो बोला जा रहा है, वह मेरी अंतर-अनुभूति की ध्वनि है; वह मैं ही हूं, वह मेरा ही फैलाव है। तब तक गीता पराई रहेगी, तब तक दूरी रहेगी, द्वैत बना रहेगा। और जो भी समझ होगी गीता की, वह बौद्धिक होगी। उससे आप पंडित तो हो सकते हैं, लेकिन प्रज्ञावान नहीं। अब इस सूत्र को समझने की कोशिश करें।
उसके उपरांत श्रीकृष्ण फिर बोले कि हे अर्जुन, दैवी संपदा जिन पुरुषों को प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक-पृथक कहता हूं।
दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैंः अभय, अंतःकरण की अच्छे प्रकार से शुद्धि, ज्ञान-योग में निरंतर दृढ़ स्थिति और दान तथा इंद्रियों का दमन; यज्ञ, स्वाध्याय तथा तप एवं शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।
कृष्ण दो संपदाओं की बात करते हैं; दो तरह के धन मनुष्य के पास हैं। धन का, संपदा का अर्थ होता है, शक्ति। धन का अर्थ होता है, जिसे हम उपयोग में ला सकें, जिससे हम कुछ खरीद सकें, जिससे हम कुछ पा सकें। धन का अर्थ है, विनिमय का माध्यम, मीडियम आफ एक्सचेंज।
आपके खीसे में एक नोट पड़ा है। नोट एक प्रतीक है। नोट को न तो आप खा सकते हैं, न पी सकते हैं। लेकिन नोट से विनिमय हो सकता है। नोट से खाने की चीज खरीदी जा सकती है, पीने की चीज खरीदी जा सकती है। नोट भोजन बन सकता है; नोट जहर बन सकता है। नोट से कुछ खरीदा जा सकता है। नोट एक शक्ति है विनिमय की।
कृष्ण कहते हैं, मनुष्य के पास दो तरह की संपदाएं हैं, विनिमय के दो माध्यम हैं। एक से आदमी खरीद सकता है और शैतान हो सकता है। और एक से आदमी खरीद सकता है और परमात्मा हो सकता है।
और जब तक उन दोनों संपदाओं को हम ठीक से न समझ लें, तब तक बड़ी भ्रांति रहेगी। क्योंकि बहुत बार ऐसा होता है, जिस संपदा से केवल शैतान खरीदा जा सकता है, उससे हम परमात्मा को खरीदने निकल पड़ते हैं। तब हम धोखा खाएंगे। तब जो भी हम खरीदकर लाएंगे, वह शैतान ही होगा।
जैसे, जिस धन से हम संसार में सब कुछ खरीदते-बेचते हैं, उसी धन से हम धर्म को भी खरीदने चल पड़ते हैं। तो कोई सोचता है, एक बड़ा मंदिर बनाए, धर्मशाला बनाए, दान कर दे, तो धर्म उपलब्ध हो जाएगा।
लेकिन संसार जिससे खरीदा जाता है, उससे अध्यात्म के खरीदने का कोई उपाय नहीं। उनके मार्ग ही अलग हैं, बाजार अलग हैं। जो धन संसार में चलता है, वह धन अध्यात्म में नहीं चलता; उस जगत से उसका कोई संबंध नहीं है। कृष्ण कहते हैं, दो संपदाएं हैं। एक को वे कहते हैं, आसुरी संपदा; और
एक को वे कहते हैं, दैवी संपदा। दैवी संपदा से अर्थ है, जिससे दिव्यता खरीदी जा सके।
तो ठीक से पहचान लेना जरूरी है कि मैं जिस संपदा का उपयोग कर रहा हूं, उससे दिव्यता खरीदी भी जा सकती है? नहीं तो मैं श्रम भी करूंगा, भटकूंगा भी, समय भी व्यय होगा और कहीं पहुंचूंगा भी नहीं।
इन दोनों का विभाजन बहुत जरूरी है। बहुत बार आप आसुरी संपदा से दिव्यता को खरीदने निकलते हैं। और न केवल आपको भ्रांति हो सकती है, आपको देखने वालों तक को भ्रांति हो सकती है।

इधर मेरा अनुभव है कि अगर कोई क्रोधी व्यक्ति है, तो उसके क्रोध का उपयोग बड़ी शीघ्रता से साधना में किया जा सकता है। क्रोधी व्यक्ति जल्दी से साधक हो जाता है। क्योंकि क्रोध का लक्षण है, नष्ट करना, तोड़ना, कब्जा करना, मालकियत जमाना। क्रोध दूसरे पर निकलता है, अपने पर भी निकल सकता है; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप दूसरे का सिर तोड़ सकते हैं, अपना सिर भी दीवार में मार सकते हैं। क्रोधी व्यक्ति खुद को सताने में लग जाता है। उसे वह साधना समझता है।
तो कांटों पर सोए हुए लोग हैं; धूप में खड़े हुए लोग हैं; उपवास करके भूख से मरते हुए लोग हैं। और आपको भी लगेगा कि बड़ी तपश्चर्या हो रही है। तपश्चर्या निश्चित हो रही है, लेकिन जानना जरूरी है कि तपश्चर्या के पीछे संपदा कौन-सी है? नहीं तो हम जानते हैं दुर्वासा और उस तरह के ऋषियों को।
उनकी तपश्चर्या बड़ी थी, फिर भी तपश्चर्या की मौलिक संपदा आसुरी रही होगी। तप के पीछे जो अग्नि है, वह आसुरी रही होगी। इसलिए तप अभिशाप बन गया, तप हिंसा बन गया।
अक्सर दिखाई पड़ेगा तपस्वी की आंखों में एक तरह का अहंकार। तपस्वी में
एक तरह की अकड़, न झुकने का भाव, स्वयं को कुछ समझने की वृत्ति... । तप तो विनम्र करेगा, तप तो मिटा देगा, तप तो सारी अकड़ को जला देगा। लेकिन दिखाई पड़ता है कि तपस्वी की अकड़ बढ़ती है, तो निश्चित ही संपदा आसुरी उपयोग की जा रही है।
एक आदमी धन इकट्ठा करता है, तो पागल की तरह इकट्ठा करता है, जैसे जीवन
बस धन इकट्ठा करने को है। फिर यह भी हो सकता है कि धन के इस लोभी को किसी दिन त्याग का ख्याल आ जाए। त्याग के ख्याल का एक ही अर्थ होगा कि इसको त्याग का लोभ पकड़ जाए। यह कहीं शास्त्र में पढ़ ले, किसी गुरु से सुन ले कि जब तक धन न छोड़ेगा तब तक स्वर्ग न मिलेगा। तो यह सौदा कर सकता है, यह धन छोड़ सकता है। लेकिन छोड़ेगा लोभ के कारण ही।
तो यह सारे धन को लात मारकर सड़क पर नग्न भिखारी की तरह खड़ा हो जाए, लेकिन अगर धन इसने लोभ के लिए छोड़ा है, स्वर्ग पाने को छोड़ा है, तो जिस संपदा का यह उपयोग कर रहा है, वह आसुरी है। आसुरी संपदा से स्वर्ग का कोई संबंध नहीं है।
इसे ठीक से समझ लें। क्योंकि आपकी अच्छी से अच्छी चर्या के पीछे भी आसुरी संपदा हो सकती है, तो सब विकृत हो जाएगा। तो आप महल तो बनाएंगे, लेकिन रेत पर उसकी नींव होगी। और वह महल गिरेगा और आपको भी गिराएगा और डुबाएगा।
मेरा निरंतर अनुभव है कि गलत तरह का आदमी बड़ी शीघ्रता से अच्छे काम करने में लग सकता है। जो पागलपन गलत के करने में था, वही अच्छे में लग सकता है। लेकिन उसकी मौलिक संपदा नहीं बदलती। उसका क्रोध, उसका लोभ, उसका मान नहीं बदलता; नया नियोजन हो जाता है। मौलिक स्वर पुराना ही रहता है।
इसलिए इसके पहले कि साधक यात्रा पर निकले, उसे ठीक से पहचान लेना जरूरी है कि क्या आसुरी है, क्या दैवी है। स्पष्ट विभाजन भीतर साफ हो, तो यात्रा बड़ी सुगम हो जाती है। क्योंकि गलत साधन से ठीक साध्य तक पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। अकेली आपकी मरजी काफी नहीं है, आकांक्षा काफी नहीं है, प्रार्थना काफी नहीं है; ठीक साधन ही ठीक साध्य तक पहुंचाएगा। और ठीक साधन का अर्थ है, दैवी संपदा का उपयोग।
दोनों संपदाएं प्रत्येक के पास हैं। उन्हें कमाना नहीं पड़ता, उन्हें
हम लेकर ही पैदा होते हैं। जन्म के साथ ही हम दोनों संपदाएं लेकर पैदा होते हैं। और प्रत्येक व्यक्ति बराबर लेकर पैदा होता है। उस अर्थ में बिल्कुल साम्यवाद है, उस अर्थ में जरा भी भेद नहीं है। गरीब से गरीब, अमीर से अमीर, बुद्धिमान या मूढ़, बराबर लेकर पैदा होते हैं। प्रकृति सबको समान देती है। और अगर इस जगत में इतने भेद दिखाई पड़ते हैं, तो हम उनका कैसा उपयोग करते हैं, इस पर निर्भर करते हैं।
अगर इस जगत में साधु दिखाई पड़ता है और दुष्ट दिखाई पड़ता है, तो प्रकृति किसी को साधु नहीं बनाती और दुष्ट नहीं बनाती। परमात्मा बिल्कुल कोरा चेक ही आपको देता है; उस पर कुछ आंकड़े लिखे नहीं होते। लिखना हम करते हैं; और जो हम लिखते हैं, वह हम बन जाते हैं।

ध्यान रहे, प्रत्येक व्यक्ति बराबर संपदा लेकर पैदा होता है और दोनों संपदाएं बराबर लेकर पैदा होता है। इसलिए बच्चे इतने भोले मालूम पड़ते हैं। बच्चे के भोलेपन का राज यही है कि वह दोनों संपदाएं बराबर लेकर पैदा होता है। बराबर होने के कारण न तो वह साधु होता है, न असाधु होता है। दोनों संतुलित होती हैं। इसलिए बच्चा भोला होता है।
बच्चे के भोलेपन में और साधु के भोलेपन में बड़ा फर्क है। बच्चे का भोलापन अज्ञान से भरा हुआ है, साधु का भोलापन ज्ञान से भरा हुआ है। साधु का भोलापन दैवी संपदा का पूरा उपयोग है। बच्चे का भोलापन अनुपयोग है, अभी उसने कुछ उपयोग किया नहीं, अभी स्लेट खाली है। पर दोनों अक्षर लिखे जा सकते हैं, दोनों की क्षमता लेकर वह पैदा हुआ है।
इसलिए परम साधु की आंखें बच्चों जैसी हो जाती हैं। एक पुनर्जन्म हो जाता है। फिर से सब सरल हो जाता है। लेकिन यह सरलता बड़ी गहरी है; बच्चे की सरलता बड़ी उथली है।
बच्चे की सरलता दो विपरीत शक्तियों का संतुलन है; दोनों बराबर मात्रा में हैं और अभी यात्रा नहीं हुई है। जल्दी ही यात्रा शुरू होगी, और बच्चा एक तरफ झुकना शुरू हो जाएगा। जैसे-जैसे झुकेगा, वैसे-वैसे जटिलता बढ़ेगी।
जैसे-जैसे झुकेगा, वैसे-वैसे भीतर कलह स्वभावतः टूटेगा, निर्मित होगा; दो हिस्से होने शुरू हो जाएंगे। और जो भी फिर बच्चा करेगा, दो आवाजें होंगी। चोरी करेगा, तो दो आवाजें होंगी; किसी को दान देगा, तो दो आवाजें होंगी। दोनों संपदाएं पुकारेंगी।
हर क्षण, जब भी आप कुछ निर्णय लेते हैं, दोनों शक्तियां आवाज देती हैं,
कि मेरी तरफ। चोरी करने जाएं, तो कोई भीतर से कहता है, बुरा है; मत करो। और प्रार्थना करने जाएं, तो कोई भीतर से कहता है, क्यों फिजूल समय खराब कर रहे हो! इतनी देर में कुछ कमा लेते! अच्छा करें, तो भीतर से कोई कहता है, रुको। बुरा करें, तो भीतर से कोई कहता है, रुको। भीतर दो आवाजें हैं।
बच्चे की दोनों आवाजें अभी शांत हैं। अभी बच्चे ने चुनाव नहीं किया है। इसलिए बच्चा निर्दोष है। लेकिन यह निर्दोषता टिकेगी नहीं; टूटेगी ही। क्योंकि आज नहीं कल ये आवाजें उठेंगी। आज नहीं कल बच्चा संसार में जाएगा, विकल्प खड़े होंगे, चुनाव करना पड़ेगा। इसलिए बच्चा तो विकृत होगा।
साधु या परम साधु का अर्थ यह है कि वह सारी विकृतियों को पार करके संतुलन को उपलब्ध हुआ है। यह संतुलन किसी अज्ञान के कारण नहीं है; यह संतुलन परिपूर्ण जानकारी और परिपूर्ण होश में साधा गया है।
बच्चा भोला है, बिना अपने कारण। यह भोलापन कोई उपलब्धि नहीं है। इसलिए सभी बच्चे भोले हैं। यह जानकर हैरानी होगी कि सभी बच्चे प्यारे लगते हैं; कुरूप बच्चा वस्तुतः होता ही नहीं। जो भी बच्चा है, प्यारा लगता है।
लेकिन सारे प्यारे बच्चे फिर कहां खो जाते हैं! मुश्किल से कोई सुंदर आदमी बाद में बचता है। सभी बच्चे सुंदर पैदा होते हैं; बच्चों को देखकर सभी को सौंदर्य का भाव होता है। लेकिन फिर यही सारे बच्चे बड़े होते हैं, फिर बड़ी कुरूपता प्रकट होती है। शायद ही कभी कोई बच पाता है, जो बाद में भी सुंदर होता है। कहां खो जाती हैं सारी बातें?
बच्चे का सौंदर्य भी उसी संतुलन के कारण था। जैसे ही चुनाव हुआ, सौंदर्य खोना शुरू हो जाता है।
फिर परम संत को एक सौंदर्य उपलब्ध होता है, जिसके खोने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि वह उपलब्धि है, वह स्वयं पाई गई बात है। वह प्रकृति का दान नहीं, अपनी अर्जित क्षमता है। और जो आपने कमाया है, वही केवल आपका है; जो आपको मिला है, वह आपका नहीं है।
ये दोनों संपदाएं बराबर प्रत्येक व्यक्ति के भीतर हैं।
उसके उपरांत कृष्ण बोले कि हे अर्जुन, दैवी संपदा जिन पुरुषों को प्राप्त है तथा जिनको आसुरी संपदा प्राप्त है, उनके लक्षण पृथक-पृथक कहता हूं।
लक्षण इसीलिए ताकि आप पहचान सकें, ताकि अर्जुन पहचान सके। और यह पहचान अत्यंत बुनियादी है।
दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षणः अभय, फियरलेसनेस।

अभय शब्द सुनते ही हमें जो ख्याल उठता है, वह उठता है निर्भयता का। लेकिन अभय निर्भयता नहीं है, क्योंकि निर्भय तो आसुरी संपदा वाले लोग भी होते हैं; अक्सर ज्यादा निर्भय होते हैं। अपराधी हैं, निर्भय हैं, नहीं तो अपराध करना मुश्किल था। और एक दफा जेल से लौटते हैं, तो भी भयभीत नहीं होते; दुबारा और तैयारी करके अपराध में उतरते हैं।
मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि कारागृह से तो किसी अपराधी को कभी ठीक किया ही नहीं जा सकता, क्योंकि उसकी निर्भयता और बढ़ती है। उसने यह भी देख लिया; वह इससे भी गुजर गया; यह तकलीफ भी बहुत ज्यादा नहीं है। यह भी सही जा सकती है।
इसलिए जो आदमी एक बार कारागृह जाता है, वह फिर बार-बार जाता है। दुनिया में जितने कारागृह बढ़ते हैं, उतने अपराधी बढ़ते चले जाते हैं। जितनी ज्यादा हम सजा देते हैं, उतना अपराधी निर्भय होता है। यह थोड़ा समझ लेने जैसा है।
बहुत-से लोग इसीलिए अपराधी नहीं हैं, क्योंकि उनमें निर्भयता की कमी है; और कोई कारण नहीं है। अपराध तो वे भी करना चाहते हैं; भयभीत हैं। चोरी आप भी करना चाहते हैं, लेकिन भय पकड़ता है। चोरी के लोभ से ज्यादा चोरी का जो परिणाम हो सकता है--कारागृह हो सकता है, बदनामी होगी, प्रतिष्ठा खो जाएगी, पकड़े जाएंगे--वह भय ज्यादा मजबूत है। लोभ से भय बड़ा है; वही आप पर अंकुश है। हत्या आप भी करना चाहते हैं; कई बार मन में सोचते हैं, सपने देखते हैं; कई बार तो हत्या मन में कर ही देते हैं। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने जीवन में दो-चार बार मन में किसी की हत्या न कर दी हो।
मनसविद कहते हैं कि हर आदमी अपने लंबे जीवन में, अगर वह सौ साल जीए तो
कम से कम दस बार खुद की आत्महत्या करने का विचार करता है, औसत। करते नहीं हैं आप, उसका कारण यह नहीं है कि आप करना नहीं चाहते हैं। उसका कारण सिर्फ इतना है कि उतना निर्भय भाव नहीं जुटा पाते हैं। भय पकड़े रहता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा नाराज था पत्नी से, और कलह कुछ ज्यादा ही बढ़ गई, तो आधी रात उठा और उसने कहा, बहुत हो चुका; जितना सह सकता था, सह लिया। हर चीज की सीमा आती है; और सीमा आ गई। मैं मरने जा रहा हूं इसी समय, झील में डूबकर। दरवाजा खोलकर बाहर निकलता था, पत्नी ने कहा, लेकिन नसरुद्दीन, तैरना तो तुम जानते ही नहीं! तो वह वापस लौट आया; उदास बैठ गया। उसने कहा, तो फिर मुझे कोई और उपाय सोचना पड़ेगा।
वे मरने जा रहे थे झील में, लेकिन तैरना नहीं आता तो कोई और उपाय सोचना पड़ेगा!
करना आप भी वही चाहते हैं, जो अपराधी करता है, लेकिन फर्क शायद निर्भयता का है।
कृष्ण अभय को दैवी संपदा का पहला लक्षण गिनाते हैं। और सिर्फ कृष्ण नहीं, महावीर भी अभय को बुनियादी आधार बनाते हैं; बुद्ध भी। महावीर ने कहा है कि अहिंसक तो कोई हो ही नहीं सकता, जब तक अभय न हो, क्योंकि भय से हिंसा पैदा होती है।
लेकिन ध्यान रहे, हिंसक निर्भय हो सकता है, होता है। आखिर युद्ध के मैदान में जाता हुआ सिपाही निर्भय तो होता ही है, लेकिन हिंसक होता है। और महावीर कहते हैं, अभय का अंतिम परिणाम अहिंसा है। तो हमें निर्भयता और अभय में थोड़ा फर्क समझ लेना चाहिए।
निर्भय का अर्थ है, जिसके भीतर भय तो है, लेकिन उस भय से जो भयभीत नहीं होता और टिका रहता है। कायर वह है, उसके भीतर भी भय है, लेकिन वह भय से प्रभावित होकर भाग खड़ा होता है। कायर में और बहादुर में फर्क भय का नहीं है, भय दोनों में है। बहादुर भय के बावजूद भी खड़ा रहता है। कायर भय के पकड़ते ही भाग खड़ा होता है। भय दोनों के भीतर है, लेकिन कायर भय को स्वीकार कर लेता है और जिसको हम बहादुर कहते हैं, वह अस्वीकार करता है। लेकिन भय भीतर मौजूद है।
निर्भयता का अर्थ है, भय तो भीतर है, लेकिन हम उसे स्वीकार नहीं करते;
हम उसके विपरीत खड़े हैं। अभय का अर्थ है, जिसके भीतर भय नहीं। इसलिए अभय को उपलब्ध व्यक्ति न तो कायर होता है और न बहादुर होता है; वह दोनों नहीं हो

सकता। दोनों के लिए भय का होना एकदम जरूरी है। भय हो, तो आप कायर हो सकते हैं या बहादुर हो सकते हैं। भय न हो, तो आप अभय को उपलब्ध होते हैं।
अभय को कृष्ण कहते हैं पहला लक्षण दैवी संपदा का। क्यों? अगर अभय दैवी संपदा का पहला लक्षण है, तो भय आसुरी संपदा का पहला लक्षण हो गया।
भय किस बात का है? और जब आप निर्भयता भी दिखाते हैं, तो किस बात की दिखाते हैं? थोड़ा-सा ही सोचेंगे तो पता चल जाएगा कि मृत्यु का भय है। बहाना कोई भी हो, ऊपर से कुछ भी हो, लेकिन भीतर मृत्यु का भय है। मैं मिट न जाऊं, मैं समाप्त न हो जाऊं। दूसरी चीजों में भी, जिनमें मृत्यु प्रत्यक्ष नहीं है, वहां भी गहरे में मृत्यु ही होती है।
आपका धन कोई छीन ले, तो भय पकड़ता है। मकान जल जाए, तो भय पकड़ता है। पद छिन जाए, तो भय पकड़ता है। लेकिन वह भय भी मृत्यु के कारण है; क्योंकि पद के कारण जीवित होने में सुविधा थी; पद सहारा था। धन पास में था, तो सुरक्षा थी। धन पास में नहीं, तो असुरक्षा हो गई। मकान था, तो साया था; मकान जल गया, तो खुले आकाश के नीचे खड़े हो गए।
जिन-जिन चीजों के छिनने से भय होता है, उन-उन चीजों के छिनने से मौत करीब मालूम पड़ती है। और जिन-जिन चीजों को हम पकड़ रखना चाहते हैं, वे वे ही चीजें हैं, जिनके कारण मौत और हमारे बीच में परदा हो जाता है। धन का ढेर लगा हो, तो हमारी आंखों में धन दिखाई पड़ता है, मौत उस पार छूट जाती है। प्रतिष्ठा हो, पद हो, तो शक्ति होती है पास में, हम लड़ सकते हैं। बीमारी आए, मौत आए, तो कुछ उपाय किया जा सकता है। पास कुछ भी न हो, तो कोई उपाय नहीं है, हम असुरक्षित मौत के हाथ में पड़ जाते हैं।
भय तो मृत्यु का है, सभी भय मृत्यु से उदभूत होता है। इसलिए उसको हम बहादुर कहते हैं, जो मौत के सामने भी अकड़कर खड़ा रहता है। कोई बंदूक लेकर आपकी छाती पर खड़ा हो, भाग खड़े हुए, तो लोग कायर कहते हैं; पीठ दिखा दी! पश्चिम में युवकों का आंदोलन है, हिप्पी। हिप्पी शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। हिप्पी शब्द का वही मतलब होता है, जो रणछोड़दास का होता है, जिसने हिप दिखा दिया, जिसने पीठ दिखा दी, जो भाग खड़ा हुआ। जो युवक हिप्पी कहे जा रहे हैं पश्चिम में, लेकिन उनका फलसफा है, उनका एक दर्शन है। वे कहते हैं, लड़ना फिजूल है। और लड़ना किसलिए? और लड़ने से मिलता क्या है? इसलिए पीठ दिखाई है जान-बूझकर।
ये जो बहादुर और कायर हैं, इन दोनों की समस्या एक है। कायर पीठ दिखाकर भाग जाता है। बहादुर पीठ नहीं दिखाता, खड़ा रहता है, चाहे मिट जाए। लेकिन दोनों के भीतर भय है।
अभय उस व्यक्ति को हम कहेंगे, जिसके भीतर भय नहीं है। लेकिन यह तभी हो सकता है, जब मृत्यु के संबंध में हमारी समस्या हल हो गई हो। जब हमें किसी भांति यह प्रतीति हो गई हो कि मृत्यु है ही नहीं; जब हमने किसी अनुभव से यह रस पहचान लिया हो कि भीतर अमृत छिपा है, कि मैं मरणधर्मा नहीं हूं। आत्मभाव जगा हो, तो अभय पैदा होगा। इसलिए अभय आत्मा का नाम है। जिसने आत्मा को जरा-सा भी पहचाना, उसके जीवन में अभय हो जाएगा।
इसे कृष्ण पहला आधार बना देते हैं। क्यों? सत्य की यात्रा पर, ब्रह्म
की यात्रा पर, दिव्यता के आरोहण में अभय पहला आधार क्यों?
अभय की संभावना बनती है, अमृत की थोड़ी-सी प्रतीति हो तो। और अमृत की प्रतीति हो, तो आदमी छलांग ले सकता है ब्रह्म में; नहीं तो छलांग नहीं ले सकता। अगर भीतर डर समाया हो कि मैं मिट तो न जाऊंगा, तो ब्रह्म तो मृत्यु से भी ज्यादा भयानक है। क्योंकि मृत्यु में तो शायद शरीर ही मिटता होगा, आत्मा बच जाती होगी। ब्रह्म में आत्मा भी नहीं बचेगी। महामृत्यु है। उस विराट में तो मैं ऐसे खो जाऊंगा, जैसे बूंद सागर में खो जाती है, कोई नाम-रूप नहीं बचेगा।
तो जिसको हम मृत्यु कहते हैं, यह तो अधूरी मृत्यु है। आत्मा बच जाएगी,
नए शरीर ग्रहण करेगी, नई यात्राओं पर निकलेगी। लेकिन जो व्यक्ति ब्रह्म-ज्ञान को उपलब्ध हुआ, फिर उसकी कोई यात्रा नहीं है, फिर वह महाशून्य में खो गया। इसलिए हम कहते हैं, परम ज्ञानी वापस नहीं आता।
बुद्ध से लोग बार-बार पूछते हैं, कि मृत्यु के बाद बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति का क्या होता है? तो बुद्ध कहते हैं, जैसे दीए की ज्योति

को कोई फूंककर बुझा दे, तो फिर तुम पूछते हो या नहीं कि दीए की ज्योति का क्या हुआ, कहां गई? ऐसा ही बुद्ध पुरुष खो जाता है; जैसे दीए को कोई फूंककर बुझा दे, ऐसे ही बुद्ध पुरुष खो जाता है।
तो बुद्धत्व तो महामृत्यु हुई। हमारी ज्योति तो थोड़ी-बहुत बचेगी, नए दीए में जलेगी; और नए दीए खोजेगी; नए घर, नए शरीर ग्रहण करेगी। लेकिन बुद्ध की ज्योति? दीया भी मिट गया, ज्योति भी खो गई।
कृष्ण अभय को पहला आधार बनाते हैं दैवी संपदा का। क्योंकि दिव्यता में जिसे भी प्रवेश करना हो, उसे अपने को पूरी तरह मिटाने का साहस चाहिए। कौन अपने को पूरा मिटा सकता है? वही जिसको पूरा भरोसा है कि मिटने का कोई उपाय नहीं। यह बात विपरीत मालूम पड़ेगी, विरोधाभासी लगेगी।
वही व्यक्ति अपने को मिटा सकता है, जिसे भरोसा है कि मिटने का कोई उपाय नहीं है; वह सहजता से छलांग ले सकता है। वह अग्नि में उतर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि अग्नि जलाएगी नहीं। वह शस्त्रों से छिद सकता है, क्योंकि वह जानता है कि शस्त्र छेदेंगे नहीं। इस आस्था पर ही अभय विकसित होगा।
अभय, अंतःकरण की अच्छी प्रकार से शुद्धि... ।
अंतःकरण के साथ बड़ी भ्रांतियां जुड़ी हैं। समाज ने अंतःकरण का बड़ा उपयोग किया है। समाज की पूरी धारणा ही अंतःकरण के शोषण पर निर्भर है। समाज सिखा देता है बचपन से ही हर बच्चे को, क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। और इस बात को इतने जोर से स्थापित करता है, हृदय में इस बात को इतनी बार पुनरुक्त किया जाता है कि कंडीशनिंग, संस्कारबद्ध धारणा बैठ जाती है। फिर जब भी आप उसके विपरीत जाने लगते हैं, कि समाज का सिखाया हुआ अंतःकरण फौरन विरोध खड़ा करता है।
इसलिए हर समाज के पास अलग-अलग तरह के अंतःकरण हैं। अगर आप एक शाकाहारी
घर में पैदा हुए हैं, तो उस घर ने आपको शाकाहारी का अंतःकरण दिया। अगर मांस आपके सामने आ जाए, तो आप सिर्फ ग्लानि से भरेंगे। आपकी जीभ से पानी और रस नहीं बहेगा, सिर्फ ग्लानि; वमन हो सकता है, उल्टी आ सकती है।
यही मांस किसी दूसरे के सामने, जो मांसाहारी घर में पैदा हुआ है, बड़े स्वाद को जगा सकता है। इसी मांस को देखकर उसकी सोई हुई भूख जग सकती है; भूख न भी हो, तो भी भूख लग सकती है। एक दूसरे शाकाहारी घर में पैदा व्यक्ति को इसी मांस को देखकर बड़ी जुगुप्सा, बड़ी घृणा पैदा होती है।
निश्चित ही, यह अंतःकरण असली अंतःकरण नहीं है। यह अंतःकरण सिखाया हुआ, शिक्षित अंतःकरण है। यह समाज ने उपयोग किया हुआ है। गलत और सही का सवाल नहीं है। समाज को एक बात समझ में आ गई है कि अगर व्यक्तियों को नियंत्रण में रखना हो, व्यवस्था में रखना हो, तो इसके पहले कि उनका वास्तविक अंतःकरण बोलना शुरू हो, हमें जो-जो धारणाएं डालनी हों, उनमें डाल देनी चाहिए।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सात वर्ष की उम्र तक आपका आधा मस्तिष्क निर्मित हो जाता है। आधा, पचास प्रतिशत, सात वर्ष में! फिर पूरी जिंदगी में शेष पचास प्रतिशत निर्मित होता है। और यह जो पचास प्रतिशत सात वर्ष में निर्मित होता है, यह आधार है। इसके विपरीत जाना कठिन है। फिर पूरी जिंदगी इसके अनुकूल ही ले जाना आसान है। और अगर इसके विपरीत आप ले गए, तो बड़ी दुविधा और बड़ी कलह में जिंदगी बीतेगी।
इसलिए सभी तथाकथित धार्मिक संप्रदाय बच्चों का शीघ्रता से शोषण करने
को उत्सुक होते हैं। जो धर्म भी अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा नहीं देता, फिर बाद में आशा नहीं रख सकता। सात वर्ष के पहले ही धारणाएं प्रविष्ट हो जानी चाहिए। धारणाएं मजबूत भीतर बैठ जाएं, तो वास्तविक अंतःकरण की आवाज सुनाई ही नहीं पड़ती; समाज के द्वारा दिया गया अंतःकरण ही बीच में बोलता रहता है।
कृष्ण जब कहते हैं, अंतःकरण की अच्छे प्रकार से शुद्धि, तो वे यही कह रहे हैं कि समाज ने जो धारणाएं दी हैं, उनसे जब तक छुटकारा न हो अंतःकरण का, तब तक वास्तविक आपकी आत्मा बोल न पाएगी। हिंदू बोल सकता है भीतर से, मुसलमान बोलेगा, जैन बोलेगा, ईसाई बोलेगा, आस्तिक-नास्तिक बोलेगा। लेकिन

आप जो लेकर पैदा हुए हैं, वह जो दैवी स्वर आपके भीतर है, वह छिपा रहेगा। उसके प्रकट होने के लिए अंतःकरण की सारी परतें अलग हो जानी चाहिए।
क्यों कृष्ण अर्जुन से ऐसा कह रहे हैं? क्योंकि अर्जुन जो ज्ञान की बातें कर रहा है, वे उसके अंतःकरण से नहीं आ रही हैं; वे सामाजिक धारणाएं हैं। वह कह रहा है, ये मेरे गुरु हैं; तो जिस गुरु के मैंने चरण छुए, उसकी मैं हत्या कैसे करूं! कि ये मेरे सगे भाई हैं, कि मेरे बंधु-बांधव हैं, ये मेरे मित्र, प्रियजन हैं। ये जो उस तरफ खड़े हैं युद्ध में, इसमें अनेक मेरे संबंधियों के संबंधी या संबंधी हैं। भीष्म पितामह उस तरफ हैं, वे मेरे आदर योग्य हैं। इन सबके साथ मैं कैसे युद्ध करूं? ये मेरे अपने हैं, ये सगे- संबंधी हैं।
कौन आपका अपना है?
जीसस एक भीड़ में खड़े थे। और उन्होंने एक बड़ा कठोर वचन उपयोग किया है, जिसकी निरंतर आलोचना की गई है। क्योंकि जीसस जैसे व्यक्ति से ऐसे शब्द की आशा नहीं थी। किसी ने भीड़ में आवाज दी कि जीसस, तुम्हारी मां मरियम तुमसे मिलने बाहर आई है। तो जीसस ने कहा, मेरी न कोई मां है, न मेरा कोई पिता है। कठोर वचन है। और जीसस जैसे अत्यंत करुणावान, महा करुणावान व्यक्ति से ऐसी बात की आशा नहीं है। निश्चित ही, उनका प्रयोजन कुछ भिन्न है।
जीसस यह कह रहे हैं कि कौन मां है! कौन पिता है! जहां तक शुद्ध अंतःकरण
का सवाल है, न कोई पिता है, न कोई माता है। न कोई भाई है, न कोई बंधु है। जहां तक समाज के द्वारा दिए गए अंतःकरण का संबंध है, मां है, पिता है, भाई-बंधु हैं। ये सब सिखावन हैं, से सब संस्कार हैं।
अर्जुन कह रहा है, यह बुरा है। और कृष्ण यह कह रहे हैं कि यह तेरे अंतःकरण की आवाज नहीं; तुझे जो-जो बुरा बताया गया है, उसे-उसे तू बुरा कह रहा है। यह तेरी अपनी प्रतीति नहीं है, तेरी अंतःप्रज्ञा नहीं है, तेरा बोध नहीं है। यह तू नहीं कह रहा है, तेरे भीतर से समाज की धारणाएं बोल रही हैं।
और जब तक समाज की धारणाओं को हम हटा न सकें, तब तक शुद्ध अंतःकरण का कोई पता नहीं चलता। शुद्ध अंतःकरण का मतलब यह नहीं है कि भले आदमी का अंतःकरण। क्योंकि जिसको हम भला आदमी कहते हैं, वह तो समाज की ही मान्यताओं को मानकर चलने वाला आदमी है; उसको हम भला कहते हैं। बुरा हम उसको कहते हैं, जो समाज की मान्यताएं नहीं मानता।
मगर यह धारणा रोज बदल जाती है। क्योंकि जीसस जिस जमाने में पैदा हुए, लोगों ने उन्हें बुरा कहा, क्योंकि जिस यहूदी समाज में वे पैदा हुए, उसकी मान्यताएं उन्होंने नहीं मानीं। तो जीसस को लोगों ने आवारा, उपद्रवी, अपराधी समझा, इसलिए यहूदियों ने जीसस को सूली लगाई। सूली लगाते वक्त उन्होंने ख्याल रखा कि जीसस को अपराधियों के साथ सूली लगाई जाए। तो दोनों तरफ दो चोरों को सूली पर लटकाया, बीच में जीसस को, ताकि समाज समझ ले कि एक अपराधी की तरह हम जीसस को सजा दे रहे हैं। इस आदमी ने समाज की धारणाओं का विरोध किया, यह बुरा आदमी है।
लेकिन फिर जीसस के मानने वाले लोगों का समाज धीरे-धीरे निर्मित हुआ
और जीसस उनके लिए सबसे अच्छे आदमी हो गए। तो जीसस से कोई अच्छा आदमी हुआ ही नहीं ईसाइयों के लिए। बड़ी कठिनाई है। यहूदियों के लिए यह आदमी बुरा है, सूली लगाने योग्य है। ईसाइयों के लिए यह आदमी भला है, परमात्मा का इकलौता बेटा है, पूजने योग्य है। यही एकमात्र सहारा है मुक्ति का। यही मार्ग है, द्वार है; इसके बिना कोई द्वार नहीं है।
इतनी भिन्न धारणा!
अंतःकरण का सवाल नहीं है। यहूदी के पास एक सामाजिक धारणा है, उससे तौलता है। ईसाई के पास दूसरी सामाजिक धारणा है, उससे तौलता है।
इस मुल्क में ऐसा निरंतर हुआ है, हर मुल्क में होगा, हर मुल्क में होता रहा है। जो आज हमें बुरा दिखाई पड़ता है, कल भला हो सकता है। समाज की धारणा बदल जाए, तो मापदंड बदल जाता है। जो आज हमें अच्छा लगता है, वह कल बुरा हो सकता है। धारणा बदल जाए, तराजू बदल जाता है, तौलने के उपाय बदल जाते हैं।

अंतःकरण की शुद्धि से अर्थ अच्छे आदमी का अंतःकरण नहीं है। अंतःकरण
की शुद्धि का अर्थ है, शुद्ध अंतःकरण। शुद्ध अंतःकरण का अर्थ अच्छा नहीं है। शुद्ध अंतःकरण का अर्थ है, जिसमें कुछ और मिलाया हुआ नहीं है।
और ध्यान रहे, दो शुद्ध चीजें भी मिल जाएं, तो अशुद्धि पैदा होती है।
शुद्ध पानी और शुद्ध दूध को मिला दें, तो दोहरी शुद्धि पैदा नहीं होती। पानी भी अशुद्ध हो जाता है, दूध भी अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध का मतलब है, कुछ अन्य मिला दिया गया, कुछ विजातीय मिला दिया गया। शुद्ध का अर्थ है, कुछ भी मिलाया नहीं, खालिस, जैसा था वैसा।
जैसा अंतःकरण हम लेकर पैदा हुए हैं, जो किसी ने हमें दिया नहीं, समाज
ने जिसे निर्मित नहीं किया, जो हमारी भीतरी संपदा है, उस शुद्ध अंतःकरण को, कृष्ण कहते हैं, अगर हम निखार लें, समाज की धारणाओं के रूखे-सूखे पत्ते अलग कर दें, भीतर छिपी पानी की धार नजर में आ जाए, तो दैवी संपदा का दूसरा लक्षण है। फिर उसके ही सहारे, उस अंतःकरण के सहारे दिव्यता तक पहुंचा जा सकता है।
जिसको आप अभी अच्छा और बुरा कहते हैं, वह सिर्फ सामाजिक मान्यता है। किसी दूसरे समाज में मान्यताएं बदल जाती हैं, तो दूसरी मान्यताएं हो जाती हैं। जमीन पर कोई हजारों तरह के समाज हैं। ऐसी कोई मान्यता नहीं है, जो किसी न किसी समाज में अच्छी न मानी जाती हो; और ऐसी भी कोई मान्यता नहीं है, जो किसी न किसी समाज में बुरी न मानी जाती हो। सब तरह की बातें अच्छी मानी जाती हैं, सब तरह की बातें बुरी मानी जाती हैं।
ऐसे समाज हैं, जहां सगी बहन से विवाह करना अच्छा माना जाता है। जहां पिता मर जाए, तो ऐसे समाज हैं, जहां बड़े बेटे को मां से विवाह करना अच्छा माना जाता है। ऐसे समाज हैं, जहां पिता बूढ़ा हो जाए, वृद्ध हो जाए, तो जीवित पिता को अग्निसंस्कार दे देना बड़े बेटे का कर्तव्य माना जाता है। और इन सबकी अपनी धारणाएं हैं, और अपनी धारणाओं के तर्क हैं। और अगर उनके तर्क को सहानुभूति से समझें, तो उनकी बात भी सही मालूम पड़ सकती है।
जिन समाजों में भाई और बहन का विवाह प्रचलित है, अफ्रीका के कुछ कबीले, उनका कहना यह है कि भाई और बहन ही पति और पत्नी बन सकते हैं। क्योंकि उनमें इतना सामीप्य है, इतनी निकटता है; उन दोनों के पास एक-सा स्वभाव है। किसी भी दूसरी स्त्री से विवाह करना, दो विपरीत संस्कारों में पले, दो विपरीत परिवारों में पले व्यक्तियों को कठिनाई होगी, अड़चन होगी, उपद्रव होगा। और भाई और बहन के बीच एक स्वाभाविक नैसर्गिक प्रेम है, इसी प्रेम को रूपांतरित किया जाए।
उनकी बात में भी बल मालूम पड़ता है। जिन मुल्कों में विरोध है, उनकी बात में भी बल मालूम पड़ता है। क्योंकि वे कहते हैं, अगर भाई और बहन में विवाह हो, तो फिर भाई और बहन के बीच प्रारंभ से ही कामुक संबंधों को रोकने का कोई उपाय नहीं। तो परिवार प्राथमिक रूप से ही कामुक संबंधों में उलझ जाएगा। कामुक संबंध अगर बचपन से इस भांति खुले छोड़ दिए जाएं, तो जीवन प्राथमिक आधार से विलास की ओर बढ़ेगा और प्रेम की एक पवित्र धारणा विकसित न हो पाएगी। और प्रेम का एक पवित्र रूप भी है, जहां यौन का कोई संबंध नहीं है। अगर भाई-बहन में वह विकसित न हुआ, तो फिर कहां विकसित होगा? उस पवित्र प्रेम की लकीर फिर सदा के लिए खो जाएगी। उनकी बात में भी बल है।
कह मैं यह रहा हूं कि जिस समाज ने भी जो धारणा मानी है, उसके कारण हैं, उसके ऐतिहासिक विकास में आधार है; कुछ वजह से मानी है। उस धारणा को ही मानकर जो चलता है, वह अच्छा आदमी तो हो सकता है, बुरा आदमी हो सकता है। लेकिन जिसको शुद्ध अंतःकरण का आदमी कहें, वह उन धारणाओं को मानकर कोई नहीं हो सकता।
इसका यह अर्थ नहीं कि शुद्ध अंतःकरण का आदमी सारी धारणाओं को तोड़ दे, समाज का दुश्मन हो जाए। यह अर्थ नहीं कि समाज की बगावत करे, उच्छृंखल हो जाए। शुद्ध अंतःकरण का आदमी अपने भीतर अंतःकरण को धारणाओं से मुक्त करने में लगेगा। और उस बिंदु पर अपने अंतःकरण को ले आएगा, जहां समाज की कोई छाप नहीं है; जहां उसका अंतःकरण दर्पण की भांति शुद्ध है, जैसा वह जन्म के साथ लेकर पैदा हुआ था, जब समाज ने कुछ भी लिखा नहीं था, खाली, शून्य।

उस अंतःकरण के माध्यम से ही दैवी संपदा को खोजा जा सकता है, दिव्यता
को खोजा जा सकता है। क्योंकि उस अंतःकरण में जो स्वर उठते हैं, वे दिव्यता के स्वर हैं। जिस अंतःकरण को हम अंतःकरण मानते हैं, उसमें जो स्वर उठते हैं, वे समाज के स्वर हैं।
ज्ञान-योग में निरंतर दृढ़ स्थिति... ।
ज्ञान-योग में निरंतर दृढ़ स्थिति! एक तो हमारा जीवन है, जिसे हम मूर्च्छा में दृढ़ स्थिति कह सकते हैं। जो भी हम करते हैं, सोए हुए करते हैं। हमें कुछ पक्का पता नहीं, हम क्यों कर रहे हैं; क्यों हमने क्रोध किया, क्यों हमने प्रेम किया, क्यों हमने जीवन ऐसा बिताया, जैसा हमने बिताया, कुछ साफ नहीं है।
एक अंधेरे में शराब पीए हुए जैसे कोई आदमी चलता हो, और कहीं भी पहुंच जाए; न रास्ते का कुछ पता है, न दिशा का कोई पता है; यह भी हो सकता है कि गोल घेरे में चक्कर ही लगाता रहे और सोचे कि बड़ी यात्रा हो रही है। ऐसी हमारी दशा है। मूर्च्छा में हमारी दृढ़ स्थिति है।
ज्ञान-योग में दृढ़ स्थिति का अर्थ है, जागरूकता में दृढ़ स्थिति, अवेयरनेस में, होश में। उठूं, बैठूं, चलूं, जो भी व्यवहार हो, आचरण हो, जो भी परिणमन हो, वह मेरे पूरे होश में हो। मेरे ज्ञान का दीया जलता रहे। क्यों कर रहा हूं, इसकी मुझे पूरी प्रतीति हो। बिना गहरे प्रत्यक्ष होश के कुछ भी मुझसे न निकले।
जिसको कृष्णमूर्ति अवेयरनेस कहते हैं, महावीर ने जिसको सम्यक ज्ञान कहा है, बुद्ध ने जिसको सम्यक स्मृति कहा है, कबीर, नानक, दादू जिसको सुरति- योग कहते हैं, ज्ञान-योग में दृढ़ स्थिति का वही अर्थ है। मूर्च्छित न हो व्यवहार; अचेतन शक्तियां मुझसे कुछ न करवा लें; मेरा कृत्य चेतन हो, कांशस हो।
किसी आदमी ने आपको धक्का दिया। इधर धक्का नहीं दिया कि उधर से क्रोध
की लपट भभक उठती है। यह क्रोध का भभकना वैसे ही है, जैसे किसी ने बटन दबाई और बिजली जली। बटन दबाने के बाद बिजली का बल्ब सोचता नहीं कि जलूं या न जलूं। यह भी नहीं सोचता कि इस आदमी ने जलाया, तो मैं कोई परवश तो नहीं हूं; चाहूं तो जलूं, चाहूं तो न जलूं! न, कोई उपाय नहीं है। यंत्रवत, यंत्र ही है। तो बिजली का बल्ब जल जाता है।
जब कोई आपको धक्का देता है, तो क्रोध भी आप में अगर ऐसा ही पैदा होता हो, जैसे बटन दबाने से बल्ब जलता है, तो आप भी यंत्रवत हो गए। तो जिस आदमी ने आपको धक्का दिया, उसने आपको परिचालित कर लिया, वह आपका मालिक हो गया, स्वामित्व उसके हाथ में चला गया; उसने आप में क्रोध पैदा करवा लिया।
और शायद आप कई दफा कसमें खा चुके हैं कि अब क्रोध न करूंगा; कई दफा निर्णय लिया है कि क्रोध दुख देता है! शास्त्र के शब्द स्मरण हैं कि क्रोध अग्नि है, जहर है। वह सब है। लेकिन किसी ने धक्का दिया, तो वह सब एकदम हट जाता है। भीतर से क्रोध उठ आता है। यह क्रोध मूर्च्छित है।
बुद्ध को कोई धक्का दे, तो क्रोध ऐसे ही नहीं उठता; क्रोध उठता ही नहीं। बुद्ध धक्के को देखते हैं कि धक्का दिया गया; और अपने भीतर देखते हैं कि धक्के से क्या हो रहा है; और निर्णय करते हैं कि मुझे क्या करना है। आपका धक्का निर्णायक नहीं है। आपके धक्के के बाद भी बुद्ध ही निर्णायक हैं; वे निर्णय करते हैं कि मुझे क्या करना है।
आप जब क्रोध करते हैं, तो निर्णय आपका नहीं है। दूसरा आपसे निर्णय करवा लेता है। एक खुशामदी आ जाता है और आपकी प्रशंसा करता है और आपसे काम करवा लेता है। आप भी जानते हैं कि यह खुशामदी है और आप भी जानते हैं कि किसी की स्तुति में पड़ना ठीक नहीं। लेकिन बस, कोई स्तुति करता है, तो फिर स्मरण नहीं रहता; फिर भीतर कुछ बल्ब जल जाते हैं। फिर भीतर कुछ काम शुरू हो जाता है, जो दूसरे ने चालित किया।
जो व्यक्ति अपने निर्णय से प्रतिपल नहीं जी रहा है, जिससे दूसरे लोग निर्णय करवा रहे हैं, जिसे दूसरे लोग धक्के दे रहे हैं, मैनिपुलेट कर रहे हैं, जो दूसरों से परिचालित है, ऐसा व्यक्ति मूर्च्छा में दृढ़ ठहरा हुआ है।

होश में ठहरे हुए व्यक्ति का लक्षण है कि वह स्वयं चल रहा है, स्वयं उठ रहा है; और जो भी कर रहा है, वह उसका अपना निर्णय है, वह उसने सचेतन रूप से लिया है! कोई अचेतन शक्तियों ने उससे निर्णय नहीं करवाया है।
चौबीस घंटे आपके भीतर बड़ा हिस्सा अचेतन है, जिसको फ्रायड ने बड़ी कोशिश की विश्लेषण करने की। फ्रायड के हिसाब से, जैसे हम बरफ के टुकड़े को पानी में डाल दें, तो नौ हिस्सा पानी में डूब जाता है और एक हिस्सा ऊपर होता है, ऐसा आपका एक हिस्सा केवल होशपूर्ण है, नौ हिस्से नीचे डूबे हुए हैं पानी में और उनका आपको कुछ भी पता नहीं है। और वे नौ हिस्से आपसे चौबीस घंटे काम करवा रहे हैं। वे काम आपको करने ही पड़ते हैं। और आप निर्णय भी ले लें कि नहीं करूंगा, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि निर्णय एक हिस्सा लेता है, उससे नौ गुनी ताकत के मन के विचार भीतर दबे पड़े हैं, वे उसकी सुनते भी नहीं।
आप तय कर लेते हैं, सुनते हैं ब्रह्मचर्य पर एक व्याख्यान, पढ़ते हैं कोई किताब, जंचती है बात बुद्धि को, वह जो एक हिस्सा पानी के ऊपर तैर रहा है, आप तय कर लेते हैं। लेकिन वे नौ हिस्से, जो पानी के नीचे दबे हैं, उनको आपकी किताब का कोई पता नहीं, ब्रह्मचर्य का कोई पता नहीं; उन्होंने कोई यह बात सुनी नहीं कभी, वे अपनी धारणा से चल रहे हैं। वे मिले हैं नौ हिस्से आपको जन्मों-जन्मों की लंबी यात्रा में। अनंत संस्कारों, पशुओं, पौधों, वृक्षों से गुजरकर उनको आपने इकट्ठा किया है। वे अब भी वही हैं। उनको कुछ पता भी नहीं है। वे अपने ही ढंग से चलते हैं; उनकी ताकत नौ गुनी ज्यादा है। जब भी कामना मन को पकड़ेगी, तो वह जो एक हिस्सा है, नपुंसक सिद्ध होगा।
वे जो नौ गुने ताकतवर हैं, वे शक्तिशाली सिद्ध होंगे और वे आपको मजबूर कर लेंगे। और उनकी मजबूरी इतनी शक्तिशाली है कि वे आपके इस एक हिस्से को भी तर्क देंगे और यह एक हिस्सा भी रेशनलाइज करेगा। यह भी कहेगा कि छोड़ो, यह सब ब्रह्मचर्य वगैरह में कुछ सार नहीं है। और यह भी कहेगा कि ब्रह्मचर्य साधना है, तो जल्दी क्या है; अभी जिंदगी बहुत पड़ी है!
हजार तर्क! वे नौ हिस्से धक्के देकर एक हिस्से को राजी करवा लेंगे। जब
वे नौ हिस्से अपना काम पूरा करवा लेंगे, तब फिर एक हिस्सा बातें सोचने लगेगा भली-भली। फिर ब्रह्मचर्य वापस लौटेगा। लेकिन यह हमेशा कमजोर सिद्ध होगा नौ के मुकाबले।
यह अड़चन है प्रत्येक मनुष्य की। जो भी मनुष्य थोड़ा जीवन को बदलने की कोशिश में लगा है, उसकी यह कठिनाई है कि वह तय करता है, लेकिन पूरा नहीं हो पाता।
कृष्ण कहते हैं, दैवी संपदा तभी सक्रिय होगी, जब कोई व्यक्ति ज्ञान-योग में निरंतर दृढ़ स्थित हो।
होश इतना सधा हुआ हो... । जितना ज्यादा होश सधता है, उतना ही पानी के ऊपर बर्फ आना शुरू हो जाता है। जितना ज्यादा आप होश का प्रयोग करते हैं, उतना ज्यादा आपका अचेतन कम होने लगता है; चेतन बढ़ने लगता है। और एक ऐसी स्थिति भी है टोटल अवेयरनेस की, परिपूर्ण प्रज्ञा की, जब आपका पूरा का पूरा मन प्रकाशित होता है, होश से भरा होता है।
उस स्थिति में जो भी निर्णय लिए जाते हैं, उनका कोई विरोध नहीं है। उस स्थिति में जो भी आप तय करते हैं, वह होगा ही, क्योंकि उससे विपरीत आपके भीतर कोई स्वर नहीं है। उस स्थिति में जो भी जीवन है, वहां कोई पश्चात्ताप नहीं है। उस जीवन में सभी कुछ आनंद है और सभी कुछ अद्वैत है।
सारी साधना प्रक्रियाएं ज्ञान-योग में दृढ़ स्थिति के ही उपाय हैं। सारे ध्यान, सारी प्रार्थनाएं, सारी विधियां, कैसे आप ज्यादा से ज्यादा होश में जीने लगें, मूर्च्छा टूटे, अमूर्च्छा बढ़े... ।
और दान तथा इंद्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय तथा तप एवं शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।
दान, देने का भाव, बहुत आधारभूत है। आसुरी संपदा है लेने का भाव, छीनने
का भाव। जो दूसरे के पास है, वह मेरा कैसे हो जाए। सारा सब मेरा कैसे हो जाए, पजेशन, सारी दुनिया का मैं मालिक कैसे हो जाऊं। और दैवी संपदा देने की भावना है। जो भी मेरे पास है, वह बंट जाए। जो भी मैं हूं, उसे मैं साझेदारी

कर लूं। जो मेरे पास है, वह दूसरा भी उसमें रस ले पाए, वह दूसरे का भी हो सके।
कृष्ण यह नहीं कहते, क्या दान--कि धन का दान, कि संपत्ति का दान, कि भूमि का दान--यह सवाल नहीं है। सिर्फ दान! भाव!
तो महावीर अपने ज्ञान को बांट रहे हैं, कि बुद्ध अपनी करुणा को बांट रहे हैं, कि जीसस अपनी सेवा को। यह सवाल नहीं है कि क्या! बहुत गहरे में जो भी मैं हूं, वह मेरा न रहे, वह सबका हो जाए। जो भी मैं हूं, मैं बिखर जाऊं और सबमें चला जाऊं; मेरा अपना कुछ बचे न। इसके स्वाभाविक बड़े गहरे परिणाम होंगे।
जितना ही मैं छीनने का सोचता हूं, उतना ही मेरा अहंकार बढ़ता है। इसलिए जितनी मेरे पास संपदा होगी, जितनी मेरे पास सुविधा-साधन होंगे, उतना अहंकार होगा। जितना ही मैं बंटता हूं, उतना ही मैं पिघलता हूं। जितनी ही मैं साझेदारी करता हूं, जितना ही मेरा अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व में लीन होता है, उतना ही मेरा अहंकार शून्य होगा।
दैवी संपदा के पास अस्मिता नहीं बचेगी, और आसुरी संपदा के पास सिर्फ अस्मिता ही बचेगी। अहंकार शैतान की आखिरी उपलब्धि है। निरअहंकारिता परमात्म-भाव है।
तो दान का अर्थ है, देना; और देने की वृत्ति को विकसित करना; और उस घड़ी
की प्रतीक्षा करना, जब मेरे पास कुछ भी न होगा देने को। इसका यह अर्थ नहीं है कि आपके पास कुछ भी न होगा। सब कुछ होगा; जितना आप देंगे, उतना बढ़ेगा। जितना आप बांटेंगे, उतना ज्यादा होगा। जितना आप अपने को शून्य करेंगे, उलीचेंगे, उतना ही पाएंगे कि साम्राज्य बड़ा होता जाता है। देने का अर्थ यह नहीं है कि आपके पास कुछ बचेगा नहीं, लेकिन देने का भाव कि कुछ भी न बचे। दान, प्रेम का सार है। छीनना, घृणा का आधार है। तो अगर प्रेम में भी आप दूसरे से कुछ लेना चाहते हैं, तो वह प्रेम नहीं है। वहां सिर्फ प्रेम के नाम पर शोषण है। जहां मांग है, वहां प्रेम की कोई संभावना नहीं है। प्रेम निपट दान है, बेशर्त। वह कुछ पाने की आकांक्षा से नहीं है, देना ही आनंद है। और जिसने लिया, उसके प्रति अनुग्रह है।
दान तथा इंद्रियों का दमन... ।
दान और इंद्रियों के दमन को कृष्ण ने एक साथ कहा। यह भी थोड़ा विचारणीय है। क्योंकि जितना ही आप देंगे, उतनी ही इंद्रियां अपने आप विसर्जित हो जाती हैं। जितना ही आप लेंगे, इकट्ठा करेंगे, उतनी ही इंद्रियां मजबूत होती चली जाती हैं। इंद्रियां छीनना चाहती हैं; और जो देने को राजी है, उसकी इंद्रियां धीरे-धीरे शून्य हो जाती हैं। इंद्रियों का दमन इंद्रियों से लड़कर नहीं उपलब्ध होता है। इंद्रियों का दमन स्वयं की निजता को पूरी तरह बांट देने से उपलब्ध होता है। जो अपने भीतर अपने लिए बचाता नहीं, उसकी इंद्रियां अपने आप शांत हो जाती हैं।
यह जो इंद्रियों की शांति है, जो दान से या प्रेम से फलित होती है, इस शांति में और इंद्रियों को दबा लेने में बड़ा फर्क है, बुनियादी विरोध है। कोई व्यक्ति अगर इंद्रियों को जोर से दबा ले, तो भीतर अशांति पैदा होगी, शांति पैदा नहीं होगी।
आप किसी भी इंद्रिय को दबाकर देखें। और आप पाएंगे कि उस दबाने से और अशांति पैदा होती है, क्योंकि इंद्रिय निकलना चाहती है, बाहर आना चाहती है, भोग में जाना चाहती है। इंद्रिय आपको कहीं ले जाना चाहती है।
जो दबाएगा, वह तो और अशांत हो जाएगा। लेकिन अगर कोई अपने को बांटने को राजी है, तो उसकी इंद्रियां अपने आप शांत होती चली जाएंगी।
इस फर्क को आप ऐसा समझें। आप उपवास करें एक दिन। तो क्या करेंगे? उपवास करेंगे, तो दबाएंगे भूख को। भूख रोज लगी है, आज भी लगेगी; उसे दबाएंगे। दबाएंगे तो भूख और फैलेगी रोएं-रोएं में भीतर। और चौबीस घंटे सिर्फ भोजन का स्मरण आपका स्मरण होगा।
लेकिन घर में एक मेहमान आया है। और घर में इतना ही भोजन है कि या तो आप
कर लें या मेहमान को करा दें। और आप प्रसन्न हैं कि मेहमान घर में आया, और आप आनंदित हैं। तो आपने मेहमान को भोजन कराया। यह उपवास बड़े और ढंग का

होगा। इस उपवास में एक खुशी होगी, एक प्रफुल्लता होगी। भूख अब भी लगी है, लेकिन आपने भूख को दबाया नहीं, आपने भोजन को बांटा, आपने दान किया।
इसलिए मां, अगर बेटा भूखा हो, तो उसे खिला देगी, खुद भूखी सो जाएगी। इस उपवास का मजा और है। इस उपवास में जो आनंद है, वह किसी साधारण साधु के, संन्यासी के उपवास में नहीं हो सकता। क्योंकि वह केवल भूख को दबा रहा है। इसने भूख को दबाया नहीं है, भोजन को बांटा है। यहां बुनियादी फर्क है। यहां किसी और की भूख को पूरा किया है। और उसकी भूख को पूरा किया है, जिसके प्रति प्रेम है।
दान, अगर जीवन के सब पहलुओं में समा जाए, तो सभी इंद्रियां अपने आप शांत हो जाती हैं। और दान से ही दमन आए, तो दमन में एक उत्सव है। बिना दान के दमन आए--लोभ से भी दमन आता है--तब एक तरह की विकृति और कुरूपता है।
यह फर्क बारीक है, नाजुक है। और इसको आप प्रयोग करेंगे, तो ही ख्याल में आ सकता है। अपने को वंचित करना किसी को देने के लिए, तब उस वंचित करने में एक सुख है। और सिर्फ अपने को वंचित करना बिना किसी को देने के ख्याल से, उसमें कोई रस नहीं है, कोई सुख नहीं है। उसमें पीड़ा होगी।
तो आप भूखे रह सकते हैं, और जो पैसा बचे, वह बैंक में जमा कर सकते हैं।
उस भूख में सिर्फ भूख ही होगी।
भूखे रहना प्राथमिक न हो, किसी का पेट भरना प्राथमिक हो। और अगर उसके पीछे भूखे रहना पड़े, तो भूखे रहने की स्वीकृति हो।
दान से सारी इंद्रियां रूपांतरित हो सकती हैं। आप नग्न खड़े हो जाएं सड़क पर, यह एक बात है। यह नग्नता अधूरी है, और इस नग्नता में अहंकार है। लेकिन कोई नग्न खड़ा हो और अपने वस्त्र उसको ओढ़ा दें, उस नग्नता का रस और है। उस नग्नता में न अहंकार है, न तप का कोई भाव है। उस नग्नता की पवित्रता और पूर्णता और है। उसका गुणधर्म और है।
लेकिन अक्सर यह हुआ कि जो भी धर्म दान के माध्यम से जीवन को रूपांतरित करने को पैदा हुए, दान तो भूल गया, वह जो दान का आधा हिस्सा था, वह भीतर रह गया। उस आधे हिस्से का कोई अर्थ नहीं है।
आप खूब उपवास कर सकते हैं, लेकिन आपका उपवास किसी के पेट भरने का हिस्सा होना चाहिए। आप बिल्कुल दरिद्र हो सकते हैं, उसका कोई मूल्य नहीं है। आपकी दरिद्रता किसी को समृद्ध करने का हिस्सा होना चाहिए, तब बात पूरी होती है। और तब जीवन में इंद्रियों का उत्पात जिस भांति शांत होता है, उस भांति कोई भी दमन करके कभी उन्हें शांत नहीं कर पाया।
यज्ञ, स्वाध्याय, तप, शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।
यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का नाम है। उसके बाह्य रूप से तो हम परिचित हैं। लेकिन बाह्य रूप तो सिर्फ प्रतीक है। बाहर के प्रतीक से कुछ भीतर की बात कहने की कोशिश की गई है। यज्ञ एक तकनीक है, एक विधि है, कि भीतर कैसे अग्नि प्रज्वलित हो, और उस अग्नि में मैं कैसे भस्मीभूत हो जाऊं। सारा जीवन अग्नि का खेल है। आप भी अग्नि के एक रूप हैं। भोजन पच रहा है, खून बन रहा है, खून दा.ैड रहा है, हृदय गति करता है, श्वास चलती है, सब अग्नि का खेल है। शरीर से अग्नि खो जाए, सब खो जाता है। आप ठंडे हुए, कि मौत आ गई। मौत सदा ठंडी है। जीवन सदा गर्म है। जीवन एक उष्णता है। हिंदुओं ने इस उष्णता के बड़े गहरे प्रयोग किए हैं। उन गहरे प्रयोगों का नाम यज्ञ है। यह जो जीवन की उष्णता है, जिससे साधारण काम चल रहा है, भोजन पच रहा है...
। आप सोच भी नहीं सकते, वैज्ञानिक भी अभी तक राज को पूरा खोल नहीं पाए। इस छोटे-से शरीर में बड़ा विराट कार्य चल रहा है। भोजन आप करते हैं, पचता है, खून बनता है, मांस-मज्जा बनती है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक आदमी के शरीर के भीतर जितना काम होता है--एक रोटी को हम डालते हैं, खून और मांस-मज्जा बन जाती है। अभी तक रोटी को मशीन में डालकर खून, मांस-मज्जा बनाने की कोई हम व्यवस्था नहीं खोज पाए हैं। वैज्ञानिक सोचते हैं कि कभी यह संभव होगा--पक्का नहीं कहा जा सकता कब, लेकिन कभी संभव होगा--तो एक आदमी का शरीर जितना काम करता है, इतना काम करने के लिए कम से कम चार वर्ग मील की यांत्रिक व्यवस्था करनी पड़ेगी। इतनी बड़ी फैक्टरी चार वर्ग मील के क्षेत्र पर फैले, तब हम आदमी के शरीर के भीतर जो

काम चल रहा है पूरा, इतना काम उसमें कर पाएंगे। बड़ा अदभुत काम चल रहा है, और बड़े चुपचाप चल रहा है।
लेकिन सबके भीतर--जैसा हिंदुओं की धारणा, योग की धारणा है--सबके भीतर
एक अग्नि प्रज्वलित है; अग्नि सारा काम कर रही है। प्रदीप्त अग्नि है भीतर। श्वास हम लेते हैं, वह भी अग्नि ही है। दीया जलता है, वह भी अग्नि ही है। वैज्ञानिक उसको आक्सीडाइजेशन कहते हैं।
एक दीया जल रहा हो, और जोर से हवा का झोंका आए, आप डर जाएंगे कि कहीं बुझ न जाए; बर्तन से ढंक दें, कांच के बर्तन से ढंक दें। थोड़ी देर, क्षणभर तो जलता रहेगा, फिर बुझ जाएगा। तूफान शायद न बुझा पाता, लेकिन ढंके हुए बर्तन में बुझ जाएगा, क्योंकि प्रतिपल जलने के लिए आक्सीजन चाहिए। वह जितनी आक्सीजन भीतर है, उतनी देर जल जाएगा, फिर बुझ जाएगा।
चौबीस घंटे हम श्वास ले रहे हैं, उससे आक्सीजन भीतर जा रही है, वह अग्नि है, सूक्ष्म अग्नि है। श्वास बंद हुई कि आदमी मरा। श्वास ठीक से न ली, तो जीवन क्षीण हो जाता है।
तो योग की प्रक्रियाओं के द्वारा भीतर की इस अग्नि को धू-धू करके प्रज्वलित करने की प्रक्रियाएं हैं। उनका नाम यज्ञ है। और जब यह धू-धू करके भीतर की अग्नि पूरी जलती है, तो इससे सिर्फ भोजन ही नहीं पचता, शरीर ही नहीं चलता, जीवन के साधारण दैनंदिन कार्य ही नहीं होते, धू-धूकर जब अग्नि जलती है, तो उसमें हमारा अहंकार जल जाता है। और उस अग्नि से गुजरकर ही हमें पहली दफा पूरी दिव्यता का अनुभव होता है। और अहंकार के जलते ही कचरा जल जाता है, स्वर्ण निखरकर बाहर आता है।
स्वाध्याय का अर्थ है, अपना सदा अध्ययन करते रहना। स्वाध्याय का अर्थ गीता पढ़ना नहीं है, वह गौण अर्थ है। वेद पढ़ना नहीं है, वह गौण अर्थ है। स्वाध्याय का अर्थ है, स्वयं का निरंतर अध्ययन, स्वयं को निरंतर देखते रहना। एक-एक छोटी-छोटी गतिविधि को पहचानते रहना, परखते रहना, विश्लेषण करते रहना। क्या मैं कर रहा हूं, क्यों कर रहा हूं, क्या छिपे कारण हैं--उन सबकी पूरी जांच-परख करते रहना। स्वयं को एक अध्ययन की जीवंत प्रक्रिया बना लेना। स्वप्न भी भीतर पैदा हो, तो उसका भी अध्ययन करना कि वह क्यों घटा!
कोई स्वप्न ऐसे ही नहीं घटता। आप रात स्वप्न देखते हैं, किसी की हत्या
कर देते हैं। ऐसे ही हत्या नहीं होती। स्वप्न में भी ऐसे ही नहीं होती। कहीं कुछ छिपा राज है; कुछ होना चाहता है, स्वप्न में उसको अभिव्यक्ति मिली है। स्वप्न से लेकर कृत्यों तक सभी कुछ अध्ययन करते रहना। स्वयं को एक शास्त्र बना लेना और उससे सीखना कि क्या हो रहा है। लिए गए परिणाम और नतीजों पर आगे उपयोग करने का नाम तप है।
स्वाध्याय तथा तप... ।
जो स्वयं के अध्ययन से निष्कर्ष हों, उन निष्कर्षों के अनुसार चलने
का नाम तप है। तप का मतलब इतना नहीं है कि अपने को अकारण सताना, परेशान करना, कि अपने को दुख देना। तप का अर्थ है, जो मेरे अध्ययन से नतीजे निकले हैं, उन नतीजों के अनुसार जीवन को चलाना।
कठिन होगा, और दुख झेलना पड़ेगा, संकल्प का उपयोग करना पड़ेगा। क्योंकि पुरानी आदतें हैं, वे सुगम हैं। चाहे उनसे दुख मिलता हो अंत में, लेकिन वे सुगम हैं। उन्हें बदलना दुर्गम होगा, दुख उठाना पड़ेगा। लेकिन एक बार वे बदल जाएं, तो आनंद की मंजिल उनसे उपलब्ध होती है। सम्यकरूप से स्वयं के निरीक्षण से जो नतीजे हाथ आए हों, उन नतीजों को लिखकर रख देना नहीं, वरन उनके अनुसार जीवन को चलाना तपश्चर्या है।
और शरीर और इंद्रियों के सहित अंतःकरण की सरलता।
और जीवन के सब पहलुओं पर जटिलता की बजाय सरलता को जगह देना। जो भी जटिल हो, उससे बचने की कोशिश करना। जो भी सरल हो, उसको स्थापित करना। आमतौर से हम उलटा करते हैं। जो भी जटिल हो, वह हमें आकर्षित करता है।
अगर एक पहेली सामने रखी हो, जो बहुत उलझन वाली हो, तो हम पच्चीस काम छोड़कर उसको हल करने में लग जाते हैं। जटिल हमें आकर्षित करता है। जटिल क्यों आकर्षित करता है?

एवरेस्ट है वहां, तो आदमी का मन चढ़ने का होता है। एडमंड हिलेरी से किसी ने पूछा कि तुम एवरेस्ट पर चढ़ने के लिए इतने पागलपन से क्यों भरे रहे? तो उसने कहा, चूंकि एवरेस्ट है, इसलिए चढ़ना ही पड़ेगा; चुनौती है।
तो जितनी जटिल हो चीज... । अब चांद पर जाने की कोई जरूरत नहीं है, पर जाना पड़ेगा। मंगल पर भी जाने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जाना पड़ेगा, क्योंकि मंगल है और हमारा मन बेचैन है। हालांकि आप चांद पर पहुंच जाएं कि मंगल पर, आप ही रहेंगे! जो उपद्रव आप यहां कर रहे हैं, वहां करेंगे! मंगल आप में कोई फर्क ला नहीं सकता। और यहां दुखी हैं, तो वहां दुखी होंगे! पहुंचकर कुछ भी होगा नहीं।
लेकिन जटिल आकर्षित करता है, क्योंकि जटिल में चुनौती है। चुनौती से अहंकार भरता है। तो जितना कठिन काम हो, उतना करने जैसा लगता है। जितना सरल काम हो, उतना करने जैसा नहीं लगता, क्योंकि सरलता से कोई अहंकार को भरती नहीं मिलती।
कृष्ण कहते हैं, शरीर, इंद्रियों और अंतःकरण की सभी आयामों में सरलता।
जो सरल हो, उसको चुनें। और धीरे-धीरे आप पाएंगे, आपका अहंकार जाने लगा। जो कठिन है, उसको चुनें। और आप पाएंगे, आपका अहंकार बढ़ने लगा।
आदमी खुद भी अपने लिए कठिनाइयां पैदा करता है। क्योंकि कठिनाइयां पैदा करके जब उनको वह पार कर लेता है, तो वह दुनिया को कह सकता है, देखो, इतनी कठिनाइयों को मैंने पार किया! सरलता को आप किसको बताने जाइएगा कि पार किया! उसमें पार करने जैसा कुछ था ही नहीं।
अगर आप जीवन में सरलता को नियम बना लें और जब भी कोई विकल्प सामने हो,
तो सरल को चुनें... । बहुत कठिन है यह, सरल को चुनना, क्योंकि अहंकार को इसमें कोई रस नहीं आता। सिर के बल खड़े हो जाएं रास्ते पर, पचास लोग भीड़ लगाकर खड़े हो जाते हैं। आप दोनों पैर के बल खड़े हों, फिर कोई भीड़ लगाकर खड़ा नहीं होता। सिर के बल खड़े होते से ही भीड़ लग जाती है, क्योंकि आप कुछ कर रहे हैं, जो कठिन है। हालांकि सिर के बल खड़े होने से कुछ मिलता नहीं, लेकिन भीड़ इकट्ठी होती है। और भीड़ इकट्ठी हो, तो हमें रस आता है।
काफ्का, एक बहुत प्रसिद्ध कथाकार, उसने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। एक आदमी उपवास करता था, उपवास का प्रदर्शन करता था। वह चालीस दिन तक उपवास कर लेता था। लोग बड़े प्रभावित होते थे। गांव-गांव वह जाता था और चालीस दिन के उपवास करता था। फिर एक सरकस गांव में थी जहां वह उपवास कर रहा था, तो सरकस वाले लोगों को जंच गई बात, उन्होंने उसको सरकस में ले लिया। सरकस में भी उसको देखने बड़ी भीड़ इकट्ठी होती थी। लेकिन यह धीरे-धीरे... ।
अगर आप रोज ही सिर के बल खड़े रहें, तो फिर भीड़ इकट्ठी नहीं होगी। फिर लोग कहते हैं, वह खड़ा ही रहता है; ठीक है।
वह जो आदमी उपवास करता था, वह करता ही था। तो पहले तो लोगों को कठिन लगा, चालीस दिन! इधर करता, तो कोई कठिन भी नहीं लगता हमको। हमारे मुल्क में कई लोग कर ही रहे हैं। जर्मनी में कर रहा था, तो बहुत कठिन बात थी; चालीस दिन बहुत बड़ी बात है। पर धीरे-धीरे लोगों को लगा, यह करता ही है, अभ्यासी है। लोगों ने उसकी झोपड़ी का टिकट लेना बंद कर दिया।
फिर सरकस के लोगों को लगा, अब कोई ज्यादा उसकी टिकट भी नहीं खरीदता, तो फिजूल उसको क्यों ढोना! तो उन्होंने उससे कहा कि अब तुम जाओ। पर उसने कहा कि अब मैं जा नहीं सकता, क्योंकि मैं बिना उपवास किए रह नहीं सकता। मुझे रहने दो। तो उन्होंने सबसे पीछे जहां जंगली जानवरों के कुछ कटघरे थे, वहां उसका भी एक कटघरा बना दिया।
लोग आते थे फिर भी, कोई शेर को देखने आता, कोई हाथी को देखने आता, तो उसके कटघरे से निकलते थे। वह इससे भी रस लेता था। वह अपने मन में यह सोचता था कि चलो, मुझे देखने आते हैं। हालांकि उसको लगता था कि अब यहां मुझे देखने कोई आता नहीं।
जब चालीस दिन का कोई परिणाम न रहा, तो उसने घोषणा की कि अब मैं सदा के लिए उपवास कर रहा हूं। कोई अस्सी दिन वह टिक गया। जब अस्सी दिन की खबर पहुंची, तो लोग आने शुरू हुए। नब्बे दिन के करीब पहुंच गया, तो एक पत्रकार ने उसके कान के पास जाकर पूछा, क्योंकि उसकी आवाज अब बिल्कुल क्षीण हो गई

थी, कि तू यह किसलिए कर रहा है? तो उसने बिल्कुल क्षीण आवाज में कहा कि मैं सब रिकार्ड तोड़ देना चाहता हूं; मर जाऊं भला, मगर रिकार्ड तोड़ देना है। मुझसे ज्यादा बड़ा उपवास करने वाला दुनिया में कभी भी नहीं हुआ!
जटिल में एक रस है, रिकार्ड तोड़ने का रस। सरल में कोई रिकार्ड ही नहीं है, सभी लोग उसको करते ही रहे हैं।
कृष्ण कहते हैं, दिव्यता की तरफ जिसे जाना है, उसे सरलता का चुनाव जीवन के सब पहलुओं पर... ।
जब भी चुनाव हो, तो सरल का, सरलतम का। और आप धीरे-धीरे पाएंगे, अहंकार बचा ही नहीं जिसको मिटाना है। और अहंकार खो जाए, तो आसुरी संपदा की जड़ कट गई। निरअहंकारिता आ जाए, तो दैवी संपदा का द्वार खुल गया।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
दूसरा प्रवचन

दैवीय लक्षण

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्नीरचापलम्।। 2।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।। 3।।
दैवी संपदायुक्त पुरुष के अन्य लक्षण हैंः अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति और किसी की भी निंदादि न करना तथा सब भूत प्राणियों में दया, अलोलुपता, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव; तथा तेज, क्षमा, धैर्य और शौच अर्थात बाहर-भीतर की शुद्धि एवं अद्रोह अर्थात किसी में भी शत्रु-भाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव--ये सब तो हे अर्जुन, दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आश्चर्य है कि जब आप बोलते हैं, तभी वाणी के माध्यम से हमें आपका शिखर थोड़ा दिखाई पड़ता है। ऐसा क्यों?

स्वभावतः, शब्द समझ में आते हैं; मौन समझ में नहीं आता। शब्द तो बुद्धि से भी पकड़ लिए जाते हैं, मौन को पकड़ने के लिए तो हृदय चाहिए। बुद्धि का शिक्षण है आपके पास; बुद्धि की धारणाओं की, बुद्धि के तर्क की, बुद्धि की भाषा की पकड़ है। मौन, शून्य, ध्यान की कोई पकड़ नहीं है।
जिसे आप समझ सकते हैं, उसे आप समझ लेते हैं। उसे भी पूरा समझते हैं, कहना कठिन है। क्योंकि जो केवल शब्द को ही समझता है और शून्य को नहीं, वह शब्द को भी पूरा नहीं समझ पाएगा।
साधारण बोलचाल के शब्द, साधारण जीवन और काम और चर्या के शब्द तो वस्तुओं के प्रतीक हैं। शास्त्रों के शब्द अनुभूतियों के प्रतीक हैं। और अनुभूतियां तो बड़ी सूक्ष्म हैं, आकार में उन्हें बांधा नहीं जा सकता; नाम देना संभव नहीं है; परिभाषाएं बनती नहीं हैं; फिर भी शब्द आपको सुनाई पड़ते हैं और सुनाई पड़ने से आपको लगता है कि समझ में आ गया।
थोड़ी-सी झलक मिलती है, तो उससे मुझसे संबंध बनता है। अगर मैं चुप बैठा हूं, तो फिर कोई संबंध नहीं बनता, सेतु खो जाता है। फिर जब मैं चुप बैठा हूं, तब आप अपनी ही बातों को सोचते हैं; मुझसे संबंध नहीं बनता, आपका अपने से ही संबंध रहता है। जब मैं बोल रहा हूं, तब थोड़ी देर को आपका मन बंद हो जाता है। आपका अपने मन से संबंध टूट जाता है और मुझसे संबंध जुड़ जाता है। इसलिए सुनकर आपको जितनी शांति मिलती है, उतनी अगर मैं शांत बैठा हूं,
तो मेरे पास शांत बैठकर न मिलेगी। मिलनी चाहिए ज्यादा। क्योंकि जब मैं मौन हूं, तब आप मेरे पास हैं ही नहीं। तब आप अपने पास हैं। आपका मन भीतर चल रहा है। आपका जो निरंतर का उपद्रव है, उसमें आप डूबे हैं। जब मैं बोल रहा हूं, तब बीच-बीच में आपका मन छिटक जाता है; आप थोड़े मेरे पास आ जाते हैं। उस क्षण में कुछ प्रतीतियां आपको हो सकती हैं।
लेकिन ध्यान रहे, जो मैं कह रहा हूं वह, शब्द में कहा जाने योग्य नहीं है। इसलिए शब्द से ही जो मुझे समझेंगे, वे नहीं समझ पाएंगे। और उनकी समझ अधकचरी होगी; नासमझी ज्यादा होगी उससे, समझदारी कम। मौन में भी मुझे समझने की कोशिश करनी होगी। स्वभावतः, शब्द की तैयारी है; जीवनभर शब्द आपने सीखा है, मौन आपने कभी सीखा नहीं। उसे भी सीखना होगा, उसके प्रशिक्षण से भी गुजरना होगा। ध्यान उसी का प्रशिक्षण है।
इसलिए आधा जोर मेरा मैं आपसे बोलता हूं उस पर है, और आधा जोर मेरा इस
पर है कि आपके भीतर बोलने की प्रक्रिया बंद हो, आप ध्यानस्थ हों। जैसे- जैसे आप ध्यानस्थ होंगे, वैसे-वैसे ही मेरा न बोलना आपकी ज्यादा समझ में

आएगा। और बोलने में भी जो आप समझेंगे, वह शब्दों के पार है, उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाएगी।
शब्द भी शून्य के संकेत बन जाते हैं, लेकिन उसके लिए हृदय की तैयारी चाहिए। और हम एक ही तरह का संबंध जानते हैं, एक ही कम्युनिकेशन, एक ही संवाद का रास्ता जानते हैं कि बोलें। भाषा के अतिरिक्त हमारे बीच कोई संबंध नहीं है। भाषा न हो, हमारे सब संबंध खो जाएं।
पश्चिम के मनसविद पति-पत्नियों को सलाह देते हैं कि जैसा प्राथमिक क्षणों में पति और पत्नी ने एक-दूसरे से प्रेम के शब्द बोले थे, उनको जारी रखना चाहिए।
स्वभावतः, पति-पत्नी उन्हें छोड़ देते हैं। उनकी जरूरत नहीं रह जाती।
जब आप पहली बार किसी के प्रेम में पड़ते हैं, तो कुछ शब्द बोलते हैं, जो कि निरंतर साथ रहने पर, विवाहित हो जाने पर, फिजूल मालूम पड़ेंगे।
लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं, उन्हें दोहराते रहना चाहिए, अन्यथा प्रेम समाप्त हो जाएगा। क्योंकि शब्द ही हमारा कुल संबंध है। तो पति चाहे वह बीस वर्ष से पत्नी के साथ हो, तो भी उसे रोज दोहराना चाहिए कि मैं तेरे प्रेम में पागल हूं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, चाहे यह सत्य न भी मालूम पड़े, चाहे यह प्रतीति न भी होती हो, लेकिन प्रेम की भाव-भंगिमा, प्रेम के शब्द, प्रेम की मुद्राएं जारी रखनी चाहिए, अन्यथा संबंध टूट जाएगा।
अधिक पति-पत्नियों का जीवन उदास और ऊब से भर जाता है। उसका बहुत कारण
यह नहीं है कि उनके जीवन का प्रेम समाप्त हो गया। प्रेम था, तो समाप्त होता भी नहीं। शब्द थे पहले, अब वे शब्द छूट गए। और निरंतर उन्हीं शब्दों को दोहराना बेहूदा मालूम पड़ता है। शब्द छूट गए, संबंध छूट गया।
मौन को तो कोई समझता नहीं। अगर कोई आपको प्रेम करता हो और कहे न, तो आप पकड़ ही न पाएंगे कि प्रेम करता है। किसी तरह प्रकट न करे--भाव-भंगिमा से, आंख के इशारे से, शब्दों से, ये सभी शब्द हैं--चुप रहे, तो आप कभी भी न पहचान पाएंगे कि कोई आपको प्रेम करता है। कहना पड़ेगा, प्रकट करना पड़ेगा।
और तब एक बड़े मजे की घटना घटती है। प्रेम न भी हो और अगर कोई कुशल हो प्रकट करने में, तो आपको लगेगा कि प्रेम है। बहुत बार, जो अभिव्यक्ति में कुशल है, वह प्रेमी बन जाता है। जरूरी नहीं है कि प्रेम हो। क्योंकि प्रेम को आप समझते नहीं, आप सिर्फ शब्दों को समझते हैं।
पति-पत्नी उदास होने लगते हैं, क्योंकि उन्हीं-उन्हीं शब्दों को क्या बार-बार कहना! फिर उनमें कुछ रस नहीं मालूम पड़ता। लेकिन शब्दों के खोते ही संबंध खो जाता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक नौकरी के लिए इंटरव्यू दे रहा था। और इंटरव्यू लेने वाले अफसर ने कहा कि क्या आप शादीशुदा हैं? उसने कहा कि नहीं, मैं वैसे ही दुखी हूं।
शादीशुदा आदमी की शक्ल दूर से ही पहचानी जा सकती है। एक ऊब घेर लेती है। और इस ऊब का कुल कारण इतना है कि जिन शब्दों के कारण प्रेम प्राथमिक रूप से संवादित हुआ था, वे शब्द आपने छोड़ दिए।
प्रेम भी समझ में नहीं आता शब्द के बिना, तो प्रार्थना तो कैसे समझ में आएगी, परमात्मा तो कैसे समझ में आएगा! क्योंकि प्रेम पहला चरण है, प्रार्थना दूसरा चरण है, परमात्मा अंतिम चरण है। फिर और गहरे चरण हैं; प्रेम, प्रार्थना, परमात्मा एक से ज्यादा गहरे हैं। परमात्मा को तो समझना बहुत ही कठिन है। उसके लिए भी हमें शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है।
इसलिए जब मैं बोलता हूं, तब आपको किसी शिखर की प्रतीति हो सकती है, लेकिन वह शिखर वास्तविक शिखर नहीं है। जिस दिन मैं चुप बैठा हूं आपके पास और आपको कुछ अनुभूति हो, उसी दिन जानना कि किसी वास्तविक की प्रतीति का पहला, पहला आघात, पहला संघात हुआ, पहली बिजली आपके भीतर कौंधी।
मेरे बोलने का सारा प्रयोजन ही इतना है कि कुछ लोगों को उस घड़ी के लिए तैयार कर लूं, जब मैं न बोलूं, तब भी वे समझ पाएं। और अगर कुछ लोग उसके लिए तैयार नहीं हो पाते, तो बोलना व्यर्थ गया जानना चाहिए।
बोलने की अपनी कोई सार्थकता नहीं है, सार्थकता तो मौन की ही है। बोलना ऐसे ही है, जैसे छोटे बच्चे को हम सिखाते हैं, ग गणेश का। ग का गणेश से कुछ लेना-देना नहीं है। ग गधे का भी उतना ही है। गणेश प्रतीक हैं; उसके सहारे

हम ग को समझाते हैं। फिर समझ जाने के बाद गणेश को याद रखने की जरूरत नहीं है। और जब भी आप ग पढ़ें, तो बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं कि ग गणेश का। और अगर यह दोहराना पड़े, तो आप पढ़ ही न पाएंगे। तब तो कुछ पढ़ना संभव न होगा; तब आप पहली कक्षा के बाहर कभी जा ही न पाएंगे।
तो जो भी मैं कह रहा हूं, वह ग गणेश का है। सब कहा हुआ प्रतीक है। तैयारी इसकी करनी है कि वह छूट जाए और आप चुप होने में समर्थ हो जाएं, तब जो दर्शन होगा, वह दर्शन वास्तविक शिखर का है।

दूसरा प्रश्नः रात आपने कहा कि प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचा देती
है और यह भी कहा कि प्रार्थना जीवन की शैली है। क्या इस विषय पर थोड़ा और प्रकाश डालेंगे? धर्म-साधना में प्रार्थना का क्या स्थान है?

प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचा देती है, शायद यह कहना बिल्कुल ठीक नहीं है। ज्यादा ठीक होगा कहना कि प्रार्थना परमात्मा बना देती है। प्रार्थना करते-करते ऐसा नहीं होता कि आप परमात्मा को पा लेते हैं; प्रार्थना करते-करते ऐसा होता है कि आप खो जाते हैं और परमात्मा बचता है। प्रार्थना की परिपूर्ण उपलब्धि आपके भीतर परमात्मा का आविष्कार है। प्रार्थना एक विधि है, जिससे हम अपने भीतर को निखारते हैं; वह एक छेनी है, जिससे हम पत्थर को तोड़ते हैं। और पत्थर में मूर्ति छिपी है। सिर्फ व्यर्थ पत्थर को तोड़कर अलग कर देना है, मूर्ति प्रकट हो जाएगी।
मूर्तिकार मूर्ति को बनाता नहीं, केवल उघाड़ता है। अनगढ़ पत्थर में छिपी जो पड़ी थी, मूर्तिकार उसे बाहर ले आता है। अनगढ़ पत्थर में जो-जो अंग व्यर्थ थे, गैर-जरूरी थे, उनको अलग करता है। इसे थोड़ा ठीक से समझें। मूर्तिकार मूर्ति को बनाता नहीं है, केवल उघाड़ता है, निर्वस्त्र करता है; वह जो ढंका था, उसे अनढंका कर देता है। मूर्ति तो थी ही, उस पर कुछ अनावश्यक भी जुड़ा था, उस अनावश्यक को तोड़ता है।
प्रार्थना आप में जो अनावश्यक है, उसको तोड़ती है; जो अनिवार्य है, उसको बचाती है। जो आत्यंतिक है, वही शेष रह जाता है; और जो भी सांयोगिक है, वह हट जाता है।
आपके जीवन के सारे संबंध सांयोगिक हैं, कि आप पिता हैं, कि पति हैं, या पत्नी हैं, या बेटे हैं; कि आप अमीर हैं कि गरीब हैं; कि आप बच्चे हैं, कि जवान हैं, कि बूढ़े हैं; सब सांयोगिक है। यह आपका होना वास्तविक होना नहीं है, कि आप गोरे हैं, कि काले हैं; सुंदर हैं, कुरूप हैं। यह सब सांयोगिक है, यह ऊपर-ऊपर है; यह आपकी वास्तविकता नहीं है। यह सब छांट देगी प्रार्थना। केवल वही बच जाएगा, जो नहीं छांटा जा सकता। केवल वही बच जाएगा, जो आप जन्म के साथ हैं। केवल वही बच जाएगा, जो मृत्यु के बाद भी आपके साथ रहेगा।
तो प्रार्थना मृत्यु की तरह है। वह आपके भीतर सब छांट डालेगी, जो व्यर्थ है, कचरा है, जो संयोग था, जो स्वभाव नहीं है।
ये दो शब्द समझ लेने जैसे हैं, संयोग और स्वभाव। संयोग वह है, जो आपको रास्ते में मिल गया है। एक दिन आपके पास नहीं था, आज है, एक दिन फिर नहीं होगा। स्वभाव वह है, जो आपको रास्ते में नहीं मिला; जिसको लेकर ही आप रास्ते पर उतरे हैं। जो जीवन के पहले था, वह स्वभाव है; जीवन के बाद भी होगा, वह स्वभाव है। जो जन्म और मृत्यु के बीच में मिलता है, वह संयोग है। प्रार्थना की कला संयोग को काटना, स्वभाव को बचाना है।
जापान में झेन फकीर अपने शिष्यों को कहते हैं, एक ही चीज खोजने जैसी है, वह है ओरिजनल फेस, तुम्हारा मौलिक चेहरा। शिष्य सदियों से पूछते रहे हैं गुरुओं से, कि क्या अर्थ है आपका? मौलिक चेहरे का क्या अर्थ है? तो गुरुओं ने कहा है, जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तब तुम्हारा जो चेहरा था, या जब तुम मर जाओगे, तब जो शेष बचेगा, वह तुम्हारा मौलिक चेहरा है, वह स्वभाव है, वह ओरिजनल है।
प्रार्थना उसको बचा लेती है। और वही परमात्मा है। जो स्वभाव है, वही परमात्मा है। जिसे हमने कभी पाया नहीं, जिसे हमने कभी अर्जित नहीं किया और जिसे हम चाहें भी, तो खो न सकेंगे; जिसे खोने का कोई उपाय नहीं है; जो मेरी

निजता है, जो मेरा होना है, मेरा बीइंग है; वही परमात्मा है और प्रार्थना उसकी तलाश है।
इसलिए मैंने कहा कि प्रार्थना परमात्मा को पहुंचने का मार्ग है। और
यह भी कहा कि प्रार्थना जीवन की शैली है।
निश्चित ही, प्रार्थना कोई एक कोने में नहीं हो सकती। ऐसा नहीं हो सकता कि सुबह आप प्रार्थना कर लें और फिर भूल जाएं। ऐसा नहीं हो सकता कि एक दिन रविवार को चर्च में प्रार्थना कर लें, कि धार्मिक उत्सव के दिन प्रार्थना कर लें, और फिर विस्मरण कर दें। प्रार्थना कोई खंड नहीं हो सकती, प्रार्थना जीवन की शैली हो सकती है।
जीवन की शैली का अर्थ यह है कि आप प्रार्थनापूर्ण होंगे, तो आपके चौबीस घंटे प्रार्थनापूर्ण होंगे। प्रार्थना अगर होगी, तो श्वास जैसी होगी। आप ऐसा नहीं कह सकते कि सुबह श्वास लूंगा, दोपहर विश्राम करूंगा; कि जब फुरसत होगी तब श्वास ले लेंगे, बाकी काम बहुत हैं।
प्रार्थना श्वास जैसी बन जाए, तो शैली बनी। उसका अर्थ यह हुआ कि प्रार्थना करने की बात न हो, प्रार्थना आपके होने का ढंग हो जाए। उठें तो प्रार्थनापूर्ण हों; बैठें तो प्रार्थनापूर्ण हों; भोजन करें तो प्रार्थनापूर्ण हों।
हिंदू सदियों से भोजन के पहले ब्रह्म को स्मरण करता रहा है। वह भोजन
को प्रार्थनापूर्ण बनाना है। स्वयं को भोजन दे, इसके पहले परमात्मा को देता रहा है। उसका अर्थ है कि संयोग के पहले स्वभाव स्मरणीय है। मैं गौण हूं; मेरे भीतर जो छिपा, सबके भीतर छिपा जो परमात्मा है, वह प्रथम है। तो सबसे पहले उसका स्मरण।
आप पूछेंगे कि उठना-बैठना कैसे प्रार्थनापूर्ण हो सकता है?
एक महाकवि रिल्के का जीवन मैं पढ़ता था। रिल्के के जीवन में उनके मित्रों ने उल्लेख किया है कि रिल्के अपना जूता भी उतारता था, तो इतने मैत्री-भाव से, कि आप अगर देखते, तो लगता कि रिल्के अपने जूते के साथ प्रेम में है। वह अपने कपड़े भी उतारता, तो इस भाव से, जैसे कपड़े जीवंत हों, जैसे कपड़ों की आत्मा हो। ऐसा नहीं कि कपड़े उतारे और फेंक दिए। वह कपड़ों को सम्हालता। वह घर में पैर रखता, तो ऐसे जैसे कि जीवंत घर में प्रवेश कर रहा हो; जैसे जरा भी बेहूदे ढंग से चलेगा, तो घर को चोट पहुंचेगी।
रिल्के फूल को पौधे से तोड़ नहीं सकता था। फूलों का प्रेमी था। फूलों
के पास जाता, उनसे दो शब्द कहता, उनसे नमस्कार कर लेता, उनसे दो बातें भी कर लेता, लेकिन तोड़ना असंभव था।
हमें यह आदमी पागल लगेगा, क्योंकि जूते को क्या सदव्यवहार की जरूरत है! हम पूछेंगे कि जूते को क्या सदव्यवहार की जरूरत है! जूते को उतारकर फेंका जा सकता है। मकान में प्रवेश करते समय मंदिर में प्रवेश कर रहे हों, ऐसे भाव रखने की क्या जरूरत है! मकान मकान है; मंदिर मंदिर है।
लेकिन ध्यान रहे, हम जो भी करते हैं, वह हमें निर्मित करता है। और जिंदगी में बड़े-बड़े काम ज्यादा नहीं हैं। चौबीस घंटे तो छोटे-छोटे काम हैं। जूता उतारना है, भोजन करना है, कपड़े पहनना है, स्नान करना है, मकान में आना है, दुकान में जाना है। मंदिर तो आप कभी-कभी जाते हैं।
और ध्यान रहे, जो अपने मकान में निरंतर गैर-प्रार्थनापूर्ण ढंग से गया है, वह मंदिर में लाख कोशिश करे, प्रार्थनापूर्ण ढंग से नहीं जा सकेगा; उसकी आदत नहीं है। और जिसने अपने मकान को मकान समझा है, वह मंदिर को भी मकान से ज्यादा कैसे समझ सकता है! वस्तुतः मंदिर भी मकान ही है; नाम भर मंदिर है।
अगर मंदिर को मंदिर बनाना हो, तो हर मकान को मंदिर बनाना होगा, तभी यह संभव है। तब मकान मिट जाएंगे, तब सभी मंदिर हो जाएंगे। और जब आप हर मकान में मंदिर की तरह प्रवेश करेंगे, यह प्रवेश आपकी वृत्ति को बदलेगा। यह प्रवेश आपके भाव को बदलेगा। यह प्रवेश आपको निर्मित करेगा। फिर आप जहां भी जाएंगे, वह मंदिर हो, कि मस्जिद हो, कि गुरुद्वारा हो, कि साधारण मकान हो, कि एक झोपड़ा हो, कि महल हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल मकानों का नहीं है, सवाल आपका है। सवाल कहां आप प्रवेश करते हैं, इसका नहीं; कौन प्रवेश करता है, इसका है।

अगर आपने जूते प्रेम से उतारे हैं, कपड़े सदभाव से रखे हैं, वस्तुओं से
भी मैत्री का व्यवहार किया है, यह सारा व्यवहार आपको रूपांतरित करेगा। यह आपकी शैली बन जाएगी।
जीवन के प्रति प्रेम का जो व्यवहार है, उस शैली को मैं प्रार्थना कहता हूं। और अगर हम चौबीस घंटे उसमें डूब सकें, तो ही, तो ही जीवन में क्रांति हो सकती है। इसलिए प्रार्थना कोई खंड नहीं है, कोई अंश नहीं है, कि आपने किया और निपट गए।
लोग प्रार्थना कर रहे हैं, पर उनके जीवन में प्रार्थना का कोई सुर सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि प्रार्थना को उन्होंने एक काम बना लिया है। वे सुबह पांच मिनट बैठकर प्रार्थना कर लेते हैं। अगर जल्दी हो, तो पांच मिनट की प्रार्थना वे दो मिनट में कर लेते हैं। अगर फुरसत हो, कोई काम न हो, तो दस मिनट भी कर लेते हैं। लेकिन प्रार्थना उनके जीवन की आधारशिला नहीं है, हजार कामों में एक काम है।
और अगर प्रार्थना हजार कामों में एक काम है, तो प्रार्थना हो ही नहीं सकती। और परमात्मा अगर हजार खोजों में एक खोज है, तो उस खोज का कोई उपाय नहीं है। जिस दिन प्रार्थना ही जीवन की विधि हो जाए... ।
कबीर को किसी ने पूछा है कि अब तुम सिद्ध हो गए, अब तुम यह कपड़ा बुनना बंद कर दो। क्योंकि कबीर जुलाहे थे और जुलाहे बने रहे। और तुम कपड़ा बुनने में लगे रहते हो, फिर कपड़ा बुन कर बेचने जाते हो बाजार में, तुम्हें समय कहां मिलता है? प्रार्थना-पूजा... !
तो कबीर ने कहा कि जो भी मैं कर रहा हूं, वह प्रार्थना है; जो भी मैं कर रहा हूं, वह पूजा है! जब मैं कपड़ा बुनता हूं, तो मैं परमात्मा को बुन रहा हूं। जब मैं कपड़ा बेचता हूं, तो मैं परमात्मा को बेच रहा हूं। जब मैं बाजार जा रहा हूं, तो मैं राम की तलाश में जा रहा हूं, जिसको कपड़े की जरूरत है। इसलिए अलग से प्रार्थना करने का क्या अर्थ है!
जब तक अलग से प्रार्थना करनी पड़े, तब तक जानना, प्रार्थना का स्वाद आपको लगा नहीं। जिस दिन प्रार्थना जीवन की शैली हो जाए; आप जो करें, वह प्रार्थनापूर्ण हो, प्रेयरफुल हो; जो करें, उसमें से परमात्मा की तरफ आपका बहाव हो; जो करें, उसमें परमात्मा का स्मरण हो; कुछ न भी कर रहे हों, तो उस न-होने के क्षण में भी परमात्मा की मौजूदगी हो। ऐसी सुरति से जो जीएगा, वह एक दिन परमात्मा तक पहुंच जाता है, ऐसा नहीं; एक दिन परमात्मा हो जाता है।
यह प्रार्थना का सतत प्रवाह, जैसे पानी गिरता हो प्रपात से, पत्थरों
को काट देता है। कोमल सा जल, सख्त से सख्त पत्थर को तोड़ देता है और बहा देता है। ऐसे ही कोमल-सी प्रार्थना सतत बहती रहे जीवन में, तो आपका जो भी पथरीला हिस्सा है, वह जो भी व्यर्थ है, सांयोगिक है, वह जो भी कूड़ा-कर्कट जन्मों- जन्मों में इकट्ठा किया है, वह चाहे कितना ही कठोर हो, पाषाणवत हो, वह सब प्रार्थना की धार उसे बहा देगी। और केवल वही बच रहेगा, जो आपकी वास्तविकता है, जो आपकी आत्मा है। इसे पा लेना ही परमात्मा को पा लेना है।

तीसरा प्रश्नः रात आपने कहा कि परम साधु एक क्षण में परम असाधु हो सकता है, लेकिन आपने यह भी कहा है कि अस्तित्व में पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं। क्या इसे स्पष्ट करिएगा?

अद्वैत स्थिति से पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है, द्वैत स्थिति से पीछे लौटने का सदा उपाय है। अद्वैत स्थिति अस्तित्व की स्थिति है; द्वैत स्थिति माया की स्थिति है। इसे थोड़ा समझ लें।
साधु हम किसे कहते हैं? वह जो असाधु से उलटा है। साधु की परिभाषा कौन करेगा? साधु की परिभाषा असाधु से होगी। अगर असाधु हिंसक है, तो साधु अहिंसक है। अगर असाधु चोर है, तो साधु अचोर है। अगर असाधु बुरा है, तो साधु भला है। अगर जगत में कोई असाधु न हो, तो साधु के होने की कोई जगह नहीं है। असाधु चाहिए साधु होने के लिए, द्वंद्व जरूरी है।
इसलिए साधुता, असाधुता दोनों ही माया के अंग हैं। अच्छा आदमी भी माया
से भरा है, बुरा आदमी भी। दोनों ही अंधे हैं, क्योंकि दोनों ने एक हिस्से

को चुना है दूसरे के विपरीत। और जिसके विपरीत हम लड़े हैं, उसमें गिर जाने का डर सदा है।
अगर आपके भीतर चोरी है... सबके भीतर चोरी है; सबके भीतर छीनने का मन है; सबके भीतर उसके मालिक हो जाने का मन है, जिसके हम मालिक नहीं हैं। तो चोरी की भावना सबके भीतर है; सबके भीतर चोर छिपा है। इस चोर से अगर आप राजी हो जाएं, इस चोर के साथ चलें, तो आप असाधु हो जाएंगे। इस चोर से आप लड़ें, इसकी आप न मानें, इसके विपरीत आप चलें, इससे उलटा चलना ही आपका ढंग हो जाए, तो आप साधु हो जाएंगे।
अगर आप साधु हो जाएंगे, तो भी चोर आपके भीतर छिपा है, मिट नहीं गया। सिर्फ आपने उसे दबाया है, उसकी मानी नहीं है। अगर आप चोर हो गए, तो भी आपके भीतर अचोर छिपा है।
जो कृष्ण कह रहे हैं दैवी संपदा, आसुरी संपदा, वे दोनों आपके भीतर हैं। तो जो चोरी कर रहा है, उसके भीतर भी अचोर छिपा है, वह भी नष्ट नहीं हो गया है, उसने उसे दबाया है। जब-जब चोर चोरी करने गया है, तब-तब उसके भीतर छिपे साधु ने कहा है, मत कर, बुरा है, पाप है। छोड़; इससे बच। लेकिन इन आवाजों को उसने अनसुना किया है; इन आवाजों के प्रति वह अपने को बधिर बना लिया है; इन आवाजों को उसने दबाया है; इन आवाजों की उसने उपेक्षा की है। पर ये वहां भीतर मौजूद हैं।
जो साधु हो गया है, अचोर हो गया है चोर को दबाकर, उसके भीतर भी चोर मौजूद है। वह भी कह रहा है कि कहां तू उलझा है! क्या तू कर रहा है! जीवन हाथ से जा रहा है। यह आत्मा-परमात्मा का पक्का नहीं है। स्वर्ग है या नहीं, निश्चित नहीं है। मृत्यु के बाद कोई बचता है, किसी ने लौटकर कहा नहीं है। यह सब कपोल-कल्पित हो सकता है। यह सब एक जागतिक गप्प हो सकती है। जिन्होंने कहा है, उन्होंने भी जीते-जी कहा है कि आत्मा अमर है। मरकर लौटकर उन्होंने भी नहीं कहा है। उनकी बात का भरोसा क्या है? और उनकी बातों में उलझकर तू जीवन का रस खो रहा है। ये लाख रुपए सामने पड़े हैं, कोई देखने वाला नहीं है, इन्हें तू उठा ले, इन्हें तू भोग ले।
साधु के भीतर भी चोर खड़ा है, असाधु के भीतर साधु खड़ा है; ये मिट नहीं गए हैं। और जो गणित की बात समझने की है, जो गहरे विज्ञान की बात समझने की है, वह यह कि जिसका हमने उपयोग किया है, वह थक जाता है। जैसे मेरे दो हाथ हैं; अगर मैं बाएं हाथ का उपयोग करूं दिनभर, तो बायां हाथ थक जाएगा; और दायां हाथ दिनभर विश्राम करेगा, ज्यादा शक्तिशाली होगा।
किसान जानते हैं कि अगर हमने इस वर्ष फसल एक जमीन पर ले ली है, तो वह थक
गई जमीन। जो जमीन बंजर पड़ी रही, जिसका हमने उपयोग नहीं किया, वह थकी नहीं है, वह ऊर्जा से भरी है।
तो अगर आपने अपने भीतर के साधु का उपयोग किया है, तो असाधु शक्तिशाली है, साधु थक गया है। जिसका उपयोग करेंगे, वह थकेगा। जो नहीं थका है, जो बैठा विश्राम कर रहा है, वह शक्तिशाली है।
इसलिए मैं कहता हूं कि परम साधु एक क्षण में परम असाधु हो सकता है, परम असाधु एक क्षण में परम साधु हो सकता है। दोनों तरह की घटनाएं घटती रही हैं। घटने का पीछे विज्ञान है। क्योंकि जिसको आपने पकड़ा है, वह थक गया, ऊब गया। उससे आप बेचैन हो गए हैं। उसको कर-करके भी कुछ बहुत पाया नहीं है। इसलिए बड़े मजे की बात है, भले लोग रात सपने बुरे देखते हैं; बुरे लोग बुरे सपने नहीं देखते, भले सपने देखते हैं। जो थका है, वह रात सोता है; जो नहीं थका, वह सक्रिय होता है। ब्रह्मचारी रात कामुकता के सपने देखता है; कामी रात सपने देखता है कि उसने बुद्ध से दीक्षा लेकर वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया है, वह संन्यस्त हो रहा है!
आपका सपना बताएगा आपको कि कौन-सा हिस्सा अनथका है, जो नींद में भी नहीं सोता। उसका मतलब है, बहुत सजग है। तो जो सजग है, शक्तिशाली है, उसका खतरा है, वह किसी भी क्षण में आपको पकड़ ले सकता है।
लेकिन निरंतर मैं कहता हूं, अस्तित्व से लौटने की कोई विधि, कोई व्यवस्था नहीं है। कोई पीछे नहीं लौटता अस्तित्व में। माया में तो पीछे लौटता है, क्योंकि द्वंद्व है।

इसलिए हमारे पास एक और शब्द है, वह शब्द साधु का पर्यायवाची नहीं है।
वह शब्द है, संत। संत का अर्थ है, जो न साधु है न असाधु। जिसने दोनों का ही उपयोग करना बंद कर दिया है, जो दोनों में से किसी को भी नहीं चुनता; जो चुनावरहित, च्वाइसलेस है। जो न बाएं को चुनता है, न दाएं को। जो दोनों का साक्षी मात्र है। उसके भीतर चोर भी बोलता है, तो उसको भी सुनता है। उसके भीतर साधु बोलता है, उसको भी सुनता है। मानता किसी की भी नहीं। द्वंद्व को खड़ा नहीं होने देता। क्योंकि जब आप एक की मानेंगे, तो द्वंद्व खड़ा होगा। जब आप दोनों की सुनते हैं, मानते किसी की भी नहीं; जब आप दोनों के साक्षी बने रहते हैं, विटनेस बने रहते हैं; और आप कहते हैं, दोनों द्वंद्व खेल है, और ये दोनों की साजिश है, और ये दोनों साथी हैं... ।
मैंने सुना है, एक सड़क पर एक आदमी बर्तन बेच रहा था। जो बर्तन बाजार में दो रुपए में मिलते हैं, वह उनके चार-चार रुपए दाम मांग रहा था। एक ठेले पर जोर से आवाज लगा रहा था कि बिल्कुल सस्ते लुटा दिए, चार रुपए में। कोई आ भी नहीं रहा था। तभी अचानक बगल की गली से एक दूसरा आदमी आया एक ठेले पर बर्तन लिए और उसने कहा, क्यों लूट रहे हो लोगों को! चार रुपया? बर्तन तीन रुपए के हैं।
लोग ठहर गए। एक चिल्ला रहा था, चार रुपए! दूसरा कह रहा था कि लूटो मत; बर्तन तीन रुपए के हैं। भीड़ तीन रुपए वाली दुकान पर लग गई। सब बर्तन थोड़ी ही देर में खाली हो गए। दूसरा चिल्ला रहा है कि तू अपने समव्यवसायी को धोखा दे रहा है। तू क्यों मेरे पीछे पड़ा है? तू क्यों मेरे ग्राहक बिगाड़े दे रहा है?
थोड़ी ही देर बाद जब दूसरे के बर्तन समाप्त हो गए, वह ठेले को लेकर अंदर
एक गली में चला गया। दूसरा भी पहुंचा और उसने कहा, तूने तो कमाल कर दिया भाई। फिर जिसके बर्तन बिल्कुल नहीं बिके थे, आधे-आधे फिर उन्होंने ठेले पर रख लिए। वे दोनों सहयोगी हैं, साझेदार हैं। फिर दूसरी सड़क पर वही शुरू हो गया शोरगुल। एक चार रुपए चिल्ला रहा है। दूसरा कह रहा है कि तीन रुपए! मत लूटो लोगों को। वे तीन रुपए वाले बर्तन बिक रहे हैं। बाजार में दाम दो रुपए हैं।
वह जो आपके भीतर चोर है और जो आपके भीतर अचोर है, उन दोनों की कांस्पिरेसी है, दोनों साझीदार हैं। उनमें से किसी भी एक की आपने सुनी, तो दूसरे के जाल में भी आप गिरे।
यह जरा समझना कठिन है। और यहीं से धर्म की यात्रा शुरू होती है। नीति
और धर्म का यही फर्क है।
नीति कहती है, भीतर जो साधु है, उसकी सुनो। धर्म कहता है, दोनों की मत सुनो; सुनो भी, तो साक्षी रहो। दोनों की मानो मत, क्योंकि उन दोनों की सांठ-गांठ है। वे दोनों एक ही धंधे में साझीदार हैं। एक की सुनी, तो दूसरे के चक्कर में तुम पड़े। जब तक एक तुम्हें चूसेगा, तब तक दूसरा विश्राम करेगा। जब तुम एक से थक जाओगे, दूसरा तुम पर हावी हो जाएगा। और ये दिन और रात की तरह अनंत जन्मों तक चल सकती है यह प्रक्रिया। यह रोज चल रही है।
सुबह आप भले आदमी होते हैं, दोपहर बुरे आदमी हो जाते हैं, सांझ भले आदमी हो जाते हैं। आप गलती में हैं अगर आप सोचते हैं कि दुनिया में साधु कटे हैं और असाधु अलग हैं। ऐसा नहीं है। सभी के साधु क्षण हैं, सभी के असाधु क्षण हैं।
सुबह-सुबह आप उठे हैं, तब साधु क्षण आप पर भारी होता है; भोर होती है, जीवन ताजा होता है, रातभर का विश्राम होता है, उपद्रव इतनी देर शांत रहे होते हैं, साधु क्षण होता है। भिखमंगे सुबह भीख इसीलिए मांगने आते हैं। सांझ को कोई उन्हें भीख देने वाला नहीं है। सुबह साधु क्षण को फुसलाया जा सकता है।
सुबह-सुबह एक आदमी उठा है, उसके सामने कोई भीख मांगता है, तो इनकार करना मुश्किल है। सांझ एक आदमी दिनभर दुकान में बेईमानी करके लौटा है।
उससे दया पाने की आशा करनी कठिन है।
आपके भी क्षण होते हैं। दिन में आप कई बार साधु और कई बार असाधु होते हैं। और यह रूपांतर चलता रहता है। इस द्वंद्व के बाहर जाने का एक ही उपाय है कि हम दोनों में चुनना बंद कर दें।

संतत्व अस्तित्व है; साधुता, असाधुता माया है। संतत्व से कोई पीछे नहीं गिरता। क्योंकि जिसका साक्षी सध गया, उसके पीछे कुछ बचता ही नहीं, जहां गिर सके। द्वंद्व खो गया; स्वप्न टूट गया। वह जो शड्यंत्र था द्वैत का, वह शेष न रहा। गिरने की कोई जगह नहीं है। संत को गिरने की कोई जगह नहीं है। कुछ बचा नहीं, जहां वह गिर सके।
साधु गिर सकता है, इसलिए साधुता कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है। खेल से ज्यादा नहीं है। संतत्व उपलब्धि है, लेकिन बड़ी दूभर है। क्योंकि पहली ही शर्त, चुनना नहीं। पहली ही शर्त, ज्ञान में ठहरना, जागरूकता में रुकना। पहली ही शर्त, साक्षी हो जाना।

अब हम सूत्र को लें।
दैवी संपदायुक्त पुरुष के अन्य लक्षण हैंः अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति और किसी की भी निंदादि न करना तथा सब भूत प्राणियों में दया, अलोलुपता, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव तथा तेज, क्षमा, धैर्य और शौच अर्थात बाहर-भीतर की शुद्धि एवं अद्रोह अर्थात किसी में भी शत्रु-भाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव--ये सब तो, हे अर्जुन, दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।
एक-एक लक्षण को समझें।
अहिंसा... ।
अहिंसा का अर्थ है, दूसरे को दुख पहुंचाने की वृत्ति का त्याग। हम सबको दूसरे को दुख पहुंचाने में रस आता है। दूसरे को दुखी देखकर हममें सुख का जन्म होता है। यह जरा कठिन लगेगा, क्योंकि हम कहेंगे, नहीं, ऐसा नहीं। दूसरे में दुख देखकर हममें सहानुभूति जन्मती है। लेकिन अगर आप अपनी सहानुभूति को भी थोड़ा-सा खोजेंगे, तो पाएंगे, उसमें रस है।
किसी के मकान में आग लग गई है, तब आप अपना स्वाध्याय करना। जब आप जाकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं कि बहुत बुरा हुआ, ऐसा नहीं होना चाहिए, तब अपना आप निरीक्षण करना कि भीतर कोई रस तो नहीं आ रहा है कि अपना मकान नहीं जला, दूसरे का जला! भीतर कोई रस तो नहीं आ रहा है कि हम सहानुभूति बताने की स्थिति में हैं और तुम सहानुभूति लेने की स्थिति में हो! कि अच्छा मौका मिला कि आज हमारा हाथ ऊपर है!
और वह आदमी अगर आपकी सहानुभूति न ले, तो आपको पता चल जाएगा। वह कह दे, कुछ हर्जा नहीं, बड़ा ही अच्छा हुआ कि मकान जल गया; सर्दी के दिन थे, और ताप मिल रहा है; बड़ा आनंद आ रहा है। तो आप दुखी घर लौटेंगे, क्योंकि उस आदमी ने आपको मौका नहीं दिया ऊपर चढ़ने का। एक मुफ्त अवसर मिला था, जहां आप दान कर लेते बिना कुछ दिए; जहां बिना कुछ बांटे आप सहानुभूति का सुख ले लेते, वह मौका उस आदमी ने नहीं दिया। आप उस आदमी के दुश्मन होकर घर लौटेंगे।
ध्यान रहे, अगर आप किसी को सहानुभूति दें और वह आपकी सहानुभूति न ले,
तो आप सदा के लिए उसके दुश्मन हो जाएंगे, आप उसको कभी माफ न कर सकेंगे। इसको पहचानना हो, तो दूसरे छोर से पहचानना आसान है। सभी को लगता है कि नहीं, यह बात ठीक नहीं। दूसरे के दुख में हमें दुख होता है। इसे छोड़कर दूसरे छोर से पहचानें, दूसरे के सुख में क्या आपको सुख होता है?
अगर दूसरे के सुख में सुख होता हो, तो ही दूसरे के दुख में दुख हो सकता है। और अगर दूसरे के सुख में पीड़ा होती है, तो गणित साफ है कि दूसरे के दुख में आपको सुख होगा, पीड़ा नहीं हो सकती। अगर दूसरे का सुख देखकर आप जलते हैं, तो दूसरे का दुख देखकर आप प्रफुल्लित होते होंगे। चाहे आपको भी पता न चलता हो, चाहे आप अपने को भी धोखा दे लेते हों, लेकिन भीतर आपको मजा आता होगा।
अखबार सुबह से उठाकर आप देखते हैं। अगर कोई उपद्रव न छपा हो, कहीं कोई हत्या न हुई हो, गोली न चली हो, तो आप थोड़ी देर में उसको ऐसा उदास पटक देते हैं। कहते हैं, कुछ भी नहीं है, कोई खबर ही नहीं! आप किस चीज की तलाश में हैं? आप कहीं दुख खोज रहे हैं, तो आपको लगता है, यह समाचार है, कुछ खबर है। जब भी आप दुखी आदमी को देखते हैं, तो तुलनात्मक रूप से आप अनुभव करते हैं कि आप सुखी हैं। और न केवल साधारणजन, बल्कि नैतिक शिक्षक लोगों को

समझाते हैं कि अगर तुम्हारा एक पैर टूट गया है, तो दुखी मत होओ। देखो, ऐसे लोग भी हैं, जिनके दो पैर टूटे हुए हैं। उनको देखो! तो निश्चित ही अगर आपका एक पैर टूट गया है, तो दो पैर टूटे आदमी को देखकर आपके जीवन में अकड़ आ जाएगी। आपको लगेगा कि कुछ हर्जा नहीं, ऐसा कुछ ज्यादा नहीं बिगड़ गया है; दुनिया में और भी बुरी हालतें हैं।
नैतिक शिक्षक लोगों को समझाते हैं कि अपने से पीछे देखो; अपने से ज्यादा दुखी को देखो, तो तुम हमेशा सुखी अनुभव करोगे। अपने से सुखी को देखोगे, तो हमेशा दुखी अनुभव करोगे।
पर यह बात ही बुरी है। इसका मतलब हुआ कि दूसरे को दुखी देखकर आपको कुछ सुख मिल रहा है। यह कोई बड़ी नैतिक शिक्षा न हुई। और यह कोई भला संदेश न हुआ।
कृष्ण कहते हैं, दैवी संपदायुक्त व्यक्ति का लक्षण होगा अहिंसा।
अहिंसा का अर्थ है, दूसरे को दुख न पहुंचाने की वृत्ति। और यह तभी हो सकता है, जब दूसरे के दुख में हमें सुख न हो। और यह तभी होगा, जब दूसरे के सुख में हमें सुख की थोड़ी-सी भाव-दशा बनने लगे।
तो अहिंसा कहां से शुरू करिएगा? पानी छानकर पीजिएगा, तो अहिंसा शुरू होगी? मांसाहार छोड़ने से अहिंसा शुरू होगी? ये सब गौण बातें हैं। छोड़ दें तो अच्छा है, लेकिन उतने से अहिंसा शुरू नहीं होती।
अहिंसा शुरू होती है, जब कोई सुखी हो, तो वहां सुख अनुभव करें। दूसरे
के सुख को अपना उत्सव बनाएं। और जब कोई दुखी होता हो, तो दुख अनुभव करें; और दूसरे के दुख में समानुभूति में उतरें। दूसरे की जगह अपने को रखें, चाहे सुख हो, चाहे दुख।
दूसरे की जगह स्वयं को रखने की कला अहिंसा है। कोई सुखी है, तो उसकी जगह अपने को रखें, और उसके सुख को अनुभव करें, और प्रफुल्लित हो जाएं। कोई दुखी है, तो उसकी जगह अपने को रखें, और उसके दुख में लीन हो जाएं, जैसे वह दुख आप पर ही टूटा हो। तब आप पाएंगे कि जीवन में अहिंसा आनी शुरू हुई। पानी छानकर पीना और मांसाहार छूट जाना बड़ी सरल बातें हैं, जो इस भाव-दशा के बाद अपने आप घट जाएंगी। लेकिन कोई कितना ही पानी छानकर पीए, सात बार छानकर पीए, तो भी अहिंसा नहीं होने वाली। मांसाहार बिल्कुल न करे, तो भी अहिंसा होने वाली नहीं। ये सिर्फ आदतें हो जाती हैं। आदतों का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। बोधपूर्वक अहिंसा के सार-तत्व को पकड़ने की बात है।
मैं रोज देखता हूं, तो बड़ा जीवन विरोधों से भरा हुआ मालूम पड़ता है।
एक क्वेकर साधु पुरुष था। क्वेकर ईसाइयों का एक संप्रदाय है, जो अहिंसा में पक्का भरोसा करता है। जैनों जैसा संप्रदाय है ईसाइयों का। किसी को मारना नहीं। तो क्वेकर अपने हाथ में बंदूक या अस्त्र-शस्त्र भी नहीं रखते, अपने घर में भी नहीं रखते। लेकिन यह क्वेकर्स की मान्यता है कि जब किसी को मरना है, किसी की घड़ी आ गई, तो परमात्मा उसे खुद उठा लेगा, किसी को उसे मारने की जरूरत नहीं है। अगर अपनी घड़ी मरने की आ गई, तो परमात्मा हमें उठा लेगा। तो अस्त्र-शस्त्र का क्या प्रयोजन है!
लेकिन यह साधु पुरुष जब भी चर्च जाता--चर्च दूर था इसके गांव से--तो वह
एक पिस्तौल लेकर जाता। और वह जाहिर अहिंसक था। तो मित्रों ने पूछा कि तुम भाग्य को मानते हो, अहिंसा को मानते हो, तुम किसी को मारना भी नहीं चाहते, तुम यह भी जानते हो कि जब तक परमात्मा की मरजी न हो, तब तक तुम्हें कोई मार नहीं सकता, तो तुम पिस्तौल लेकर किसलिए जा रहे हो?
उस क्वेकर ने क्या कहा! उसने कहा कि मैं अपने बचाव के लिए पिस्तौल लेकर नहीं जा रहा हूं। लेकिन इस पिस्तौल से अगर परमात्मा को किसी को मारना हो, तो यह मौजूद रहनी चाहिए। अगर मेरा उपयोग करना हो परमात्मा को... ।
इस क्वेकर के घर में एक रात एक चोर घुस गया, तो उसने अपनी पिस्तौल उठा ली। चोर एक कोने में दबा हुआ खड़ा है। उस कोने की तरफ धीमा-सा प्रकाश है; रात का नीला प्रकाश थोड़ा-सा, पांच कैंडल का बल्ब है। वह कोने में छिपा खड़ा है। इसने कोने की तरफ पिस्तौल की और कहा कि मित्र, तुम्हें मैं नहीं मार रहा हूं; लेकिन जहां मैं गोली चला रहा हूं, तुम वहीं खड़े हो!

लेकिन यह हमें हंसी योग्य बात लगती है, लेकिन सारी दुनिया के अहिंसक इसी तरह के तर्क... । क्योंकि हिंसा तो बदलती नहीं, ऊपर से आचरण थोप लिया जाता है!
क्वेकर पक्के अहिंसक हैं। दूध भी नहीं पीते। कहते हैं, दूध खून है, आधा खून है, इसलिए पाप है। दूध से बनी कोई चीज नहीं लेते। क्योंकि वह एनिमल फुड है।
ये जो सोचने के ढंग हैं, इनमें से तरकीबें निकल आती हैं। अंडा खाते हैं, क्वेकर अंडा खाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, अंडा, जब तक बच्चा उसके बाहर नहीं आ गया, तब तक उसमें कोई जीवन नहीं है। अंडे को खाने में कोई पाप नहीं है। दूध पीने में पाप है, क्योंकि वह खून है।
और जीवन की सारी व्यवस्था हम इस ढंग की कर ले सकते हैं कि ऊपर से लगे
कि सब अहिंसा है और भीतर सारी हिंसा जारी रहे।
जैनों ने अहिंसा का बड़ा प्रयोग किया, लेकिन उनकी सारी हिंसा धन को इकट्ठा करने में जुट गई। तो उन्होंने खेती-बाड़ी छोड़ दी, क्योंकि उसमें हिंसा है। पौधा काटेंगे, तो हिंसा होगी; इसलिए जैनों ने खेती-बाड़ी छोड़ दी। क्षत्रिय होने का उपाय न रहा उनका, क्योंकि वहां युद्ध में हिंसा होगी। तो उनके व्यक्तित्व की सारी हिंसा, जो युद्ध में निकल सकती थी, खेती- बाड़ी में निकल सकती थी... ।
आप जानकर हैरान होंगे कि किसान, माली भले लोग होते हैं, क्योंकि उनकी हिंसा निकल जाती है। एक किसान दिनभर काट रहा है जंगल में, लकड़ी काट रहा है, पौधे उखाड़ रहा है, तो उसकी जितनी क्रोध की वृत्ति है, वह सब इस उखाड़ने, तोड़ने में, मिटाने में निकल जाती है। वह भला आदमी होता है। किसान सरल आदमी होता है।
क्षत्रिय भी सरल आदमी होता है, क्योंकि युद्ध के मैदान पर लड़ लेता है। कुछ भी बचता नहीं, सब निकल जाता है। इसलिए क्षत्रिय भोले होते हैं।
क्षत्रिय को आप जितनी आसानी से धोखा दे सकते हैं, दुकानदार को नहीं दे सकते, बनिया को नहीं दे सकते। होना चाहिए था उलटा; क्योंकि वह हिंसक है, दुष्ट है, उसको धोखा देना मुश्किल होना चाहिए। लेकिन ऐसी बात नहीं है। उसको धोखा देना बिल्कुल आसान है।
मैंने सुना है, राजस्थान की एक कथा है, कि एक गांव का एक क्षत्रिय राजपूत बड़ा अकड़ीला आदमी था। वह अपने गांव में किसी को मूंछ सीधी नहीं करने देता था; सिर्फ अकेली अपनी मूंछ सीधी रखता था। दूसरा अगर उसके घर के सामने दूसरे गांव का भी आदमी निकले, तो कहता था, मूंछ नीची कर। इससे झगड़े, दंद-फंद हो जाते थे, तलवारें खिंच जाती थीं।
एक नया बनिया गांव में आया, जवान था। और वह भी मूंछ सीधी रखने का शौकीन था। क्षत्रिय के घर के सामने से निकला। उस क्षत्रिय ने कहा, मूंछ सीधी नहीं चल सकती। इस गांव में एक ही मूंछ सीधी रह सकती है; दो तलवारें एक म्यान में नहीं चलेंगी; तू मूंछ नीची कर ले। बनिये ने कहा, क्यों? मूंछ नीची नहीं होगी! तलवारें खिंच गईं।
बनिये ने कहा, एक दो मिनट रुक जा। क्योंकि मैं घर लौटकर जाकर अपने बच्चे और पत्नी को समाप्त कर आऊं; हो सकता है, मैं मर जाऊं; मेरे कारण मेरे बच्चे और पत्नी भूखे मरें, यह मुझे बरदाश्त के बाहर है। और मैं तुझे भी सलाह देता हूं, तू भी घर जा; बच्चे और पत्नी को खतम कर आ। क्योंकि हो सकता है, तू मर जाए।
क्षत्रिय ने कहा, बात बिल्कुल ठीक है। वह घर गया। वह साफ करके आ गया।
बनिया घर गया, वापस लौटकर उसने कहा, मैंने इरादा बदल दिया; मैंने मूंछ नीची कर ली।
यह जो बनिया है, हिंसक तो नहीं है, लेकिन इसकी हिंसा चालाकी बन जाएगी।
तो जैनों की सारी हिंसा धन को इकट्ठा करने में लगी; सब उपाय बंद हो गए।
और धन सबसे सुविधापूर्ण साधन है दूसरे को दुख देने का। इससे ज्यादा आसान कोई तरकीब नहीं है। किसी की छाती में छुरा मारो, वह भी उपद्रव है, क्योंकि उसमें खुद को भी छुरा भोंका जाए, इसका डर सदा है। लेकिन धन चूस लो, दूसरा वैसे ही मर जाता है बिना छुरा मारे। और दूसरे को इससे ज्यादा दुखी करने की कोई सुविधापूर्ण व्यवस्था नहीं है कि तुम धन इकट्ठा कर लो। तुम धन इकट्ठा

करते जाओ, दूसरा निर्धन होता जाए। वह मरता जाता है अपने आप। वह उसे इकट्ठा जहर देने की जरूरत नहीं है। एक-एक बूंद उसमें जहर उतरता जाता है। चारों तरफ सब सूख जाता है। सारा जीवन तुम शोषित कर लेते हो।
तो जैन बड़ी अहिंसा साधा। लेकिन वह अहिंसा चूंकि ऊपर-ऊपर थी, नैतिक थी;
वह अहिंसा मौलिक आधार से नहीं जन्मी। वह महावीर की अहिंसा नहीं थी। इस जैन की, पीछे चलने वाले की अपने मन की, गणित की, अपनी बुद्धि की खोज थी। तो जटिल हो गया। और शोषण के रूप में अहिंसा दब गई और हिंसा व्यापक हो गई।
अहिंसा लक्षण है इस अर्थ में कि आप अपने मन से दूसरे को दुख देने का भाव विसर्जित कर दें। शुरू करना होगा दूसरे के सुख में सुख लेना। क्योंकि सुख लेना आसान है, दुख लेना कठिन है।
अपना ही दुख झेलना मुश्किल होता है, दूसरे का दुख झेलना तो और मुश्किल
हो जाएगा। आप अपने ही दुख से काफी परेशान हैं, अगर हर एक का दुख लेने लगें और हर एक का दुख झेलने लगें; हर घर में आदमी मरेगा, अगर आप हर घर में बैठकर रोने लगें, जैसे आपका कोई मर गया हो--यह कठिन होगा। इससे शुरुआत नहीं हो सकती।
इसलिए शुरुआत का सूत्र है, दूसरे के सुख से शुरू करें। जब दूसरे के जीवन में फूल खिले, तो आपके जीवन में नाच आए। यह आसान होगा। हालांकि बहुत कठिन लगेगा, क्योंकि अभी हमें सुख देखकर तो बड़ी पीड़ा होती है; दुरूहतम मालूम होगा। लेकिन साधना दुरूह है। वह ऊंचे पहाड़ चढ़ने जैसा प्रयोग है। और यह ऊंचे से ऊंचा पहाड़ है, दूसरे के सुख में सुख अनुभव करना। तो आपका जीवन एक तरफ उत्सव से भर जाएगा।
और तब दूसरा प्रयोग है, दूसरे के दुख में दुख अनुभव करना, तब आपके जीवन में अंधकार भी भर जाएगा, प्रकाश और अंधकार दोनों। लेकिन चूंकि दूसरे के दुख में आप दुखी हो रहे हैं और दूसरे के सुख में आप सुखी हो रहे हैं, आपका साक्षी-भाव दोनों में निर्मित हो सकेगा। आप दोनों अनुभव में डूबकर भी बाहर रह सकेंगे।
जब आपका खुद का दुख आता है, तो आप एकदम भीतर हो जाते हैं, आप उस दुख में लीन हो जाते हैं। जब आप दूसरे के दुख में डूबेंगे, तो आप कितने ही लीन हो जाएं, आपका आंतरिक आत्यंतिक हिस्सा बाहर खड़ा देखता रहेगा। जब आप पर सुख आता है, तो आप उसमें उत्तेजित हो जाते हैं। दूसरे के सुख में आप कितने ही डूबें, उत्तेजित न हो पाएंगे। वह एक धीमा, सौम्य उत्सव होगा, और आपके भीतर का साक्षी जगा रहेगा।
और ध्यान रहे, जो व्यक्ति दूसरे के सुख-दुख में साक्षी हो गया, वह धीरे-धीरे अपने सुख-दुख में भी साक्षी हो सकेगा। क्योंकि थोड़े ही समय में उसे पता चलेगा, सुख-दुख न तो मेरे हैं, न दूसरे के हैं। सुख-दुख घटनाएं हैं, जिनका मेरे और तेरे से कुछ लेना-देना नहीं है। सुख-दुख बाहर परिधि पर घटते हुए धूप-छाया के खेल हैं, जो मेरे आंतरिक केंद्र को छूते भी नहीं, जिनसे मैं अस्पर्शित रह जाता हूं।
सत्य... ।
सत्य से इतना ही अर्थ नहीं है कि सच बोलना। सत्य से अर्थ है, प्रामाणिक होना, आथेंटिक होना। सत्य से अर्थ है, जैसे आप भीतर हैं, वैसे ही बाहर होना। लेकिन लोग सत्य का यह अर्थ नहीं लेते। लोग सत्य का अर्थ लेते हैं, सच बोलना। वह सिर्फ गौण हिस्सा है।
और सच बोलना... हमारा मन जैसा चालाक है, उसमें हम सच बोलने का भी दुरुपयोग कर लेते हैं। हम तब सच बोलते हैं, जब सच से दूसरे को चोट पहुंचती हो। और अगर दूसरे को चोट पहुंचाने का मौका हो, तो हम कहते हैं, हम झूठ कैसे बोल सकते हैं! सच बोलना ही पड़ेगा। खुद पर चोट पहुंचती हो, तो हमारे तर्क बदल जाते हैं।
मैंने सुना है, एक सुबह मुल्ला नसरुद्दीन अपनी छपरी में बैठा हुआ है। अचानक वर्षा का झोंका आया। गांव का जो मौलवी है, वह पानी की बूंदें पड़ीं तो तेजी से भागा। नसरुद्दीन ने कहा, रुको, यह परमात्मा का अपमान है। मौलवी भी घबड़ा गया; क्योंकि नसरुद्दीन वजनी आदमी था। और गांव में खबर हो जाए। और उससे कह रहा था, तो उसका कुछ मतलब होगा। उसने कहा, क्या मतलब? तो उसने कहा, जब परमात्मा वर्षा कर रहा है, तो तुम उसका अपमान कर रहे हो भागकर। धीमे-

धीमे जाओ। मौलवी को भी बात समझ में आई। बेचारा धीरे-धीरे घर तक गया; भीग गया वर्षा में। बूढ़ा आदमी था, बुखार आ गया।
वह तीसरे दिन अपने बिस्तर में बुखार में बैठा हुआ था, तब उसने खिड़की
से देखा कि वर्षा का फिर झोंका आया और नसरुद्दीन बाजार से भागा जा रहा है। तो उसने कहा, रुक, नसरुद्दीन! भूल गया? तो नसरुद्दीन रुका नहीं, भीतर भागता हुआ घर में आया और उसने कहा कि नहीं, भूला नहीं। इसीलिए भाग रहा हूं कि परमात्मा पानी गिरा रहा है, उसके पानी पर कहीं मेरे नापाक पैर न पड़ जाएं। गंदा आदमी हूं, नहाया भी नहीं। ये गंदे पैर उसके पानी पर न पड़ जाएं, इसीलिए तो भाग रहा हूं। भूला नहीं हूं।
बस, यही हमारे सबके तर्क हैं। जब खुद पर चोट पड़ती हो, तो हम झूठ को सच बना लेते हैं। जब दूसरे पर चोट पड़ती हो, तो हम सच का भी झूठ की तरह उपयोग करते हैं, हिंसक उपयोग करते हैं।
कुछ लोग सच बोलने में बड़ा रस लेते हैं, क्योंकि सच से काफी चोट पहुंचाई जा सकती है। तब मजे की बात यह है कि झूठ बोलकर भी हम दूसरे को नुकसान पहुंचाते हैं और सच बोलकर भी नुकसान पहुंचाते हैं। हमारा लक्ष्य सदा एक है; हिंसा हमारा लक्ष्य है।
इसलिए सत्य का अर्थ केवल सच बोलना नहीं है। सत्य का अर्थ है, प्रामाणिक होना। सत्य का अर्थ है कि जैसा मैं भीतर हूं, वैसा ही बाहर होना, परिस्थिति की बिना फिक्र किए कि क्या होगा परिणाम। इसे थोड़ा समझ लें।
जो व्यक्ति परिणाम की चिंता करता है, वह सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि
कई बार अच्छे परिणाम झूठ से आ सकते हैं। कम से कम जहां तक हमें दिखाई पड़ता है, वहां तक आ सकते हैं।
एक आदमी को फांसी लग रही है, आप झूठ बोल दें, बच सकता है वह आदमी। झूठ बोलने से, आपके देखने में तो जहां तक मनुष्य की बुद्धि जाती है, यह परिणाम हो रहा है कि एक आदमी का जीवन बच रहा है। अगर परिणाम की आप चिंता करेंगे, तो सौ में निन्यानबे मौकों पर लगेगा कि झूठ से अच्छे परिणाम आ सकते हैं, सत्य से बुरे परिणाम आ सकते हैं।
सत्य का अर्थ है कि परिणाम की चिंता ही मत करना। जैसा हो, उसे बेशर्त, बिना आगे-पीछे देखे, वैसा ही रख देना। भविष्य को सोचना ही मत, फल को सोचना ही मत।
कृष्ण का बहुत जोर है इस बात पर कि जो फल को सोचेगा, वह भटक जाएगा।
जैसा हो, वैसा उसे प्रकट कर देना; अपने को बाहर-भीतर एक-सा कर देना, अपने को उघाड़ देना, सत्य है। और वह दैवी संपदा का अनिवार्य हिस्सा है।
अक्रोध... ।
साधारणतः आप सोचते हैं कि कभी-कभी आप क्रोध करते हैं। यह बात झूठ है,
यह बात बिल्कुल ही झूठ है। आप चौबीस घंटे क्रोध में रहते हैं। कभी-कभी क्रोध उबलता है और कभी-कभी कुनकुना रहता है, बस। कुनकुने की वजह से पता नहीं चलता। क्योंकि उसकी आपको आदत है। उतने में तो आप जी ही रहे हैं सदा से।
आप अपने को पहचानें, निरीक्षण करें, तो आपको समझ में आएगा कि चौबीस घंटे आप में हल्का-सा क्रोध बना रहता है। कभी इस चीज के प्रति, कभी उस चीज के प्रति। कभी कोई भी कारण न हो, तो अकारण। अगर आपको चौबीस घंटे कमरे में बंद कर दिया जाए, जहां कोई कारण न दे आपको क्रोधित होने का, तो भी आप क्रोधित होंगे। तो आप इस पर ही क्रोधित होने लगेंगे कि कुछ भी नहीं हो रहा है; कोई भी नहीं है! कि मैं यहां बैठा क्या कर रहा हूं! कि मुझे यहां क्यों बिठाया गया है! अकेले में क्यों छोड़ा गया है!
क्रोध आपकी दशा है। हम सब सोचते हैं कि क्रोध घटना है। इसलिए हम सोचते हैं, क्रोध कभी-कभी आता है, यह कोई ऐसी बात नहीं है कि सदा है। लेकिन क्रोध सदा है। कभी-कभी कोई चिनगारी डाल देता है, तो आपकी बारूद भभक उठती है। लेकिन बारूद सदा है। बारूद न हो, तो चिनगारी डालने से भी भभकेगी नहीं। अक्रोध का अर्थ है, चौबीस घंटे एक शांत स्थिति। यह तभी हो सकता है, जब
आप दूसरे को दोष देना बंद कर दें।

क्रोध का तर्क क्या है? क्रोध का तर्क एक ही है कि दूसरा भूल-चूक कर रहा है, दूसरा गलत कर रहा है। दूसरा ऐसा कर रहा है, जैसा उसको नहीं करना चाहिए। इससे आप भभकते हैं।
अक्रोध की भाव-दशा तब निर्मित होगी, जब आप समझेंगे कि दूसरा जो कर रहा है, वह वही कर सकता है। दूसरा उसको इससे अन्यथा करने का उपाय नहीं है। अगर एक आदमी आपको गाली दे रहा है, तो आप सोचते हैं, इसे गाली नहीं देनी चाहिए। यह आदमी गलती कर रहा है, बुरा कर रहा है। इसलिए क्रोध भभकता है।
अगर आप इस आदमी का पूरा अनंत जीवन जानते हों अतीत का, तो आप कहेंगे, यह गाली इसमें ऐसे ही लग रही है, जैसे किसी पौधे में फूल लगते हैं। वे बीज में ही छिपे थे। बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते वृक्ष बड़ा होता है, फिर फूल आते हैं। वे फूल कड़वे होते हैं, कि सुगंधित होते हैं, कि सुंदर होते हैं, कि कुरूप होते हैं, यह बीज में ही छिपे थे।
ये गालियां इस आदमी में लग रही हैं, इसका मुझसे कुछ लेना-देना नहीं है। यह इस आदमी का स्वभाव है, यह इस आदमी के जीवन का ढंग है, यह इसकी उपलब्धि है कि गालियां बक रहा है। मैं सिर्फ बहाना हूं। अगर मैं यहां न होता, तो कोई दूसरा इसकी गाली खाता; वह भी नहीं होता, तो कोई तीसरा गाली खाता; कोई भी नहीं होता, तो यह शून्य में गाली देता; लेकिन गाली देता। यह गाली इसके कर्मों की अभिव्यक्ति है।
अक्रोध तब पैदा होगा, जब आप समझेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी नियति में चल रहा है। आपसे कुछ लेना-देना नहीं है। आपसे रास्ते पर मिलना हो जाता है, इससे आप अकारण परेशान न हों।
एक झेन फकीर हुआ, रिंझाई। वह अपने शिष्यों को नाव में ले जाता था। और
जब वह नाव को ले जाता, तो एक किनारे पर उसने एक मल्लाह रख छोड़ा था। एक झाड़ी की आड़ में वह मल्लाह एक नाव को छिपाए रखता। जब इसकी नाव निकलती, तो खाली नाव को वह झाड़ी के भीतर से धक्का देता। वह खाली नाव आकर रिंझाई की नाव को टकरा जाती। कोई भी कुछ नहीं बोलता, क्योंकि खाली नाव से क्या गाली बकनी, क्या झगड़ा करना। शिष्य भी हिल-डुलकर बैठकर रह जाते। फिर दुबारा कभी वह मल्लाह नाव में बैठकर और टक्कर देता; तब वे सारे शिष्य उबल पड़ते।
तो रिंझाई कहता कि एक दफे पहले भी यह हुआ था, जब नाव हमसे टकरा गई थी, तुम सब चुप रहे थे। वे कहते, तब यह आदमी उसमें नहीं था। और खाली नाव को जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। खाली नाव से क्या कहना! संयोग की बात है। लेकिन यह आदमी बैठा है, यह रिस्पांसिबल है, यह जिम्मेवार है, इससे झगड़ा किया जा सकता है। लेकिन रिंझाई कहता कि आदमी बैठा हो, या न बैठा हो, यह संयोग की बात है कि नाव टकरा गई। और तुम दोनों स्थितियों में एक-सा व्यवहार करो, तो अक्रोध जन्मेगा!
कोई व्यक्ति क्या कर रहा है, वह उसकी अपनी नियति है। तुम अकारण उसे अपने ऊपर मत लो। तुम व्यर्थ ही मत समझो कि सारी दुनिया तुम पर हंस रही है; कि सारी दुनिया तुम्हारे संबंध में ही फुस-फुस कर रही है; कि सारे लोग तुम्हारे संबंध में सोच रहे हैं, कि तुम्हें कैसे बरबाद कर दें; कि सब तुम्हारे दुश्मन हैं। किसी को तुम्हारे लिए इतनी फुरसत नहीं है। सब अपने- अपने गोरखधंधे में लगे हैं। तुम अकारण बीच में खड़े हो। तुम व्यर्थ ही बीच में चीजें झेल लेते हो।
जैसे ही कोई व्यक्ति इस बात को ठीक से देखने लगता है कि हर व्यक्ति अपने ढंग से जा रहा है, और जो भी उसमें हो रहा है, वही उसमें हो सकता है, तब एक स्वीकृति पैदा होती है; तब क्रोध नहीं जन्मता; तब तथाता का भाव निर्मित होता है। तब हम कहते हैं कि जो होना था, वह हुआ है। इस व्यक्ति से जो हो सकता था, इसने किया है। तब अक्रोध।
अक्रोध बहुमूल्य है; दैवी संपदा में बड़ा मूल्यवान है। और ये दैवी संपदा के जो सूत्र हैं, इनमें से एक सध जाए, तो दूसरे अपने आप सध जाते हैं। इसलिए ऐसा मत सोचना कि एक-एक को साधना पड़ेगा। एक भी सध जाए, तो उसके पीछे दूसरे गुण अपने आप चले आते हैं, क्योंकि वे सब गुण संयुक्त हैं।
जो आदमी अक्रोध साधेगा, उसकी अहिंसा अपने आप सध जाएगी। जो आदमी अक्रोध साधेगा, वह अभय हो जाएगा। क्योंकि जो क्रोध ही नहीं करता, अब उसको भयभीत कौन कर सकता है? अगर वह भयभीत हो सकता था, तो क्रोधित होता। क्योंकि

क्रोध भयभीत हो जाने के बाद अपनी रक्षा का उपाय है; वह डिफेंस मेजर है। उसके द्वारा हम अपना बल जगाते हैं और तत्पर हो जाते हैं कि आ जाओ, हम निपट लें। वह भय की सुरक्षा है।
और जो आदमी अक्रोध को उपलब्ध हो गया, जो कहता है, प्रत्येक व्यक्ति अपनी नियति से चल रहा है, मैं भी अपनी नियति से चल रहा हूं, वह क्यों छिपाएगा कुछ! किससे छिपाना है? परमात्मा के सामने मैं उघड़ा हुआ हूं। और यहां किससे क्या छिपाना है! किसी से कुछ लेना-देना नहीं है। तब वह आदमी खुली किताब की तरह हो जाएगा।
ये सब गुण संयुक्त हैं। चर्चा के लिए अलग-अलग ले लिए हैं। इससे आप ऐसा
मत समझना कि ये अलग-अलग हैं। और आपको इतने गुण साधने पड़ेंगे! आप नाहक घबड़ा जाएंगे। आप सोचेंगे, इतने गुण! अपने बस के बाहर है। और इतनी छोटी जिंदगी! यह होने वाला नहीं है। इनमें से एक साध लें, और आप पाएंगे कि बाकी उनके पीछे आने शुरू हो गए हैं।
त्याग... ।
एक तो रस है भोग का, जिसे हम जानते हैं। एक और रस है त्याग का, जिसे हम नहीं जानते हैं। या शायद कभी-कभी कोई क्षण में हम जानते हैं। कभी आपने देखा; जब आप किसी को कुछ देते हैं, तो एक खुशी आपको पकड़ लेती है। किसी को सहारा दे देते हैं, कोई रास्ते पर गिर रहा हो और आप हाथ बढ़ा देते हैं; एक अहोभाव, एक आनंद की थिरक आप में समा जाती है। हृदय में कुछ संगीत बजने लगता है।
जब भी आप कुछ छोड़ते हैं, तभी आपके भीतर कुछ फैलता है। आप थोड़े से विराट
हो जाते हैं। इसकी झलकें सबको मिलती हैं। उन झलकों को अगर हम समाहित करते जाएं, उन झलकों को अगर हम धीरे-धीरे विकसित करते जाएं, उनका अभ्यास गहन होने लगे, वे झलकें हमारे जीवन का पथ बन जाएं, तो उस पथ का नाम त्याग है। त्याग का अर्थ है, देने का सुख, छोड़ने का सुख। और यह कोई कल्पना नहीं है, यह कोई दार्शनिक बात नहीं है। छोड़ते ही सुख मिलता है। पर हम एक ही सुख जानते हैं, पकड़ने का सुख। और मजे की बात यह है कि हमने कभी दोनों की तुलना भी नहीं की है।
दो फकीरों के संबंध में मैंने सुना है। उनमें बड़ा विवाद था। विवाद एक छोटी-सी बात को लेकर था कि एक फकीर कुछ पैसे पास रखता था, और एक फकीर कुछ भी पैसे पास नहीं रखता था। जो पास पैसे नहीं रखता था, वह कहता था, छोड़ने में आनंद है, पकड़ने में दुख है। जो पास पैसे रखता था, वह कहता था कि थोड़ा तो पकड़ना ही पड़े, नहीं तो बड़ा दुख होता है।
फिर वे एक नदी के किनारे पहुंचे। सांझ ढल गई, माझी नाव छोड़ने को था, उसने पैसे मांगे। इस तरफ रुकना खतरनाक था, जंगली जानवरों का डर था, उस तरफ जाना जरूरी था। तो जिसके पास पैसे थे, और जो पैसे का आग्रही था, उसने कहा, अब बोलो; अब तुम्हारा त्याग चलाओ! अब तुम्हारे पास जो त्याग की संपदा है, उसका उपयोग करो; हमें उस तरफ जाना है। पैसे मेरे पास हैं, अगर तुमसे कुछ न बन पड़े, तो मैं पैसे देता हूं, हम उस तरफ हो जाते हैं।
फकीर मुस्कुराता रहा, वह जो त्याग का पक्षपाती था। फिर जिसके पास पैसे थे, उसने पैसे दिए, वे नदी पार किए। नदी पार करके जिसके पास पैसे थे, उसने कहा, अब बोलो!
उस पहले फकीर ने कहा, लेकिन त्याग से ही हम पार हुए। तुम पैसे छोड़ सके, तुम पैसे दे सके, इसीलिए हम पार हुए हैं। पैसे होने से हम पार नहीं हुए हैं; पैसा छोड़ने से ही पार हुए हैं। और अगर मैं पार नहीं हो रहा था, तो उसका कारण यह नहीं था कि मेरा त्याग बाधा था; मेरे पास और त्याग की सुविधा न थी, और छोड़ने को नहीं था; बस। तकलीफ मेरे त्याग की नहीं थी, त्याग मेरा कम पड़ रहा था, और मेरे पास छोड़ने को नहीं था; थोड़ा और त्याग करने की जरूरत थी। तुम कर सके। लेकिन सही मैं ही हूं। हम छोड़ने से इस पार आए।
लेकिन हमें एक ही अनुभव है, इकट्ठा करने का। जैसा मैं देखता हूं। देखता हूं, जैसे-जैसे लोगों का धन बढ़ता है, वे दुखी होते जाते हैं। तब वे सोचते हैं कि शायद धन में दुख है। और तब शास्त्रों में उनको सहारा भी मिल जाता है कि धन से कोई सुख नहीं मिलता।

मेरी धारणा बिल्कुल भिन्न है। धन से सुख मिल सकता है, अगर धन त्यागने
की क्षमता हो। धन से दुख मिलता है, अगर पकड़े बैठे रहो। धन से कोई दुख नहीं पाता, कंजूसी से लोग दुख पाते हैं। धन क्यों दुख देगा? लेकिन धन छोड़ नहीं पाते।
और मजबूरी यह है कि जितना ज्यादा हो, उतना ही छोड़ना मुश्किल हो जाता है। जिसके पास एक पैसा है, वह एक पैसा दान दे सकता है; लेकिन जिसके पास एक करोड़ रुपया हो, वह एक करोड़ दान नहीं दे सकता। हालांकि दोनों के दान बराबर हैं। क्योंकि एक पैसा उसकी कुल संपदा है। औसत बराबर है। एक करोड़ दूसरे की कुल संपदा है। लेकिन जिसके पास एक पैसा है, वह पूरा दान दे सकता है; जिसके पास एक करोड़ रुपया है, वह पूरा दान नहीं दे सकता।
जितना ज्यादा धन हो, उतनी ही पकड़ने की वृत्ति बढ़ती है। जितना हम पकड़ लेते हैं, उतना ही और पकड़ना चाहते हैं। फिर दुखी होते हैं। अगर आज अमेरिका दुखी है, तो धन के कारण नहीं, धन की पकड़ के कारण।
इस फर्क को आप ठीक से समझ लेना। धन से कोई दुखी नहीं होता। और थोड़ी अकल हो, तो धन से आदमी सुखी हो सकता है। और बेअकल आदमी हो, तो निर्धन होकर भी दुखी होता है, धनी होकर भी दुखी होता है।
निर्धन का दुख समझ में आता है। मगर मजे की बात यह है कि निर्धन का भी दुख निर्धनता का दुख नहीं है। उसका भी दुख यही है कि पकड़ने को कुछ भी नहीं है। हाथ खाली है। धनी का दुख यह है कि हाथ भर गए हैं, छोड़ने की हिम्मत नहीं है।
जो भी छोड़ने की कला सीख लेता है--त्याग उस कला का नाम है--जीवन के आनंद
के द्वार उसके लिए निरंतर खुलते जाते हैं। जितना ज्यादा छोड़ सकता है, उतना ही ज्यादा हलका होता जाता है। जितना छोड़ सकता है, उतनी ही आत्मा विकसित होती है। क्योंकि जितना हम पकड़ते हैं, उतने पदार्थ हम पर इकट्ठे होते जाते हैं, उसमें हम दब जाते हैं। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे ढेर लग जाता है वस्तुओं का; हमारा कुछ पता ही नहीं रहता कि हम कहां हैं!
त्याग दैवी संपदा का हिस्सा है।
शांति और किसी की भी निंदादि न करना... ।
शांत होना हम भी चाहते हैं। लेकिन हम तभी शांत होना चाहते हैं, जब हम अशांत होते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, बड़े अशांत हैं; शांति का कुछ रास्ता बताइए। ये लोग वे हैं, जिनके घर में जब आग लग जाए, तब वे कुआं खोदना शुरू करते हैं। इनका घर बचेगा नहीं। कुआं पहले खोदना पड़ता है।
जब आप पूरी तरह अशांत हैं, तब शांत होना बहुत मुश्किल है। लेकिन जब आप अशांत नहीं हैं, तब शांत होना बहुत आसान है। और जब आप अशांत नहीं हैं, तब अगर आप शांत होना सीख लें, तो अशांत होने की कोई जरूरत ही न होगी। घर में कुआं हो, तो शायद आग लगेगी ही नहीं। लग भी जाए, तो बुझाई जा सकती है।
तो आप जब अशांत हो जाएं, तब शांति की तलाश मत करें। यह तलाश ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जब बुखार आ जाए, तब आप चिकित्सक की खोज पर चले जाते हैं। अब तो चिकित्साशास्त्री भी कहते हैं कि यह ढंग गलत है, आदमी जब बीमार हो जाए, तब उसका इलाज करना; बड़ी देर कर दी।
तो रूस में उन्होंने एक नई व्यवस्था ईजाद की है, वह यह कि डाक्टरों को तनख्वाह मिलती है बीमारों का इलाज करने के लिए नहीं, अपने मरीजों को बीमार न पड़ने देने के लिए। रूस में उन्होंने व्यवस्था बदली और सारी दुनिया में वह व्यवस्था आज नहीं कल हो ही जानी चाहिए।
तो हर डाक्टर के हिस्से में मरीज हैं। मरीज का मतलब वे बीमार नहीं हैं; लेकिन उनको बीमार नहीं होने देना है। तो उनको चेक करते रहना है, उनकी फिक्र करते रहना है, बीमारी के पहले इलाज कर देना है। क्योंकि बीमारी के बाद इलाज करना अत्यंत जटिल हो जाता है। बीमारी अलग परेशान करती है, इलाज अलग परेशान करता है।
कुछ लोग बीमारी से मरते हैं, ज्यादा लोग डाक्टरी से मरते हैं। किसी तरह बीमारी से बच गए, तो फिर डाक्टर से बचना बहुत मुश्किल है। औषधियां! फिर जहर को काटना हो, तो और जहर डालना पड़ता है। सारी औषधियां जहर हैं। फिर दो जहरों की लड़ाई आपके भीतर होती है, और आप केवल कुरुक्षेत्र हो जाते हैं। आप

कुछ नहीं रह जाते फिर, दो जहर लड़ते हैं। फिर आपकी जो मट्टी पलीद उन दो जहरों के लड़ने में होती है, आप स्वस्थ भी हो जाएंगे, तो भी कभी स्वस्थ नहीं हो पाएंगे। बीमारी भी चली जाएगी, तो आपको मुर्दा छोड़ जाएगी। आप मरे हुए जीएंगे।
जब आप अशांत हो जाते हैं, तब शांत होना कठिन है। लेकिन इतनी देर रुकने
की जरूरत क्या है? शांति तो साधी जा सकती है। शांति को तो जीवन का उठते- बैठते, रोजमर्रा का भोजन बनाया जा सकता है।
इसको ध्यान रखें कि आपको शांत रहना है। घर लौटे हैं, तो दरवाजे पर दो क्षण रुक जाएं, क्योंकि पत्नी कुछ कहेगी। वह दिनभर से अशांत है, वह अशांति आप पर फेंकेगी। दो क्षण रुक जाएं, तैयार हो जाएं। तैयारी का मतलब यह कि मैं शांत रहूंगा, चाहे पत्नी कुछ भी कहे; मैं इसको नाटक से ज्यादा नहीं समझूंगा। दया करूंगा, क्योंकि बेचारी परेशान है।
मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की का विवाह हुआ। तो लड़की दहाड़ मार-मारकर, छाती पीट-पीटकर रो रही थी। सब समझा रहे थे, वह सुन नहीं रही थी। फिर मुल्ला उसके पास गया। उसने कहा, बेटी, तू मत रो; तुझे ले जाने वाले रोएंगे। तू मेरी बेटी है; तू बिल्कुल मत घबड़ा; थोड़ी देर की बात है। थोड़ा धैर्य रख!
जीवन में चारों तरफ विक्षिप्त लोग हैं, दुखी लोग हैं। वे अपने दुख और विक्षिप्तता को फेंक रहे हैं। फेंकने के सिवाय उनके पास जीने का कोई ढंग नहीं है, उपाय नहीं है। फेंकते हैं, तो थोड़ा जी लेते हैं। यह उनकी कैथार्सिस है। अगर आप उसके शिकार हो जाते हैं, अगर आप उससे उद्विग्न होते हैं, अशांत होते हैं, तो फिर आपके जीवन में शांति का स्वर कभी भी नहीं बज पाएगा।
क्योंकि चारों तरफ अशांत लोग हैं, तो आपको शांति साधनी होगी, और आपको सजग रहना होगा। चारों तरफ बीमार लोग हैं, आपको अपने चारों तरफ एक कवच निर्मित करना होगा, एक मिल्यू, एक वातावरण आपके चारों तरफ, कि चाहे कोई कुछ भी फेंके, आप अपनी शांति में थिर रहेंगे। थोड़े से होश की जरूरत है। यह हो जाता है।
इसे थोड़ा प्रयोग करके देखें। जब पत्नी नाराज हो रही हो, तब आप खड़े होकर देखें कि आप नाटक देख रहे हैं। इससे वह और भी नाराज होगी, यह भी ध्यान रखना। मगर तब आप और प्रसन्न होकर उसको देखना।
अगर दो व्यक्तियों में एक व्यक्ति क्रोधित हो रहा हो और दूसरा नाटक
की तरह देखता रहे, तो यह नाटक ज्यादा देर चल नहीं सकता। यह बढ़ेगा, उबलेगा, लेकिन फूट जाएगा, बिखर जाएगा, क्योंकि इसे बढ़ाने के लिए दोनों तरफ से सहारा चाहिए। समझदार पति-पत्नी निर्णय कर लेते हैं कि जब एक उपद्रव करेगा, तो दूसरा शांत रहेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन किसी को कह रहा था कि मेरे घर में कभी झगड़ा नहीं होता। दूसरे ने कहा कि यह मानने योग्य नहीं है। यह असंभव है कि घर हो और झगड़ा न हो! घर यानी झगड़ा। तुम झूठ बोल रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, हमने पहले ही दिन एक बात तय कर ली, और वह बात यह तय कर ली कि सब छोटे-छोटे मसले पत्नी तय करेगी, बड़े-बड़े मसले मैं तय करूंगा। बड़े-बड़े मसले आज तक आए नहीं और कभी आएंगे भी नहीं, क्योंकि पहले ही पत्नी तय कर देती है कि सब छोटे मसले हैं। तो वही तय कर रही है।
इंग्लैंड में एक आदमी एक सौ बीस वर्ष तक जीया। तो उसकी एक सौ बीसवीं वर्षगांठ पर लोगों ने उससे पूछा कि कैसे तुम इतने स्वस्थ हो?
उसने कहा कि हमने एक निर्णय कर लिया शादी के वक्त कि जब भी पत्नी नाराज होगी, मैं घर के बाहर चला जाऊंगा। तो यह अस्सी साल की घर के बाहर की जिंदगी, यह मेरे स्वास्थ्य का कारण है! क्योंकि मैं अक्सर बाहर ही घूमता रहा हूं। घर तो कभी-कभी भीतर जाता हूं, फिर ज्यादातर मुझे बाहर ही, आउट डोर! चारों तरफ विक्षिप्तता है सभी संबंधों में। और अगर आप अपने को सम्हालकर नहीं चल रहे हैं, तो इतनी विक्षिप्त दुनिया में आप शांत नहीं रह सकते। और दूसरे को जिम्मेवार मत समझें। दूसरा जिम्मेवार है नहीं; वह अपने से परेशान है। कोई आपको परेशान करना नहीं चाह रहा है; वह अपने से परेशान है। परेशानी कोई कहां फेंके! जो निकट हैं, उन्हीं पर फेंकी जाती है।

तो जो व्यक्ति बिना अशांत हुए, सारी उपद्रवों की स्थिति में एक सूत्र ध्यान रखता है कि मुझे शांत रहना है चाहे कुछ भी हो, वह थोड़े ही दिनों में इस कला में पारंगत हो जाता है।
किसी की भी निंदादि न करना... ।
बड़ा रस आता है किसी की निंदा करने में, क्योंकि किसी की निंदा परोक्ष में अपनी प्रशंसा है। जब भी आप कहते हैं, फलां आदमी बुरा है, तो आप भीतर से यह कह रहे हैं कि मैं अच्छा हूं। जब आप सिद्ध कर देते हैं कि फलां आदमी चोर है, आपने सिद्ध कर लिया कि मैं अचोर हूं।
और अक्सर चोर दूसरों को चोर सिद्ध करने की कोशिश करते रहते हैं, क्योंकि यही उपाय है उनके पास। अगर यहां कोई किसी की जेब काट ले, तो जेबकतरे को बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि वह सबसे ज्यादा शोरगुल मचाए कि बहुत बुरा हुआ; चोरी नहीं होनी चाहिए; पकड़ो, किसने चोरी की! यह सबसे अच्छा उपाय है। उसको तो आप भूल ही जाएंगे कि यह आदमी चोरी कर सकता है। जितने बुरे लोग हैं, वे दूसरे की निंदा में संलग्न हैं। वे इतना शोरगुल मचा रहे हैं दूसरे की बुराई का कि कोई सोच भी नहीं सकता कि ये बुरे हो सकते हैं। इसलिए साधु भी जब दूसरे की निंदा कर रहा हो, तब समझना कि साधुता खोटी है।
निंदा का एक ही प्रयोजन है, वह अपनी बुराई को छिपाना है। दूसरे की बुराई को हम जितना बड़ा करके बताते हैं, उतनी अपनी बुराई छोटी मालूम पड़ती है। अगर आपको पता चल जाए कि सब बेईमान हैं, तो आपको लगता है, फिर अपनी बेईमानी भी स्वीकार योग्य है। इसमें हम कुछ नया नहीं कर रहे हैं; हम कुछ ज्यादा बुरे नहीं हैं; दूसरों से हम बेहतर हैं।
दूसरे की निंदा का इसीलिए इतना रस है। जहां भी चार आदमी मिलते हैं, बस, चर्चा का एक ही आधार है। उन चार में से भी एक चला जाएगा, तो वे तीन, जो चला गया उसकी निंदा शुरू कर देंगे। और वे तीन फिर भी नहीं सोचते कि हममें से कोई गया यहां से, कि बाकी दो हटते ही से यही काम करने वाले हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके मित्र जो आपके संबंध में पीठ पीछे कहते हैं, उस सबका आपको पता चल जाए, तो दुनिया में एक भी मित्र खोजना मुश्किल है। आपके मित्र आपकी पीठ पीछे जो कहते हैं, अगर आपके सामने कह दें, आपको पता चल जाए, तो दुनिया में मित्रता असंभव है!
लेकिन पता तो चल ही जाता है। और मित्रता सच में ही असंभव हो गई है। मित्र होना मुश्किल है। जो आदमी भी निंदा में रस लेता है, उसका इस जगत में कोई भी मित्र नहीं हो सकता। जो दूसरे को ओछा करने में, नीचा करने में, बुरा करने में शक्ति लगाता है, वह भला अपने मन में सोच रहा हो कि अपने को अच्छा सिद्ध कर रहा है, वह इस कोशिश में ही बुरा होता जा रहा है।
भले आदमी का लक्षण दूसरे में भलाई को खोजना है। और हम जितनी भलाई दूसरे में खोज लेते हैं, उतना ही हमारे भले होने के आधार निर्मित होते हैं।
सब भूत प्राणियों में दया, अलोलुपता, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव... ।
जो भी शास्त्र में कहा गया है, जो भी समाज की प्रचलित व्यवस्था है, उस व्यवस्था में जहां तक दखल न बने। जब तक कि आत्मा का ही कोई सवाल न हो, जब तक आपके आत्मिक जीवन पर ही कोई आघात न पड़ता हो, तब तक समाज और शास्त्र की जो व्यवस्था है, उसको खेल का नियम मानकर चलना उचित है।
खेल के नियम का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। वह ऐसे ही है, जैसे रास्ते पर बाएं चलो; कोई दाएं चलने में पाप नहीं है। क्योंकि कुछ मुल्कों में लोग दाएं चलते हैं, तो वहां बाएं चलना कठिन है। तो बाएं चलो या दाएं चलो, यह कोई मूल्य की बात नहीं है। लेकिन एक नियम, खेल का नियम है। बाएं चलने में सुविधा है, आपको भी, दूसरों को भी। अगर सभी लोग अपना नियम बना लें, तो रास्ते पर चलना मुश्किल हो जाएगा। हालांकि कोई नियम शाश्वत नहीं, सब सापेक्ष हैं, सबकी उपयोगिता है।
इस बड़े जगत में, जहां बहुत लोग हैं, मैं अकेला नहीं हूं, किसी व्यवस्था
को चुपचाप मानकर चलना उचित है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह व्यवस्था कोई

शाश्वत सत्य है; इसका केवल इतना अर्थ है कि हमने एक खेल का नियम तय किया है, उस नियम को हम पालन करके चलेंगे।
और ध्यान रहे, खेल नियम पर निर्भर होता है; नियम हटा कि खेल गड़बड़ हो जाता है। अगर आप ताश के पत्ते खेल रहे हैं, तो नियम है। चार खिलाड़ी खेल रहे हैं, तो नियम है। उनमें एक भी नियम के विपरीत करने लगे, या कहने लगे कि मेरा अपना अलग नियम है, खेल खराब हो गया।
यह समाज भी पूरा का पूरा एक खेल है। वह ताश के पत्ते से कोई बड़ा खेल नहीं है। उसमें सब नियम हैं। कोई पति है, कोई पत्नी है; कोई बेटा है, कोई बाप है; कोई छोटा है, कोई बड़ा है; कोई पूज्य है; कोई शिष्य है, कोई गुरु है-- वे सारे खेल हैं। उस खेल को मानकर चलना दैवी संपदा का लक्षण है। लक्षण इसलिए कि अकारण ऐसा व्यक्ति उलझन में नहीं पड़ता, न दूसरों को उलझन में डालता है।
कुछ लोग व्यर्थ ही उलझन में पड़ते हैं, उनका कोई सार भी नहीं है। आप अगर बाएं को छोड़कर दाएं चलने लगें, तो कोई बड़ी क्रांति नहीं हो जाएगी; सिर्फ आप मूढ़ सिद्ध होंगे।
आसुरी वृत्ति का जो व्यक्ति होता है, उसको हमेशा नियम तोड़ने में रस आता है, उच्छृंखल होने में रस आता है, विद्रोह में रस आता है। उसे लगता है, जब भी वह कुछ तोड़ता है, तब उसका अहंकार सिद्ध होता है। उसे आज्ञा मानना कठिन है, आज्ञा तोड़ना आसान है। उससे अगर कोई काम करवाना हो, तो उलटी बात कहनी उचित है। उससे अगर कहना हो कि सीधे बैठो, तो उससे कहना चाहिए कि सिर के बल बैठो, तो वह सीधा बैठ जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा है कि यह मत कर, वह मत कर। बेटा सुनता नहीं। वह नसरुद्दीन का ही बेटा है! आखिर नसरुद्दीन उससे परेशान आ गया और उससे बोला, अच्छा, अब तुझे जो करना हो कर। अब मैं देखूं, तू कैसे मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है! जो तुझे करना हो कर, यह मेरी आज्ञा है। अब मैं देखता हूं कि तू कैसे मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है!
वह जो आसुरी वृत्ति का व्यक्तित्व है, उसे तोड़ने का रस है। आप कुछ कहें, वह उसको तोड़ेगा। जो आपको न करवाना हो, उससे कहें कि करो, तो वह नहीं करेगा।
दैवी संपदा का व्यक्ति व्यर्थ उलझन में नहीं पड़ेगा। जो कामचलाऊ है, उसे स्वीकार कर लेगा, हां भर देगा। खेल के नियम हैं, उनको मान लेगा। जब तक कि उसके जीवन का ही कोई सवाल न हो, जब तक कि उसकी आत्मा का कोई सवाल न हो, तब तक उसमें विद्रोह का स्वर नहीं होगा।
और ध्यान रहे, जो छोटी-छोटी बातों में न कहता है, उसके पास न कहने की शक्ति बचती नहीं कि बड़े मौके पर न कह सके। जो छोटी-छोटी बातों में हां भरता है, जब जरूरत हो, तो उसके पास न कहने की शक्ति होती है। तो वह कह सकता है, नहीं। फिर उसकी नहीं को तोड़ा नहीं जा सकता।
इसलिए जिसको वस्तुतः क्रांतिकारी होना हो, उसको विद्रोही नहीं होना चाहिए; उसे व्यर्थ के नियम तोड़ने में नहीं लगना चाहिए, जिसे अगर जीवन का कोई वास्तविक अतिक्रमण करना हो।
तथा तेज, क्षमा, धैर्य और शौच अर्थात बाहर-भीतर की शुद्धि एवं अद्रोह अर्थात किसी में भी शत्रु-भाव का न होना, अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव--ये सब तो हे अर्जुन, दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं। इन सारे लक्षणों में गहन भाव है, अहंकार-शून्यता। मैं पूज्य हूं, दूसरे मुझे पूजें, दूसरे मुझे आदर दें, ऐसा सबके मन में होता है। यह स्वाभाविक है, क्योंकि अहंकार इसके सहारे ही निर्मित होगा और रक्षित होगा। मैं दूसरे को पूजूं, यह कठिन है। गुरु होना एकदम आसान है, शिष्य होना बहुत कठिन है। क्योंकि शिष्य होने का अर्थ है, किसी और की पूजा, किसी और के सामने समर्पण।
इसलिए अगर आपसे कोई दिल से पूछे कि ठीक दिल की बात बता दें, कि आप गुरु होना चाहते हैं कि शिष्य? तो भीतर से आवाज आएगी, गुरु होना चाहते हैं। और यह आवाज अगर भीतर है, तो आप शिष्य कभी भी नहीं हो सकते। तो अगर आप किसी के चरणों में भी झुकेंगे, तो भी झूठा होगा। और तरकीबें आप ऐसी करेंगे कि किसी

भांति गुरु को ही झुका लें। कोई उपाय, कि किसी दिन गुरु आपके प्रति झुक जाए!
अहंकार का स्वाभाविक लक्षण है कि सारा जगत मुझे पूजे। और कठिनाई यह
है कि जब तक अहंकार हो, तब तक कोई आपको पूजेगा नहीं। पूजा हो सकती है, पर वह सदा निरहंकार भाव की है। जिस दिन अहंकार मिट जाएगा, उस दिन शायद सारा जगत पूजे, लेकिन आपकी वह आकांक्षा नहीं है। और जगत पूजे या न पूजे, आपका समभाव होगा।
मैं मिटूं, ऐसा जिसका लक्ष्य है, वह व्यक्ति दैवी संपदा को उपलब्ध हो जाता है। मैं बनूं, मैं रहूं, मैं बचूं; चाहे सारा जगत मिट जाए मेरे मैं के बचाने में, तो भी मैं मैं को बचाऊंगा, ऐसा व्यक्ति आसुरी संपदा को उपलब्ध हो जाता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
तीसरा प्रवचन

आसुरी संपदा

बदलाहट संभव होती है। इसे समझाएं।
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्म पार्थ संपदमासुरीम्।। 4।।
दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।। 5।।
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मेशृणु।। 6।।
और हे पार्थ, पाखंड, घमंड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान, ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।
उन दोनों प्रकार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी संपदा बांधने के लिए मानी गई है। इसलिए हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।
और हे अर्जुन, इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के बताए गए हैं।
एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा। उनमें देवों का स्वभाव ही विस्तारपूर्वक कहा गया, इसलिए अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तारपूर्वक मेरे से सुन।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल आपने कहा, पूरा अशांत होने पर शांति की साधना कठिन
हो जाती है। लेकिन आप यह भी कहते रहे हैं कि विपरीत ध्रुवीयता के नियम के अनुसार अति पर पहुंचकर ही बदलाहट संभव होती है। इसे समझाएं।

आत्म-रूपांतरण, आत्यंतिक क्रांति तो अति पर ही संभव होती है। जब तक हम जीवन की एक शैली के आखिरी छोर पर न पहुंच जाएं, जब तक हम उसकी पीड़ा को पूरा न भोग लें, उसके संताप को पूरा न सह लें, तब तक रूपांतरण नहीं होता।
अशांत अगर कोई पूरा हो जाए, तो छलांग लग सकती है शांति में। लेकिन पूरा अशांत हो जाए, यह शर्त ख्याल रहे। आधी अशांति से नहीं चलेगा। और हममें से कोई भी पूरा अशांत नहीं होता; हम थोड़े अशांत होते हैं। जब हम समझते हैं कि हम बहुत अशांत हैं, तब भी हम थोड़े ही अशांत होते हैं। जब हम सोचते हैं कि असहनीय हो गई है दशा, तब भी सहनीय ही होती है, असहनीय नहीं होती। क्योंकि असहनीय का तो अर्थ है कि आप बचेंगे ही नहीं।
जिसको आप असहनीय अशांति कहते हैं, उसे भी आप सह तो लेते ही हैं। प्रियजन मर जाता है, बेटा मर जाता है, मां मर जाती है, पत्नी मर जाती है, पति मर जाता है, असहनीय दुख हम कहते हैं, लेकिन उसे भी हम सह लेते हैं; और हम बच जाते हैं उसके पार भी। दो-चार महीने में घाव भर जाता है; हम फिर पुराने हो जाते हैं; फिर जिंदगी वैसी ही चलने लगती है। हमने कहा था असहनीय, लेकिन वह सहनीय था। अशांति पूरी न थी।
अशांति पूरी होती, तो दो घटनाएं संभव थीं। या तो आप मिट जाते, बचते न;
और अगर बचते, तो पूरी तरह रूपांतरित होकर बचते। हर हालत में आप जैसे हैं, वैसे नहीं बच सकते थे। या तो आत्मघात हो जाता, या आत्मा-रूपांतरण हो जाता; पर आप जैसे हैं, वैसे ही बच नहीं सकते थे।
लेकिन देखा जाता है कि सब दुख आते हैं और चले जाते हैं, और आपको वैसा
ही छोड़ जाते हैं जैसे आप थे; उसमें रत्तीभर भी भेद नहीं होता। आप वही करते हैं फिर, जो पहले करते थे--वही जीवन, वही चर्या, वही ढंग, वही व्यवहार। थोड़ा-सा धक्का लगता है, फिर आप सम्हल जाते हैं। फिर गाड़ी पुरानी लीक पर चलने लगती है।
आत्महत्या हो जाएगी और या आत्मक्रांति हो जाएगी, दोनों ही स्थिति में
आप मिट जाएंगे। अति पर क्रांति घटित होती है। यदि कोई पूरा अशांत हो जाए,

तो उसका अर्थ हुआ कि अब और अशांत होने की जगह न बची। अब इसके आगे अशांति में जाने का कोई मार्ग न रहा। आखिरी पड़ाव आ गया। अब गति का कोई उपाय नहीं।
इस क्षण क्रांति घट सकती है; इस क्षण आप इस व्यर्थता को समझ सकते हैं। यह अशांत होने का सारा रोग व्यर्थ मालूम पड़ सकता है।
और ध्यान रहे, कोई और तो आपको अशांत करता नहीं, आप ही अशांत होते हैं।
यह आपका ही अर्जन है, यह आपका ही लगाया हुआ पौधा है, आपने ही सींचा और बड़ा किया है। ये जो अशांति के फल और फूल लगे हैं, ये आपके ही श्रम के फल हैं। और अगर आप पूरे अशांत हो गए, तो आपको दिखाई पड़ जाएगा कि सब व्यर्थ था; यह पूरा श्रम आत्मघाती था। आप इसे छोड़ दे सकते हैं। कोई और आपको पकड़े हुए नहीं है, और कोई आपको अशांत नहीं कर रहा है।
एक क्षण में जीवन अशांति के मोड़ से शांति की दिशा में गति करता है। एक
तो उपाय यह है। लेकिन जब मैंने कल कहा कि जब आप अशांत हैं तब शांत होना मुश्किल होगा, उसका प्रयोजन दूसरा है।
पहली तो बात यह कि जब आप अशांत हैं, तो मेरा अर्थ पूरी अशांति से नहीं है। आप आधे-आधे हैं। जैसे पानी को हम गरम करें; वह पचास डिग्री पर गरम हो, तो न तो वह भाप बन पाता है और न बर्फ बन पाता है। पानी ही रहता है। सिर्फ गरम होता है। या तो सौ डिग्री तक गरम हो जाए, तो रूपांतरण हो सकता है; पानी छलांग लगा ले, भाप बन जाए। और या शून्य डिग्री के नीचे गिर जाए, तो भी रूपांतरण हो सकता है; पानी समाप्त हो जाए, बर्फ बन जाए। दोनों हालत में पानी खो सकता है, लेकिन अतियों से।
तो जब मैंने कल कहा कि जब आप अशांत हैं तब शांत होना मुश्किल होगा, उसका मतलब इतना ही है कि जब पानी गरम है, तो बर्फ बनानी मुश्किल होगी। पानी को ठंडा करना होगा, तो बर्फ बन सकती है।
लेकिन दो उपाय हैं। या तो पानी को पूरा गरम कर लें, तो भी पानी खो जाएगा, आप एक नए जगत में प्रवेश कर जाएंगे। या फिर पानी को पूरा ठंडा हो जाने दें, तो भी पानी खो जाएगा और नई यात्रा शुरू हो जाएगी।
अशांति से कूदने के दो उपाय हैं। या तो बिल्कुल शांत क्षण आ जाए और या बिल्कुल अशांत क्षण आ जाए। आप जहां हैं, वहां से छलांग नहीं लग सकती। या तो पीछे लौटें और अपने को शांत करें या आगे बढ़ें और पूरे अशांत हो जाएं। दोनों की सुविधाएं और दोनों के खतरे हैं। शांत होने की सुविधा तो यह
है कि कोई विक्षिप्तता का डर नहीं है। इसलिए अधिक धर्मों ने शांत होने के छोर से ही छलांग लगाने की कोशिश की है। संन्यासियों को कहा गया है, घर-द्वार छोड़ दें, गृहस्थी छोड़ दें, काम-काज छोड़ दें।
यह सब शांत होने की व्यवस्था है। उन परिस्थितियों से हट जाएं, जहां पानी गरम होता है। चले जाएं दूर हिमालय में, जहां कोई गरम करने को न होगा, धीरे-धीरे आप ठंडे हो जाएंगे। हट जाएं उन-उन स्थितियों से, जहां आप उबलने लगते हैं। बार-बार उबलने लगते हैं, उबलने की आदत बन जाती है। हट जाएं उन व्यक्तियों से, जिनके संपर्क में आपको ठंडा होना मुश्किल हो रहा है। अधिक धर्मों ने, जहां आप हैं--मध्य में, अशांति में खड़े, अधूरी अशांति में--वहां से पीछे लौटने की सलाह दी है। खतरा उसमें कम है। लेकिन कठिनाई भी है उसकी। क्योंकि आप परिस्थितियों से हट सकते हैं, लोगों से हट सकते हैं, दुकान-बाजार छोड़ सकते हैं, लेकिन आपका मन आपके साथ हिमालय चला जाएगा। और जो मन यहां अशांत हो रहा था, वह मन तो आपके साथ होगा, सिर्फ अशांत करने वाली परिस्थितियां साथ न होंगी।
तो हो सकता है कि आप थोड़े शांत होने लगें, लेकिन वह शांति धोखा भी सिद्ध हो सकती है। बीस साल हिमालय पर रहकर वापस लौटें, और जैसे ही नगर में आएं, अशांति वापस पकड़ सकती है। क्योंकि परिस्थिति से हट गए थे, आप शांत नहीं हुए थे; जहां अशांति होती थी, उस जगह से हट गए थे। तो खतरा भी है, सुविधा भी है।
दूसरा उपाय कुछ धर्मों की विशेष शाखाओं ने किया है। जैसे बुद्ध-धर्म
की झेन शाखा ने अशांत करने का पूरा प्रयोग किया है। इस्लाम की सूफी शाखा ने अशांत करने का पूरा प्रयोग किया है। वे कहते हैं, भागने से कुछ भी न होगा। चित्त को उसकी पूरी दौड़ में चले जाने दें; उसको हो लेने दें जितना

पागल होना है। उसको उसके पूरे पागलपन को छू लेने दें और वहीं से छलांग लें।
इसके खतरे हैं, इसके लाभ हैं। खतरा तो यह है कि आप क्रमशः पाएंगे कि आप
और भी पागल होते जा रहे हैं। खतरा यह है कि अगर आप पूरे छोर तक न पहुंचे, नब्बे डिग्री पर कहीं रुक गए, तो आप विक्षिप्त हालत में रह जाएंगे। बहुत-से संन्यासी विक्षिप्त अवस्था में रह जाते हैं।
सौ डिग्री तक पहुंचें, तो पानी भाप बन जाएगा, लेकिन जरूरी नहीं है कि
आप पहुंच पाएं। अगर निन्यानबे डिग्री पर भी रह गए, तो आप सिर्फ पागल होंगे, उन्मत्त हो जाएंगे। उस उन्मत्तता की अवस्था में न तो पीछे लौटना आसान होगा, न आगे जाना आसान होगा।
वह दुर्घटना घटती है। अगर बीच में अटके, तो कठिनाई बढ़ जाएगी। और आप इस हालत में होंगे उबलने की कि फिर आप कुछ भी न कर पाएंगे। इसलिए यह जो दूसरा मार्ग है, अनिवार्यरूपेण किसी गुरु के पास ही साधा जा सकता है।
पहला मार्ग अकेला भी साधा जा सकता है, क्योंकि शांत होने की प्रक्रिया है, कोई खतरा नहीं है। दूसरे मार्ग में खतरा है। कोई चाहिए, जो आपको सौ डिग्री तक पहुंचा दे। क्योंकि पचास-साठ डिग्री के बाद आपका होश आपके काम नहीं आएगा। आप इतनी उबलती हालत में होंगे कि फिर आप अपने नियंत्रण में नहीं होंगे। कोई और चाहिए, जो आपको आगे ले जाए। और आखिरी क्षणों में, जब सौ डिग्री पर आप पहुंचते हैं, तब तो गुरु भी चाहिए, ऐसा स्थान चाहिए, जहां और भी साधक आस-पास हों, जहां का पूरा वातावरण आपको सौ डिग्री तक पहुंचा दे और टूटने न दे।
इसलिए ग्रुप, एक समूह, स्कूल, संप्रदाय, आश्रम, इसका उपयोग है। जहां बहुत-से लोग उस शांत अवस्था को पहुंच गए हैं, जहां बहुत-से लोग इस उबलती हुई अवस्था को पार कर गए हैं, जहां बहुत-से लोगों ने सौ डिग्री का ताप और पागलपन जाना है, उनकी मौजूदगी आपको सम्हालेगी। और कई बार महीनों तक, वर्षों तक यह विक्षिप्त अवस्था बनी रह सकती है। उस वक्त कोई चाहिए, जो आपको देखे और सम्हाले।
पश्चिम के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पश्चिम के पागलखानों में बहुत-
से ऐसे पागल बंद हैं, जो पागल नहीं हैं, जो सिर्फ उन्माद की अवस्था में हैं। लेकिन पश्चिम में उनको सम्हालने वाला कोई नहीं है।
ईसाइयों ने, मुसलमानों ने, हिंदुओं ने, बौद्धों ने मोनेस्ट्रीज खड़ी
की थीं। आज भी ईसाइयों की कुछ मोनेस्ट्रीज पश्चिम में हैं, जहां व्यक्ति प्रवेश करता है एक बार, तो फिर मरने के पहले वापस नहीं निकलता है। बीस वर्ष, तीस वर्ष, चालीस वर्ष... । जो व्यक्ति एक बार द्वार के भीतर गया, वह फिर आश्रम के बाहर नहीं आता, जब तक कि वह अतिक्रमण न कर जाए। जब तक गुरु आज्ञा न दे, तब तक दुनिया से उसका कोई वास्ता नहीं है। और पूरा समूह सहयोगी होता है। इन मोनेस्ट्रीज में अनेक लोग विक्षिप्त अवस्था में वर्षों तक रहते हैं।
तो दूसरे मार्ग का खतरा है, सुविधा भी है। सुविधा यह है कि धोखे का कोई उपाय नहीं है। एक बार पार कर गए, तो पार कर गए; फिर लौटकर गिरना नहीं होगा। फिर यह सारी दुनिया भी आपको अशांत नहीं कर सकती। फिर आप कहीं भी हों, आपको नरक में भी डाल दिया जाए, तो भी आप स्वर्ग में ही होंगे। आपके स्वर्ग को छीना नहीं जा सकता। यह तो सुविधा है।
खतरा यह है कि बड़ी व्यवस्था चाहिए, योग्य निरीक्षण चाहिए, समर्पण का पूरा भाव चाहिए। क्योंकि अपने को पागल करने देना और किसी को शक्ति देना कि वह आपको पागलपन की तरफ ले जाए, पूरा उद्विग्न कर दे, बड़े समर्पण के बिना नहीं हो सकेगा। पूरा समर्पण चाहिए और अंधा अनुकरण चाहिए, तभी आप पागल हो सकेंगे। और एक बार आप पूरी तरह जल जाएं भीतर, तो छलांग लग जाएगी। अति से ही रूपांतरण होता है।
कृष्ण पहले मार्ग की बात कर रहे हैं, जो व्यक्ति अकेला भी साध सकता है। इसलिए मैंने कहा कि जब आप अशांत हैं, तब शांत होना बहुत मुश्किल होगा। इसलिए जब आप शांत हैं, तभी शांति को साधें, ताकि अशांत होने का मौका न आए।
और शांति आपके जीवन का आधार बन जाए। धीरे-धीरे वह इतना सुदृढ़ हो जाए कि आप

पानी को भाप बनाकर क्रांति में न जाएं, वरन पानी को बर्फ बनाकर क्रांति में जाएं।
पानी से तो हटना है। जहां आप हैं, वहां से तो चलना है। ये चलने के दो उपाय हैं। ज्यादा सुगम--अकेले भी चला जा सके, विक्षिप्तता का भय न हो--पहला मार्ग है। ज्यादा तीव्र, ज्यादा प्रामाणिक, जिससे लौटकर गिरने का कोई डर नहीं है, लेकिन ज्यादा खतरनाक, दुस्साहस का, दूसरा मार्ग है। और प्रत्येक व्यक्ति को तय करना होता है कि उसका कितना साहस है, कितनी क्षमता है, कितना दांव पर लगाने की हिम्मत है।
अगर दुकानदार का मन हो, तो पहला मार्ग ठीक है; अगर जुआरी का मन हो, तो दूसरा मार्ग ठीक है। अगर बूढ़ा चित्त हो, तो पहला मार्ग ठीक है; अगर युवा चित्त हो, तो दूसरा मार्ग ठीक है। अगर स्त्री का चित्त हो, तो पहला मार्ग ठीक है; अगर पुरुष का चित्त हो, तो दूसरा मार्ग ठीक है।
पर प्रत्येक को समझना होता है कि उसकी अपनी जीवन-दशा कैसी है। जहां वह खड़ा है, जैसा वह है, क्या उसके लिए सुगम होगा। क्योंकि आप अगर कुछ अपने से विपरीत मार्ग चुन लें, तो आपका समय, शक्ति अपव्यय होगी। और इसीलिए गुरु की उपादेयता हो जाती है। क्योंकि न केवल वह मार्ग दे सकता है, बल्कि वह यह भी परख दे सकता है कि आपके लिए क्या उचित होगा।
इसलिए पुराने दिनों में एक-एक साधक को गुरु उसके कान में ही उसकी साधना का सूत्र देता रहा है; उसके कान में ही मंत्र देता रहा है। वह उसके लिए निजी था। वह उस व्यक्ति के लिए विशेष था। वह उसका मार्ग, पथ था। उस मंत्र को किसी को कहना भी नहीं है। क्योंकि आप नहीं जानते, वह किसी और के काम आ सकता है कि नहीं आ सकता है। और आपको पता नहीं है कि वह किसी को नुकसान भी पहुंचा सकता है; किसी के लिए कल्याणकारी हो सकता है।
तो वह जो अतिक्रमण कर गया है जीवन की सारी स्थितियों को, जो लौटकर देख सकता है सारे विस्तार को, जो आपके अंतःकरण में प्रवेश कर सकता है, जो आपके मन की आज की दशा जान सकता है, जो आपके अतीत संस्कारों को ठीक से पहचान सकता है और जो निर्णय ले सकता है कि भविष्य आपके लिए कौन-सा सुगम होगा, उसके बिना मार्ग पर बढ़ जाना सदा ही जोखम का काम है।

दूसरा प्रश्नः कृष्ण ने गीता में लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण का निषेध किया है। लेकिन इस नियम से तो समाज लकीर का फकीर होकर रह जाएगा। शायद यही कारण है कि हिंदू समाज सदियों-सदियों से यथास्थिति में पड़कर सड़ रहा है। इस प्रवृत्ति से तो दकियानूसीपन ही बढ़ेगा तथा सुधार, परिवर्तन और क्रांति असंभव हो जाएंगे! इस पर प्रकाश डालें।

इसे समझना जरूरी है।
पहली बात, कृष्ण जो भी कह रहे हैं गीता में, वह कोई समाज-सुधार का आयोजन नहीं है, वह कोई समाज-सुधार की रूप-रेखा नहीं है। वह प्रस्तावना व्यक्ति की आत्मक्रांति के लिए है। और ये दोनों बातें बड़ी भिन्न हैं। अगर व्यक्ति को आत्मक्रांति की तरफ जाना हो, तो यही उचित है कि वह व्यर्थ के उपद्रवों में न पड़े। क्योंकि शक्ति सीमित है, समय सीमित है, और जीवन और समाज के प्रश्न तो अनंत हैं। उनकी कभी कोई समाप्ति होने वाली नहीं है।
हजारों वर्षों से समाज है, हजारों रूपांतरण किए गए हैं, हजारों सामाजिक क्रांतियां हो चुकी हैं, लेकिन समाज फिर भी सड़ रहा है। एक चीज बदल जाती है, तो दूसरी खड़ी हो जाती है। दूसरी बदल जाती है, तो तीसरा सवाल खड़ा हो जाता है। एक समस्या का हम समाधान करते हैं, तो समाधान से ही दस समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। समस्याओं का समाज के लिए कभी कोई अंत आने वाला नहीं है। हिंदू इस बात को बड़े गहरे से समझ गए कि समाज बहता रहेगा, समस्याएं बनी रहेंगी। क्यों? क्योंकि समाज बनता है करोड़ों-करोड़ों, अरबों-अरबों लोगों से। और वे अरब-अरब लोग अज्ञान से भरे हैं, वे अरब-अरब लोग पागलपन से भरे हैं, वे अरब-अरब लोग विक्षिप्त हैं। उन अरबों लोगों का जो समाज है, वह कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकता। बीमार होना उसका लक्षण ही रहेगा, जब तक कि ये सारे लोग प्रबुद्ध पुरुष न हो जाएं।

बुद्धों का कोई समाज हो, तो समस्याओं के पार होगा। हमारा समाज समस्याओं के पार कभी हो नहीं सकता। और हम जो भी करेंगे... । एक तरफ हम सुधारेंगे, तो दस तरफ हम बिगाड़ कर लेते हैं।
आज से दो सौ साल पहले दुनियाभर के विचारकों का ख्याल था, अगर शिक्षा
बढ़ जाए जगत में, तो स्वर्ग आ जाएगा। अब शिक्षा बढ़ गई है। अब सारा जगत शिक्षा के मार्ग पर गतिमान हुआ है। अधिकतम लोग शिक्षित हैं। लेकिन अब शिक्षा के कारण जो परेशानियां आ रही हैं, वह दो सौ साल पहले के समाज-सुधारकों को उनका कोई पता भी नहीं था।
अब शिक्षा के कारण ही उपद्रव है। और बड़े विचारक, डी. एच.लारेंस जैसा विचारक, यह सुझाव दिया कि सौ साल तक हमें सारे विश्वविद्यालय बंद कर देने चाहिए, सौ साल तक सारी शिक्षा बंद कर देनी चाहिए, तो ही हमारी समस्याओं का हल होगा, नहीं तो हल नहीं हो सकता।
आज हमारे सारे पागलपन और उपद्रव का गढ़ विश्वविद्यालय बन गया है। सब उपद्रव वहां से पैदा हो रहे हैं। सोचा था, शिक्षा स्वर्ग ले आएगी। लेकिन जिनको हमने शिक्षित किया है, वे समाज को और नरक बनाए दे रहे हैं! सोचा था कि शिक्षा से लोग सत्य, धर्म, नीति की तरफ बढ़ेंगे। लेकिन शिक्षा सिर्फ लोगों को बेईमान और चालाक बना रही है।
शिक्षित आदमी के ईमानदार होने में कठिनाई हो जाती है, क्योंकि वह गणित बिठालने लगता है, चालाक हो जाता है। बुद्धि बढ़ेगी, तो चालाकी भी बढ़ेगी। चालाकी बढ़ेगी, तो दूसरे का शोषण करने में ज्यादा कुशल हो जाएगा। शिक्षा बढ़ेगी, तो महत्वाकांक्षा बढ़ेगी, एंबीशन बढ़ेगी। महत्वाकांक्षा बढ़ेगी, तो वह संघर्ष करेगा। तृप्ति कम हो जाएगी, असंतोष घना हो जाएगा।
वह देखता है कि दूसरा आदमी अगर एम.ए. पास है और चीफ मिनिस्टर हो गया है
और मैं भी एम.ए. पास हूं, तो मैं क्यों क्लर्क रहूं! और यह भी हो सकता है कि थर्ड क्लास एम.ए. मिनिस्टर हो गया है और फर्स्ट क्लास एम.ए. क्लर्क है, तो वह कैसे बरदाश्त करे! तो उपद्रव खड़ा होगा।
लोग सोचते थे, गरीबी कम हो जाएगी, तो समाज में सुख आ जाएगा। अमेरिका से गरीबी काफी मात्रा में तिरोहित हो गई। कम से कम आधे वर्ग की तो तिरोहित हो गई। लेकिन वह जो आधा वर्ग आज गरीबी के बिल्कुल पार है, वह बड़े महान दुख में पड़ा हुआ है।
अब तक हम सोचते थे कि धन होगा, तो सुख होगा। अब जिनके पास धन है, उनका सुख इस बुरी तरह खो गया है, जितना किसी गरीब का कभी नहीं खोया था। गरीब को एक आशा थी कि कभी धन होगा, तो सुख मिल जाएगा। जिनके पास आज धन है, उनकी यह आशा भी खो गई है। धन है, और सुख नहीं मिला। अब भविष्य बिल्कुल अंधकार है। कुछ पाने योग्य भी नहीं है। और फिर जीने की कोई आशा भी नहीं रह गई है।
तो अमेरिका सर्वाधिक आत्मघात कर रहा है। अधिकतम लोग अपने को मिटाने
की हालत में हैं। जीकर भी क्या करें? गरीबी मिट जाए, अशिक्षा मिट जाए, हम सोचते हैं, बीमारी मिट जाए, सभी लोग स्वस्थ हो जाएं। पर स्वस्थ होकर भी आदमी क्या करेगा?
मैंने सुना है, तैमूरलंग ने एक ज्योतिषी को बुलाया। तैमूरलंग को काफी नींद आती थी। तो उसने ज्योतिषी से पूछा कि बात क्या है? क्या मेरे तारों में, क्या मेरे भाग्य में, क्या मेरी जन्मकुंडली में कुछ ऐसी बात है कि मुझे बहुत नींद आती है? रातभर भी सोता हूं, तो भी दिनभर मुझे नींद आती है। और यह तो बुरा लक्षण है। क्योंकि शास्त्रों में कहा है, इतना आलस्य तामसी प्रवृत्ति का सूचक है।
उस ज्योतिषी ने कहा कि महाराज, इससे ज्यादा स्वागत-योग्य कुछ भी नहीं है। आप चौबीस घंटे सोएं। यह बिल्कुल शुभ लक्षण है। शास्त्र गलती पर हैं। तैमूरलंग को भरोसा नहीं आया। उसने कहा कि शास्त्र गलत नहीं हो सकते; तुम यह क्या कह रहे हो! उसने कहा कि शास्त्रों ने आपके संबंध में लिखा ही नहीं है। आप जैसा आदमी चौबीस घंटे सोए, यही सुखद है। आप जितनी देर जगते हैं, उतना ही उपद्रव होता है। आपसे उपद्रव के सिवाय कुछ हो ही नहीं सकता।
तो परमात्मा की बड़ी कृपा है कि आप सोए रहें। आपका जीवित होना खतरनाक है।
आपका मर जाना शुभ है।

आदमी पर निर्भर है। अगर आप, जिसको आप कह रहे हैं कि सारा जगत स्वस्थ हो जाए, ये सारे उपद्रवी लोग अगर स्वस्थ हो जाएं, तो आप यह मत सोचना कि शांति आएगी दुनिया में। वह जो बीमार था, एक पत्नी से राजी था; वह जब स्वस्थ हो जाएगा, दस पत्नियों से भी राजी होने वाला नहीं। वह बीमार था, तो वह कभी बरदाश्त भी कर लेता था; सह भी लेता था; समझा लेता था अपने को। वह स्वस्थ हो जाएगा, तो वह तलवार लेकर कूद पड़ेगा, वह सह भी नहीं सकेगा, बरदाश्त भी नहीं करेगा।
आदमी अगर गलत है, तो उसका स्वस्थ होना खतरनाक है। आदमी अगर गलत है, तो उसका शिक्षित होना खतरनाक है। आदमी अगर गलत है, तो उसका धनी होना खतरनाक है। और आदमी गलत हैं, समाज गलत आदमियों का जोड़ है। हमारे हिसाब से समाज सदा ही गलत आदमियों का जोड़ रहेगा। क्योंकि जो भी आदमी ठीक हो जाता है, हिंदुओं के गणित से, वह वापस नहीं लौटता।
कृष्ण या बुद्ध या महावीर, जैसे ही शुभ हो जाते हैं, यह उनका आखिरी जीवन है। फिर इस जीवन में वे वापस नहीं आते। तो शुभ आदमी तो जीवन से तिरोहित हो जाता है, अशुभ आदमी लौटता आता है।
यह कारागृह, जिसको हम संसार कहते हैं, वह बुरे आदमी की जगह है। उसमें
से भला तो अपने आप छिटककर बाहर हो जाता है। बुरा उसमें वापस लौट आता है; और भी निष्णात होता जाता है; और भी कुशल होता जाता है बुराई में। जितनी बार लौटता है, उतना निष्णात होता जाता है।
इसलिए समाज कभी शुभ हो नहीं सकेगा। यह बात निराशाजनक लग सकती है, लेकिन तथ्य यही है।
और कृष्ण या बुद्ध या महावीर या जीसस की उत्सुकता समाज में नहीं है, उत्सुकता व्यक्ति में है। क्योंकि वही बदला जा सकता है। और व्यक्ति को अगर जीवन-क्रांति करनी है, तो उचित है कि वह व्यर्थ की बातों में न पड़े। कि दहेज की प्रथा मिटानी है, इसमें लग जाए; आदिवासियों को शिक्षित करना है, इसमें लग जाए; हरिजनों का सुधार करना है, इसमें लग जाए; कोढ़ी की सेवा करना है, इसमें लग जाए। कुछ भी बुरे नहीं हैं ये काम, सब अच्छे हैं। लेकिन आपके पास जिंदगी कितनी है? और आप इसमें लग जाएं, तो आप समाप्त हो जाएंगे। न हरिजन मिटता है, न कोढ़ी मिटता है, न बीमार मिटता है, आप मिट जाएंगे। नए तरह के हरिजन पैदा हो जाएंगे।
रूस ने लाख उपाय किए, क्रांति कर डाली। पुराना मजदूर मिट गया, नया मजदूर पैदा हो गया। पहले अमीर आदमी था, गरीब आदमी था; अब सरकारी आदमी है और गैर-सरकारी आदमी है। फर्क उतना ही है। तब भी कोई छाती पर बैठा था और कोई जमीन पर पड़ा था; अब भी कोई जमीन पर पड़ा है और कोई छाती पर बैठा है। नाम बदल जाते हैं, बीमारी कायम रहती है।
जिस व्यक्ति को आत्म-क्रांति में लगना है, उसे व्यर्थ के उपद्रव से अपने को बचाना चाहिए, यह कृष्ण का अर्थ है। तो वे कहते हैं, शास्त्र और समाज का जो नियम है, उसमें वह जो दैवी संपदा का व्यक्ति है, वह व्यर्थ की अड़चन नहीं डालता। उसे खेल का नियम मानकर पूरा कर देता है। वह कहता है, बाएं चलना है तो हम बाएं चल लेते हैं। वह इस पर झगड़ा खड़ा नहीं करता कि नहीं, दाएं चलेंगे। इस पर जीवन नहीं लगा देता। इसका कोई मूल्य भी नहीं है। और ऐसा व्यक्ति अपने जीवन का, अपनी ऊर्जा का सम्यक उपयोग कर पाता है।
और बड़े मजे की बात, विरोधाभासी दिखे तो भी बड़े मजे की बात यह है कि ऐसे व्यक्ति के जीवन के द्वारा समाज में कुछ घटित भी होता है। लेकिन वह प्रत्यक्ष नहीं होता घटित। वह सीधा समाज को बदलने नहीं जाता, वह अपने को बदल लेता है। लेकिन उसकी बदलाहट के परिणाम समाज में भी प्रतिध्वनित होते हैं।
हजारों क्रांतिकारी जो फर्क समाज में नहीं कर पाते, वह एक आत्मा को उपलब्ध व्यक्ति कर पाता है। लेकिन वह उसकी इच्छा नहीं है; वह उसके लिए कोशिश में भी नहीं लगा है। उसकी मौजूदगी, उसके जीवन का प्रकाश अनेकों को बदलता है। लेकिन वह बदलाहट बड़ी सौम्य है। वह कोई क्रांति नहीं है। वह बहुत सौम्य विकास है। उसका कोई शोरगुल भी नहीं है। वह चुपचाप घटित होता है। वह मौन ही घट जाता है।

बुद्ध कोई क्रांति नहीं करते हैं समाज में, लेकिन बुद्ध के बाद दुनिया दूसरी हो जाती है। बुद्धों की मौजूदगी, उनके ज्ञान की घटना, मनुष्य की चेतना को कहीं गहरे में रूपांतरित कर जाती है; किसी को पता भी नहीं चलता। यह ऐसे हो जाता है, जैसे चुपचाप कोई फूल खिलता है और उसकी सुगंध हवाओं में फैल जाती है। न कोई बैंड बजता, न कोई नगाड़े बजते; कोई शोरगुल नहीं होता, चुपचाप सुगंध हवाओं में भर जाती है। फूल खो भी जाता है, तो सुगंध तिरती रहती है। सदियों-सदियों तक उस सुगंध से लोग आप्लावित होते हैं, रूपांतरित होते हैं।
लेकिन ये रुख यात्रा के बिल्कुल अलग-अलग हैं। जो व्यक्ति समाज की तरफ उत्सुक हो जाएगा कि समाज को बदलना है, वह व्यक्ति अपने को बदलने में उत्सुक नहीं होता। अगर गहरे से समझना चाहें, तो असल में हम दूसरे को बदलने में इसलिए उत्सुक होते हैं, क्योंकि हम अपने को बदलना नहीं चाहते। यह एक तरह का पलायन है, यह एक तरकीब है।
तो हम देखते हैं, कहां-कहां दुनिया में भूल-चूक है, उसको बदलना है। सिर्फ अपने में कोई भूल-चूक नहीं देखते। और अपने में भूल-चूक दिखाई भी नहीं पड़ेगी, क्योंकि दुनिया में काफी भूल-चूकें हैं।
और अगर मैंने यह तय कर लिया कि जब तक दुनिया न बदल जाए, तब तक मैं अपनी तरफ ध्यान न दूंगा, तो मैं अनंत जन्मों तक लगा रहूं, तो भी मुझे अपने पर ध्यान देने का समय नहीं मिलेगा। यह दुनिया कभी पूरी बदल जाने वाली नहीं है।
इसलिए समाज को चुपचाप स्वीकार कर लेना दकियानूसीपन नहीं है, एक बहुत बुद्धिमत्ता का कृत्य है। और इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ऐसे व्यक्ति से क्रांति घटित नहीं होती। ऐसे ही व्यक्ति से क्रांति घटित होती है। लेकिन वह क्रांति परोक्ष है। वह क्रांति लेनिन और मार्क्स और माओ जैसी क्रांति नहीं है। वह क्रांति महावीर, कृष्ण और बुद्ध की क्रांति है। वह बड़ी चुपचाप घटित होती है।
और इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, वह चुपचाप घटित होता है। और जो भी व्यर्थ है, कचरा-कूड़ा है, वह काफी शोरगुल करता है। इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, इतिहास उसको अंकित ही नहीं कर पाता। इस जगत में जो भी उपद्रव, उत्पात है, इतिहास उसको अंकित करता है।
एक यहूदी फकीर के संबंध में मैं पढ़ता था। वह अक्सर लोगों से कहता था
कि मैं सिर्फ दो किताबें पढ़ता हूं, एक भगवान की और एक शैतान की। अनेक बार लोग उससे पूछते कि भगवान की किताब तो हम समझते हैं कि तालमुद यहूदियों का धर्मग्रंथ है, वह आप पढ़ते होंगे। लेकिन शैतान की किताब? यह इसका नाम क्या है? तो वह हंसता और टाल जाता।
जब उसकी मृत्यु हुई, तो पहला काम उसके शिष्यों ने यह किया कि उसकी कोठरी खोलकर देखा कि वह शैतान की किताब! उसके वहां दो तख्तियां लगी थींः एक तरफ भगवान की किताब--वहां तालमुद रखी थी, और शैतान की किताब--वहां रोज का अखबार। वहां कोई किताब नहीं थी, वह जो रोज का अखबार है! बस, दो ही किताबें वह पढ़ता था।
अखबार इतिहास बन जाएगा। अगर जीसस के समय कोई अखबार होता, तो उसने जीसस
की खबर छापी भी नहीं होती। किसी किताब में जीसस का कोई उल्लेख नहीं है। सिवाय जीसस के शिष्यों ने जो थोड़ा-सा लिखा है, बस वही बाइबिल, अन्यथा कोई उल्लेख नहीं है।
महावीर का इतिहास की किताबों में कोई उल्लेख नहीं है। वह जो महान घटना है, इतिहास के जैसे बाहर घटती है! इतिहास उसकी चिंता ही नहीं लेता। क्योंकि वह इतनी सौम्य है, उसकी कोई चोट नहीं पड़ती। न किसी की हत्या होती है, न गोली चलती है, न हड़ताल होती है, न घेराव होता है। कोई उपद्रव होता ही नहीं उसके आस-पास, इसलिए वह घटना चुपचाप घट जाती है। लेकिन उसके परिणाम सदियों तक गूंजते रहते हैं।
इतिहास कचरा है।
अमेरिकी अरबपति हेनरी फोर्ड कभी-कभी बड़ी कीमत की बातें कहता था। कभी- कभी छोटे-छोटे वचन, लेकिन बड़ी कीमत की बातें कहता था। उसका एक बहुत प्रसिद्ध छोटा-सा वचन है। उसने कहा है, हिस्ट्री इ.ज बंक--बिल्कुल कूड़ा-

कर्कट है। और जो भी महत्वपूर्ण है, वह इतिहास के बाहर है, वह समय के बाहर घट रहा है; वह चुपचाप घटित हो रहा है।
तो ऐसा नहीं है कि ऐसे व्यक्ति से क्रांति घटित नहीं होती, ऐसे ही व्यक्ति से घटित होती है, लेकिन वह मौन क्रांति है।

तीसरा प्रश्नः गीता में दैवी संपदा को प्राप्त व्यक्ति के लक्षण या गुण बताए गए हैं। क्या उन्हें अलग-अलग साधने से दिव्यता उपलब्ध होती है? या दिव्यता की उपलब्धि पर उसके फूल की तरह ये गुण चले आते हैं?

दोनों ही बातें एक साथ सच हैं। दोनों बातें एक साथ घटती हैं, युगपत। प्रश्न ऐसा ही है, जैसे कोई पूछे कि मुर्गी पहले होती है कि अंडा! और सदियों से दार्शनिक विवाद करते रहे हैं। सवाल बचकाना लगता है, लेकिन जटिल है, और अब तक कुछ तय नहीं हो पाया कि पहले अंडा या पहले मुर्गी। क्योंकि कुछ भी तय करें, तो गलत मालूम होता है। कहें कि मुर्गी पहले होती है, तो गलत मालूम पड़ता है, क्योंकि मुर्गी बिना अंडे के कैसे हो जाएगी! कहें कि अंडा पहले होता है, तो गलत मालूम होता है, क्योंकि अंडा हो कैसे जाएगा जब तक मुर्गी उसे रखेगी नहीं! तो क्या करें? प्रश्न में कहीं कोई भूल है, इसलिए उत्तर नहीं मिल पाता है। और जब प्रश्न गलत हो, तो सही उत्तर खोजना बिल्कुल असंभव है। कहां गलती है?
मुर्गी और अंडा को दो मानने में गलती है। अंडा मुर्गी की एक अवस्था है, मुर्गी अंडे की दूसरी अवस्था है। दोनों दो चीजें नहीं हैं। अंडा ही फैलकर मुर्गी होता है, मुर्गी फिर सिकुड़कर अंडा होती है।
बीज से वृक्ष होता है, वृक्ष में फिर बीज लग जाते हैं; तो बीज और वृक्ष
दो चीजें हैं नहीं। बीज का फैलाव वृक्ष है, वृक्ष का फिर से सिकुड़ाव बीज है। एक रिदम है। चीजें फैलती हैं और सिकुड़ती हैं। बीज सिकुड़ा हुआ वृक्ष है, वृक्ष फैला हुआ बीज है। और जैसे दिन के बाद रात है और रात के बाद दिन है, ऐसा फैलाव के बाद सिकुड़ाव है, सिकुड़ाव के बाद फैलाव है। जन्म के बाद मृत्यु है, मृत्यु के बाद जन्म है। ये दो घटनाएं नहीं हैं; एक वर्तुल है। तो मुर्गी और अंडा दो चीजें नहीं हैं; अंडा छिपी हुई मुर्गी है मुर्गी प्रकट हो गया अंडा है। और दोनों एक साथ हैं। इसलिए इस प्रश्न को अगर किसी ने सोचना शुरू किया कि कौन पहले, तो वह पागल भला हो जाए सोचते-सोचते, वह इसका उत्तर नहीं पा सकेगा।
और ऐसे बहुत-से प्रश्न हैं। यह प्रश्न भी वैसा ही है कि ये जो लक्षण हैं, इनके साधने से दिव्यता सधती है; या दिव्यता सध जाए, तो ये लक्षण फूल की भांति खिल जाते हैं।
ये दो बातें अलग नहीं हैं। लक्षण सध जाएं, तो दिव्यता सध गई, क्योंकि
उन लक्षणों में दिव्यता छिपी है। दिव्यता सध जाए, तो लक्षण आ गए, क्योंकि दिव्यता बिना उन लक्षणों के आ नहीं सकती। लक्षण और दिव्यता दो बातें नहीं हैं। लक्षण दिव्यता के अनिवार्य अंग हैं।
तो आप कहीं से भी यात्रा करें। आप मुर्गी खरीद लाएं, तो घर में अंडे आ जाएंगे। आप अंडा ले आएं, तो मुर्गी बन जाएगी। पर बैठकर सोचते ही मत रहें कि क्या लाएं। कुछ भी ले आएं। दो में से कुछ भी लाएं। कहीं ऐसा न हो कि आप सोचते ही रहें, मुर्गी भी खो जाए, अंडा भी खो जाए। आप लक्षण साध लें, आप पाएंगे, उनके साथ ही साथ दिव्यता खिलने लगी। आप छोड़ें लक्षणों की चिंता। आप दिव्यता को साधने में लग जाएं।
दोनों संभावनाएं हैं। जो लोग लक्षणों को साधने चलते हैं, उन्हें आचरण
से अपने को बदलना शुरू करना पड़ता है। आचरण आपकी बहिर परिधि है। आप क्या करते हैं, उसमें बदलाहट करेंगे, तो लक्षण सध जाएंगे। जो लोग दिव्यता साधना चाहते हैं, उन्हें अंतःकरण बदलने से शुरू करना पड़ता है। अंतःकरण आपका केंद्र है। आप बदल जाएंगे, आपका आचरण बदल जाएगा।
जहां से आपको सुगमता लगती हो, अगर आप बहिर्मुखी व्यक्ति हैं... ।
मनसविद दो विभाजन करते हैं व्यक्तियों केः बहिर्मुखी, एक्सट्रोवर्ट;
और अंतर्मुखी, इंट्रोवर्ट। अगर आप बहिर्मुखी व्यक्ति हैं, कि आपको बाहर की चीजें ज्यादा दिखाई पड़ती हैं, तो आपके लिए उचित होगा कि आप लक्षण

साधें। क्योंकि भीतर का आपको कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। अगर आपसे कोई कह भी दे कि आंख बंद करो और भीतर देखो; तो आप कहेंगे, भीतर क्या है देखने को? देखने को तो सब बाहर है। अगर भीतर आंख भी बंद कर लें, तो भी बाहर की ही याद आएगी। मित्र दिखाई पड़ेंगे, मकान दिखाई पड़ेंगे, घटनाएं दिखाई पड़ेंगी, वह सब बाहर है।
वैज्ञानिक है, वह बहिर्मुखी है। क्षत्रिय है, वह बहिर्मुखी है। कवि है, चित्रकार है, वह अंतर्मुखी है। उसे सब भीतर है।
प्रसिद्ध डच चित्रकार हुआ, वानगाग। उसके चित्र बिक नहीं सके, क्योंकि उसके चित्र बिल्कुल समझ के बाहर थे। वह वृक्ष बनाएगा, तो इतने बड़े, कि आकाश तक चले जाएं। चांद वगैरह बनाएगा, तो छोटे-छोटे लटका देगा, और वृक्ष चांद के ऊपर चले जा रहे हैं! वृक्षों को ऐसे रंग देगा, जैसे वृक्षों में होते ही नहीं रंग। वृक्ष हरे हैं, उसके वृक्ष लाल भी हो सकते हैं।
तो लोग कहते, यह तुम क्या करते हो! वह कहता, जब मैं आंख बंद करता हूं, तो
जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं... । क्योंकि जब भी मैं देखता हूं, तो मुझे वृक्ष पृथ्वी की आकांक्षाएं मालूम पड़ते हैं, आकाश को छूने की आकांक्षाएं। जब भी मैं आंख बंद करता हूं, तो मैं देखता हूं, पृथ्वी कोशिश कर रही है वृक्षों के द्वारा आकाश को छूने की, इसलिए मेरे वृक्ष आकाश तक चले जाते हैं। जो काम पृथ्वी नहीं कर पाती, वह मैं करता हूं। पर वृक्षों को मैं ऐसे ही देखता हूं।
यह एक अंतर्मुखी व्यक्ति की, जिसका जगत भीतर है... । यह अंतर्मुखी व्यक्ति अगर कोई हो, तो उसे दिव्यता से शुरू करना पड़ेगा। बहिर्मुखी व्यक्ति कोई हो, तो उसे आचरण से शुरू करना पड़ेगा।
तो आप लक्षण से शुरू करें या दिव्यता से; शुरू करें! दूसरी घटना अपने
आप घट जाएगी। आचरण को बदलते-बदलते आप भीतर आने लगेंगे। क्योंकि आचरण की जड़ें तो भीतर हैं, सिर्फ शाखाएं बाहर हैं। अगर आप आचरण को बदलने लगे, तो आज शाखाएं बदलेंगे, कल आप जड़ों को पकड़ लेंगे; जड़ें भीतर हैं।
अगर आप अंतःकरण को बदलते हैं, तो अंतःकरण में जड़ें तो भीतर हैं, लेकिन शाखाएं बाहर हैं। आप जड़ों से शुरू करेंगे, यात्रा करते-करते आज नहीं कल बाहर पहुंच जाएंगे।
बाहर और भीतर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न तो बाहर अलग है भीतर से, न भीतर अलग है बाहर से। बाहर और भीतर एक का ही विस्तार है। कहीं से भी शुरू करें, दूसरा छोर प्रकट हो जाएगा। लेकिन शुरू करें। जो शुरू नहीं करता... बहुत लोग हैं, जो सोचते ही रहते हैं।
आज ही एक युवक मेरे पास आया। उसने कहा, मैं सोचता हूं, सोचता हूं, और सोचने में इतना खो जाता हूं कि निर्णय तो कुछ कर ही नहीं पाता। और जो भी निर्णय करता हूं, उससे विपरीत भी मेरी समझ में आता है कि ठीक है। और जब तक तय न हो जाए, तब तक निर्णय कैसे करूं! और तय कुछ होता नहीं। और जितना सोचता हूं, उतना ही तय होना मुश्किल होता जाता है।
अगर आप ज्यादा सोचेंगे, तो कठिनाई खड़ी होगी। अगर आप सोचते ही रहेंगे,
तो धीरे-धीरे सारी ऊर्जा सोचने में ही व्यतीत हो जाएगी। उसका कोई कृत्य नहीं बन पाएगा। और ध्यान रहे, जीवन की संपदा कृत्य से उपलब्ध होती है, सिर्फ विचार से नहीं!
विचार सपनों की भांति हैं। जैसे समुद्र पर झाग और फेन उठती है, ऐसे चेतना की झाग और फेन की भांति विचार है। उनका कोई मूल्य नहीं है। समुद्र की लहर पर लगता है, जैसे शिखर आ रहा है फेन का; लगता है, हाथ में ले लेंगे। लेकिन हाथ में पकड़ते हैं, तो पानी के बबूले फूट जाते हैं, कुछ हाथ आता नहीं। ऐसा ही फेन और झाग है विचार आपकी चेतना का। वह लहर पर दूर से बड़ा कीमती दिखाई पड़ता है। सूरज की किरणों में बड़ी चमक मालूम होती है। घर में तिजोरी में सम्हालकर रखने जैसा लगता है। लेकिन हाथ में लेते ही पता चलता है, वहां कुछ भी नहीं है, पानी के बबूले हैं।
इस झाग से थोड़ा नीचे उतरना जरूरी है। उस लहर को पकड़ना जरूरी है जिस पर
यह झाग है। और लहर के नीचे छिपे सागर को पकड़ना जरूरी है, जिसकी यह लहर है।
और तभी जीवन में कोई रूपांतरण, कोई क्रांति संभव है।

अब हम सूत्र को लें।
और हे पार्थ, पाखंड, घमंड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान, ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं। उन दोनों प्रकार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी संपदा बांधने के लिए मानी गई है। इसलिए हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।
और हे अर्जुन, इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के माने गए हैं,
एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा। उनमें देवों का स्वभाव ही विस्तारपूर्वक कहा गया, इसलिए अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तारपूर्वक मेरे से सुन।
पाखंड, हिपोक्रेसी... ।
पाखंड का अर्थ है, जो आप नहीं हैं, वैसा स्वयं को दिखाना। जो आपका वास्तविक चेहरा नहीं है, उस चेहरे को प्रकट करना।
हम सबके पास मुखौटे हैं। जरूरत पर हम उन्हें बदल लेते हैं। सुबह से सांझ तक बहुत बार हमें नए-नए चेहरों का उपयोग करना पड़ता है। जैसी जरूरत हो, वैसा हम चेहरा लगा लेते हैं। धीरे-धीरे यह भी हो सकता है कि इस पाखंड में चलते-चलते आपको भूल ही जाए कि आप कौन हैं।
यही हो गया है। अगर आप अपने से पूछें कि मैं कौन हूं, तो कोई उत्तर नहीं आता। क्योंकि आपने इतने चेहरे प्रकट किए हैं, आपने इतने रूप धरे हैं, आपने इतनी भांति अपने को प्रचारित किया है, कि अब आप खुद भी दिग्भ्रम में पड़ गए हैं कि मैं हूं कौन! क्या है सच मेरा! मेरी कोई सचाई है, या बस मेरा सब धोखा ही धोखा है! सुबह से सांझ तक, हम जो नहीं हैं, वह हम अपने को प्रचारित कर रहे हैं।
कृष्ण ने दैवी संपदा में गिनाया, सत्य, प्रामाणिकता, आथेंटिसिटी, व्यक्ति जैसा है, बस वही उसका होने का ढंग है, चाहे कोई भी परिणाम हो। आसुरी संपदा में उसके अनेक चेहरे हैं।
हम रावण की कथा पढ़ते हैं, लेकिन शायद आपको अर्थ पकड़ में नहीं आया होगा। कि रावण दशानन है, उसके दस चेहरे हैं। राम का एक ही चेहरा है। राम आथेंटिक हैं, प्रामाणिक हैं। उन्हें आप पहचान सकते हैं, क्योंकि कोई धोखा नहीं है। रावण को पहचानना मुश्किल है। उसके बहुत चेहरे हैं। दस का मतलब, बहुत। क्योंकि दस आखिरी संख्या है। दस से बड़ी फिर कोई संख्या नहीं है। फिर सब संख्याएं दस के ऊपर जोड़ हैं।
दस चेहरे का मतलब है, बस आखिरी। उसका असली चेहरा कौन है, यह पहचानना मुश्किल है। रावण असुर है। और हमारे चित्त की दशा जब तक आसुरी रहती है, तब तक हमारे भी बहुत चेहरे होते हैं। हम भी दशानन होते हैं। इससे हम दूसरे को धोखा देते हैं, वह तो ठीक है, इससे हम खुद भी धोखा खाते हैं। क्योंकि हमें खुद ही भूल जाता है कि हमारा स्वरूप क्या है।
पाखंड का अर्थ है, दूसरे को धोखा देना और अंततः उस धोखे से खुद को भी धोखे में डाल लेना।
झूठ का स्वभाव है, एक झूठ को बचाना हो, तो फिर हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। फिर इतनी अनंतशृंखला है झूठों की कि हमें याद भी नहीं रहता कि पहला झूठ क्या था, जो हमने बोला था।
झूठ का एक दूसरा स्वभाव है, अगर बार-बार उसे पुनरुक्त किया जाए, तो निरंतर पुनरुक्ति के कारण हम आटो-हिप्नोटाइज्ड हो जाते हैं, हम सम्मोहित हो जाते हैं। और हमें खुद ही लगने लगता है कि यह ठीक है। आप एक झूठ बार-बार दोहराते रहें, फिर आपको खुद ही शक होने लगेगा कि यह सच है या झूठ है! क्योंकि आपने इतनी बार दोहराया है कि उसकी छाप आपके ऊपर पड़ गई।
मैं पढ़ रहा था, एक आदमी ने हत्या की थी, और उस पर मुकदमा चल रहा था। वर्षों तक कार्यवाही चली। बड़ा जटिल उलझा हुआ मामला था। वकीलों के बयान हुए, गवाहों के बयान हुए, अदालत चलती रही। अंत में मजिस्ट्रेट भी थक गया, क्योंकि सब स्थिति बिल्कुल कनफ्यूज्ड थी। कुछ साफ नहीं होता था। कोई दो वक्तव्यों में मेल नहीं होता था। कोई दो गवाहों का बयान मिलता नहीं था।

कुछ निर्णय होना मुश्किल था। आखिर जज ने थककर उस हत्यारे को पूछा कि तू कृपा कर और तू स्वयं कह दे कि बात क्या है?
तो उसने कहा कि जब शुरू-शुरू में मैं आया था, तब मुझे भी साफ था। अब मुश्किल है। मैं भी कनफ्यूज हो गया हूं। अब मैं साफ-साफ कह नहीं सकता कि मैंने की हत्या या नहीं की। क्योंकि जब मैं अपने वकील की दलीलें सुनता हूं, तो मुझ को भी भरोसा आता है कि मैंने की नहीं। यह कुछ गलती हो गई। या मैंने कोई सपना देखा। इसलिए अब मेरी बात का कोई मूल्य नहीं है। अब तो आप ही तय कर लें।
यह स्थिति है। आप भी अगर एक झूठ कई वर्ष तक बोलते रहें, तो आपको पीछे पक्का होना मुश्किल हो जाता है कि आप झूठ बोले थे कि यह सच है। झूठ का यह दूसरा स्वभाव है कि उसको आप पुनरुक्त करें, तो वह सच जैसा मालूम होने लगता है। और हर झूठ को और झूठों की जरूरत है।
मैंने काशी में एक दुकान पर एक तख्ती लगी हुई देखी। घी की दुकान थी।
उस पर तख्ती लगी है, असली घी की दुकान। नीचे लिखा है, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब का शुद्ध देशी घी यहां मिलता है। नकली सिद्ध करने वाले को पांच सौ रुपया नकद इनाम। और उसके नीचे लिखा है लाल अक्षरों कि इस तरह के इनाम यहां कई बार बांटे जा चुके हैं।
ऐसी हमारे चित्त की दशा हो जाती है।
पाखंड का अर्थ है, आप कुछ हैं, कुछ दिखाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन
जो आप हैं, वह आपकी सब कोशिश के भीतर से भी झांकता रहेगा। आप उसे बिल्कुल छिपा भी नहीं सकते। उसे बिल्कुल मिटाया नहीं जा सकता; वह आपके भीतर छिपा है। इसलिए भला आपको न दिखाई पड़े, दूसरों को दिखाई पड़ता है।
अक्सर यह होता है कि आपके संबंध में दूसरे लोग जो कहते हैं, वह ज्यादा सही होता है; बजाय उसके, जो आप अपने संबंध में कहते हैं। नब्बे प्रतिशत मौका इस बात का है कि दूसरे जो आप में देख पाते हैं, वह आप नहीं देख पाते। क्योंकि आप अपने धोखे में इस भांति लीन हो गए हैं। लेकिन दूसरा आपको देखता है, तो आपकी जो झीनी पर्त है धोखे की, उसके पीछे से आपका असली हिस्सा भी दिखाई पड़ता है।
पाखंडी व्यक्ति की कई परतें हो जाएंगी। जितना पाखंडी होगा, उतनी परतें हो जाएंगी। और इन सारी परतों का कष्ट है। और हर पर्त को बचाने के लिए नई परतें खड़ी करनी पड़ेंगी।
सत्य की एक सुविधा है, उसे याद रखने की जरूरत नहीं, उसको स्मरण रखने की जरूरत नहीं। झूठ को याद रखना पड़ता है। झूठ के लिए काफी कुशलता चाहिए। सत्य तो सीधा आदमी भी चला लेता है, क्योंकि याद रखने की कोई जरूरत नहीं। सत्य सत्य है। उससे दस साल बाद पूछेंगे, वह कह देगा। लेकिन झूठ आदमी को दस साल तक याद रखना पड़ेगा कि उसने एक झूठ बोला, फिर उसको सम्हालने के लिए कितने झूठ बोले।
तो झूठ के लिए बड़ी स्मृति चाहिए। इसलिए छोटी-मोटी बुद्धि के आदमी से झूठ नहीं चलता। झूठ चलाने के लिए काफी फैलाव चाहिए। इसलिए जितना आदमी शिक्षित हो, तार्किक हो, गणित का जानकार हो, उतना ज्यादा झूठ बोलने में कुशल हो सकता है।
दुनिया में जितनी शिक्षा बढ़ती है, उतना झूठ बढ़ता है इसीलिए, क्योंकि लोगों की स्मृति की कुशलता बढ़ती है। वे याद रख सकते हैं, वे मैनिपुलेट कर सकते हैं, वे नए झूठ गढ़ सकते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे से कह रहा है, तेरे झूठ को अब हम बरदाश्त ज्यादा नहीं कर सकते। तू गजब के झूठ बोल रहा है! उस लड़के ने कहा, मैं और झूठ! नसरुद्दीन ने सिर्फ उसको दिखाने के लिए, मित्र एक साथ खड़ा था, तो उसको कहा कि अच्छा तू एक झूठ अभी बोलकर बता, यह एक रुपया तुझे इनाम दूंगा। उसके लड़के ने कहा, पांच रुपए कहा था!
वह कह रहा है, एक रुपया तुझे दूंगा, तू झूठ बोलकर बता। वह लड़का कह रहा है, पांच रुपया कहा है आपने! झूठ बोलने की आगे कोई जरूरत नहीं है।
यह जो हमारी चित्त की स्थिति है, इस स्थिति में अगर आप परमात्मा को खोजने निकले, तो खोज असंभव है। अगर परमात्मा भी आपको खोजने निकले, तो भी खोज असंभव है। क्योंकि आपको खोजेगा कहां? आप जहां-जहां दिखाई पड़ते हैं,

वहां-वहां नहीं हैं। जहां आप हैं, उस जगह का आपको भी पता नहीं है। और किसी को आपने पता बताया नहीं।
यहूदियों में एक सिद्धांत है कि आदमी तो परमात्मा को खोजेगा कैसे? कमजोर, अज्ञानी! यहूदी मानते हैं, परमात्मा ही आदमी को खोजता है। यहूदी फकीर बालशेम से किसी ने पूछा कि यह सिद्धांत बड़ा अजीब है। अगर परमात्मा आदमी को खोजता है, तो अभी तक हमें खोज क्यों नहीं पाया? हम खोजते हैं, नहीं खोज पाते, यह तो समझ में आता है। परमात्मा खोजता है, तो हम अभी तक क्यों भटक रहे हैं?
बालशेम ने कहा कि तुम्हें खोजे कहां? तुम जहां भी बताते हो कि तुम हो। वहां पाए नहीं जाते। वहां जब तक वह पहुंचता है, तुम कहीं और! वह तुम्हारा पीछा कर रहा है। लेकिन तुम पारे की तरह हो; तुम छिटक-छिटक जाते हो। तुम्हारा कोई पता-ठिकाना नहीं है, कोई आइडेंटिटी नहीं है। तुम्हारी कोई पहचान नहीं है। तुम्हें कैसे पहचाना जाए?
मैंने सुना है, एक बैंक में बड़े कैशियर की जगह खाली थी। बहुत-से लोगों
ने इंटरव्यू दिए। बड़ी पोस्ट थी, बड़ी तनख्वाह थी पोस्ट की। और बड़े दायित्व का काम था, बहुत बड़ी बैंक थी। फिर जब डायरेक्टर्स की बैठक हुई और उन्होंने मैनेजिंग डायरेक्टर को पूछा कि किस आदमी को चुना है? तो जिस आदमी को खड़ा किया, सारे डायरेक्टर परेशान हुए। उसकी दोनों आंखें दो तरफ जा रही थीं, दांत बाहर निकले हुए थे, नाक तिरछी थी, चेहरा भयानक था, लंगड़ाकर वह आदमी चलता था।
उन्होंने पूछा, तुम्हें कोई और आदमी नहीं मिला? उसने कहा कि यही बिल्कुल ठीक है। क्योंकि कभी भी यह भागे, तो इसको पकड़ने में दिक्कत नहीं होगी। चीफ कैशियर! यह बिल्कुल ठीक है। इसकी आइडेंटिटी कहीं भी, दुनिया के किसी कोने में भी जाए, इसे हम पकड़ लेंगे।
आपकी कोई आइडेंटिटी नहीं है। परमात्मा भी पकड़ना चाहे, तो आपको कहां पकड़े!
पाखंड का जो सबसे बड़ा उपद्रव है, वह यह है कि आपकी पहचान खो जाती है, प्रत्यभिज्ञा मुश्किल हो जाती है। और आसुरी व्यक्ति का वह पहला लक्षण है।
घमंड और अभिमान... ।
यह थोड़ा सोचकर मुश्किल होगी, क्योंकि हम तो घमंड और अभिमान का एक-सा
ही उपयोग करते हैं। घमंड और अभिमान का एक ही अर्थ लिखा है शब्दकोशों में।
पर कृष्ण उनका दो उपयोग करते हैं।
घमंड उस अभिमान का नाम है, जो वास्तविक नहीं है। और अभिमान उस घमंड का नाम है, जो वास्तविक है। लेकिन दोनों पाप हैं और दोनों आसुरी हैं। मतलब यह कि एक आदमी, जो सुंदर नहीं है और अपने को सुंदर समझता है और अकड़ा रहता है। सुंदर है नहीं, सुंदर समझता है; अकड़ा रहता है। यह घमंड है। दूसरा आदमी सुंदर है, सुंदर समझता है और अकड़ा रहता है। वह अभिमान है। पर दोनों ही आसुरी हैं।
पहला तो हमें समझ में आ जाता है, क्योंकि वह गलत है ही; लेकिन दूसरा हमें समझ में नहीं आता, वह सही होकर भी गलत है।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि आप सुंदर हैं या नहीं! असली फर्क इससे पड़ता
है कि आप अपने को सुंदर समझते हैं। जो आदमी बुद्धिमान है, वह अगर अकड़े कि मैं बुद्धिमान हूं, तो उतना ही पाप हो रहा है, जितना बुद्धू अकड़े और सोचे कि मैं बुद्धिमान हूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि असली बात अकड़ की है।
और एक और खतरा है कि वह जो गलत ढंग से, जो है नहीं बुद्धिमान, अपने को बुद्धिमान समझ रहा है, वह तो शायद किसी दिन चेत भी जाए; लेकिन वह जो बुद्धिमान है और अपने को बुद्धिमान समझ रहा है, उसका चेतना बहुत मुश्किल है। क्योंकि आप उसको गलत भी सिद्ध नहीं कर सकते। उसका खतरा भारी है। और खतरा तो यही है कि मैं अपने को कुछ समझूं और उसमें अकड़ जाऊं।
आसुरी वृत्ति का व्यक्ति सदा अपने को कुछ समझता है, समबडी। वह हो या न हो। रावण का घमंड घमंड नहीं है, अभिमान है। क्योंकि वह आदमी कीमती है, इसमें कोई शक नहीं है। उस जैसा पंडित खोजना मुश्किल है। उसकी अकड़ झूठ नहीं है। उसकी अकड़ में सचाई है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है! अकड़ में सचाई है,

तो अकड़ और मजबूत हो गई। और अकड़ के कारण ही आदमी परमात्मा से मिलने में असमर्थ हो जाता है।
रावण का संघर्ष हो गया राम से। ये तो प्रतीक हैं, क्योंकि अकड़ का संघर्ष हो ही जाएगा परमात्मा से। जहां भी अकड़ है, वहां आप राम से संघर्ष में पड़ जाएंगे।
जहां अकड़ गई, वहां आप तरल हो जाते हैं। फिर आपकी लहर पिघल जाती है, उस पिघलेपन में आपका सागर से मिलन हो जाता है।
तो यह आप मत सोचना कभी कि मेरी अकड़ सही है या गलत है। अकड़ गलत है। उस अकड़ के दो नाम हैं। अगर वह गलत हो तो घमंड, अगर सही हो तो अभिमान। पर कृष्ण कहते हैं, दोनों ही आसुरी संपदा के लक्षण हैं।
क्रोध और कठोर वाणी... ।
संयुक्त हैं, क्योंकि कठोर वाणी क्रोध का ही रूप है। भीतर क्रोध हो,
तो आपकी वाणी में एक कठोरता, एक सूखापन प्रवेश हो जाता है। भीतर प्रेम हो, तो आपकी वाणी में एक माधुर्य, एक मिठास फैल जाती है।
वाणी आपसे निकलती है और आपके भीतर की खबरें ले आती है। वाणी आपके भीतर
से आती है, तो आपके भीतर की हवाएं और गंध वाणी के साथ बाहर आ जाती हैं। कठोर वाणी का केवल इतना ही अर्थ है कि भीतर पथरीला हृदय है; भीतर आप कठोर हैं। मधुर वाणी का इतना ही अर्थ है कि जहां से हवाएं आ रही हैं, वहां शीतलता है, वहां माधुर्य है।
क्रोध लक्षण होगा आसुरी व्यक्ति का; वह हमेशा क्रुद्ध है, हर चीज पर क्रुद्ध है। नाराज होना उसका स्वभाव है। उठेगा, बैठेगा, तो वह क्रोध से उठ-बैठ रहा है। जहां भी देखेगा, वह क्रोध से देख रहा है। वह सिर्फ भूल की तलाश में है कि कहीं भूल मिल जाए, कोई बहाना मिल जाए, कोई खूंटी मिल जाए, तो अपने क्रोध को टांग दे। अगर उसे कोई बहाना न मिले, तो वह बहाना निर्मित कर लेगा। अगर उसे कोई भी क्रोध करने को न मिले, तो वह अपने पर भी क्रोध करेगा। लेकिन क्रोध करेगा और उसकी वाणी में उसके क्रोध की लपटें बहती रहेंगी। वह जो भी बोलेगा, वह तीर की तरह हो जाएगा, किसी को चुभेगा और चोट पहुंचाएगा।
क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान, ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।
अज्ञान का अर्थ ठीक से समझ लेना। अज्ञान का अर्थ यह नहीं है कि वह कम पढ़ा-लिखा होगा। वह खूब पढ़ा-लिखा हो सकता है। अज्ञान का यह मतलब नहीं है कि वह पंडित नहीं होगा। वह पंडित हो सकता है। रावण पंडित है, महापंडित है। जानकारी उसकी बहुत हो सकती है। लेकिन बस, वह जानकारी होगी, ज्ञान न होगा।
ज्ञान का अर्थ है, जो स्वयं अनुभूत हुआ हो। जानकारी का अर्थ है, जो दूसरों ने अनुभव की हो और आपने केवल संगृहीत कर ली हो।
ज्ञान अगर उधार हो, तो पांडित्य बन जाता है। ज्ञान अगर अपना, निजी हो,
तो प्रज्ञा बनती है।
अज्ञान का यहां अर्थ है कि वह चाहे जानता हो ज्यादा या न जानता हो, लेकिन स्वयं को नहीं जानेगा। सब जानता हो, सारे जगत के शास्त्रों का उसे पता हो, लेकिन स्वयं की उसे कोई पहचान न होगी, आत्म-ज्ञान न होगा।
और जो भी वह जानता है, वह सब उधार होगा। उसने कहीं से सीखा है, वह उसकी स्मृति में पड़ा है। लेकिन उसके माध्यम से उसका जीवन नहीं बदला है। वह उस ज्ञान में जला और निखरा नहीं है। उस ज्ञान ने उसको तोड़ा और नया नहीं किया। वह ज्ञान उसकी मृत्यु भी नहीं बना और उसका जन्म भी नहीं बना। वह ज्ञान धूल की तरह उस पर इकट्ठा हो गया है। उस ज्ञान की पर्त होगी उसके पास, लेकिन वह ज्ञान उसके हृदय तक नहीं पहुंचा है। वह ज्ञान को ढोएगा, लेकिन ज्ञान उसका पंख नहीं बनेगा कि उसको मुक्त कर दे। उसका ज्ञान वजन होगा, उसका ज्ञान निर्भार नहीं है।
अज्ञान का यहां अर्थ है, अपने को न जानना; अपने स्वभाव से अपरिचित होना।
उन दोनों प्रकार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए है और आसुरी संपदा बंधन के लिए मानी गई है... ।

आसुरी संपदा बांधेगी, आपको बंद करेगी। जैसे कोई कारागृह में पड़ा हो।
और यह कारागृह ऐसा नहीं कि किसी दूसरे ने आपके लिए निर्मित किया है।
कारागृह ऐसा, जो आपने ही अपने लिए बनाया है।
दैवी संपदा मुक्त करेगी; दीवारें गिरेंगी, खुला आकाश प्रकट होगा। पंख आपके पास हैं; लेकिन पंखों पर अगर आपने बंधन बांध रखे हैं, तो उड़ना असंभव है। और अगर बहुत समय से आप उड़े नहीं हैं, तो आपको ख्याल भी मिट जाएगा कि आपके पास पंख हैं।
चील बड़े ऊंचे वृक्षों पर अपने अंडे देती है। फिर अंडों से बच्चे आते हैं। वृक्ष बड़े ऊंचे होते हैं। बच्चे अपने नीड़ के किनारे पर बैठकर नीचे की तरफ देखते हैं, और डरते हैं, और कंपते हैं। पंख उनके पास हैं। उन्हें कुछ पता नहीं कि वे उड़ सकते हैं। और इतनी नीचाई है कि अगर गिरे, तो प्राणों का अंत हुआ। उनकी मां, उनके पिता को वे आकाश में उड़ते भी देखते हैं, लेकिन फिर भी भरोसा नहीं आता कि हम उड़ सकते हैं।
तो चील को एक काम करना पड़ता है... । इन बच्चों को आकाश में उड़ाने के लिए कैसे राजी किया जाए! कितना ही समझाओ-बुझाओ, पकड़कर बाहर लाओ, वे भीतर घोंसले में जाते हैं। कितना ही उनके सामने उड़ो, उनको दिखाओ कि उड़ने का आनंद है, लेकिन उनका साहस नहीं पड़ता। वे ज्यादा से ज्यादा घोंसले के किनारे पर आ जाते हैं और पकड़कर बैठ जाते हैं।
तो आप जानकर हैरान होंगे कि चील को अपना घोंसला तोड़ना पड़ता है। एक-एक दाना जो उसने घोंसले में लगाया था, एक-एक कूड़ा-कर्कट जो बीन-बीनकर लाई थी, उसको एक-एक को गिराना पड़ता है। बच्चे सरकते जाते हैं भीतर, जैसे घोंसला टूटता है। फिर आखिरी टुकड़ा रह जाता है घोंसले का। चील उसको भी छीन लेती है। बच्चे एकदम से खुले आकाश में हो जाते हैं। एक क्षण भी नहीं लगता, उनके पंख फैल जाते हैं और आकाश में वे चक्कर मारने लगते हैं। दिन, दो दिन में वे निष्णात हो जाते हैं। दिन, दो दिन में वे जान जाते हैं कि खुला आकाश हमारा है; पंख हमारे पास हैं।
हमारी हालत करीब-करीब ऐसी ही है। कोई चाहिए, जो आपके घोंसले को गिराए। कोई चाहिए, जो आपको धक्का दे दे। गुरु का वही अर्थ है।
कृष्ण वही कोशिश अर्जुन के लिए कर रहे हैं। सारी गीता अर्जुन का घर, घोंसला तोड़ने के लिए है। सारी गीता अर्जुन को स्मरण दिलाने के लिए है कि तेरे पास पंख हैं, तू उड़ सकता है। यह सारी कोशिश यह है कि किसी तरह अर्जुन को धक्का लग जाए और वह खुले आकाश में पंख फैला दे।
इन दोनों प्रकार की संपदाओं में दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए और आसुरी संपदा बांधने के लिए मानी गई है। इसलिए हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।
अर्जुन को भरोसा दिला रहे हैं कि तू घबड़ा मत, तू दुख मत कर, तू चिंता मत कर। तू दैवी संपदा को उपलब्ध हुआ है। बस, पंख खोलने की बात है, खुला आकाश तेरा है।
क्यों अर्जुन को वे कह रहे हैं कि तू दैवी संपदा को उपलब्ध हुआ है? अर्जुन की जिज्ञासा दैवी है। यह भाव भी अर्जुन के मन में आना कि क्यों मारूं लोगों को, क्यों हत्या करूं, क्यों इस बड़े हिंसा के उत्पात में उतरूं! यह ख्याल मन में आना कि इससे राज्य मिलेगा, साम्राज्य मिलेगा, बड़ी पृथ्वी मेरी हो जाएगी, पर उसका सार क्या है! लोभ के प्रति यह विरक्ति, साम्राज्य के प्रति यह उपेक्षा, हिंसा और हत्या के प्रति मन में ग्लानि! अर्जुन कहता है, मैं यह सब छोड़कर जंगल चला जाऊं, संन्यस्त हो जाऊं, वही बेहतर है। अर्जुन कहता है, ये सब मेरे अपने जन हैं इस तरफ, उस तरफ। इन सबको मारकर, मिटाकर अगर मैंने राज्य भी पा लिया, तो वह खुशी इतनी अकेले की होगी कि खुशी न रह जाएगी, क्योंकि खुशी तो बांटने के लिए होती है। जिनके लिए मैं राज्य पाने की कोशिश कर रहा हूं, जो मुझे राज्य पाया हुआ देखकर आनंदित और प्रफुल्लित होंगे, उनकी लाशें पड़ी होंगी। तो जिस सुख को मैं बांट न पाऊंगा, जो सुख मेरे अपने जो प्रियजन हैं उनके साथ साझेदारी में नहीं भोगा जा सकेगा, उसके भोगने का अर्थ ही क्या है?
यह भाव दैवी है। लेकिन इन दैवी भावों के पीछे जो कारण वह दे रहा है, वे अज्ञान से भरे हैं। स्वाभाविक है, क्योंकि पहली बार जब दैवी आकांक्षा

जगती है, तो उसकी जड़ें तो हमारे अज्ञान में ही होती हैं। हम अज्ञानी हैं। इसलिए हममें अगर दैवी आकांक्षा भी जगती है, तो उस दैवी आकांक्षा में हमारे अज्ञान का हाथ होता है। उस दैवी आकांक्षा में हमारे अज्ञान की छाया होती है।
लेकिन कृष्ण पूरी कोशिश कर रहे हैं कि वह भरोसे से भर जाए; वह अज्ञान
को भी छोड़ दे। वह जिन कारणों को बता रहा है, उनको भी गिरा दे। क्योंकि वे कारण अगर सही हैं, तो अर्जुन कठिनाई में पड़ जाएगा। क्योंकि वह यह कह रहा है कि मेरे प्रियजन हैं, इसलिए इनको मारने से मैं डरता हूं। यह आधी बात तो दैवी है और आधी अज्ञान और आसुरी से भरी है।
दैवी तो इतनी बात है कि हिंसा के प्रति उनके मन में उपेक्षा पैदा हुई
है, हिंसा में रस नहीं रहा। लेकिन कारण है, क्योंकि ये मेरे हैं। अगर ये पराए होते, तो अर्जुन उनको, जैसे किसान खेत काट रहा हो, ऐसे काट देता। वह कोई नया नहीं था काटने में। जीवन में कई बार उसने हत्याएं की थीं और लोगों को काटा था। काटना उसे सहज काम था। कभी उसने सोचा भी नहीं था कि आत्मा का क्या होगा, स्वर्ग, मोक्ष--कुछ सवाल न उठे थे। लेकिन वे अपने नहीं थे, ये सब अपने लोग हैं। उस तरफ गुरु खड़े हैं, भीष्म खड़े हैं, सब चचेरे भाई-बंधु हैं। ये मेरे हैं!
यह ममत्व अज्ञान है। न काटूं, यह तो बड़ी दैवी भावना है। हिंसा न करूं,
यह तो बड़ा शुभ भाव है। लेकिन मेरे हैं, इसलिए न करूं, यह अशुभ से जुड़ा हुआ भाव है। वह अशुभ मिट जाए, फिर भी अर्जुन दिव्यता की तरफ बढ़े, यह कृष्ण की पूरी चेष्टा है।
वह भाव मेरे का पाप है। तो कौन मेरा है, कौन मेरा नहीं है? या तो सब मेरे हैं, या कोई भी मेरा नहीं है! फिर अर्जुन कहता है, इनको मारूं, यह उचित नहीं है, यह बात तो दैवी है। लेकिन मैं इनको मार सकता हूं, यह बात अज्ञान से भरी है। यह थोड़ा जटिल है।
मैं किसी को न मारूं, यह भाव तो अच्छा है; लेकिन मैं किसी को मार सकता हूं, आत्मा की हत्या हो सकती है, यह भाव अज्ञान से भरा है। मैं चाहूं तो भी मार नहीं सकता, ज्यादा से ज्यादा आपकी देह को नुकसान पहुंचा सकता हूं। और देह को क्या नुकसान पहुंचाया जा सकता है! देह तो मुरदा है। उसको मारने का कोई उपाय नहीं। वह तो मिट्टी है। उसको काटने से कुछ कटता नहीं। देह के भीतर जो छिपा है, उस चिन्मय को तो काटा नहीं जा सकता। वह तो कोई मिट्टी नहीं है। उस अमृत को तो मारने का कोई उपाय नहीं है।
अर्जुन कहता है कि हिंसा बुरी है। लेकिन क्या हिंसा हो सकती है? यह भाव अज्ञान से भरा है। हिंसा तो हो ही नहीं सकती; हिंसा का कोई उपाय नहीं है। हिंसा का भाव किया जा सकता है, हिंसा नहीं की जा सकती। हिंसा का भाव पापपूर्ण है। हिंसा की जा सकती है, यह भाव अज्ञान से भरा है।
अर्जुन में दिव्यता का जागरण हुआ है, लेकिन वह दिव्यता अभी आसुरी बिस्तर पर ही लेटी है। आंख खुली है, करवट बदली है, लेकिन बिस्तर अभी उसने छोड़ा नहीं है। वह बिस्तर भी छूट जाए, यह घोंसला भी हट जाए और अर्जुन खुले आकाश में मुक्त होकर उड़ सके... ।
हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है। और
हे अर्जुन इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के माने गए हैं, एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा। उनमें देवों का स्वभाव ही विस्तारपूर्वक कहा गया है, इसलिए अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तारपूर्वक मेरे से सुन।
दो स्वभाव, एक ही चेतना के। एक आदमी बंधन में पड़ा है, हाथ में जंजीरें हैं, पैर में बेड़ियां हैं। फिर हम इसके बंधन काट देते हैं; हाथ की बेड़ियां छूट जाती हैं, पैर की जंजीरें गिर जाती हैं, अब यह मुक्त खड़ा है। क्या यह आदमी दूसरा है या वही? क्षणभर पहले बेड़ियां थीं, जंजीरें थीं; अब जंजीरें नहीं, बेड़ियां नहीं। क्षणभर पहले एक कदम भी उठाना इसे संभव न था। अब यह हजार कदम उठाने के लिए मुक्त है। क्या यह आदमी वही है या दूसरा है?
एक अर्थ में यह आदमी वही है, कुछ भी बदला नहीं। क्योंकि बेड़ियां इस आदमी का स्वभाव न थीं, इसके ऊपर से पड़ी थीं। हाथ से बेड़ियां हट जाने से

इसका हाथ तो नहीं बदला। इसकी पैर से जंजीरें टूट जाने से इसका व्यक्तित्व नहीं बदला। यह आदमी तो वही है।
एक अर्थ में आदमी वही है; दूसरे अर्थ में आदमी वही नहीं है। क्योंकि जंजीरों के गिर जाने से अब यह मुक्त है। यह चल सकता है, यह दौड़ सकता है, यह अपनी मरजी का मालिक है। अब इसकी दिशा कोई तय न करेगा। अब इसे कोई रोकने वाला नहीं है। अब एक स्वतंत्रता का जन्म हुआ है।
ये दोनों स्थितियां एक ही आदमी की हैं। ठीक वैसे ही स्वभाव की दो स्थितियां हैं। आसुरी, कृष्ण उसे कह रहे हैं, जो बांधती है; दैवी उसे कह रहे हैं, जो मुक्त करती है। ये दोनों ही एक ही चेतना की अवस्थाएं हैं। और हम पर निर्भर है कि हम किस अवस्था में रहेंगे।
यह बात सदा ही समझने में कठिन रही है कि हम अपने ही हाथ से बंधन में पड़े हैं। यह कठिन इसलिए रही है कि हम में से कोई भी चाहता नहीं कि बंधन में रहे। हम सब स्वतंत्र होना चाहते हैं। तो यह बात समझना मन को मुश्किल जाती है कि हमने बंधन अपने निर्मित खुद ही किए हैं। लेकिन थोड़ा समझना जरूरी है। हम चाहते तो स्वतंत्र होना हैं, लेकिन हमने कभी गहराई से खोजा नहीं कि स्वतंत्रता का क्या अर्थ होता है। एक तरफ हम चाहते हैं, स्वतंत्र हों; और एक तरफ भीतर से हम चाहते हैं कि परतंत्र बनें। क्योंकि परतंत्रता के कुछ सुख हैं; उन सुखों को हम छोड़ नहीं पाते हैं। परतंत्रता की कोई सुरक्षा है। कारागृह में जितना आदमी सुरक्षित है, कहीं भी सुरक्षित नहीं है। बाहर दंगा भी हो रहा है, बलवा भी हो रहा है, हिंदू-मुसलमान लड़ रहे हैं, गोली चल रही है, पुलिस है, सरकार है--सब उपद्रव बाहर चल रहा है। कारागृह में कोई उपद्रव नहीं है। वहां जो आदमी हथकड़ी में बैठा है, वहां न कोई दुर्घटना होती है, न मोटर एक्सिडेंट होता है, न हवाई जहाज गिरता है, न ट्रेन उलटती है; कुछ नहीं होता। वहां वह बिल्कुल सुरक्षित है। कारागृह की एक सुरक्षा है, जो बाहर संभव नहीं है।
सुरक्षा हम सब चाहते हैं। सुरक्षा के कारण हम कारागृह बनाते हैं। स्वतंत्रता का खतरा है, क्योंकि खुला जगत जोखम से भरा है। स्वतंत्रता हम चाहते हैं, लेकिन खतरा उठाने की हमारी हिम्मत नहीं है।
एक बहुत बड़े पश्चिम के विचारक इरिक फोम ने एक किताब लिखी है, फिअर आफ फ्रीडम। बड़ी कीमती किताब है।
एक भय है स्वतंत्रता का। हम सबके भीतर है; हम सब डरते हैं। हम कहते हैं
कि स्वतंत्रता हम चाहते हैं, लेकिन हम डरते हैं, हम कंपते हैं। हम भी अपने घोंसले को वैसे ही पकड़ते हैं, जैसे चील का बच्चा पकड़ता है। उसको लगता है कि मर जाएंगे; इतना लंबा खड्ड है, इतना बड़ा आकाश, हम इतने छोटे हैं; अपने पर भरोसा नहीं आता।
इसलिए हम सब तरह की परतंत्रताएं खोजते हैं। परिवार की, देश की, जाति की, समाज की परतंत्रताएं खोजते हैं। हम किसी पर निर्भर होना चाहते हैं। कोई हमें सहारा दे दे। हम किसी के कंधे पर हाथ रख लें। कोई हमारे कंधे पर हाथ रख दे। हो सकता है, हम दोनों ही कमजोर हों और एक-दूसरे का सहारा खोज रहे हों। लेकिन दोनों को भरोसा आ जाता है कि कोई साथ है; हम अकेले नहीं हैं। स्वतंत्रता को हम अपने ही हाथ से खोते हैं, परतंत्रता को हम अपने ही हाथ से खोजते हैं।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में एक दिन विवाद चल रहा था। और पत्नी बहुत नाराज हो गई, तो उसने कहा कि तुमसे कहा किसने था कि तुम मुझसे विवाह करो! मैं तुम्हारे पीछे नहीं दा.ैड रही थी। नसरुद्दीन ने कहा, वह तो जाहिर है, क्योंकि चूहे को पकड़ने वाला पिंजड़ा कभी चूहे के पीछे नहीं दौड़ता। चूहा खुद ही उसमें आता है, वह तो साफ है। पिंजड़े को कभी किसी ने चूहे के पीछे भागते तो देखा नहीं!
जिंदगी में जितने पिंजड़े हैं आपके, वे कोई आपके पीछे नहीं भागे। आप खुद ही उनकी तलाश किए हैं। और कोई कारण है, जिसकी वजह से पिंजड़ा अच्छा लगता है। कुछ सुरक्षा है उसमें। भय वहां कम है, सहारा वहां ज्यादा है; खतरा वहां कम है, जोखम वहां बिल्कुल नहीं है। एक बंधा हुआ जीवन है। एक परिधि है, उस परिधि के भीतर प्रकाश है, परिधि के बाहर अंधकार है। उस अंधकार में जाने में भय लगता है। फिर अपने ही पैरों पर खड़ा होना होगा।

स्वतंत्रता का अर्थ है, अपने ही पैरों पर खड़ा होना। और स्वतंत्रता का अर्थ है, अपने निर्णय खुद ही लेना।
दुनिया में जो इतने उपद्रव चलते हैं, उन उपद्रवों के पीछे भी कारण यही
है कि बहुत-से लोग गुलामी खोजते हैं। सौ में निन्यानबे लोग ऐसे होते हैं कि बिना नेता के नहीं रह सकते। कोई नेता चाहिए। इस मुल्क में, सारी जमीन पर सब जगह नेता की बड़ी जरूरत है! नेता की जरूरत क्या है?
नेता की जरूरत यह है कि कुछ लोग खुद अपने पैरों से नहीं चल सकते। कोई आगे चल रहा हो, तो फिर उन्हें फिक्र नहीं है। फिर वह कहीं गड्ढे में ले जाए, और हमेशा नेता गड्ढों में ले जाते रहे हैं। लेकिन पीछे चलने वाले को यह भरोसा रहता है कि आगे चलने वाला जानता है। वह जहां भी जा रहा है, ठीक है। और कम से कम इतना तो पक्का है कि जिम्मेवारी हमारी नहीं है। हम सिर्फ पीछे चल रहे हैं।
दूसरे महायुद्ध के बाद जर्मनी के जो नेता बच गए, हिटलर के साथी, उन पर मुकदमे चले। तो जिस आदमी ने लाखों लोगों को जलाया था, आकमंड, जिसने वहां भट्ठियां बनाईं, जिसमें हजारों लोग जलाए गए। कोई तीन करोड़ लोगों की हत्या का जिम्मा उसके ऊपर था, आकमंड के ऊपर।
पर आकमंड बहुत भला आदमी था। अपनी पत्नी को छोड़कर कभी किसी दूसरी स्त्री की तरफ देखा नहीं। रविवार को नियमित चर्च जाता था, बाइबिल का अध्ययन करता था। शराब की आदत नहीं, सिगरेट पीता नहीं था। रोज ब्रह्ममुहूर्त में उठता था। कोई बुराई नहीं थी। मांसाहारी नहीं था। हिटलर में भी यही खूबियां थीं; मांसाहार नहीं करता था, शराब नहीं पीता था, सिगरेट नहीं पीता था। भले आदमी के सब लक्षण उसमें थे।
आकमंड पर जब मुकदमा चला, तो लोग चकित थे कि इस आदमी ने कैसे तीन करोड़ लोगों की हत्या का इंतजाम किया! जब उससे पूछा गया, तो उसने कहा कि मैं सिर्फ अनुयायी हूं, और आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। जिम्मेवारी मुझ पर है ही नहीं। ऊपर से आज्ञा दी गई, मैंने पूरी की। मैं सिर्फ एक अनुयायी हूं, एक सिपाही हूं।
दुनिया में लोगों की कमजोरी है कि उनको नेता चाहिए। फिर नेता कहां ले जाता है, इसका भी कोई सवाल नहीं है। नेता को भी कुछ पता नहीं कि वह कहां जा रहा है। अंधे अंधों का नेतृत्व करते रहते हैं। बस, नेता और अनुयायी में इतना ही फर्क है कि अनुयायी को कोई चाहिए जो उसके आगे चले, और नेता को कोई चाहिए जो उसके पीछे चले।
नेता भी निर्भर है पीछे चलने वाले पर। अगर पीछे कोई न चले, तो नेता को लगता है कि भटक गया। जब तक लोग पीछे चलते रहते हैं, उसे लगता है, सब ठीक चल रहा है। अगर मैं ठीक न होता, तो इतने लोग पीछे कैसे होते? जैसे ही पीछे से लोग हटते हैं, नेता का विश्वास चला जाता है। जैसे ही अनुयायी हट जाते हैं, नेता की आत्म-आस्था खो जाती है। उसे लगता है, बस, कहीं भूल हो रही है। अन्यथा लोग मेरे पीछे चलते। इसलिए जो बहुत बुद्धिमान नेता हैं, उनकी तरकीब अलग है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गधे पर भागा जा रहा है। कुछ मित्रों ने उसे रोका और पूछा कि कहां जा रहे हो इतनी तेजी से? उसने कहा, मुझसे मत पूछो, गधे से पूछो। क्योंकि मैं इसको चलाने की कोशिश करता हूं, तो यह अड़चन डालता है; और चार आदमियों के सामने बाजार में भद्द होती है। मैं इसको कहता हूं, बाएं चलो। तो यह चलेगा नहीं; दाएं जाएगा। तो लोग समझते हैं, इसका गधा भी इसकी नहीं मानता! तो मैंने एक तरकीब निकाली, गधा जहां जाता है, मैं उसके साथ ही जाता हूं। इससे इज्जत भी बनी रहती है और गधे को भी यह ख्याल नहीं आता कि मालिक का विरोध कर सकता है।
सभी नेताओं की कुशलता यही है। वे हमेशा देखते रहते हैं, अनुयायी कहां
को जा रहा है, अनुयायी कहां जाना चाहता है, इसके पहले नेता मुड़ जाता है। तो ही नेता अनुयायी को बचा सकता है, नहीं तो अनुयायी भटक जाएगा, अलग हो जाएगा। सब नेता अपने अनुयायियों के अनुयायी होते हैं, एक विसियस सर्किल है।
तो नेता तापमान देखता रहता है कि अनुयायी क्या चाहते हैं। अनुयायी समाजवाद चाहते हैं, तो समाजवाद। अनुयायी चाहते हैं गरीबी मिटे, तो गरीबी

मिटे। अनुयायी जो चाहते हैं, वह कहता है। और अनुयायी सुनते हैं अपनी ही आवाज को उसके मुंह से; सोचते हैं कि ठीक है। अनुयायी पीछे चलते हैं।
कुछ लोग हैं, जब तक उनके आगे कोई न चले, तब तक वे चल नहीं सकते। कुछ लोग हैं, जब तक कोई उनके पीछे न चले, तब तक वे नहीं चल सकते। दोनों निर्भर हैं। स्वतंत्र व्यक्ति वह है, जो न आगे देखता है और न पीछे देखता है, जो अपने पैर से चलता है। पर बड़ी कठिन है बात, क्योंकि तब किसी दूसरे पर भरोसा नहीं खोजा जा सकता, किसी दूसरे पर जिम्मेवारी नहीं डाली जा सकती। सब जिम्मेवारी अपनी है।
इतना जिसका साहस हो, वही केवल स्वतंत्र हो पाता है। न नेता स्वतंत्र होते हैं, न अनुयायी स्वतंत्र होते हैं। स्वतंत्रता इस जगत में सबसे बड़ा जोखम है।
कृष्ण कहते हैं, जो आसुरी संपदा है वह बंधन के लिए और जो दैवी संपदा है
वह मुक्ति के लिए मानी गई है। और हे अर्जुन, तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
चौथा प्रवचन

आसुरी व्यक्ति की रुग्णताएं

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।। 7।।
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।। 8।।
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।। 9।।
और हे अर्जुन, आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य-कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्तव्य-कार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते हैं। इसलिए उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है।
तथा वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं कि जगत आश्रयरहित है और सर्वथा झूठा है एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जगत केवल भोगों को भोगने के लिए ही है। इसके सिवाय और क्या है?
इस प्रकार इस मिथ्या-ज्ञान को अवलंबन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सब का अहित करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत का नाश करने के लिए ही उत्पन्न होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आश्चर्य की बात है कि पशुओं में पाखंड या मिथ्याचरण नाममात्र भी नहीं है और आदिवासियों में भी अत्यल्प है, जब कि तथाकथित शिक्षित व सभ्य समाज में सर्वाधिक है। तो क्या बर्बरता से सभ्यता की ओर मनुष्य की लंबी व कठिन यात्रा व्यर्थ ही गई? और तब क्या आदिवासी व्यवस्था वरेण्य नहीं है?

पशुओं में मिथ्याचरण नहीं है, पाखंड नहीं है, इसलिए नहीं कि पशुओं की कोई उपलब्धि है, बल्कि इसलिए कि पशु असमर्थ हैं, पाखंडी हो नहीं सकते, होने का उपाय नहीं है; बुरे होने की कोई सुविधा नहीं है; पतित होने की कोई संभावना नहीं है। लेकिन चूंकि पशु पतित नहीं हो सकते, पशु दिव्यता का आरोहण भी नहीं कर सकते। जो गिर नहीं सकता, वह ऊपर भी उठ नहीं सकता। और जिसके जीवन में पाप की संभावना नहीं है, उसके जीवन में परमात्मा की संभावना भी नहीं है।
पशु मूर्च्छित है; प्रकृति उससे जैसा कराती है, वह करता है। यंत्रवत उसकी यात्रा है। उसकी कोई स्वेच्छा नहीं है। इसलिए बुरा भी पशु कर नहीं सकता; भला भी नहीं कर सकता। प्रकृति जो कराती है, वही करता है। पशु की अपनी कोई निजता नहीं है। इसलिए पशु न तो असाधु हो सकता है न साधु; न महापापी हो सकता है न महा संत। पशु पशु ही रहेगा।
पशु पूरा का पूरा पैदा होता है। उसकी कोई स्वतंत्रता नहीं है कि अपने
को बदल ले, रूपांतरित कर ले। स्वभावतः, पशु पाखंडी नहीं है, लेकिन पशु को यह भी स्मरण नहीं हो सकता कि वह पाखंडी नहीं है। और पाखंड को छोड़ने से जो जीवन में गरिमा आती है, वह भी पशु को नहीं हो सकती।
मनुष्य की गरिमा यही है कि वह पाप कर सकता है, चाहे तो पाप करना छोड़ सकता है। छोड़ने की खूबी है, क्योंकि करने की सुविधा है। जहां आप कर ही न सकते हों, वहां छोड़ने का कोई अर्थ नहीं है। नपुंसक ब्रह्मचारी हो, इसकी कोई सार्थकता नहीं है। ब्रह्मचर्य की सार्थकता तभी है, जब काम में उतरने की क्षमता हो।
तो मनुष्य के लिए संभावना है कि गिर सके, और मनुष्य के लिए संभावना है
कि उठ सके; दोनों द्वार खुले हैं। मनुष्य परिपूर्ण स्वतंत्रता है। इसीलिए

जिम्मेवारी आपकी है। अगर आप गिरते हैं, तो आप यह नहीं कह सकते कि प्रकृति ने मुझे गिराया। आप चाहते तो न गिरते। आप चाहते तो रुक जाते। आप चाहते तो जिस शक्ति से आपने पतन की यात्रा पूरी की, वही आपके स्वर्ग का मार्ग भी बन सकती थी। इसलिए मनुष्य स्वतंत्र है, और साथ ही जिम्मेवार है।
पश्चिम का बहुत बड़ा आधुनिक विचारक सार्त्र मनुष्य के लिए दो शब्दों
का उपयोग करता है, एक है फ्रीडम, और दूसरा है रिस्पांसिबिलिटी। एक है परिपूर्ण स्वतंत्रता, और दूसरा है परिपूर्ण गहन दायित्व। जो स्वतंत्र है, उसका दायित्व भी है। जो स्वतंत्र नहीं, उसका कोई दायित्व भी नहीं है।
हम किसी पशु को अच्छा नहीं कह सकते, बुरा नहीं कह सकते। जो पशु की दशा है, वही छोटे बच्चों की भी दशा है। जो पशु की दशा है, उससे ही मिलती-जुलती दशा आदिवासियों की है। वे कितने ही भले हों, उनके भलेपन में बहुत गौरव नहीं है। वे चोर न हों, तो भी हम उन्हें अचोर नहीं कह सकते। क्योंकि अचोर वे तभी हो सकते हैं, जब चोरी करने की उनको क्षमता हो, सुविधा हो, चोरी करने का ख्याल हो!
जीवन का जो विकास है, वह आंतरिक संयम से संभव होता है। आप एक सपाट जमीन
पर चलते हैं। तो कोई भीड़ आपको देखने इकट्ठी नहीं होती, न ही लोग ढोल बजाकर आपका स्वागत करते हैं, न तालियां पीटते हैं। लेकिन आप दो छतों के बीच में एक रस्सी बांधें, फिर उस रस्सी पर चलें, तो सारा गांव इकट्ठा हो जाएगा। चलने में कोई भी फर्क नहीं है। जैसा आप जमीन पर चलते थे, उन्हीं पैरों से, उसी ढंग से रस्सी पर भी चलेंगे। लेकिन यह भीड़ देखने इकट्ठी किसलिए हो गई? क्योंकि अब गिरने की संभावना है। आप गिर सकते हैं। चलना कठिन है, गिरना आसान है। और गिरने की जो यह संभावना है कि हड्डी-पसली टूट जाए, कि जीवन भी समाप्त हो जाए, इस खतरे को लेकर आप जब रस्सी पर चलते हैं, तो इस चलने में गौरव और गरिमा आ जाती है।
मनुष्य चौबीस घंटे रस्सी पर है, पशु सदा समतल भूमि पर है। सभ्यता की खूबी यही है कि वह आपको मौका देती है, गिरने का भी, उठने का भी। तो आदिवासी भले हैं, लेकिन कोई बुद्ध तो आदिवासी पैदा नहीं कर पाते। कोई रावण भी पैदा नहीं होता, कोई राम भी पैदा नहीं होता। दोनों का उपाय नहीं है।
सभ्यता सुविधा है, नरक और स्वर्ग दोनों तरफ जाने की। जितना सभ्य समाज हो, उतनी सुविधा बढ़ती जाती है। यह दूसरी बात है कि आप सुविधा का उपयोग नरक जाने के लिए ही करते हैं। यह आपका निर्णय है।
पर शायद स्वर्ग जाने के लिए नरक जाना भी जरूरी है। नरक की पीड़ा का अनुभव न हो, तो स्वर्ग के आनंद का भी स्मरण नहीं आता। नरक की अंधेरी पृष्ठभूमि में ही स्वर्ग की शुभ्र रेखाएं खिंचती हैं, उभरती हैं और दिखाई पड़ती हैं। वह जो पीड़ा को भोगता है, उसे आनंद की खोज भी पैदा होती है। इसलिए जिनको हम साधारणतः भले आदमी कहते हैं, उनके जीवन में कुछ नमक नहीं होता; उनके जीवन में कुछ स्वाद नहीं होता। स्वाद तो उस आदमी के जीवन में होता है, जिसने बुरा होना भी जाना है, और फिर भला होना भी जाना है। उसके जीवन में एक संगीत होता है, एक गहराई होती है, एक ऊंचाई होती है।
साधारणतः कोई आदमी भला है, न उसने कभी कुछ बुरा किया है, न कभी कोई पाप किया है, न कभी अपराध में उतरा है, न कभी भटका है रास्ते से, उस आदमी के जीवन में बहुत संगीत नहीं होता। उस आदमी के जीवन में इकहरा स्वर होता है। उसमें न रस होता है, न रहस्य होता है, न गहराई होती है, न ऊंचाई होती है। उपन्यासकार कहते हैं कि साधारण अच्छे आदमी के जीवन पर कोई कहानी नहीं लिखी जा सकती। अच्छे आदमी की कोई कहानी होती ही नहीं। कहानी के लिए बुरा आदमी चाहिए। और कहानी गहरी हो जाती है, अगर बुरा आदमी बुराई को पार करके अच्छाई में उतर जाए। तब कहानी बड़ी रहस्यपूर्ण हो जाती है; और कहानी में एक स्वाद आ जाता है, एक चुनौती, एक उत्तुंग ऊंचाई, एक पुकार दूर की।
पापी के जीवन में कथा होती है। और अगर पापी संत हो जाए, तो उससे ज्यादा जटिल और रहस्यपूर्ण कथा फिर किसी के जीवन में नहीं होती।
थामसमन ने एक अदभुत किताब लिखी है। किताब का नाम है, दि होली सिनर, पवित्र पापी।
तो जहां पवित्रता और पाप दोनों घट जाते हैं, उस तनाव में, रस्सी जैसे
दो खाइयों के बीच खिंच जाती है, और उस रस्सी पर जो संतुलन को साध पाता है,

वह गौरव के योग्य है। सभ्यता सुविधा देती है गिरने की; सभ्यता सुविधा देती है उठने की।
नहीं, आदिवासीपन वरेण्य नहीं है, वरेण्य तो सभ्यता ही है। लेकिन सभ्यता विकल्प देती है। सभ्यता वरेण्य है, और फिर सभ्यता के विकल्पों में स्वर्ग की तरफ जाने की यात्रा वरेण्य है।
अगर आप साधारण भले आदमी हैं, तो आप यह मत समझना कि जीवन आपकी कोई उपलब्धि बन रहा है। आप कुनकुने- कुनकुने जी रहे हैं। जीवन में कोई अति नहीं है। और अति न होगी, तो जीवन में कोई आनंद की पुलक, कोई इक्सटैसी, कोई समाधि की दशा भी पैदा नहीं होगी।
नीत्से ने एक बहुत महत्वपूर्ण वचन लिखा है। उसने लिखा है, जिस वृक्ष
को आकाश की ऊंचाई छूनी हो, उसे अपनी जड़ें पाताल की गहराई तक भेजनी पड़ती हैं। अगर वृक्ष डरता हो कि अंधेरी जमीन में कहां जड़ों को भेजूं, तो फिर उसकी शाखाएं भी आकाश में न जा सकेंगी। जितनी ऊंचाई वृक्ष की ऊपर होती है, उतनी नीचाई वृक्ष की नीचे होती है; समान होता है। जड़ें उतनी ही गहरी जानी जरूरी हैं, जितना वृक्ष को ऊपर उठना हो। जो वृक्ष चार-चार सौ फीट ऊपर उठते हैं आकाश को छूने की आकांक्षा से, वे चार सौ फीट नीचे जमीन में अपनी जड़ों को भी भेजते हैं।
यही नियम मनुष्य का भी है। जितने दूर तक गिरने का रास्ता है, उतने ही दूर तक उठने का उपाय है। गिरने के रास्ता का यह अर्थ नहीं है कि आप गिरें ही। पर वह संभावना रहनी चाहिए। गिर सकते हैं। गिर सकते हैं, यह संभावना आपको संतुलन देगी। आप प्रतिपल अपने को सम्हालेंगे। उस सम्हालने में ही आपकी आत्मा का जागरण है। गिर ही न सकते हों, तो फिर सो जाएंगे; फिर न कोई चुनौती है, न कोई जागरण है।

दूसरा प्रश्नः रात आपने बड़ी निराशाजनक बात कही कि संसार शायद सदा के लिए अज्ञान, दुख व संताप में जीने के लिए अभिशप्त है। तो क्या धर्म विरले व्यक्तियों के लिए संसार छोड़कर परमात्मा या शून्य में विलीन होने के लिए निमंत्रण मात्र है?

निराशाजनक मालूम हो सकती है, निराशाजनक है नहीं। अगर कोई कहे कि अस्पताल सदा ही बीमारों से भरा रहेगा, तो इसमें निराशाजनक बात क्या है? अस्पताल है ही इसलिए। निराशाजनक तो बात तब होगी, जब अस्पताल में हम स्वस्थ आदमियों को भरने लगें। और जैसे ही कोई व्यक्ति स्वस्थ हो जाएगा, अस्पताल से मुक्त होना पड़ेगा। अस्पताल का प्रयोजन यही है कि बीमार वहां हो। इसमें निराशा की कौन-सी बात है? इसमें अस्पताल की निंदा नहीं है। अस्पताल चिकित्सा की जगह है। वहां बीमार के लिए स्थान है; वहां स्वस्थ का कोई प्रयोजन नहीं है। और जैसे ही कोई स्वस्थ हुआ कि अस्पताल से बाहर हो जाएगा। संसार को भारत अस्पताल से भिन्न नहीं मानता, वह अस्वस्थ चित्त की जगह है। वहां आत्मा हमारी बीमार है, इसलिए हम हैं। जैसे ही आत्मा स्वस्थ होगी, हमें संसार से बाहर हो जाना पड़ेगा। इसलिए यह कोई अभिशाप नहीं है कि संसार सदा ही विक्षिप्त रहेगा। जब तक विक्षिप्त आत्माएं हैं, तब तक संसार रहेगा, यह बात पक्की है। जब तक बीमार हैं, तब तक अस्पताल रहेगा। बीमार नहीं होंगे, अस्पताल खो जाएगा।
यह संसार के लिए कोई अभिशाप नहीं है; यह संसार का स्वभाव है; यह संसार
की नियति है। हम गलत हैं, इसलिए हम वहां हैं। वह एक बड़ा शिक्षण का स्थल है, एक बड़ा विश्वविद्यालय है। वहां जैसे-जैसे हम ठीक होंगे, वैसे-वैसे हम बाहर फेंक दिए जाएंगे। जैसे-जैसे संतत्व उभरेगा, आप संसार में होकर भी संसार में नहीं होंगे। फिर जैसे-जैसे संतत्व पूर्णता को पहुंचेगा, आप पाएंगे कि अब संसार में होना आपका स्वप्नवत रह गया। अगर इस पूर्णता को उपलब्ध करके आप मर गए, मरेंगे, शरीर छूटेगा, तो फिर दुबारा लौटने का उपाय न रह जाएगा। इसलिए बुद्ध पुरुष बुद्धत्व के बाद वापस नहीं लौट सकता। एक जन्म, जब
वह बुद्धत्व को प्राप्त करता है, तब टिकेगा, लेकिन नए शरीर को ग्रहण करने का उपाय नहीं है। नए शरीर को ग्रहण करने का अर्थ होता है, संसार में वापस लौटने का उपाय। वह वाहन है, जिससे हम संसार में वापस आते हैं। उसका कोई

प्रयोजन न रहा, क्योंकि शरीर से जो सीखा जा सकता था, सीख लिया गया। और संसार में जो जाना जा सकता था, वह जान लिया गया, और संसार में कुछ पाने को न बचा।
इसको ऐसा समझें कि विश्वविद्यालय अशिक्षित लोगों के लिए है। यह कोई अभिशाप नहीं है। क्योंकि जैसे ही कोई शिक्षित होगा, विश्वविद्यालय के बाहर हो जाएगा। अशिक्षित ही विश्वविद्यालय में होगा। जैसे ही शिक्षा पूरी हुई कि विश्वविद्यालय का अर्थ खो जाता है। और अगर किसी विद्यार्थी को बार-बार विश्वविद्यालय में लौटना पड़ता है, तो उसका अर्थ ही यह है कि वह उत्तीर्ण नहीं हो पा रहा है।
निराशाजनक बात नहीं, संसार का तथ्य यही है।
दूसरी बात, तो क्या धर्म संसार छोड़कर परमात्मा या शून्य में विलीन होने के लिए कुछ विरले व्यक्तियों के लिए निमंत्रण मात्र है?
नहीं, सभी के लिए निमंत्रण है; विरले उसको स्वीकार करते हैं, यह दूसरी बात है। निमंत्रण सार्वजनिक है। धर्म सभी के लिए है। स्वस्थ होने की संभावना सभी के लिए है। लेकिन जो स्वस्थ होने की प्रक्रिया से गुजरेंगे, जो साधना का पथ लेंगे, वे विरले मुक्त हो पाएंगे।
तीसरी बात, धर्म कोई पलायन नहीं है और न संसार को छोड़कर शून्य में खो जाना है। धर्म की दृष्टि में तो संसार शून्य है, स्वप्नवत है, पानी का बबूला है। इस शून्यवत को छोड़कर सत्य में प्रवेश कर जाने का निमंत्रण है। लेकिन अगर हम बीमार आदमी से कहें कि जब तक तू सारी बीमारियां न छोड़ देगा, तब तक अस्पताल से बाहर न जाने देंगे। तो वह कहेगा, आप मुझे शून्य होने के लिए मजबूर कर रहे हैं! सभी बीमारियां छोड़नी पड़ेंगी? तो फिर मेरे पास बचेगा क्या? तो मैं शून्य हो जाऊंगा?
बीमार के पास बीमारियों के सिवाय और कोई संपदा नहीं है; उसने स्वास्थ्य कभी जाना नहीं है। निश्चित ही, बीमारियां छूटें, तो स्वास्थ्य का जन्म होगा।
धर्म की भाषा लगती है शून्यवादी है। क्योंकि धर्म कहता है, यह छोड़ो,
यह छोड़ो, यह छोड़ो। क्योंकि हम बीमारियां पकड़े हुए हैं, इसलिए छोड़ने पर इतना जोर है, त्याग की इतनी उपादेयता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम शून्य में खो जाएंगे। बीमारियां शून्य में खो जाएंगी; हम तो पूर्ण को उपलब्ध हो जाएंगे। और जिस दिन आप सब छोड़ देते हैं वह जो गलत था, उस दिन जो सही है, उसका आपके भीतर उदय होता है। उस दिन दीया जलता है।
उस दिन आप यह न कहेंगे कि अंधेरा छोड़ दिया, अब शून्य हो गए। अंधेरा छोड़ा, प्रकाश जला। वह जो प्रकाश का जलना है, वह उपलब्धि है।
लेकिन जिसने अंधेरा ही जाना हो, वह शायद यही समझेगा कि सब छूट गया, सब
खो गया, सब नष्ट हो गया, कुछ भी न बचा। हाथ में लकड़ी थी, अंधेरे में टटोलते थे, वह भी छूट गई; अंधेरा भी छूट गया। टकराते थे--उस टकराने को लोग जिंदगी समझते हैं--जगह-जगह ठोकर खाते थे। अब कोई ठोकर नहीं लगती; जगह-जगह टकराते नहीं। हाथ की लकड़ी छूटी, अंधेरा छूटा, सब छूट गया।
प्रकाश की जो उपलब्धि हुई है, वह धीरे से समझ में आएगी, कि जो छूटा, वह छूटने योग्य था, छोड़ने योग्य था, छोड़ ही देना था कभी का उसे। इतने दिन खींचा यही आश्चर्य है।
लेकिन प्राथमिक रूप से लगेगा कि धर्म शून्य में ले जाता है। जो आपके पास है, उसे छीनता है, इसलिए लगता है कि शून्य में ले जाता है। और जिसका आपको पता नहीं है, उस शून्यता से उस पूर्ण का उदय होता है।
धर्म आपको खाली करता है, ताकि आप परमात्मा से भर सकें। आपको मिटाता है, ताकि आपके भीतर जो नहीं मिटने वाला तत्व है, केवल वही शेष रह जाए। आपको जलाता है, ताकि कचरा जल जाए, केवल स्वर्ण बचे। आपकी मृत्यु में ही आपके परमात्म-स्वरूप का जन्म है।
और ध्यान रहे, यह निमंत्रण विरले लोगों के लिए नहीं है! निमंत्रण सबके लिए है, लेकिन विरले इसे स्वीकार करते हैं। क्योंकि निमंत्रण बड़ा कठिन है। यात्रा दुरूह है, बड़ी लंबी है। उतनी देर तक सातत्य को बनाए रखना, धैर्य को रखना, बहुत थोड़े लोगों की क्षमता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि कितने दिन ध्यान करें तो आत्मा उपलब्ध हो जाएगी?
कितने दिन! और ऐसा लगता है उनकी बात से कि काफी कृपा कर रहे हैं! कितने दिन? और दो-चार दिन कोई ध्यान कर लेता है, तो वह मुझे लौटकर कहता है कि अभी तक परमात्मा के दर्शन नहीं हुए!
विरले स्वीकार कर पाते हैं, क्योंकि धैर्य की कमी है। और सातत्य थोड़े दिन भी बनाए रखना मुश्किल है। आज करते हैं, कल छूट जाता है। दो-चार दिन करते हैं, हजार बहाने मन खोज लेता है न करने के। और दो-चार दिन में मन कहने लगता है, इतना समय नष्ट कर रहे हो! इतने में तो न मालूम कितना कमाया जा सकता था। न मालूम क्या-क्या कर लेते। यह प्रार्थना, यह पूजा, यह ध्यान, यह समय का अपव्यय मालूम होता है।
हमारी दशा उन छोटे बच्चों जैसी है, जो आम की गुठली को जमीन में गड़ा देते हैं। फिर घड़ीभर बाद जाकर उघाड़कर देखते हैं, पौधा आया या नहीं? फिर घड़ीभर बाद जाकर खोदकर देखते हैं। अगर हर घड़ी गुठली को खोदकर देखा गया, तो पौधा कभी भी न आएगा। क्योंकि गुठली को मौका ही नहीं मिल रहा है कि वह जमीन के साथ एक हो जाए, टूट जाए, मिट जाए, खो जाए। गुठली मिटे, तो पौधे का जन्म हो।
और जो उसे हर घड़ी खोदकर देख रहा है, वह मौका ही नहीं दे रहा है। गुठली गुठली ही बनी रहेगी। और तब उसका तर्क कहेगा, फिजूल है यह बात। महीनों से देख रहा हूं, गुठली गड़ा रहा हूं, उखाड़ रहा हूं, कुछ पौधा-वौधा आता नहीं। झूठी हैं ये बातें। ये कृष्ण और बुद्ध और क्राइस्ट जो कहते हैं, सब कपोल-कल्पित है। यह गुठली पत्थर है, इसमें कुछ पौधा है नहीं, इससे पौधा कभी आ नहीं सकता।
और तब यह तर्क ठीक भी मालूम पड़ता है। क्योंकि महीनों का अनुभव यह कहता
है कि रोज तो देख रहे हैं, कहीं से जरा-सी भी तो अंकुर के फूटने की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती। गुठली वैसी की वैसी है। यह पत्थर है। न कोई आत्मा है भीतर, न कोई पौधा है, न कोई फूल छिपे हैं। तब हम गुठली को फेंक देते हैं।
धीरज की जरूरत है। और जब आम की गुठली के लिए महीनों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तो आपकी गुठली तो जन्मों-जन्मों से सख्त है। वह पथरीली हो गई है। उसे पिघलाने में वक्त लगेगा, श्रम लगेगा, सतत चोट करनी पड़ेगी। और तभी आपको पता चलेगा कि कृष्ण और बुद्ध कल्पना की बात नहीं कर रहे हैं, वह उनका अनुभव है। उनकी गुठली टूटी और उन्होंने वृक्ष को बढ़ता हुआ देखा। उस वृक्ष की सुगंध उन्होंने अनुभव की, उस वृक्ष के फूल उन्होंने पाए। उनका जीवन कृतकृत्य हुआ है।
लेकिन चूंकि बहुत थोड़े लोग इतनी दूर तक जाने को राजी होते हैं, इसलिए धर्म विरले लोगों के लिए रह जाता है। आमंत्रण सभी के लिए है।
तिब्बत में एक बहुत प्राचीन कथा है। एक दूर पहाड़ों में छिपा हुआ नया आश्रम निर्मित हुआ। तो जिस प्रधान आश्रम से उस आश्रम का संबंध था, उस लामासरी का संबंध था, उस लामासरी ने सौ लोगों का चुनाव किया जो जाकर उस आश्रम को सम्हालेंगे। तो एक युवक शिष्य ने पूछा, लेकिन सौ की वहां जरूरत नहीं है। वहां तो पांच से काम चल जाएगा। तो गुरु ने कहा, सौ को बुलाओ, तो दस तो आते हैं। दस को भेजो, तो पांच पहुंच पाते हैं। और इतने भी पहुंच जाएं, तो भी काफी है।
धर्म तो सभी को बुलाता है। लेकिन सौ को बुलाओ, तो नब्बे को तो सुनाई ही नहीं पड़ता निमंत्रण। क्योंकि हमें वही सुनाई पड़ता है, जिसे सुनने को हम आतुर हैं। हमें सभी चीजें सुनाई नहीं पड़तीं।
अभी मैं यहां बोल रहा हूं। यदि आप मुझमें आतुर हैं, तो मैं जो कह रहा हूं, वह सुनाई पड़ता है। लेकिन और बहुत-सी आवाजें चारों तरफ चल रही हैं, वे आपको सुनाई नहीं पड़तीं। टेप रिकार्डर उनको भी पकड़ लेगा, क्योंकि टेप रिकार्डर का कोई चुनाव नहीं है। जब आप टेप सुनेंगे, तब आप हैरान होंगे कि ये इतनी आवाजें--कोई पक्षी बोला, कुत्ता भौंका, हवाई जहाज गया, ट्रेन आई-- यह सब पकड़ रहा है। उसका कोई चुनाव नहीं है। और अगर आप भी सब पकड़ रहे हैं, तो उसका मतलब यह है कि आप भी चुन नहीं रहे हैं।

जो हम चुनते हैं, वह हमें सुनाई पड़ता है; जो हम चुनते हैं, वह हमें दिखाई पड़ता है। अगर आप चोर हैं, तो रास्ते से गुजरते वक्त आपको कुछ और दिखाई पड़ेगा, जो साहूकार को दिखाई नहीं पड़ सकता। अगर आप चमार हैं, तो रास्ते से गुजरते वक्त आपको लोगों के जूते दिखाई पड़ेंगे, उनकी टोपियां दिखाई नहीं पड़ सकतीं। अगर आप दर्जी हैं, तो उनके कपड़े दिखाई पड़ेंगे, उनके चेहरे दिखाई नहीं पड़ सकते। आपकी जो रुझान है, वही दिखाई पड़ता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि सौ घटनाएं घट रही हैं, उनमें से हम केवल दो को पकड़ते हैं, अट्ठानबे छूट जाती हैं। उनसे हमारा कुछ लेना-देना नहीं है। हमारा कोई प्रयोजन नहीं है।
आप एक रास्ते से गुजरें; सैकड़ों वृक्ष लगे हैं। एक चित्रकार गुजरे उसी रास्ते से, तो उसे हर वृक्ष की हरियाली अलग दिखाई पड़ती है। क्योंकि हर वृक्ष अलग ढंग से हरा है। हरा कोई एक रंग नहीं है, हरे में हजार रंग हैं। पर वह सिर्फ चित्रकार को दिखाई पड़ता है, जिसको रंगों की सूझ है, जिसको रंगों में झुकाव है, जिसे रंगों में रस है। आपको सब वृक्ष एक जैसे हरे हैं।
आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आप देखने चले हैं। जो आप खोजने निकले हैं, उसकी पुकार आपको सुनाई पड़ जाती है।
एक रास्ते से दो फकीर गुजर रहे थे। चर्च में घंटियां बजने लगीं। तो एक फकीर ने कहा... । बाजार था, बड़ा शोरगुल था। चीजें ली जा रही हैं, खरीदी जा रही हैं, बेची जा रही हैं, गाड़ियों से उतारी जा रही हैं, चढ़ाई जा रही हैं। बड़ा शोरगुल था वहां; चर्च की घंटी का सुनाई पड़ना मुश्किल था। एक फकीर ने चर्च की घंटी सुनते ही कहा, हम जल्दी चलें, प्रार्थना का समय हो गया, घंटी बज रही है। उस दूसरे फकीर ने कहा, तुम भी अदभुत हो; इस शोरगुल में, इस उपद्रव में तुम्हें चर्च की घंटी सुनाई पड़ गई! यहां किसी को सुनाई नहीं पड़ रही है। उसने कहा, यहां भी कुछ चीजें सुनाई पड़ती हैं। उसने एक रुपया खीसे से निकाला और सड़क पर गिरा दिया। खन्न की आवाज हुई, पूरा बाजार देखने लगा। वे सब रुपए को सुनने को आतुर लोग हैं। चर्च की घंटी बज रही थी, किसी के कान पर चोट न पड़ी। सब चौंक गए; सब ने आस-पास देखा। वे सब रुपए की तलाश में निकले हुए लोग हैं। रुपए की आवाज सुनाई पड़ जाएगी, चर्च की घंटी खो जाएगी। चाहे चर्च की घंटी जोर से बज रही हो, तो भी खो जाएगी।
एक मां सो रही हो, रात तूफान हो, बादल गरज रहे हों, उसे सुनाई नहीं पड़ेगा। उसका छोटा-सा बेटा रात जरा-सा कुनमुना दे, जरा-सा रो दे, वह जग जाएगी।
सौ को बुलाओ, नब्बे को सुनाई नहीं पड़ता। जिन दस को सुनाई पड़ता है, उनमें से भी शायद पांच समझ न पाएंगे। सुन भी लेंगे, तो भी पकड़ न पाएंगे। सुन भी लेंगे, तो भी उनकी आत्मा के भीतर कोई झंकार पैदा न होगी, कोई प्रतिध्वनि न होगी। सुनेंगे कान से, बात खो जाएगी; कोई चोट न पड़ेगी कि जो सुना है, वह उन्हें रूपांतरित कर दे। पांच सुनेंगे, समझेंगे। शायद उनमें से एक, जो उसने सुना है और समझा है, उसे करेगा भी। चार सुन लेंगे, समझ लेंगे, पंडित हो जाएंगे। सौ के साथ मेहनत करो, कभी कोई एक यात्रा पर जा पाता है। धर्म का निमंत्रण सबके लिए है, लेकिन विरले उसे सुन पाते हैं।

तीसरा प्रश्नः गीता कहती है कि दैवी संपदा मुक्त करती है और आसुरी संपदा बांधती है। इस संदर्भ में क्या बताएंगे कि बंधन क्या है और मुक्ति क्या है?

चित्त की ऐसी दशा, जहां कोई संताप न हो, जहां कोई सीमा का अनुभव न हो, जहां कोई सीमांत न आता हो; चित्त की ऐसी दशा, जैसे खुला आकाश हो; कोई दीवारें चारों तरफ से घेरने को नहीं, कोई पीड़ा की रेखा नहीं, क्योंकि सब पीड़ा की रेखाएं घेरती हैं, बंद करती हैं; आनंद खोलता है, फैलाता है; जहां चित्त की दशा फैलती हो।
हमारा जो शब्द है, इस देश में जो हम उपयोग करते हैं परम स्थिति के लिए,
वह ब्रह्म है। ब्रह्म का अर्थ होता है, जो फैलता ही चला जाता है, एक्सपैंडिंग, इनफिनिटली एक्सपैंडिंग, जो फैलता ही चला जाता है, विस्तार जिसका गुणधर्म है।

एक कंकड़ को फेंक दें पानी में, लहर उठती है, फैलती चली जाती है। अगर पानी असीम हो, तो वह लहर फैलती ही चली जाएगी; किनारा होगा, तो टूट जाएगी; किनारे पर जाकर बिखर जाएगी। अगर कोई किनारा न हो, तो फैलती ही चली जाएगी। आनंद का कोई किनारा नहीं है, क्योंकि इस अस्तित्व का कोई किनारा नहीं है। यह जो आकाश हमें दिखाई पड़ता है, यह कहीं है नहीं, यह सिर्फ हमारी आंखों
की देखने की क्षमता कम है। जहां तक आंखें देख पाती हैं, वहीं आकाश हमें बंद होता मालूम होता है, अन्यथा आकाश कहीं भी नहीं है। आकाश का अर्थ है, जो है ही नहीं। अनंत फैलाव है। इस फैलाव की कोई सीमा नहीं है।
जब चेतना ऐसी अवस्था में होती है कि उसमें उठते हुए आनंद की तरंगें फैलती ही चली जाती हैं, कहीं कोई किनारा नहीं है, तब मुक्त क्षण है, तब मुक्ति है। और जब चेतना तड़फड़ाती है, और एक भी लहर नहीं फैल पाती, और सब तरफ दीवारें आ जाती हैं; जहां बढ़ते हैं, वहीं बंधन आ जाता है, वहीं लगता है पैर में जंजीरें हैं, आगे नहीं जा सकते, उस दशा का नाम बंधन है।
कई प्रकार से हमें बंधन का अनुभव होता है। कितने ही प्रसन्न होते हों हम, शरीर की सीमा बंधी है। शरीर कभी स्वस्थ है, कभी अस्वस्थ है; कभी जवान है, कभी बूढ़ा है; कभी प्रफुल्लित है, कभी उदास है। उसकी सीमा आपके ऊपर बंधी है। अगर शराब डाल दी जाए शरीर में, तो आपकी चेतना भी उसी के साथ बेहोश हो जाती है। शरीर से रक्त निकाल लिया जाए, तो उसी के साथ आपकी चेतना भी दीन-हीन हो जाती है। शरीर जीर्ण-जर्जर, बूढ़ा हो जाए, उसी के साथ आप भी भीतर झुक जाते हैं और टूट जाते हैं। शरीर की सीमा खड़ी है।
दूर जरा आगे देखें, तो मौत की सीमा खड़ी है। मरना होगा, मिटना होगा। और प्रतिपल हजार तरह की सीमाएं हैं। क्रोध की, घृणा की, मोह की, लोभ की सीमाएं हैं। सब तरफ से बांधे हुए हैं। यह जो अवस्था है, यह बंधन की अवस्था है। कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा का अर्थ है, इस तरह की संपत्ति को बढ़ाना
और इकट्ठा करना, जिसमें हम बंधते हैं, जिसमें हम खुलते नहीं, उलटे उलझते हैं। दैवी संपदा का अर्थ है, ऐसी संपदा, जो इन बंधनों को तोड़ती है।
ध्यान करें, अगर आप लोभ से भरे हैं, तो आपको हर जगह सीमा मालूम पड़ेगी। कितना ही धन आपके पास हो, लगेगा कम है। लोभी मन को कभी ऐसा लग ही नहीं सकता कि मेरे पास ज्यादा है।
सोचें इसको आप, लोभी मन को कभी लग ही नहीं सकता कि मेरे पास ज्यादा है; उसे सदा लगेगा, मेरे पास कम है। कितना ही हो, तो लोभ सीमा बन जाएगी। अरब रुपए आपके पास हों, तो भी लगेगा कम हैं, क्योंकि दस अरब हो सकते थे।
अलोभ की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि अलोभी व्यक्ति को सदा लगेगा कि जो
भी मेरे पास है, वह भी ज्यादा है; वह भी न हो, तो भी कुछ हर्ज न था। अगर अलोभ पूरा हो जाए, तो आपकी सीमा मिट गई।
तो लोभ आसुरी संपदा है, अलोभ दैवी संपदा है।
क्रोधी व्यक्ति को प्रतिपल सीमा है; जहां देखेगा, वहीं से क्रोध पकड़ता है। जो करेगा, वहीं उपद्रव, झगड़ा और कलह खड़ा हो जाता है। अक्रोधी व्यक्ति के लिए कोई सीमा नहीं है। वह जहां से भी गुजरता है, वहीं मैत्री पैदा हो जाती है। तो क्रोध आसुरी हो जाएगा, अक्रोध दैवी हो जाएगा।
भयभीत व्यक्ति को हर पल खतरा है।
मैं एक गांव में रहता था। तो मेरे सामने एक सुनार रहता था, बहुत भयभीत आदमी। मैं अक्सर अपने दरवाजे पर बैठा रहता, तो उसको बड़ी अड़चन होती। क्योंकि शाम को वह घर से निकलता, अकेला ही था, तो ताला लगाएगा; हिलाकर ताले को देखेगा दो-चार बार। चूंकि मैं सामने बैठा रहता, तो उसको बड़ा संकोच लगता। तो मैं आंख बंद कर लेता। वह हिलाकर देखेगा। फिर वह दस कदम जाएगा, फिर लौटेगा। पसीना-पसीना हो जाएगा; क्योंकि उसको लग रहा है कि मैं देख रहा हूं। फिर आएगा, फिर ताले को खटखटाएगा।
मैंने उससे पूछा कि तू एक दफे इसको ठीक से खटखटाकर देखकर क्यों नहीं जाता? कभी दो दफा, कभी तीन दफा! वह कहता, शक आ जाता है। दस कदम जाता हूं, फिर यह होता है, पता नहीं, मैंने ठीक से हिलाकर देखा कि नहीं देखा!
अब यह भयभीत आदमी है। यह बाजार भी चला जाएगा, तो भी बाजार पहुंच नहीं पाएगा, इसका मन इसके ताले में अटका है। जो चार दफा लौटकर देखता है हिलाकर,

वह कितनी ही बार देख जाए, क्योंकि जो संदेह एक बार हिलाने के बाद आ गया, वह दुबारा क्यों न आएगा? तिबारा क्यों न आएगा?
यह जो भयभीत चित्त है, यह न रात सो सकता है, न दिन ठीक से जग सकता है। यह चौबीस घंटे डरा हुआ है; सारा जगत दुश्मन है।
तो भय आसुरी संपदा है, बांधती है। अभय मुक्त करता है, तो वह दैवी संपदा है।
मुक्त करने से केवल इतना ही अर्थ है कि जिससे आप पर सीमा न पड़ती हो; आप खुले आकाश में पक्षी की तरह उड़ सकते हों।
जिन-जिन चीजों से आपके चित्त पर सीमा पड़ती है, वहीं से आपका कारागृह निर्मित होता है। और हम ऐसे पागल हैं कि हम उनकी जड़ों को सींचते हैं, हम मजबूत करते हैं। क्योंकि जो जंजीरें हैं, शायद हम सोचते हैं कि वे आभूषण हैं। हम उन्हें बचाते हैं। कोई अगर तोड़ना चाहे, तो हम नाराज होंगे। कोई हमारी जंजीरें हटाना चाहे, तो हम उसे दुश्मन समझेंगे। क्योंकि उन्हें हमने जंजीरें कभी समझा नहीं; वे कीमती आभूषण हैं, जो हमने बड़ी कठिनाई से अर्जित किए हैं।
जब तक कोई व्यक्ति अपनी जंजीरों को आभूषण समझता है, तब तक उसकी मुक्ति
का द्वार बंद ही रहेगा। जब आप अपने आभूषणों को भी बंधन समझने लगेंगे, तभी मुक्ति के द्वार पर पहली चोट पड़ती है।
तो प्रत्येक व्यक्ति को निरीक्षण करते रहना चाहिए, उठते-बैठते, सुबह-सांझ, कौन-सी चीज मेरी सीमा बन रही है। सीमा के अतिरिक्त और कोई आपका दुश्मन नहीं है और असीम के अतिरिक्त कोई और आपका मित्र नहीं है। तो अपने को असीम बनाने की चेष्टा ही ध्यान है; असीम बनाने की चेष्टा ही प्रार्थना है; असीम बनाने की चेष्टा ही साधना है।
शरीर बांधता है, तो साधक अपने को शरीर से मुक्त करता है। तो वह निरंतर अनुभव करने की कोशिश करता है, क्या मैं शरीर हूं? क्या सच में ही मैं शरीर हूं या शरीर से भिन्न हूं?
धीरे-धीरे, निरंतर चोट से यह अनुभव होना शुरू हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। जिस दिन यह पता चलता है, मैं शरीर नहीं हूं, फिर शरीर जवान हो, बूढ़ा हो; जिंदा हो, मरे; स्वस्थ हो, अस्वस्थ हो; तो बंधन नहीं बांधता। जो मैं नहीं हूं, उससे मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। और जैसे ही यह स्मरण आ गया कि मैं शरीर नहीं हूं, वैसे ही आपकी आत्मा इस खुले आकाश के साथ एक हो गई। फिर कोई परदा न रहा।
मन बांधता है। तो साधक खोजता है, क्या मैं मन हूं? और निरंतर एक ही तलाश में लगा रहता है कि मन से संबंध कैसे टूट जाए! वह संबंध टूट जाता है। क्योंकि जो हमारे भीतर साक्षी है, वह न तो शरीर है, न मन है, न भाव है। हम इन सब के साक्षी हो सकते हैं। शरीर को भी देख सकते हैं अलग अपने से; मन को भी देख सकते हैं; विचार को भी देख सकते हैं। और जिसको हम देख सकते हैं, वह हमसे अलग हो गया, हम द्रष्टा हो गए।
जिसको भी मैं देख सकता हूं--यह गणित है--वह मैं नहीं हूं। मैं स्वयं को कभी भी नहीं देख सकता हूं। मैं सदा देखने वाला ही रहूंगा। दृश्य बनने का कोई उपाय नहीं है; मैं द्रष्टा ही रहूंगा। द्रष्टा होना मेरा स्वभाव है। इसलिए मैं अपने आपको अपने सामने रखकर देख नहीं सकता। सब देख लूंगा मैं, सिर्फ मेरा होना पीछे रह जाएगा। और जब मैं सब देखी जाने वाली चीजों को छोड़ दूंगा, सिर्फ वही बच रहेगा जो देखने वाला है, उस क्षण मेरी कोई सीमा न होगी, उस क्षण मैं मुक्त हो जाऊंगा।
बंधन वाला चित्त हर चीज से अपने को जोड़ता है। वह कहता है, यह शरीर मैं हूं; सीमा खड़ी कर ली। वह कहता है, यह धन मैं हूं; धन की सीमा खड़ी हो गई। अमीर ही नहीं बंधते, भिखमंगे भी धन से बंधे होते हैं।
एक रास्ते से मैं गुजर रहा था, अचानक एक भिखमंगे की आवाज मेरे कानों में पड़ी। बात ही कुछ ऐसी थी कि मैं रुक गया, और सुनने जैसी बात थी। एक सज्जन गुजर रहे थे, भिखमंगा उनसे भीख देने का आग्रह कर रहा था कि कुछ भी दे जाओ, दो पैसे सही। भले आदमी थे, खीसे में हाथ डाला; लेकिन घूमने निकले थे शाम को, कोई पैसे खीसे में थे नहीं। तो कहा, माफ करना, पैसे खीसे में हैं नहीं; दुबारा जब आऊंगा, तो ख्याल से पैसे ले आऊंगा। तो उस भिखमंगे ने कहा, मार जा,

तू भी मार जा मेरे पैसे! इसी तरह वायदा कर-करके लोग लाखों रुपए मार चुके हैं।
भिखमंगा है! वह कह रहा है, लाखों रुपए लोग मार चुके हैं इसी तरह वायदा कर-करके कि फिर आ जाएंगे, फुटकर पैसे नहीं हैं, अभी छुट्टे पैसे नहीं हैं, अभी कुछ खीसे में नहीं है। वह जो लाखों उसके पास कभी नहीं रहे हैं, वह उनका दुख है उसको कि लोग मार गए हैं उससे।
अमीर धन से बंधा हो, समझ में आ जाता है। गरीब भी धन से बंधा है। और धन
से हम ऐसे चिपट जाते हैं, जैसे वह हमारी आत्मा है। फिर इसी भांति हम सब तरह की चीजों से जुड़ जाते हैं, तादात्म्य, आइडेंटिटी बना लेते हैं, यह मैं हूं। और जिससे भी हम जुड़ जाते हैं, वह हमारी सीमा बन गया।
तो अपने को जितनी ज्यादा चीजों से कोई जोड़ेगा, उतने बंधन में होगा; और जितना चीजों से अपने को तोड़ेगा, उतना मुक्त होगा। और जिस दिन सिर्फ यही अनुभव रह जाएगा कि मैं किसी से भी बंधा नहीं हूं, कुछ भी मेरा नहीं है, सिर्फ मैं ही हूं, मेरा स्वभाव ही बस मेरा होना है, उस दिन मुक्ति है। दैवी संपदा उस जगह ले जाती है, जहां आप अकेले बचते हैं। आसुरी संपदा वहां ले जाती है, जहां आपको छोड़कर और सब कुछ बच जाता है।

अब हम सूत्र को लें।
और हे अर्जुन, आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य-कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्तव्य-कार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते हैं। इसलिए उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्य भाषण ही है।
तथा वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं कि जगत आश्चर्यरहित और सर्वथा झूठा है एवं बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जगत केवल भोगों को भोगने के लिए ही है। इसके सिवाय और क्या है?
इस प्रकार इस मिथ्या-ज्ञान को अवलंबन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सबका अहित करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत का नाश करने के लिए ही उत्पन्न होते हैं।
बहुत-सी बातें इस सूत्र में समझने जैसी हैं और गहरे में जाने जैसी हैं।
आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्तव्य में प्रवृत्त होने और अकर्तव्य से निवृत्त होने को नहीं जानते हैं... ।
क्या करने जैसा है, क्या करने जैसा नहीं है, इसका उन्हें कुछ भेद नहीं होता, वे जो आसुरी संपदा वाले लोग हैं। क्या कर्तव्य है? कर्तव्य की क्या परिभाषा है? किसे हम कहें कि यह करने जैसा है?
योग कर्तव्य की परिभाषा करता है, जिससे भी आनंद बढ़ता हो, वही कर्तव्य है। और मजे की बात यह है कि जिससे हमारा आनंद बढ़ता है, उससे हमारे आस-पास जो हैं, उनका भी आनंद बढ़ता है। जिससे हमारे आस-पास जो हैं, उनका आनंद बढ़ता है, उससे हमारा भी आनंद बढ़ता है। आनंद एक संयुक्त घटना है।
दुख भी संयुक्त घटना है। जिससे हमारा दुख बढ़ता है, उससे हमारे आस-पास
भी दुख बढ़ता है। जिससे हमारे आस-पास दुख बढ़ता है, उससे हमारा दुख भी बढ़ता है। दुख भी एक संयुक्त घटना है।
आप किसी दूसरे को दुखी करके सुखी नहीं हो सकते। चाहे क्षणभर को आप अपने को धोखा दें कि मैं सुखी हो रहा हूं, लेकिन यह असंभव है। यह नियम नहीं है। यह हो नहीं सकता। आप दूसरे को दुखी करके सिर्फ दुखी ही हो सकते हैं। यह तो हो भी सकता है कि आप दूसरे को दुखी करें और वह दुखी न हो, लेकिन
आप तो दुखी होंगे ही। क्योंकि अगर वह आदमी ज्ञानी हो, बोधपूर्ण हो, बुद्ध पुरुष हो, तो आपके दुखी करने से दुखी नहीं होगा। लेकिन आपकी दुखी करने की जो चेष्टा है, वह आपको तो निश्चित ही दुखी कर जाएगी।
जगत एक प्रतिध्वनि है। हम जो करते हैं, वह हम ही पर आकर बरस जाता है, चाहे थोड़ी देर-अबेर हो जाती हो। उसी देर-अबेर के कारण ही हम इस भ्रांति में पड़ जाते हैं कि इससे कोई संबंध नहीं है।

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि हम कुछ भी बुरा नहीं कर रहे हैं, फिर भी दुखी हैं।
उनकी गलती है। यह असंभव है। वे जरूर कुछ कर रहे हैं; वे जरूर कुछ करते रहे हैं। शायद वे सोचते हैं कि वह बुरा नहीं है, जो वे कर रहे हैं।
एक पिता मेरे पास आए। अपने बेटे से दुखी हैं। और कहते हैं कि मैं तो बेटे के भले के लिए सब-कुछ कर रहा हूं, पर वह मुझे दुख दे रहा है। सारी कथा मैंने जानी। तो पिता ठीक कहते हैं कि भले के लिए कर रहे हैं; इसमें कुछ झूठ नहीं है। लेकिन करने का जो ढंग है, वह ऐसा है कि वे बंद ही कर दें यह भला काम करना, तो अच्छा है। करने का ढंग इतने दंभ से भरा है, करने का ढंग ऐसा है कि खुद को वे देवता और बेटे को शैतान समझते हैं। करने का ढंग इतना अहंकारपूर्ण है कि बेटे के अहंकार को चोट लगती है। चाहते वे भला करना हैं, लेकिन बुरा हो रहा है।
और इतने दंभ से जब कोई दूसरे व्यक्ति को बदलने की कोशिश करता है, तो दूसरे पर चोट पहुंचती है। वह चोट संघातक हो जाती है; उस चोट से बदला लेने की वृत्ति पैदा होती है। और करने में उनको जो मजा आ रहा है, वह मजा यह नहीं है कि वे बेटे का भला कर रहे हैं। वह मजा यह है कि मैं भला बाप हूं और बेटे के लिए सब कुर्बान कर रहा हूं। वह भी अहंकार का ही मजा है।
मैंने उनसे कहा कि कभी आपने यह सोचा कि अगर बेटा सच में ही भला हो जाए,
तो आप दुखी हो जाएंगे! उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं! कभी नहीं। तो मैंने कहा, आप बैठें आंख बंद करके और सोचें। आपका तो सारा जीवन का अर्थ ही खो जाएगा। एक ही अर्थ है, वह बेटे को ठीक करना। आप बिल्कुल अनआकुपाइड हो एकदम, कोई काम न बचेगा; मरने के सिवाय कुछ काम न बचेगा। वह बेटा आपको काम दे रहा है, रस दे रहा है। चौबीस घंटे आप उसी के पीछे पड़े हैं, उसी की कथा कह रहे हैं, और जगह-जगह प्रचार कर रहे हैं कि आप इतना कर रहे हैं और बेटा आपको दुख दे रहा है। अगर बेटा सच में आज भला हो जाए, तो आपको कल मरने के सिवाय कोई काम नहीं है।
थोड़े चौंके, धक्का खाया; लेकिन फिर सोचा। और कहने लगे कि शायद बात ठीक
ही हो!
अगर आप दुख पाते हैं, तो आपको जान लेना चाहिए कि आप दुख दे रहे हैं। अगर आपको आनंद की कोई भी किरण मिलती है, तो जान लेना चाहिए कि जाने या अनजाने आपने कुछ आनंद दिया है, बांटा है। जो हम बांटते हैं, वही हमें मिलता है।
कर्तव्य क्या है? कर्तव्य निर्भर होगा लक्ष्य से। लक्ष्य तो एक है सभी का कि जीवन आनंद से भरपूर हो जाए। तो जिससे भी आनंद बढ़े, वही कर्तव्य है। और जिससे आनंद घटे, वही अकर्तव्य है। आनंद को हम कसौटी बना सकते हैं। जैसे सोने को पत्थर पर कसकर देख लेते हैं कि सही या गलत, शुद्ध या अशुद्ध, वैसे आनंद पर आप कसकर देखते रहें अपने कर्मों को।
और जिस कर्म से आनंद बढ़ता हो, समझना वह कर्तव्य है। फिर उसको ज्यादा सींचें, बढ़ाएं, जीवन की सारी ऊर्जा उसमें लग जाने दें। जिस कर्म से दुख मिलता हो, उसे छोड़ें, उससे अपने को हटाएं, उसकी तरफ जीवन की ऊर्जा को मत बहने दें।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति जानता ही नहीं कि क्या करने योग्य है, न जानता है कि क्या करने योग्य नहीं है। न कर्तव्य में उसकी प्रवृत्ति है, न अकर्तव्य से निवृत्ति है। वह अंधे आदमी की तरह कुछ भी किए चला जाता है। उस सब कनफ्यूजन, उस सब उपद्रव को जैसे वह अपने जीवन में खड़ा कर लेता है। कभी बाएं, कभी दाएं भागता है; कभी सीधा, कभी उलटा। मैंने सुना है, दक्षिण में एक कथा है। दक्षिण का एक कवि हुआ, तेनालीराम। कुछ उलटी खोपड़ी का आदमी रहा होगा। कवि अक्सर होते हैं। पर भक्ति का भी भाव था। तो उसने बड़ी साधना की। काली का पूजक था। बड़ी साधना की। वर्षों के बाद काली का दर्शन हुआ, अनंत हाथों वाली, अनंत मुख वाली। सालों की मेहनत के बाद तेनालीराम ने पूछा क्या!
उसने पूछा कि बस, मुझे यही पूछना है; एक नाक हो, सर्दी हो जाए, तो आदमी पोंछ-पोंछकर थक जाता है। तुम्हारी क्या गति होती होगी?

काली भी चौंकी होगी। कहते हैं, काली ने कहा कि तुम्हें, तेनालीराम, आज
से विकट कवि कहा जाएगा। यह तुम्हारा नाम हुआ; और यही मेरा उत्तर है। तेनालीराम ने सुना तो उसने कहा कि बिल्कुल ठीक। यह बिल्कुल मुझसे मेल खाता है। विकट कवि को उलटा पढ़ो या सीधा, एक-सा है। और मैं उलटा खड़ा होऊं या सीधा, बिल्कुल एक-सा है।
यह वर्षों की साधना बस, इस चर्चा पर समाप्त हो गई!
अगर मन उलझा हो, क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है, इसका बोध भी न हो, तो आपके सामने परमात्मा भी खड़ा हो, तो भी हल न होगा। आप स्वर्ग में भी पहुंच जाएं, तो कोई न कोई उपद्रव खड़ा कर लेंगे। आप जहां भी होंगे, वहां गलती अनिवार्य है।
सवाल यह नहीं है कि आप कहां हैं। सवाल यह है कि आपके पास देखने की दृष्टि तीक्ष्ण, स्पष्ट है; विवेकपूर्ण है; बांट सकती है या नहीं कि क्या सार है, क्या असार है; क्या कर्तव्य है, क्या अकर्तव्य है।
अक्सर लोग जीवनभर दौड़ते रहते हैं, बिना इसका ठीक से उनको पक्का पता हुए कि वे कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं। अगर लोग थोड़ी देर रुक जाएं इसके पहले कि कदम उठाएं, चलें, सोच लें कि कहां जाना है और सारी जीवन ऊर्जा को वहां नियोजित कर दें, तो जीवन में फल लग सकते हैं।
अधिक लोग बेफल मर जाते हैं, निष्फल मर जाते हैं। ऐसा भी नहीं कि श्रम
कम करते हैं। श्रम बहुत करते हैं। आसुरी संपदा वाले लोग दैवी संपदा वाले लोगों से ज्यादा श्रम करते हैं। बुद्ध ने क्या श्रम किया है! जो श्रम हिटलर और तैमूरलंग और चंगेज खां करते हैं! बुद्ध का श्रम क्या है! एक झाड़ के नीचे बैठे हैं, यही श्रम है!
तैमूरलंग को देखें, लंगड़ा है। वह लंग लंगड़े का ही हिस्सा है। तैमूर दि लेम। लंगड़ा है, लेकिन सारी जमीन को जीतने की कोशिश में लगा है। और कोई आधी जमीन उसने जीत भी डाली। कितने लाखों लोग उसने काट डाले। श्रम उसका भारी है, लेकिन परिणाम क्या है? हिटलर के श्रम को कोई कम नहीं कह सकता। फल क्या है?
ठीक साफ न हो कि क्या कर्तव्य है, क्या मैं करूं, क्यों करूं, और इसका क्या अंत होगा, इसकी ठीक-ठीक रूप-रेखा साफ न हो, तो आदमी करता बहुत है और पाता कुछ भी नहीं।
आसुरी वृत्ति के लोग बड़ा श्रम उठाते हैं, पर उनकी सब साधना निष्फल जाती है।
.इसलिए उनमें न तो बाहर-भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है, और न सत्य भाषण ही।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति शुद्धि का विचार ही नहीं करता। वह उसके चिंतन में ही कभी नहीं आता, कि शुद्धि का भी कोई रस है, कि शुद्धि का भी कोई सुख है। जीवन उसका एक घोलमेल है, उसमें सभी कुछ मिला-जुला है। वह प्रार्थना भी करता रहेगा, दुकान की बात भी सोचता रहेगा। वह मंदिर में भी बैठा रहेगा, और वेश्याघर उसे पहुंच जाना है शीघ्रता से, उसकी योजना बनाता रहेगा। उसके जीवन में शुद्धि नहीं है। उसके जीवन में सब मिला हुआ है, कचरे की तरह सब इकट्ठा है। कोई एक स्वर नहीं है। बहुत स्वर हैं, विपरीत स्वर हैं।
शुद्धि का अर्थ इतना ही है कि जीवन की धारा एक स्वर से भरी हो, एक समस्वरता हो। और जब भी मैं जो कर रहा हूं, उस करने में मेरी निष्ठा इतनी पूरी हो कि दूसरा स्वर बीच में डांवाडोल न करता हो।
अगर व्यक्ति का जीवन एक-एक क्षण भी इस भांति शुद्ध होने लगे, तो परमात्मा का मंदिर ज्यादा दूर नहीं है। लेकिन आप कुछ भी कर रहे हों, एक काम कभी भी नहीं कर रहे हैं, हजार काम साथ कर रहे हैं! कुछ भी सोच रहे हों, एक विचार कभी नहीं है, हजार विचार विक्षिप्त की तरह भीतर दौड़ रहे हैं। आप एक बाजार हैं, एक भीड़। और भीड़ भी पागल। इस स्थिति का नाम अशुद्धि है।
कृष्ण कह रहे हैं, उसमें न तो बाहर की शुद्धि है, न भीतर की। न श्रेष्ठ आचरण है, न सत्य भाषण है। तथा वे आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य कहते हैं, जगत आश्चर्यरहित है।
यह वचन बड़ा क्रांतिकारी है।

आसुरी वृत्ति वाला व्यक्ति मानता है कि जगत में कोई रहस्य नहीं है; मानता है कि जगत एक तथ्य है, जिसमें न कोई आश्चर्य है, न कोई रहस्य है, कोई मिस्ट्री नहीं है। अगर हम विचार करें, तो बहुत-सी बातें साफ हो सकती हैं। धार्मिक और अधार्मिक व्यक्ति में यही फासला है। धार्मिक व्यक्ति जीवन को एक रहस्य की भांति अनुभव करता है। यहां जो प्रकट है, वह सिर्फ सतह है; इस सतह के पीछे अप्रकट छिपा है। और वह अप्रकट ऐसा है कि कितना ही प्रकट होता जाए, तो भी शेष रहेगा।
रहस्य का अर्थ होता है, जिसे हम पूरा कभी न जान पाएंगे, जिसका अंतस्तल सदा ही अनजाना रहेगा। हम कितना ही जान लें, हमारी सब जानकारी बाहर ही बाहर रहेगी। भीतर की अंतरात्मा सदा अनजानी छूट जाएगी।
अगर इसे ठीक से ख्याल में लें, तो विज्ञान आसुरी मालूम पड़ेगा। क्योंकि विज्ञान मानता है, जगत में सभी कुछ जाना जा सकता है--कम से कम मानता था। अभी नए कुछ वैज्ञानिक, आइंस्टीन के बाद, इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते। अन्यथा विज्ञान की दृष्टि थी, सभी कुछ जाना जा सकता है। जो हमने जान लिया वह, और जो नहीं जाना है, वह भी अज्ञेय नहीं है, अननोएबल नहीं है। अज्ञात है, उसको भी हम कल जान लेंगे, परसों जान लेंगे। समय की बात है। सौ, दो सौ वर्षों में हम सब जान लेंगे, या हजार, दो हजार वर्षों में। लेकिन धारणा यह थी विज्ञान की कि जगत पूरा का पूरा जाना जा सकता है।
अगर पूरा का पूरा जाना जा सकता है, तो परमात्मा की कोई जगह नहीं बचती। क्योंकि जिस दिन आप परमात्मा को भी जान लें प्रयोगशाला में और पदार्थों की भांति, जैसा आक्सीजन और हाइड्रोजन को जानते हैं, ऐसा परमात्मा को जान लें; जैसे आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाकर पानी बनाते हैं, ऐसा परमात्मा का विश्लेषण कर लें, मेल-जोल करके ट्यूब में उसको तैयार कर दें; जिस दिन आप परमात्मा को जान लेंगे पदार्थ की तरह--विज्ञान की यही धारणा है कि सभी कुछ हम जान लेंगे--उस दिन जानने को कुछ भी शेष नहीं बचेगा।
कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति जगत में कोई रहस्य नहीं मानता। और दैवी संपदा वाला व्यक्ति मानता है कि जगत एक अनंत रहस्य है, एक पहेली, जिसे हम हल करने की कितनी ही कोशिश करें, हम हल न कर पाएंगे।
और वह जो सदा हल के बाहर छूट जाता है, वही परमात्मा है। वह जो हमारी सब कोशिश के बाद भी अज्ञेय, अननोएबल रह जाता है, जिसके पास जाकर हम अवाक हो जाते हैं, जिसके पास जाकर हमारा हृदय ठक से रुक जाता है, जिसके पास जाकर हमारे विचार की परंपरा एकदम टूट जाती है, जिसके पास हम अपना सुध-बुध खो देते हैं, जिसके पास हम मस्ती से तो भर जाते हैं, लेकिन जानकारी बिल्कुल खो जाती है, उस तत्व का नाम ही परमात्मा है। वही है मिस्टीरियम, रहस्यमय।
तो कृष्ण कहते हैं, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति मानता है, कोई रहस्य नहीं है। जगत तथ्यों का एक जोड़ है; सब जाना जा सकता है।
इसलिए आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को न तो जीवन में कोई काव्य दिखाई पड़ता, न कोई सौंदर्य दिखाई पड़ता, न कोई प्रेम दिखाई पड़ता; क्योंकि ये सभी तत्व रहस्यपूर्ण हैं। आसुरी संपदा वाला व्यक्ति जीवन को गणित से नापता है, सभी चीजों को नापता-तौलता है। और सभी चीजों को पदार्थ की तरह व्यवहार करता है। इस जगत में उसे कोई व्यक्तित्व नहीं दिखाई पड़ता। यह जगत जैसे एक मिट्टी का जोड़ है, पदार्थ का जोड़ है। और यहां जो भी घट रहा है, यह सांयोगिक है, एक्सिडेंटल है।
पश्चिम के एक बड़े नास्तिक दिदरो ने लिखा है कि जगत का न तो कोई बनाने वाला है, न जगत के भीतर कोई रचना की प्रक्रिया है, न इस जगत का कोई सृजनक्रम है। जगत एक संयोग, एक एक्सिडेंट है। घटते-घटते, अनंत घटनाएं घटते-घटते यह सब हो गया है। लेकिन इसके होने के पीछे कोई राज नहीं है।
अगर दिदरो की बात सच है, उसका तो अर्थ यह हुआ कि अगर हम कुछ ईंटों को फेंकते जाएं, तो कभी रहने योग्य मकान दुर्घटना से बन सकता है। सिर्फ फेंकते जाएं! या एक प्रेस को हम बिजली से चला दें और उसके सारे यंत्र चलने लगें, तो केवल संयोग से गीता जैसी किताब छप सकती है।
दैवी संपदा वाला व्यक्ति देखता है कि जगत में एक रचना-प्रक्रिया है। जगत के पीछे चेतना छिपी है। और जगत के प्रत्येक कृत्य के पीछे कुछ राज है।
और राज कुछ ऐसा है कि हम उसकी तलहटी तक कभी न पहुंच पाएंगे, क्योंकि हम भी

उस राज के हिस्से हैं; हम उसके स्रोत तक कभी न पहुंच पाएंगे, क्योंकि हम उसकी एक लहर हैं।
मनुष्य कुछ अलग नहीं है इस रहस्य से। वह इस विराट चेतना में जो लहरें
उठ रही हैं, उसका ही एक हिस्सा है। इसलिए न तो वह इसके प्रथम को देख पाएगा, न इसके अंतिम को देख पाएगा। दूर खड़े होकर देखने की कोई सुविधा नहीं है। हम इसमें डूबे हुए हैं। जैसे मछली को कोई पता नहीं चलता कि सागर है। और मछली सागर में रहती है, फिर भी सागर का क्या रहस्य जानती है! वैसी ही अवस्था मनुष्य की है।
जितना ही ज्यादा दैवी संपदा की तरफ झुका हुआ व्यक्ति होगा, उतना ही तर्क पर उसका भरोसा कम होने लगेगा, उतना ही काव्य पर उसकी निष्ठा बढ़ने लगेगी, उतना ही वह जगत में सब तरफ उसे रहस्य की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। फूल खिलेगा, तो उसे परमात्मा का इंगित दिखाई पड़ेगा।
वैज्ञानिक के सामने भी फूल खिलता है, तो वैज्ञानिक उसमें कुछ तथ्यों
की खोज करता है। वह देखता है कि फूल में जरूर कोई कारण है! क्यों खिला है? तो फूल की केमिकल परीक्षा करता है, जांच-पड़ताल करता है, उसके रसों की जांच-पड़ताल करता है, और एक नियम तय करता है कि इसलिए खिला है।
धार्मिक व्यक्ति, दैवी संपदा का व्यक्ति फूल का विश्लेषण नहीं करता, लेकिन फूल का जो संकेत है, जो सौंदर्य है, फूल का जो खिलना है, वह जो जीवन का प्रकट होना है, उस इशारे को पकड़ता है। और तब एक फूल उसके लिए परमात्मा का प्रतीक हो जाता है। तब एक छोटी-सी हिलती हवा में पत्ती भी उसके लिए परमात्मा का कंपन हो जाती है। तब यह सारा जगत परमात्मा का नृत्य हो जाता है।
परमात्मा से अर्थ है, रहस्य। परमात्मा से आप यह मत सोचना कि कहीं आकाश में कोई बैठा हुआ व्यक्ति। परमात्मा का अर्थ है, यह जगत रहस्यपूर्ण है। और जैसे ही यह जगत रहस्यपूर्ण होता है, वैसे ही हमारे हृदय में एक नया स्पंदन शुरू होता है।
आज अगर दुनिया में इतनी ऊब, इतनी उदासी, इतनी बोर्डम है, तो उसका कारण आसुरी संपदा वाली विचार-धारा का प्रभाव है। क्योंकि जीवन में जब कोई रहस्य न हो, तो रस भी न होगा। और जब सब चीजें मिट्टी-पत्थर का जोड़ हों... । अगर दो व्यक्तियों में प्रेम हो जाए, वैज्ञानिक से पूछें, बायोलाजिस्ट से पूछें, तो वह कहता है कि कुछ खास बात नहीं; सिर्फ हार्मोन्स की ही बात है। इन दोनों व्यक्तियों में जो भीतर शरीर में हार्मोन्स बन रहे हैं, वह जो रासायनिक प्रक्रिया हो रही है, उसमें आकर्षण है। उस आकर्षण की वजह से इनको प्रेम वगैरह का ख्याल पैदा हो रहा है। प्रेम सिर्फ ख्याल है, असली चीज हार्मोनल आकर्षण है।
विज्ञान सभी चीजों को समझा देता है। यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि
हम इस मुल्क में विज्ञान को अविद्या कहते थे। पुराने दिनों में ऋषियों ने ज्ञान के दो हिस्से किए हैं, विद्या और अविद्या। विद्या उस ज्ञान को कहा है, जो दैवी संपदा की तरफ ले जाता है। और अविद्या उस ज्ञान को कहा है, जो आसुरी संपदा की तरफ ले जाता है।
विज्ञान अविद्या है। जानना तो वहां बहुत होता है, लेकिन फिर भी जानने
का जो परम लक्ष्य है, वह चूक जाता है।
अगर हम वैज्ञानिक को कहें, भीतर आदमी के आत्मा है। तो वह शरीर को काटने को तैयार है, वह काटकर शरीर को देखने को तैयार है। काटने पर आत्मा मिलती नहीं। यह वैसे ही है, जैसे कि पिकासो का एक सुंदर चित्र हो, और हम कहें, बहुत सुंदर है। और वैज्ञानिक उसको काटकर, प्रयोगशाला में ले जाकर, सब रंगों को अलग करके, विश्लिष्ट करके और कह दे कि ये सब रंग अलग-अलग रखे हुए हैं, सौंदर्य कहीं भी नहीं है।
चित्र को काटकर सौंदर्य नहीं खोजा जा सकता। क्योंकि चित्र का सौंदर्य चित्र की परिपूर्णता में है, वह उसकी होलनेस में था, वह रंगों के जोड़ में था। जैसे ही तोड़ लिया, जोड़ समाप्त हो गए, सौंदर्य खो गया।
आदमी की आत्मा उसके अंग-अंग को काटकर नहीं पकड़ी जा सकती। वह उसकी समग्रता में है, वह सौंदर्य की तरह उसकी समग्रता में छिपी है। उसकी

समग्रता अखंडित रहे, तो ही आत्मा को पहचाना जा सकता है। उसकी खंडित स्थिति हो, आत्मा खो गई।
यह जगत अखंडता है। इस अखंडता के भीतर जो छिपा हुआ रहस्य है, उसका नाम परमात्मा है।
आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहते हैं, जगत आश्चर्यरहित और सर्वथा झूठा
है और बिना ईश्वर के अपने आप स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। इसलिए जगत केवल भोगों को भोगने के लिए है। इसके सिवाय और क्या है!
अगर कोई रहस्य नहीं, तो फिर कोई गंतव्य नहीं। अगर कोई छिपी हुई नियति नहीं, तो पहुंचने का कोई अर्थ नहीं, कहीं जाने को नहीं। फिर आप यहां हैं, और इस क्षण जिस बात में भी सुख मिलता हुआ मालूम पड़े, उसको कर लेना उचित है। चार्वाकों ने कहा है कि उधार लेकर भी अगर घी पीना पड़े, तो चिंता मत करना, उधार लेना। क्योंकि मरने के बाद न लेने वाला बचता है, न देने वाला। तब चोरी में कोई बुराई नहीं, अगर सुख मिलता हो। तब किसी से छीनकर कोई चीज भोग लेने में कुछ हर्ज नहीं, अगर सुख मिलता हो। क्योंकि जीवन की कोई परम गति नहीं है और न कोई परम नियंत्रण है, और न जीवन का कोई अर्थ है, जो आपको आगे की तरफ खींचना है। इस क्षण जो भोगने योग्य लगता हो, उसे पागल की तरह भोग लेना ही आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के जीवन का ढंग और शैली होगी।
इस सारी दौड़ के पीछे दौड़ता हुआ कोई सूत्र नहीं है। जैसे एक माला हम बनाते हैं, उसमें मनके हैं और भीतर हर मनके के दौड़ता हुआ एक धागा है। वह धागा दिखाई नहीं पड़ता, मनके दिखाई पड़ते हैं। वह धागा सब मनकों को बांधे है, पर अदृश्य है।
दैवी संपदा वाले व्यक्ति के जीवन का प्रत्येक कृत्य एक मनका है। और प्रत्येक मनके को वह भीतर के एक प्रयोजन से बांधे हुए है, एक लक्ष्य, एक जीवन की दिशा, एक जीवन की परिपूर्ण कृतकृत्यता का भाव। जीवन कहीं जा रहा है, एक नियति, वह उसका धागा है। तो वह जो भी कर रहा है, हर मनके को उस धागे में बांधता जा रहा है। कृत्य मनकों की तरह अलग-अलग हैं और उसका जीवन एक धागे की तरह सारे मनकों को सम्हाले हुए है, एक इंटीग्रेशन।
आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के जीवन में कोई धागा नहीं है। हर कृत्य टूटा हुआ मनका है। दो मनकों में कोई जोड़ नहीं है। इसलिए आसुरी संपदा वाला व्यक्ति करीब-करीब विक्षिप्त की तरह जीता है। उसकी न कोई दिशा है, न कोई गंतव्य है। बस, हर क्षण जहां हवाएं ले जाएं, जो सूझ जाए वासना को, जो भीतर का धक्का आ जाए, या परिस्थिति जिस तरफ झुका दे, या लोभ जिस तरफ आकर्षित कर ले, बस वह वैसा दौड़ता चला जाता है।
जैसे आपके सामने एक सितार रखा हो और आप उसको ठोंकते जाएं, तार खींचते जाएं; और आपको सितार के शास्त्र का कोई भी ज्ञान न हो, संगीत की कोई प्रतीति न हो, दो स्वरों के बीच जोड़ का कोई अनुभव न हो, स्वरों का एक प्रवाह बनाने की कोई कला न हो, स्वरों की सरिता निर्मित न कर सकते हों, तो आप सिर्फ एक उपद्रव मचाएंगे। शोरगुल होगा बहुत, संगीत नहीं हो सकता। क्योंकि संगीत तो सभी सुरों को मनके की तरह जब आप धागे में बांधते हैं, तब पैदा होता है। दैवी संपदा वाला व्यक्ति जीवन में संगीत निर्मित करने की चेष्टा में लगा रहता है। वह जो काम भी करता है, सोचता है कि यह मेरे पूरे जीवन में कहां बैठेगा, यह मेरे पूरे जीवन को क्या रंग देगा, इससे मेरा आज तक का जीवन किस मोड़ पर मुड़ जाएगा, यह मेरे पूरे जीवन को मिलकर कौन-सा नया अर्थ, अभिव्यक्ति देगा। इसलिए प्रत्येक कृत्य एक अर्थ, एक अभिप्राय, एक प्रयोजन और एक नियति के साथ मेल बनाता है।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति इस क्षण में उसे जो सूझता है, कर लेता है। उसका कृत्य टूटा हुआ है, आणविक है। और उसका लक्ष्य सिर्फ इतना है, आज भोग लूं, कल का क्या भरोसा है!
उमर खय्याम की रुबाइयात, अगर उसके गहरे सूफी अर्थ आपको पता न हों, तो आसुरी संपदा वाले व्यक्ति का वक्तव्य मालूम पड़ेगा। उमर खय्याम की रुबाइयात में बड़ी मधुर कल्पना है। अगर आपको उसका सूफी रहस्य पता हो, तब तो वह एक अदभुत ग्रंथ है। सूफी रहस्य का पता न हो, तो आपको लगेगा, भोग का एक आमंत्रण है।

उमर खय्याम सुबह-सुबह ही पहुंच गया मधुशाला के द्वार पर। अभी कोई जागे भी नहीं; रात थके-मांदे नौकर सो गए हैं। सुबह ब्रह्ममुहूर्त में, अभी सूरज भी नहीं निकला, वह दरवाजा खटखटा रहा है। भीतर से कोई आवाज देता है कि अभी मधुशाला के खुलने में देर है।
तो वह कहता है, लेकिन देर तक प्रतीक्षा करना संभव नहीं। एक क्षण के बाद का भरोसा नहीं। और यह क्षण चूक जाए पीने का, तो कौन आश्वासन देता है कि अगले क्षण मैं बचूंगा और पीने की मुझे सुविधा रहेगी! इसलिए द्वार खोलो। देर मत करो। सूरज निकलने के करीब हो गया। और सूरज ने अपनी किरणों का जाल फेंक दिया जगत पर। और जब किरणों का जाल जगत पर सूरज फेंक देता है, तो संध्या होने में ज्यादा देर नहीं।
वह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, उसे मृत्यु लगती है, बस आ रही है। क्षणभर हाथ में है, इसे भोग लूं, निचोड़ लूं, पी लूं। भोग ही लक्ष्य हो जाता है; योग बिल्कुल खो जाता है।
ध्यान रहे, योग का अर्थ ही है, दो मनकों को जोड़ देना। जब जीवन के सारे मनके जुड़ जाएं, तो आप योगी हैं। और जीवन के मनकों का ढेर लगा हो, कोई धागा न हो जोड़ने वाला, तो आप भोगी हैं।
भोगी और योगी दोनों के पास मनके तो बराबर होते हैं। लेकिन योगी ने एक संगति बना ली, योगी ने सब मनकों को जोड़ डाला। उसके सब अक्षर जीवन के एक संयुक्त काव्य बन गए, एक कविता बन गए। भोगी अक्षरों का ढेर लगाए बैठा है। उसके पास भाषाकोश है। सब अक्षरों का ढेर लगा हुआ है। लेकिन दो अक्षरों को उसने जोड़ा नहीं, इसलिए कोई कविता का जन्म नहीं हुआ है।
और जीवन के अंत में, वह जो हमने धागा निर्मित किया है, वही हमारे साथ जाएगा, मनके छूट जाते हैं। मनके सब यहीं रह जाते हैं।
इस प्रकार इस मिथ्या-ज्ञान को अवलंबन करके नष्ट हो गया है स्वभाव जिनका तथा मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे वे सबका अहित करने वाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत का नाश करने के लिए ही उत्पन्न होते हैं।
इस मिथ्या-ज्ञान का अवलंबन करके--कि भोग ही सब कुछ है, योग जैसा कुछ भी नहीं; साधना कुछ भी नहीं है, पहुंचना कहीं भी नहीं है; जीवन का कोई गंतव्य, लक्ष्य नहीं है; जीवन एक संयोग है, एक दुर्घटना है, जिसके पीछे कोई अर्थ पिरोया हुआ नहीं है; शब्दों की एक भीड़ है, कोई सुसंगत काव्य नहीं--ऐसा जिसका मिथ्या-ज्ञान है और इसका अवलंबन करके नष्ट हो गया स्वभाव जिसका... । इस तरह की धारणाओं में जो जीएगा, वह अपने स्वभाव को अपने हाथ से तोड़ रहा है, क्योंकि स्वभाव तो परम संगीत को उपलब्ध करने में ही छिपा है। स्वभाव तो परम नियति को प्रकट कर लेने में छिपा है। स्वभाव तो इस जगत का जो आत्यंतिक रहस्य है, उसके साथ एक हो जाने में छिपा है। मैं अपने स्वभाव को तभी उपलब्ध होऊंगा, जब मैं बिल्कुल शून्य होकर, शांत होकर इस जगत के पूरे अस्तित्व के साथ अपने को एक कर लूं।
स्वभाव यानी परमात्मा। स्वभाव मिथ्या धारणाओं में नष्ट हो जाएगा, खो जाएगा।
और मंद हो गई है बुद्धि जिसकी... ।
और इस तरह की बातें जिस पर बहुत प्रभाव करेंगी, उसकी बुद्धि धीरे-धीरे मंद हो जाएगी। मंद होने का यह मतलब नहीं है कि उसका तर्क क्षीण हो जाएगा।
अक्सर तो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति बड़ा तार्किक होता है, बड़ी प्रखर उसके पास तर्क की व्यवस्था होती है।
लेकिन फिर भी कृष्ण कहते हैं, मंद हो गई है बुद्धि जिसकी... ।
क्योंकि तर्क को हमने इस देश में कभी बुद्धि नहीं माना। तर्क को हमने बच्चों का खेल माना है। बुद्धि से तो हमारा प्रयोजन उस क्षमता से है, जो जीवन को आर-पार देख लेती है; जो जीवन के छिपे हुए रहस्य-परतों में उतर जाती है; जो जीवन के अंतःस्तल को स्पर्श कर लेती है, उसे हम बुद्धि कहते हैं। आधुनिक युग में जिसे हम बुद्धि कहते हैं, वह केवल तर्क की व्यवस्था है। अगर कोई व्यक्ति काफी तर्क कर सकता है, आर्ग्यू कर सकता है, विवाद कर सकता है, तो हम कहते हैं, बड़ा बुद्धिमान है।
तुर्गनेव ने एक छोटी कहानी लिखी है। उसने लिखा है, एक गांव में एक मूढ़ आदमी था, निपट गंवार था, और सारा गांव उस पर हंसता था। उस गांव में एक फकीर

का आगमन हुआ। तो उस मूढ़ आदमी ने फकीर से कहा कि मुझ पर सारा गांव हंसता है, लोग मुझे मूर्ख समझते हैं। मुझे कुछ रास्ता बताओ। थोड़ी बुद्धि मुझे दो। फकीर ने कहा, यह तो जरा कठिन काम है तुझे बुद्धि देना, लेकिन तुझे एक तरकीब बता देता हूं, जिससे तू बुद्धिमान हो जाएगा। उसने कहा, वही दे दो बस, और मुझे कुछ चाहिए नहीं। तो उस फकीर ने उसके कान में कुछ मंत्र दिया; और कहा, बस, तू इसका उपयोग कर।
एक सप्ताह के भीतर गांव में ही नहीं, गांव के आस-पास, दूर-दूर तक, राजधानी तक खबर पहुंच गई कि वह आदमी बड़ा बुद्धिमान है। फकीर ने उससे क्या कहा? फकीर ने उससे कहा कि एक छोटा-सा सूत्र याद रख! अगर कहीं कोई कह रहा हो कि बाइबिल महान पुस्तक है; तो तू कहना, कौन कहता है, बाइबिल महान पुस्तक है! दो कौड़ी की है, उसमें कुछ भी नहीं है। अगर कोई कहे, यह चित्र बड़ा सुंदर है; तो तू कहना, क्या है इसमें, रंगों का पोतना; सौंदर्य कहीं भी नहीं है। कहां है? दिखाओ मुझे सौंदर्य! जोर से कहना और इनकार करना, कोई कुछ भी कह रहा हो। वह हर चीज का खंडन करने लगा। और बड़ा मुश्किल है। आप कहें, यह चांद सुंदर है। मूढ़ आदमी भी खड़ा होकर कह दे कि सिद्ध करो! कैसे सिद्ध करिएगा कि चांद सुंदर है? क्या उपाय है? कोई उपाय नहीं है। अब तक दुनिया में कोई सिद्ध नहीं कर सका कि चांद सुंदर है। वह तो हम सुन लेते हैं चुपचाप, लोग कहते हैं। अगर आप न सुनें, बस कठिन हो गया काम।
उस आदमी ने सबको गलत सिद्ध करना शुरू कर दिया। क्योंकि जो भी कुछ कहे, ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नहीं थी, मंत्र सीधा था। सिर्फ इनकार करना है तुझे; और तू कुछ सिद्ध करने की फिक्र ही मत करना। जो दूसरा कह रहा हो, उसको भर कहना कि सिद्ध करो।
न सौंदर्य सिद्ध होता है, न सत्य सिद्ध होता है, न परमात्मा सिद्ध होता है, सिद्ध तो कुछ किया नहीं जा सकता। लेकिन लोग समझे कि यह आदमी महान विद्वान हो गया है। इसकी बुद्धि बड़ी प्रखर है।
हम इस युग में इसी तरह के बुद्धुओं को बुद्धिमान कहते हैं। कृष्ण उनको बुद्धिमान नहीं कहते। कृष्ण उसको बुद्धिमान कहते हैं, जिसने अपनी चेतना-ऊर्जा में, जीवन के परम रहस्य में प्रवेश का मार्ग खोज लिया है। जिसने अपनी चेतना को मार्ग बना लिया है, वही बुद्धिमान है।
मिथ्या धारणाओं का अवलंबन करके नष्ट हो गया स्वभाव जिनका, मंद है बुद्धि जिनकी, ऐसे व्यक्तियों को कृष्ण ने कहा कि वे आसुरी संपदा वाले हैं।
इसकी अपने भीतर तलाश करना। और जहां भी आसुरी संपदा का थोड़ा-सा भी झुकाव मिले, उसे उखाड़कर फेंक देना।
मजे की बात यह है कि जैसे कोई लान लगाए, दूब लगाए घर में, तो उसमें व्यर्थ का कूड़ा-कचरा भी पैदा होना शुरू होता है। उसे उखाड़-उखाड़कर फेंकना पड़ता है। मजे की बात यह है कि दूब लगाते हैं आप, कूड़ा-कचरा अपने आप आता है। और अगर दूब को आप न बचाएं, तो वह मर जाएगी। और अगर कूड़े-कचरे को न फेंकें, तो वह बिना मेहनत किए बढ़ता जाएगा। धीरे-धीरे वह सारी दूब पर छा जाएगा, दूब को खा जाएगा। कूड़ा-कचरा ही रह जाएगा।
आसुरी संपदा बड़ी सरलता से बढ़ती है। बढ़ने का कारण है। जैसे पानी नीचे
की तरफ बहता है। ऊपर चढ़ाना हो, तो पंप करने की व्यवस्था बिठानी पड़ती है, मेहनत करनी पड़ती है। नीचे अपने आप जाता है।
वह जो आसुरी संपदा है, नीचे की तरफ उतरना है। उसमें चढ़ाव नहीं है, इसलिए श्रम नहीं पड़ता। हम सब उसमें ढलकते हैं अपने आप। और जब तक हम सचेत न हों, तब तक रुकना बहुत मुश्किल है। सचेत हों।
तो ध्यान रखना, जब भी नीचे उतरने का मन हो, तब अपने को रोकना। चाहे श्रम भी पड़े, तो भी दैवी संपदा की तरफ कदम रखना। वह पहाड़ की चढ़ाई है। पसीना उसमें आएगा, थकान भी होगी। लेकिन उसके मधुर फल हैं। और उसका अंतिम फल मोक्ष की मधुरता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
पांचवां प्रवचन

शोषण या साधना

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।। 10।।
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।। 11।।
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।। 12।।
और वे मनुष्य दंभ, मान और मद से युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर तथा मोह से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में बर्तते हैं।
तथा वे मरणपर्यंत रहने वाली अनंत चिंताओं को आश्रय किए हुए और विषय-भोगों को भोगने के लिए तत्पर हुए, इतना मात्र ही आनंद है, ऐसा मानने वाले हैं।
इसलिए आशारूप सैकड़ों फांसियों से बंधे हुए और काम-क्रोध के परायण हुए विषय-भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत-से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल के सूत्र में कहा गया कि आसुरी संपदा वाले कहते हैं
कि जगत आश्चर्यरहित है और सर्वथा झूठा है। विज्ञान यह अवश्य सोचता था कि जगत में कुछ रहस्य नहीं है, लेकिन यह तो वह नहीं कहता कि जगत झूठा है। इसे समझाएं।

आसुरी संपदा वाले लोग जगत को रहस्यशून्य और झूठा मानते हैं, ऐसा कहने
का कृष्ण का प्रयोजन काफी गहरे से समझेंगे, तो ही समझ में आ सकेगा। साधारणतः तो धार्मिक, दैवी संपदा वाले पुरुष जगत को माया कहते हैं, जगत को झूठा कहते हैं। इसलिए बात थोड़ी उलझी हुई है। लेकिन दोनों के प्रयोजन अलग हैं।
शंकर या दूसरे अद्वैतवादी जब जगत को माया या असत्य कहते हैं, तो उनका प्रयोजन केवल इतना ही है कि इस जगत से भी सत्यतर कुछ और है। यह एक सापेक्ष वक्तव्य है। यह जगत ही सत्य नहीं है, इस जगत से ज्यादा सत्यतर कुछ और है। और उस सत्यतर की खोज की तरफ हम अग्रसर हो सकें, इसलिए वे इस जगत को झूठा कहते हैं। इस जगत को झूठा सिद्ध करने का इतना ही प्रयोजन है, ताकि हम इसी को सत्य मानकर इसी की खोज में न उलझ जाएं। सत्य कहीं और छिपा है। और इसे हम असत्य समझेंगे, तो ही उस सत्य की खोज में जा सकेंगे।
लेकिन कृष्ण यहां कह रहे हैं कि आसुरी संपदा वाले लोग इस जगत को झूठा कहते हैं। इस वक्तव्य का प्रयोजन बिल्कुल दूसरा है। आसुरी संपदा वाले लोग इस जगत को झूठा इसलिए नहीं कहते कि कोई और जगत है, जो सत्य है। वे कहते हैं, सत्य है ही नहीं। इसलिए जो भी है, वह झूठ है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। शंकर कहते हैं, यह जगत मिथ्या है, असत्य है, माया है। क्योंकि सत्य कहीं और है और उस सत्य की तुलना में यह झूठा है। आसुरी संपदा वाले लोग कहते हैं, यह संसार झूठा है, क्योंकि सत्य कुछ है ही नहीं। यह किसी तुलना में असत्य नहीं है, क्योंकि सत्य है ही नहीं है, इसलिए जो भी है, वह असत्य है। उनका ऐसा मानने और कहने का प्रयोजन समझने जैसा है।
जगत को असत्य अगर कह दिया जाए, और कोई सत्य हो न, तो फिर जीवन में कोई मूल्य, जीवन में कोई लक्ष्य, कोई गंतव्य नहीं रह जाता; फिर बुरे और भले का कोई भेद नहीं रह जाता।
आप स्वप्न में देखें कि आप साधु हैं या स्वप्न में देखें कि असाधु हैं, क्या फर्क पड़ता है! दोनों ही स्वप्न हैं। स्वप्न में किसी की हत्या

करें या स्वप्न में किसी को बचाएं, क्या फर्क पड़ता है! दोनों ही स्वप्न हैं। दो स्वप्नों के बीच कोई मूल्य का भेद नहीं हो सकता। सत्य और स्वप्न के बीच मूल्य का भेद हो सकता है। लेकिन अगर दोनों ही स्वप्न हैं, तो फिर कोई भी भेद नहीं।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति मानता है, यह सब असत्य है। सब असत्य का उसके कहने का प्रयोजन इतना ही है कि यह जगत एक संयोग है। यह जगत एक रचना- प्रक्रिया नहीं है। इस जगत के पीछे कोई प्रयोजन अंतर्निहित नहीं है। यह जगत कहीं जा नहीं रहा है। इस जगत की कोई मंजिल नहीं है। हम सिर्फ दुर्घटनाएं हैं। न कुछ पाने को है यहां, न कुछ खोने को है। हमारे होने का कोई मूल्य नहीं है। हमारा होना मीनिंगलेस है, सर्वथा मूल्यरहित है।
अगर जगत में थोड़ा भी सत्य है, तो मूल्य पैदा हो जाएगा; तब चुनाव करना होगा, असत्य को छोड़ना होगा, सत्य को पाना होगा। फिर असत्य और सत्य के बीच हमें यात्रा करनी पड़ेगी; साधना-पथ निर्मित होगा। लेकिन अगर सभी कुछ असत्य है; कुछ पाने योग्य नहीं, कुछ खोने योग्य नहीं; बुरा आदमी भी, भला आदमी भी, असाधु, साधु, संत, अज्ञानी या ज्ञानी सब बराबर हैं--फिर कोई भेद नहीं है। और अगर बुरे और भले का भेद मिट जाए, तो आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को जो सुख मिलता है, वह किसी और तरह से नहीं मिलता। क्योंकि आसुरी संपदा वाले व्यक्ति की यही पीड़ा है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं जो कर रहा हूं, वह गलत हो। कहीं ऐसा न हो कि जिस धारा के मैं विपरीत चल रहा हूं, उस धारा में ही सत्य छिपा हो! कहीं ऐसा न हो कि प्रार्थना में, पूजा में, परमात्मा में कोई सत्य छिपा हो! मैं जैसा जीवन को चला रहा हूं, यह अगर असत्य है, तो फिर मैं कुछ खो रहा हूं।
लेकिन अगर सभी कुछ असत्य है, तो फिर खोने-पाने का कोई सवाल नहीं है। तब महावीर कुछ पा नहीं रहे हैं, बुद्ध को कुछ मिल नहीं रहा है, वे भी भ्रम में हैं। जो धन कमाकर इकट्ठा कर रहा है, वह भी भ्रम में है। वह जो स्त्रियों के पीछे दौड़ रहा है, वह भी भ्रम में है। जो परमात्मा के पीछे दौड़ रहा है, वह भी भ्रम में है।
आसुरी संपदा वाला यह कहता है कि जो भी यहां मंजिल खोज रहा है, जो भी यहां जीवन में निहित किसी प्रयोजन की तलाश कर रहा है, जो भी सोचता है कि यहां कोई सत्य मिल जाएगा, अमृत मिल जाएगा, जीवन मिल जाएगा, कोई परम उपलब्धि होगी, कोई मोक्ष मिल जाएगा, वह भ्रांति में है। यह पूरा जगत असत्य है। यहां कुछ पाने जैसा नहीं है।
एक बार यह साफ हो जाए कि सभी कुछ असत्य है, तो जीवन में साधना का कोई अर्थ नहीं रह जाता। साधना में अर्थ आता है तभी, जब जीवन में कुछ चुनने को हो। कुछ गलत हो, जो छोड़ा जा सके; कुछ सही हो, जो पकड़ा जा सके। कोई दिशा भ्रांत हो, जिस तरफ पीठ की जा सके; कोई दिशा सही हो, जिस तरफ मुख किया जा सके। कहीं पहुंचने की कोई मंजिल हो, कोई गंतव्य हो, कोई तारा हो--कितने ही दूर--लेकिन जिस तरफ हम चल सकें।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति कहता है, यहां चलने का कोई उपाय नहीं है। तुम यहां हो एक दुर्घटना की तरह। यह एक आकस्मिक घटना है। जगत को न कोई चला रहा है, न कोई जगत को सोच रहा है, न जगत के पीछे कोई चेतना है। जगत एक सांयोगिक घटना है। सांयोगिक घटना का अर्थ यह होता है कि इसमें कुछ भी प्रयोजन खोजना व्यर्थ है। प्रयोजन नहीं है, अर्थ नहीं है, कोई मूल्य नहीं है, इस बात की घोषणा करने के लिए आसुरी संपदा वाला व्यक्ति कहता है, जगत झूठा है।
दैवी संपदा वाला व्यक्ति भी जगत को मिथ्या कहता है। यहां यह बात ख्याल में लेनी जरूरी है कि कभी-कभी हमारे एक से वक्तव्य भी बड़े भिन्न अर्थ रखते हैं। वक्तव्य का बहुत कम मूल्य है। वक्तव्य कौन देता है, इसी का मूल्य ज्यादा है। वही वक्तव्य राम के मुंह से अलग अर्थ रखेगा; वही वक्तव्य रावण के मुंह से अलग अर्थ रखेगा। वक्तव्य बिल्कुल एक जैसे हो सकते हैं, लेकिन वक्तव्य के पीछे नजर क्या है?
अगर राम कहते हैं, जगत मिथ्या है, तो इसका अर्थ यह है कि इस पर रुको मत; सत्य कहीं और है, उसे खोजो। रावण अगर कहे, जगत मिथ्या है, तो वह यह कहता है कि कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं, सत्य है ही नहीं, इसलिए यहां जो मिला है,

उसे भोग लो। यह क्षणभर का भोग है, न इसके पीछे कुछ है, न इसके आगे कुछ है। और परिणाम की बिल्कुल चिंता मत करो। क्योंकि परिणाम केवल सत्य जगत में ही घटित हो सकते हैं; असत्य जगत में कोई परिणाम घटित नहीं होते।
मैंने सुना है, एक आदमी ने रात स्वप्न देखा। फिर सुबह वह जब बाजार की तरफ चला, तो बड़ा उदास था। किसी मित्र ने उसे पूछा कि इतने उदास हो, बात क्या है? उसने कहा, मैंने एक स्वप्न देखा है। और स्वप्न में मैंने देखा कि मुझे बीस हजार रुपए पड़े हुए रास्ते पर मिल गए हैं। तो मित्र ने कहा, इसमें भी उदास होने की क्या बात है! यह तो सपना है। सपने के रुपयों की क्या चिंता करनी, क्या उदासी! उस आदमी ने कहा, उससे मैं परेशान नहीं हूं। मैंने यह पत्नी को बता दिया और वह सुबह से ही रो-पीट रही है। वह कहती है, उसी वक्त बैंक में जमा क्यों न कर दिए?
स्वप्न में भी मोह तो हमारा पकड़ता है। वह जो झूठ है, उसमें भी आसक्ति बनती है। वह जो नहीं है, उसको भी हम सम्हाल लेना चाहते हैं।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति यह कह रहा है कि ये स्वप्न में जो रुपए मिले हैं, इनको जमा कर ही देना। क्योंकि ये रुपए भी झूठ हैं, जमा करना भी झूठ है, बैंक भी झूठ है, जमा करने वाला भी झूठ है। स्वप्न ही झूठ नहीं है, जिसने स्वप्न देखा, वह भी झूठ है। जमा करने का मजा ले लेना। यद्यपि वह झूठ है; लेकिन नहीं जमा कर पाए, उसका दुख लेने की बजाय बेहतर है। दोनों झूठ हैं। यहां सुख भी झूठ है, दुख भी झूठ है। इसलिए क्षणभर की बात है; जो रुचिकर लगे, वह कर लेना।
इस भेद को ख्याल में ले लें।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति कहता है, जो सुखपूर्ण मालूम पड़े, वह कर लेना, झूठ तो सभी कुछ है। दैवी संपदा वाला व्यक्ति कहता है कि सुख-दुख की फिक्र मत करना; जो सत्य हो, उसकी फिक्र करना; जो असत्य हो, उसको छोड़ना। दैवी संपदा वाले के लिए सत्य कसौटी है। आसुरी संपदा वाले के लिए सुख कसौटी है। झूठ तो सभी है, इसलिए यह तो कोई उपाय ही नहीं है इसमें तौलने का कि कौन सा सच है, कौन सा झूठ है। एक ही उपाय है कि जिससे सुख मिलता हो। नास्तिकों ने सदा एक दलील दी है, आस्तिक भी उस दलील का उपयोग करते हैं;
पर दोनों के प्रयोजन बड़े भिन्न हैं। आस्तिक कहता है, यह कहां तुम दौड़ रहे हो स्त्री के पीछे, धन के पीछे, पद-प्रतिष्ठा के पीछे; ये सब झूठ हैं। नास्तिक भी कहता है कि ये सब झूठ हैं। लेकिन कहीं और दौड़ने को कोई जगह भी नहीं है। इस झूठ को भी छोड़ दें, तो कोई सत्य तो है नहीं, जिसको हम पकड़ लें। झूठ को हम खो सकते हैं, लेकिन सत्य को पा नहीं सकते--नास्तिक की दृष्टि में।
इसलिए खोने का भी क्या अर्थ है? सपना भी अगर मधुर देखा जा सकता है, तो देख लेना चाहिए। सिर्फ सपना होने से ही छोड़ने योग्य नहीं है। क्योंकि सत्य अगर कहीं होता, तो हम सपने को छोड़ भी देते। लेकिन सत्य कहीं है ही नहीं। इसलिए दो तरह के सपने हैं, सुखद और दुखद। जो सुखद सपनों को खोज लेता है, वह होशियार है। जो दुखद सपनों में पड़ा रहता है, वह नासमझ है। और सपने के अतिरिक्त कोई सत्य नहीं है। यह आसुरी संपदा वाले की वृत्ति है।
विज्ञान निश्चित ही आसुरी संपदा वाले से राजी है। दोनों कारणों से राजी है। एक तो इस कारण राजी है कि जगत में कोई रहस्य नहीं है; जगत में कोई छिपा हुआ राज नहीं है। जगत एक खुली किताब है। और अगर हम न पढ़ पाते हों, तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि हमें पढ़ने की कुशलता और बढ़ानी चाहिए। विज्ञान जगत को दो हिस्सों में तोड़ता है, नोन और अननोन, ज्ञात और अज्ञात। वह जो अज्ञात है, वह कल ज्ञात हो जाएगा; जो आज ज्ञात है, वह भी कल अज्ञात था। एक दिन ऐसा आएगा, जब सब ज्ञात हो जाएगा; अज्ञात की कोटि नष्ट हो जाएगी।
धर्म जगत को तीन हिस्सों में तोड़ता है, ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय--नोन, अननोन और अननोएबल। वह जो अननोएबल है, अज्ञेय है, वह धर्म की विशिष्ट कोटि है। अज्ञात ज्ञात हो जाएगा; ज्ञात फिर अज्ञात हो सकता है। क्योंकि बहुत-से सत्य आदमी को ज्ञात हो गए, फिर खो गए।
अभी काबुल के करीब कोई पंद्रह वर्ष पहले एक छोटा-सा यंत्र मिला। समझना ही मुश्किल हुआ कि वह यंत्र क्या है। बहुत खोजबीन करने पर पता चला

कि वह विद्युत पैदा करने की बैटरी है, और कोई पांच हजार वर्ष पुराना है। पांच हजार वर्ष पहले विद्युत पैदा करने का उपाय किन्हीं ने खोज लिया था; वह ज्ञात हो गया था; फिर वह खो गया।
कुछ तीस वर्ष पहले पेरिस की एक लाइब्रेरी में सात सौ वर्ष पुराने पृथ्वी के नक्शे मिले। उन नक्शों में पृथ्वी गोल बताई गई है, और उन नक्शों में अमेरिका भी अंकित है। तो यह ख्याल गलत है कि कोलंबस ने अमेरिका खोजा। कोलंबस से बहुत साल पहले अमेरिका नक्शे पर अंकित है।
न केवल यही, बल्कि वह जो नक्शा मिला है सात सौ वर्ष पुराना, वह और भी अनूठा है। वह ऐसा है कि बिना हवाई जहाज के वह बन ही नहीं सकता। जब तक बहुत ऊंचाई से पृथ्वी न देखी जाए, तब तक पृथ्वी का वैसा नक्शा बनाने का कोई उपाय ही नहीं है।
तो न केवल वह नक्शा सिद्ध करता है कि अमेरिका पहले खोजा जा चुका था, फिर खो गया; वह यह भी सिद्ध करता है कि मनुष्य के पास वायुयान थे। तभी वह नक्शा बन सकता है। उसके बनने का कोई और रास्ता ही नहीं है। और वह नक्शा नब्बे प्रतिशत वैसा ही है, जैसा हम आज बनाते हैं। उसमें जरा-सा ही भेद है। तो पहले तो यह ख्याल था कि भेद भूल-चूक की वजह से हो गए होंगे। कुछ वैज्ञानिकों की धारणा है कि हो सकता है कि पृथ्वी में, जब वह नक्शा बनाया गया--क्योंकि सात सौ साल पहले जिसने बनाया, उसने उस पर नोट लिखा है कि वह किसी पुराने नक्शे की नकल कर रहा है--तो इस बात की संभावना ज्यादा है कि पृथ्वी में फर्क हो गए हैं, जब वह नक्शा बना होगा। इसलिए थोड़े से भेद हैं। लेकिन इतना तो बिल्कुल ही स्पष्ट है कि वह बिना हवाई जहाज के, पृथ्वी का चक्कर न लगाया गया हो, तो उस नक्शे को बनाया ही नहीं जा सकता।
हिंदू तो बहुत समय से सोचते रहे हैं कि उनके पास पुष्पक विमान थे। और दुनिया की हर जाति के पास आकाश में उड़ने की कथाएं हैं।
जो ज्ञात है, वह अज्ञात हो जाता है; जो अज्ञात है, वह ज्ञात होता रहता है। दिन और रात की तरह यह बदलाहट नोन और अननोन में होती रहती है। लेकिन धर्म कहता है, एक और चीज है, जो दोनों के पार है, वह अज्ञेय है। वह कभी ज्ञात भी नहीं होता, कभी अज्ञात भी नहीं होता।
हम परमात्मा को वही तत्व कहते हैं। वह सदा अज्ञेय ही बना रहता है। हम उसे जान भी लेते हैं, तब भी हम उसे पूरा जान नहीं पाते। और जो उसे जान लेता है, वह दावा नहीं कर पाता कि मैंने जान लिया। क्योंकि उसके जानने की एक अनिवार्य शर्त है कि जानने वाला उसे जानने में ही खो जाता है। इसलिए दावा करने को कोई पीछे बचता नहीं।
उपनिषदों ने कहा है, जो कहे कि मैं जानता हूं, जानना कि उसे अभी कुछ पता नहीं। जानने वाले की शर्त ही यही है कि वह कह नहीं सकेगा कि मैं जानता हूं। क्योंकि वहां कोई मैं नहीं बचता।
कबीर ने कहा है कि मैं खोजता था; और बहुत खोजा और तू न मिला। और जब तू मिला तब बड़ी अड़चन हुई, क्योंकि तब तक मैं खो चुका था।
अगर ठीक से समझें, तो मनुष्य और परमात्मा का मिलन कभी भी नहीं होता। क्योंकि जब तक मनुष्य होता है, तब तक परमात्मा से मिलना नहीं हो पाता। और जब परमात्मा प्रकट होता है, तब तक मनुष्य पिघलकर उसमें लीन हो गया होता है। इसलिए मिलन की घटना नहीं घटती दो के बीच। या तो मनुष्य होता है, या परमात्मा होता है।
एक अमेरिकी विचारक एलन वाट एक झेन फकीर के पास साधना कर रहा था। उस झेन फकीर ने एलन वाट को पूछा कि तुम क्या खोज रहे हो? ध्यान तुम कर रहे हो किस लिए? तो एलन वाट ने कहा कि परमात्मा की तलाश के लिए। तो वह झेन फकीर हंसने लगा। उसने कहा कि तुम बड़े अजीब काम में लगे हो। यह काम पूरा हो नहीं पाएगा।
एलन वाट हैरान हुआ। उसने कहा कि हम तो सोचते थे कि पूरब के लोग मानते हैं कि यही काम करने योग्य है। और तुम यह क्या कह रहे हो! उसने कहा कि यह नहीं होगा; या तो तुम न बचोगे या परमात्मा न बचेगा। मगर मिलन नहीं हो सकता। या तो तुम खो जाओगे, तो परमात्मा बचेगा; या परमात्मा खो जाएगा, तो तुम बचोगे।

जो उसे जानते हैं, वे जानने में ही शून्य हो जाते हैं। जितना जानते हैं, उतने ही शून्य हो जाते हैं। इसलिए दावा करने को कोई बचता नहीं। इसलिए वह तत्व सदा ही अज्ञेय बना रहता है, अननोएबल बना रहता है। जाना भी जाता है, फिर भी जाना नहीं जाता। जान भी लिया जाता है, फिर भी ज्ञान का हिस्सा नहीं बनता, जानकारी नहीं बन पाती।
इसीलिए तो हम विज्ञान की शिक्षा दे सकते हैं, लेकिन धर्म की कोई शिक्षा नहीं दे सकते।
एडिसन एक सत्य को जान लेता है, या न्यूटन एक सत्य को जान लेता है, या आइंस्टीन एक थिअरी खोज लेता है, एक सिद्धांत खोज लेता है, फिर हर एक को खोजने की जरूरत नहीं है। एक दफा एक आदमी ने खोज लिया, फिर वह किताब में लिख गया, फिर उसे बच्चे पढ़ते रहेंगे। जिस काम को करने में आइंस्टीन को वर्षों लगेंगे, उसे कोई भी व्यक्ति दो घंटे में समझ लेगा, घंटे में समझ लेगा। फिर साधारण बच्चे, जिनमें बुद्धि नहीं है, वे भी उसे समझ लेंगे और परीक्षा देकर उत्तीर्ण होते रहेंगे। फिर दुबारा उसे खोजने की जरूरत नहीं। एक दफा विज्ञान जो जान लेता है, वह ज्ञान का हिस्सा हो जाता है।
लेकिन धर्म के मामले में बड़ी अजीब बात है। हजारों लोगों ने परमात्मा
को जाना, फिर भी हम किताब में लिखकर उसको दूसरे को नहीं जना सकते। कृष्ण ने जाना होगा, बुद्ध ने जाना होगा, क्राइस्ट ने जाना होगा, मोहम्मद ने जाना होगा। लेकिन फिर उस जानने से कोई फर्क नहीं पड़ता। आप सिर्फ पढ़कर नहीं जान सकते। आपको भी जानना है, तो उसी जगह से गुजरना होगा, जहां से कृष्ण गुजरते हैं। और जब तक आप कृष्ण जैसे न हो जाएं, कृष्ण-चैतन्य का जन्म न हो आपके भीतर, तब तक आप न जान सकेंगे।
आइंस्टीन की थिअरी आफ रिलेटिविटी समझने के लिए आइंस्टीन होना जरूरी नहीं है, न आइंस्टीन की बुद्धि चाहिए। कोई आवश्यकता नहीं है। एक दफा सिद्धांत जान लिया गया, वह ज्ञान का हिस्सा हो गया। लेकिन धर्म के सत्य जाने भी जाते हैं, तो भी कभी ज्ञान के हिस्से नहीं होते। वे सदा ही अज्ञेय बने रहते हैं।
इसलिए विज्ञान आसुरी संपदा वाले व्यक्ति से राजी है। या हम ऐसा कह सकते हैं कि अभी जो विज्ञान है, वह आसुरी संपदा के ही वर्तुल में काम कर रहा है। मनुष्य अगर और विकसित होगा, तो हम दैवी संपदा वाले विज्ञान को भी विकसित करेंगे। तब विज्ञान एक नए आयाम में गति करेगा।
और दूसरी बात में भी विज्ञान राजी है आसुरी संपदा वाले व्यक्ति से। क्योंकि विज्ञान भी मानता है कि जगत में कोई प्रयोजन नहीं है, कोई परपज नहीं है। यह सिर्फ घटनाओं का जोड़ है। इसलिए यहां प्रार्थना-पूजा व्यर्थ है। यहां ध्यान करने से कुछ भी न होगा। यहां प्रार्थना किससे करिएगा? यहां कोई है नहीं, जो प्रार्थना सुनेगा। और मनुष्य केवल संघात है, कुछ वस्तुओं का जोड़ है। अगर उन वस्तुओं को हम अलग कर लें, तो पीछे कोई आत्मा बचेगी नहीं।
विज्ञान जैसा आज तक विकसित हुआ है, वह आसुरी संपदा के अंतर्गत ही विकसित हुआ है। भविष्य में द्वार खुल सकता है; दैवी संपदा का विज्ञान भी विकसित हो सकता है। या आप ऐसा समझ सकते हैं कि आसुरी संपदा की जो विद्या है, उसका नाम विज्ञान है। और दैवी संपदा की जो विद्या है, उसका नाम धर्म है।
धर्म विज्ञान है अंतर्जगत का, उस रहस्य लोक का, जिसे प्रयोगशाला में नहीं परखा जा सकता, जिसे हम अपने ही भीतर खोज सकते हैं। वह भीतर की डुबकी है।
विज्ञान पदार्थों की खोज है और धर्म परमात्मा की खोज है।

दूसरा प्रश्नः प्रज्ञावान पुरुष को हमारे जीवन का जो आसुरीपन दिखाई देता है, वह हमें भी दिखे, इसके लिए हम क्या करें?

प्रश्न महत्वपूर्ण है; सभी के काम का है। जिन्हें भी जीवन में थोड़ा- बहुत रूपांतरण करना हो, उन्हें इस पर काफी सोच-विचार करना होगा।

प्रज्ञावान पुरुष को हमारे जीवन का आसुरीपन दिखाई पड़ता है, हमें भी दिखाई पड़े, इसके लिए हम क्या करें?
पहला काम तो यह है कि प्रज्ञावान पुरुष का सान्निध्य खोजें। शास्त्र काफी नहीं है, क्योंकि शास्त्र मुर्दा है। शास्त्र बहुमूल्य है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। और शास्त्र में आप वही पढ़ लेंगे, जो आप पढ़ सकते हैं। शास्त्र को आप धोखा दे सकते हैं, शास्त्र आपको रोक नहीं सकता। शास्त्र की आप व्याख्या कर सकते हैं, वह व्याख्या आपकी अपनी होगी। शास्त्र यह नहीं कह सकता कि यह व्याख्या गलत है। और अर्थ और व्याख्या तो आप करेंगे। तो शास्त्र तो आपके हाथ में आप ही जैसा हो जाता है। कितना ही कीमती शास्त्र हो, पढ़ने वाले के हाथ में पड़ते ही पढ़ने वाले के ढंग का हो जाता है।
आप बाइबिल पढ़ेंगे, तो बाइबिल में जो अर्थ निकलेगा, वह आपकी ही मनोदशा
का होगा। गीता पढ़ेंगे, जो अर्थ निकलेगा, वह अर्थ आपका होगा, कृष्ण का नहीं हो सकता। तो शास्त्र में कितना ही छिपा हो, वह आपको प्रकट नहीं होगा। प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि खोजें। इसलिए गुरु का इस पूर्वीय परंपरा में इतना मूल्यवान स्थान रहा है। उसका केवल इतना अर्थ है कि आप जीवंत सत्य को खोजें। क्योंकि उसे आप धोखा न दे सकेंगे, और उसकी आप व्याख्या अपने हिसाब से न कर सकेंगे। वह आपको रोक सकेगा। जहां भूल होगी, वहां चेता सकेगा।
प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि का नाम ही सत्संग है। उसका केवल इतना अर्थ है कि जो जानता है, उसके पास होना। क्योंकि बहुत-सी चीजें हैं, जो केवल संक्रमण से ही अनुभव में आती हैं, उन्हें कोई दे भी नहीं सकता। वे कोई भौतिक वस्तुएं नहीं कि उठाकर कोई आपको दे दे। चुपचाप पास होने पर धीरे- धीरे उनका संक्रमण होता है।
तो पहली बात तो आपको भी कैसे आसुरीपन दिखाई पड़े, उसके लिए जरूरी है कि
आप सन्निधि खोजें प्रज्ञावान पुरुष की, तो धीरे-धीरे उसकी आंखों से आपको भी देखने का मौका मिलेगा। उसके साथ उठते-बैठते, चलते-फिरते आपको एक नए जीवन की प्रतीति होनी शुरू होगी। तभी तुलना पैदा होती है। नहीं तो तुलना भी कैसे पैदा हो! आप जहां जी रहे हैं, जिनके बीच जी रहे हैं, जिनके साथ जी रहे हैं, वे सब एक से हैं। इसलिए पहचानना बहुत मुश्किल है।
एक पागलखाने में सभी पागल हैं, वहां कोई पागल यह कभी भी नहीं समझ सकता
कि मैं पागल हूं। वहां सारे पागल उसके ही जैसे हैं। अगर एक पागलखाने में ठीक आदमी पहुंच जाए, तो उस ठीक आदमी को लगेगा कि मुझे कुछ गड़बड़ हो गई है, क्योंकि भीड़ और बहुमत पागलों का होगा।
ऐसा अक्सर हुआ है। इसलिए हमने बुद्ध को, क्राइस्ट को, सुकरात को पागल कहा है। वह हमारे पागलों की भीड़ में एक आदमी अगर ठीक हो जाए, तो हमें उस पर शक आता है बजाय हम पर शक आने के। हम काफी हैं; हमारी संख्या बड़ी है। और संख्या हमें बड़ी सत्य मालूम पड़ती है। हम सभी चीजों को संख्या से तौलते हैं। करोड़-करोड़ लोग जिस बात को मानते हैं, वही हमें ठीक मालूम पड़ती है। तो हमने जीसस को सूली पर लटका दिया, सुकरात को जहर दिया, यही सोचकर कि ये पागल हो गए हैं, विक्षिप्त हो गए हैं।
इस भीड़ में आपको पहचान ही नहीं हो पाएगी, क्योंकि तुलना कैसे पैदा हो! कहते हैं, ऊंट जब तक पहाड़ के नीचे न जाए, तब तक उसे पता ही नहीं चलता कि मुझसे ऊंचा भी कुछ है; तब तक ऊंट पहाड़ है।
आप जब तक अपने से बिल्कुल भिन्न जीवन चेतना के करीब न जाएं, तब तक आपको अपना आसुरीपन दिखाई पड़ेगा नहीं। उसके पास जाते ही आपको झलक होनी शुरू हो जाएगी, क्योंकि विपरीत पृष्ठभूमि में आप दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे।
तो प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि खोजें।
दूसरी बात, प्रज्ञावान पुरुषों ने जो-जो कहा है--गीता है, उपनिषद हैं, लाओत्से का ताओ तेह किंग है, महावीर के वचन हैं, बुद्ध का धम्मपद है, और हजारों-हजारों वक्तव्य हैं सारी जमीन पर फैले हुए--प्रज्ञावान पुरुषों ने जो कहा है, उस पर तर्क मत करें, उस पर प्रयोग करें। वही तर्क है। उस पर सोच-विचार मत करें, क्योंकि सोच-विचार करने का कोई उपाय नहीं है। जिस बात की आपको कोई प्रतीति नहीं है, आप सोच-विचार भी कैसे करिएगा? उस पर प्रयोग करें, और प्रयोग करके देखें।

प्रयोग ही तर्क है। क्योंकि प्रयोग से आपको लगेगा कि वे ठीक कह रहे हैं। उसका स्वाद आएगा, तो ही लगेगा कि वे ठीक कह रहे हैं। और जब तक आपको आपसे अन्यथा कोई चीज ठीक न लगने लगे, तब तक आप अपने को गलत न मान पाएंगे। गलत के लिए तुलना चाहिए।
सुना है मैंने कि अकबर के समय में एक धार्मिक व्यक्ति तीर्थयात्रा पर गया। उन दिनों बड़े खतरे के दिन थे। संपत्ति को पीछे छोड़ जाना और अकेला ही आदमी था, बच्चे-पत्नी भी नहीं थे, काफी संपदा थी। तो एक मित्र के पास रख गया, जिस पर भरोसा था। और कहा कि अगर जीवित लौट आया, तो मुझे लौटा देना; अगर जीवित न लौटूं, तो इसका जो भी सदुपयोग बन सके कर लेना। यात्रा कठिन भी थी पुराने दिनों में, तीर्थ से बहुत लोग नहीं भी लौट पाते थे।
वह लंबी मानसरोवर तक की यात्रा पर गया था। पर भाग्य से जीवित वापस लौट आया। मित्र ने तो मान ही लिया था कि लौटेगा नहीं। लेकिन जब वह लौट आया, तो अड़चन हुई। संपत्ति काफी थी और देना मित्र को भी मुश्किल हुआ। मित्र नट गया। उसने कहा कि रख ही नहीं गए! कैसी बातें करते हो? तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया?
कोई गवाह भी नहीं था। वह बात अकबर की अदालत तक पहुंची। एक भी गवाह नहीं, उपाय भी नहीं कोई। यह आदमी कहता है, रख गया। और दूसरा आदमी कहता है, नहीं रख गया। अब कैसे निर्णय हो?
अकबर ने बीरबल से सलाह ली। बीरबल ने, जो आदमी रुपए रख गया था, उससे कहा
कि कोई भी तो गवाह हो! उसने कहा, गवाह तो कोई भी नहीं है; सिर्फ जिस वृक्ष के नीचे बैठकर मैंने इसे संपत्ति दी थी, वह वृक्ष ही गवाह है। बीरबल ने कहा, तब काम चल जाएगा। तुम जाओ, वृक्ष को कहो कि बुलाया है अदालत ने।
लगा तो उस आदमी को कि यह पागलपन का मामला है, लेकिन कोई और उपाय भी नहीं है। सोचा, पता नहीं इसमें कुछ राज हो। उसने कहा, मैं जाता हूं प्रार्थना करूंगा।
वह आदमी गया। दूसरा, जिसके पास रुपए जमा थे, वह बैठा रहा, बैठा रहा। बड़ी देर हो गई। तो बीरबल ने कहा, बड़ी देर हो गई, यह आदमी लौटा क्यों नहीं! तो उस आदमी ने कहा कि जनाब, वह वृक्ष बहुत दूर है। तो बीरबल ने कहा, मामला हल हो गया। तुमने रुपए लिए हैं, अन्यथा तुम्हें उस वृक्ष का पता कैसे चला कि वह कितने दूर है!
हमारे भीतर भी हमें पता चलने के लिए कुछ संकेत चाहिए, परोक्ष। प्रत्यक्ष तो कोई उपाय नहीं है। प्रत्यक्ष तो आप जैसे हैं, उससे भिन्न होने का कोई उपाय नहीं है। परोक्ष कोई उपाय चाहिए।
प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि में आपको परोक्ष झलकें मिलना शुरू होंगी और लगेगा कि आप गलत हैं। क्योंकि जैसे ही आपको लगेगा कि प्रज्ञावान पुरुष सही है, वैसे ही आपको लगेगा कि मैं गलत हूं।
और यहां एक बड़ी महत्वपूर्ण बात समझ लेनी जरूरी है। अगर आप बहुत चालाक हैं, तो आप प्रज्ञावान पुरुष के पास भी बैठकर यही सोचते रहेंगे कि वह गलत है। क्योंकि अपने को बचाने का वही एक उपाय है, और कोई उपाय नहीं है।
इसलिए लोग गुरुओं के पास भी जाते हैं और गुरुओं की गलती देखकर वापस लौट आते हैं। उन्होंने अपनी सुरक्षा कर ली। क्योंकि दो ही रास्ते थे। अगर गुरु ठीक था, तो उनको गलत होना पड़ता। और अगर उनको ठीक ही बने रहना है जैसे वे हैं, तो गुरु को गलत सिद्ध कर लेना जरूरी है।
लेकिन गुरु को गलत सिद्ध करने से गुरु का तो कुछ भी खोता नहीं; आपको एक परोक्ष मौका मिला था--सोचने का, विमर्श का, तुलना का--वह खो गया।
अगर प्रज्ञावान जीवित पुरुष मिल सके, तो भाग्यशाली हैं। और प्रज्ञावान पुरुषों की कभी भी कमी नहीं है। अगर नहीं मिलता, तो आप आंख बंद किए हैं, इसलिए नहीं मिलता। अगर नहीं मिलता, तो आप कुछ चालाकी अपने साथ कर रहे हैं, कुछ धोखा कर रहे हैं, इसलिए नहीं मिलता। अन्यथा प्रज्ञावान पुरुष की कोई भी कमी नहीं है। उनकी एक निश्चित मात्रा हमेशा पृथ्वी पर है। उस मात्रा में कोई अंतर नहीं पड़ता। एक प्रज्ञावान पुरुष खोता है, तो तत्क्षण दूसरा प्रज्ञावान पुरुष उसकी जगह हो जाता है।
एक यहूदी फकीर मेरे पास आया। वह बड़ा चिंतित और परेशान था। और बहुत जगह घूमकर आया था, और अनेक लोगों को कुछ कहना चाहता था, लेकिन कोई उसे मिला

नहीं जिससे वह कहे या कोई उसका भरोसा करेगा! उसने मुझसे संन्यास लिया, दीक्षा ली, ध्यान में लगा। फिर बाद में एक दिन उसने कहा कि अब मैं आपसे कह सकता हूं।
उस यहूदी ने मुझे कहा कि मुझे धर्म में कोई भी रुचि न थी और मैं धार्मिक आदमी भी न था। इतना ही नहीं, बल्कि मेरा स्पष्ट विरोध भी रहा है। तो मैं कभी यहूदियों के मंदिर में, सिनागाग में कभी गया नहीं। मैंने कभी तालमुद पढ़ी नहीं। और कभी कोई धर्म की बात करे, तो मुझे सिर्फ ऊब ही पैदा होती थी। किसी रबाई, किसी फकीर को मैंने कभी सुना नहीं।
यहूदियों के उत्सव का दिन था एक, धार्मिक उत्सव का दिन, और यह युवक लौट रहा था बाजार से घर की तरफ अचानक उसे एकदम बेचैनी हुई, और उसे लगा कि मुझे सिनागाग जाना चाहिए। उसे खुद भी हैरानी हुई। कुछ ऐसा लगा, जैसे कोई खींचता हो, जैसे परवश हो गया। भागा हुआ घर गया, अपनी प्रार्थना की शाल उठाई, जिसको सिर पर डालकर यहूदी प्रार्थना करते हैं... ।
यह प्रार्थना की शाल यहूदियों की बड़ी कीमती है। दूसरे धर्मों के लोगों को भी इसका उपयोग करना चाहिए। पूरे शरीर को ढंक लेते हैं एक चादर से और भीतर प्रार्थना की धुन, आप चाहें ओंकार की धुन या कोई भी धुन को भीतर पैदा करते हैं। वह धुन न केवल शरीर के भीतर गूंजती है, बल्कि उस चादर के भीतर भी एक वातावरण निर्मित करती है, और शरीर के चारों तरफ एक ऑरा निर्मित हो जाता है। और वह धुन शरीर को चारों तरफ से घेर लेती है और आप जगत के साधारण वातावरण से बिल्कुल कट जाते हैं। उस प्रार्थना की शाल के भीतर जितनी आसानी से प्रार्थना में लीन हुआ जा सकता है, उतनी आसानी से बिना अपने को ढंके लीन होना कठिन है।
भागा हुआ घर गया, प्रार्थना की शाल उठाई, जाकर सिनागाग पहुंचा। लेकिन उत्सव का दिन था और उस उत्सव के दिन नास्तिक से नास्तिक यहूदी भी मंदिर आता है। बिल्कुल भरा हुआ था। कोई आशा नहीं थी उसे कि भीतर जगह मिल जाएगी। लेकिन वह चकित हुआ कि द्वार पर ही उसका स्वागत किया गया और उसे ले जाकर विशिष्ट अतिथियों के स्थान पर बिठाया गया। वह और भी हैरान हुआ कि यह क्या हो रहा है! उसने अपनी चादर ओढ़ ली और चादर ओढ़ते ही उसे सुनाई पड़ा... ।
अभी कोई बीस साल पहले की घटना है, जब उसे सुनाई पड़ा। सालभर पहले आकर उसने मुझे सारा ब्योरा दिया।
उसे सुनाई पड़ा कि तू चुना गया है! छत्तीस में से एक मर गया है, उसकी जगह तुझे चुना गया है। वह कई लोगों से बताना चाहता है कि क्या मामला है! छत्तीस कौन हैं! कौन मर गया है! मुझे किस लिए चुना गया है! लेकिन बस, उस आवाज के बाद उसका जीवन बदल गया।
यहूदियों में पुराना एक नियम है। छत्तीस यहूदी सदा ही प्रज्ञावान पुरुष होंगे। उनमें से जब भी एक समाप्त होगा, तब तत्क्षण बाकी पैंतीस एक व्यक्ति को चुन लेंगे। तो छत्तीस की संख्या उनकी सदा पूरी रहेगी।
सभी धर्मों के भीतर उस तरह के अंतर्वतुल हैं, इनर सीक्रेट सर्किल्स हैं। उनकी संख्याओं में कभी कोई कमी नहीं होती। वे हमेशा मौजूद हैं। और जब भी कहीं कोई साधक उनको खोजने को तैयार हो, तब वे खुद उस साधक की तलाश में आ जाते हैं।
तो जरूरत भी नहीं कि आप हिमालय जाएं। अगर आकांक्षा प्रबल हो, तो जहां
आप हैं, वहीं जिस प्रज्ञावान पुरुष से आपको सन्निधि चाहिए, वह मौजूद होगा; वह वहीं चला आएगा।
लेकिन हम अपने ही हाथ से दरिद्र बने रहते हैं। हम हाथ भी नहीं फैलाते। अगर स्वर्ण की वर्षा भी हो रही हो, तो हमारी झोली बंद रहती है।
यह जो प्रज्ञावान पुरुष की सन्निधि खोजने की बात है, इसके लिए हमें अपनी सुरक्षा की, बचाव की पुरानी आदतें छोड़ना जरूरी हैं, अपने को थोड़ा खोलना जरूरी है। जोखिम तो है, खतरा तो है। लेकिन बिना खतरे के जीवन में कोई क्रांति भी नहीं होती।
फिर प्रज्ञावान पुरुषों का साहित्य है, उनके वचन हैं, जिनको हम वेद कहते हैं। वेद कोई किताब नहीं है; सभी प्रज्ञावान पुरुषों के वचन वेद हैं। इन वचनों को अगर हम मनन करें, विचार नहीं! और विचार और मनन का फर्क ठीक से समझ लेना चाहिए।

विचार का तो मतलब होता है, मैं अपनी बुद्धि लगाऊं कि क्या ठीक है, क्या गलत है; पक्ष-विपक्ष में सोचूं। मेरे पास बुद्धि ही होती, तो फिर क्या था! और मैं जानता कि क्या ठीक है और क्या गलत है, तो वेद की कोई जरूरत न थी। फिर मैं खुद ही प्रज्ञावान था। वह मेरे पास नहीं है।
मनन! मनन बड़ी अलग बात है। मनन का अर्थ है, प्रज्ञावान पुरुष के वचन को अपने हृदय में उतार लेना, उसका रस चूसना, उसका स्वाद लेना। सोचना नहीं कि ठीक है कि गलत है। उसको पीना। इसको हम पाठ कहते हैं।
इसलिए एक आदमी रोज गीता का पाठ करता है। पश्चिम के लोग पूछते हैं कि
यह क्या पागलपन है! एक दफा किताब पढ़ ली, बात खतम हो गई। और किताब को दुबारा पढ़ने का क्या अर्थ है! तिबारा पढ़ने का क्या अर्थ है! और फिर जिंदगीभर रोज सुबह उठकर पढ़ने का तो कोई भी अर्थ नहीं है। वही किताब है, उसको बार-बार पढ़कर क्या फायदा? इससे तो बुद्धि और जड़ हो जाएगी!
उनकी बात थोड़ी दूर तक सही है। अधिक लोगों की बुद्धि जड़ हो गई है। लेकिन जड़ हो जाने का कारण है कि उन्हें पाठ का रहस्य मालूम नहीं है। गीता रोज सुबह पढ़ने का अर्थ पढ़ना है ही नहीं। वह तो जैसे रोज आदमी भोजन करता है, पानी पीता है, श्वास लेता है, ऐसे रोज सुबह प्रज्ञावान पुरुष के वचनों को आत्मसात करना है, अपने में डुबाना है, उनको अपने में फेंकना है, उलीचना है। क्योंकि वे वचन बीज की तरह भीतर पड़ जाएंगे और किसी सम्यक क्षण में--और हम नहीं जानते वह सम्यक क्षण कब आएगा, इसलिए रोज करना है--किसी भी दिन वह सम्यक क्षण आ जाएगा, तो बीज ठीक जगह पहुंच जाएंगे। उनसे अंकुरण होगा। और उस अंकुरण में हमको पहली बार दिखाई पड़ना शुरू होगा कि क्या आसुरी है, क्या दैवी है। उसके पहले दिखाई नहीं पड़ सकता।
तो दो उपाय हैं। अगर हिम्मत हो, तो जीवित प्रज्ञावान पुरुष की शरण में चले जाना चाहिए। अगर कमजोर आदमी हो, हिम्मत न हो, तो शास्त्र की शरण में चले जाना चाहिए। आपको उलटा लगेगा। आप अक्सर सोचते हैं कि जो ताकतवर है, वह किसी की शरण में नहीं जाता। और मैं आपसे कह रहा हूं कि ताकत हो, तो शरण में चले जाना चाहिए।
कमजोर शरण में जा ही नहीं सकता, क्योंकि वह डरता है कि शरण में गए तो दूसरा कब्जा कर लेगा। वह कमजोरी का डर है। शक्तिशाली चला जाता है। शक्तिशाली ही समर्पण करता है। कमजोर तो सदा डरता है, भयभीत रहता है कि कहीं किसी के हाथ में अपने को सौंप दिया, फिर पता नहीं, क्या हो। सिर्फ शक्तिशाली सौंपने की हिम्मत करता है कि सौंप दिया, अब जो भी हो।
और ध्यान रहे, जो सौंपने की हिम्मत जुटाता है, उसके पास प्रज्ञावान पुरुष अनिवार्य रूप से प्रकट हो जाते हैं। अगर तुमने गलत आदमी के भी चरणों में अपने को सौंपा और सौंपना बेशर्त रहा, तो गलत आदमी हट जाएगा और ठीक आदमी प्रकट हो जाएगा। और अगर तुम ठीक आदमी के पास भी अपने को सिकोड़कर बैठे रहे, बचाते रहे, तो ठीक आदमी भी तुम्हारे लिए गलत आदमी ही है।
यह न हो सके, मन बहुत कमजोर हो, निर्बल हो, तो फिर शास्त्र खोजना चाहिए। गुरु शक्तिशाली के लिए, शास्त्र कमजोर के लिए। मगर हिम्मत तो वहां भी जुटानी पड़ेगी। क्योंकि वहां भी शास्त्र को मौका देना होगा कि आपके भीतर जा सके, रोएं-रोएं में डूब जाए, उतर जाए, श्वास-श्वास में समा जाए, जगह-जगह आपके कण-कण में उसकी ध्वनि गूंजने लगे।
स्वामी राम अमेरिका से वापस लौटे, तो पंजाब के एक बहुत बड़े विचारक सरदार पूर्णसिंह उनके साथ थे। तो एक ही कोठरी में एक रात हिमालय में सोए थे। चारों तरफ सन्नाटा था, हिमालय का सन्नाटा। न कोई पास गांव, न कोई आवाज, न कोई शोरगुल।
अचानक पूर्णसिंह को लगा कि कोई राम-राम की रट लगाए हुए है। तो नींद न आए। उठकर वे बाहर गए, बरांडे में चारों तरफ घूमकर देखा, सन्नाटा है। कोई नहीं है वहां। हैरानी तो तब हुई कि जब बाहर गए, तो आवाज कम आने लगी। और जरा दूर जाकर बरांडे में घूमे, तो और कम आने लगी। नीचे के कंपाउंड में उतरकर दरवाजे तक गए, तो आवाज बिल्कुल खो गई। फिर जैसे वापस लौटे करीब, आवाज बढ़ने लगी। कोठरी में आए, तो आवाज फिर सुनाई पड़ने लगी। तब वे चकित हुए। क्योंकि सिवाय राम और उनके कोई नहीं है। राम तो सो रहे हैं।

तो राम की खाट के पास गए। जैसे पास गए, तो आवाज और बढ़ने लगी। तब उन्हें ख्याल आया कि यह तो कुछ अनूठा घट रहा है! राम के शरीर के अंग-अंग से राम की आवाज निकल रही है। तो पैर के पास कान रखकर देखा, तो आवाज; हाथ के पास कान रखकर देखा, तो आवाज; सिर के पास कान रखकर देखा, तो आवाज।
जब कोई व्यक्ति ठीक से स्मरण करता है, पाठ करता है, वेद के वचन को अपने में डूब जाने देता है, तो रोएं-रोएं से वही प्रतिध्वनित होने लगता है। उस प्रतिध्वनि के क्षण में आपको समझ आएगा, क्या आसुरी है, क्या दैवी है। उसके पहले समझ नहीं आ सकता।
ये दो उपाय हैं। हिम्मत हो, तो जीवित पुरुष खोज लेना चाहिए; हिम्मत कमजोर हो, तो प्रज्ञावान पुरुषों के मरे हुए वचन शास्त्रों में संगृहीत हैं, उनकी शरण चले जाना चाहिए।
लेकिन फिर भी दोनों में हिम्मत की तो जरूरत है ही, क्योंकि शरण जाए बिना कोई भी उपाय नहीं है। कहीं अपने को खोना होगा, छोड़ना होगा; कहीं अपनी अस्मिता को हटाकर रख देना होगा। तब जैसे बिजली कौंध जाए और अंधेरे में रास्ता दिखाई पड़ने लगे, ठीक ऐसे ही, क्या दैवी है, क्या आसुरी है, उसकी प्रतीति होने लगती है।
और ध्यान रखें, जैसे ही प्रतीत होता है कि यह आसुरी और यह दैवी, वैसे
ही जीवन में परिवर्तन शुरू हो जाता है। क्योंकि जिसको प्रतीत हो जाए कि यह आसुरी वृत्ति है, फिर उस वृत्ति में रहना असंभव है।
हम तभी तक आसुरी वृत्ति में रह सकते हैं, जब तक हमें लगता हो कि यह दैवी वृत्ति है। हम तभी तक असत्य में जी सकते हैं, जब तक हमें लगता हो कि यह सत्य है। और हम तभी तक दुख में जी सकते हैं, जब तक हमने दुख को सुख माना हो। दुख दुख दिखाई पड़े, छुटकारा शुरू हो गया। असत्य असत्य मालूम पड़े, क्रांति शुरू हो गई। आसुरी है हमारी संपदा, ऐसा बोध हो जाए, उस संपदा से हमारे हाथ अलग होने लगे। हम उसे ही पकड़ते हैं, जिसे हम ठीक समझते हैं। वह गलत हो, पर हमारी समझ में ठीक है, तो हम पकड़ते हैं। जैसे ही समझ आ जाती है कि गलत है, छूटना शुरू हो जाता है।
सुकरात का प्रसिद्ध वचन है, नालेज इ.ज वर्च्यू, ज्ञान सदाचरण है!
जैसे ही कोई जान लेता है कि ठीक क्या है, ठीक करना शुरू हो जाता है। जब
तक हम सोचते हैं कि हमें पता है कि ठीक क्या है; फिर भी क्या करें, हम गलत करते हैं! तब तक जानना कि हमें पता ही नहीं है कि ठीक क्या है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें मालूम है कि क्रोध बुरा है;
पर क्या करें, मजबूरी है, क्रोध हो जाता है। तो मैं उनसे कहता हूं, तुम गलती कर रहे हो, तुम पूरी बात को ही उलटा समझ रहे हो। तुम्हें मालूम ही नहीं कि क्रोध बुरा है। यह तुमने सुना है; और तुम सोचते हो, सुना हुआ तुम्हारा ज्ञान हो गया। तुम्हें पता हो जाए कि क्रोध बुरा है, तो जैसे आग में हाथ डालना मुश्किल है, वैसे ही क्रोध में भी हाथ डालना मुश्किल हो जाएगा। शायद ज्यादा मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि आग तो केवल शरीर को जलाती है, क्रोध तो भीतर तक झुलसा देता है।

आखिरी प्रश्नः मंजिल पर पहुंचकर प्रज्ञावान पुरुष को यही पता चलता
है कि स्वयं को जानना असंभव है, क्योंकि वहां ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान सब एक हो जाते हैं। इस हालत में वे हमें क्यों समझाते हैं कि स्वयं को जानो? इसमें उनका अभिप्राय क्या है?

निश्चित ही, उस परम अवस्था में ज्ञाता भी खो जाता है, ज्ञान भी खो जाता है, ज्ञेय भी खो जाता है। यह जो त्रिवेणी है, यह खोकर एक ही धारा बन जाती है। गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों खो जाती हैं, सागर ही रह जाता है। वह जो खोजने चला था, वह भी नहीं बचता; जिसे खोजने चला था, वह भी नहीं बचता। फिर भी कुछ बचता है। और जो बचता है, वह तीनों से बड़ा है। जो बचता है, वह तीनों से ज्यादा है। जो खो जाता है, वह तो कचरा था। जो बचता है, वही सार है।
फिर भी प्रज्ञावान पुरुष आपसे कहते हैं, स्वयं को जानो। क्या मिटाने
के लिए आमंत्रण देते हैं?

अगर मिटना ही मिटना होता और कुछ पाना न होता, तो यह आमंत्रण न दिया जाता। एक तरफ से मिटना है और दूसरी तरफ से होना है। जो आप हैं, वह खो जाएगा। और जो आपका वास्तविक होना है, वह बचेगा। जो आपका झूठा-झूठा होना है, वह तिरोहित हो जाएगा। और जो आपकी शाश्वत सत्ता है, जो आपका सनातन स्वरूप है, वह बचेगा। आप खो जाएंगे, जैसा आप अपने को अभी समझते हैं। और जैसा आपने कभी अपने को नहीं समझा, लेकिन आप हैं, वह बच रहेगा।
तो प्रज्ञावान पुरुष आपको बुलाते हैं कि मिटो, ताकि हो सको। खो जाओ, ताकि बच सको। वे कहते हैं, बूंद सागर में गिर जाए, खो जाएगी। अगर आप बूंद की तरफ से देखें, तो खो जाएगी। लेकिन खोएगी कहां? खोना हो कैसे सकता है? जो भी है, वह खोएगा कैसे? अगर होने की तरफ से देखें, तो बूंद खोएगी नहीं, सागर हो जाएगी। एक तरफ से बूंद का क्षुद्रपन चला जाएगा, दूसरी तरफ से सागर की विराटता उसमें उतर आएगी।
कबीर ने कहा है कि पहले तो मैं सोचता था जब मिलन हुआ कि बूंद सागर में गिर गई और खो गई। प्रथम तो ऐसा ही अनुभव हुआ कि बूंद सागर में गिरकर खो गई। बाद में समझ में आया कि यह तो उलटा कुछ हुआ है, सागर बूंद में गिरकर खो गया। ये दोनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं। चाहे हम एक बूंद को सागर में गिराएं, चाहे एक सागर को बूंद में गिराएं; दोनों हालतों में घटना एक ही घटती है। तो चाहे आप कहें कि आप खो गए और चाहे आप कहें कि परमात्मा आप में खो गया, एक ही बात है। सिर्फ दो कोने से कहने की बात है।
बुद्ध ने पहली बात पसंद की। उन्होंने कहा, तुम खो जाओगे, निर्वाण हो जाएगा, सब शून्य हो जाएगा। शंकर ने दूसरी बात पसंद की., ब्रह्म हो जाओगे, कुछ खोएगा नहीं, सब कुछ पा लिया जाएगा।
चाहे कहो शून्य, चाहे कहो पूर्ण। शून्य का अर्थ है, बूंद खो गई। पूर्ण
का अर्थ है, सागर बूंद में उतर आया। पर दोनों एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। एक विधेय का ढंग है, एक निषेध का ढंग है; जो भी प्रीतिकर हो। प्रज्ञावान पुरुष बुलाते हैं कि मिटो, क्योंकि उन्होंने अपनी तरफ से अनुभव किया है कि जब तक वे मिटे नहीं, तभी तक दुख में रहे। जब वे मिटे, तब आनंद हो गया।
आपका होना ही कष्ट है। आप ही कांटा हो, जो चुभता है। और जब तक आप हो, कांटा चुभता ही रहेगा। आप लाख उपाय करो सुख की व्यवस्था के, वे असफल होंगे, क्योंकि कांटा आप हो। आप कितना ही सुखद बिस्तर तैयार कर लो और सुंदर भवन बना लो, लेकिन वह कांटा चुभता ही रहेगा।
महल बड़े होते जाते हैं, दुख नष्ट नहीं होता। संपत्ति के ढेर लगते जाते हैं, दुख नष्ट नहीं होता। संपदा, यश, कीर्ति मिलती जाती है, दुख नष्ट नहीं होता, बल्कि कांटा चुभता ही चला जाता है। शायद और जोर से चुभता है। जितना सुख का आप इंतजाम करते हैं, कांटा उतने जोर से चुभता है। क्योंकि सुख में पृष्ठभूमि बन जाती है, और कांटा और भी ज्यादा पीड़ादायी मालूम होता है।
एक गरीब आदमी के पैर में कांटा उतना नहीं चुभता; पैर उसके आदी हैं। अमीर आदमी के पैर में कांटा और बुरी तरह चुभता है; पैर उसके आदी नहीं हैं। जैसे-जैसे आदमी अमीर होता है, वैसे-वैसे दुख एक घाव, एक नासूर भीतर हृदय में बनता चला जाता है।
प्रज्ञावान पुरुष बुलाते हैं आपको कि मिट जाओ; कहते हैं कि स्वयं को जान लो। क्योंकि स्वयं को जानते ही आप मिट जाओगे। यह जरा उलटा लगेगा, विरोधाभासी। क्योंकि जब हम कहते हैं, स्वयं को जान लो, तो हमें ऐसा लगता है कि अपने को हम बचा लेंगे।
स्वयं को जानने की शर्त ही यह है कि जब तक आप हो, तब तक आप स्वयं को जान
न सकोगे। आप बाधा हो। वह जो अहंकार है कि मैं हूं, वही रुकावट है। वह मिटेगा, तो स्वयं का जानना हो जाएगा। स्वयं का मिटना ही स्वयं का ज्ञान है। और उसके साथ ही कांटा खो जाता है।
बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो उन्होंने पहला उदघोष किया कि अब मुझे दुख में कोई भी डाल न सकेगा। अब मुझे दुख में डालने का कोई उपाय न रहा। तो कथा है कि ब्रह्मा ने उनको पूछा कि आप ऐसा क्यों कहते हैं? तो बुद्ध ने कहा, चूंकि अब मैं हूं ही नहीं। मुझे दुख में डालने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि अब मैं हूं ही नहीं। जब तक मैं था, तब तक मुझे दुख में डाला जा सकता था।

बुद्ध शून्य की भाषा पसंद करते हैं। अगर आपको पूर्ण की भाषा पसंद हो,
तो समझें पूर्ण की तरफ से। शून्य की भाषा पसंद हो, तो शून्य की तरफ से।
लेकिन सिर्फ भाषा में मत खोए रहें; कुछ करें। या तो बूंद को मिटाएं सागर में या सागर को बुलाएं बूंद में। जब तक यह महामिलन न हो, तब तक दुख बना ही रहता है।

अब हम सूत्र को लें।
और वे मनुष्य दंभ, मान और मद से युक्त हुए किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर तथा मोह से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में बर्तते हैं।
तथा वे मरणपर्यंत रहने वाली अनंत चिंताओं को आश्रय किए हुए और विषय-भोगों के भोगने में तत्पर हुए इतना मात्र ही आनंद है, ऐसा मानने वाले हैं। इसलिए आशारूप सैकड़ों फांसियों से बंधे हुए और काम-क्रोध के परायण हुए विषय-भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत-से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।
आसुरी संपदा वाले व्यक्तियों के लक्षणों में कृष्ण और भी प्रवेश करते हैं।
दंभ, मान और मद से युक्त... ।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति सदा ही अपने को ठीक मानता है, सदा ही दूसरे
को गलत मानता है। दूसरे का दूसरा होना ही उसकी गलती है। यह सवाल नहीं है कि सही क्या है, गलत क्या है। आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को उसका स्वयं का वक्तव्य सही है, दूसरे का वक्तव्य गलत है।
कभी-कभी आपको भी ख्याल आता होगा कि अगर दूसरा व्यक्ति वही बात कह रहा हो, जो कल आप कह रहे थे, तो भी आप विवाद करते हैं। क्योंकि सवाल यह है नहीं कि क्या सही है। सवाल तो यह है कि आप सही हैं और दूसरा गलत है। हमेशा आप इस कोशिश में होते हैं कि मैं सही हूं।
दुनिया में जो इतने विवाद चलते हैं, उन विवादों में सत्य की कोई तलाश नहीं है। उन विवादों में सिर्फ अहंकार की घोषणा है। चाहे कोई कुछ भी कहे, सही मैं ही हूं। और इस मैं के सही होने को हम हजार तरह से सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। आसुरी संपदा वाले व्यक्ति का यह आंतरिक लक्षण है।
दैवी संपदा वाला व्यक्ति, इसके पहले कि दूसरे को गलत कहे, अपने को गलत सोचने की चेष्टा करता है। और इसीलिए दैवी संपदा वाला व्यक्ति सीख पाता है, आसुरी संपदा वाला व्यक्ति सीख नहीं पाता। क्योंकि सीखना तो तभी संभव है, जब हम गलत हों, दूसरा सही हो। जब हम सदा ही सही होते हैं और दूसरा गलत होता है, तो सीखने की कोई गुंजाइश नहीं है। शिष्यत्व, डिसाइपलशिप पैदा ही नहीं हो सकती।
इसलिए आसुरी संपदा का व्यक्ति कभी भी शिष्य नहीं बनता। हालांकि कहेगा
वह यही कि कोई गुरु है ही नहीं। मिले कोई गुरु, तो हम शिष्यत्व ग्रहण करें। लेकिन वह शिष्यत्व ग्रहण नहीं कर सकता। वह बुद्ध के पास से भी कुछ भूल-चूक निकालकर आगे बढ़ जाएगा।
शिष्यत्व के लिए झुकना जरूरी है। और मैं गलत हूं, दूसरा सही होगा, इसकी प्रतीति जरूरी है। मैं अज्ञानी हूं और दूसरा जानता होगा, इसकी प्रतीति जरूरी है। और जो व्यक्ति को ऐसा भाव हो कि मैं अज्ञानी हूं, वह एक छोटे-से बच्चे से भी सीख लेता है। वह पौधों, पक्षियों से भी सीख लेता है। उसके लिए सारा जगत गुरु हो जाता है।
और जो व्यक्ति सोचता है, मैं सही हूं, उसके लिए इस जगत में सीखने का कोई उपाय नहीं। वह अटका रह जाता है, ठहरा रह जाता है। उसका हृदय पत्थर की तरह हो जाता है; फूल की तरह वह कभी भी खिल नहीं पाता है।
आप भी सोचें कि जब आप विवाद करते हैं कि यह ठीक है, तब सच में ही आपको सत्य की तलाश होती है? या आपका वक्तव्य है, तो उसके साथ आपका अहंकार जुड़ गया। वक्तव्य टूटेगा, तो अहंकार टूटेगा। तो आप लड़-मर सकते हैं, विवाद कर सकते हैं, तर्क कर सकते हैं, हजार तर्क खोज ले सकते हैं। लेकिन उन तर्कों से आप कभी बदलेंगे नहीं। क्योंकि वे तर्क सत्य के लिए दिए ही नहीं गए।

सत्य का तलाशी हमेशा तैयार है कि वह गलत हो सकता है। और जो व्यक्ति जितना तैयार है अपनी गलती स्वीकार करने को, उसके जीवन में विकास की उतनी ही ज्यादा संभावना है। वह जीवन के अंतिम क्षण तक सीखता रहेगा, मरते क्षण तक सीखता रहेगा। उसके सीखने का कोई अंत नहीं है; उसके ज्ञान का कोई पारावार नहीं होगा।
आसुरी संपदा वाला अज्ञानी रह जाता है, क्योंकि सीख नहीं सकता। दैवी संपदा वाला सीखता चला जाता है, उसके पास सागर जैसा ज्ञान हो जाता है। किसी भी प्रकार न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर... ।
और आसुरी संपदा वाला व्यक्ति अपने जीवन की गति को उन वासनाओं के सहारे चलाता है, जिनका कभी कोई अंत नहीं है; जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं, जो कभी पूरी हुई नहीं हैं, जिनका स्वभाव पूरा होना नहीं है।
बुद्ध ने कहा है, कामनाएं दुष्पूर हैं, उनको भरा ही नहीं जा सकता। इसलिए नहीं कि आपकी ताकत कम है, इसलिए भी नहीं कि जीवन का समय कम है, इसलिए भी नहीं कि दूसरे लोग बाधा डाल रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका स्वभाव ही दुष्पूर है। वासना का स्वभाव दुष्पूर है; उसे पूरा नहीं किया जा सकता। क्या कारण होगा कि वासना का स्वभाव दुष्पूर है? अगर आप वासना को पूरा
न करें, दमन करें, दबाएं, तो वासना धक्के मारती है कि मुझे पूरा करो! और सदा धक्के मारती रहेगी जन्मों-जन्मों तक। अगर आप वासना को पूरा करें, तो हर बार पूरा करें, तो वासना की आदत बनती है। और जितनी आदत बनती है, उतनी मांग बढ़ती है।
बड़ी कठिनाई है, बड़ी दुविधा है। अगर वासना को दबाएं, तो पीछा करती है; अगर पूरा करें, तो आदत बनती है। दोनों स्थितियों में वासना उलझा देती है। और तीसरे का हम कभी प्रयोग नहीं करते, कि हम वासना को सिर्फ देखें; न तो दबाएं, न पूरा करें; न तो उससे लड़ें, और न उसके गुलाम बनकर उसके पीछे चलें। दो पंथ हैं जगत में। एक पंथ है वासना पूरे करने वालों का; उनको ही आसुरी संपदा वाले लोग कहा है। एक पंथ है वासनाओं से लड़ने वालों का; उनको दैवी संपदा वाले लोग नहीं कहा है, वे भी आसुरी संपदा वाले लोग हैं। फर्क इतना ही है कि कुछ आसुरी संपदा वाले लोग सीधे पैर के बल खड़े हैं; कुछ आसुरी संपदा वाले लोग सिर के बल खड़े हैं, शीर्षासन कर रहे हैं।
एक तीसरा वर्ग है दैवी संपदा वाले व्यक्ति का। वह लड़ता ही नहीं, वह वासना का सिर्फ साक्षी होता है। और जितना गहरा साक्षी-भाव होता है, वासना उसी तरह जड़-मूल से जलकर नष्ट हो जाती है। न तो उसे दबाना पड़ता है, न उसे पूरा करना पड़ता है।
दोनों हालतों में कठिनाई है। और ये दोनों पंथ खड़े हैं और आप सब भी इन दोनों पंथों में डांवाडोल होते रहते हैं। सुबह सोचते हैं कि गलत; सांझ सोचते हैं सही। आज सोचते हैं, वासना पूरी कर लें; कल वासना से लड़कर दमन करते हैं। और ऐसा डोलते रहते हैं और जीवन नष्ट होता चला जाता है।
हमारी अवस्था ऐसी है। मैंने सुना है, एक गांव में एक साधु का आगमन हुआ। वह अद्वैतवादी साधु था। गांव में एक गरीब सीधा आदमी था। इस साधु ने उसे पकड़ लिया; रास्ते से जा रहा था। वह सीधा आदमी अपने खेत जा रहा था, सो उसे पकड़ लिया और कहा कि रुको, क्या जिंदगी खेत में ही गंवा दोगे? कुछ स्मरण करो! यह जगत माया है। उस सीधे आदमी ने कहा, अब आपने शिक्षा ही दी, तो कुछ रास्ता बता दें। तो साधु ने उसे एक मंत्र दिया। मंत्र था सोहम्, कि सदा सोहम्-सोहम का जाप करते रहो; मैं वही हूं, आई एम दैट, सोहम्। कुछ दिनों बाद वह गरीब सीधा आदमी सोहम का जाप करता रहा।
गांव में दूसरे साधु का आगमन हुआ। लोगों ने उस दूसरे साधु को बताया कि हमारे गांव में एक सीधा-सादा किसान है, लेकिन सोहम का जाप करता है, और बड़ा प्रसन्न रहता है। साधु ने कहा, बिल्कुल गलत। उसे बुलाकर ले आओ। उससे कहा कि यह बिल्कुल गलत है। यह साधु द्वैतवादी था। सोहम अद्वैतवादी का मंत्र है। इसने कहा, यह बिल्कुल गलत है; यह पाठ ठीक नहीं है। इससे तुम भटक जाओगे। उस गरीब सीधे आदमी ने कहा, आप सुधार कर दें। उस साधु ने कहा, दासोहम्, मैं तेरा दास हूं, यह पाठ करो। सोहम नहीं, दासोहम्। उसमें दा और जोड़ दो। उस गरीब आदमी ने दा जोड़ दिया।

दो-चार महीने बाद फिर एक अद्वैतवादी साधु का गांव में आगमन हुआ। लोगों ने खबर दी। उसने कहा कि बिल्कुल गलत है। द्वैत तो आना ही नहीं चाहिए मंत्र में। यह दासोहम ठीक नहीं है। तुम इसमें एक स और जोड़ दो, सदा सोहम्, सदा मैं वही हूं। गरीब आदमी ने कहा, अब जैसी आपकी मरजी!
थोड़ी-बहुत शांति पहले मिली थी, दूसरे में उससे भी कम हो गई। अब तीसरे में वह बहुत उलझ गया। वह भी कम हो गई। लेकिन अब साधु ने कहा, तो वह सदा सोहम करने लगा।
कुछ ही दिन बाद फिर एक द्वैतवादी साधु का गांव में आगमन हुआ। उसने कहा
कि यह बिल्कुल गलत है। अद्वैत की बात ही गलत है। तुम इसमें एक दा और जोड़ दो, दास दासोहम्। तो उस गरीब ने कहा कि मैं बिल्कुल पागल हो जाऊंगा। थोड़ी-बहुत शांति मिलना शुरू हुई थी, सब नष्ट हो गई। और अब कब अंत होगा इसका!
मनुष्य की अवस्था करीब-करीब ऐसी है। वहां दो वर्ग हैं हमारे जीवन में। चारों तरफ दोनों वर्गों में बंटे हुए लोग हैं। कुछ हैं, जो भोग की तरफ धक्का दे रहे हैं। कुछ हैं, जो दमन की तरफ धक्का दे रहे हैं। कुछ हैं, जो जीवन के विषाद से भरे हैं और कह रहे हैं, सब तोड़ डालो। और कुछ हैं, जो जीवन के उत्साह से भरे हैं और कह रहे हैं, सब भोग डालो। और उन दोनों के बीच में मनुष्य विक्षिप्त हुआ जाता है।
और इन दोनों को अगर आप रोज बदलते रहे, तो एक कनफ्यूजन, चित्त का खंड-खंड हो जाना, एक स्कीजोफ्रेनिक, खंडित चित्त की दशा पैदा होती है। जहां फिर कुछ भी नहीं सूझता, जहां कुछ ठीक नहीं मालूम पड़ता, कुछ गलत नहीं मालूम पड़ता। और कहां जाएं, और कहां न जाएं! एक पैर बाएं चलता है, दूसरा दाएं चलता है। एक आगे जाता है, दूसरा पीछे जाता है। जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। लेकिन हमारी भी अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि इन दो के अतिरिक्त तीसरे
का हमें कोई स्वर सुनाई नहीं पड़ता।
तीसरा एक स्वर है। और वह है वासनाओं की प्रक्रिया का जागरूक साक्षी- भाव से दर्शन। भोगी और त्यागी दोनों ही बंध जाते हैं, सिर्फ साक्षी मुक्त होता है।
यह जो आसुरी संपदा से भरा हुआ व्यक्ति है, वह कभी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर चलता है, इसलिए सदा दुखी होता है। क्योंकि जो पूरा नहीं होने वाला, उसके साथ चलने वाला दुख पाएगा ही। और सदा अतृप्ति, सदा असंतोष, और सदा अनुभव करता है, कुछ पाया नहीं; और दौड़ो, और दौड़ो। और वह कहीं भी पहुंच जाए, वह जो और की आवाज है, वह चलती ही रहेगी।
मोह से मिथ्या सिद्धांतों को ग्रहण करके भ्रष्ट आचरणों से युक्त हुए संसार में बर्तते हैं। तथा वे मरणपर्यंत रहने वाली अनंत चिंताओं को आश्रय किए हुए और विषय-भोगों के भोगने में तत्पर हुए, इतना मात्र ही आनंद है, ऐसा मानने वाले हैं।
जो भी छोटा-मोटा उच्छिष्ट मिल जाता है, इस भाग-दौड़ में, असंतोष में, दुख में जो थोड़ी-बहुत सुख की आभास जैसी झलक मिल जाती है, बस, आसुरी संपदा वाला मानता है, इतना ही आनंद है, यही सब कुछ है।
आप भी सोचें, इतने दिन आप जीए हैं, कम से कम इस जीवन के दिन का तो आपको स्मरण है ही। और जीवनों में जीए हैं, उसे छोड़ दें। इस सारे जीवन में आपको कोई सुख मिला है?
अगर खोजबीन करेंगे, तो बड़ी मुश्किल होगी। जितनी सचेतता से खोजबीन करेंगे, उतना ही खोजना मुश्किल होगा कि कोई सुख मिला है। कभी-कभी शायद कोई झलक मिली हो, आभास लगा हो, इंद्रधनुष जैसा कुछ दूर दिखाई पड़ा हो। हाथ में तो पकड़ते से खो जाता है इंद्रधनुष। बस दूर से थोड़ा दिखाई पड़ा हो, तो उतना ही सुख है, ऐसा मानकर हम अपने जीवन को ढोते हैं।
दैवी संपदा वाला व्यक्ति इतने सस्ते में राजी नहीं होता। साधारणतः लोग कहते हैं कि दैवी संपदा वाला व्यक्ति संतुष्ट होता है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, दैवी संपदा वाला व्यक्ति पहले तो बहुत असंतुष्ट होता है। वह इतना असंतुष्ट होता है कि आसुरी संपदा वाले व्यक्ति भी उसके सामने संतुष्ट मालूम पड़ेंगे। क्योंकि आसुरी संपदा वाला कहता है, इतना ही सुख है; इस पर ही राजी होता है। दैवी संपदा वाला कहता है, इसमें सुख कुछ भी नहीं

है। यह दूर दिखाई पड़ने वाला इंद्रधनु है। और हाथ में आते ही पानी की बूंदें हाथ लगती हैं, कुछ भी हाथ नहीं लगता। यहां सुख बिल्कुल नहीं है। तो आसुरी संपदा वाला तो किसी तरह असंतोष में भी थोड़ा-सा संतोष खोज लेता है। दैवी संपदा वाला इसमें पूरी तरह असंतोष पाता है। और इसी असंतोष के कारण वह किसी नए आयाम में, एक नई दिशा में, एक नए क्षितिज की खोज में निकलता है। वासनाओं में पाता है कि कुछ नहीं मिला। आभास भी झूठे थे। तो फिर निर्वासना में, वासना के अतीत, अतिक्रमण में उसकी यात्रा शुरू होती है।
दैवी संपदा वाला व्यक्ति पहले तो संसार से पूर्ण असंतुष्ट हो जाता है, क्योंकि वही उसकी परमात्मा की खोज का आधार है, वही स्रोत है। लेकिन आसुरी संपदा वाला मानता है कि ठीक है, यह जो थोड़ा-सा सुख मिल रहा है, बस यही सुख है, इससे ज्यादा जीवन में पाने योग्य है भी नहीं, मिल भी नहीं सकता। आपको मैं याद दिलाना चाहूं, अनेक बार मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम संतुष्ट हैं। और वे सोचते हैं कि बड़ी कीमती बात मुझसे कह रहे हैं। जो भी भगवान ने दिया है, हम उससे राजी हैं। भगवान ने दिया क्या है उनको? लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, सब ठीक है। पत्नी है, बच्चा है, सब ठीक चल रहा है। काम भी ठीक है, पैसा भी निकल आता है, रोटी-रोजी चल जाती है; हम संतुष्ट हैं।
ऐसे व्यक्ति यह सोचकर मुझसे ये बातें कहते हैं कि मैं शायद उनकी प्रशंसा करूंगा; कहूंगा कि बड़े धार्मिक व्यक्ति हैं। पर यह आसुरी संपदा वाले व्यक्ति का लक्षण है। वह कहता है कि इतना ही सुख है बस, इससे ज्यादा तो कुछ है भी नहीं।
दैवी संपदा वाला व्यक्ति तो प्रखर आंखों से जीवन को देखता है और पूरी तरह असंतुष्ट हो जाता है। अगर यही जीवन है, तो वह इसी समय मरने को तैयार है। कुछ सार नहीं है।
लेकिन जैसे ही कोई व्यक्ति यह देखने में समर्थ होता है कि यह सब व्यर्थ है, उसकी आंखों का रस इस जगत से अलग हो जाता है, उसकी आंखें मुक्त हो जाती हैं। और वह दूसरे जगत में अपनी आंखों को फैलाने के लिए समर्थ हो जाता है। ध्यान, जो इस जगत में लिप्त था, हट आता है। और फिर ध्यान को दूसरे जगत में ले जाना आसान हो जाता है। परिपूर्ण असंतुष्ट चेतना ही परमात्मा के परम संतोष को खोज सकती है।
इसलिए आशारूप सैकड़ों फांसियों से बंधे हुए और काम-क्रोध के परायण हुए विषय-भोगों की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धनादिक बहुत-से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।
और जो व्यक्ति भी अपने को नहीं खोज रहा है, वह जाने-अनजाने पदार्थ खोजेगा। खोज तो जारी रखनी ही पड़ेगी। खोज से बचना असंभव है। कुछ न कुछ तो आप खोजेंगे ही। अगर स्वयं को न खोजेंगे, तो कुछ और खोजेंगे। और जो स्वयं को नहीं खोजेगा, उसके पास सिवाय पदार्थों की खोज के कुछ भी नहीं बचता।
इस जगत में दो ही आयाम हैं। या तो मैं चेतना को खोजूं या पदार्थ को खोजूं। बस, दो ही इस जगत के तल हैं, पदार्थ है, चेतना है। अगर आप चेतना की खोज में नहीं हैं, तो क्या करेंगे? तो फिर पदार्थ का संग्रह। आपकी जीवन-ऊर्जा फिर धन इकट्ठा करने में, बड़े पद पर पहुंच जाने में, बड़ा साम्राज्य निर्मित करने में संलग्न हो जाएगी।
यह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, वह फिर पदार्थ इकट्ठे करने में लग जाता है। और पदार्थ का संग्रह समझ लेने जैसा है। उसके कुछ आधारभूत नियम हैं।
पहला, जो व्यक्ति पदार्थ का संग्रह करने में लगा हो, वह न्याय-अन्याय
का विचार नहीं कर सकता। क्योंकि पदार्थ किसी का भी नहीं है। जिस जमीन को आज आप अपना कह रहे हैं, कल वह किसी और की थी, परसों किसी और की थी। अगर आप यह बैठकर सोचें कि जो मेरा नहीं है, उस पर मैं कैसे कब्जा करूं! तो फिर आप पदार्थ पर कब्जा कर ही नहीं सकते।
इसलिए पदार्थ को इकट्ठा करने वाला तो येन केन प्रकारेण, कैसे भी हो, इकट्ठा करने में लग जाता है। और पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो दूसरे से छीनना पड़ता है। परिग्रह शोषण के बिना संभव नहीं है। पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो

दूसरे को वंचित करना पड़ता है। पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो हिंसा करनी ही होगी, सूक्ष्म, स्थूल, लेकिन हिंसा करनी ही होगी। पदार्थ इकट्ठा करना हो, तो दान, दया और करुणा से अपने को बचाना होगा। चाहे चोरी करनी पड़े, चाहे भीख मांगनी पड़े, कुछ भी उपाय करना पड़े।
एक दिन एक स्टेशन पर मैं बैठा था, एक ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहा था। और
एक भिखारी ने मुझसे आकर भीख मांगी। चेहरे से वह आदमी पढ़ा-लिखा, ढंग से सुसंस्कृत मालूम होता था। तो मैंने उससे कहा कि बैठो, कुछ अपने संबंध में मुझे बताओ। तो काफी प्रसन्न हो गया। मैं एक किताब रखे हुए बैठा पढ़ रहा था। ट्रेन लेट थी।
तो उसने कहा, आप किताब पढ़ रहे हैं, तो आपसे मैं बात कर सकता हूं। मैं भी कभी एक लेखक था; मैंने भी एक किताब लिखी थी। मैंने उससे पूछा कि कौन-सी किताब लिखी थी? उसने बताया कि जीविका कमाने के बीस ढंग। मैं थोड़ा चौंका और मैंने उससे पूछा कि फिर भी तुम भीख मांग रहे हो! उसने कहा, हां, क्योंकि यह इक्कीसवां ढंग है, जो मैंने बाद में खोजा। और वे बीस तो असफल हो जाएं, मगर यह इक्कीसवां कभी असफल नहीं होता। यह बिल्कुल रामबाण है।
एक आदमी चोरी कर रहा है, वह भी जो दूसरे का है, छीन रहा है। एक आदमी भीख मांग रहा है, वह भी चोरी का ही एक ढंग है, लेकिन ज्यादा कुशल ढंग है। वह दूसरे को इस तरह से फांस रहा है कि दूसरा अगर न दे, तो आत्मग्लानि पैदा हो; अगर दे, तो दुख पाए।
तो आप यह मत सोचना कि जब भिखमंगा आपसे भीख मांगता है और आप उसे भीख दे देते हैं, तो वह समझता है कि आप बड़े दानी हैं। वह यही समझता है कि वह होशियार था, आप बुद्धू थे। जब आप भीख नहीं देते और बच जाते हैं; तभी वह सोचता है कि यह भी आदमी कुशल है। उसके मन में इज्जत आपकी तभी होती है, जब आप नहीं देते। देते हैं, तब तो वह जानता है कि ठीक है। लेकिन वह स्थिति ऐसी पैदा करता है कि आपको अड़चन हो जाए, और दो पैसे के लिए उस अड़चन से निकलने को आप दो पैसा देना ही उचित समझेंगे।
चोर भी छीन रहा है, भिखारी भी छीन रहा है। जिसको हम व्यवसायी कहते हैं,
जो दोनों के बीच है, वह भी छीन रहा है। और सबकी आकांक्षा एक है, संपदा का ढेर लग जाए।
संपदा का कितना भी ढेर लग जाए, अंततः वह संपदा आपकी कब्र बनती है, अंततः सिवाय उसके नीचे दबकर मर जाने के और कुछ प्रयोजन नहीं है।
लेकिन एक नियम समझने का है कि मनुष्य की जीवन-ऊर्जा बिना खोज के नहीं
रह सकती। वह जीवन-ऊर्जा का स्वभाव है--खोज, सर्च। अगर आप कुछ भी नहीं खोज रहे हैं आंतरिक, तो आपको बाहर कुछ न कुछ खोजना ही पड़ेगा।
यह खोज तो तभी बाहर की बंद हो सकती है, जब भीतर की खोज शुरू हो जाए। जैसे ही भीतर की तरफ चेतना मुड़नी शुरू होती है, बाहर की खोज अपने आप खो जाती है। खो जाती है इसलिए कि अब आपको बड़ी संपदा मिलनी शुरू हो गई। खो जाती है इसलिए कि अब असली संपदा मिलनी शुरू हो गई। खो जाती है इसलिए कि आपको खुद हंसी आएगी, मैं भी किन बच्चों के खेल में उलझा था!
धन बच्चों के खेल से ज्यादा नहीं है। लेकिन चूंकि बूढ़े भी उसे खेल रहे हैं, हमें ख्याल नहीं आता। ख्याल नहीं आता, क्योंकि बूढ़े भी हमारे बच्चों से ज्यादा नहीं हैं। सिर्फ शरीर से बूढ़ा हो जाना कोई बहुत मूल्य नहीं रखता। वृत्ति तो बचपन की ही बनी रहती है।
बच्चे डाक की टिकटें इकट्ठी कर रहे हैं, तितलियां इकट्ठी कर रहे हैं, कंकड़-पत्थर जोड़ रहे हैं। बूढ़े हंसते हैं कि क्या पागलपन कर रहे हो! लेकिन डाक की टिकट में और हजार रुपए के नोट में कोई फर्क है? दोनों ही छापाखाने का खेल है। और दोनों पर लगी मुहर केवल सामाजिक स्वीकृति है।
बच्चे टिकटें इकट्ठी कर रहे हैं, या सिगरेट के लेबल इकट्ठे कर रहे हैं; बूढ़े नोट इकट्ठे कर रहे हैं! बाकी फर्क नहीं है। यह जो बूढ़ा नोट इकट्ठे कर रहा है, यह बस शरीर से बूढ़ा हो गया है; भीतर इसका बचकानापन कायम है; भीतर यह अभी भी जुवेनाइल है, अभी भी बाल-बुद्धि है।
यह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, इसकी बाल-बुद्धि नष्ट होती नहीं।
यह मरते वक्त भी बाल-बुद्धि का ही मरता है। मरते वक्त भी उसकी चिंता

पदार्थ के लिए होती है। जो समझदार है, वह शीघ्र ही पदार्थ की व्यर्थ दौड़ से अपने को मुक्त कर लेता है और परमात्मा की खोज में निकल जाता है।
पदार्थ की खोज बाहर, परमात्मा की खोज भीतर। पदार्थ की खोज दूसरों से छीनकर, परमात्मा की खोज अपने को निखारकर। पदार्थ की खोज में दूसरे का शोषण, परमात्मा की खोज में आत्मा की साधना।
और दो ही खोज हैं। और यह ध्यान रहे कि दोनों खोज कोई सोचता हो कि मैं
एक साथ साधूं, तो वह गलती में है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप संसार को छोड़कर भाग जाएं, तो ही परमात्मा को खोज सकते हैं। इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप परमात्मा को खोजें, तो आप दीन-दरिद्र, भिखारी ही हो जाएंगे। यह कोई मतलब नहीं है।
लेकिन जो परमात्मा को खोजता है, पदार्थ पर उसकी पकड़ नहीं रह जाती। पदार्थ उसके पास भी पड़ा हो, तो भी उसकी पकड़ नहीं रह जाती। पदार्थ उससे छिन भी जाए, तो वह छाती पीटकर रोता नहीं है। पदार्थ हो तो ठीक; पदार्थ न हो तो ठीक। वह उसका लक्ष्य नहीं है। और अगर भीतर की खोज के लिए सब छोड़ना पड़े, तो वह तैयार है। भीतर की खोज के लिए सब खो जाए, तो भी वह तैयार है। वह पूरा दांव बाहर के जगत का भीतर के लिए लगाने के लिए सदा उत्सुक है। उस क्षण की प्रतीक्षा में है, जब वह सब गंवा देगा, स्वयं को बचा लेगा।
जीसस ने कहा है, जो स्वयं को बचाना चाहते हों, उन्हें सब गंवाने की तैयारी चाहिए। और जो सब बचाने को उत्सुक हैं, वे स्मरण रखें कि सब तो बच जाएगा, लेकिन स्वयं खो जाएंगे।
जगत में एक सौदा है, या तो आप पदार्थ बचा लें अपने को बेचकर। तो आप जो
भी कमाते हैं, वह अपने को बेच-बेचकर कमाते हैं। आत्मा के टुकड़े निकाल-निकालकर बेच देते हैं। तिजोरी भरती जाती है, आत्मा खाली होती जाती है। एक दिन तिजोरी पास में होती है, आप नहीं होते। यही समृद्ध व्यक्ति की दरिद्रता है, यही समृद्ध व्यक्ति की भीतरी दीनता है, भिखमंगापन है। मैंने सुना है, एक भिखारी एक दिन अमेरिका के एक अरबपति एण्ड्रू कार्नेगी के पास गया। सुबह ही सुबह जाकर उसने बड़ा शोरगुल मचाया।
तो एण्ड्रू कार्नेगी खुद बाहर आया और उसने कहा कि इतना शोरगुल मचाते हो! और भीख मांगनी हो तो वक्त से मांगने आओ! अभी सूरज भी नहीं निकला है, अभी मैं सो रहा था।
उस भिखारी ने कहा, रुकिए; अगर मैं आपके व्यवसाय के संबंध में कोई सलाह दूं, आपको अच्छा लगेगा? एण्ड्रू कार्नेगी ने कहा कि बिल्कुल अच्छा नहीं लगेगा। तुम सलाह दे भी क्या सकते हो मेरे व्यवसाय के संबंध में! तुम्हारा कोई अनुभव नहीं है।
उस भिखारी ने कहा, आप भी मत दें सलाह। आपको भी कोई अनुभव नहीं है। जब
तक हम उत्पात न करें, तब तक कोई देता है? वक्त से आने पर आपसे मिलना ही मुश्किल था। सेक्रेटरी होता, पहरेदार होते। अभी बेवक्त आया हूं, तो सीधा आपसे मिलना हो गया। सलाह आप मुझको मत दें, मेरा पुराना धंधा है, और बपौती है, बाप-दादे भी यही करते रहे हैं।
एण्ड्रू कार्नेगी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं खुश हुआ उस आदमी की बात से। मैंने उससे कहा कि तुम क्या चाहते हो? उस आदमी ने कहा कि मैं ऐसे मुफ्त कभी किसी से कुछ लेता नहीं। मैं कोई भिखारी नहीं हूं। लेकिन एक काम मैं कर सकता हूं, जो आप नहीं कर सकते। और अगर कुछ दांव पर लगाने की इच्छा हो, तो बोलिए!
एण्ड्रू कार्नेगी ने लिखा है कि मुझे भी रस लगा कि वह क्या कह रहा है। कौन-सा काम है, जो वह कर सकता है और मैं नहीं कर सकता! तो मैंने उससे कहा, अच्छा, सौ डालर दांव पर। वह कौन-सा काम है? उसने कहा कि मैं एक सर्टिफिकेट ला सकता हूं कि मैं भिखारी हूं, पर आप सर्टिफिकेट नहीं ला सकते।
एण्ड्रू कार्नेगी ने अपने संस्मरण में लिखा है, सौ डालर मैंने उसे दिए, लेकिन फिर मैं सोचता रहा कि सर्टिफिकेट मैं ला सकूं या न ला सकूं, भिखारी तो मैं भी हूं। अरबों रुपए मेरे पास हैं, इससे क्या फर्क पड़ता है! भीख तो जारी है, अभी भी मांग तो जारी है, अभी भी मैं खोज तो रहा ही हूं। कोई मुझे सर्टिफिकेट नहीं देगा, क्योंकि अगर मैं भिखारी हूं, तो इस जगत में कोई भी समृद्ध नहीं है।

दस अरब रुपए एण्ड्रू कार्नेगी छोड़कर मरा है। पर उसने लिखा है कि भिखारी तो मैं हूं, उस आदमी ने बात तो ठीक ही कही है। क्योंकि अभी भी मेरी मांग है, आकांक्षा है। मेरा भिक्षा का पात्र अभी भी हाथ में है। अभी भी मुझे कुछ मिल जाए, तो मैं सब खोने को तैयार हूं, कुछ मिल जाए तो अपने को और लगाने को तैयार हूं।
एण्ड्रू कार्नेगी जब मरा, तो मरने के दो दिन पहले जो आदमी उसकी जीवन-कथा लिख रहा था, उससे उसने पूछा कि अगर तुम्हें परमात्मा यह मौका दे, तो तुम एण्ड्रू कार्नेगी के सेक्रेटरी होकर उसकी आत्म-कथा लिखना पसंद करोगे? या तुम एण्ड्रू कार्नेगी बनना पसंद करोगे और एण्ड्रू कार्नेगी तुम्हारी आत्मकथा लिखे? तो उस सेक्रेटरी ने कहा, क्षमा करें; आप बुरा न मानें; एण्ड्रू कार्नेगी बनना मैं कभी पसंद नहीं करूंगा। मैं ठीक हूं कि आपकी आत्म-कथा लिख रहा हूं। तो एण्ड्रू कार्नेगी ने कहा, इसका क्या कारण है? तो उसने कहा कि देखें, मैं आता हूं ग्यारह बजे; पांच बजे मेरी छुट्टी
हो जाती है। आपके दफ्तर के क्लर्क आते हैं दस बजे, पांच बजे उनकी छुट्टी हो जाती है। चपरासी आता है नौ बजे, पांच बजे उसकी भी छुट्टी हो जाती है। आपको मैं सुबह सात बजे से दफ्तर में रात ग्यारह बजे तक देखता हूं। चपरासी से गई बीती हालत आपकी है। एण्ड्रू कार्नेगी भगवान मुझे कभी न बनाए। वह मैं नहीं होना चाहता।
एण्ड्रू कार्नेगी ठीक ही कह रहा है कि मैं भी भिखारी तो हूं ही।
सब पाकर भी अगर आत्मा न मिले, तो भिखमंगेपन का अनुभव होगा। और सब खो जाए, आत्मा बच जाए, तो भीतर के सम्राट का पहली दफा अनुभव होता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
छठवां प्रवचन

ऊर्ध्वगमन और अधोगमन

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।। 13।।
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।। 14।।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।। 15।।
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।। 16।।
और उन आसुरी पुरुषों के विचार इस प्रकार के होते हैं,
कि मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह भविष्य में और अधिक होवेगा।
तथा वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा। मैं ईश्वर अर्थात ऐश्वर्यवान हूं और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और मैं सब सिद्धियों से युक्त एवं बलवान और सुखी हूं।
मैं बड़ा धनवान और बड़े कुटुंब वाला हूं; मेरे समान दूसरा कौन है! मैं यज्ञ करूंगा, दान देऊंगा, हर्ष को प्राप्त होऊंगा--इस प्रकार के अज्ञान से आसुरी मनुष्य मोहित हैं।
वे अनेक प्रकार से भ्रमित हुए चित्त वाले अज्ञानीजन मोहरूप जाल में फंसे हुए एवं विषय-भोगों में अत्यंत आसक्त हुए महान अपवित्र नरक में गिरते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः गीता के इस अध्याय में देवों और असुरों के गुण बताए गए।
हम असुरों से तो धरती पटी पड़ी है, किंतु देव तो करोड़ों में कोई एक होता है।
ऐसा क्यों है?

जीवन में एक अनिवार्य संतुलन है। जितनी यहां बुराई है, उतनी ही यहां भलाई है। जितना यहां अंधेरा है, उतना ही यहां प्रकाश है। जितना यहां जीवन है, उतनी ही यहां मृत्यु है। दोनों में से कोई भी कम-ज्यादा नहीं हो सकते। दोनों की बराबर मात्रा चाहिए, तो ही जीवन चल पाता है। वे गाड़ी के दो चाक हैं।
संसार चल रहा है, चलता रहा है, चलता रहेगा। उसके दोनों चाक बराबर हैं, इसीलिए। लेकिन फिर भी प्रश्न सार्थक है। क्योंकि साधारणतः देखने पर हमें यही दिखाई पड़ता है कि असुरों से तो पृथ्वी भरी है; देव कहां हैं?
समझने की कोशिश करें।
हमें वही दिखाई पड़ता है, जो हम हैं। पृथ्वी असुरों से भरी दिखाई पड़ती है, वह हमारी अपनी आसुरी वृत्ति का दर्शन है। देव को तो हम पहचान भी नहीं सकते। वह दिखाई भी पड़े, मौजूद भी हो, तो भी हम उसे पहचान नहीं सकते। क्योंकि जब तक दिव्यता की थोड़ी झलक हमारे भीतर न जगी हो, तब तक दूसरे के भीतर जागे हुए देव से हमारा कोई संबंध निर्मित नहीं होता।
जो हमें दिखाई पड़ता है, वह हमारी ही आंखों का फैलाव है, वह हमारी दृष्टि का ही फैलाव है। हमें वह नहीं दिखाई पड़ता जो है, बल्कि वही दिखाई पड़ता है जो हम हैं।
दैवी संपदा से भरे व्यक्ति को इस जगत में असुर कम और देवता ज्यादा दिखाई पड़ने लगते हैं। संत को बुरा आदमी दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। हमें जो बुरा दिखाई पड़ता है, संत को वही... उसकी व्याख्या बदल जाती है। और व्याख्या के अनुसार जो हमें दिखाई पड़ता है, उसका रूप बदल जाता है।

लेकिन संत को दिखाई पड़ने लगता है, सभी भले हैं। असंत को दिखाई पड़ता है, सभी बुरे हैं। दोनों ही बातें अधूरी हैं। और जब आप परिपूर्ण साक्षी-भाव को उपलब्ध होते हैं, जहां न तो आप अपने को जोड़ते हैं साधुता से, न जोड़ते हैं असाधुता से, जहां बुरे और भले दोनों से आप पृथक हो जाते हैं, उस दिन आपको दिखाई पड़ता है कि जगत में दोनों बराबर हैं। और बराबर हुए बिना जगत चल नहीं सकता, क्षणभर भी नहीं जी सकता।
तो यदि हमें दिखाई पड़ती है पृथ्वी असुरों से भरी, तो इसका केवल एक ही अर्थ लेना कि हम आसुरी संपदा में जी रहे हैं। इसका दूसरा कोई और अर्थ नहीं है। पृथ्वी से इसका कोई संबंध नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात भांग पी ली। भांग के नशे में जमीन घूमती हुई दिखाई पड़ने लगी। तो सुबह उठकर जब वह होश में आ गया, उसने कहा, मैं समझ गया। जिस आदमी ने यह सिद्ध किया कि पृथ्वी घूमती है, वह भंगेड़ी रहा होगा! हमारा अनुभव ही हम फैलाते हैं, दूसरा कोई उपाय भी नहीं है। जो हमारे भीतर है, उसके माध्यम से ही हम दूसरे को देखते हैं। तो दूसरे की वास्तविक स्थिति हमें दिखाई नहीं पड़ती, हमारा ही मन उस पर छा जाता है, हमारी छाया ही उसे आच्छादित कर लेती है। फिर जो हम देखते हैं, वह अपने ही मन का फैलाव है। दूसरा व्यक्ति जैसे परदा बन जाता है। हमारा ही चित्त उस परदे पर हमें दिखाई पड़ता है। दूसरे में हम स्वयं को ही देखते हैं। दूसरा जैसे दर्पण है। तो अगर लगता हो कि सारी पृथ्वी असुरों से भरी है, तो जानना कि आपका चित्त आसुरी संपदा से भरा है। इसके अतिरिक्त यह बात किसी और चीज का लक्षण नहीं है। इससे पृथ्वी के संबंध में कोई खबर नहीं मिलती, सिर्फ आपके संबंध में खबर मिलती है; आपकी आंखों के संबंध में खबर मिलती है; आंखों के पीछे छिपे मन के संबंध में खबर मिलती है।
और अगर आपको कभी-कभी कोई एकाध देव भी दिखाई पड़ जाता है, तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि आपके भीतर की दैवी संपदा भी थोड़ी-बहुत सक्रिय है। वह बिल्कुल मर नहीं गई है; जीवंत है। उसकी भी कोई एक किरण इस अंधेरे में मौजूद है, इसलिए कभी-कभी आप झलक दूसरे में उसकी भी देख लेते हैं। जैसे-जैसे आप दैवी संपदा में लीन होंगे, वैसे-वैसे जगत आपको दिव्य मालूम पड़ने लगेगा। लेकिन ध्यान रहे, योग की जो परम दशा है, वह दोनों ही भावनाओं से मुक्त
हो जाना है। जिस दिन जगत आपको उसकी वस्तुस्थिति में दिखाई पड़े, जिस दिन आपके भीतर से कोई भाव जगत पर न फैले, उस दिन आपको अनूठा अनुभव होगा कि जगत में सभी चीजें संतुलित हैं। यहां बुरा और भला बराबर है। यहां पापी और पुण्यात्मा बराबर हैं। यहां ज्ञानी और अज्ञानी बराबर हैं। उनकी मात्रा सदा ही बराबर है। उस मात्रा में जरा भी विचलन हुआ कि जगत नष्ट हो जाता है। वह संतुलन बना रहता है।
जिस दिन आपको ऐसा दिखाई पड़ जाएगा, यह संतुलन की अवस्था अनुभव में आ जाएगी, उस दिन न तो आप जगत को बुरा कहेंगे, न भला कहेंगे। उस दिन बुरे आदमी को भी बुरा नहीं कहेंगे, भले आदमी को भी भला नहीं कहेंगे। उस दिन आप कहेंगे, बुरा और भला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उस दिन आप बुरे को मिटाना नहीं चाहेंगे, भले को बचाना नहीं चाहेंगे। क्योंकि उस दिन आप जानेंगे कि बुरा मिटे, तो भला भी मिटता है; भला बचे, तो बुरा भी बचता है। लाओत्से ने कहा है, जब दुनिया धार्मिक थी, तो न कोई भला आदमी था, न कोई बुरा आदमी था।
जब आप भी परम धार्मिक होंगे, तो न कोई बुरा रह जाएगा, न कोई भला रह जाएगा। तब बुरा और भला एक जागतिक संयोग होगा। जैसे हाइड्रोजन और आक्सीजन से मिलकर पानी बनता है, वैसे बुरे और भले से मिलकर संसार बनता है। और वह मात्रा सदा बराबर है।
जगत एक संतुलन है। पर हमें संतुलन दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि हम संतुलित नहीं हैं। हम साक्षी होंगे, तो संतुलित होंगे।
तो जीवन में तीन दिशाएं हैं। एक दिशा है कि अपने भीतर जो आसुरी संपदा
है, उसको हम अपना स्वभाव समझ लें, तो फिर सारा जगत बुरा है। दूसरी संभावना है कि हमारे भीतर जो दैवी संपदा है, हम उसके साथ अपने को एक समझ लें, तो सारा संसार भला है। और एक तीसरी परम संभावना है कि हम इन दोनों गुणों से, इस द्वैत से अपने को मुक्त कर लें और साक्षी हो जाएं, तो फिर जगत बुरे और

भले का संयोग है, रात और दिन का जोड़ है, अंधेरे और प्रकाश का मेल है, ठंडे और गरम का संतुलन है। और जिस दिन आप इस तरह चुनावरहित, विकल्परहित भीतर दोनों संपदाओं में से किसी को भी न चुनेंगे, उसी दिन आपकी परम मुक्ति है।
हमारे पास तीन शब्द हैं। एक शब्द नरक है। नरक का अर्थ है, जिसने अपने
को आसुरी संपदा से एक कर लिया। दूसरा शब्द स्वर्ग है। स्वर्ग का अर्थ है, जिसने अपने को दैवी संपदा से एक कर लिया। और तीसरा शब्द मोक्ष है। मोक्ष का अर्थ है, जिसने अपने को दोनों संपदाओं से मुक्त कर लिया।
देव भी मुक्त नहीं है, वह भी बंधा है। उसके बंधन प्रीतिकर हैं। उसकी जंजीरें सोने की हैं। उसका कारागृह बहुमूल्य है; उसका कारागृह बहुत सजा है। उसका जीवन आभूषणों से लदा है। लेकिन लदा है, वह निर्भार नहीं है। बुरा आदमी लोहे की जंजीरों से बंधा है; अच्छा आदमी सोने की जंजीरों से बंधा है। लेकिन बंधन में जरा भी कमी नहीं है।
सिर्फ भारत ने एक अनूठे शब्द का प्रयोग किया है, मोक्ष। दुनिया के किसी दूसरे धर्म ने, दुनिया की किसी जाति ने मोक्ष की कल्पना नहीं की है।
स्वर्ग और नरक सारी दुनिया को पता हैं। इस्लाम या ईसाइयत या यहूदी, स्वर्ग और नरक से परिचित हैं। मोक्ष की धारणा एकांतिक रूप से भारतीय है।
मोक्ष का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति, जो नरक से तो मुक्त हुआ ही, स्वर्ग से
भी मुक्त है। जिसने बुरे को तो छोड़ा ही, भले को भी छोड़ा।
इसे समझना बहुत कठिन है, क्योंकि भला हमें लगता है, छोड़ने का सवाल ही नहीं है। लेकिन तब हमें जीवन की गहरी व्यवस्था का कोई अनुभव नहीं है। भले के पीछे बुरा तो छिपा ही रहेगा।
अगर आप कहते हैं कि मैं सत्य ही बोलता हूं, सदा सत्य ही बोलूंगा, और सदा सत्य को पकड़े रहूंगा! तो एक बात पक्की है, आपके भीतर झूठ भी उठता है। नहीं तो आपको सत्य का पता कैसे चलेगा! सत्य को आप बचाएंगे कैसे! सत्य को सम्हालेंगे कैसे! झूठ भीतर मौजूद है, उसके विरोध में ही सत्य उठता है। अगर आप कहते हैं, मैं ब्रह्मचर्य का साधक हूं, मैं ब्रह्मचर्य को पकड़े रहूंगा, मैं कभी ब्रह्मचर्य को छोडूंगा नहीं! तो उसका अर्थ है, कामवासना आपके भीतर लहरें लेती है। जिसके भीतर कामवासना समाप्त हो गई, उसको ब्रह्मचर्य का पता भी नहीं चलेगा।
जिसकी बीमारी बिल्कुल मिट गई, उसे स्वास्थ्य का भी पता नहीं चलेगा। इसलिए जब आप बीमार पड़ते हैं और स्वस्थ होते हैं, तब आपको स्वास्थ्य की थोड़ी-सी झलक मिलती है। बीमारी में गिरने के बाद जब आप पहली दफे स्वस्थ होना शुरू होते हैं, तब आपको पता चलता है, स्वास्थ्य क्या है। अगर आप सदा ही स्वस्थ रहें, आपको स्वास्थ्य भूल जाएगा; उसका आपको कोई स्मरण ही नहीं रहेगा।
दुख के कारण सुख का पता चलता है; बुरे के कारण भले का पता चलता है।
मोक्ष का अर्थ है, अब मेरे दोनों ही बंधन न रहे; अब मैं मुक्त हूं; मेरा कोई चुनाव नहीं। न यह संपदा मेरी है, न वह संपदा मेरी है। संपदाएं ही मैंने छोड़ दी हैं। यह परम दशा है। यह परमहंस की अवस्था है।
अभी जहां आप खड़े हैं, अगर जगत आपको बुरा लगे, तो समझना कि आसुरी संपदा आपकी आंखों पर छाई है। अगर जगत अच्छा लगे, तो समझना कि दैवी संपदा ने आपको घेरा है। जगत दोनों लगे और दोनों में संतुलन दिखाई पड़े, तो समझना कि साक्षी के स्वर का जन्म हुआ है।
उस तीसरे की खोज जारी रखनी है। जब तक वह न हो जाए, तब तक समझना कि अभी
हम धर्म के मंदिर के बाहर ही भटकते हैं, अभी हमारा भीतर प्रवेश नहीं हुआ है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि मनुष्य दैवी और आसुरी संपदा बराबर मात्रा में लेकर पैदा होता है। तब ऐसा क्यों है कि इस जगत में आसुरी संपदा ही अधिक फूलती-फलती नजर आती है? दैवी संपदा की फसल इतनी दुर्लभ क्यों है?

आसुरी संपदा फूलती-फलती नजर आती है, क्योंकि वही हमारी कामना है। एक चोर सफल होता हमें दिखाई पड़ता है। एक चोर धन को इकट्ठा कर लेता है, प्रतिष्ठा बना लेता है। हमारे मन में कांटा चुभता है इससे। चाहते तो हम भी

इसी तरह का महल, इसी तरह का धन, इसी तरह की पद-प्रतिष्ठा हैं। चोरी करने की भी हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं और चोर ने जो जुटा लिया है, उसकी भी आकांक्षा मन में है; उससे मन को चोट लगती है। उससे मन कहता है कि चोर फल-फूल रहा है। हम साधु हैं और फल-फूल नहीं रहे हैं।
अगर आप साधु हैं, तो आपको दिखाई पड़ेगा कि चोर दुख पा रहा है। अगर आप असाधु हैं, तो दिखाई पड़ेगा कि चोर सफल हो रहा है।
दुनिया में दो तरह के चोर हैं बड़ी मात्रा में। एक वे, जो चोरी की हिम्मत कर लेते हैं; और एक वे, जो चोरी की हिम्मत नहीं करते, सिर्फ विचार करते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम अपना जीवन संतोष से बिताते हैं, बुरा काम नहीं करते, किसी को चोट नहीं पहुंचाते, फिर भी असफलता हाथ लगती है। और देखें, फलां आदमी ब्लैक मार्केटिंग कर रहा है, कि स्मगलिंग कर रहा है, कि चोर है, बेईमान है, धोखाधड़ी कर रहा है, और सफल हो रहा है!
उसकी सफलता आपको सफलता दिखाई पड़ती है, क्योंकि आप भी वैसी ही सफलता चाहते हैं। अगर सच में ही आपका साधु-चित्त होता, तो आपको उस आदमी की पीड़ा भी दिखाई पड़ती। भला उसने महल खड़ा कर लिया हो, लेकिन महल के भीतर वह जिस संताप से गुजर रहा है, वह आपको दिखाई पड़ता।
उस संताप से आपको कोई प्रयोजन नहीं है। उसकी भीतरी पीड़ा से आपको कोई प्रयोजन नहीं है। उसका बाहर जो ठाठ है, वह आपको दिखाई पड़ रहा है, क्योंकि बाहर का ठाठ आप भी चाहते हैं! जो उसने पा लिया है, वह आप नहीं पा सके, इससे मन में कांटा चुभता है। इसलिए वह सफल लगता है और स्वयं आप असफल लगते हैं। सिर्फ बुरा आदमी ही बुरे आदमी की सफलता को सफलता मान सकता है। भले आदमी को तो दया आएगी; भले आदमी को बुरे आदमी पर दया आएगी। क्योंकि वह उसके भीतर देखेगा, झांकेगा, और पाएगा कि उसने धन तो इकट्ठा कर लिया, स्वयं को खो दिया। वह पाएगा कि उसने संपदा तो इकट्ठी कर ली, लेकिन शांति नष्ट हो गई। वह पाएगा कि उसके पास साधन तो काफी इकट्ठे हो गए, लेकिन वह खुद भटक गया है। उसके जीवन की सफलता साधु-चित्त व्यक्ति को आत्मघात जैसी मालूम पड़ेगी। उसने अपने को सड़ा डाला, उसने अपने को बेच लिया।
लेकिन हमें हो सकता है दिखाई पड़े कि आदमी सफल हो रहा है, बुरा आदमी सफल
हो रहा है। रोज चारों तरफ लोगों को दिखाई पड़ता है, बुरे आदमी सफल हो रहे हैं।
बुरा आदमी सफल हो ही नहीं सकता। और अगर सफल होता दिखाई पड़े, तो समझना
कि आपकी सफलता की व्याख्या में कहीं कोई भ्रांति है। बुरा आदमी तो असफल होगा ही।
मैंने सुना है, सिकंदर अपने साम्राज्य को बढ़ाता हुआ नील नदी के किनारे पहुंचा। रास्ते में उसने न मालूम कितनी सीमाएं तोड़ीं, कितने राज्य नष्ट किए, कितनी सेनाओं को पराजित किया, लेकिन नील नदी के किनारे पहुंचकर उसको बड़े अचंभे का अनुभव हुआ। जगह-जगह उसे प्रतिरोध मिला, टक्कर मिली। लोग हारे, तो भी आखिरी दम तक लड़े। लेकिन नील नदी के किनारे जब वह आया, तो उसे स्वागत मिला--वंदनवार, फूलों की वर्षा, निमंत्रण, उत्सव--लड़ने का कोई सवाल ही नहीं! वह चकित भी हुआ, हैरान भी हुआ।
जिस पहले नगर में उसने प्रवेश किया, नगर के लोगों ने पूरी सिकंदर की फौजों को निमंत्रण दिया, रात्रि-भोज का आयोजन किया। सुंदरतम भोजन, शराब, नृत्य-संगीत की व्यवस्था की। सिकंदर चकित भी था, हैरान भी था। यह कौन-सा ढंग है दुश्मन के प्रवेश पर स्वागत करने का! थोड़ा लज्जित भी था। क्योंकि वे तलवार लेकर खड़े होते, तो सिकंदर उन्हें जीत लेता। लेकिन वे प्रेम लेकर खड़े हुए, तो जीतना मुश्किल मालूम पड़ेगा।
जब उसके सामने भोजन की थाली लाई गई, तो वह एकदम नाराज हो गया; उसने जोर
से घूंसा मारा टेबल पर और कहा कि यह क्या है? मेरा मजाक किया जा रहा है? क्योंकि थाली में सोने की रोटी थी, हीरे-जवाहरातों की सब्जियां थीं। सिकंदर ने कहा कि तुम मूढ़ तो नहीं हो? शक तो मुझे तभी हुआ। जब मैं गांव में प्रवेश किया कि यह पागलों का गांव है, क्योंकि तुम लड़े नहीं, उलटे तुमने स्वागत किया। हम जीतने आए हैं; तुमने हमें फूलमालाएं पहनाईं। शक तो मुझे

तभी हुआ; लेकिन अब बिल्कुल पक्का हो गया कि तुम्हारे दिमाग खराब हैं। सोने की रोटी खाई नहीं जाती!
तो एक बूढ़े आदमी ने, जो गांव का सर्वाधिक बूढ़ा था, उसने कहा, अगर गेहूं
की रोटी ही खानी थी, तो वह तो आपको अपने घर ही मिल जाती। हम सोचे कि इतनी तकलीफ उठाकर आ रहे हैं, तो सोने की रोटी की तलाश होगी!
वह जो चोर है, लुटेरा है, बदमाश है, आपको उसकी सोने की रोटी दिखाई पड़ती है। लेकिन सोने की रोटी कोई खा तो पा नहीं सकता, भीतर भूखा मरता है। और आपको सोने की रोटी में सफलता दिखाई पड़ती है, क्योंकि आकांक्षा वही आपकी भी है; आप वही खुद भी चाहते हैं।
जो हम चाहते हैं, उससे ही हमारी संपदा का पता चलता है। अगर चोर आपको सफल होता दिखाई पड़ता है, तो आप चोर हैं। भला आपने कभी चोरी न की हो। अगर आपको चोर सफल होता हुआ मालूम होगा, तो साधु आपको असफल होता हुआ मालूम होगा। तो आप दया कर सकते हैं साधु पर। ईर्ष्या आपकी चोर से है। साधु को आप कह सकते हैं कि भोला-भाला है, जाने भी दो। समझ इसकी कुछ है नहीं। लेकिन ईर्ष्या आपकी चोर से है, प्रतियोगिता चोर से है।
पहली बात तो यह समझ लें कि बुराई कभी भी सफल नहीं होती, सफल होती दिखाई
पड़ सकती है। देखने में भूल है, भ्रांति है। भलाई सदा सफल होती है, असफल होती दिखाई पड़ सकती है। क्योंकि बुराई की सफलता बाहर-बाहर है, भलाई की सफलता आंतरिक है।
इस जगत में जिन्होंने थोड़ा भी आनंद जाना है, उन्होंने भलाई के कारण जाना है। जिन्होंने महा दुख झेला है, उन्होंने बुराई के कारण झेला है। अगर हम हिटलर और चंगेज और तैमूर के हृदय उघाड़कर देख सकें, तो हमें महानरक का दर्शन होगा। लेकिन इतिहास में नाम उनके हैं; सदा रहेंगे। आप भी सोच सकते हैं कि सफल हुए; बड़े साम्राज्य उन्होंने खड़े किए हैं, तो आप भी सोच सकते हैं, सफल हुए।
वस्तुतः जो सफल हुए हैं इस जमीन पर, शायद उनका नाम भी इतिहास में नहीं है, उनके नाम का आपको पता भी नहीं है। कौन सफल होता है जीवन में? जिसे शांति का अनुभव हो जाए, जिसे आनंद की प्रतीति हो जाए, जिसे समाधि की झलक मिल जाए।
अगर मुझसे पूछें सफलता की परिभाषा, तो समाधि सफलता की परिभाषा है। जिन्हें समाधि का थोड़ा रस आ जाए, जो नाच उठें समाधि में, जिनका हृदय पुलकित हो उठे समाधि में, वे ही केवल सफल हैं।
और बुरा कभी समाधिस्थ नहीं हो सकता। बुरा तो संतप्त ही होगा, चिंतित होगा। उसका मन धीरे-धीरे और नारकीय, और नारकीय होता चला जाएगा।
तो पहली बात तो यह, आसुरी संपदा फूलती-फलती दिखाई पड़ती है, क्योंकि उसी संपदा की चाह हमारे भीतर है। आसुरी संपदा कभी फली-फूली नहीं है। जिनके मन में दैवी संपदा की चाह है, वे हमेशा देखेंगे कि आसुरी संपदा सदा भटकी है, दुखी हुई है; कभी फली-फूली नहीं, सदा नष्ट हुई है।
और दूसरी बात, दैवी संपदा की फसल इतनी दुर्लभ क्यों है?
दुर्लभ इसलिए है कि जीवन के कुछ नियम समझ लें, तो ख्याल में आ जाए।
एक, कि बुरा करने के लिए आपको कुछ भी करना नहीं पड़ता, वह ढाल है। पानी
को बहा दिया, पानी अपने आप गड्ढों में चला जाता है। गड्ढों में जाने के लिए पानी को कुछ करना नहीं पड़ता। पहाड़ पर चढ़ना हो, तो बड़ी कठिनाई है। फिर पानी को चढ़ाने का आयोजन करना पड़ता है। आयोजन में श्रम होगा। आयोजन में असफलता भी हो सकती है।
बुरा ढलान है। बुरे का मतलब यह है कि जो हमसे नीचे है। भले का अर्थ है
कि जो हमसे ऊपर है। बुरे का अर्थ है, जहां से हम गुजर चुके। हम पशु थे, पौधे थे। वहां से हम गुजर चुके। अगर आप वापस लौटना चाहते हैं, तो बिल्कुल आसान है।
ऐसा समझें कि एक व्यक्ति स्कूल में परीक्षाएं पार कर-करके मैट्रिक में पहुंच गया है। अगर वह पहली की परीक्षा फिर से देना चाहे, तो क्या कठिनाई होगी! कोई कठिनाई न होगी। अगर वह पहली कक्षा में प्रवेश पाना चाहे, तो कोई अड़चन नहीं है, कोई उसे रोकेगा भी नहीं। और वह बड़ा सफल भी होगा पहली कक्षा में!

जहां से हम गुजर चुके हैं, विकास की जिन सीढ़ियों को हम पार कर चुके हैं, उनमें वापस उतरना हमेशा आसान है। बूढ़े से बूढ़े आदमी को अगर आप क्रोध में ला दें, तो वह बच्चे के जैसा व्यवहार करने लगता है। वह बिल्कुल आसान है। बच्चे का मतलब है, वापस लौट जाना। होशियार से होशियार आदमी भी क्रोध में आ जाए, तो नासमझी का व्यवहार करता है, जो बचकाना है। बच्चों की तरह पैर पटक सकता है, सामान तोड़ सकता है, चीख-पुकार मचा सकता है। यह रिग्रेशन है, पीछे लौटना है।
पीछे लौटना हमेशा आसान है। क्योंकि पीछे लौटने का मतलब है, वहां से हम गुजर चुके हैं, वह रास्ता परिचित है, उसे पाने के लिए कोई खोज नहीं करनी है।
दैवी संपदा का अर्थ है कि हमें आगे बढ़ना है, ऊंचाई छूनी है। जितनी ऊंचाई छूनी है, उतना श्रम होगा। और जितनी ऊंचाई छूने की हम कोशिश करेंगे, उतनी भूल-चूक भी होगी, हम गिरेंगे भी।
याद रखें, केवल वही गिरता है, जो ऊंचा उठना चाहता है। नीचे गिरने वाले
को तो गिरने का कोई कारण ही नहीं है।
दैवी संपदा हमसे ऊपर है, उसके लिए हाथ बढ़ाने पड़ें, यात्रा करनी पड़े, हिमालय के शिखर की तरह हमें गौरीशंकर की तरफ बढ़ना पड़े। उसमें अड़चन होगी ही, असफलता भी हो सकती है; गिरेंगे भी, कभी रास्ता भी खो जाएगा। नीचे उतरने के लिए न गिरने का कोई डर है, न रास्ता खोने का कोई डर है; रास्ता परिचित है, जाना-माना है, उससे हम गुजर चुके हैं। और फिर नीचे उतरने में कोई प्रतिरोध न होने से सुगमता है। ऊपर चढ़ने में सारे शरीर पर जोर पड़ेगा।
अमेरिका का बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ, थामस अल्वा एडिसन। उसने कोई एक हजार आविष्कार किए। दूसरे किसी मनुष्य ने इतने आविष्कार नहीं किए। छोटे से लेकर बड़े तक, बिजली, रेडियो, टेलीफोन, अनेक आविष्कार उसने किए हैं। उसका घर आविष्कारों से भरा था। लोग उसके घर आते थे, तो चकित होते थे, क्योंकि सब चीजों में उसने कुछ न कुछ किया था। उसके पूरे घर में नए-नए आविष्कार थे। पानी की टोंटी के नीचे हाथ रखिए और पानी गिरने लगे, खोलने की जरूरत नहीं; हाथ अलग करिए और पानी बंद हो जाए!
एक दिन अमेरिका का प्रेसिडेंट उसके घर उसके आविष्कार देखने गया था।
हर चीज देखकर चकित हुआ। उसने अनूठे-अनूठे यंत्र खोजे थे। चलते वक्त अमेरिकी प्रेसिडेंट ने कहा, और सब तो ठीक है, एक बात मेरी समझ में नहीं आई। तुम जैसा आविष्कारक बुद्धि का आदमी, जिसने घर को आविष्कारों से भर रखा है, जिसकी हर चीज अनूठी और तिलिस्मी है, लेकिन तुम्हारे मकान का जो बगीचे का दरवाजा है, वह इतना भारी है कि खोलने में बड़ी ताकत लगती है। तुम्हें इसका ख्याल नहीं आया?
उसने कहा, आप समझे नहीं। ख्याल मुझे है। जो आदमी भी मेरा दरवाजा एक बार खोलता है, पांच गैलन पानी मेरी टंकी में पहुंच जाता है। तो मैं नौकर नहीं रखे हुए हूं। जो देखने आने वाले हैं--दिनभर आते हैं--वे खोलते, बंद करते हैं। बस, हर बार खोलो, बंद करो, तो पांच गैलन पानी दरवाजा ऊपर फेंक रहा है।
जब भी कुछ ऊपर भेजना हो, तो थोड़ा श्रम तो होगा, थोड़ा भारी भी लगेगा, क्योंकि हम नियम जीवन के तोड़ रहे हैं।
जमीन चीजों को नीचे की तरफ खींचती है; ग्रेविटेशन है। पत्थर को आप ऊपर
की तरफ फेंकते हैं, तो आपका हाथ थकता है, चोट लगती है। जितनी जोर से ऊंचा फेंकेंगे, उतनी ज्यादा शक्ति खोएगी। लेकिन पत्थर फिर नीचे चला आता है। जैसे ही आपकी भेजी हुई ऊर्जा पत्थर में चुक जाती है, जमीन उसे नीचे खींच लेती है। नीचे खींचते वक्त किसी ताकत की जरूरत नहीं पड़ती, जमीन स्वभावतः चीजों को नीचे खींच रही है।
आसुरी संपदा ग्रेविटेशन है, वह जमीन की कशिश है।
छोटा बच्चा एकदम खड़ा नहीं हो सकता मां के पेट से पैदा होकर। क्योंकि खड़े होने का मतलब है, ग्रेविटेशन से लड़ना, वह जो जमीन की कशिश है। इसलिए बच्चा पहले जमीन पर लेटकर सरकता है। वह जमीन खींच रही है; अभी बच्चा खड़ा होगा, तो फौरन गिरेगा। तो सरकेगा, फिर घुटनों के बल अपने को सम्हालेगा। वह जमीन की कशिश से ऊपर उठने की कोशिश कर रहा है। फिर किसी का सहारा लेकर खड़ा

होगा। फिर अपने भरोसे पर दो कदम चलेगा; लेकिन गिरेगा, घुटने टूटेंगे, चोट लगेगी। फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे... । और पैर उसके समर्थ हैं, वह खड़ा हो सकता है, शरीर उसका पूरा का पूरा तैयार है, लेकिन ग्रेविटेशन से संघर्ष करना होगा। फिर एक दिन आएगा कि वह अपने को संतुलित कर लेगा, खड़ा हो जाएगा।
फिर आपको खड़ा होना आसान मालूम पड़ता है। लेकिन अभी भी जब भी आप थक जाते हैं, तो लेटना ही पड़ता है। क्योंकि खड़े होने में, चाहे आपको कितना ही आसान हो गया हो, जमीन आपको खींच रही है और थका रही है। इसलिए खड़े-खड़े हम थक जाते हैं। जब भी थक जाते हैं, तब हमें जमीन पर लेटना पड़ता है।
रात सोकर हमें जो सुख मिलता है, वह जमीन की कशिश से लड़ाई छोड़ देने के कारण! तो हम समतल जमीन पर सो जाते हैं; फिर छोटे बच्चे हो गए, फिर जमीन से हमारी कोई लड़ाई नहीं है। हमने स्वीकार कर लिया। रातभर हमको विश्राम मिल जाता है। सुबह हम फिर खड़े होने में समर्थ हो जाते हैं।
खड़े होने का मतलब संघर्ष है। और अगर आदमी उड़ना चाहे, तो और बड़ा संघर्ष है, क्योंकि फिर जमीन से बिल्कुल उसको अपनी मुक्ति चाहिए।
आसुरी संपदा जमीन की कशिश जैसी है। सुगम है। बुरा होने के लिए कोई बड़ी चिंतना नहीं करनी पड़ती। बुरा होने के लिए कोई बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है।
अपराधियों के अध्ययन किए गए हैं। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अपराधियों में नब्बे प्रतिशत जड़बुद्धि होते हैं, ईडिआटिक होते हैं, उनके पास कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। पर बड़ी हैरानी की बात है कि वे बुद्धिहीन जो हैं, वे बुराई करके कई दफा हमें सफल होते भी दिखाई पड़ते हैं। बुद्धिमान हारता दिखाई पड़ जाए, बुद्धिहीन सफल होते दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि बुद्धिहीन में एक क्षमता तो है, वह क्षमता है नीचे गिरने की। अगर नीचे गिरने में ही प्रतियोगिता हो, तो वह आपसे जीत जाएगा। और हम सभी उसके साथ प्रतियोगिता कर रहे हैं। इसलिए वह हमें जीतता मालूम पड़ता है।
जो जितना नीचे गिर सकता है, उतने जल्दी सफल हो जाएगा। चाहे धन की दौड़ हो, चाहे राजनीति की दौड़ हो, वह जो बुरा आदमी है, सफल हो जाता है, क्योंकि वह ज्यादा नीचे गिर सकता है। दो राजनीतिज्ञों में वह राजनीतिज्ञ जीत जाएगा, जो ज्यादा नीचे गिर सकता है; उसको कम श्रम पड़ेगा।
मैंने सुना है कि विंसटन चर्चिल एक चुनाव में जिस क्षेत्र से लड़ रहे थे, एक बूढ़े आदमी के पास वोट मांगने गए थे। उनके विरोध में कोई खड़ा था। उस बूढ़े आदमी ने कहा कि मैं सोचूंगा। चर्चिल ने उस पर दबाव डाला और कहा, कुछ तो कहो; कुछ तो धारणा बना ही लो; अब चुनाव करीब आ रहा है।
तो उस आदमी ने कहा, तुम मानते नहीं तो मैं कहूं कि मैं यही प्रार्थना करता हूं भगवान से कि तेरी बड़ी कृपा है कि दो में से एक ही जीत पाएगा। क्योंकि दोनों उपद्रवी हैं, और इतना ही अच्छा है कि दोनों नहीं जीतेंगे, एक ही जीतेगा। कम से कम एक ही बुराई जीतेगी।
मैंने सुना है, एक किसान एक बार स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। उसे बड़ी उदासी हुई वहां, जो हाल उसने देखा। बड़ी देर तक दरवाजा खटखटाता रहा, किसी ने फिक्र ही न की। तब उसने देखा कि उसके पीछे एक राजनीतिज्ञ है, जो उसके बाद में मरा और उसके बाद स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। उसने जाकर दस्तक दी। दस्तक दी नहीं कि द्वार खुल गए। द्वारपाल ने उसे भीतर ले लिया।
वह किसान तो खड़ा ही रहा। सोचने लगा मन में कि शायद यहां भी मेरी कोई चिंता होने वाली नहीं है। राजनीतिज्ञ यहां भी जीत जाएगा। और भीतर बैंड-बाजों की आवाज आने लगी। राजनीतिज्ञ का स्वागत हो रहा है।
फिर थोड़ी देर बाद जब बैंड-बाजे बंद हो गए, द्वार खुला; किसान को भीतर
ले जाया गया। उसने सोचा कि शायद अब बैंड-बाजे मेरे लिए भी बजेंगे। वे नहीं बजे! तो उसने द्वारपाल से पूछा कि यह पक्षपात यहां भी है? द्वारपाल ने कहा, पक्षपात जरा भी नहीं है। तुम्हारे जैसे लोग तो रोज यहां आते हैं। यह कोई हजारों साल के बाद राजनीतिज्ञ स्वर्ग में आया है। इसका विशेष स्वागत होना ही चाहिए।
राजनीति में भला होना मुश्किल है; भला होने वाला हारेगा। क्योंकि वहां गिरने की प्रतियोगिता है, कौन कितना गहरा गिर सकता है!

धर्म राजनीति से उलटी यात्रा है। वहां ऊपर आकाश में उड़ने की प्रतियोगिता है, कौन कितना पृथ्वी के आकर्षण से दूर जा सकता है! वहां कठिनाई पड़नी शुरू हो जाएगी। जितने आप दूर जाएंगे, उतनी ही पृथ्वी खींचेगी और संघर्ष बढ़ेगा। लेकिन उसी संघर्ष से आत्मा का जन्म होता है। उसी तनाव से, उसी प्रतिरोध से, उसी संयम से आपके भीतर व्यक्तित्व निर्मित होता है, इंटीग्रेशन घटता है, आप केंद्रित होते हैं।
तो यह ठीक है। दैवी संपदा की फसल इतनी दुर्लभ इसलिए है। और इसलिए भी
कि हमारे चारों ओर सभी लोग आसुरी संपदा को पैदा करने में लगे हैं। और आदमी जीता है भीड़ से; भीड़ का अनुगमन करता है। भीड़ जहां जाती है, आप भी चल पड़ते हैं। आपके मां-बाप, आपका परिवार, आपका समाज जो कर रहा है, बच्चा पैदा होता है, वही बच्चा सीख लेता है; वह भी करना शुरू कर देता है।
आसुरी संपदा के लिए शिक्षण की काफी सुविधा है। दैवी संपदा के लिए शिक्षण की कोई सुविधा नहीं मालूम पड़ती। और जिस चीज की सुविधा हो उस तरफ आसानी हो जाती है, हम उसमें कुशल हो जाते हैं। जिस तरफ कोई सुविधा न हो, उस तरफ हमारे अंग पंगु हो जाते हैं।
आप चलते हैं, इसलिए पैरों में गति है, जान है। आप मत चलें, पैर सिकुड़ जाएंगे, पैरालाइज्ड हो जाएंगे, लकवा लग जाएगा। आप देखते हैं, तो आंखें सजग हैं। मत देखें, अंधेरे में रहे आएं, थोड़े दिन में आंखें अंधी हो जाएंगी। आप सुनते हैं, तो कान तेज हैं। संगीतज्ञ के कान सबसे ज्यादा तेज हो जाते हैं। क्योंकि सुनने के लिए वह इतना आतुर होता है, एक छोटी से छोटी ध्वनि के परिवर्तन को वह पकड़ना चाहता है। चित्रकार की आंखें सतेज हो जाती हैं। दार्शनिक की बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है।
आप जो करते हैं, वह कुशल हो जाता है। आप जो नहीं करते हैं, उसमें आप अकुशल हो जाते हैं। अगर जन्म से ही हमारी आंखों पर पट्टियां बांध दी जाएं, और फिर जब हम जवान हो जाएं तब पट्टियां खोली जाएं, तो हम सब अंधे ही पट्टियों के बाहर आएंगे।
वैज्ञानिक कहते हैं कि तीन साल तक कोई भी इंद्रिय काम न करे, तो जड़ हो जाएगी।
और आसुरी संपदा का तो हम उपयोग कर रहे हैं जन्मों-जन्मों से, दैवी संपदा का हमने उपयोग नहीं किया जन्मों-जन्मों से, इसलिए कठिन मालूम पड़ती है। वहां भूमि सख्त हो गई है। उस पर हमने कभी न हल चलाया, न कुछ खेती की, न बीज डाले। सब सूख गया है। पठार हो गया है, पत्थर जैसा मालूम होता है। जिस तरफ हम खेती करते रहे हैं, वहां आसानी मालूम होती है, वहां जमीन तैयार है, वहां जमीन फुसफुसी है, वहां बीज पकड़ना आसान है।
लेकिन कितनी ही कठिन हो दैवी संपदा की फसल, एक बार जो करना शुरू कर देगा, वह पाएगा कि वह कठिनाई भी कठिन नहीं है। और एक बार स्वाद आ जाए, तो आपको पता चलेगा कि आसुरी संपदा बड़ी कठिन थी, पुरानी आदत की वजह से सरल मालूम पड़ती थी। कठिनाइयां उसमें बहुत थीं, दुख बहुत था, दुख ही दुख था। जहां फसल सरलता से हो जाती हो, लेकिन फल सदा दुख के ही हाथ लगते हों, उस सरलता का मूल्य भी क्या है? भला फसल कठिनाई की हो, लेकिन फल आनंद के लगते हों, तो उसे सरल और सहज ही मानना होगा।
जिन्होंने भी जाना है, उन सबने कहा है कि वह समाधि बड़ी सहज है, बड़ी सरल है; वह अंतिम उपलब्धि कठिन नहीं है। लेकिन हमें तो कठिन लगती है। क्योंकि हमने उस तरफ कोई कदम नहीं उठाया। हमने उस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उस दिशा में हमने कोई कदम ही नहीं उठाया है, कोई यात्रा ही नहीं की है; हमारे पैर उस तरफ पंगु हैं।
तो बैठकर सोचते मत रहें कि वह कठिन है, कुछ करें और उसे सरल बनाएं। करने से चीजें सरल होती हैं।
आप कभी पानी में नहीं तैरे हैं, तो बहुत कठिन लगेगा। और आप यह भरोसा ही नहीं कर सकते कि आपको पानी में छोड़ दिया जाए, तो आप बच सकेंगे। लेकिन जो लोग तैरने की कला सिखाते हैं, वे कुछ भी नहीं करते; वे सिर्फ आपको पानी में छोड़ते हैं। पानी में छोड़ते से ही आप हाथ-पैर तड़फड़ाने लगते हैं बचाने के लिए खुद को। तैरना तो आपको आता नहीं, तैरने का तो आपको कोई पता नहीं, अपने को बचाने के लिए हाथ-पैर तड़फड़ाते हैं।

यह हाथ-पैर तड़फड़ाना ही तैरने की शुरुआत है। फिर इसको ही थोड़ी व्यवस्था से फेंकने लगेंगे, तैरना हो जाएगा। थोड़ी व्यवस्था ही सीखनी है। अभी थोड़ा अस्तव्यस्त फेंकते हैं, अराजक। फिर सिस्टम हो जाएगी, फिर आप ढंग से फेंकने लगेंगे। एक दफा ढंग से फेंकना आ गया, तो आप पाएंगे कि तैरने से सरल और कुछ भी नहीं हो सकता। अभी तो तैरने में लगेगा कि जान जाने का खतरा है, अगर नहीं जानते तो।
शुरू करें! यह ऊपर की तरफ जो उड़ान है, यह भी एक तैरना है। शुरू में कठिनाई होगी; स्वाभाविक है। जैसे-जैसे अभ्यास गहन होगा, वैसे-वैसे कठिनाई बदलती जाएगी। और एक ऐसा क्षण आता है, जब समाधि ही एकमात्र सरलता रह जाती है। तब बुरे होने से ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं होता।

अब हम सूत्र को लें।
और उन आसुरी पुरुषों के विचार इस प्रकार के होते हैं, कि मैंने आज यह
तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह भविष्य में और अधिक होवेगा।
आसुरी संपदा के व्यक्ति को और की दौड़ होती है। उसके पास जो भी हो, उसे
वह और बढ़ा लेना चाहता है। जो भी उसके पास हो, उतनी मात्रा उसे कभी काफी नहीं मालूम पड़ती।
आसुरी संपदा का व्यक्ति मात्रा में बड़ा उत्सुक होता है, क्वांटिटी में उत्सुक होता है। दस रुपए हों, तो हजार हो जाएं; हजार हों, तो दस हजार हो जाएं; दस हजार हों, तो दस करोड़ हो जाएं; उसकी मात्रा बढ़ती जाती है। आंकड़ों में जीता है, कितने बड़े आंकड़ों का फैलाव हो जाए! और उसकी पकड़ है। उसके पास जो भी है, वह कम है।
दूसरी बात, उसके पास जो भी है, उसमें उसे कोई सुख नहीं है। सुख सदा वहां है, जो उसके पास नहीं है।
आसुरी संपदा वाले व्यक्ति को सुख सदा आकाश में कहीं दूर है। आसुरी संपदा वाला व्यक्ति आशा में जीता है। जो उसके पास है, उसमें तो कुछ खास रस नहीं है। ठीक है। जो नहीं है, आनंद वहां छिपा है। और जब तक वह उसे न पा ले, तब तक आनंदित न हो सकेगा। वह दौड़ता रहता है। आज नष्ट करता है कल के लिए। कल को फिर नष्ट करेगा और आगे आने वाले कल के लिए। ऐसे पूरे जीवन को वह नष्ट करता जाएगा और जीने को पोस्टपोन करता रहेगा। वह कहेगा कि कल जब सब मेरे पास होगा, तब मैं जीऊंगा।
जर्मनी का एक विचारक हुआ। उसके पास बहुत धन था, और अध्ययन की बड़ी रुचि थी, और बड़ी आकांक्षा थी कि जितना ज्यादा से ज्यादा जान सकूं, जान लूं। तो उसने दुनियाभर से जो भी अनूठी से अनूठी पुस्तकें हों, दुर्लभ शास्त्र हों, अनेक भाषाओं के शास्त्र इकट्ठे करने शुरू कर दिए।
उसके पास विशाल पुस्तकालय खड़ा हो गया। पचासों भाषाओं की पुस्तकें उसके पास इकट्ठी हो गईं। ऐसा कोई ग्रंथ नहीं था दुनिया में, जो उसने खोजकर इकट्ठा न कर लिया हो। लेकिन यह इकट्ठा करते-करते उसने पाया कि वह नब्बे वर्ष का हो गया है। जब उसे होश आया कि इकट्ठा तो मैंने कर लिया, लेकिन इसको मैं पढूंगा कब!
और कहते हैं, यह धक्का उस पर इतना भारी पड़ा कि यह धक्का ही उसकी मृत्यु
का कारण हुआ। और यह नब्बे वर्ष वह रोज सोच रहा था, कल! कल! और इकट्ठा हो जाए! और इकट्ठा हो जाए! पहले इकट्ठा कर लूं, फिर अध्ययन कर लूंगा, फिर ज्ञान को उपलब्ध हो जाऊंगा।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति भी ऐसे ही दौड़ता रहता है। धन इकट्ठा करता है। पद इकट्ठा करता है। उसे सुविधा तो कभी मिल ही नहीं पाती कि वह उसका उपयोग कर ले। आगे की दौड़ उसे पकड़े रहती है। और रोज को वह कुर्बान करता है भविष्य के लिए, वर्तमान को वह बलि चढ़ाता है भविष्य के लिए।
और ध्यान रहे, वर्तमान के अतिरिक्त किसी चीज की कोई सत्ता नहीं है। भविष्य तो बिल्कुल सपना है। जो आज को खो रहा है कल के लिए, वह आज को व्यर्थ ही खो रहा है। और एक बार यह आदत बन गई आज को खोने की, तो मैं सदा आज को खोता रहूंगा। और जब भी समय आता है, वह आज की तरह आता है; कल तो कभी आता नहीं।

और यह जो और की दौड़ है, इसका कोई भी अंत नहीं हो सकता, क्योंकि यह हर चीज पर जुड़ जाएगी। जो भी आप पा लेंगे, आपका आसुरी संपदा वाला मन कहेगा, और! आप सोच भी नहीं सकते कोई ऐसी स्थिति, जब आपका मन कहे कि बस, काफी!
आप सोचें, कभी एकांत में बैठकर यही सोचें कि कितना धन आपको मिल जाए, तो आपका मन और नहीं कहेगा। तो आप अपने साथ ही खेल में पड़ जाएंगे। पहले सोचेंगे, दस करोड़। लेकिन भीतर--अभी कोई दस करोड़ दे भी नहीं रहा है, मिल भी नहीं गए हैं--लेकिन भीतर कोई कहेगा, इतने कम पर राजी क्यों होते हो जब दस अरब हो सकते हैं!
तो जो आपको आखिरी संख्या मालूम है, वहां तक तो आपका मन दौड़ाएगा। और आखिरी संख्या पर भी आपको बेचैनी अनुभव होगी कि और गणित क्यों न सीख लिया! और गणित जानते, तो आज यह मुसीबत तो न होती। आज अटक गए यहां आकर, दस महाशंख या एक करोड़ महाशंख, कहां अब... जो संख्या आती है, वह भी छोटी मालूम पड़ेगी। सारी दुनिया आपको मिल जाए, तो भी छोटी मालूम पड़ेगी।
सिकंदर को किसी ने कहा कि तू जीत तो रहा है दुनिया को, लेकिन अगर तूने दुनिया जीत ली तो मुश्किल में पड़ेगा। सिकंदर ने कहा, कौन-सी मुसीबत होगी? जिसने कहा था, वह था डायोजनीज, एक फकीर। उसने कहा, तब तुझे पता चलेगा कि दूसरी दुनिया नहीं है; मुसीबत में पड़ जाएगा। एक दफे पूरी दुनिया जीत ली, तब तुझे पता चलेगा कि दूसरी दुनिया नहीं है।
और कहते हैं कि सिकंदर उसी क्षण उदास हो गया। और उसने कहा कि ऐसी उदासी की बातें मत करो। पहले मुझे एक तो जीतने दो। लेकिन चित्त उसका उदास हो गया यह बात सोचकर ही कि एक जीतने के बाद फिर दूसरी कोई दुनिया नहीं है। और कहीं भी थकेगा नहीं, और की मांग चलती ही जाएगी।
दैवी संपदा वाला व्यक्ति आज, यहीं जो उसके पास है, जो वह है, उसको परिपूर्णता से जीता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसका विकास नहीं होता। उसका ही विकास होता है। और भी निकलता है आज से, लेकिन वह उसकी मांग नहीं करता।
वह आज को जीने से उसका और निकलता है। और उसकी मांग नहीं है, उसके जीवन का फल है।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति आज तो जीता नहीं, और को सोचता रहता है। उसका
और केवल मन पर दौड़ रहा है; वह जीवन का फल नहीं है।
तो यह विरोधाभासी बात आप समझ लें। आसुरी संपदा वाला सोचता है, और! और! और! और जितना सोचता है उतना कम होता जाता है, क्योंकि जीवन क्षीण हो रहा है। दैवी संपदा वाला और का विचार नहीं करता, जो है, उसको पूरे के पूरे समस्त भाव से स्वीकार करके डूबता है। इस डूबने से और निकलता है, और बहुत कुछ उसे मिलता है।
जीसस से किसी ने पूछा कि क्या यह भी हो सकता है कि हम परमात्मा को भी खोजें और संसार के सुख भी हमें मिल जाएं? तो जीसस ने कहा, तुम संसार के सुखों की बात सोचो ही मत। फर्स्ट यी सीक दि किंगडम आफ गॉड, देन आल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। पहले तुम परमात्मा को खोज लो, फिर सब उसके पीछे चला आएगा। वह जो परमात्मा का तलाशी है, दैवी संपदा का जो व्यक्ति है, वह इसी क्षण में परमात्मा की तलाश कर रहा है। शेष सब भी आता है, लेकिन उस शेष सबकी उसकी कोई मांग नहीं है।
जितनी हो मांग कम, उतना ज्यादा मिलता है। जो मांगते हैं, भिखारी रह जाते हैं। जो नहीं मांगते, सम्राट हो जाते हैं। जीवन बड़ा पहेली से भरा हुआ है! जो मांगते हैं, भिखारी रह जाते हैं। उनके पास जो है, वह भी छिन जाता है। जो नहीं मांगते, सम्राट हो जाते हैं; जो उनके पास नहीं था, वह भी मिल जाता है।
जीसस का एक बहुत विरोधाभासी वचन है। जीसस ने कहा है, अगर तुम मांगोगे,
तो जो तुम्हारे पास है, वह भी छीन लिया जाएगा। और अगर तुम बांटोगे, तो जो तुम्हारे पास नहीं है, वह भी दे दिया जाएगा।
ऐसा ही है और ऐसा ही प्रतिपल हो रहा है। जो-जो आपने जीवन में मांगा है,
वह कुछ भी आपके पास है नहीं। जो-जो आपने जीवन में दिया है, छोड़ दिया है, वह सब आपके पास है। जिसे हम छोड़ देते हैं, वह सदा के लिए हमारा हो जाता है। और जिसे हम पकड़ लेते हैं, वह सदा के लिए बोझ हो जाता है, और छूटने की तैयारी करता रहता है।

मैंने आज यह तो पाया है और इस मनोरथ को प्राप्त होऊंगा तथा मेरे पास
यह इतना धन है फिर भी यह भविष्य में और अधिक होएगा। तथा वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा। मैं ऐश्वर्यवान हूं, ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और मैं सब सिद्धियों से युक्त बलवान एवं सुखी हूं।
यह बड़ा समझने जैसा है।
हमेशा आसुरी संपदा वाला व्यक्ति दूसरों को नष्ट करने की कामना से भरा रहता है, कैसे दूसरों को मिटा दूं! क्योंकि वह सोचता है, जब कोई भी न होगा, तब मैं परिपूर्ण हो जाऊंगा। अगर इस पृथ्वी पर कोई न हो, तो मैं ही सम्राट होऊंगा। तो जो भी मेरे विपरीत है, उसको मिटा दूं; जो भी मुझसे अन्यथा है, उसको नष्ट कर दूं; ताकि मेरा साम्राज्य अबाध हो।
दैवी संपदा का व्यक्ति दूसरे को मिटाने का विचार नहीं करता। दैवी संपदा का व्यक्ति अपने को मिटाने का विचार करता है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। क्योंकि वह कहता है, जब तक मैं हूं, तभी तक कष्ट रहेगा। जब मैं नहीं रहूंगा, शून्य हो जाऊंगा, तब आनंद हो जाएगा।
दैवी संपदा के व्यक्ति का साम्राज्य उसके अहंकार के खो जाने पर उपलब्ध होता है। आसुरी संपदा के व्यक्ति के साम्राज्य की आकांक्षा दूसरों को मिटाने में है, कितना मैं दूसरों को मिटा दूं।
आसुरी संपदा का व्यक्ति आपको जिंदा छोड़ सकता है, अगर आप उसके सामने मुरदे की भांति हो जाएं। आसुरी संपदा का व्यक्ति विवाह करे, तो पत्नी को वस्तु बना देगा; वह मार डालेगा बिल्कुल। उसको इस हालत में कर देगा कि उसमें कोई जीवन न बचे। वह कहे रात, तो रात। वह कहे दिन, तो दिन। आसुरी संपदा की स्त्री हो, तो पति को बिल्कुल मिट्टी कर देगी। उसको छाया की भांति चलाना चाहेगी। आसुरी संपदा का पिता हो, तो बेटों को पोंछ देगा। उनको बड़ा करेगा, लेकिन ऐसे, जैसे वे मुरदे हैं। उनकी कोई स्वतंत्रता, उनकी कोई गरिमा नहीं बचने देगा।
आसुरी संपदा का व्यक्ति दुश्मनों को मार डालता है। मित्रों को मरे हुए कर देता है। उससे मित्रता रखनी हो तो मुरदा होना जरूरी है।
मैं आज ही इजिप्त के शाह फारूख के जीवन के संबंध में कुछ पढ़ रहा था। एक व्यक्ति ने संस्मरण लिखा है। वह व्यक्ति जड़ी-बूटियों के द्वारा चिकित्सा करता है। तो शाह फारूख ने उसे अपने इलाज के लिए बुलाया था। जब वह पहुंचा, तो शाह फारूख अपने मंत्रियों के साथ ताश खेल रहा था, जुआ खेल रहा था। उसका प्रधानमंत्री, उसके और मंत्री। यह व्यक्ति भी बैठकर चुपचाप देखता रहा। क्योंकि जब फारूख निपट ले, तब बात हो!
यह देखकर हैरान हुआ कि चाहे पत्ते मंत्रियों के पास अच्छे हों, तो भी शाह फारूख ही जीतता है। चाहे उसके पत्तों में कोई जान न हो, तो भी वही जीतता है।
शाह फारूख को भी लगा कि यह आदमी देखकर चकित हो रहा है, हैरान हो रहा है। तो उसने कहा, चकित होने की कोई बात नहीं है; ये सब मेरे नौकर हैं और मेरी आज्ञा मानना उनका फर्ज है। और शाह फारूख ने अपने प्रधानमंत्री से, जो उसके साथ ताश खेल रहा था, उससे कहा कि धोखा देने की कोई जरूरत नहीं, बस हार जाओ। उसी वक्त उसने पत्ते डाल दिए और हार गया।
यह जो आसुरी संपदा वाला व्यक्ति है, दुश्मनों को मिटा डालता है, क्योंकि वे झुकने को तैयार नहीं होते। मित्रों को पोंछ डालता है, उनके जीवन में कुछ सत्व नहीं बचने देता। आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर आपको लगेगा कि वह आपको चूस रहा है, नष्ट कर रहा है।
दैवी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर आपको लगेगा कि वह आपको जीवन दे रहा है। आपकी कुम्हलाई हुई जिंदगी फिर से ताजी हो रही है। दैवी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर आपको लगेगा, आपका भी मूल्य है; आप भी स्वीकार किए गए हैं, स्वागत है। आप भी एक धन्यता हैं। छोटे से छोटे व्यक्ति को भी दैवी संपदा वाले व्यक्ति के पास बैठकर लगेगा, उसका कोई मूल्य है; जगत में उसका भी कोई अर्थ है। वह व्यर्थ नहीं है, बोझ नहीं है।
आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के पास श्रेष्ठ से श्रेष्ठ व्यक्ति को भी बैठकर लगेगा, उसका जीवन तुच्छ है। जिसके पास पहुंचकर आपको ऐसा लगे कि आपको

तुच्छ किया जा रहा है, तो समझना कि आसुरी संपदा काम कर रही है। अगर आप दूसरों को तुच्छ करने की वृत्ति से भरे हों, तो समझना कि आप आसुरी संपदा से भरे हैं।
दूसरे की गरिमा और गौरव को स्वीकार करने का आपका मन हो, दूसरे का निजी मूल्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में साध्य है, वह कोई साधन नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में परम मूल्य है, अल्टिमेट वैल्यू है। अगर दूसरे व्यक्ति के प्रति आपका ऐसा सदभाव हो, तो आप में दैवी संपदा का जन्म होगा।
जर्मनी के बहुत बड़े विचारक इमेनुएल कांट ने अपने नीति-शास्त्र का एक आधार-स्तंभ रखा है। और वह आधार-स्तंभ है कि दूसरे व्यक्ति को साधन की तरह मत देखो, साध्य की तरह देखो।
दूसरा व्यक्ति आपका साधन नहीं है कि आप उसका उपयोग कर लो। दूसरा व्यक्ति अपने आप में साध्य है, उसका उपयोग करना गलत है। उसका उपयोग करने का अर्थ यह हुआ कि आप उससे वस्तु की तरह व्यवहार कर रहे हैं। लेकिन हमारी हालत यह है कि हमें अपनी वस्तु, मुरदा वस्तु भी एक जीवित व्यक्ति से ज्यादा मालूम पड़ती है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर कर रहा था। बड़ी खचाखच भीड़ थी उस डिब्बे में और वह अपना लोहे का बड़ा वजनी संदूक ऊपर की सीट पर चढ़ाने की कोशिश कर रहा था। नीचे बैठी एक स्त्री ने कहा कि महानुभाव, वहां मत रखिए, ऊपर गिर पड़ेगा। वजनी बहुत है, और बहुत भारी और लोहे का है। नसरुद्दीन ने कहा, देवी जी, आप बिल्कुल बेफिक्र रहिए; उसमें टूट जाने वाली कोई भी चीज नहीं।
वह जो महिला बैठी है, उसका सिर टूट जाने का सवाल ही नहीं है। उनके संदूक में टूटने वाली कोई चीज नहीं है।
हम सबकी जीवन-दशा ऐसी है। दूसरे का सिर भी कम कीमत का है, हमारा संदूक
भी ज्यादा कीमती है। व्यक्ति का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है।
आसुरी संपदा वाले व्यक्ति के लिए व्यक्ति है ही नहीं, व्यक्तित्व की कोई गरिमा नहीं है। शत्रुओं को वह नष्ट करना चाहता है। और निरंतर सोचता है, आज शत्रु को मारा; वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया, दूसरों को भी मैं कल मारूंगा! वह सदा मारने की तैयारी में लगा है। उसकी चिंतना विध्वंस की है। वह मृत्यु का आराधक है। वह यमदूत है।
ठीक उससे विपरीत सृजन की जो आराधना है, क्रिएटिविटी, कि मैं कुछ निर्मित करूं, कुछ बनाऊं; जहां कुछ भी नहीं था, वहां कुछ निर्मित हो; जहां जमीन खाली पड़ी थी, वहां एक पौधा उगे; कुछ बने--वह जो सृजन की आराधना है, वही ईश्वर की तरफ जाने का मार्ग है।
इधर मैं आपको कहना चाहूं कि दुनिया के सभी धर्मों ने ईश्वर को स्रष्टा कहा है। ईश्वर को स्रष्टा सिद्ध करना आसान नहीं। दुनिया की कभी सृष्टि हुई है, इसके लिए प्रमाण जुटाना आसान नहीं। और एक बात तो निश्चित है कि उस सृष्टि के क्षण में हममें से कोई भी नहीं था, इसलिए कोई गवाही नहीं दे सकता। और जो भी हम कहेंगे, वह सिर्फ कल्पना होगी। क्योंकि अगर हम मौजूद थे, तो सृष्टि उसके पहले ही हो चुकी थी।
तो सृष्टि के प्राथमिक क्षण का तो हमें कोई पता नहीं है। हम कल्पना कर सकते हैं कि परमात्मा ने बनाई, कि नहीं बनाई, कि क्या हुआ। लेकिन वह सिर्फ मानसिक विलास होगा।
लेकिन फिर भी दुनिया के अधिक धर्म परमात्मा के स्रष्टा होने पर जोर क्यों देते हैं? कुछ कारण है। और वह कारण यह है कि जिस व्यक्ति को भी सृजन पकड़ लेता है, जो व्यक्ति भी अपने जीवन में स्रष्टा हो जाता है, उसे परमात्मा का अनुभव शुरू होता है। इस अनुभव से यह प्रमाण मिलता है कि इस जगत की गहनतम स्थिति सृजनात्मक है। परमात्मा स्रष्टा है, यह स्रष्टा अगर हम हों, तो हमें पता चलता है।
अगर आप एक गीत भी जन्म दे सकें, तो उस गीत को जन्म देने के क्षण में आप में परमात्म-भाव प्रकट होता है। आप एक चित्र भी बना सकें, एक मूर्ति खोद सकें, एक बच्चे को निर्मित कर सकें, बड़ा कर सकें--कुछ भी--एक पौधे को भी आप

सम्हाल लें, और उसमें फूल आ जाएं, तो उन क्षणों में जो आपको प्रतीति होती है, वह परमात्मा की छोटी-सी झलक है।
विध्वंस परमात्म-विरोध है; सृजन परमात्मा की तरफ प्रार्थना है। और जो प्रार्थना सृजनात्मक न हो, वह प्रार्थना बांझ है, उस प्रार्थना का कोई भी मूल्य नहीं। मंदिर में बैठकर आप चीख-पुकार करते रहें, उससे कुछ बहुत हल होने वाला नहीं है। उतनी शक्ति सृजन में लग जाए, तो प्रार्थना सजीव हो उठेगी। जब आप स्रष्टा होते हैं, तभी आप परमात्मा के निकट होते हैं।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति, मैं ऐश्वर्यवान हूं, ऐश्वर्य को भोगने वाला हूं और मैं सब सिद्धियों से युक्त एवं बलवान हूं और सुखी हूं, ऐसी मान्यता रखता है।
सुखी तो होता नहीं, लेकिन मान्यता ऐसी रखता है कि मैं सुखी हूं; ऐसा अपने को समझाता है। यह बहुत मनोवैज्ञानिक सत्य है। हम जो नहीं होते, अपने को समझाने की कोशिश करते हैं। कमजोर आदमी अपने को शक्तिशाली समझता है। कमजोर आदमी अपने को समझाता है कि मैं महाशक्तिशाली हूं।
मैं एक स्कूल में पढ़ता था। मेरे जो हिंदी के शिक्षक थे, वे कक्षा में हमेशा, पहले दिन से ही आना शुरू हुए, तो अपनी बहादुरी की बातें करते थे, कि मैं इतना हिम्मतवर हूं, कि चाहे अमावस की रात हो तो भी मरघट पर चला जाता हूं।
दो-चार बार मैंने उनसे सुना, तो मैंने एक बार उनसे पूछा कि मुझे शक होता है। इसमें कोई बहादुरी की बात भी नहीं है। और कहने की तो कोई जरूरत भी नहीं। आपके भीतर डर है। मरघट आप जा नहीं सकते।
उनके चेहरे पर पसीना आ गया। उन्होंने कहा, तुम्हें कैसे पता चला? मैंने कहा, पता चलने की बात ही नहीं। आप इतनी दफा दोहराते हैं। यह दोहराना बताता है कि आप अपने को समझा रहे हैं।
कुरूप आदमी दोहराता रहता है कि मैं सुंदर हूं। मूढ़ समझाता रहता है कि मैं बुद्धिमान हूं। कमजोर समझाता रहता है कि मैं ताकतवर हूं, और इसको सिद्ध करने की जगह-जगह कोशिश भी करता है। क्योंकि अपने से कमजोर आदमी तो खोज लेना हमेशा आसान है। अपने से मूढ़ भी खोज लेना आसान है। जगत इतना बड़ा है; आप अकेले नहीं हैं। काफी जगह है।
तो वह जो कमजोर आदमी है, अपने से कमजोर खोज लेता है। उनकी छाती पर चढ़कर
वह सिद्ध कर लेता है कि मैं निश्चित ही बलवान हूं। आप अपने से मूढ़ को खोज लेते हैं!
और ध्यान रहे, हम सदा यही कोशिश करते हैं कि हमसे कमजोर, हमसे मूढ़ हमें मिल जाए। क्योंकि उसके पास हम बड़े मालूम होते हैं। लगता है, हम कुछ हैं। इससे प्रतीति हम अपने भीतर कर लेते हैं कि सब ठीक है।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक हुआ, एडलर। उसने एक मनोविज्ञान को जन्म दिया, इंडिविजुअल साइकोलाजी। और उस मनोविज्ञान का आधार-स्तंभ उसने हीनता की ग्रंथि बनाया। उसका कहना है कि जिस व्यक्ति में जो चीज हीन होती है, वह उसके विपरीत रूप अपने आस-पास खड़ा करता है, ताकि खुद भी भूल जाए, दूसरे भी भूल जाएं। उसने बड़ा गहरा अध्ययन किया और उसने कहा कि जितने लोग दुनिया में जिन-जिन चीजों के पीछे पागल होते हैं, वह पागलपन बताता है कि वही उनकी कमजोरी है।
हिटलर जैसा व्यक्ति, यह किसी हीनता की ग्रंथि से पीड़ित है। और जब तक
वह अपने को नहीं समझा लेगा कि मैं सारी दुनिया का मालिक हो गया, तब तक उसको शांति न मिलेगी। जो लोग पैर से कमजोर हैं, वे दौड़ने की कोशिश करते हैं। विपरीत की कोशिश चलती है, ताकि हम अपने को भी दिखा दें, दुनिया को भी दिखा दें कि नहीं, यह बात नहीं है। कौन कहता है कि हम कमजोर हैं! कौन कहता है हमारे पैर कमजोर हैं! कौन कहता है हमारी आंख कमजोर है!
वह एक जगह बोल रहा था, तो एक बड़ी मजेदार घटना घटी। वह समझा रहा था कि जिन लोगों में जो-जो चीज की हीनता होती है, उस-उस की वे तलाश में जाते हैं। जैसे जिस आदमी को गरीबी की बड़ी ग्लानि होती है, वह धन की कोशिश करता है। जिस आदमी को अपने पद में हीनता दिखाई पड़ती है, वह पद-प्रतिष्ठा, राष्ट्रपति होने की दौड़ में लग जाता है। जो कुरूप होता है, वह सौंदर्य की तलाश करने लगता है।

एक आदमी खड़ा हो गया और उसने कहा कि क्या यह बात आप पर भी लागू है? एडलर कुछ समझा नहीं। वह आदमी बड़ी गहरी मजाक कर रहा था। उसने कहा कि क्या इसका मतलब है कि जिसका मन कमजोर होता है, वह मनोवैज्ञानिक हो जाता है!
लेकिन एडलर की बात में सचाई है।
कृष्ण भी वही बात कह रहे हैं; कह रहे हैं कि ऐसा आदमी सुखी होता नहीं,
हो नहीं सकता, लेकिन मानता है कि मैं सुखी हूं। और गौरव से इसका प्रचार करता है कि मैं सुखी हूं। उसके प्रचार के कारण आप भी धोखे में आ जाते हैं। आपके राजनीतिज्ञ हैं, बड़े पदों पर हैं। उनको देखकर बाहर से आपको ऐसा लगेगा कि बड़े प्रसन्न हैं, फूलमालाएं डाली जा रही हैं, और बड़ा आनंद ही आनंद है। काश, उनके जीवन में आपको झांकने का मौका मिल जाए, तो वे बड़े दुखी हैं और बड़े परेशान हैं। और किसी तरह अपनी फजीहत न हो जाए बिल्कुल, इसको बचाने में लगे हुए हैं। और फजीहत पूरे क्षण हो रही है। लेकिन वे जब बाहर निकलते हैं, तो मुस्कुराते निकलते हैं।
उनकी मुस्कुराहट बिल्कुल ऊपर से पोती गई है, पेंटेड है, क्योंकि भीतर
वे रो रहे हैं और परेशान हैं। और एक क्षण की उनको सुविधा नहीं है, सुख नहीं है, शांति नहीं है। लेकिन बाहर वे दिखलाने की कोशिश करते हैं कि बड़े प्रसन्न हैं, बड़े आनंदित हैं। उससे आपको भी भ्रम पैदा होता है।
आप भी जब घर से बाहर निकलते हैं, तो दूसरों को भ्रम पैदा करवाते हैं कि बड़े प्रसन्न हैं। घर में कोई मेहमान आ जाए, तो पति-पत्नी ऐसी प्रेमपूर्ण बातें करने लगते हैं, जैसी उन्होंने कभी नहीं कीं। घर में कोई न हो, तब उनका असली रूप दिखाई पड़ता है। शिष्टाचार है, सभ्यता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन अपने पति से बोली कि पच्चीस साल हो
गए विवाहित हुए--कोई मेहमान घर आया था, उसके सामने ही उसने यह बात उठानी ठीक समझी, नसरुद्दीन शायद लज्जित हो जाए--पच्चीस साल हो गए, मैं इस घर में बंदिनी होकर रह रही हूं। कभी हम एक बार भी एक साथ घूमने भी घर के बाहर नहीं निकले!
नसरुद्दीन ने कहा, फजलू की मां, बात का इतना बतंगड़ मत बनाओ। इतनी बात बढ़ा-चढ़ाकर मत कहो। अतिशयोक्ति की तुम्हें आदत हो गई है। जब एक बार घर में स्टोव फट गया था, तो हम दोनों साथ-साथ बाहर निकले थे कि नहीं?
घर-घर में वैसा है। लेकिन बाहर पति-पत्नी को देखें, सिनेमा की तरफ जाते, बाजार की तरफ जाते, तो ऐसा लगेगा कि परम सुख भोग रहे हैं।
हर कहानी कहती है, जहां शादी हो जाती है राजकुमारी और राजकुमार की, फिर वे दोनों सुख से रहने लगे। यहीं खतम हो जाती है। और इससे बड़ा कोई झूठ नहीं हो सकता। यहीं से दुख की शुरुआत होती है। उसके पहले थोड़ा-बहुत सुख रहा भी हो कल्पना में, आशा में। लेकिन सब कहानियां यहीं बंद हो जाती हैं। यह उचित भी है, क्योंकि इसके बाद आगे बात उठानी अशिष्टाचार की होगी। यहीं बंद कर देना ठीक है।
हम सब बाहर एक रूप बनाए हुए हैं। सुखी नहीं हैं, लेकिन दिखा रहे हैं कि सुखी हैं। दीन हैं, लेकिन दिखा रहे हैं कि दीन नहीं हैं। चाहे हमें उधार चीजें लेकर भी प्रभाव पैदा करना पड़े, घर में कोई मेहमान आ जाए, तो पड़ोस से सोफा उठा लाना पड़े, तो भी कोई बात नहीं, लेकिन हम दिखा रहे हैं।
आसुरी संपदा वाला व्यक्ति अपनी दीनता को छिपाकर उसका विपरीत रूप प्रकट करता रहता है। तो वह कहता है, मैं ऐश्वर्यवान हूं। वह कहता है कि मैं ऐश्वर्यों का भोगने वाला हूं। वह कहता है कि मैं सब सिद्धियों से युक्त हूं; कि मैं बलवान हूं, मैं सुखी हूं।
ये कोई भी बातें सच नहीं हैं। ये बातें तो सच होती हैं दैवी संपदा वाले को, कि वह ऐश्वर्यवान हो जाता है, ईश्वर हो जाता है; कि सारी सिद्धियां उसे सिद्ध हो जाती हैं; कि सारे सुख, सारी शक्तियां उसके ऊपर बरस जाती हैं। यह घटना तो घटती है दैवी संपदा वाले को। लेकिन आसुरी संपदा वाला मानकर चलता है कि ऐसा है; और इसका प्रचार भी करता है। और प्रचार अगर ठीक से किया जाए, तो दूसरों को भी भरोसा आ जाता है। और अगर दूसरों को भरोसा आ जाए, तो हो सकता है, जिसने प्रचार किया है, उसको भी भरोसा आ जाए; कि इतने लोग मानते हैं, तो ठीक ही मानते होंगे।

मैं बड़ा धनवान, बड़े कुटुंब वाला हूं, मेरे समान दूसरा कौन है! मैं यज्ञ करूंगा, दान देऊंगा, हर्ष को प्राप्त होऊंगा--इस प्रकार के अज्ञान से आसुरी मनुष्य मोहित है।
यह कुछ करने वाला नहीं है; न वह यज्ञ करने वाला है, न वह दान देने वाला है; लेकिन सोचता है कि मैं दूंगा। अच्छी बातें वह सदा सोचता है कि मैं करूंगा, करता तो सब बुरी बातें है, लेकिन सोचता हमेशा अच्छी बातें है। इस सोचने से एक बड़ी सुविधा हो जाती है। वह सुविधा यह है कि उसको लगता है कि मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूं।
आप भी सब यह करते हैं। अच्छी-अच्छी बातें सोचते हैं, करेंगे! ऐसा सोचने से खुद को भी लगने लगता है कि जब करने की सोच रहे हैं, तो कर ही रहे हैं। और देरी क्या है, आज नहीं तो कल करेंगे, लेकिन करना तो निश्चित है! कभी आप करने वाले नहीं। क्योंकि पचास साल जी चुके, इस पचास साल में कभी नहीं किए। आगे कैसे करेंगे? कौन करेगा? आप ही करने वाले हैं, और आप रोज टालते जाते हैं।
बुरे को आप आज कर लेते हैं, अच्छे को सोचते हैं, करेंगे। उससे मन में ख्याल बना रहता है कि मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूं। अगर मजबूरी की वजह से थोड़ा बुरा करना भी पड़ रहा है, तो यह तो केवल अस्थायी है, यह तो परिस्थितिवश है। लेकिन भाव तो मेरा अच्छा करने का है। उस भाव के कारण बुरा आदमी अपनी बुराई को झेलने में समर्थ हो जाता है। उस भाव के कारण बुरा आदमी बुराई के कांटे को चुभने नहीं देता। वह भाव सुरक्षा बन जाता है।
मैं यज्ञ करूंगा, दान करूंगा, हर्ष को प्राप्त होऊंगा--इस प्रकार के अज्ञान से आसुरी मनुष्य मोहित है। यह उसकी आटो-हिप्नोसिस है, यह उसका मोह है।
यह मोहित शब्द समझ लेने जैसा है। मोहित का अर्थ है कि ऐसे भाव से वह अपने को समझा लेता है। और जो समझा लेता है, वैसा ही हो जाता है। वह मानने ही लगता है, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, बिना दान किए मानने लगता है कि मैं दानी हूं; क्योंकि दान करने का विचार करता है। बिना दिए दाता बन जाता है! क्योंकि इतनी बार सोचा है, सोचते-सोचते हमारे मन में लकीरें पड़ जाती हैं। पश्चिम में एक विचारक हुआ एमाइल कुए। वह लोगों को कहता था, कुछ और करने की जरूरत नहीं; जो भी तुम होना चाहते हो, उसको सोचो। अगर तुम स्वस्थ होना चाहते हो, तो निरंतर सोचते रहो कि मैं स्वस्थ हो रहा हूं, स्वस्थ हो रहा हूं, स्वस्थ हो गया हूं।
इसका परिणाम होगा। इसके परिणाम होते हैं। भला आप स्वस्थ हों या न हों, लेकिन आपको प्रतीति होने लगती है कि आप स्वस्थ हो गए।
एक घटना है, एमाइल कुए का एक मित्र एक दिन रास्ते पर उसे मिला। तो कुए
ने पूछा कि तुम्हारी मां की तबियत अब कैसी है? तो उसके मित्र ने कहा कि अब तो तबियत बड़ी खराब है। बीमारी बढ़ती जा रही है; बुरी तरह बीमार है मेरी मां। बचने की कोई उम्मीद नहीं है। एमाइल कुए ने कहा, गलत। यह सिर्फ उसका ख्याल है। यह ख्याल है उसका कि वह बीमार है। यह ख्याल मिट जाए, वह ठीक हो जाएगी। फिर कुछ दिन बाद दुबारा रास्ते पर मिलना हुआ, तो एमाइल कुए ने पूछा कि
अब तुम्हारी मां की कैसी हालत है? तो उसने कहा, अब उसका ख्याल है कि वह मर गई है। पहले ख्याल था, आपने बताया था, कि बीमार है। अब मर गई है, तब यही समझना चाहिए कि उसका ख्याल है कि मर गई है!
अगर आप एक विचार को बहुत बार दोहराते रहे हैं, तो उसकी एक तंद्रा आपके आस-पास निर्मित हो जाती है, वह सम्मोहन है। और बुरा आदमी अपने को सम्मोहित किए रहता है भले विचारों से, हर्ष को उपलब्ध होऊंगा, दान करूंगा... ।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब मरा, तो उसने वसीयत लिखी। जब वह वसीयत लिखवा रहा था, उसने कहा कि इतना मेरी पत्नी को, इतना मेरे बेटे को, इतना मेरी बेटी को। संपत्ति का विभाजन किया कि आधा मेरी पत्नी को, फिर आधे का आधा मेरे बेटे को, फिर उसके आधे का आधा लड़की को... । यह सब बांटकर और उसने कहा कि अब जो भी बचे, वह गरीबों को।
वह जो वकील लिख रहा था, उसने कहा कि बचता तो अब इसमें कुछ भी नहीं है! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि बचने का सवाल ही नहीं है; वह तो मुझे पता है। है तो मेरे पास कुछ भी नहीं, इसीलिए तो कह रहा हूं, आधा मेरी पत्नी को;

संख्या नहीं लिखवा रहा हूं। है तो कुछ भी नहीं। मिलना तो पत्नी को भी कुछ नहीं है, बेटे को भी, लेकिन मरते वक्त अच्छे ख्याल... । और फिर जो बच जाए, वह गरीबों को! और कहा है धर्मशास्त्रों में कि अच्छे ख्यालों से जो मरता है, वह अच्छे लोक को उपलब्ध होता है। यह तो अच्छे ख्याल की बात है।
बुरा आदमी निरंतर अच्छे ख्याल सोचता रहता है। और एक तंद्रा निर्मित करता है अपने आस-पास। बार-बार पुनरुक्त करने से सुझाव भीतर बैठ जाते हैं। वह सोचता है, हर्ष को प्राप्त होऊंगा, दान दूंगा, यज्ञ करूंगा। लेकिन यह सब भविष्य, करूंगा। करता नहीं। करता इनके विपरीत है, छीनता है।
अगर आप चोरी करने जा रहे हों, और चोरी करते वक्त आप सोचें कि हर्ज क्या है, अमीर से छीन रहा हूं, गरीब को बांट दूंगा, दान करूंगा। तो चोरी का पाप और जो दंश है, वह मिट जाता है। फिर आपको लगता है कि आप एक काम, एक धार्मिक काम ही कर रहे हैं। अमीर से छीन रहे हैं, गरीब को देंगे।
छीन आप अभी रहे हैं, देने की बात कल्पना में है। वह देना कभी होने वाला नहीं है। क्योंकि छीनने वाला चित्त देगा कैसे? वह मौका लगेगा तो गरीब से भी छीन लेगा। सोचेगा, और भी गरीब हैं इससे ज्यादा, उनको दूंगा। और आखिर में वह पाएगा, अपने से ज्यादा गरीब कोई भी नहीं है। इसलिए जितना छीन लिया, उसे अपने काम में ले आना चाहिए।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने पड़ोसी के घर में गया, और उसने कहा कि क्या आप कुछ विचार करेंगे! एक बूढ़ी विधवा, जो दस साल से मकान में रह रही है और दस साल से किराया नहीं चुका पाई है। और किराया चुकाने का कोई उपाय भी नहीं है। आज उसे उसका मकान मालिक मकान के बाहर निकाल रहा है। कुछ सहायता करें। तो जिससे उसने सहायता मांगी थी, सोचकर कि यह बूढ़ा आदमी बेचारा उस वृद्धा की सहायता के लिए आया है, उसने कहा, जो भी आप कहें, मैं सहायता करूंगा। कुछ रुपए उसने दिए। और उसने कहा, मित्रों को भी कहूंगा। लेकिन आप कौन हैं उस वृद्धा के? बड़े दयालु मालूम पड़ते हैं।
नसरुद्दीन ने कहा, मैं! मैं मकान मालिक हूं। दस साल से वृद्धा बिना किराया दिए रह रही है।
वह सोच रहा है कि वृद्धा की सहायता करने चला है!
यह जो हमारा चित्त है, यह बड़े प्रवंचक नुस्खे जानता है और उनके उपयोग करता है। और बहुत दिन उपयोग करने पर आपको उनका पता भी चलना बंद हो जाता है। वे अनेक प्रकार से भ्रमित हुए चित्त वाले अज्ञानीजन मोहरूप जाल में फंसे हुए एवं विषय-भोगों में अत्यंत आसक्त हुए अपवित्र नरक में गिरते हैं।
नरक से कुछ अर्थ नहीं है कि कहीं कोई पाताल में छिपा हुआ कोई पीड़ागृह
है, जहां उनको गिरा दिया जाता है। ये केवल प्रतीक हैं। ऐसी भावनाओं में जीने वाला व्यक्ति नरक में गिर ही गया। वह नरक में जीता ही है। उसके भीतर प्रतिपल आग जलती रहती है विषाद की, दुख की, पीड़ा की। उसका संताप गहन है। क्योंकि जिसने कभी सुख न बांटा हो, उसे सुख नहीं मिल सकता। और जिसने सदा दुख ही बांटा हो, उसे दुख ही घनीभूत होकर मिलता है। वह दुख उस पर बरसता रहता है। उस दुख की वर्षा ही नरक है।
जो हम देते हैं, वह हमारे पास अनंतगुना होकर लौट आता है। फिर हम सुख दें तो, हम दुख दें तो। हम वही अर्जित कर लेते हैं, जो हम बांटते हैं।
ऐसा व्यक्ति, जो दुख देता है और सुख देने की केवल कल्पना करता है, वह दुख पाता है और सुख की केवल आशा कर सकता है। उसे सुख मिल नहीं सकता। हमारे वास्तविक कृत्य ही हमारे जीवन में परिणाम लाते हैं, वे हमारी निष्पत्तियां हैं। जो हम करते हैं, वही हमारी निष्पत्ति बनता है।
अगर आप दुख पा रहे हैं, तो आप निरंतर ऐसा ही सोचते हैं कि लोग बहुत बुरे हैं, इसलिए दुख दे रहे हैं। आप दुख इसलिए पा रहे हैं कि दुख आपने बांटा है आज, पीछे, कल और पीछे कल। आप वही पा रहे हैं, जो आपने बांटा है। बुद्ध को किसी पागल आदमी ने मारने की, हत्या करने की कोशिश की; एक पागल हाथी उनके ऊपर छोड़ा। एक पहाड़ के नीचे बैठकर ध्यान करते थे, तो चट्टान ऊपर से सरकाई।
बुद्ध के शिष्यों ने बुद्ध को कहा कि यह आदमी महान दुष्ट है। बुद्ध ने कहा, ऐसा मत कहो। मैंने उसे कभी कोई दुख दिया होगा, वही दुख मुझ पर वापस लौट

रहा है। और मैं इस खाते को बंद कर देना चाहता हूं। इसलिए उसे चट्टान गिराने दो; उसे पागल हाथी छोड़ने दो; और मैं कोई प्रतिक्रिया न करूं, मैं कुछ भी न कहूं इस संबंध में अब; अब इस चीज को आगे बढ़ाना नहीं है। क्योंकि इतना भी मैं कहूं कि वह दुष्ट है, तो फिर मैं उसे दुख देने का उपाय कर रहा हूं। यह बात भी उसको चोट पहुंचाएगी कि दुष्ट है, ऐसा मैंने कहा। यह बात भी उसको कांटा बनेगी, फिर इसका प्रतिफल होगा। तो वह जो कर रहा है, वह मैंने कुछ किया होगा, उसका प्रतिफल है। और इस खाते को मैं यहीं समाप्त कर देना चाहता हूं। यह किताब अब बंद कर देनी है। उसे कर लेने दो। और मैं अब कुछ भी न करूंगा, कोई भी प्रतिक्रिया, ताकि आगे के लिए कोई भी लेन-देन निर्मित न हो। जब भी हमें दुख मिलता है, हम सोचते हैं, लोग हमें दुख दे रहे हैं। वह हमारी भ्रांति है। कोई आपको क्यों दुख देने चला? किसी को क्या प्रयोजन है? किसको फुरसत है? लोगों को अपना जीवन जीना है कि आपको दुख देने का उपाय करना है?
नहीं, कहीं कोई आपने निर्मिति की है; कहीं कोई प्रतिध्वनि आपने फेंकी थी, वह आज वापस लौट रही है। उसे इस भांति जो चुपचाप स्वीकार कर लेता है, उसके दुखों के जो अतीत के बोझ हैं, वे कट जाते हैं और नए बोझ निर्मित नहीं होते।
और अगर कभी आपको कोई सुख मिलता है, तो भी आप जानना कि आपने कोई सुख बांटा होगा, जाने या अनजाने, उसका प्रतिफल है।
अगर हम अपने सुखों और दुखों को अपने ही कर्मों का प्रतिफल समझ लें, तो कर्म का सिद्धांत हमारी समझ में आ गया। कर्म का सिद्धांत बस सार में इतना ही है कि मुझे वही मिलता है, जो मैंने किया है। मैं वही फसल काटता हूं, जो मैंने बोई है; अन्यथा कुछ भी हो नहीं सकता।
ऐसी चित्त की दशा बनती चली जाए, तो आप धीरे-धीरे आसुरी संपदा से मुक्त होकर दैवी संपदा में प्रवेश कर जाएंगे। इससे विपरीत अपने को आप आदत बनाते रहें, तो आसुरी संपदा में धीरे-धीरे थिर हो जाएंगे। ऐसे थिर हो गए लोग, कृष्ण कहते हैं, महानरक में गिर जाते हैं।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
सातवां प्रवचन

जीवन की दिशा

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।। 17।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।। 18।।
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।। 19।।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।। 20।।
वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमंडी पुरुष धन और मान के मद से युक्त हुए, शास्त्र-विधि से रहित केवल नाममात्र के यज्ञों द्वारा पाखंड से यजन करते हैं।
तथा वे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि के परायण हुए एवं दूसरों
की निंदा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाले हैं।
ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बारंबार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं।
इसलिए हे अर्जुन, वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए, मेरे को न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल कहा गया कि दुनिया में अच्छाई और बुराई का संतुलन है। ये दोनों सदा ही सम परिमाण हैं। एक बुरा मिटता है, तो अच्छा भी कम होता है। अगर इस संतुलन में कभी बदल होने वाला नहीं है, तो साधना का प्रयोजन क्या है?

प्रश्न महत्वपूर्ण है। साधकों को गहराई से सोचने जैसा है।
साधना के संबंध में हमारे मन में यह भ्रांति होती है कि साधना भलाई को बढ़ाने के लिए है। साधना का कोई संबंध भलाई को बढ़ाने से नहीं है; न साधना का कोई संबंध बुराई को कम करने से है। साधना का संबंध तो दोनों का अतिक्रमण, दोनों के पार हो जाने से है। साधना न तो अंधेरे को मिटाना चाहती है, न प्रकाश को बढ़ाना चाहती है। साधना तो आपको दोनों का साक्षी बनाना चाहती है।
इस जगत में तीन दशाएं हैं। एक बुरे मन की दशा है, एक अच्छे मन की दशा है
और एक दोनों के पार अमन की, नो-माइंड की दशा है। साधना का प्रयोजन है कि अच्छे-बुरे दोनों से आप मुक्त हो जाएं। और जब तक दोनों से मुक्त न होंगे, तब तक मुक्ति की कोई गुंजाइश नहीं।
अगर आप अच्छे को पकड़ लेंगे, तो अच्छे से बंध जाएंगे। बुरे को छोड़ेंगे, बुरे से लड़ेंगे, तो बुरे के जो विपरीत है, उससे बंध जाएंगे। चुनाव है; कुएं से बचेंगे, तो खाई में गिर जाएंगे। लेकिन अगर दोनों को न चुनें, तो वही परम साधक की खोज है कि कैसे वह घड़ी आ जाए, जब मैं कुछ भी न चुनूं; अकेला मैं ही बचूं; मेरे ऊपर कुछ भी आरोपित न हो। न मैं बुरे बादलों को अपने ऊपर ओढूं, न भले बादलों को ओढ़ूं। मेरी सब ओढ़नी समाप्त हो जाए। मैं वही बचूं, जो मैं निपट अपने स्वभाव में हूं।
यह जो स्वभाव की सहज दशा है, इसे न तो आप अच्छा कह सकते और न बुरा। यह दोनों के पार है, यह दोनों से भिन्न है, यह दोनों के अतीत है।
लेकिन साधारणतः साधना से हम सोचते हैं, अच्छा होने की कोशिश। उसके कारण हैं, उस भ्रांति के पीछे लंबा इतिहास है।

समाज की आकांक्षा आपको अच्छा बनाने की है। क्योंकि समाज बुरे से पीड़ित होता है, समाज बुरे से परेशान है। इसलिए अच्छा बनाने की कोशिश चलती है। समाज आपको साधना में ले जाना नहीं चाहता। समाज आपको बुरे बंधन से हटाकर अच्छे बंधन में डालना चाहता है।
समाज चाहता भी नहीं कि आप परम स्वतंत्र हो जाएं, क्योंकि परम स्वतंत्र व्यक्ति तो समाज का शत्रु जैसा मालूम पड़ेगा। समाज चाहता है, रहें तो आप परतंत्र ही; पर समाज जैसा चाहता है, उस ढंग के परतंत्र हों। समाज आपको अच्छा बनाना चाहता है, ताकि समाज को कोई उच्छृंखलता, कोई अनुशासनहीनता, आपके द्वारा कोई उपद्रव, बगावत, विद्रोह न झेलना पड़े। समाज आपको धार्मिक नहीं बनाना चाहता, ज्यादा से ज्यादा नैतिक बनाना चाहता है। और नीति और धर्म बड़ी अलग बातें हैं। नास्तिक भी नैतिक हो सकता है; और अक्सर जिन्हें हम आस्तिक कहते हैं, उनसे ज्यादा नैतिक होता है। ईश्वर के होने की कोई जरूरत नहीं है आपके अच्छे होने के लिए; न मोक्ष की कोई जरूरत है। आपके अच्छे होने के लिए तो केवल एक विवेक की जरूरत है। तो नास्तिक भी अच्छा हो सकता है, नैतिक हो सकता है।
धर्म कुछ अलग ही बात है। धर्म का इतने से प्रयोजन नहीं है कि आप चोरी नहीं करते। नहीं करते, बड़ी अच्छी बात है। लेकिन चोरी न करने से कोई मोक्ष नहीं पहुंच जाता है। जब चोरी करने वाले को कुछ नहीं मिलता, तो चोरी से बचने वाले को क्या मिल जाएगा! जब धन इकट्ठा करने वाले को कुछ नहीं मिलता, जब धन इकट्ठा कर-करके कुछ नहीं मिलता, तो धन छोड़कर क्या मिल जाएगा! अगर धन इकट्ठा करने से कुछ मिलता होता, तो शायद धन छोड़ने से भी कुछ मिल जाता। जब काम-भोग में डूब-डूबकर कुछ नहीं मिलता, तो उनको छोड़ने से क्या मिल जाएगा! वह कचरा है, उसको छोड़कर मोक्ष नहीं मिल जाने वाला है। यह थोड़ा कठिन है समझना।
एक बात ध्यान रखें, जिस चीज से लाभ हो सकता है, उससे हानि हो सकती है। जिससे हानि हो सकती है, उससे लाभ हो सकता है। लेकिन जिस चीज से कोई लाभ ही न होता हो, उससे कोई हानि भी नहीं हो सकती। अगर धन के इकट्ठा करने से कोई भी लाभ नहीं होता, तो धन के इकट्ठा करने से कोई हानि भी नहीं हो सकती। धार्मिक व्यक्ति धन के इकट्ठा करने को मूढ़ता मानता है, बुराई नहीं।
वह बाल-बुद्धि है। धर्म कामवासना में डूबे व्यक्ति को पापी नहीं कहता, सिर्फ अज्ञानी कहता है। उसे पता नहीं कि वह क्या कर रहा है। तो धर्म की कोई इच्छा नहीं है कि आप, जिन-जिन चीजों को समाज बुरा कहता है, उन्हें छोड़ देंगे, तो आप मुक्त हो जाएंगे।
सज्जन पुरुष हमारे बीच हैं, फिर भी मोक्ष उनसे उतना ही दूर है, जितना दुर्जन से; उस दूरी में कोई फर्क नहीं पड़ता। मोक्ष की दूरी में तो तभी कमी होनी शुरू होती है, जब आप न दुर्जन रह जाते, न सज्जन; न साधु, न असाधु; क्योंकि इन दोनों का द्वंद्व है। और जब तक द्वंद्व नहीं टूटता, तब तक परमहंस अवस्था नहीं आती।
साधना का प्रयोजन है, परमहंस अवस्था आ जाए। इससे हमें डर भी लगता है। क्योंकि अगर कोई व्यक्ति बुराई-भलाई दोनों छोड़ दे, जैसे ही हम यह सोचते हैं, तो हमें डर लगता है कि वह आदमी बुरा हो जाएगा।
अगर आपसे कहा जाए कि बुराई-भलाई दोनों छोड़ दो, तो आपके मन में तत्क्षण बुरे करने के विचार आएंगे। भलाई तो छोड़ना बिल्कुल आसान है। उसको तो कभी पकड़ा ही नहीं है, इसलिए छोड़ने का कोई प्रश्न नहीं है। आपको अगर पता चले कि दोनों बेकार हैं, तो आप तत्क्षण बुराई करने में लग जाएंगे। उस खुद की मनोदशा के कारण, धर्म की यह जो परम आत्यंतिक धारणा है, दोनों के पार हो जाना, उससे हमें भय लगता है।
लेकिन अगर आप समझेंगे साधना का अर्थ, साधना का अर्थ है, धीरे-धीरे बाहर से भीतर की तरफ जाना।
अच्छाई भी बाहर है, बुराई भी बाहर है। अगर आप चोरी करते हैं, तो भी आपके अतिरिक्त किसी और का होना जरूरी है। अकेले आप कैसे चोरी करिएगा? अगर इस पृथ्वी पर आप अकेले रह जाएं, सारा समाज नष्ट हो जाए; युद्ध हो जाए तीसरा, सब नष्ट हो जाएं, आप भर अकेले बचें; आप चोरी कर सकिएगा फिर? किसकी चोरी करिएगा? चोरी का अर्थ ही क्या होगा?

अगर आप अकेले हैं, तो चोरी नहीं कर सकते। अगर अकेले हैं, तो दान कर सकिएगा? दान के लिए भी दूसरे की जरूरत है।
तो चोरी हो या दान, नीति हो या अनीति, पुण्य हो या पाप, ये सब बाहर की घटनाएं हैं। लेकिन सारी दुनिया नष्ट हो जाए और आप अकेले बचें, तो भी ध्यान कर सकते हैं। ध्यान का दूसरे से कुछ संबंध नहीं है। ध्यान आंतरिक घटना है। इसलिए ध्यान भीतर ले जाता है।
पुण्य भी बाहर भटकाता है, पाप भी बाहर भटकाता है। अच्छाई भी बाहर, बुराई भी बाहर। अच्छाई भी समाज में, बुराई भी समाज में। उन दोनों का कोई अंतस्तल से संबंध नहीं है।
साधना का अर्थ है, ध्यान। साधना का अर्थ है, अंतर्मुखता। साधना का अर्थ है, उसे मैं जानूं जो मैं अपनी निजता में हूं; जिसका दूसरे से संबंधित होने का कोई संबंध नहीं है। साधना का संबंध रिलेशनशिप, संबंधों से जरा भी नहीं है। साधना का संबंध है स्वयं से; मैं उसे जान लूं, जो मैं हूं।
तो न तो चोरी करके कोई उसे जान पाता है, न चोरी छोड़कर कोई उसे जान पाता है। चोर भी भटकते हैं, जो चोरी नहीं करते, वे भी भटकते हैं। न तो बुरा करके उसे कोई कभी जाना है, न भला करके कभी कोई उसे जाना है। उसे जानने वाले को तो सभी करना छोड़ देना पड़ता है, बुरा भी, भला भी। उसे तो भीतर अक्रिया में डूब जाना पड़ता है। उसे तो बाहर से आंख ही बंद कर लेनी पड़ती है।
उसके लिए कामवासना भी व्यर्थ है, उसके लिए ब्रह्मचर्य भी दो कौड़ी का है। क्योंकि ब्रह्मचर्य और कामवासना दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे अलग-अलग बातें नहीं हैं। आपको ब्रह्मचर्य मूल्यवान दिखाई पड़ता है, क्योंकि कामवासना में आपको रस है। जिस दिन कामवासना में कोई रस न रह जाएगा, उस दिन ब्रह्मचर्य भी दो कौड़ी का है, उसका भी कोई मूल्य नहीं है। द्वंद्व से कोई संबंध नहीं है। और जगत एक संतुलन है। जगत में बुराई और भलाई सदा संतुलित है। साधना तो जगत के पार उठने की प्रक्रिया है। लेकिन यह ख्याल में तभी आएगा, जब थोड़ा-सा अनुभव करेंगे।
अभी तो हम कामों में ही चुनते हैं। यह काम बुरा है, छोड़ दें। यह काम भला है, कर लें। अभी एक्शंस पर, कर्म पर ही हमारा जोर है। वह जो कर्मों के पीछे छिपा हुआ हमारा स्वभाव है, उस पर हमारा कोई जोर नहीं है।
उसे जान लें, जो बुरा भी करता है और भला भी करता है। उसे जान लें, जो दोनों के पीछे छिपा है। उसे जान लें, जो सब करके भी अकर्ता है। उसे जान लें, जो सबका द्रष्टा है। उससे कोई लेना-देना नहीं है आपके कर्म का। आप सुबह पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं, स्नान करते हैं कि नहीं करते हैं, मंदिर में जाते हैं कि मस्जिद में--इससे कोई संबंध नहीं है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप मंदिर मत जाएं। और मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि आप अच्छाई मत करें। मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि करने के पार जाना पड़ेगा, तभी धर्म से संबंध जुड़ेगा।
वह अर्जुन भी इसी द्वंद्व से ग्रस्त है। उसका भी सवाल क्या है? उसकी
भी चिंता क्या है? उसकी उलझन क्या है?
यही उलझन है। वह देखता है कि यह जो युद्ध है, बुराई है। इसमें सिर्फ लोग मरेंगे, सिर्फ हत्या होगी, खून बहेगा। न मालूम कितनी स्त्रियां विधवा हो जाएंगी। न मालूम कितने बच्चे अनाथ हो जाएंगे। घर-घर में दुख और हाहाकार छा जाएगा। यह बुरा है।
तो वह कृष्ण से यही कह रहा है कि इस बुराई को मैं छोड़ दूं। यह बुराई करने जैसी नहीं लगती। इससे तो अच्छा है कि मैं जंगल चला जाऊं, संन्यास ले लूं, विरक्त हो जाऊं, छोड़ दूं सब। बुराई को छोड़ दूं, अच्छाई को पकड़ लूं। और कृष्ण उसे क्या समझा रहे हैं? इसलिए कृष्ण का संदेश सरल होते हुए भी अति कठिन है।
कृष्ण उसे यह समझा रहे हैं कि तू जब तक यह सोचता है कि यह बुरा है, इसे छोडूं; यह भला है, इसे करूं; तब तक तू उलझन में रहेगा। तू कर्म की धारणा छोड़ दे। तू यह भाव छोड़ दे कि मैं कर्ता हूं।
अगर तू युद्ध छोड़कर चला जाएगा, तो तू सोचेगा, मैंने संन्यास किया, मैंने त्याग किया, मैंने वैराग्य किया; पर कर्म का भाव तुझे बना रहेगा।

युद्ध करेगा, तो तू समझेगा, मैंने युद्ध किया, मैंने लोगों को मारा, या मैंने लोगों को बचाया।
दोनों ही धारणाएं भ्रांत हैं। तू करने वाला नहीं है। करने की बात तू विराट पर छोड़ दे। तू सिर्फ निमित्त हो जा। तू सिर्फ विराट को मौका दे कि तेरे भीतर से कुछ कर सके। तू सिर्फ देखने वाला बन जा। तू इस युद्ध में एक द्रष्टा हो।
कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि अर्जुन बुरे और भले के द्वंद्व से छूट जाए, निर्द्वंद्व हो जाए; दो के बीच चुने नहीं, तीसरा हो जाए; दोनों से अलग हो जाए।
साधना का यही प्रयोजन है।

दूसरा प्रश्नः कल के सूत्र में आपने कहा कि वैज्ञानिक कहते हैं कि किसी भी इंद्रिय का यदि तीन साल तक उपयोग न किया जाए, तो वह इंद्रिय क्रियाशील नहीं रह जाती। और हम कामेंद्रिय का उपयोग बीस-पच्चीस वर्षों तक भी नहीं करते, फिर भी हम खुद को कामवासना से मुक्त नहीं पाते। हम तो क्या, तथाकथित साधु-संन्यासी कई वर्षों की साधना के बाद भी कामवासना से पीड़ित दिखाई पड़ते हैं। क्या यह सिद्धांत काम-इंद्रिय पर लागू नहीं होता?

इस संबंध में दो-तीन बातें समझनी पड़ें।
पहली बात, काम-इंद्रिय आपकी और इंद्रियों जैसी ही इंद्रिय नहीं है।
सच तो यह है कि काम-इंद्रिय आपकी सभी इंद्रियों का केंद्र है, आधार-स्रोत है। तो और इंद्रियां ऊपर-ऊपर हैं, परिधि पर हैं। कामेंद्रिय गहन अंतर में है, गहरे में है, जड़ में है।
वृक्ष की शाखाओं को हम काट दें, तो वृक्ष नहीं मरता; नई शाखाएं निकल आती हैं। वृक्ष की जड़ों को हम काट दें, वृक्ष मर जाता है। पुरानी शाखाएं भी जो हरी थीं, वे भी सूखकर समाप्त हो जाती हैं।
आंख ऊपर है, हाथ ऊपर है, कान ऊपर हैं, कामेंद्रिय बहुत गहरे में है।
इसलिए अगर आप आंख का उपयोग तीन वर्ष तक न करें, तो आंखें क्षीण हो जाएंगी। कान का उपयोग न करें, तो आप बहरे हो जाएंगे। हाथ को न चलाएं, तो हाथ पंगु हो जाएगा। पैर का उपयोग न करें, पैर पक्षाघात से भर जाएंगे। लेकिन कामेंद्रिय भिन्न है। उसके कारण समझ लें।
आपके शरीर का प्रत्येक कण कामवासना से निर्मित है। आंख तो छोटा-सा हिस्सा है, कान तो छोटी-सी हड्डियों का जोड़ है। लेकिन काम-इंद्रिय आपके पूरे शरीर को घेरे हुए है। वह जो मां के गर्भ में पहला अणु निर्मित हुआ था, वह कामवासना से निर्मित हुआ। फिर उसी अणु के विस्तार से आपका पूरा शरीर निर्मित हुआ है। आपका प्रत्येक अणु कामवासना से भरा है।
इसलिए आंख फोड़ लें, कान तोड़ डालें, हाथ काट डालें, कामवासना में अंतर नहीं पड़ेगा। जननेंद्रिय को लोग कामेंद्रिय समझ लेते हैं, उससे भूल हो जाती है। जननेंद्रिय कामेंद्रिय का शरीर के ऊपर सिर्फ अभिव्यक्ति है। जननेंद्रिय सिर्फ कामेंद्रिय के उपयोग का द्वार है। लेकिन आपका पूरा शरीर कामवासना है। इसलिए जननेंद्रिय भी काट डालें, तो भी कामवासना नहीं मिटेगी।
कामवासना तो तभी मिटेगी, जब आप अपनी आत्मा को शरीर से बिल्कुल पृथक अनुभव कर लें। उसके पहले नहीं मिटेगी। अगर शरीर से रंचमात्र भी तादात्म्य है, अगर जरा-सा भी जोड़ है कि मैं शरीर हूं, तो उतनी कामवासना कायम रहेगी। आंख नष्ट हो जाएगी बड़ी आसानी से, कामवासना इतनी आसानी से नष्ट नहीं होगी। दूसरी बात, आप कामवासना से पैदा हुए हैं। आपके पैदा होने में कामवासना का प्रगाढ़ हाथ है। तो जब तक आप में जीवन की आकांक्षा रहेगी, तब तक कामवासना से छुटकारा न होगा। जब तक आप चाहते हैं कि मैं बचूं, जीऊं, रहूं, तब तक आप कामवासना से मुक्त न होंगे। क्योंकि जीवन पैदा ही कामवासना से हुआ है; और आप जीना चाहते हैं, तो कामवासना को बल मिलता है।
जिस दिन आपकी जीवेषणा छूटेगी, और आप कहेंगे कि मैं मिटूं, खो जाऊं, समाप्त हो जाऊं, वही मेरा आनंद है; अब मैं बचना नहीं चाहता, अब मैं रहना नहीं चाहता, अब इस देह को घर नहीं बनाऊंगा, अब मैं मुक्त हो जाना चाहता हूं

सब सीमाओं से; जिस दिन जीवन की जगह मृत्यु आपका लक्ष्य हो जाएगी, उस दिन कामवासना मिटेगी। उसके पहले कामवासना नहीं मिटेगी।
इसलिए पच्चीस वर्ष, पच्चीस जन्म भी कामवासना को दबाए रखने से उसका अंत नहीं होता। फिर जितना आप उसे दबाते हैं, उतनी ही वह बढ़ती है। क्योंकि भला आप कामेंद्रिय का उपयोग न करें, जननेंद्रिय का उपयोग न करें, लेकिन चित्त कामवासना में लगा ही रहता है। तो आपका शरीर तो संलग्न है।
आप पच्चीस वर्ष तक अपने को सब तरह की कामवासना से बचा लें, तो भी ऊपर-ऊपर ही बचाव हो रहा है, भीतर तो मन कामवासना में ही चल रहा है। और वह जो भीतर कामवासना बह रही है, चित्त में जो विचार चल रहे हैं, वे कामेंद्रिय को सजग रखेंगे, जीवित रखेंगे।
हालत तो उलटी है। अगर आपको कामवासना का अतिशय उपयोग करने दिया जाए, तो कामवासना मर भी जाए; उपयोग न करने दिया जाए, तो नहीं मरेगी।
मैं एक फ्रेंच चिकित्सक मोरिस मैक्यू के संस्मरणों का एक संकलन पढ़ रहा हूं, आफ मेन एंड प्लांट्स। उसने अपने संस्मरणों की एक किताब लिखी है। वह जड़ी-बूटियों के संबंध में बड़े से बड़ा ज्ञाता है। और जड़ी-बूटियों के द्वारा उसने हजारों मरीजों को ठीक किया है। और दुनिया के बड़े-बड़े लोग उसे निमंत्रण देते रहे हैं। चर्चिल, बड़े अभिनेता, बड़े लेखक, बड़े कवि, राजा- महाराजा उससे इलाज करवाते रहे हैं। तो उसने सारे संस्मरण लिखे हैं। उसने प्रिंस अली खां का भी संस्मरण लिखा है, आगा खां के लड़के का।
प्रिंस अली खां ने उसे फोन किया और कहा कि कुछ निजी बीमारी है, कुछ गुप्त बीमारी है, उसके लिए तुम्हें आना पड़े। प्रिंस अली खां का निमंत्रण बड़ी बात है। चिकित्सक भागा हुआ उनके महल पर पहुंचा। सबको विदा करके प्रिंस अली ने अपनी बीमारी बतानी शुरू की। चिकित्सक को भी लग तो रहा था कि बीमारी कामवासना से संबंधित होगी, यौन की होगी, इसलिए इतनी गुप्तता रखी जा रही है। प्रिंस अली खां ने कहा कि मेरी कामवासना बिल्कुल खो गई है, क्षुधा मेरी मर गई है, मुझे इच्छा ही नहीं होती। कुछ करो!
तो चिकित्सक ने पूछा कि आप महीने में कितनी बार संभोग करते हैं? प्रिंस अली खां खिलखिलाकर हंसने लगा, और उसने कहा, महीने में! हर रोज दिन में तीन बार करता हूं। लेकिन इच्छा बिल्कुल मर गई है। कोई वासना नहीं पैदा होती। बस, एक यांत्रिक कृत्य की तरह कर रहा हूं।
अब यह कोई बीमारी न हुई। अगर दिन में कोई तीन बार संभोग कर रहा है, तो इच्छा मर ही जाएगी। इच्छा क्या, वह खुद भी मर जाएगा जल्दी।
कामवासना का अगर ज्यादा उपयोग किया जाए, तो मर जाती है। अगर बिल्कुल उपयोग न किया जाए, दबाकर रखा जाए, तो सजीव रहती है, जीवित रहती है। लेकिन न तो बहुत उपयोग करने से उससे छुटकारा होता है... ।
क्षुधा मर गई है, लेकिन और भी गहरी वासना है कि न मरे। वासना क्षीण हो
गई है, लेकिन भीतर से मन कह रहा है, इसे जिलाए रखो, कुछ उपाय करो।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि व्यभिचारियों की कामवासना शिथिल हो जाती है
और ब्रह्मचारियों की नहीं शिथिल हो पाती। क्योंकि व्यभिचारी तो अति कर देते हैं, थक जाते हैं।
गुरजिएफ ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि काकेशस में पैदा होने वाला
एक खास फल उसे बचपन में बहुत प्रिय था। इतना ज्यादा प्रिय था कि उसकी वजह से वह अक्सर बीमार पड़ जाता था। इतना ज्यादा खा लेता था। और वह नुकसानदायक भी था, और बहुत भारी और वजनी था।
उसने लिखा है कि मेरे दादा ने मुझे कहा कि इससे छूटने का एक ही उपाय हैः एक दिन तू जितना खा सके आखिरी दम तक, मौत करीब मालूम होने लगे, तब तक तू इसको खाता जा। गुरजिएफ ने कहा, इससे कैसे छुटकारा होगा! बल्कि उसे रस भी आया कि बात तो बड़ी गजब की है। क्योंकि घर में सभी उसे रोकते थे अब तक कि इसे मत खाओ, इसे मत खाओ, यह ठीक नहीं है, इससे नुकसान है।
लेकिन दादा ने जब कहा, तो फिर वह बड़ी मात्रा में फल जाकर बाजार से ले आया। दादा उसके सामने बैठ गए और कहा कि तू खा जितना तुझे खाना है। वह खाता गया। वह थक गया और एक कौर भी भीतर ले जाने का उपाय न रहा। लेकिन दादा ने कहा, अभी भी तू थोड़ा खा सकता है। तू और खा ले।

फिर उसे उल्टियां होनी शुरू हुईं, दस्त लगने शुरू हुए। वह कोई तीन महीने बीमार रहा। लेकिन वह कहता है, उसके बाद उस फल में मेरा कोई रस नहीं रह गया।
कामवासना से मुक्त होने के लिए दमन तो कतई मार्ग नहीं है; लेकिन कामवासना इस भांति हो जाए कि आप उससे पीड़ित हो उठें, वह दुख बन जाए, विषाद हो जाए, तो शायद जागरण आए।
लेकिन उतने से भी कुछ न होगा। क्योंकि फल का छूट जाना एक बात है, कामवासना का छूटना बड़ी अलग बात है। फिर थोड़े दिन में वापस लौट आएगी। दबाएं तो बनी रहेगी, भोगें तो थोड़े दिन शिथिल हो जाएंगे, फिर वापस लौट आएगी। कामवासना से मुक्त होना हो, तो दो बातें मैंने कहीं। एक तो मैं शरीर नहीं हूं, यह दृष्टि थिर हो। दूसरा, जीवन की मेरी कामना नहीं।
मृत्यु कामवासना का विरोध है। जन्म कामवासना से होता है, मृत्यु कामवासना का विरोध है। जिन साधना-प्रक्रियाओं ने--जैसे बुद्ध की साधना- प्रक्रिया ने--कामवासना पर अनूठे प्रयोग किए हैं, तो मृत्यु को उन्होंने साधना का आधार बनाया।
बुद्ध जब किसी व्यक्ति को ब्रह्मचर्य में दीक्षा देते थे, तो उससे कहते थे, तीन महीने पहले मरघट पर तू मृत्यु का ध्यान कर। एकदम से तो सुनकर हमें हैरानी होगी कि ब्रह्मचर्य से और मरघट और मृत्यु का क्या लेना-देना? लेकिन बुद्ध कहते कि तीन महीने तू मरघट पर सुबह से सांझ, रात, जब भी मुरदे जलते हों, बैठा रह। तेरा वही ध्यान-स्थल है। लाशें आएंगी--बच्चे आएंगे, जवान-बूढ़े, सुंदर-कुरूप, स्वस्थ- अस्वस्थ--सब तरह के लोग आएंगे। बस, तू उनको देखता रह। उनकी जलती चिताएं, उनकी टूटती हड्डियां, उनके गिरते सिर, उनका शरीर हो गया राख, सब खो गया धुएं में, उसे तू देखता रह। तीन महीने जलती हुई चिताओं पर ध्यान कर।
और मुझे लगता है, यह बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। क्योंकि मृत्यु अगर बहुत साफ हो जाए, तो कामवासना तत्क्षण खो जाएगी।
इसे आप ऐसा समझें कि एक सुंदरतम स्त्री खड़ी हो और आप वासना से भरे खड़े हों, उसी वक्त एक तार आए कि राज्य ने तय किया है कि आज सांझ आपको फांसी लगा देंगे। सुंदर स्त्री तत्क्षण आंखों से खो जाएगी। शरीर से वासना का प्रवाह बंद हो जाएगा। फिर कोई कितना ही समझाए, आपका रस अब वासना में नहीं रह जाएगा। सांझ मौत आ रही है!
तो जिस साधक को कामवासना से मुक्त होना हो, उसे समझना चाहिए कि यह क्षण आखिरी है, मौत दूसरे क्षण हो सकती है। और सच भी यही है, मौत दूसरे क्षण हो सकती है। जो क्षण मैं जी रहा हूं, यह आखिरी है, मौत आने वाली है, इस शरीर से मैं टूट जाने वाला हूं।
जितनी मौत की धारणा गहरी हो जाए, और जितना यह शरीर मैं नहीं हूं, यह प्रतीति स्पष्ट हो जाए, उतने ही आप कामवासना से मुक्त होंगे। यह मुक्ति न तो दमन से फलित होती है, न भोग से। यह मुक्ति समझ से, अंडरस्टैंडिंग से फलित होती है।
पर यह स्मरण रखें कि कामवासना साधारण इंद्रिय नहीं है। यह कहना उचित होगा कि सभी इंद्रियों का केंद्र कामेंद्रिय है। आंखें भी इसीलिए देखती हैं कि कामवासना आंखों के द्वारा रूप को खोज रही है। कान इसीलिए सुनते हैं कि कामवासना कानों के द्वारा ध्वनि को खोज रही है। संगीत में इतना रस आता है, क्योंकि संगीत कानों के द्वारा कामवासना की तृप्ति है। सौंदर्य को देखकर--सुंदर चित्र, सुबह का उगता सूरज, पक्षियों का आकाश में उड़ना, वृक्षों पर खिले फूल, एक सुंदर चेहरा, सुंदर आंखें, सुंदर रंग आनंदित करते मालूम पड़ते हैं, क्योंकि आंखों के द्वारा यह जगत के साथ संभोग है। आंख रूप को खोज रही है।
इसलिए कुरूप व्यक्ति दिख जाए, तो आपकी वासना सिकुड़ती है। कुरूप व्यक्ति सामने आ जाए, तो आप आंख फेरकर चल पड़ते हैं। सुंदर व्यक्ति सामने आ जाए, तो आप अपना होश खो देते हैं।
तो आप यह मत सोचना कि जननेंद्रिय से ही कामवासना प्रकट होती है; सभी इंद्रियों से प्रकट होती है। हाथ से जब आप कुछ छूना चाहते हैं, तो हाथ के

माध्यम से कामवासना स्पर्श खोज रही है। यह पूरा शरीर कामेंद्रिय है। इसका रोआं-रोआं कामवासना से भरा है।
इसलिए जब तक शरीर से तादात्म्य न छूट जाए, तब तक कामवासना से छुटकारा नहीं है। और कुछ भी आप करते रहें, तो उससे सिर्फ समय व्यय होगा, शक्ति व्यय होगी और चित्त आत्मग्लानि से भरेगा। क्योंकि आप बार-बार तय करेंगे छोड़ने का, और छूटेगा नहीं। और जब बार-बार आप असफल होंगे, छोड़ न पाएंगे वासना को, तो धीरे-धीरे आपको आत्मग्लानि आएगी, आत्म-अविश्वास आएगा, और ऐसा लगेगा कि मैं किसी भी योग्य नहीं हूं। मैं बिल्कुल पात्र नहीं हूं। मैं पापी हूं, अपराधी हूं।
और किसी भी व्यक्ति को, मैं पापी हूं, अपराधी हूं, ऐसी धारणा गहरी हो जाए, तो उसके जीवन में साधना-पथ अति कठिन हो जाता है। तो इस तरह के छोटे- मोटे प्रयोग करने में मत पड़ जाना।
कामवासना से छूटा जा सकता है। लेकिन कामवासना जीवन-वासना का पर्यायवाची है। जब आप जीवन की वासना से छूटेंगे... ।
इसलिए बुद्ध ने जगह-जगह कहा है, जीवेषणा जब तक है, तब तक मुक्ति नहीं है। जब तक तुम चाहते हो, मैं जीऊं!
बुद्ध के पास लोग पहुंचते हैं। वे कहते हैं कि मान लिया कि सब इच्छाएं छोड़ देंगे, शरीर छूट जाएगा, तो फिर हम मोक्ष में बचेंगे या नहीं? मैं रहूंगा न? आत्मा तो बचेगी, शरीर छूट जाएगा।
और बुद्ध कहते हैं कि यह फिर वही की वही बात है। तुम मिटना नहीं चाहते, तुम बचना ही चाहते हो। शरीर मिट जाए, तो भी तुम राजी हो। क्योंकि तुम देखते हो, शरीर तो मिटेगा, उसे बचाने का कोई उपाय नहीं है। तो फिर आत्मा ही बच जाए।
इसलिए बुद्ध ने एक अनूठी बात कही कि कोई आत्मा नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि आत्मा नहीं है। यह बात सिर्फ इसलिए कही कि वे जो आत्मा के नाम से अपने को बचाना चाहते हैं, वे उस बचाने की बात को भी छोड़ दें।
जीवेषणा वासना है। मैं जीऊं, यही हमारा पागलपन है। और मजा यह है कि जीकर हम कुछ पाते भी नहीं, लेकिन फिर भी जीना चाहते हैं। जीकर कुछ हाथ में भी नहीं आता, फिर भी कैसी ही कठिनाई हो, तो भी जीना चाहते हैं। जीवन को छोड़ने को हम राजी नहीं होते।
इस सूत्र को याद रख लें, जो जीवन को छोड़ने को स्वेच्छा से राजी है, महाजीवन उसका हो जाता है। और जो जीवन को दरिद्र की तरह पकड़ता है, भिखारी की तरह, उसके हाथ में कुछ भी आता नहीं। सिर्फ जंजीरें ही उसके हाथ में आती हैं।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि सृजनात्मकता दैवी स्वभाव है और विध्वंस व विनाश आसुरी हैं। लेकिन अस्तित्व में तो दोनों प्रक्रियाएं साथ-साथ चलती हैं। और सिर्फ युद्ध में ही विध्वंस होता हो, ऐसा नहीं है। दैवी विपदाएं कम विध्वंस नहीं करती हैं।

दैवी संपदा सृजनात्मक है, इसका यह अर्थ नहीं कि जो सृजन करता है वह मिटाता नहीं। बनाना हो, तो मिटाना पड़ता है। अगर मूर्ति बनानी हो, तो पत्थर को मिटाना पड़ता है। अगर वृक्ष निर्मित करना हो, तो बीज को मिटाना पड़ता है। अगर परमात्मा को खोजना हो, तो अपने को मिटाना पड़ता है। सृजनात्मकता भी बिना मिटाए तो नहीं होती। कुछ मिटता है, तो कुछ बनता है। मिटना बनने का ही प्रयोग है।
फिर फर्क क्या हुआ? क्योंकि दैवी संपदा भी मिटाती है, आसुरी संपदा भी मिटाती है। दोनों में फर्क क्या है?
फर्क लक्ष्य का है। दैवी संपदा सदा ही बनाने को मिटाती है। आसुरी संपदा सदा ही मिटाने को मिटाती है। आसुरी संपदा बनाती भी है, तो सिर्फ मिटाने को।
फर्क यह है, आसुरी संपदा अगर बनाती भी दिखाई पड़ती हो, तो भी समझना कि
वह मिटाने को ही बना रही है। वह बनाना वैसे ही है, जैसे आप घर में एक बकरा पाल लें। और उसे खूब खिलाएं, उसकी सेवा करें, क्योंकि उसको बलि के दिन

काटना है। उसकी सेवा भी चले, धुलाई भी चले, भोजन भी चले। ऐसे बकरे की कोई इतनी पूजा नहीं करता, जैसी आप करें। लेकिन बलि के दिन उसको काटकर फिर भोजन कर लेना है, वह तैयारी चल रही है। आप बना रहे हैं मिटाने के लिए।
लक्ष्य मिटाना होगा, आसुरी संपदा में। लेकिन जिसको मिटाना है, उसे भी बनाना पड़ता है। क्योंकि बिना बनाए मिटाइएगा कैसे?
दैवी संपदा में लक्ष्य होगा बनाना। अगर मिटाना भी पड़ता है, तो यही नजर होती है कि बनाएंगे। अगर नया मकान बनाना हो, तो पुराना मकान गिरा देना पड़ता है। पुराने मकान से जमीन साफ हो जाए, तो नया बन सके।
सभी सृजन में विध्वंस छिपा है; सभी विध्वंस में सृजन छिपा है। लक्ष्य
का फर्क है। दैवी संपदा हमेशा सोचती है, निर्मित करने को। अगर मिटाना भी पड़ता है, तो सिर्फ इसीलिए, ताकि कुछ और श्रेष्ठतर बन सके। आसुरी संपदा सदा सोचती है मिटाने को। अगर बनाना भी पड़ता है, तो सिर्फ इसीलिए कि बनाएंगे, ताकि मिटा सकें।
उस लक्ष्य को ख्याल में रखें, तो बात आसान हो जाएगी और ठीक से समझ में
आ जाएगी। रस कहां है आपका? तोड़ने में रस है कि निर्माण करने में रस है? वही रस ध्यान में रहे, तो फिर आप कितना ही तोड़ें, हर्ज नहीं। लेकिन हर तोड़ना एक कदम हो बनाने के लिए। फिर आपके विध्वंस में भी सृजन आ गया; फिर आपके युद्ध में भी शांति आ गई; फिर आप कुछ भी करें, अगर यह लक्ष्य सदा ध्यान में बना रहे, तो आप जो भी करेंगे, वह शुभ होगा।
जगत द्वंद्व है। वहां विध्वंस भी है, निर्माण भी है। उन दोनों में किसको आप ऊपर रखते हैं, उससे आपकी संपदा निर्णीत होगी।

चौथा प्रश्नः आपने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में साध्य है, परम मूल्य है। दैवी संपदा का यह सिद्धांत अपने प्रति तो आसानी से लागू किया जा सकता है, लेकिन दूसरों के प्रति उसे लागू करना बहुत कठिन है। ऐसा क्यों है?

साफ ही है। अपने प्रति लागू करना आसान है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है, मैं साध्य हूं और सभी मेरे साधन हैं। लक्ष्य मैं हूं, यह पूरा जगत मेरे लिए है। आकाश मेरे लिए, चांद-तारे मेरे लिए, वृक्ष-पौधे, पशु- पक्षी मेरे लिए। मैं केंद्र हूं।
यह तो कोई भी सोचता है। इसमें दैवी संपदा का सवाल ही नहीं है। यही तो आसुरी संपदा का केंद्र है कि मैं जगत का केंद्र हूं; सब कुछ मेरे लिए घूम रहा है। मेरे लिए सब भी मिट जाए, तो भी कुछ हर्ज नहीं है। मैं बचूं। सब कुछ मेरा साधन है, यही तो आसुरी संपदा का केंद्र है।
दैवी संपदा का केंद्र यह है कि दूसरा लक्ष्य है, दूसरा साध्य है, उसका मैं साधन की तरह उपयोग न करूं। वह परम मूल्य है। उसकी सेवा तो मैं कर सकता हूं, लेकिन शोषण नहीं। अगर जरूरत पड़े मिटने की, तो उसके लिए मैं तो मिट सकता हूं, लेकिन उसको नहीं मिटाऊंगा।
कभी-कभी जीवन के कुछ क्षणों में ऐसा आपको लगता है किसी व्यक्ति के संबंध में, उसको हम प्रेम कहते हैं। जब आपको ऐसा सारे जगत के संबंध में लगने लगे, तो उसको हम प्रार्थना कहेंगे।
कभी एक व्यक्ति के संबंध में ऐसा लगता है कि चाहे मैं मिट जाऊं, लेकिन
यह व्यक्ति बचे; तो वह साध्य हो गया। मां मर सकती है बच्चे के लिए, या पत्नी मर सकती है पति के लिए, या पति अपने को खो सकता है पत्नी के लिए। कभी एक व्यक्ति के साथ आपको क्षणभर को भी ऐसा लग जाता हो कि मैं ना-कुछ, वह सब कुछ; मैं परिधि, वह केंद्र; तो प्रेम घटा।
इसलिए प्रेम एक आध्यात्मिक घटना है। छोटी-सी घटना है, पर बड़ी मूल्यवान। चिनगारी है, सूरज नहीं; लेकिन अग्नि वही है, जो सूरज में होती है। और यह चिनगारी अगर फैलने लगे, तो किसी दिन सूर्य भी बन सकती है। जिस दिन ऐसा सारे जगत के प्रति लगने लगे, उस दिन समझना कि प्रार्थना है। महावीर जमीन पर पांव फूंककर रखते हैं। चींटी भी न मर जाए, क्योंकि उसका भी परम मूल्य है। चींटी भी साध्य है, वह हमारा साधन नहीं है कि हम उससे इस तरह व्यवहार कर सकें।

कणाद वृक्षों से फल तोड़कर नहीं खाते। जो कण खेत में अपने आप गिर जाते हैं सूखकर, पककर, उनको बीन लेते हैं। इसीलिए उनका नाम कणाद है; कण-कण बीनकर जीते हैं। कच्चे फल को भी तोड़ते नहीं, क्योंकि वृक्ष हमारा साधन नहीं है। वृक्ष का अपना जीवन है। वृक्ष अपने आप में मूल्यवान है। हम उसका शोषण नहीं कर सकते। अहिंसा की धारणा इसी बात से निर्मित है। जीवन में जो भी परम है, श्रेयस्कर है, वह सब इसी विचार से निकलता है।
लेकिन पहली बात तो बिल्कुल आसान है। हम सभी को लगता है कि मैं ही केंद्र हूं; मेरा हित, मेरा स्वार्थ, मेरा अहंकार! शेष सब... ।
मैंने सुना है, यूनान में एक सम्राट ने उन दिनों यूनान के एक महा मनीषी सोलन को अपने राजमहल बुलाया। सोलन एक सुकरात जैसा मनीषी था। सम्राट ने बुलाया सिर्फ इसलिए कि सोलन की बड़ी ख्याति थी। उसके एक-एक शब्द का मूल्य अकूत था। तो कुछ उससे ज्ञान लेने नहीं बुलाया था। कुछ उससे सीखने नहीं बुलाया था। सिर्फ सोलन को बुलाया था कि देख मेरे महल को! मेरे साम्राज्य को! मेरी धन-संपदा को! और सम्राट चाहता था कि सोलन प्रशंसा करे कि आप जैसा सुखी और कोई भी नहीं है, तो इस वचन का मूल्य होगा। सारा यूनान, यूनान के बाहर भी लोग समझेंगे कि सोलन ने कहा है।
सोलन आया, महल घुमाकर दिखाया गया। अकूत संपदा थी सम्राट के पास, न मालूम कितना उसने लूटा था। बहुमूल्य पत्थरों के ढेर थे, स्वर्ण के खजाने थे, महल ऐसा सजा था, जैसे दुल्हन हो। फिर सम्राट उसे दिखा-दिखाकर प्रतीक्षा करने लगा कि वह कुछ कहे। लेकिन सोलन चुप ही रहा। न केवल चुप रहा, बल्कि गंभीर होता गया। न केवल गंभीर हुआ, बल्कि ऐसे उदास हो गया, जैसे सम्राट मरने को पड़ा हो और वह सम्राट को देखने आया हो।
आखिर सम्राट ने कहा कि तुम्हारी समझ में आ रहा है कि नहीं? मैंने तो सुना है कि तुम बड़े बुद्धिमान हो! मुझ जैसा सुखी तुमने कहीं कोई और मनुष्य देखा है? मैं परम सुख को उपलब्ध हुआ हूं। सोलन, कुछ बोलो इस पर!
सोलन ने कहा कि मैं चुप ही रहूं, वही अच्छा है, क्योंकि क्षणभंगुर को मैं सुख नहीं कह सकता। और जो शाश्वत नहीं है, उसमें सुख हो भी नहीं सकता। सम्राट, यह सब दुख है। बड़ा चमकदार है, लेकिन दुख है। तुम इसे सुख समझे हो, तो तुम मूढ़ हो।
सम्राट को धक्का लगा। जो होना था, वह हुआ। सोलन चुप ही रहता, तो अच्छा था। सोलन को उसी वक्त गोली मार दी गई। सामने महल के एक खंभे से लटकाकर, बंधवाकर सम्राट ने कहा, अभी भी माफी मांग लो। तुम गलती पर हो। अभी भी कह दो कि सम्राट, तुम सुखी हो।
सोलन ने कहा, झूठ मैं न कह सकूंगा। मृत्यु में कुछ हर्जा नहीं है, क्योंकि मरना मुझे होगा ही; किस निमित्त मरता हूं, यह गौण है। तुमने मारा, कि बीमारी ने मारा, कि अपने आप मरा, यह सब गौण है। मौत निश्चित है। झूठ मैं न कहूंगा। शाश्वत सुख ही सुख है। क्षणभंगुर सुख दिखाई पड़ता है, लेकिन दुख है। सम्राट! तुम भूल में हो।
गोली मार दी गई।
फिर दस वर्षों बाद, यह सम्राट पराजित हुआ। विजेता ने इसे अपने महल के सामने एक खंभे पर बांधा। जब वह खंभे पर लटका था और गोली मारे जाने को थी, तब उसे अचानक सोलन की याद आई। ठीक दस वर्ष पहले ऐसा ही सोलन खंभे पर लटका था! तब उसे उसके शब्द भी सुनाई पड़े, कि जो शाश्वत नहीं, वह सुख नहीं। जो क्षणभंगुर है, उसका कोई मूल्य नहीं। यह चमकदार दुख है सम्राट! उसी चमकदार दुख को सुख मानकर यह सम्राट इस खंभे पर लटक गया।
सम्राट की आंखें बंद हो गईं। वह अपने को भूल ही गया, सोलन को देखने लगा। और जब उसे गोली मारी जा रही थी, तब उसके होंठों पर मुस्कुराहट थी। और आखिरी शब्द जो उसके मुंह से निकले, वे यह थेः सोलन, सोलन, मुझे क्षमा कर दो। तुम ही सही थे।
विजेता सम्राट सुनकर चकित हुआ; कौन सोलन? किसके वचन सही? और इस मरते सम्राट के होंठों पर मुस्कुराहट कैसी? उसने सारी खोज-बीन करवाई, तब यह पूरी कथा पता चली।

वह जो हमें सुख जैसा मालूम होता है, वह सुख नहीं है। और वह जो हमें सुख जैसा मालूम होता है, उसके लिए हम सबको दुख देते हैं, सब का साधन की तरह उपयोग करते हैं, सब को चूसते हैं, शोषण करते हैं।
हमारा जीवन हमें इतना मूल्यवान होता है मालूम कि अगर सबकी मृत्यु भी उसके लिए घट जाए, तो भी कोई हर्ज नहीं। अगर हमें दूसरों के सिरों पर पैर रखकर, सीढ़ियां बनाकर राजमहल तक पहुंचने का उपाय हो, तो हम लोगों के सिरों का उपयोग सीढ़ियों की तरह करेंगे। सभी महत्वाकांक्षी करते हैं। लोग उनके लिए सीढ़ियों से ज्यादा नहीं हैं। धन की यात्रा करता हो कोई, पद की यात्रा करता हो, लोगों का उपयोग करता है सीढ़ियों की तरह। सभी राजनीतिज्ञ जानते हैं।
राजनीतिज्ञों के सबसे बड़े दार्शनिक मेक्यावेली ने लिखा है कि तुम जिस आदमी का सीढ़ी की तरह उपयोग करो, उपयोग करने के बाद उसे जिंदा मत छोड़ना। उसको काट-पीट डालना। क्योंकि तुम उसका सीढ़ी की तरह उपयोग कर सके हो, दूसरे भी उसका सीढ़ी की तरह उपयोग कर सकते हैं।
इसलिए सभी राजनीतिज्ञ यही करते हैं। जिनके कंधे पर पैर रखकर राजनीतिज्ञ पहुंचता है राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के पद पर, पहुंचते ही उस आदमी को गिराने में लगता है। क्योंकि वह आदमी खतरनाक है, उसके कंधे पर दूसरा भी कल कोई आ सकता है। इसके पहले कि दूसरा उसके कंधे पर सवार हो, उसका विनाश कर देना जरूरी है। या उसे उस जगह पहुंचा देना जरूरी है, जहां वह सीढ़ी का काम न दे सके।
इसलिए सब राजनीतिज्ञ, जिन सीढ़ियों से चढ़ते हैं, उनको जला देते हैं। जिन रास्तों से गुजरते हैं, उनको तोड़ देते हैं। जिन सेतुओं को पार करते हैं, उनको गिरा देते हैं, ताकि दूसरा पीछे से उन पर न आ सके। धन की यात्रा करने वाला भी वही करेगा।
महत्वाकांक्षी अपने को साध्य मानता है, दूसरे को साधन। महत्वाकांक्षी कभी भी धार्मिक नहीं हो सकता। एंबीशन, महत्वाकांक्षा इस जगत में सबसे अधार्मिक घटना है।
धर्म का सूत्र तो कृष्ण कह रहे हैं; वह यह है कि दूसरा साधन नहीं है, साध्य है। दैवी संपदा का व्यक्ति दूसरे को साध्य मानता है। कभी जरूरत पड़े, तो वह सीढ़ी बन सकता है, लेकिन दूसरे को सीढ़ी नहीं बनाएगा। अपने सुख के लिए दूसरे के दुख का सवाल नहीं है। अगर अपना सुख दूसरे के सुख से ही मिल सकता हो, तो ही दैवी संपदा का व्यक्ति उस सुख को स्वीकार करेगा।
और यह समझ लेने जैसा है कि अगर आपके सुख से दूसरा भी सुखी होता हो, तो
वह सुख आनंद है। यह आनंद का फर्क है। जिस आपके सुख से दूसरा दुखी होता हो, वह आनंद नहीं है। और वह सिर्फ दिखाई पड़ता है सुख है, वह सुख भी नहीं है। और एक दिन आप अनुभव करेंगे, तब आपके भीतर से भी आवाज आएगी कि सोलन, सोलन, तू ठीक था। मुझे क्षमा करना। मैं गलती पर हूं।
मेरा सुख अगर आस-पास सभी का सुख बनता हो, तो ही आनंद है। उसे फिर कोई भी छीन न सकेगा।
दैवी और आसुरी संपदा, दूसरों का हम उपयोग करते हैं, कैसा उपयोग करते हैं, इससे विभाजित होती है। दैवी संपदा का व्यक्ति दूसरे का उपयोग ही नहीं करता, दूसरे के उपयोग आ सकता है।
इसलिए जीसस या उन जैसे महाप्रज्ञावान पुरुषों ने सेवा को, दूसरे की सेवा को धर्म की आधारशिला बनाया। उसमें मूल्य है। उस बात का इतना ही मूल्य है कि दूसरे के लिए जरूरत पड़े, तो तुम मिट जाना, लेकिन किसी को भी अपने लिए मत मिटाना।
पूछा है, यह कैसे संभव होगा कि हम दूसरे को साध्य समझ लें?
समझने का सवाल नहीं है, यह तथ्य है। यह वास्तविक स्थिति है कि आप केंद्र नहीं हैं इस जगत के। आप एक छोटी-सी लहर हैं। इस विराट अस्तित्व में आप एक छोटा-सा कण हैं। यह विराट अस्तित्व आपके लिए नहीं है, आप इस विराट अस्तित्व के लिए हैं। जैसे ही यह ख्याल में आ जाएगा... ।
और इसे ख्याल में लाने के लिए कुछ सोचने की जरूरत नहीं है, सिर्फ आंख खोलने की जरूरत है, और यह दिखाई पड़ जाएगा।

आप कल नहीं थे, आज हैं, कल नहीं हो जाएंगे। यह अस्तित्व आपके पहले भी था, अब भी है, आपके बाद भी होगा। आप इस अस्तित्व में से उठते हैं, इसी अस्तित्व में डूब जाते हैं। यह अस्तित्व आपसे बड़ा है, विराट है। आप एक छोटे-से अंश हैं। अंश केंद्र नहीं हो सकता, अंशी ही केंद्र होगा। अंश सब को मिटाकर अपने को बचाने की बात सोचे, तो पागलपन है। यह होने वाला नहीं है। वह खुद ही मिटेगा। लेकिन यह अंश अगर अपने को मिटाकर सारे को बचाने की सोचे, तो कभी भी नहीं मिटेगा। क्योंकि समग्र उसे स्वीकार कर लेगा। समग्र के साथ आत्मसात और एक हो जाएगा।
जिनको हमने भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति कहा है--कृष्ण को, बुद्ध को, महावीर को--उनको भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति इसीलिए कहा है कि उन्होंने अपने अंश को अंशी में छोड़ दिया। अब वे लड़ नहीं रहे; अब उनका कोई विरोध इस जगत से नहीं है। इस अस्तित्व से उनका रत्तीमात्र फासला नहीं है। उन्होंने अपने को पूरा इसमें समर्पित कर दिया, लीन कर दिया।
जो व्यक्ति स्वयं को साध्य मानता है, वह लीन कैसे करे? समर्पण कैसे करे? जो अपने को निमित्त और साधन मान लेता है, वह तत्क्षण लीन हो जाता है। कृष्ण की पूरी शिक्षा अर्जुन को यही है कि तू निमित्त बन जा। तू यह ख्याल ही छोड़ दे कि तू है। तू यही समझ कि परमात्मा है और तू केवल उसका एक मार्ग है, कि जैसे परमात्मा की बांसुरी है तू; परमात्मा बोल रहा है, उसकी वाणी है और तू सिर्फ बांस की पोली नली है। तू सिर्फ मार्ग दे, स्वरों को बहने दे, अवरोध मत कर।
इसे हम कैसे उपलब्ध करें?
कैसे उपलब्ध करने का सवाल नहीं है। यह स्थिति है। थोड़ा-सा सजग और आंख खोलकर देखने की जरूरत है। ऐसा है। जैसे आपकी दो आंखें हैं, दो हाथ हैं; आप आंख बंद किए बैठे हैं और कहते हैं, मैं कैसे मानूं कि मेरे दो हाथ हैं! तो मैं यह कहूं, आंख खोलें और देखें, दो हाथ हैं। इसको मानने की जरूरत नहीं है, सिर्फ आंख खोलने की जरूरत है।
जब भी आप थोड़ा-सा देखेंगे चारों तरफ, तो यह आपको समझने में कठिनाई नहीं होगी कि आप केंद्र नहीं हो सकते। विक्षिप्तता है यह मानना कि मैं केंद्र हूं।

अब हम सूत्र को लें।
वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमंडी पुरुष धन और मान के मद से युक्त हुए, शास्त्र-विधि से रहित केवल नाममात्र यज्ञों द्वारा पाखंड से यजन करते हैं।
तथा वे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि के पारायण हुए एवं दूसरों
की निंदा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाले हैं।
ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बारंबार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं। इसलिए हे अर्जुन, वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए, मेरे को न प्राप्त होकर, उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं।
आसुरी संपदा के जो व्यक्ति हैं, वे अपने आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले हैं। उनके लिए श्रेष्ठता का एक ही अर्थ है कि जो भी मैं हूं, वही श्रेष्ठता है। अपना होना उनकी श्रेष्ठता की परिभाषा है। श्रेष्ठता और अहंकार में उन्हें कोई भेद नहीं है।
नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा है... । उसने कुछ कानून बनाए, फिर उनको बदल दिया, फिर बदल दिया। तो उसके राजमंत्रियों ने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं! कानून थिर होना चाहिए। और इस तरह तो अराजकता हो जाएगी। तो नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा, आइ एम दि लॉ--और कोई कानून नहीं है, मैं कानून हूं। जो मुझसे निकलता है, वह कानून है। कोई कानून मेरे ऊपर नहीं है; मैं ही कानून हूं।
यही आसुरी संपदा वाले का प्राथमिक लक्षण है, मैं श्रेष्ठ हूं।
और धन और मान के मद से युक्त हुए... ।

ऐसे व्यक्ति अगर धर्म भी करते हैं, तो उनका धर्म भी धन और मद का ही मान होता है। वे बड़ा मंदिर खड़ा कर सकते हैं, जो आकाश को छुए। वे यज्ञ करवा सकते हैं, करोड़ों रुपए उसमें खर्च कर सकते हैं। लेकिन यह भी उनके अहंकार की ही यात्रा है। उनके मंदिर का अर्थ है, उनसे बड़ा मंदिर और कोई खड़ा नहीं कर सकता। उनके यज्ञ का अर्थ है कि ऐसा यज्ञ पृथ्वी पर कभी हुआ नहीं। उनका धर्म भी उनकी श्रेष्ठता को ही सिद्ध करे, इतना ही उनके धर्म का प्रयोजन है।
शास्त्र-विधि से रहित केवल नाममात्र यज्ञों द्वारा पाखंड से यजन करते हैं... ।
वे अगर शुभ भी करेंगे, तो सिर्फ इसलिए, ताकि वे पूजे जाएं। वे अगर कुछ भला भी करेंगे, दान भी देंगे, तो सिर्फ इसलिए ताकि वे जाने जाएं। उनके प्रत्येक कृत्य का लक्ष्य वे स्वयं हैं।
तथा वे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि के परायण हुए एवं दूसरों
की निंदा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाले हैं।
परमात्मा कहीं भी हो, उससे उन्हें द्वेष होगा। क्यों? क्योंकि परमात्मा की स्वीकृति, अपने अहंकार का खंडन है।
नीत्से ने अपने एक वचन में लिखा है--जब वह पागल हो गया, तब उसने अपनी डायरी में लिखा है--कि मैं परमात्मा को स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि अगर परमात्मा है, तो फिर मैं नंबर दो हूं, इसलिए मैं परमात्मा को स्वीकार नहीं कर सकता। नंबर एक तो मैं ही हो सकता हूं और या यह हो सकता है कि नंबर एक कोई भी नहीं है। लेकिन परमात्मा कहीं भी है, तो फिर मैं पीछे पड़ता हूं। फिर मेरी स्थिति नीची हो जाती है।
इसलिए परमात्मा को स्वीकार करना आसुरी वृत्ति वाले व्यक्ति को अति कठिन है। इसलिए नहीं कि उसको पता है कि परमात्मा नहीं है। इसलिए भी नहीं कि तर्कों से सिद्ध होता है कि परमात्मा नहीं है। वह तर्क भी देगा, वह सिद्ध भी करेगा। लेकिन न तो तर्कों से सिद्ध होता है कि परमात्मा है और न सिद्ध होता है कि परमात्मा नहीं है। इसे थोड़ा समझ लें।
मनुष्य की बुद्धि न तो पक्ष में कुछ तय कर सकती है, न विपक्ष में। अब
तक हजारों-हजारों तर्क दिए गए हैं। जितने पक्ष में हैं, उतने ही विपक्ष में। बराबर संतुलन है। कोई आस्तिक किसी नास्तिक को राजी नहीं कर सकता कि ईश्वर है; और कोई नास्तिक किसी आस्तिक को राजी नहीं करवा सकता कि ईश्वर नहीं है। दोनों बातें समतुल हैं। तर्कों से कुछ सिद्ध नहीं हुआ है। लेकिन फिर भी कुछ लोग मानते हैं कि ईश्वर है। कुछ लोग मानते हैं, नहीं है। तो किस आधार पर मानते होंगे, क्योंकि तर्क से कुछ भी सिद्ध नहीं होता। तब आधार दूसरे हैं; तब आधार का कारण आसुरी संपदा और दैवी संपदा है।
वे जो समझते हैं कि मैं ही श्रेष्ठ हूं, मुझसे ऊपर कोई भी नहीं, वे परमात्मा को नहीं मान सकते। फिर वे तर्क खोज लेते हैं। लेकिन वे तर्क पीछे आते हैं, वे तर्क रेशनलाइजेशंस हैं। वह अपनी ही मानी हुई बात को सिद्ध करने का उपाय है।
और दूसरे वे लोग हैं, जो जानते हैं कि मैं कैसे केंद्र हो सकता हूं! मैं केवल एक लहर हूं। वे परमात्मा को स्वीकार कर लेते हैं। उनकी स्वीकृति भी तर्क से नहीं आती, उनकी दैवी संपदा से आती है।
और इन दोनों के बीच में अधिक लोग हैं, जिन्होंने कुछ तय ही नहीं किया।
जिनको हम अधिकतर आस्तिक कहते हैं, वे बीच के लोग हैं; आस्तिक नहीं हैं। उन्होंने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि परमात्मा है या नहीं। आप में से अधिक लोग उस तीसरे हिस्से में ही हैं।
अगर आप कहते हैं कि होगा, तो उसका मतलब यह नहीं कि आप मानते हैं कि ईश्वर है। आप मानते हैं, सोचने योग्य भी नहीं है। लोग कहते हैं; होगा। और क्या हर्जा है, हो तो हो। और कभी वर्ष में एकाध बार अगर मंदिर भी हो आए, तो क्या बनता-बिगड़ता है! और होशियार आदमी दोनों तरफ कदम रखकर चलता है। अगर हो ही, तो मरने के बाद कोई झंझट भी नहीं होगी। न हो, तो हमने कुछ उसके लिए खोया नहीं। हमने संसार अच्छी तरह भोगा। और मानते रहे कि परमात्मा है। हम दोनों नाव पर सवार हैं।

बहुत थोड़े-से लोग हैं, जो मानते हैं कि परमात्मा है। वे वे ही लोग हैं,
जो अपने अहंकार को तोड़ते हैं, घमंड को छोड़ते हैं, गर्व को गिराते हैं। बहुत लोग हैं, जो मानते हैं परमात्मा नहीं है। उनका कुल कारण इतना है कि वे खुद अपने को साध्य समझे हैं। इसलिए अपने से परम को स्वीकार करना उनके लिए आसान नहीं है। और अधिक लोग हैं, जिनको कोई चिंता ही नहीं है, जिनको कोई प्रयोजन नहीं है, जो उपेक्षा से भरे हैं।
इसमें आप कहां हैं? और आप जहां भी होंगे, मजे की बात यह है कि वहीं के लिए आप तर्क खोज लेंगे।
फ्रायड ने एक बहुत बड़ी खोज इस सदी में की। और उसने यह खोज की कि लोग तय पहले कर लेते हैं, तर्क बाद में खोजते हैं। आप एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हैं। कोई आपसे पूछे कि आप प्रेम में क्यों पड़े हैं इसके? तो आप कहते हैं, वह इतनी सुंदर है।
लेकिन फ्रायड कहता है, मामला बिल्कुल उलटा है। वह स्त्री दूसरों को सुंदर नहीं दिखाई पड़ती। आप कहते हैं, सुंदर है, इसलिए प्रेम में पड़े। फ्रायड कहता है, आप प्रेम में पड़ गए, इसलिए सुंदर दिखाई पड़ती है।
यह बात ज्यादा सही मालूम होती है, क्योंकि और किसी को सुंदर नहीं दिखाई पड़ती। और दूसरों को शायद कुरूप दिखाई पड़ती हो। शायद दूसरे चकित होते हों कि आपका दिमाग खराब हो गया है कि आप इस स्त्री के चक्कर में पड़े हैं! और आप अपने मन में सोचते हैं कि दुनिया भी कैसी मूढ़ है; अज्ञानीजन हैं। इनको इस स्त्री का असली रूप दिखाई ही नहीं पड़ रहा है।
प्रेम में हम पहले पड़ते हैं, फिर तर्क हम बाद में इकट्ठा करते हैं।
किसी व्यक्ति को आप देखते ही घृणा करने लगते हैं, फिर आप तर्क खोजते हैं, फिर आप कारण खोजते हैं। क्योंकि बिना कारण हमें अड़चन होती है। अगर कोई हमसे पूछे कि क्यों घृणा करते हो, और हम कहें कि बिना कारण करते हैं, तो हम मूढ़ मालूम पड़ेंगे। तो हम कारण खोजते हैं कि यह आदमी मुसलमान है; मुसलमान बुरे होते हैं। यह आदमी हिंदू है; हिंदू भले नहीं होते। कि यह आदमी मांसाहारी है; कि इस आदमी का चरित्र खराब है। आप फिर हजार कारण खोजते हैं। वे कारण आपने पीछे से खोजे हैं। भाव आपका पहले निर्मित हो गया। और भाव अचेतन है और कारण चेतन है।
फ्रायड की खोज बड़ी बहुमूल्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अंधे की तरह जीता
है और सिद्ध करने को कि मैं अंधा नहीं हूं, कारणों की तजवीज करता है। उनको उसने रेशनलाइजेशंस कहा है। फिर उनको वह बुद्धि-युक्त ठहराता है।
ईश्वर के साथ भी यही होता है, गुरु के साथ भी यही होता है।
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर के पास दो युवक गए। वे साधना में उत्सुक
थे और सत्य की खोज करना चाहते थे। उस फकीर ने कहा, सत्य और साधना थोड़े दिन बाद; अभी मुझे कुछ और दूसरा काम तुमसे लेना है। लकड़ी चुक गई हैं आश्रम की, तो तुम दोनों जंगल चले जाओ और लकड़ियां इकट्ठी कर लो। और अलग-अलग ढेर लगाना। क्योंकि तुम्हारी लकड़ी का ढेर केवल लकड़ी का ढेर नहीं है, उससे मुझे कुछ और परीक्षा भी करनी है।
तो दोनों युवक गए; उन्होंने लकड़ी के दो ढेर लगाए। फिर गुरु सात दिन बाद आया, तो उसने पहले युवक के लकड़ी के ढेर में आग लगाने की कोशिश की। सांझ तक परेशान हो गया। आंखों से आंसू बहने लगे। धुआं ही धुआं निकला, आग न लगी। सब लकड़ियां गीली थीं। शिष्य ने क्या कहा गुरु को? कि मैं चला। जब तुमको लकड़ी में आग लगाना नहीं आता, तो तुम मुझे क्या बदलोगे!
दूसरे युवक की लकड़ियों में गुरु ने आग लगाई; लकड़ियां भभककर जल गईं। सूखी लकड़ियां थीं। दूसरा युवक भी पहली घटना देख रहा था।
और पहला युवक छोड़कर जा चुका था, और जाकर उसने गांव में प्रचार करना शुरू कर दिया था कि यह आदमी बिल्कुल बेकार है। एक तो हमारे सात दिन खराब किए, लकड़ी इकट्ठी करवाईं। हम गए थे सत्य को खोजने! इसमें कोई तुक नहीं है, संगति नहीं है। फिर हमने पसीना बहा-बहाकर, खून-पसीना करके लकड़ियां इकट्ठी कीं। और इस आदमी को आग लगाना नहीं आता। तो उसने लकड़ियां भी खराब कीं, धुआं पैदा किया, हमारी तक आंखें खराब हुईं। और यह आदमी किसी योग्य नहीं है। भूलकर कोई दुबारा इसकी तरफ न जाए।

दूसरा युवक भी यह देख रहा था कि पहला युवक जा चुका है। दूसरे युवक की लकड़ियां जब भभककर जलने लगीं, तो उसने कहा कि बस, ठहरो। यह मत समझ लेना कि बड़े अकलमंद हो तुम। लकड़ियां सूखी थीं, इसलिए जल रही हैं, इसमें तुम्हारी कोई कुशलता नहीं है। और मैं चला। अगर तुम इसको अपना ज्ञान समझ रहे हो कि सूखी लकड़ियों को जला दिया तो कोई बहुत बड़ी बात कर ली, तो तुम से अब सीखने को क्या है!
दोनों युवक चले गए। गुरु मुस्कुराता हुआ वापस लौट आया। आश्रम में लोगों ने उससे पूछा, क्या हुआ? तो उसने कहा, जो होना था ठीक उससे उलटा हुआ। पहला युवक अगर कहता कि लकड़ियां गीली हैं, मैं गीला हूं, इसलिए तुम्हें जलाने में इतनी कठिनाई हो रही है, तो उसका रास्ता खुल जाता। दूसरा युवक अगर कहता कि तुम्हारी कृपा है कि मेरी लकड़ियों में आग लग गई, तो उसका रास्ता खुल जाता। लेकिन दोनों ने रास्ते बंद कर लिए। और अब दोनों जाकर प्रचार कर रहे हैं; दोनों ने धारणा बना ली, अब दोनों उसके लिए तर्क जुटा रहे हैं। मुझसे उन्होंने पूछा नहीं। मेरी तरफ देखा नहीं। मैं क्या कर रहा था, मेरा क्या प्रयोजन था, इसकी उन्होंने कोई खोज न की। सतह से कुछ बातें लेकर वे जा चुके हैं।
आप भी, जहां भी आपको दूसरे को श्रेष्ठ मानना पड़ता है, वहां बड़ी अड़चन आती है। दूसरे को अपने से नीचा मानना बिल्कुल सुगम है। हम हमेशा तैयार ही हैं। हम पहले से माने ही बैठे हैं कि दूसरा नीचा है। सिर्फ अवसर की जरूरत है और सिद्ध हो जाएगा।
और अगर कोई दूसरा हमसे आगे भी निकल जाए कभी, तो हम जानते हैं कि चालाकी, शरारत, कोई धोखाधड़ी, कोई भाई-भतीजा वाद, कुछ न कुछ मामला होगा, तभी दूसरा आगे गया, नहीं तो हमसे आगे कोई जा कैसे सकता था! अगर दूसरा हमसे पीछे रह जाए, तो हम समझते हैं, रहेगा ही पीछे; क्योंकि हमसे आगे जाने की कोई योग्यता भी तो होनी चाहिए।
हम जो भी होते हैं, जहां भी होते हैं, उसके अनुसार तर्क खोज लेते हैं। ईश्वर है या नहीं है, यह बड़ा सवाल नहीं। जो व्यक्ति ईश्वर को मान सकता
है कि है, उसने अपने को झुकाया, यह बड़ी भारी बात है। ईश्वर न भी हो, तो भी जिसने स्वीकार किया कि ईश्वर है और अपने को झुकाया, इसके लिए ईश्वर हो जाएगा। और जो कहता है, ईश्वर नहीं है--चाहे ईश्वर हो ही--इसने अपने को अकड़ाया। ईश्वर हो, तो भी इसके लिए नहीं है, तो भी इसके लिए नहीं हो सकेगा, तो भी क्योंकि इसके द्वार बंद हैं।
वह जो आसुरी संपदा का व्यक्ति है, अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादि
के परायण हुआ, दूसरों की निंदा करने वाला, दूसरों के शरीर में मुझ अंतर्यामी से द्वेष करने वाला है। ऐसे उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं।
यह वचन थोड़ा कठिनाई पैदा करेगा, क्योंकि हमें लगेगा कि क्यों परमात्मा गिराएगा! होना तो यह चाहिए कि कोई आसुरी वृत्ति में गिर रहा हो, तो परमात्मा उसे रोके, बचाए, दया करे। क्योंकि हम निरंतर प्रार्थना करते हैं कि हे पतितपावन! हे करुणा के सागर! दया करो, बचाओ, मैं पापी हूं। और ये कृष्ण कह रहे हैं कि ऐसे नराधम, क्रूरकर्मी को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता हूं!
जब ईसाई या इस्लाम धर्म को मानने वाले लोग इस तरह के वचन पढ़ते हैं, तो उनको बड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि इस्लाम में तो परमात्मा के सभी नाम-- रहीम, रहमान, करीम--सब नाम दया के हैं कि वह दयालु है। यह कैसी दया! और जीसस ने कहा है कि तुम प्रार्थना करो, तो सब तरह की क्षमा संभव है। तुम पुकारो, तो क्षमा कर दिए जाओगे।
लेकिन कृष्ण का यह वचन! इसका तो अर्थ यह हुआ, और यही भारतीय प्रज्ञा की खोज है, कि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि तुम पुकारो और वह क्षमा कर दे। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि तुम उसे फुसला लो, राजी कर लो--प्रशंसा से, खुशामद से, स्तुति से--और वह बदल दे। परमात्मा एक नियम है, व्यक्ति नहीं। इसको थोड़ा समझ लें।

परमात्मा एक व्यवस्था है, व्यक्ति नहीं। तो आग में कोई आदमी हाथ डाले,
तो आग जलाएगी। आग जलाने को उत्सुक नहीं है। आग इस आदमी को जलाने के लिए पीछे नहीं दौड़ती। लेकिन यह आदमी आग में हाथ डालता है, तो आग जलाती है। क्योंकि आग का स्वभाव जलाना है, वह उसका नियम है। अगर हम आग से पूछें, तो वह कहेगी, जो मुझमें हाथ डालेगा, उसे मैं जलाऊंगी। आग चूंकि बोलती नहीं, इसलिए हमें ख्याल में नहीं है।
कृष्ण परमात्मा की तरफ से बोल रहे हैं। वह जो जागतिक नियम है, युनिवर्सल लॉ है, वह जो जीवन का आधार-स्तंभ है, उसकी तरफ से बोल रहे हैं। वह कहते हैं, जो व्यक्ति ऐसा कर्म करेगा, इस तरह की दृष्टि और धारणा रखेगा, ऐसा पाप में डूबेगा, उसे मैं गिराता हूं। गिराने का कुल मतलब इतना ही है, ऐसा करने से वह अपने आप गिरता है; कोई परमात्मा उसको धक्का नहीं देता। धक्का देने की कोई जरूरत नहीं है। वह ऐसा करता है, इसलिए गिरता है।
इसलिए भारत की जो गहरी से गहरी खोज है, वह कर्म का सिद्धांत है। यह खोज इतनी गहरी है कि जैनों और बौद्धों ने परमात्मा को विदा ही कर दिया। उन्होंने कहा, यह सिद्धांत ही काफी है। परमात्मा को बीच में लाने की कोई जरूरत भी नहीं है। जैनों और बौद्धों ने परमात्मा को इनकार ही कर दिया कि कोई जरूरत ही नहीं है परमात्मा को बीच में लाने की। कर्म से मामला साफ हो जाता है। और सच में ही साफ हो जाता है।
लेकिन परमात्मा को इनकार करने की कोई भी जरूरत नहीं, क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही वह महानियम है जो इस जीवन को चला रहा है। उसे हम कर्म का नियम कहें, या परमात्मा कहें, एक ही बात है।
वह जो गिरता है अपने हाथ से, नियम उसे गिराता है। आप जमीन पर चलते हैं, सम्हलकर चलते हैं, तो ठीक। उलटे-सीधे चलते हैं, तो गिर जाते हैं, हाथ-पैर टूट जाते हैं। कोई जमीन आपको गिराती नहीं है। लेकिन उलटा-सीधा जो चलता है, नियम के विपरीत, उसके हाथ-पैर टूट जाते हैं।
जमीन स्वेच्छा से, आकांक्षा से आपका हाथ-पैर नहीं तोड़ती। लेकिन जमीन
का नियम है, उसके विपरीत जो जाता है, वह टूट जाता है। उसके अनुकूल जो जाता है, वह सहजता से मंजिल पर पहुंच जाता है।
जगत के नियम को समझकर उसके अनुकूल चलने का नाम धर्म है।
बुद्ध ने धर्म शब्द का अर्थ ही नियम किया है, दि लॉ। जब बुद्ध कहते हैं, धम्मं शरणं गच्छामि; तो वह कहते हैं, धर्म की शरण जाओ; तो उसका यही अर्थ है कि नियम की शरण जाओ। और नियम के अनुकूल चलोगे, तो तुम मुक्त हो जाओगे। नियम के प्रतिकूल चलोगे, तो अपने हाथ से बंधते चले जाओगे। नियम के विपरीत जो जाएगा, वह दुख पाएगा। नियम के अनुकूल जो जाएगा, वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है।
इसलिए हे अर्जुन, वे मूढ़ पुरुष जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए मेरे को न प्राप्त होकर उससे भी अति नीची गति को ही प्राप्त होते हैं। जब कोई व्यक्ति गिरना शुरू हो जाता है, तो वह मोमेंटम पकड़ता है, गिरने में भी गति आ जाती है। आप कभी सोचें, अगर आप एक झूठ बोलें, तो फिर दूसरा और तीसरा और चौथा... । और दूसरा पहले से बड़ा, और तीसरा दूसरे से बड़ा, क्योंकि फिर और बड़ा झूठ बोलना जरूरी है पिछले झूठ को सम्हालने के लिए। फिर एक गति आ जाती है। फिर उस गति का कोई अंत नहीं है।
एक पाप करें, फिर दूसरा, फिर तीसरा, और बड़ा, और बड़ा; तब आप अपने ही हाथ
से गिरते चले जाते हैं। और अगर आप गिरना चाहते हैं, तो नियम सहयोग देता है। अगर आप उठना चाहते हैं, तो नियम सीढ़ी बन जाता है। गहरे में समझने पर, आप जो करते हैं, उससे आपकी दिशा निर्मित होती है।
सुबह आप उठे और आपने क्रोध किया। आपने दिन के लिए चुनाव कर लिया। अब दूसरा क्रोध पहले से ज्यादा आसान होगा; तीसरा दूसरे से ज्यादा आसान होगा। सांझ तक आप अनेक बार क्रोध करेंगे और सोचेंगे, न मालूम किस दुष्ट का चेहरा देखा!
आईने में अपना ही देखा होगा। क्योंकि किसी दूसरे के चेहरे से आपके जीवन की गति का कोई संबंध नहीं है; आपसे ही संबंध है।
इसलिए सारे धर्मों ने फिक्र की है कि सुबह उठकर पहला काम परमात्मा की प्रार्थना का करें। उससे मोमेंटम बदलेगा, उससे गति बदलेगी। प्रार्थना के

बाद एकदम से क्रोध करना मुश्किल होगा। और प्रार्थना के बाद और प्रार्थनापूर्ण होना आसान हो जाएगा।
जो बात गलत के संबंध में सही है, वही सही के संबंध में भी सही है। जो आप करते हैं, उसी दिशा में करने की और गति आती है। जिस तरफ आप चलते हैं, उस तरफ आप दौड़ने लगते हैं। दिशा चुनना बड़ा जरूरी है। सुबह उठते ही प्रेम और प्रार्थना और करुणा का भाव हृदय में भर जाए, तो आपके दिन की यात्रा बिल्कुल दूसरी होगी। लेकिन सुबह अगर आप चूक गए, तो बड़ी कठिनाई हो जाती है। यही बात पूरे जीवन के संबंध में भी लागू है। अगर बचपन में दिशा प्रार्थना और परमात्मा की हो जाए, तो पूरे जीवन की यात्रा आसान हो जाएगी। इसलिए हम अपने बच्चों को इस मुल्क में पुराने दिनों में, पहले चरण में गुरुकुल भेज देते थे कि पच्चीस वर्ष तक वे प्रार्थनापूर्ण जीवन व्यतीत करें। क्योंकि उससे गति बनेगी; एक यात्रा का पथ निर्मित होगा। फिर बहुत आसानी से आगे सब हो जाएगा।
एक बार बचपन खो गया, गति बिगड़ गई, पैर डांवाडोल हो गए, उलटी दिशा पकड़ गई, फिर उसी दिशा में दौड़ शुरू हो जाती है। जवानी दौड़ का नाम है। बचपन में जो दिशा पकड़ ली, जवानी उसी दिशा में दौड़ती चली जाएगी। फिर बुढ़ापा ढलान है। जिस दिशा में आप जवानी में दौड़े हैं, उसी दिशा में आप बुढ़ापे में ढलेंगे। क्योंकि शक्ति फिर क्षीण होती चली जाती है।
अब तो मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं कि सात वर्ष की उम्र के बच्चे को हम जो दिशा दे देंगे, सौ में निन्यानबे मौके पर वह उसी दिशा में जीवनभर यात्रा करेगा। बहुत शक्ति की जरूरत है फिर बाद में दिशा बदलने के लिए। शुरू में दिशा बदलना बिल्कुल आसान है। कोमल पौधा है, झुक जाता है। फिर रास्ता पकड़ लेता है, फिर उस झुकाव को तोड़ना बहुत कठिन हो जाता है। बचपन में जाने का तो अब कोई उपाय नहीं, लेकिन रोज सुबह आप फिर से थोड़ा-
सा बचपन उपलब्ध करते हैं। कम से कम दिन को दिशा दें। दिन जुड़ते जाएं। और अनेक दिन जुड़कर जीवन बन जाते हैं। गलत कदम उठाने से रोकें। उठ जाए, तो बीच से वापस लौटा लें। सही कदम उठाने की पूरी ताकत लगाएं; आधा भी जा सकें, तो न जाने से बेहतर है। थोड़े ही दिन में आपकी जीवन-ऊर्जा दिशा बदल लेगी।
आसुरी दिशा, हम जो कर रहे हैं, क्रोध, मान, अहंकार, उसमें हमें बढ़ाती जाती है। उससे रुकेंगे नहीं, बदलेंगे नहीं, हाथ हटाएंगे नहीं, कुछ छोड़ेंगे नहीं गलत, खाली न होंगे हाथ, तो दैवी संपदा की तरफ बढ़ना बहुत मुश्किल है। और जिस तरफ आप जाते हैं, उस तरफ... ।
कृष्ण कहते हैं, और भी मैं अति नीची योनियों में गिराता हूं।
वे गिराते नहीं। कोई गिराने वाला नहीं है, कोई उठाने वाला नहीं है। आप
ही गिरते हैं। नियम न पक्षपात करता है, न चुनाव करता है। नियम निष्पक्ष है। इसलिए जो भी आप हैं, अपनी ऊर्जा, दिशा और नियम, तीन का जोड़ हैं।
नियम शाश्वत है, सनातन है; आपकी ऊर्जा शाश्वत है, सनातन है; ये दोनों समानांतर हैं। इन दोनों के बीच में एक और तत्व है, आपका चुनाव, इस ऊर्जा को नियम के अनुकूल बहाना या नियम के प्रतिकूल बहाना।
नदी बह रही है; नाव आपके पास है, वह आपका जीवन है; नदी नियम है। अब इस नदी के साथ नाव को बहाना है या नदी के विपरीत नदी से लड़ने में नाव को लगाना है?
जो नदी के विपरीत बहेगा, वह आसुरी चित्त-दशा को उपलब्ध होता जाएगा। जो नदी के साथ बह जाएगा--उस साथ बहने का नाम ही समर्पण है--वह दिव्यता को उपलब्ध हो जाता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग सात
गीता दर्शन अध्याय 16
आठवां प्रवचन

नरक के द्वारः काम, क्रोध, लोभ

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। 21।।
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।। 22।।
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।। 23।।
तस्माच्छात्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।। 24।।
और हे अर्जुन, काम, क्रोध तथा लोभ, ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं अर्थात अधोगति में ले जाने वाले हैं, इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिए।
क्योंकि हे अर्जुन, इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है। इससे वह परम गति को जाता है अर्थात मेरे को प्राप्त होता है।
और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से बर्तता है, वह
न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को तथा न सुख को ही प्राप्त होता है।
इसलिए तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र-विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः ईश्वर और धर्म यदि परम नियम के ही नाम हैं, उससे अन्यथा कुछ भी नहीं, तो प्रार्थना, भक्ति, आराधना, सब व्यर्थ हो जाते हैं। तब तो धर्म विज्ञान का पर्याय हो जाता है और उस परम नियम की खोज में निकलना मात्र धर्म रह जाता है। इस पर कुछ और प्रकाश डालें।

ऐसा प्रश्न मन में उठेगा। यदि धर्म मात्र नियम है, तो स्वभावतः धर्म विज्ञान ही हो गया। फिर प्रार्थना कैसी? किससे? आराधना कैसी और किसकी? पूजा, भक्ति सब व्यर्थ हो जाते हैं।
क्योंकि हमने अब तक ऐसा ही समझा है कि प्रार्थना तभी हो सकती है, जब व्यक्तिगत रूप से ईश्वर मौजूद हो। हमने अब तक ऐसा ही सुना और समझा है कि पूजा तभी हो सकती है, जब पूजा लेने वाला मौजूद हो। आराधना और भक्ति तभी सार्थक है, जब भगवान हो; कोई व्यक्ति की तरह मौजूद हो, जो स्वीकार करे, अस्वीकार करे; स्तुति से प्रसन्न हो, निंदा से नाराज हो। कोई प्रतिक्रिया करने वाला मौजूद हो, तो ही हमारे प्रेम की पुकार का कोई अर्थ है; कोई जबाब दे! हमने अब तक ऐसा ही समझा है, इसलिए प्रश्न उठता है।
लेकिन हमारी समझ भ्रांत है; हमारी समझ में भूल है।
प्रार्थना की उपादेयता परमेश्वर है, इससे जरा भी नहीं है। प्रार्थना करने का सारा का सारा विज्ञान प्रार्थना करने वाले से संबंधित है। भगवान हो या न हो, व्यक्ति की तरह कोई आकाश में बैठकर जीवन को चलाता हो या न चलाता हो, भक्ति का उससे कुछ लेना-देना नहीं है। भक्ति तो भक्त की अंतर्दशा है। भक्त को कठिन होगा बिना भगवान के भक्तिपूर्ण होना, इसलिए सभी धर्मों
ने भगवान की धारणा को पोषित किया है। यह सिर्फ भक्त को सहारा देने के लिए है। लेकिन अगर समझ हो, तो भक्ति अपने आप में पूरी है, भगवान की कोई भी जरूरत नहीं। प्रार्थना अपने आप में पूरी है, कोई उसे सुनता हो कि न सुनता हो; सुनने वाला आवश्यक नहीं। आराधना पर्याप्त है, आराध्य जरा भी आवश्यक नहीं है।

जब मैं यह कहता हूं, तो क्या मेरा अर्थ होगा! क्योंकि बात कठिन लगेगी। आराधना हमारे लिए तभी समझ में आती है, जब आराध्य हो; पूजा तभी समझ में आती है, जब कोई पूज्य हो। लेकिन मैं आपको कहना चाहूंगा कि पूजा चित्त की एक दशा है।
बुद्ध किसी भगवान को मानते नहीं, फिर भी उनकी आराधना में रत्तीभर कमी नहीं है। किसी परमेश्वर की उनके मन में कोई धारणा नहीं है, लेकिन बुद्ध से ज्यादा प्रार्थनापूर्ण हृदय आप खोज पाइएगा? एच.जी.वेल्स ने लिखा है कि बुद्ध जैसा ईश्वररहित और ईश्वर जैसा व्यक्ति खोजना कठिन है--सो गॉडलेस एंड सो गॉड लाइक।
इसे हम थोड़ा-सा अंतर्मुखी हों, तो ख्याल में आ सकेगा।
क्या आप प्रेमपूर्ण हो सकते हैं बिना प्रेमी के हुए? क्या प्रेमपूर्ण होना आपके जीवन का ढंग और शैली हो सकती है? क्या प्रेमपूर्ण होना आपकी भाव-दशा हो सकती है?
तो फिर आप उठेंगे भी तो प्रेम से, बैठेंगे भी तो प्रेम से, भोजन करेंगे
तो भी प्रेम से, सोने जाएंगे तो भी प्रेम से। कोई प्रेमी नहीं होगा, लेकिन आप प्रेमपूर्ण होंगे। फिर जो भी आपके मार्ग पर आ जाएगा, वही आपको प्रेमी जैसा मालूम पड़ेगा। एक पक्षी भी उड़ जाएगा आपके आंगन से और आप प्रेमपूर्ण होंगे, तो पक्षी प्रेमी हो जाएगा। कोई भी न होगा, सूना आकाश होगा आपके आंगन का और आपका हृदय प्रेमपूर्ण होगा, तो सूना आकाश भी व्यक्तित्व ले लेगा। व्यक्ति की जरूरत नहीं है, हृदय प्रेमपूर्ण हो, तो प्रेमपूर्ण हृदय जिस तरफ भी प्रकाश डालता है, वहीं व्यक्तित्व निर्मित हो जाता है। भगवान नहीं है, भक्त है। और भक्त का हृदय जहां भी देखता है, वहीं भगवान प्रकट हो जाता है।
इसे थोड़ा समझने की जरूरत है।
यह भक्त के हृदय की सृजनकला है कि वह जहां भी आंख डालता है, वहां भगवान पैदा हो जाता है। वह वृक्ष में देखेगा, तो वृक्ष में भगवान प्रकट हो जाएगा। यह आपकी आंख पर निर्भर है कि आप क्या पैदा कर लेते हैं। भगवान भक्त का सृजन है।
धर्म तो नियम है। धर्म कोई व्यक्ति नहीं है, धर्म तो शक्ति है। इसलिए भगवान शब्द ठीक नहीं है, भगवत्ता! डीइटी नहीं, डिविनिटी! कोई व्यक्ति की तरह बैठा हुआ पुरुष नहीं है ऊपर, जो चला रहा हो। लेकिन यह सारा जगत चल रहा है। चलने की घटना घट रही है; कोई चलाने वाला नहीं है। यह जो चलने का विराट उपक्रम चल रहा है, यह जो चलने की महान ऊर्जा है, यह जो शक्ति है, यह शक्ति ही भगवान हो जाती है, अगर हृदय में भक्ति हो। यह शक्ति ही प्रकृति मालूम पड़ती है, अगर हृदय में भक्ति न हो।
प्रकृति और परमात्मा दो तरह के हृदय की व्याख्याएं हैं। जिसके हृदय में कोई भक्ति नहीं, उसे चारों तरफ प्रकृति दिखाई पड़ती है, पदार्थ दिखाई पड़ता है। जिसके हृदय में भक्ति है, उसे चारों तरफ परमात्मा दिखाई पड़ता है, परमेश्वर दिखाई पड़ता है। परमेश्वर और प्रकृति एक ही विराट घटना की व्याख्याएं हैं। और आपके हृदय पर निर्भर है कि व्याख्या आप कैसी करेंगे। आप वही देख लेंगे, जो आपके हृदय में आविर्भूत हुआ है।
प्रार्थना, पूजा, आराधना भगवान के कारण नहीं हैं। लेकिन प्रार्थना, पूजा, आराधना के कारण जगत भगवान जैसा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। भगवान है और इसलिए हम प्रार्थना करते हैं, ऐसा नहीं। हम प्रार्थना करते हैं, इसलिए भगवान हो जाता है।
लोग कहते हैं, भगवान ने आपको बनाया, और मैं आपको कहता हूं कि आपकी भक्ति भगवान को सृजित करती है। जहां आपकी भक्ति होगी, वहां भगवान प्रकट हो जाता है। जहां से आपकी भक्ति विदा हो जाएगी, वहीं भगवान विदा हो जाएगा। भगवान आपकी आंखों के देखने का ढंग है।
धर्म तो नियम है। लेकिन उस नियम में उतरना, आपको अपने को बदलना पड़े, तभी हो सकता है।
प्रार्थना आपको बदलने के लिए है। आमतौर से हम प्रार्थना करते हैं परमात्मा को बदलने के लिए। आप बीमार हैं, तो आप प्रार्थना करते हैं कि मुझे ठीक करो। परमात्मा का इरादा बदलने की चेष्टा है हमारी प्रार्थना।

अगर आप बीमार हैं और सच में ही भक्त हैं, तो आपको स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा चाहता है कि मैं बीमार होऊं, इसलिए मैं बीमार हूं।
परमात्मा का दृष्टिकोण बदलने की चेष्टा हम करते हैं कि मुझे स्वस्थ कर; कि मैं गरीब हूं, मुझे अमीर कर; कि मैं दुखी हूं, मुझे सुखी कर; अपनी दृष्टि बदल। हम परमात्मा का ध्यान आकर्षित करते हैं कि बदलो; जो चल रहा है, वह ठीक नहीं; मैं उससे राजी नहीं हूं।
और हम उसकी खुशामद करते हैं। क्योंकि हमने जीवन में सीखा है कि मनुष्य को हम खुशामद से प्रभावित कर सकते हैं, इसलिए हम सोचते हैं, जिस ढंग से आदमी प्रभावित होता है, उसी ढंग से परमात्मा भी प्रभावित होगा। तो हम स्तुति करते हैं; हम उसका गुणगान करते हैं। हम कहते हैं, तुम बहुत महान हो। लेकिन हमारी इस सारी चेष्टा में छिपा क्या है? मन की आकांक्षा क्या है? यही कि तुम जो कर रहे हो, वह ठीक नहीं। और हमारी इस स्तुति में एक तरह
की धमकी है कि अगर तुम यह बंद नहीं करोगे, तो यह स्तुति बंद हो जाएगी, तो यह प्रार्थना समाप्त हो जाएगी; फिर तुम्हें कोई पूजने वाला नहीं है। अगर पूजा जारी रखवानी है, तो हमारी मरजी के अनुसार थोड़ा कुछ करो।
हमारी सारी प्रार्थनाएं मांगें हैं; हम कुछ मांगते हैं। और हमारी मौलिक मांग यह है कि हम ठीक हैं और तुम गलत हो।
एक बहुत बड़े विचारक अल्डुअस हक्सले ने लिखा है कि परमात्मा से हम जब
भी प्रार्थना करते हैं, हम चाहते हैं कि दो और दो चार न हों।
हमारी सारी प्रार्थनाओं का रूप यही है कि दो और दो चार न हों। हमने पाप किए हैं, उसके कारण हम दुख भोगते हैं। वह दो और दो चार हो रहे हैं। हम चाहते हैं, दुख हमें न मिले। पाप हमने किए हैं, क्षमा तुम कर दो।
जो भी हम भोग रहे हैं, वह हमारे कृत्यों का जोड़ है। लेकिन उसमें तुम बदलाहट कर दो। दो और दो तो चार होते हैं, लेकिन हम चाहते हैं, या तो तुम पांच करो या तुम तीन करो; चार भर न हो पाएं। हमारी सारी प्रार्थनाएं गणित को डगमगाने के लिए हैं, नियम को तोड़ने के लिए हैं। अन्यथा प्रार्थना का हमारा क्या प्रयोजन है?
इस प्रार्थना की अगर आप धारणा रखते हैं, तब तो बिना परमात्मा के प्रार्थना व्यर्थ हो जाएगी। क्योंकि अगर वहां कोई है ही नहीं, सिंहासन खाली है, तो आप सिर पटकते रहो, बेकार है। आप तभी तक सिर पटक सकते हो, जब तक भरोसा रहे कि सिंहासन पर कोई है, तो शायद हमारे सिर पटकने से बदलेगा।
और हम अपने मन को समझा लेते हैं, अगर कभी बदलाहट हो जाती है। हमारी प्रार्थनाओं के कारण कोई बदलाहट नहीं होती, न कोई परमात्मा बदलाहट करने वाला है। लेकिन जीवन के अनंत संयोगों में कभी-कभी हमारी प्रार्थना संयोगों से मेल खाती है, बदलाहट हो जाती है, तो हम उसे धन्यवाद देते हैं। अगर बदलाहट नहीं होती, तो हम नाराजगी जाहिर करते हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम तो छोड़ने की स्थिति में आ गए थे, कि यह धर्म-वर्म सब व्यर्थ है। लेकिन प्रार्थना पूरी हो गई, तब से आस्था बढ़ गई। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम थक गए प्रार्थना कर-करके, कभी कोई फल न आया; आस्था उठ गई।
आस्था किसी की भी नहीं है। प्रार्थना पूरी हो जाए, तो आस्था जमती है। प्रार्थना न पूरी हो, तो आस्था उखड़ जाती है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन रोज सुबह प्रार्थना करता था काफी जोर से। परमात्मा सुनता था कि नहीं, पड़ोस के लोग सुन लेते थे कि सौ रुपए से कम न लूंगा; निन्यानबे भी देगा, नहीं लूंगा। जब भी दे, सौ पूरे देना।
आखिर पड़ोसी सुनते-सुनते परेशान हो गए। एक पड़ोसी ने तय किया कि इसको एक दफा निन्यानबे रुपए देकर देखें भी तो सही। वह कहता है कि निन्यानबे कभी न लूंगा, सौ ही लूंगा। उसने एक दिन सुबह जैसे ही मुल्ला प्रार्थना कर रहा था, एक निन्यानबे की थैली उसके झोपड़े के आंगन में फेंक दी।
मुल्ला ने पहला काम रुपए गिनने का किया। वह आधी प्रार्थना आधी रह गई;
वह पूरी नहीं कर पाया, नमाज पूरी नहीं हो सकी। उसने जल्दी से पहले गिनती की। निन्यानबे पाकर उसने कहा, वाह रे परमात्मा, एक रुपया थैली का तूने काट लिया!
उसने निन्यानबे स्वीकार कर लिए।

हमारी बनाई हुई प्रार्थना; हमारी प्रार्थना; और हम हिसाब लगा रहे हैं। वहां कोई है या नहीं, इससे बहुत प्रयोजन नहीं है। इसलिए अगर आपको पक्का हो जाए कि परमात्मा नहीं है, तो आपकी प्रार्थना टूट जाएगी, यह मैं जानता हूं। इसलिए प्रश्न सार्थक है।
लेकिन जो प्रार्थना परमात्मा के न होने से टूट जाती है, वह प्रार्थना
थी ही नहीं। प्रार्थना का कोई भी संबंध परमात्मा को बदलने से नहीं है; प्रार्थना आपको बदलने की कीमिया है। जब आप प्रार्थना करते हैं, तो वहां आकाश में बैठा हुआ परमात्मा नहीं रूपांतरित होता। जब आप प्रार्थना करते हैं, तो उस प्रार्थना करने में आप बदलते हैं।
तो प्रार्थना एक प्रयोग है, जिस प्रयोग से आप अपने अहंकार को तोड़ते हैं, अपने को झुकाते हैं। वहां कोई नहीं बैठा है, जिसके आगे आप अपने को झुकाते हैं। झुकने की घटना का परिणाम है। आप झुकते हैं। आपको कठिन है बिना परमात्मा के, इसलिए कोई हर्जा नहीं। आप मानते रहें कि परमात्मा है, लेकिन असली जो घटना घटती है, वह आपके झुकने से घटती है।
आप झुकना सीखते हैं, किसी के सामने समर्पित होना सीखते हैं। कहीं आपका माथा झुकता है; जो सदा अकड़ा हुआ है, वह कहीं जाकर झुकता है। कहीं आप घुटने के बल छोटे बच्चे की तरह हो जाते हैं; कहीं आप रोने लगते हैं, आंखों से आंसू बहने लगते हैं, हलके हो जाते हैं। और मैं कर सकता हूं, यह धारणा प्रार्थना से टूटती है। तू करेगा! तू करेगा सवाल नहीं है; मैं कर सकता हूं, यह धारणा टूटती है। मैं नहीं कर सकूंगा, तभी हम प्रार्थना करते हैं। मुझसे नहीं हो सकेगा।
अगर इसके गहरे अर्थ को समझें, तो इसका अर्थ है, जहां भी आपको समझ में आ जाता है कि कर्ता मैं नहीं हूं, वहीं प्रार्थना शुरू हो जाती है। यह कर्तृत्व को खोने की तरकीब है। वह जो कर्तृत्व है कि मैं करता हूं, वह जो अहंकार है, वह जो मेरी अस्मिता है कि करने वाला मैं हूं, उसके टूटने का नाम प्रार्थना है।
जब आप घुटने टेक देते हैं, सिर झुका देते हैं और कहते हैं, मुझसे कुछ
भी न होगा, अब तू ही कर, मेरे बस के बाहर है। तू ही उठा; अब मुझसे नहीं चलना हो सकेगा; तू ही चला। यह उससे इसका कोई संबंध नहीं है; वहां कोई है भी नहीं, जो इसको सुन रहा है। लेकिन यह कहने वाला हृदय अपने अहंकार को विसर्जित कर रहा है। और जो आनंद इस प्रार्थना से घटित होगा, वह किसी का दिया हुआ नहीं है; वह आपके ही अहंकार छोड़ने से आपको मिलता है।
धर्म तो एक नियम है। जो झुकता है, उसकी समृद्धि बढ़ती चली जाती है; जो अकड़ता है, उसकी समृद्धि टूटती चली जाती है। जो जितना अकड़ जाता है, उतना मुर्दा हो जाता है। जो जितना झुक जाता है, जितना लोचपूर्ण हो जाता है, फ्लेक्सिबल हो जाता है, उतना ही जीवंत हो जाता है।
बच्चे में और बूढ़े में वही फर्क है। बूढ़े की हड्डी-हड्डी अकड़ गई है।
अब वह झुक नहीं सकता। बच्चा लोचपूर्ण है।
प्रार्थना आपको लोच देती है, फ्लेक्सिबिलिटी देती है, आपको झुकना सिखाती है। जो प्रार्थना नहीं करता, वह अकड़ जाता है; असमय में बूढ़ा हो जाता है, असमय में मृत हो जाता है; जीते जी मुर्दा हो जाता है। और जो प्रार्थना करना जानता है, उसे मृत्यु भी नहीं मिटा पाती। मृत्यु के क्षण में भी वह लोचपूर्ण होता है, मृत्यु के क्षण में भी वह बच्चे जैसा जीवंत होता है। जो व्यक्ति प्रार्थना की कला सीख लेता है, उसे परमात्मा से कोई संबंध नहीं। परमात्मा सिर्फ बहाना है, ताकि प्रार्थना हो सके। परमात्मा सिर्फ खूंटी है, जिस पर हम प्रार्थना के कोट को टांग सकें। असली बात प्रार्थना है।
इसलिए बुद्ध और महावीर जैसे महाज्ञानियों ने परमात्मा को बिल्कुल इनकार ही कर दिया। लेकिन प्रार्थना को इनकार नहीं कर सके, प्रार्थना जारी रही। पूजा को इनकार नहीं कर सके, पूजा जारी रही। समर्पण को इनकार नहीं कर सके; समर्पण जारी रहा। इसलिए जैन धर्म बहुत ज्यादा जनता तक नहीं पहुंच सका, क्योंकि यह बात ही समझ में नहीं आती। अगर भगवान ही नहीं है, तो फिर कैसी आराधना? जब परमात्मा नहीं है, तो पूजा किसकी?

तो जैन विचार बहुत थोड़े लोगों की पकड़ में आया, ज्यादा लोग उसके साथ नहीं चल सके। और जो थोड़े-से लोग भी प्रथम दिन चले थे, वे ही समझदार थे। पीछे तो उनकी संतान सिर्फ अंधेपन के कारण चलती है। क्योंकि उनके मां-बाप जैन थे, वे भी जैन हैं। लेकिन उनकी भी समझ में नहीं आता।
और इसलिए उन्होंने फिर नए उपाय कर लिए। बिना परमात्मा के तो पूजा हो नहीं सकती, तो फिर महावीर को ही परमात्मा की जगह बिठा दिया; फिर पूजा जारी हो गई! अब कोई फर्क नहीं है जैन और हिंदू में। हिंदू प्रार्थना कर रहा है, राम से, कृष्ण से। जैन प्रार्थना कर रहा है, महावीर से, ऋषभ से, नेमीनाथ से। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
लेकिन परमात्मा के बिना प्रार्थना करना बड़ा कठिन है; जो कर पाए, उसके जीवन में बड़े फूलों की वर्षा हो जाती है। लेकिन आप न कर पाते हों, तो परमात्मा से शुरू करें; कोई हर्जा नहीं है। परमात्मा सिर्फ खिलौना है; असली चीज प्रार्थना घट जाए। जिस दिन प्रार्थना घट जाएगी, उस दिन तो आप खुद समझ जाएंगे कि परमात्मा के होने न होने का सवाल नहीं है।
धर्म नियम है, इसलिए मैंने कहा। और जो भी घटता है जीवन में, वह एक आत्यंतिक नियम के कारण घटता है। आपकी प्रार्थनाओं के कारण कुछ भी नहीं घटता। आपकी पूजा के कारण कुछ भी नहीं घटता। हां, अगर पूजा आपकी, प्रार्थना आपकी आपको बदल देती हो, तो आप नियम के अनुकूल बहने लगते हैं। उस नियम के अनुकूल बहने से घटना घटती है।
हम जीवन में करीब-करीब उन्हीं-उन्हीं भूलों को बार-बार दोहराते हैं। पिछले जन्म में भी आपने वही भूलें कीं, उसके पिछले जन्म में भी वही भूलें कीं, आज भी वही कर रहे हैं। और डर यह है कि शायद कल और आने वाले जन्म में भी वही भूलें करेंगे। हर पीढ़ी उन्हीं को दोहराती है; हर आदमी उन्हीं को दोहराता है।
बड़ी से बड़ी भूल जो है, वह यह है कि हम अंतरस्थ भावों को भी बिना आब्जेक्टिफाइ किए, बिना उनको वस्तु में रूपांतरित किए स्वीकार नहीं कर पाते। भाव तो भीतरी है, लेकिन उस भाव को भी सम्हालने के लिए हमें बाहर के सहारे की जरूरत पड़ती है। यह बुनियादी भूलों में से एक है।
अगर आप प्रसन्न हैं और कोई आपसे पूछे कि आप क्यों प्रसन्न हैं, तो आप
यह नहीं कह सकते कि मैं बस, प्रसन्न हूं। क्यों का क्या सवाल है? आप कारण बताएंगे कि मैं इसलिए प्रसन्न हूं कि आज मित्र घर आया। इसलिए प्रसन्न हूं कि धन मिला। इसलिए प्रसन्न हूं कि लाटरी जीत गया। आप कोई कारण बताएंगे। आप इतनी हिम्मत नहीं कर सकते कि कह सकें कि मैं प्रसन्न हूं, क्योंकि प्रसन्न होने में प्रसन्नता है।
और मूढ़ हैं, जो कारण खोजते हैं। क्योंकि कारण खोजने वाला बहुत ज्यादा प्रसन्न नहीं हो सकता। कितने कारण खोजिएगा? रोज कारण नहीं मिल सकते। और आज कारण मिल जाएगा, घड़ीभर बाद कारण चुक जाएगा। लाटरी मिल गई, एक धक्का लगा, खुशी आ गई। फिर? मित्र आज घर आ गया, कल कोई और घटना घट गई, अगर जिंदगी में कारण से प्रसन्नता आती हो, तो बहुत थोड़ी प्रसन्नता आएगी।
इसीलिए लोगों के जीवन में सुख बहुत कम है, दुख बहुत ज्यादा है। क्योंकि कारण से जब सुख मिलेगा, तब सुख; अन्यथा दुख ही दुख है। दुख अकारण हमने स्वीकार किया है; सुख के लिए हम कारण खोजते हैं।
और अगर आप प्रसन्न हैं बिना कारण के, तो लोग समझेंगे, आप पागल हैं।
बिना कारण के प्रसन्न हैं! कोई कारण तो चाहिए। अगर आप प्रसन्न हो रहे हैं, मुस्कुरा रहे हैं, नाच रहे हैं, बिना किसी कारण के; न लाटरी मिली, न पत्नी मायके गई, कोई खुशी का कारण नहीं है, और आप प्रसन्न हो रहे हैं, तो लोग समझेंगे कि आप पागल हैं।
ये जो, जिनको हमने संत कहा है, उनके जीवन का रहस्य यही है कि उन्होंने बिना कारण प्रसन्न होने का रास्ता खोज लिया। संत और संसारी में यही भेद है। संसारी कारण खोजता है पहले। पहले सब प्रमाण मिल जाएं, तब वह प्रसन्न होगा। संत प्रसन्न होता है, प्रमाण का कोई आधार नहीं खोजता। क्या फर्क हुआ?
संत अंतरस्थ भाव में जीता है। बाहर आब्जेक्टिफिकेशन नहीं खोजता, बाहर वस्तु रूप में प्रमाण नहीं चाहता। तो संत कहता है, प्रार्थना काफी है,

परमात्मा हो या न हो। हो तो ठीक; न हो तो भी उतना ही ठीक। इससे संत की प्रार्थना में कोई फर्क नहीं पड़ता।
संत प्रेम करता है, प्रेमी की तलाश नहीं करता। प्रेम में ही इतना आनंद
है कि अब प्रेमी का उपद्रव लेने की कोई जरूरत नहीं है। संत ध्यान करता है, लेकिन ध्यान के लिए कोई विषय नहीं खोजता।
विषय से मुक्ति हो, वस्तु से मुक्ति हो, पदार्थ से मुक्ति हो और अंतर्भाव में रमण हो, तो जीवन की परम समाधि अपने आप सध जाती है।
लेकिन हमें सब जगह बाहर कुछ चाहिए। अगर बाहर हमें कुछ न मिले, तो हम बिल्कुल खाली हो जाते हैं। क्योंकि भीतर हमने कभी फिक्र नहीं की। और हमने भीतर की जड़ें नहीं खोजीं, जिनसे सारे जीवन के फूल खिल सकते हैं, बाहर की कोई भी जरूरत नहीं है। जब तक ऐसा समझ में न आए, तब तक बाहर का सहारा लेकर चलें। लेकिन ध्यान रखें कि वह सहारा सिर्फ सहारा है; वहां कोई है नहीं। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका क्या यह अर्थ हुआ कि मैं कह रहा हूं परमात्मा नहीं है?
नहीं, मैं सिर्फ इतना ही कह रहा हूं जिस परमात्मा को आप सोचते हैं, वह नहीं है। जो परमात्मा आप निर्मित किए हैं, वह नहीं है। परमात्मा का तो एक ही अर्थ है, यह समग्र अस्तित्व, यह टोटेलिटी, यह जो पूर्णता है। ये जो वृक्ष हैं, पौधे हैं, पत्थर हैं, जमीन है, चांद-तारे हैं, मनुष्य हैं, पशु- पक्षी हैं, यह जो सारा फैलाव है, यह जो ब्रह्म है, यह जो विस्तार है, यह सब कुछ परमात्मा है। और जिस दिन आपको अपने में झुकने की कला आ जाएगी, आपका मस्तक झुक सकेगा, लोचपूर्ण होगा, हृदय आनंदित, प्रफुल्लित होगा, प्रार्थना के स्वर वहां गूंजते होंगे, पैरों में धुन होगी आराधना की, भक्त का भाव होगा, तब आप पाएंगे कि यह सब परमात्मा है। उस दिन आप देखेंगे, जीवन नियम से चल रहा है। और धर्म भी विज्ञान है। वस्तुतः धर्म परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है।
इस प्रश्न का दूसरा हिस्सा भी समझने जैसा हैः तब तो धर्म विज्ञान का पर्याय हो जाता है और उस परम नियम की खोज में निकलना मात्र धर्म रह जाता है।
निश्चित ही, उस परम नियम की खोज में निकलना ही धर्म है। लेकिन वह परम नियम अगर बाहर आप खोजते हैं, तो आप वैज्ञानिक हो जाते हैं। और अगर उस परम नियम को आप भीतर खोजते हैं, तो धार्मिक हो जाते हैं।
वैज्ञानिक भी धर्म ही खोज रहा है, लेकिन पदार्थ में खोज रहा है, बाहर खोज रहा है। और अगर आप भी धर्म को मंदिर में खोजते हैं, मस्जिद में खोजते हैं, तो आप भी बाहर खोज रहे हैं। आप में और वैज्ञानिक में बहुत फर्क नहीं है।
धार्मिक उसी नियम को भीतर खोजता है। क्योंकि धार्मिक व्यक्ति की यह प्रतीति है, जिसे मैं भीतर न पा सकूंगा, उसे मैं बाहर कैसे पा सकूंगा। क्योंकि भीतर मेरा निकटतम है, जब भीतर ही मेरे हाथ नहीं पहुंच पाते, तो बाहर मेरे हाथ कहां पहुंच पाएंगे? हाथ बड़े छोटे हैं।
अपने ही भीतर नहीं छू पाता उसे, तो फिर मैं आकाश में उसे कैसे छू पाऊंगा? और जो मेरे हृदय के भी पास है, और जो मेरे प्राणों से भी निकट है, जो मेरी धड़कन-धड़कन में समाया है, वहां नहीं सुन पाता उसे, तो बादलों की गड़गड़ाहट में कैसे सुन पाऊंगा? बहुत दूर हैं बादल। और जो ज्योति मेरे भीतर जल रही है, वहां उससे मेरा मिलन नहीं होता, तो सूरज, चांद, तारों की ज्योति में मैं उसे नहीं पहचान पाऊंगा।
जब सत्य इतना निकट हो और हम उसे वहां चूक जाते हों, तो हमारी दूर की सब यात्रा व्यर्थ है। भीतर मुझे वह दिखाई पड़ जाए, तो सब जगह मैं उसे पहचान लूंगा। निकट पहचान हो जाए, तो दूर भी वह मुझे दिखाई पड़ने लगेगा। क्योंकि जिसे हम दूरी कहते हैं, वह भी निकटता का ही फैलाव है। पर पहली घटना, पहली क्रांति भीतर घटेगी।
वैज्ञानिक दृष्टि का मतलब है, सदा बाहर। धार्मिक दृष्टि का अर्थ है, सदा भीतर।

वैज्ञानिक दूर से शुरू करता है और निकट आने की कोशिश करता है। यह कभी
भी नहीं हो पाएगा, क्योंकि वह दूरी अनंत है; जीवन बहुत छोटा है। अनेक-अनेक जन्म खोते जाएंगे, तो भी वह दूरी बनी रहेगी।
धार्मिक उसे भीतर से शुरू करता है और फिर बाहर की तरफ जाता है। और भीतर जिसने उसे छू लिया, वह तरंग पर सवार हो गया; उसने लहर पकड़ ली; उसके हाथ में नाव आ गई। अब कोई जल्दी भी नहीं है। वह दूसरा किनारा न भी मिले, तो भी कुछ खोता नहीं है। वह दूसरा किनारा कभी भी मिल जाएगा, अनंत में कभी भी मिल जाएगा, तो भी कोई प्रयोजन नहीं है। कोई डर भी नहीं है उसके खोने का। मिले तो ठीक, न मिले तो ठीक। लेकिन आप ठीक नाव पर सवार हो गए।
जिसने अंतस में पहचान लिया, उसकी यात्रा कभी भी मंजिल पर पहुंचे या न पहुंचे, मंजिल पर पहुंच गई। वह बीच नदी में डूबकर मर जाए, तो भी कोई चिंता की बात नहीं है। अब उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है। अब नदी का मध्य भी उसके लिए किनारा है।
धार्मिक व्यक्ति भीतर से बाहर की तरफ फैलता है। और जीवन का सभी विस्तार भीतर से बाहर की तरफ है। आप एक पत्थर फेंकते हैं पानी में; छोटी-सी लहर उठती है पत्थर के किनारे; फिर फैलना शुरू होती है। भीतर से उठी लहर पत्थर के पास, फिर दूर की तरफ जाती है। आपने कभी इससे उलटा देखा कि लहर किनारों की तरफ पैदा होती हो और फिर सिकुड़कर भीतर की तरफ आती हो!
एक बीज को आप बो देते हैं। फिर वह फैलना शुरू हो जाता है; फिर वह फैलता जाता है; फिर एक विराट वृक्ष पैदा होता है। और उस विराट वृक्ष में एक बीज की जगह करोड़ों बीज लगते हैं। फिर वे बीज भी गिरते हैं। फिर फूटते हैं, फिर फैलते हैं।
हमेशा जीवन की गति बाहर से भीतर की तरफ नहीं है। जीवन की गति भीतर से बाहर की तरफ है। यहां बूंद सागर बनती देखी जाती है; यहां बीज वृक्ष बनते देखा जाता है। धर्म इस सूत्र को पहचानता है। और आपके भीतर जहां लहर उठ रही है हृदय की, वहीं से पहचानने की जरूरत है। और वहीं से जो पहचानेगा, वही पहचान पाएगा।
लेकिन जैसा मैंने कहा कि हम नियमित रूप से बंधी-बंधाई भूलें दोहराते हैं। आदमी बड़ा अमौलिक है। हम भूल तक ओरिजिनल नहीं करते; वह भी हम पुरानी पिटी-पिटाई करते हैं।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उस पर नाराज थी। बात ज्यादा बढ़ गई और पत्नी ने चाबियों का गुच्छा फेंका और कहा कि मैं जाती हूं। अब बहुत हो गया और सहने के बाहर है। मैं अपनी मां के घर जाती हूं और कभी लौटकर न आऊंगी।
नसरुद्दीन ने गौर से पत्नी को देखा और कहा कि अब जा ही रही हो, तो एक खुशखबरी सुनती जाओ। कल ही तुम्हारी मां तुम्हारे पिता से लड़कर अपनी मां के घर चली गई है। और जहां तक मैं समझता हूं, वहां वह अपनी मां को शायद ही पाए।
एक वर्तुल है भूलों का। वह एक-सा चलता जाता है। एक बंधी हुई लकीर है, जिसमें हम घूमते चले जाते हैं। हर पीढ़ी वही भूल करती है, हर आदमी वही भूल करता है, हर जन्म में वही भूल करता है। भूलें बड़ी सीमित हैं।
धर्म की खोज की दृष्टि से यह बुनियादी भूल है कि हम बाहर से भीतर की तरफ चलना शुरू करते हैं। क्योंकि यह जीवन के विपरीत प्रवाह है, इसमें सफलता कभी भी मिल नहीं सकती। सफलता उसी को मिल सकती है, जो जीवन के ठीक प्रवाह को समझता है और भीतर से बाहर की तरफ जाता है।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं कि सभी द्वैत से ऊपर उठकर परम मुक्ति को उपलब्ध होने के लिए समस्त जीवेषणा की निर्जरा अनिवार्य है। आज के समय के अनुकूल मृत्यु-साधना की कोई सम्यक विधि बताएं?

जीवेषणा, लस्ट फार लाइफ का अर्थ ठीक से समझ लें।
हम जीना चाहते हैं। लेकिन यह जीने की आकांक्षा बिल्कुल अंधी है। कोई आपसे पूछे, क्यों जीना चाहते हैं, तो उत्तर नहीं है। और इस अंधी दौड़ में हम

पौधे, पक्षियों, पशुओं से भिन्न नहीं हैं। पौधे भी जीना चाहते हैं, पौधे भी जीवन की तलाश करते हैं।
मेरे गांव में मेरे मकान से कोई चार सौ कदम की दूरी पर एक वृक्ष है। चार सौ कदम काफी फासला है। और मकान में जो नल का पाइप आता है, वह अचानक एक दिन फूट पड़ा, तो जमीन खोदकर पाइप की खोजबीन करनी पड़ी कि क्या हुआ! चार सौ कदम दूर जो वृक्ष है, उसकी जड़ें उस पाइप की तलाश करती हुई पाइप के अंदर घुस गई थीं, पानी की खोज में।
वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्ष बड़े हिसाब से अपनी जड़ें पहुंचाते हैं-- कहां पानी होगा? चार सौ कदम काफी फासला है और वह भी लोहे के पाइप के अंदर पानी बह रहा है। लेकिन वृक्ष को कुछ पकड़ है। उसने उतने दूर से अपनी जड़ें पहुंचाईं। और ठीक उन जड़ों ने आकर अपना काम पूरा कर लिया, कसते-कसते उन्होंने पाइप को तोड़ दिया लोहे के। वे अंदर प्रवेश कर गईं और वहां से पानी पी रही थीं; वर्षों से वे उपयोग कर रही होंगी।
वृक्ष को भी पता नहीं कि वह क्यों जीना चाहता है। अफ्रीका के जंगल में वृक्ष काफी ऊंचे जाते हैं। उन्हीं वृक्षों को आप यहां लगाएं, उतने ऊंचे नहीं जाते। ऊंचे जाने की यहां कोई जरूरत नहीं है। अफ्रीका में जंगल इतने घने हैं कि वैज्ञानिक कहते हैं, जिस वृक्ष को बचना हो, उसको ऊंचाई बढ़ानी पड़ती है। क्योंकि वह ऊंचा हो जाए, तो ही सूरज की रोशनी मिलेगी। अगर वह नीचा रह गया, तो मर जाएगा।
वही वृक्ष अफ्रीका में ऊंचाई लेगा तीन सौ फीट की। वही वृक्ष भारत में
सौ फीट पर रुक जाएगा। जीवेषणा में यहां संघर्ष उतना नहीं है।
वैज्ञानिक कहते हैं, जेब्रा है, ऊंट है, उनकी जो गर्दनें इतनी लंबी हो
गई हैं, वह रेगिस्तानों के कारण हो गई हैं। जितनी ऊंची गर्दन होगी, उतना ही जानवर जी सकता है, क्योंकि इतने ऊपर वृक्ष की पत्तियों को वह तोड़ सकता है। सुरक्षा है जीवन में, तो गर्दन बड़ी होती चली गई है।
चारों तरफ जीवन का बचाव चल रहा है। छोटी-सी चींटी भी अपने को बचाने में, खुद को बचाने में लगी है। बड़े से बड़ा हाथी भी अपने को बचाने में लगा है। हम भी उसी दौड़ में हैं।
और सवाल यह है--और यहीं मनुष्य और पशुओं का फर्क शुरू होता है कि हमारे
मन में सवाल उठता है--कि हम जीना क्यों चाहते हैं? आखिर जीवन से मिल क्या रहा है जिसके लिए आप जीना चाहते हैं?
जैसे ही पूछेंगे कि मिल क्या रहा है, तो हाथ खाली मालूम पड़ते हैं। मिल कुछ भी नहीं रहा है। इसलिए कोई भी विचारशील व्यक्ति उदास हो जाता है, मिल कुछ भी नहीं रहा है।
रोज सुबह उठ आते हैं, रोज काम कर लेते हैं; खा लेते हैं; पी लेते हैं; सो जाते हैं। फिर सुबह हो जाती है। ऐसे पचास वर्ष बीते, और पचास वर्ष बीत जाएंगे। अगर सौ वर्ष का भी जीवन हो, तो बस यही क्रम दौड़ता रहेगा। और अभी तक कुछ नहीं मिला, कल क्या मिल जाएगा?
और मिलने जैसा कुछ लगता भी नहीं है। मिलेगा भी क्या, इसकी कोई आशा भी बांधनी मुश्किल है। धन मिल जाए, तो क्या मिलेगा? पद मिल जाए, तो क्या मिलेगा? जीवन रिक्त ही रहेगा।
जीवेषणा अंधी है, पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है। और इसलिए जीवेषणा
से उठने का जो पहला प्रयोग है, वह आंखों के खोलने का प्रयोग है कि मैं अपने जीवन को देखूं कि मिल क्या रहा है! और अगर कुछ भी नहीं मिल रहा है, यह प्रतीति साफ हो जाए, तो जीवेषणा क्षीण होने लगेगी।
मैं जीना इसलिए चाहता हूं कि कुछ मिलने की आशा है। अगर यह स्पष्ट हो जाए कि कुछ मिलने वाला नहीं है, कुछ मिल नहीं रहा है, तो जीने की आकांक्षा से छुटकारा हो जाएगा, उसकी निर्जरा हो जाएगी।
पहली बात, आंख खोलकर देखना जरूरी है, सजग होना जरूरी है कि जीवन क्या
दे रहा है!
फिर दूसरी बात, देखना जरूरी है कि मिल तो कुछ भी नहीं रहा और जीवन रोज मौत में उतरता जा रहा है। और आज नहीं कल मैं मरूंगा।
हालांकि कोई इसको सुनने के लिए राजी नहीं होता। हम सब यही सोचते हैं
कि सदा दूसरे ही मरते हैं, मैं तो कभी मरता ही नहीं। जब भी कोई मरता है, और

कोई मरता है; मैं तो कभी मरता नहीं। इसलिए भ्रांति बनी रहती है कि मैं नहीं मरूंगा।
चीन का एक बहुत बड़ा कथाकार हुआ, लूसम। उसने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। उसमें लिखा है कि एक युवक एक ज्योतिषी के पास ज्योतिष सीखता था। उसने अपने गुरु से एक दिन पूछा कि अगर मैं लोगों को सत्य-सत्य कह देता हूं उनकी हाथ की रेखाएं पढ़कर, तो पिटाई की नौबत आ जाती है। झूठ मैं कहना नहीं चाहता। झूठ कहता हूं, तो लोग बड़े प्रसन्न होते हैं।
एक घर में बच्चे का जन्म हुआ। लोगों ने मुझे बुलाया। तो मैंने देखकर उनको बताया, झूठ बोला, कि महायशस्वी होगा। सभी मां-बाप को भरोसा होता है; सभी बच्चे प्रतिभाशाली की तरह पैदा होते हैं। सभी मां-बाप को भरोसा होता है कि इसका तो कोई मुकाबला नहीं।
महायशस्वी होगा, बड़ा प्रतिभाशाली है। धन्यभाग हैं तुम्हारे। वे लोग बड़े खुश हुए, उन्होंने काफी भेंट दी, शाल ओढ़ाई, भोजन कराया, सेवा की।
मगर मैं झूठ बोला था, तो उससे मेरे मन में चोट पड़ती रही। दूसरे घर में बच्चा पैदा हुआ, तो मैंने सत्य ही कह दिया कि बाकी तो और कुछ पक्का नहीं है, लेकिन यह एक दिन मरेगा, इतना भर पक्का है। तो मेरी वहां पिटाई हुई। लोगों ने मुझे मारा और कहा कि तुम ज्योतिष तो दूर, तुम्हें शिष्टाचार का भी पता नहीं!
तो उसने अपने गुरु से पूछा कि आप मुझे कुछ रास्ता बताएं। झूठ भी मुझे
न बोलना पड़े और पिटाई की नौबत भी न आए। क्योंकि अब यह धंधा मैंने स्वीकार कर लिया है ज्योतिष का।
तो उसके गुरु ने कहा, अगर ऐसा अवसर आ जाए, तो मैं तुम्हें अपना सार बता देता हूं जीवनभर का, जो मैं करता हूं। अगर झूठ भी न बोलना हो और पिटना भी न हो, तो तुम कहना, वाह-वाह, क्या बच्चा है! ही-ही-ही। तुम कुछ वक्तव्य मत देना, तो तुम झूठ बोलने से भी बचोगे और पिटाई भी नहीं होगी।
सभी होशियार ज्योतिषी आपको देखकर यही करते हैं।
जीवेषणा की तरफ अगर थोड़ी-सी भी ध्यान की प्रक्रिया लौटे, थोड़ा-सा आपका होश बढ़े, तो दूसरा सवाल साफ ही हो जाएगा कि यह जीवन कहीं नहीं ले जा रहा है सिवाय मौत के। यह कहीं नहीं जा रहा है सिवाय मौत के। जैसे सभी नदियां सागर में जा रही हैं, सभी जीवन मौत में जा रहे हैं।
तब दूसरा बोध स्पष्ट होना चाहिए कि जो जीवन मौत में ले जाता है, जो अनिवार्यरूपेण मौत में ले जाता है, अपरिहार्य जिसमें मृत्यु है, मृत्यु से बचने का जिसमें कोई उपाय नहीं, वह आकांक्षा के योग्य नहीं है, वह एषणा के योग्य नहीं है, वह कामना के योग्य नहीं है।
ये दो बातें अगर गहन होने लगें आपके भीतर, इनकी सघनता बढ़ने लगे, तो जीवेषणा की निर्जरा हो जाती है। और जिस दिन व्यक्ति जीने की आकांक्षा से मुक्त होता है, उसी दिन जीवन का द्वार खुलता है। क्योंकि जब तक हम जीवन की इच्छा से भरे रहते हैं, तब तक हम इस बुरी तरह उलझे रहते हैं जीवन में कि जीवन का द्वार हमारे लिए बंद ही रह जाता है, खुल नहीं पाता।
हम इतने व्यस्त होते हैं जीवित होने में, जीवित बने रहने में, कि जीवन क्या है, उससे परिचित होने का हमें न समय होता है, न सुविधा होती है। उस मंदिर के द्वार अटके ही रह जाते हैं, बंद ही रह जाते हैं।
जिन्होंने जीवेषणा छोड़ दी, उन्होंने जीवन का राज जाना। वे ही परम बुद्धत्व को प्राप्त हुए। और जिन्होंने जीवेषणा छोड़ दी, उन्होंने अमृत को पकड़ लिया, अमृत को पा लिया। जिन्होंने जीवेषणा पकड़ी, वे मौत पर पहुंचे। इतना तो तय है कि जो जीवेषणा से चलता है, वह मृत्यु पर पहुंचता है। इससे उलटा भी सच है--लेकिन वह कभी आपका अनुभव बने तभी--कि जो जीवेषणा छोड़ता है, वह अमृत पर पहुंचता है। इसको हम निरपवाद नियम कह सकते हैं। अब तक इस जगत में जितने लोगों ने जीवेषणा की तरफ से दौड़ की, वे मृत्यु पर पहुंचते हैं। कुछ थोड़े-से लोग जीवेषणा को छोड़कर चले, वे अमृत पर पहुंचे हैं। उपनिषद, गीता, कुरान, बाइबिल, धम्मपद, वे उन्हीं व्यक्तियों की घोषणाएं हैं जिन्होंने जीवेषणा छोड़कर अमृत को उपलब्ध किया है।

मृत्यु के पार जाना हो, तो जीवन की इच्छा को छोड़ देना जरूरी है। यह बड़ा उलटा लगेगा। जीवन बड़ा जटिल है। जीवन निश्चित ही काफी जटिल है और विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है।
इसका मतलब यह हुआ कि जो जीवन को पकड़ता है, वह मृत्यु को पाता है। इसका
यह अर्थ हुआ कि जो जीवन को छोड़ता है, वह महाजीवन को पाता है। यह बिल्कुल विरोधाभासी लगता है, लेकिन ऐसा है। यह विरोधाभास ही जीवन का गहनतम स्वरूप है।
आप करके देखें। धन को पकड़ें और आप दरिद्र रह जाएंगे। कितना ही धन हो, दरिद्र रह जाएंगे। धन को छोड़कर देखें। और आप भिखमंगे भी हो जाएं, तो भी सम्राट आपके सामने फीके होंगे। आप शरीर को जोर से पकड़ें। और शरीर से सिर्फ दुख के आप कुछ भी न पाएंगे। और शरीर से आप तादात्म्य तोड़ दें, शरीर को पकड़ना छोड़ दें। और आप अचानक पाएंगे कि शरीर को पकड़ने की वजह से आप सीमा में बंधे थे, अब असीम हो गए।
यहां जो छीनने चलता है, उसका छिन जाता है। यहां जो देने चल पड़ता है, उससे छीनने का कोई उपाय नहीं। यह जो विरोधाभास है, यह जो जीवन का पैराडाक्स है, यह जो पहेली है, इसको हल करने की व्यवस्था ही साधना है।
दो काम करें। जीवन ने क्या दिया है, इसकी परख रखें। क्या मिला है जीवन से, क्या मिल सकता है, इसका हिसाब रखें। पाएंगे कि सब हाथ खाली हैं। आशा भी टूट जाएगी कि कल भी कुछ मिल सकता है। क्योंकि जो अतीत में नहीं हुआ, वह भविष्य में भी नहीं होगा। जो कभी नहीं हुआ, वह आगे भी कभी नहीं होगा। और फिर देखें कि सब जीवन मृत्यु के सागर में उंडलते चले जाते हैं। कोई आज, कोई कल। हम सब क्यू में खड़े हैं। आज नहीं कल, बारी आ जाती है और मृत्यु में उतर जाते हैं।
तो यह सारा जीवन मृत्यु में पूरा होता है, निश्चित ही यह मृत्यु का ही छिपा हुआ रूप है। क्योंकि अंत में वही प्रकट होता है, जो प्रथम से ही छिपा रहा हो। तो जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मौत है। और जीवेषणा को छोड़ेंगे, तो ही यह मौत छूटेगी। तब हमें उस जीवन का अनुभव होना शुरू होगा, जिसका मिटना कभी भी नहीं होता है।
उस जीवन को ही परमात्मा कहें, उस जीवन को मोक्ष कहें, उस जीवन को आत्मा कहें, उस जीवन को जो भी नाम देना हो, वह हम दे सकते हैं।

अब हम सूत्र को लें।
और हे अर्जुन, काम, क्रोध तथा लोभ, ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं अर्थात अधोगति में ले जाने वाले हैं, इससे इन तीनों को त्याग देना चाहिए।
क्योंकि हे अर्जुन, इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परम गति को जाता है अर्थात मेरे को प्राप्त होता है।
और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से बर्तता है, वह
न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को तथा न सुख को ही प्राप्त होता है।
इससे तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र-विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।
एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करें। तीन शब्दों को कृष्ण नरक का द्वार
कह रहे हैंः काम, क्रोध और लोभ। जिसको मैंने जीवेषणा कहा, वह इन तीन हिस्सों में टूट जाती है।
जीवेषणा का मूल भाव काम है, यौन है, कामवासना है। वैज्ञानिक, जीवशास्त्री कहते हैं कि आदमी में दो वासनाएं प्रबलतम हैं, एक भूख और दूसरा यौन।
भूख इसलिए प्रबलतम है कि अगर भूख का होश आपको न हो, तो आप मर जाएंगे, जी
न सकेंगे। एक बच्चा पैदा हो और उसे भूख का पता न चलता हो, तो वह जी नहीं सकेगा। भूख उसके शरीर को बचाने के लिए एकदम जरूरी है। भूख इस बात की खबर है

कि शरीर आपसे कहता है, अब मैं बच नहीं सकूंगा, शीघ्र मुझे कुछ दो, मेरी शक्ति खोती है।
तो भूख बचाती है स्वयं के शरीर को। लेकिन अगर भूख ही अकेली हो, तो भी
आप कभी के खो गए होते, आप पैदा ही न होते। क्योंकि भूख आपको बचा लेगी, लेकिन आपके बच्चों को नहीं बचा सकेगी। और बच्चों को पैदा करने का कोई भाव नहीं पैदा होगा। भूख में वह कोई शक्ति नहीं है। इसलिए एक दूसरी भूख है, वह है यौन।
पेट की भूख से आप बचते हैं, यौन की भूख से समाज बचता है। ये दो भूखें हैं। और जैसे ही व्यक्ति का पेट भर जाता है, दूसरा जो ख्याल आता है, वह सेक्स का है। भूखे आदमी को ख्याल चाहे न आए। क्योंकि भूखा आदमी पहले अपने को बचाए, तब समाज को बचाने का सवाल उठता है, तब संतति को बचाने का सवाल उठता है। खुद ही न बचे, तो संतति कैसे बचेगी?
इसलिए धार्मिक लोगों ने सोचा कि उपवास करने से कामवासना से मुक्ति हो जाएगी। वह तरकीब सीधी है, बायोलाजिकल है। क्योंकि जब आदमी भूखा हो, तो वह खुद को बचाने की सोचेगा। भूखे आदमी को कामवासना पैदा नहीं होती। इसलिए अगर आप लंबा उपवास करें, तो कामवासना मर जाती है।
मरती नहीं, सिर्फ छिप जाती है। जब फिर पेट भरेगा, तब फिर कामवासना वापस आ जाएगी। इसलिए वह तरकीब धोखे की है, उससे कुछ हल नहीं होता। जैसे ही समाज समृद्ध होता है, वैसे ही कामवासना तीव्र हो जाती है।
लोग सोचते हैं, अमेरिका में बहुत सेक्सुअलिटी है। ऐसा कुछ भी नहीं है। अमेरिका का पेट भरा है, आपका पेट खाली है। जहां भी पेट भर जाएगा, वहां भूख का तो सवाल खत्म हो गया। इसलिए पूरे जीवन की ऊर्जा सिर्फ सेक्स में दौड़ने लगती है। आपकी दो में दौड़ती है, भूख में और सेक्स में। फिर अगर पेट बिल्कुल ही भूखा हो, तो सेक्स में दौड़ना बंद हो जाती है, फिर भूख में ही दौड़ती है, क्योंकि भूख पहली जरूरत है। आप बचें, तो फिर आपके बच्चे बच सकते हैं। जैसे ही पेट भरा कि जो दूसरा ख्याल उठता है, वह कामवासना का है। जीवेषणा दो पहलुओं से चलती है, व्यक्ति बचे और संतति बचे। इसलिए कामवासना बहुत गहरे में पड़ी है। और उससे छुटकारा इतना आसान नहीं, जितना साधु-संत समझते हैं। उससे छुटकारा बड़ी आंतरिक वैज्ञानिक प्रक्रिया के द्वारा होता है; बच्चों का खेल नहीं है। नियम और व्रत लेने से कुछ हल नहीं होता, कसमें खाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक कि जीवन का रोआं-रोआं रूपांतरित न हो जाए, जब तक बोध इतना प्रगाढ़ न हो कि आप शरीर से अपने को बिल्कुल अलग देखने में समर्थ न हो जाएं, तब तक कामवासना पकड़ती ही रहती है। यह जो कामवासना है, अगर आप इसके साथ चलें, इसके पीछे दौड़ें, तो जो एक नई वृत्ति पैदा होती है, उसका नाम लोभ है। लोभ कामवासना के फैलाव का नाम है। एक स्त्री से हल नहीं होता, हजार स्त्रियां चाहिए! तो भी हल नहीं होगा।
सार्त्र ने अपने एक उपन्यास में उसके एक पात्र से कहलवाया है कि जब तक
इस जमीन की सारी स्त्रियां मुझे न मिल जाएं, तब तक मेरी कोई तृप्ति नहीं। आप भोग न सकेंगे सारी स्त्रियों को; वह सवाल नहीं है; लेकिन मन की कामना इतनी विक्षिप्त है।
जब तक सारे जगत का धन न मिल जाए, तब तक तृप्ति नहीं है। धन की भी खोज आदमी इसीलिए करता है। क्योंकि धन से कामवासना खरीदी जा सकती है; धन से सुविधाएं खरीदी जा सकती हैं, सुविधाएं कामवासना में सहयोगी हो जाती हैं। लोभ कामवासना का फैलाव है। इसलिए लोभी व्यक्ति कामवासना से कभी मुक्त नहीं होता। यह भी हो सकता है कि वह लोभ में इतना पड़ गया हो कि कामवासना तक का त्याग कर दे। एक आदमी धन के पीछे पड़ा हो, तो हो सकता है कि वर्षों तक स्त्रियों की उसे याद भी न आए। लेकिन गहरे में वह धन इसीलिए खोज रहा है कि जब धन उसके पास होगा, तब स्त्रियों को तो आवाज देकर बुलाया जा सकता है। उसमें कुछ अड़चन नहीं।
यह भी हो सकता है कि जीवनभर उसको ख्याल ही न आए, वह धन की दौड़ में लगा रहे। लेकिन धन की दौड़ में गहरे में कामवासना है।
सब लोभ काम का विस्तार है। इस काम के विस्तार में, इस लोभ में जो भी बाधा देता है, उस पर क्रोध आता है। कामवासना है फैलता लोभ, और जब उसमें कोई रुकावट डालता है, तो क्रोध आता है।

काम, लोभ, क्रोध एक ही नदी की धाराएं हैं। जब भी आप जो चाहते हैं, उसमें कोई रुकावट डाल देता है, तभी आप में आग जल उठती है, आप क्रोधित हो जाते हैं। जो भी सहयोग देता है, उस पर आपको बड़ा स्नेह आता है, बड़ा प्रेम आता है। जो भी बाधा डालता है, उस पर क्रोध आता है। मित्र आप उनको कहते हैं, जो आपकी वासनाओं में सहयोगी हैं। शत्रु आप उनको कहते हैं, जो आपकी वासनाओं में बाधा हैं।
लोभ और क्रोध से तभी छुटकारा होगा, जब काम से छुटकारा हो। और जो व्यक्ति सोचता हो कि हम लोभ और क्रोध छोड़ दें काम को बिना छोड़े, वह जीवन के गणित से अपरिचित है। यह कभी भी होने वाला नहीं है।
इसलिए समस्त धर्मों की खोज का एक जो मौलिक बिंदु है, वह यह है कि कैसे अकाम पैदा हो। उस अकाम को हमने ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है, कैसे मेरे जीवन के भीतर वह जो दौड़ है एक विक्षिप्त और जीवन को पैदा करने की, उससे कैसे छुटकारा हो।
कृष्ण कहते हैं, ये तीन नरक के द्वार हैं।
हमें तो ये तीन ही जीवन मालूम पड़ते हैं। तो जिसे हम जीवन कहते हैं, कृष्ण उसे नरक का द्वार कह रहे हैं।
आप इन तीन को हटा दें, आपको लगेगा फिर जीवन में कुछ बचता ही नहीं। काम हटा दें, तो जड़ कट गई। लोभ हटा दें, फिर क्या करने को बचा! महत्वाकांक्षा कट गई। क्रोध हटा दें, फिर कुछ खटपट करने का उपाय भी नहीं बचा। तो जीवन का सब उपक्रम शून्य हुआ, सब व्यवहार बंद हुए।
अगर लोभ नहीं है, तो मित्र नहीं बनाएंगे आप। अगर क्रोध नहीं है, तो शत्रु नहीं बनाएंगे। तो न अपने बचे, न पराए बचे; आप अकेले रह गए। आप अचानक पाएंगे, ऐसा जीवन तो बहुत घबड़ाने वाला हो जाएगा। वह तो नारकीय होगा। और कृष्ण कहते हैं कि ये तीन नरक के द्वार हैं! और हम इन तीनों को जीवन समझे हुए हैं।
हमें ख्याल भी नहीं आता कि हम चौबीस घंटे काम से भरे हुए हैं। उठते- बैठते, सोते-चलते, सब तरफ हमारी नजर का जो फैलाव है, वह कामवासना का है। अगर अभी एक हवाई जहाज गिर पड़े, आप उसके टूटे अस्थिपंजर के पास जाएं। उसमें जो यात्री मरे हुए पड़े होंगे, उन मरे हुए यात्रियों में भी आपको सबसे पहले जो चीज दिखाई पड़ेगी, वह यह कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष।
आप सब चीजें भूल जाते हैं। दस साल पहले कोई आपको मिला था। नाम भूल गया, शक्ल भूल गई, कुछ भी याद नहीं रहा। लेकिन यह आप कभी नहीं भूलते कि वह स्त्री थी कि पुरुष--यह कभी नहीं भूलते। आपको याद है कि आपको कभी ऐसा शक पैदा हुआ हो कि बीस साल पहले एक आदमी, एक व्यक्ति मिला था, वह स्त्री थी या पुरुष? यह शक आपको हो ही नहीं सकता। इसका मतलब क्या है?
इसका मतलब यह है कि आपके ऊपर गहरे से गहरा जो संस्कार पड़ता है, वह स्त्री और पुरुष होने का पड़ता है। उसका चेहरा कैसा था; भूल गया। उसका नाम क्या था; भूल गया। उसकी जाति क्या थी; भूल गई। वह लंबा था कि ठिगना था; सब भूल गया। लेकिन उसका सेक्स, वह आपको याद है। इसका मतलब यह है कि सबसे गहरी आपकी स्मृति इस बात को पकड़ती है। सबसे ज्यादा चेतना इसके आस-पास घूमती है। यह जो हमारा काम है, यह कोई क्षण दो क्षण की बात नहीं कि कभी-कभी आपको पकड़ता है। यह चौबीस घंटे आपको घेरे हुए है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। शायद चौबीस घंटे आप काम हैं। फिर इसमें जहां-जहां सहयोग मिलता है, वहां-वहां लोभ पैदा होता है। वह इस काम की धारा में ही लोभ का वर्तुल है।
जैसे नदी बहती है, और उसमें छोटे-छोटे भंवर पैदा हो जाते हैं। तो आपकी काम की जो नदी बहती है, जिस-जिस से सहारा मिलता है, वह आपके लोभ का भंवर हो जाता है। और जिस-जिस से बाधा मिलती है, वह आपके क्रोध का भंवर हो जाता है। फिर उन दोनों की परतें हमारे ऊपर बैठ जाती हैं।
उठते-बैठते, चलते-फिरते, आप ख्याल लेते हों, न लेते हों, व्यवहार करते, आपका लोभ और क्रोध काम करता है। आप रास्ते पर चलते आदमी से नमस्कार भी तभी करते हैं, जब कुछ लोभ उससे जुड़ा हो। कोई लोभ--अतीत में, आज या भविष्य में-- कहीं न कहीं उससे कुछ लाभ मिल सकता होगा, तो ही आप नमस्कार करते हैं। नहीं तो आप नमस्कार करने वाले भी नहीं। हाथ जोड़ने तक का श्रम आप उठाएंगे नहीं।

और आपकी नजर जहां भी जाती है, वहां तत्क्षण मित्र और शत्रु को पहचानती है। जिससे भी थोड़ी-सी भी विरोध की संभावना है, या थोड़ी-सी भी बाधा पड़ सकती, थोड़ी प्रतियोगिता हो सकती है, उसके प्रति आपका क्रोध जलता ही रहता है। भभक सकता है, किसी भी क्षण मौका मिल जाए तो।
यह जो हमारा क्रोध, लोभ और मोह है, इन्हें आप सिद्धांतों की तरह तो समझ
ले सकते हैं, लेकिन जीवन व्यवहार में इनके स्वरूप को पहचानना असली सवाल है। और हम उसमें इतने लिप्त होते हैं कि उसे अपने जीवन में पहचानना अक्सर कठिन होता है।
मैंने सुना है कि एक कंजूस आदमी ने अपने बेटे को चश्मा दिलवाया। दूसरे दिन सुबह ही बेटा बाहर बैठा है अपनी किताबें वगैरह लिए। उसके बाप ने भीतर के कमरे से पूछा कि बेटे, क्या कुछ पढ़ रहे हो? उस लड़के ने कहा कि नहीं। तो बाप ने पूछा, तो क्या कुछ लिख रहे हो? उसके लड़के ने कहा, नहीं। तो बाप ने कहा, तो फिर चश्मा उतारकर क्यों नहीं रख देते! लगता है, तुम्हें फिजूलखर्ची की आदत पड़ गई है।
वह जो चश्मा आंख पर रखा है, जब लिख भी नहीं रहे, पढ़ भी नहीं रहे, तो उसका फिजूलखर्च हो रहा है, चश्मे का।
यह हमें हंसने योग्य लग सकता है। लेकिन लोभी आदमी की यह दृष्टि है। वह
सब जगह बचा रहा है। और कई दफे ऐसा हो जाता है कि हम लोभ के नाम पर जो बचाते हैं, उसको भी हम अच्छे सिद्धांत बता देते हैं।
फ्रायड ने एक बहुत अनूठी बात कही है, उसने कहा है कि आमतौर से जो लोग ब्रह्मचर्य में उत्सुक होते हैं, वे लोभी होते हैं, ग्रीडी होते हैं। वीर्य खो न जाए, इसकी कंजूसी उनको ब्रह्मचारी बना देती है।
यह बड़ी सोचने जैसी बात है। और इधर जैसा मैंने अनेक लोगों को अनुभव किया है, अक्सर यह बात सच है। सौ प्रतिशत सच नहीं है, क्योंकि ब्रह्मचर्य की दिशा में जाने वाला एक प्रतिशत वह आदमी भी होता है, जो कामवासना से मुक्त होकर ब्रह्मचर्य की तरफ जाता है। सौ में निन्यानबे तो वे लोग होते हैं, जो सिर्फ लोभ के कारण ब्रह्मचर्य की तरफ जाते हैं कि कहीं शक्ति खर्च न हो जाए।
आपने शायद इस दिशा से कभी सोचा न हो। और अक्सर आपके साधु-संन्यासी जो आपको समझाते हैं, वे समझाते हैं कि बचाओ अपनी शक्ति को। वीर्य का एक बिंदु खोने का मतलब है, न मालूम कितना सेर खून खो गया। वीर्य का एक बिंदु खो गया, तो न मालूम कितना नुकसान हो गया। वे जो समझा रहे हैं आपको, आपको डरवा रहे हैं; वे आपके लोभ को जगा रहे हैं, वे यह कह रहे हैं कि शक्ति खो न जाए। इसलिए अक्सर जो मुल्क कंजूस होते हैं, वे ब्रह्मचर्य की बहुत चर्चा करते हैं। और जो जातियां निपट कंजूस होती हैं, वे ब्रह्मचर्य को बड़े जोर से पकड़ लेती हैं।
ये जो ब्रह्मचर्य की इस तरह की बात करने वाले निन्यानबे प्रतिशत लोग हैं, इनमें से अधिक लोग कब्जियत के शिकार होंगे। क्योंकि जैसा वे वीर्य को बचाना चाहते हैं, ऐसा वे सब चीजों को बचाना चाहते हैं। वे मल तक को इकट्ठा करना सीख जाते हैं।
अभी आधुनिक विज्ञान बड़ी महत्वपूर्ण बातें कहता है। वह कहता है, जो व्यक्ति भी कब्जियत का शिकार है, वह यह बता रहा है कि वह मल को भी छोड़ने को राजी नहीं है। उसकी चित्त की दशा सब चीजों को पकड़ लेने की है। मनोवैज्ञानिक कई अनूठे नतीजों पर पहुंचे हैं, जो धर्म को और धर्म की खोज में जाने वाले लोगों को ठीक से समझ लेना चाहिए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सब चीजें प्रतीकात्मक हैं। और एक बड़ी अनूठी बात है, जो एकदम से समझ में नहीं आती, लेकिन सही हो सकती है। वे कहते हैं, मल का जो रंग है, पीला रंग, वही सोने का रंग है। और सोने को जो लोग पकड़ते हैं, वे लोग कब्जियत के शिकार हो जाते हैं। वे मल को भी नहीं छोड़ सकते। और धन हाथ का मल ही है, वह मैल ही है, उससे ज्यादा है भी नहीं। लेकिन हर चीज को पकड़ लेना है, रोक लेना; कुछ भी छोड़ते नहीं बनता उनसे। जीवन उनका महारोग हो जाता है।
काम विक्षिप्तता लाता है। लोभ उस विक्षिप्तता को बढ़ाने के लिए दूसरों
का सहारा मांगता है, फैलाव मांगता है। क्रोध उस विक्षिप्तता में कोई भी बाधा डाले, उसको नष्ट करने को तैयार हो जाता है।

ये तीनों नरक के द्वार हैं। और हम जीवन में जितने दुख खड़े करते हैं, वह इनके द्वारा ही खड़े करते हैं। नरक कहीं कोई स्थान नहीं है, जहां द्वारों पर लिखा है कि काम, क्रोध, लोभ, कि यहां से भीतर मत जाइए। जहां-जहां ये तीन हैं, वहां-वहां नरक है, वहां-वहां जीवन दुख और संताप से भर जाता है। वहां- वहां जीवन की प्रफुल्लता कुम्हला जाती है; जीवन के फूल वहां नहीं लगते। आपने कभी कंजूस आदमी को प्रसन्न देखा है? कंजूस प्रसन्न हो ही नहीं सकता। प्रसन्नता में भी उसे लगेगा, कुछ खर्च हो रहा है, कुछ नुकसान हुआ जा रहा है। वह प्रसन्नता तक को रोके रखता है। वह हृदयपूर्वक हंस नहीं सकता; वह कठिन है, मुश्किल है; वह उसके व्यक्तित्व का ढंग नहीं है। वह किसी चीज में शेयर नहीं कर सकता, भागीदार नहीं बना सकता।
इसलिए कंजूस कभी प्रेम नहीं कर सकता, किसी को प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि प्रेम में उसे डर लगता है कि जिससे प्रेम किया, उसको कुछ बांटना पड़ेगा, कुछ साझेदारी करनी पड़ेगी।
कंजूस किसी चीज में बंटाव नहीं कर सकता। कंजूस अकेला जीता है, आइसोलेटेड। अपने में बंद हो जाता है, और उसके चारों तरफ कारागृह खड़ा हो जाता है। और अपने चारों तरफ कारागृह खड़ा हो जाए; हम किसी चीज में साझेदारी न कर सकें, मुस्कुरा भी न सकें, बांट भी न सकें... ।
जीवन के सब आनंद बंटने से जुड़े हुए हैं। जो आदमी जितना बांट सकता है,
जो जितना अपने को फैला सकता है, जो जितना अपने को दूसरों को दे सकता है, उतना ही प्रफुल्लित होता है, उतना ही आनंदित होता है।
अगर परमात्मा परम आनंद है, तो उसका इतना ही अर्थ है कि परमात्मा ने अपने को पूरा का पूरा इस जगत को दे दिया है, इस पूरे अस्तित्व को अपने को दे दिया है। वह सब तरफ फैल गया है। उसे आप कहीं भी खोज नहीं सकते। आप अंगुली करके इशारा नहीं कर सकते कि यह रहा परमात्मा। क्योंकि वह एक जगह होता, तो कंजूस होता, कृपण होता, बंधा होता। वह सब जगह है।
इसलिए आप जहां भी कहें, वहां वह है। और जहां भी आप इशारा करें, वहीं आप पाएंगे कि मुश्किल है, वह सब जगह है। उसने अपने को सब तरह फैला दिया है। वह पूरा बंट गया है कि अब उसके पास कुछ भी नहीं बचा है, अपने जैसा कुछ भी नहीं बचा है, इसलिए परम आनंद है, इसलिए सच्चिदानंद है।
मैंने सुना है कि नानक एक गांव में ठहरे। गांव बड़े भले लोगों का था, बड़े साधुओं का था, बड़े संत-सज्जन पुरुष थे। नानक के शब्द-शब्द को उन्होंने सुना, चरणों का पानी धोकर पीया। नानक को परमात्मा की तरह पूजा। और जब नानक उस गांव से विदा होने लगे, तो वे सब मीलों तक रोते हुए उनके पीछे आए और उन्होंने कहा, हमें कुछ आशीर्वाद दें। तो नानक ने कहा, एक ही मेरा आशीर्वाद है कि तुम उजड़ जाओ।
सदमा लगा। नानक के शिष्य तो बहुत हैरान हुए, कि यह क्या बात कही! इतना भला गांव। लेकिन अब बात हो गई और एकदम पूछना भी ठीक न लगा। सोचेंगे, विचार करेंगे, फिर पूछ लेंगे।
फिर दूसरे गांव में पड़ाव हुआ। वह दुष्टों का गांव था। सब उपद्रवी जमीन के वहां इकट्ठे थे। उन्होंने न केवल अपमान किया, तिरस्कार किया, पत्थर फेंके, गालियां दीं, मार-पीट की नौबत खड़ी हो गई; रात रुकने भी न दिया। जब गांव से नानक चलने लगे, तो वे तो आशीर्वाद मांगने वाले थे ही नहीं। शोरगुल मचाते, गालियां बकते नानक के पीछे गांव के बाहर तक आए थे। गांव के बाहर आकर नानक ने अपनी तरफ से आशीर्वाद दिया कि सदा यहीं आबाद रहो।
तब शिष्यों को मुश्किल हो गया। उन्होंने कहा कि अब तो पूछना ही पड़ेगा। यह तो हद हो गई। कुछ भूल हो गई आपसे। पिछले गांव में भले लोग थे, उनसे कहा, बरबाद हो जाओ! उजड़ जाओ! और इन गुंडे-बदमाशों को कहा कि सदा आबाद रहो, खुश रहो, सदा बसे रहो!
नानक ने कहा कि भला आदमी उजड़ जाए, तो बंट जाता है। वह जहां भी जाएगा, भलेपन को ले जाएगा। वह फैल जाए सारी दुनिया पर। और ये बुरे आदमी, ये इसी गांव में रहें, कहीं न जाएं। क्योंकि ये जहां जाएंगे, बुराई ले जाएंगे। लेकिन बंटना बुरे आदमी का स्वभाव ही नहीं होता, अच्छा है यह। वह सिकुड़ता है, यह बड़ी कृपा है। भला आदमी बंटता है। बांटना उसका स्वभाव है। दान उसके जीवन की व्यवस्था है। यह सवाल नहीं कि वह कुछ देता है कि नहीं

देता है; यह उसके रहने-होने का ढंग है कि वह साझेदारी करता है, वह शेयर करता है।
ये जो तीन हैं, काम, क्रोध, लोभ, ये सिकोड़ देते हैं। और सिकुड़ा हुआ आदमी नरक बन जाता है।
ये अधोगति में ले जाने वाले हैं, इन तीनों को त्याग देना चाहिए।
क्योंकि हे अर्जुन, इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परम गति को जाता है अर्थात मुझको प्राप्त होता है।
इन तीन से जो मुक्त हुआ पुरुष है, वही केवल कल्याण का आचरण करता है। कल्याण का अर्थ है, जिससे हित हो, मंगल हो; जिससे आनंद बढ़े, फैले।
लेकिन जो आदमी कामवासना से भरा है, लोभ और क्रोध से भरा है, उसका आचरण कल्याण का नहीं हो सकता। उसका आचरण अहंकार-केंद्रित होगा। वह अपने लिए सबको मिटाने की कोशिश करेगा। वह चारों तरफ विध्वंस फैलाएगा। उसकी आकांक्षा यही है कि सब मिट जाएं, मैं अकेला रहूं। क्योंकि जब तक दूसरा है, तब तक मैं चाहे बांटूं या न बांटूं, वह इस जगत की संपत्ति में से बंटाव तो कर ही रहा है। जब तक दूसरा है, कम से कम श्वास तो ले ही रहा है। तो इतनी आक्सीजन जिस पर मैं कब्जा कर सकता था, वह कब्जा कर रहा है। तब तक सूरज की रोशनी तो पी ही रहा है; सूरज पूरा का पूरा मेरा हो सकता था, उसमें वह बंटाव कर रहा है। तब तक आकाश में पूर्णिमा का चांद निकलता है, तो वह भी प्रसन्न होता है। उतनी मेरी प्रसन्नता खो रही है।
वह जो आदमी काम, क्रोध, लोभ से भरा हुआ है, उसका मौलिक आधार जीवन का यह
है कि मैं अकेला रहूं और सब मिट जाएं। वह नहीं मिटा पाता, यह दूसरी बात है। कोशिश पूरी कर रहा है। हजारों दफे उसने प्रयोग किए हैं कि वह सबको पोंछकर समाप्त कर दे, अकेला रहे। कल्याण तो उससे हो ही नहीं सकता।
कल्याण तो उसी व्यक्ति से हो सकता है, सब रहें, चाहे मैं मिट जाऊं। मैं चाहे खो जाऊं; चाहे मेरी कोई जगह न रह जाए, लेकिन शेष सब रहे। फूल और जोर से खिलें, चांद और जोर से निकले, लोग और आनंदित हों, जीवन की बांसुरी बजती रहे; मेरे होने न होने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। अगर मैं बाधा बनता हूं, तो हट जाऊं। अगर सहयोग बन सकता हूं, तो ही रहूं।
लेकिन ये तीन द्वार जब बंद हो जाएं, तभी कल्याण का जीवन शुरू होता है।
यह जो शब्द कल्याण है, मंगल है, यह बड़ा समझने जैसा है। इसका अर्थ दूसरे
का सुख है। और दूसरे के सुख को अगर आप सोचना भी शुरू कर दें... ।
हम तो कंसीडर भी नहीं करते। दूसरा है, यह भी विचार नहीं करते। दूसरे
के जीवन में भी सुख की कोई संभावना हो सकती है, दूसरे को भी सुख मिलना चाहिए, यह तो हमारे मन में कभी कौंधता ही नहीं।
महावीर ने कहा है, जैसे तुम जीना चाहते हो, वैसे ही सभी जीना चाहते हैं। जैसे तुम सुख पाना चाहते हो, वैसे सभी सुख पाना चाहते हैं। तो जो तुम अपने लिए चाहते हो, वह सबके लिए चाहो।
जीसस ने कहा है, जो तू न चाहता हो कि लोग तेरे प्रति करें, वह तू कभी भूलकर भी दूसरे के प्रति मत करना। यह कल्याण का सूत्र हुआ। और जो तू चाहता हो कि लोग तेरे प्रति करें, वही तू उनके प्रति करना। क्योंकि जो तेरे भीतर जीवन की छिपी चाह है, वही दूसरों के भीतर भी जीवन की छिपी चाह है। और तेरे भीतर जो जीवन है और दूसरे के भीतर जो जीवन है, वह एक ही का विस्तार है। कल्याण का अर्थ है कि मेरे भीतर और आपके भीतर जो है, वह एक ही चेतना का फैलाव है। और अगर मैं आपका सुख चाहता हूं, तो वस्तुतः यही मैं अपने सुख का आधार रख रहा हूं। और अगर मैं आपका दुख चाहता हूं, तो मैं अपने ही हाथ-पैर तोड़ रहा हूं, क्योंकि आप मेरे ही फैले हुए रूप हैं। अगर आपको मैं दुखी करता हूं, तो मैं अपने ही दुख का इंतजाम कर रहा हूं। देर-अबेर यह दुख मुझे पकड़ लेगा। आपको सुख दे रहा हूं, तो देर-अबेर यह सुख मेरे पास आ जाएगा।
एक बार जिस आदमी को यह समझ में आ गया कि इस जगत में अलग-अलग कटे-कटे लोग नहीं हैं; हम अलग-अलग आयलैंड नहीं हैं, द्वीप नहीं हैं, हम एक महाद्वीप हैं। और अगर हमारे बीच में फासला दिख रहा है, तो वह फासला भी बीच में आ गए पानी की दीवार का है। नीचे हम जुड़े हैं, नीचे जमीन एक है। और उस पानी की दीवार का कोई बहुत मूल्य नहीं है। पानी की भी कोई दीवार होती है?

यह जो मेरे और आपके बीच में दीवार है, यह पानी की भी नहीं, हवा की ही दीवार है। इस दीवार के दोनों तरफ जिस हवा से आप श्वास ले रहे हैं, उसी हवा से मैं श्वास ले रहा हूं, हम दोनों जुड़े हैं। हम सब जुड़े हैं। इस संयुक्तता का बोध आ जाए, तो जीवन में कल्याण का भाव आता है।
और जो काम, क्रोध, लोभ से भरा है, उसे यह संयुक्तता का भाव नहीं आ सकता। उसके लिए सब दुश्मन हैं, सब प्रतियोगी हैं। जो चीजें वह छीनना चाह रहा है, वही दूसरे छीनना चाह रहे हैं। इसलिए दूसरों का सुख वह कैसे चाह सकता है! दूसरों के लिए आशीर्वाद उससे नहीं बह सकता। अभिशाप ही दूसरों के लिए उसके पास है।
और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्यागकर अपनी इच्छा से बर्तता है, वह
न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को और न सुख को ही प्राप्त होता है।
इस बात को समझना बड़ा जरूरी है और गहरा है।
जो व्यक्ति शास्त्र की विधि को त्यागकर... ।
शास्त्र की विधि क्या है? शास्त्र क्या है? इसे समझें।
शास्त्र का अर्थ है, सदियों-सदियों में, सनातन से जिन्होंने जाना है, उनका सार निचोड़। जिन्होंने जीवन के आनंद को अनुभव किया है, जीवन के वरदान की वर्षा जिन पर हुई है, उन्होंने जो कहा है, उसका जोड़।
आज कठिन हो गई है यह बात। ऐसी कठिन उस दिन बात न थी, जब कृष्ण ने यह कहा था। उस दिन हर कोई शास्त्र नहीं लिखता था। कोई सोच ही नहीं सकता था कि बिना जाने मैं लिखूं। वह सोचने के बाहर था। क्योंकि बिना जाने लिखने में कोई अर्थ भी नहीं था। शास्त्रों पर किसी के नाम भी नहीं थे। वह कोई व्यक्तियों की संपदा भी नहीं थी। अनंत-अनंत काल में, अनंत-अनंत लोगों ने जो जाना है, उस जानने को लोग निखारते गए। शास्त्र संपदा थी सबके अनुभव की।
वेद हैं, वे किसी एक व्यक्ति के वचन नहीं हैं। अनंत-अनंत ऋषियों ने जो जाना है, वह सब संगृहीत है। उपनिषद हैं, वे किसी एक व्यक्ति के लिखे हुए विचार नहीं हैं। वह अनंत-अनंत लोगों ने जाना है, उनका सारभूत है। कुछ पक्का पता लगाना भी मुश्किल है कि किसने जाना है। व्यक्ति खो गए हैं, सिर्फ सत्य रह गए हैं।
कृष्ण ने जब यह बात कही, तब शास्त्र का अर्थ था, जाने हुए लोगों के वचन। इन वचनों को त्यागकर जो अपनी इच्छा से बर्तता है, वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि एक व्यक्ति का अनुभव ही कितना है! एक व्यक्ति की छोटी-सी बुद्धि कितनी है! वह ऐसे ही है, जैसे सूरज निकला हो, और हम अपना टिमटिमाता दीया लेकर रास्ता खोज रहे हैं।
एक व्यक्ति का अनुभव बहुत छोटा है। एक व्यक्ति का होश बहुत छोटा है।
अपने ही अनुभव से जो चलने की कोशिश करेगा, वह अनंत काल लगा देगा भटकने में।
लेकिन जाने हुए पुरुषों का, जागे हुए पुरुषों का जो वचन है, उसका सहारा लेकर जो चलेगा, वह व्यर्थ के भटकाव से बच जाएगा।
रास्ता छोटा हो सकता है, अगर थोड़ा-सा नक्शा भी हमारे पास हो।
शास्त्रों का अर्थ है, नक्शे। शास्त्रों को सिर पर रखकर बैठ जाने से कोई मंजिल पर नहीं पहुंचता। लेकिन वे नक्शे हैं, उन नक्शों का अगर ठीक से उपयोग करना समझ में आ जाए, तो आप बहुत-सी भटकन से बच सकते हैं। जहां जो भूल-चूक जिन लोगों ने पहले की, उसको आपको करने की जरूरत नहीं है।
शास्त्र कोई बंधे-बंधाए उत्तर नहीं हैं; शास्त्र तो केवल मार्ग को खोजने के इशारे हैं। और उन इशारों को जो ठीक से समझ लेता है और उनके अनुसार चलता है, वह सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। और जो उनको त्याग देता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न परम गति को, और न सुख को ही प्राप्त होता है। वह भटकता है।
यह आज के युग में बात और कठिन हो गई, क्योंकि आज शास्त्र बहुत हैं। कोई पांच हजार शास्त्र प्रति सप्ताह लिखे जाते हैं। पुस्तकें बढ़ती चली जाती हैं। और कुछ पक्का पता लगाना मुश्किल है, कौन लिख रहा है, कौन नहीं लिख रहा है। पागल भी लिख रहे हैं। उनको राहत मिलती है, केथार्सिस हो जाती है। उनका पागलपन निकल जाता है, किताब में रेचन हो जाता है। फिर उन पागलों की लिखी

किताबों को दूसरे पागल पढ़ रहे हैं। उनका तो रेचन हो जाता है, इनकी खोपड़ी भारी हो जाती है। अब तय करना मुश्किल है। क्योंकि बहुत-से सूत्र खो गए। पहला सूत्र तो यह खो गया कि बिना जागे कोई व्यक्ति न लिखे; बिना जागे कोई व्यक्ति न बोले; बिना जाग्रत हुए कोई किसी दूसरे को सलाह न दे। यह पुराने समय में सोचना ही असंभव था कि कोई बिना जागे हुए किसी को सलाह दे देगा।
लेकिन आज कठिन है। आज तो सोए आप कितने ही हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, आप सलाह दे सकते हैं। सोया हुआ आदमी और भी उत्सुकता से सलाह देता है। वह चाहे अपने सपने में बड़बड़ा रहा हो, लेकिन उसको अनुयायी मिल जाते हैं। लोग उसके पीछे चलने लगते हैं। जितने जोर से कोई चिल्ला सकता हो, उतना ज्यादा पीछे अनुसरण करने वाले मिल जाते हैं।
आज कठिन है। लेकिन आज भी व्यक्ति अपनी ही खोजबीन से चले, तो बहुत समय व्यय होगा, बहुत जन्म खो जाएंगे। आज भी व्यक्ति को शास्त्र की खोज करनी चाहिए। लेकिन आज की कठिनाई को ध्यान में रखकर मैं कहूंगा कि आज शास्त्र से ज्यादा सदगुरु... ।
कृष्ण ने जब कहा, तब शास्त्र सदगुरु का काम करता था, क्योंकि सिर्फ सदगुरुओं के वचन ही लिपिबद्ध थे। आज मुश्किल है। छापेखाने ने पागलखाने के द्वार खोल दिए हैं। कोई भी लिख सकता है, कोई भी किताबों का प्रचार कर सकता है, कुछ अड़चन नहीं है अब। आज शास्त्र उतना सहयोगी नहीं हो सकता। आज शास्त्र को भी पहचानना हो, तो भी सदगुरु के ही माध्यम से पहचाना जा सकता है।
एक बहुत पुरानी कहावत है, सतयुग में शास्त्र, कलियुग में गुरु। उसमें बड़ा अर्थ है। क्योंकि कलियुग में इतने शास्त्र हो जाएंगे कि यही तय करना मुश्किल हो जाएगा, कौन-सा शास्त्र है और कौन-सा शास्त्र नहीं है! और कौन आपको कहे? अब तो कोई निजी आत्मीय संबंध बन जाए आपका किसी जाग्रत पुरुष से, तो ही रास्ता बन सकता है। क्योंकि उसके माध्यम से शास्त्र भी मिल सकेगा। और जीवित पुरुष मिल जाए, तो शास्त्र की जरूरत भी नहीं रह जाती।
लेकिन शास्त्र का मतलब ही इतना है, जागे हुए पुरुषों के वचन; चाहे वे जिंदा हों, चाहे जिंदा न हों। अगर आपको जीवन की बहुत-सी अड़चन, भटकन, व्यर्थ खोजबीन से बचना हो, भूल-चूक में बहुत समय खराब न करना हो, तो जरूरी है कि जिसने जाना हो, उसकी बात समझें; जिसने पहचाना हो, उसकी बात समझें।
और आप कैसे पहचानेंगे किसी व्यक्ति को कि उसने जान लिया, पहचान लिया?
एक ही कसौटी है कि जिस व्यक्ति को आप देखें कि उसकी कोई खोज नहीं अब, उसका कोई प्रश्न नहीं अब। अब उसको पाने का कुछ, आपको दिखाई में न पड़ता हो। कोई व्यक्ति लगता हो कि ऐसे जी रहा है, जैसे उसने सब पा लिया। जो सब तरफ से तृप्त हो, जिसकी तृप्ति का वर्तुल बंद हो गया हो, जो कहीं से खुलता न हो अब। तो ऐसे व्यक्ति की सन्निधि खोजना जरूरी है। आपके लिए वही शास्त्र होगा। उसके माध्यम से आपको वेद, उपनिषद, कुरान और बाइबिल के द्वार भी खुल जाएंगे।
इससे तेरे लिए उस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र-विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।
अर्जुन क्षत्रिय है, योद्धा है। कृष्ण शास्त्र की बात कह रहे हैं, क्योंकि शास्त्र उस दिन तय किया था, समाज चार हिस्सों में विभाजित था। बड़ी कुशलता से विभाजित किया था। कुशलता अनूठी है। हिंदुओं की खोज बड़ी गहरी है।
आज पांच हजार साल हो गए। पांच हजार साल में दुनिया में बहुत तरह के लोगों ने मनुष्यों को बांटने की कोशिश की है, कि कितने प्रकार के मनुष्य हैं? अभी अत्याधुनिक कार्ल गुस्ताव जुंग की कोशिश है, पश्चिम के बड़े मनोवैज्ञानिक की। वह भी मनुष्यों को चार हिस्सों में ही बांट पाता है। इन पांच हजार सालों में दुनिया के कोने-कोने में अलग-अलग जातियों ने, अलग-अलग विचारकों ने खोज की है कि आदमी कितने प्रकार के हैं। वह हमेशा चार के ही आंकड़े पर आ जाते हैं।

हिंदुओं ने बड़ी पुरानी खोज की थी कि व्यक्ति चार तरह के हैं। और उन चार तरह के व्यक्तियों को बांट दिया था। और न केवल ऊपर से बांट दिया था, बल्कि ऐसे समाज की संरचना की थी कि आप मर भी जाएं आज, तो कल आपकी आत्मा अपने ही टाइप की जाति को खोज ले। वह बड़ी गहरे व्यूह की रचना थी।
ब्राह्मण मरकर ब्राह्मण घर में जन्म ले सके और अनंत जन्मों में ब्राह्मण घरों में तैर सके, तो उसका ब्राह्मणत्व सिद्ध होता चला जाएगा। और किसी भी जन्म में, शास्त्र ने ब्राह्मण के लिए जो कहा है, वह उसका मार्ग होगा।
अर्जुन क्षत्रिय है। आज के क्षत्रिय को तय करना मुश्किल है। आज कौन क्षत्रिय है, तय करना मुश्किल है। क्योंकि शास्त्र की वह व्यवस्था टूट गई। और समाज का वह जो ढंग था, चार विभाजन स्पष्ट कर दिए थे, जिनमें कोई लेन-देन नहीं था एक तरह का, जिनमें आत्माएं एक-दूसरे में प्रवेश नहीं कर पाती थीं, वह आज संभव नहीं है। आज सब अस्तव्यस्त हो गया है। और समाज-सुधार के नाम पर नासमझ लोगों ने बड़ी उपद्रव की बातें खड़ी कर दी हैं। उन्हें कुछ पता भी नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं।
लेकिन उस दिन जिस दिन अर्जुन से कृष्ण ने यह बात कही, सब स्थिति साफ थी।
अर्जुन क्या कह रहा है? अर्जुन ब्राह्मण की मांग कर रहा है। वह इस ढंग
का व्यवहार कर रहा है, जो ब्राह्मण को करना चाहिए। वह जो प्रश्न उठा रहा है, वे ब्राह्मण के हैं। यह हिंसा होगी, लोग मर जाएंगे; इस राज्य को पाकर क्या करूंगा; किसके लिए पाऊं; इससे तो बेहतर है, मैं सब छोड़ दूं और संन्यस्त हो जाऊं। वह प्रश्न उठा रहा है, जो ब्राह्मण-चरित्र के व्यक्ति के लिए उचित है। और अगर अर्जुन ब्राह्मण होता, तो कृष्ण ने यह गीता उससे नहीं कही होती।
कृष्ण यह गीता कहने को मजबूर हुए, क्योंकि अर्जुन का जो टाइप था, उसके
जो व्यक्तित्व का ढांचा था, वह क्षत्रिय का था। और वह कोई एक जन्म की बात न थी। अर्जुन अनंत जन्मों से क्षत्रिय था। बहुत-बहुत बार क्षत्रिय रह चुका था। क्षत्रिय होना उसका गहरा संस्कार था। वह उसके रोएं-रोएं में समाया था। उसकी आत्मा क्षत्रिय की थी।
इसलिए यह अगर ब्राह्मण भी बन जाए, तो इसका ब्राह्मण होना ऊपर-ऊपर होगा, धोखा होगा, पाखंड होगा। यह जनेऊ वगैरह पहन ले और चंदन-तिलक लगा ले और बैठ जाए, तो भी यह जंचेगा नहीं। इसके भीतर जो ढंग है, वह योद्धा का है। यह ब्राह्मण होने के योग्य नहीं है। यह ब्राह्मण हो भी नहीं सकता। क्योंकि ब्राह्मण होना कोई एक क्षण की बात नहीं है। इसके अनंत जन्मों के संस्कार साफ करने होंगे, तब यह ब्राह्मण हो सकता है। यह कोई एक क्षण का निर्णय नहीं है कि हमने तय किया और हम हो गए।
जैसे आज आप तय कर लें कि स्त्री होना है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा आपके तय करने से। आप स्त्री के कपड़े पहन सकते हैं, चाल-ढाल थोड़ी सीख सकते हैं। लेकिन स्त्रियां भी आप पर हंसेंगी। रहेंगे आप पुरुष ही। वह स्त्री होना ऊपर का पाखंड हो जाएगा और सिर्फ हंसी योग्य हो जाएंगे।
कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि तू शास्त्र की तरफ देख, क्षत्रिय के लिए शास्त्र ने क्या कहा है! तू उससे यहां-वहां मत हट, क्योंकि वही तेरी सिद्धि है। क्षत्रिय होकर ही और क्षत्रिय के धर्म का ठीक-ठीक अनुसरण करके ही तेरा मोक्ष तुझे मिलेगा।
तो क्षत्रिय की क्या सिद्धि होगी? और क्या उसका मार्ग होगा?
कृष्ण कह रहे हैं, क्षत्रिय सोचता ही नहीं कि कोई मरता है; क्षत्रिय सोचता ही नहीं कि भविष्य में क्या होगा। क्षत्रिय सोचता ही नहीं। क्षत्रिय लड़ना जानता है। लड़ना उसका ध्यान है। वह युद्ध में ध्यानस्थ हो जाता है। वह न यह जानता है कि मैं मर रहा हूं कि दूसरा मर रहा है; वह युद्ध में निर्भय हो जाता है। युद्ध के क्षण में उसकी चित्त की दशा न तो मारने के, न तो मरने के विचार से डोलती। वह निश्चिंत खड़ा हो जाता है। कौन मरता है, यह गौण है। युद्ध उसके लिए एक खेल है, वह अभिनय है, वह उसके लिए कोई बहुत गंभीरता का प्रश्न नहीं है। वह दोपहर लड़ेगा, सांझ तक लड़ेगा, सांझ बात भी नहीं करेगा कि युद्ध में क्या हुआ। रात विश्राम करेगा। रात उसकी नींद में

खलल भी नहीं पड़ेगी कि दिनभर इतना युद्ध हुआ, इतने लोग कटे। वह रात मजे से सोएगा। सुबह उठकर फिर युद्ध की तरफ चल पड़ेगा। युद्ध उसके लिए एक खेल और अभिनय है।
कृष्ण कह रहे हैं कि तू इस पूरे युद्ध को एक नाटक से ज्यादा मत जान। और तेरी जो शिक्षा है, तेरी जो दीक्षा है, तेरा जो संस्कार है, शास्त्र जो कहता है, तू उसके हिसाब से चुपचाप चल। तू अपना कर्तव्य पूरा कर। तू चिंता में मत पड़। यह चिंता तुझे शोभा नहीं देती। अगर इस चिंता में--यह करूं या वह करूं; हां या न; अच्छा या बुरा--तू उलझ गया, तो तू अपने धर्म से च्युत हो जाएगा। और तब तुझे अनंत जन्म लग जाएंगे। और यहां इस युद्ध के क्षण में इसी क्षण तू मुक्त हो सकता है। बस इतना ही तुझे करना है कि तू अपने कर्ता का भाव छोड़ दे।
क्षत्रिय वही है, जो कर्ता नहीं है।
जापान में क्षत्रियों का एक समूह है, समुराई। वह अब भी क्षत्रिय है।
और अनेक पीढ़ियों से समुराई तैयार किए गए हैं। क्योंकि हर कोई समुराई नहीं हो सकता; बाप समुराई रहा हो, तो ही बेटा समुराई हो सकता है।
हम, जैसा कि फलों की फसल तैयार करते हैं, तो अच्छे फलों का बीज चुनते हैं। फिर और उनमें से अच्छे फल, फिर उनमें से अच्छे फल। फिर फल बड़ा होता जाता है, सुस्वादु होता चला जाता है।
तो अनेक पीढ़ियों में समुराई चुने गए हैं। वह क्षत्रियों की जाति है। समुराई का एक ही लक्ष्य है कि जब मैं युद्ध में लडूं, तो युद्ध तो हो, मैं न रहूं। मेरी तलवार तो चले, लेकिन चलाने वाला न हो। तलवार जैसे परमात्मा के हाथ में आ जाए, वही चलाए; मैं सिर्फ निमित्त हो जाऊं।
इसलिए कहते हैं कि अगर दो समुराई युद्ध में उतर जाएं, तो बड़ा मुश्किल
हो जाता है कि कौन जीते, कौन हारे। क्योंकि दोनों ही अपने को मिटाकर लड़ते हैं। दोनों की तलवारें चलती हैं; लेकिन दोनों की तलवारें परमात्मा के हाथ में होती हैं। कौन हारे, कौन जीते।
समुराई-सूत्र है कि वही आदमी हार जाता है, जो थक जाता है जल्दी और वापस अपने अहंकार को लौट जाता है। जिसको भाव आ जाता है मैं का, वह हार जाता है। जो आदमी धैर्यपूर्वक परमात्मा पर छोड़कर चलता जाता है, उसके हारने का कोई भी उपाय नहीं है।
कृष्ण कह रहे हैं, तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तू शास्त्र-विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।
यह कर्तव्य और अकर्तव्य की व्याख्या कृष्ण ने की। क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है! क्या त्याग देना है, और क्या जीवन में बचा लेना है! कौन-से नरक के द्वार हैं, वे बंद हो जाएं, तो कैसे मोक्ष का द्वार खुल जाता है!
ये सारी बातें आपने सुनीं। ये बातें अर्जुन को कही गई हैं। इन पर आप सोचना। अगर आपकी चित्त-दशा अर्जुन जैसी हो, तो ये बातें आपके लिए बिल्कुल सीधा मार्ग बन जाएंगी। अगर आपकी चित्त-दशा अर्जुन जैसी न हो, और आप कोई संबंध ही न जोड़ पाते हों अपने और अर्जुन में, तो आप इन बातों को अपने पर ओढ़ने की कोशिश मत करना। क्योंकि वह भूल हो जाएगी वही, जो अर्जुन कर रहा था। इन बातों को समझना, सोचना, इनके साथ-साथ अपने स्वभाव को समझना और सोचना। दोनों को समानांतर रखना। अगर उनमें कोई मेल उठता हो, अगर दोनों में एक-सी धुन बजती हो, अगर दोनों में संयोग बनता हो, तो ये सूत्र आपके काम आ सकते हैं।
लेकिन गीता में करीब-करीब कृष्ण ने वे सारे सूत्र कह दिए हैं, जितने प्रकार के मनुष्य हैं। वे सारे सूत्र कह दिए हैं। इसलिए गीता इतनी लंबी चली। अर्जुन के बहाने कृष्ण ने पूरी मनुष्य जाति को उदबोधित किया है।
तो चाहे इस अध्याय में, चाहे किसी और अध्याय में, आपके लिए भी कहे गए वचन हैं। इतनी थोड़ी-सी मेहनत आपको करनी पड़ेगी कि अपने को थोड़ा समझें और अपने योग्य, अपने अनुकूल वचनों को थोड़ा पहचानें। और उचित ही है कि इतनी मेहनत आप करें। क्योंकि बिल्कुल चबाया हुआ भोजन मिल जाए, तो आत्मघाती है।

थोड़ा आप चबाएं और पचाएं। और यहां उत्तर बंधे हुए नहीं हैं, उत्तर खोजने पड़ेंगे।
मैंने सुना है, एक अदालत में मुकदमा चला एक आदमी पर, उसने हत्या की थी।
और एक गवाह को मौजूद किया गया, गांव के एक किसान को। और उस गवाह से वकील ने पूछा कि जब रामू ने पंडित जी पर कुल्हाड़ी से हमला किया, तो तुम कितनी दूर खड़े थे? उसने कहा कि छः फीट साढ़े छः इंच; उस किसान ने कहा। वकील भी चौंका, अदालत भी होश में आ गई, मजिस्ट्रेट भी चौंका। और वकील ने कहा, तुमने तो इस तरह बताया है कि जैसे तुमने पहले से ही सब नाप-जोखकर रखा हो। छः फीट साढ़े छः इंच!
उस किसान ने कहा, मुझे पता था कि कोई न कोई मूर्ख आदमी यह सवाल मुझसे यहां जरूर पूछेगा; तो यहां आने के पहले पहला काम मैंने यह किया। बिल्कुल नापकर आया हूं।
इस तरह बंधे हुए सवाल और उत्तर आपको गीता में नहीं मिल सकते। सब जवाब वहां मौजूद हैं, सब सवालों के जवाब मौजूद हैं। लेकिन पहले एक तो आपको अपना सवाल पहचानना पड़ेगा, फिर अपने सवाल को लेकर गीता में खोजना पड़ेगा। जवाब आपको मिल जाएगा। और वह जवाब जब तक न मिले, तब तक गीता को ऊपर से ओढ़ने की कोशिश मत करना, क्योंकि वह खतरनाक हो सकती है।
गीता एक आदमी के लिए कही गई है, लेकिन एक आदमी के बहाने सब आदमियों से कही गई है। इसलिए उसमें बहुउत्तर हैं, अनंत उत्तर हैं, आपका उत्तर भी वहां है। और आप अपने को पहचानते हों, तो उस उत्तर को खोज ले सकते हैं। फिर वही उत्तर आपके जीवन की साधना बन सकता है।
आज इतना ही।